KADMBINI FEB-JUNE 1980 G.K.U.

heros' AS-147

आस्था के आयाम

ये मेरे लिए सिद्धांत हैं
——बहुगुणा

वह एक पटवारी का बेटा था। पहाड़ पर घर था और जीवन भी पहाड़ों-जैसा ही दुर्गम और कठोर। स्कूल में पढ़ने के लिए उस किशोर को डेढ़-दो मील पैदल चलना पड़ता था। जब वह पहले दिन स्कूल जाने लगा, तब उसकी मां ने उसे तीन सीखें दीं— "बेटा! राह में पड़े कांटों को बिना फेंके आगे नहीं बढ़ना। जीवन में सदैव यज्ञोपवीत पहनना और कभी झूठ न बोलना।"

किशोर ने तीनों सीखें मन में बांध लीं। पटवारी पिता का स्वप्न था कि बड़ा होकर बेटा या तो शिक्षक बनेगा या अधिक से अधिक तहसीलदार। पर किशोर परिश्रमी था और लगनशील भी। उसने अपने जीवन में बहुत उन्नति की। राष्ट्रीय आंदोलन में भी भाग लिया। कालांतर में वह देश के एक बड़े राज्य का मुख्य-मंत्री भी बना। यह जीवन-प्रसंग है—देश के लोकप्रिय नेता श्री हेमवतीनंदन बहुगुणा का।

विध्वंस से निर्माण की ओर

द्वितीय विश्व-युद्ध के दिन थे और विध्वंस ही उसकी रोजी-रोटी थी। वह ब्रिटेन की शाही वायु सेना का अनुभवी उड़ाका था। वह जब अपने बमवर्षक विमान पर सवार होकर शत्रु पक्ष की सीमा पर उड़ान भरता, तब जैसे बमों के रूप में मौत धरती पर उतर आती।

उस दिन भी वह सदा की भांति अपने 'मिशन' पर निकला था। पर उस दिन उसे केवल बम ही नहीं गिराना था, बल्कि साथियों का मार्गदर्शन भी करना था।

उसने अपना काम बखूबी किया। बम गिराये गये और अगले क्षण मीलों लंबा इलाका एक विशाल श्मशान भूमि में बदल गया।

अपने हाथों हुए इस विनाश को देखकर उसकी आत्मा कांप उठी। उसके मुंह से निकल पड़ा, "हे भगवान, हमने यह क्या किया?" और तत्क्षण उसने एक क्रांतिकारी निर्णय कर डाला।

विमान अपने अड्डे पर लौटा। वह बधाइयों की उपेक्षा करते हुए सीधे युद्ध कार्यालय गया और वहीं तत्काल अपने पद से त्यागपत्र देकर स्वदेश रवाना हो गया। उसके साथी, अधिकारी कुछ भी नहीं समझ पाये।

स्वदेश लौटकर उसने अपनी सारी चल-अचल संपत्ति बेच दी और उससे मिली धनराशि से उसने अनाथ बच्चों के लिए एक 'घर' बनाया।

विध्वंस से विमुख इस उड़ाके का नाम था—ग्रुप कैप्टेन चैशायर और उसी के नाम पर अनाथ बच्चों के लिए बनाया गया वह घर 'चैशायर होम' कहलाया। आज विश्व के अनेक देशों में स्थापित 'चैशायर होम' अनाथ बच्चों को नया जीवन दे रहे हैं, साथ ही युद्ध की विभीषका से भी अवगत करा रहे हैं।

'श्वेत पाषाण' की सफलता

वह चीन के हुनान प्रांत की एप्रीकॉट घाटी में रहनेवाले एक गरीब किसान का बेटा था। नाम था—च्याई-पाई शिह अर्थात 'श्वेत पाषाण।' शरीर से कृशकाय किंतु बुद्धि से तेज। उसका पिता चाहता था कि बेटा थोड़ा पढ़-लिख ले फिर बड़ा होकर उसके कामों में हाथ बंटाये, पर च्याई था कि कागजों पर कभी पेंसिल से, कभी कोयले से रेखाएं खींचा करता, आसपास जो भी देखता, उसकी अनुकृति बनाता। एक दिन उसके घर में जलाने के लिए लकड़ियां खत्म हो गयीं। पिता को उम्मीद थी कि च्याई जंगल जाकर कुछ लकड़ियां काटकर ले आएगा, पर च्याई था कि एक कागज पर चित्र बनाने में तल्लीन। यह देख पिता ने उसे डांटा, "तुम हमेशा या तो किताबें पढ़ते हो या फिर चित्र बनाते हो। क्या इन सबसे खाना पक सकेगा?"

उस दिन च्याई ने तय कर लिया कि वह घर का सारा काम पूरा करने के बाद ही किताबें पढ़ेगा, चित्र बनाएगा।

इस तरह दिन बीतते रहे। च्याई बड़ा होता गया। साथ ही दिनों-दिन उसकी कला में निखार आता गया। १९१९ में चीनी गृह-युद्ध के बाद च्याई गांव छोड़कर पेकिंग आ गया तब लोगों को उसकी कला का परिचय मिला। जापान से आनेवाले कुछ पत्रकारों ने उसकी कला की प्रशंसा की और कहा, "जापान चलिए। वहां आपको ज्यादा पैसे मिलेंगे।"

च्याई ने उत्तर दिया, "धन मेरे लिए भार ही सिद्ध होगा।"

कालांतर में च्याई को 'जनता का चित्रकार' माना गया और 'शांति-पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया।

रो नहीं सकते

एक सज्जन को उनकी मां की मृत्यु पर अनेक संवेदना-संदेश मिले। उनमें एक संदेश इस तरह था——

"जिन्होंने जिंदगी से कुछ लेने के बजाय हमेशा उसे ही बहुत दिया है, उनकी मृत्यु पर तुम कैसे रो सकते हो?" ●

शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए

● ज्ञानेन्दु

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों, उन पर चिह्न लगाइए और इसी पृष्ठ से आरंभ उत्तरों से मिलाइए।

१. **पर्यवसान**—क. अंत, ख. घेरा, ग. चक्कर, घ. थकान।

२. **अभीप्सा**—क. लोभ, ख. प्रबल कामना, ग. प्रयत्न, घ. सफलता।

३. **उत्स**—क. जोश, ख. इच्छा, ग. स्रोत, घ. उपाय।

४. **उद्धत**—क. बलवान, ख. प्रबल, ग. उदार, घ. अक्खड़।

५. **एकचित्त**—क. अकेला, ख. दुःखी, ग. एक ही ओर ध्यान लगानेवाला, घ. केंद्रित।

६. **दौरात्म्य**— क. चोरी, ख. दुर्जनता, ग. छिपाव, घ. दूरी।

७. **विषण्ण**— क. कमजोर, ख. पिछड़ा हुआ, ग. दुःखी, घ. क्रुद्ध।

८. **निःश्रेयस**—क. निःस्वार्थ, ख. मोक्ष, ग. स्वतंत्र, घ. कामना।

९. **व्रात्य**— क. संन्यासी, ख. संस्कारहीन, ग. मुक्त, घ. व्रत करनेवाला।

१०. **मनस्वी**—क. तपस्वी, ख. एकनिष्ठ, ग. अच्छे मनवाला, घ. मुनि।

११. **आवर्त**— क. दोहराना, ख. भंवर, ग. गोल आकृति, घ. ढक्कन।

१२. **विसंवाद**—क. झगड़ा, ख. कटु वचन ग. मिथ्या कथन, घ. बहस।

१३. **उनींदा**— क. जिसे नींद न आती हो, ख. थका हुआ, ग. उतावला, घ. ऊंघता हुआ।

१४. **जुगत**—क. दुनिया, ख. युक्ति, ग. चालाकी, घ. कोशिश।

उत्तर

१. क. अंत, समाप्ति। दिवस का **पर्यवसान** सन्निकट है।

२. ख. प्रबल कामना, उत्कट इच्छा, (अंग-ऐसिपिरेशन)। साहित्यकार बनने की **अभीप्सा** उसे बचपन से ही थी।

३. ग. स्रोत, उद्गम-स्थल। प्रेरणा का वास्तविक **उत्स** तो अंतःकरण है।

४. घ. अक्खड़, अविनीत। बलवान बनो, **उद्धत** नहीं।

५. ग. एक ही ओर ध्यान लगानेवाला। **एकचित्त** होने से ही कार्य में सफलता मिलती है।

६. ख. दुर्जनता, दुरात्मा होने का भाव। राजनीति में **दौरात्म्य** अशोभनीय है।

७. ग. दुःखी, विषादपूर्ण, चिंतित। विपत्तियों में कौन **विषण्ण** नहीं हो जाता !

८. ख. मोक्ष, मंगल, कल्याण। **निःश्रेयस** की प्राप्ति ही धर्म का चरमलक्ष्य है।

९. ख. संस्कारहीन, जातिच्युत । कुरीतियों का विरोध करने पर किसी को **व्रात्य** कहना अनुचित है।

१०. ग. अच्छे मनवाला, उच्चविचार-वाला। **मनस्वी** व्यक्ति ही समाज का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं।

११. ख. भंवर, चक्र। वह विपदाओं के **आवर्त** से अभी निकल नहीं पाया है।

१२. ग. मिथ्या कथन। **विसंवाद** के कारण ही उसे अपमानित होना पड़ा।

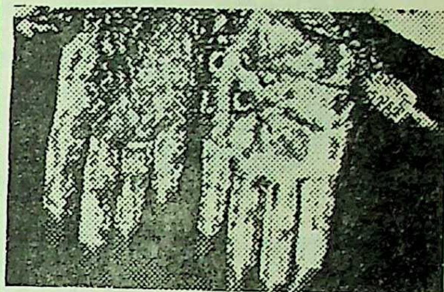
१३. घ. ऊंघता हुआ, नींद में भरा हुआ। रातभर जागने से वह **उनींदा** है।

१४. ख. युक्ति, उपाय। उस चौकड़ी से बाहर निकलने में उसने बड़ी **जुगत** से काम लिया।

पारिभाषिक शब्द

सैटेलाइट लांच वेहिकल = उपग्रह प्रक्षेपण वाहन
मिसाइल = प्रक्षेपणास्त्र
फायरआर्म्स = आग्नेयास्त्र
नोटीफिकेशन = अधिसूचना
स्पोक्समैन = प्रवक्ता
लेक्चरार = अधिवक्ता
ऐप्लीकैंट = अभ्यार्थी, आवेदक
इंजक्शन = निषेधाज्ञा
कमिश्नर = आयुक्त

समस्या-पूर्ति प्रतियोगिता—९



मेहंदी रंग लाने दे !

परिणाम

प्रथम पुरस्कार

तन्वी तेरा भाग्य लिखा है, दो हाथों में तेरे
एक लिखावट के ऊपर तू, दूजा रंग बिखेरे
समझ गयी मैं ललना तेरे, इन हाथों के घेरे
किसे थामने को आतुर हैं, इनके रंग सुनहरे
तेरे लिए सखि करती मैं, विनती भोर सवेरे
मेहंदी रंग लाने दे! गोरी, पी के मन भाने दे

—कु. अर्चना शर्मा
बुध बाजार, स्टेशन रोड, मुरादाबाद

द्वितीय पुरस्कार

रंग प्यार का, भाव छंद का—
रूप चुराने का अलबेला ढंग नयन का
मन सारा रच डाला तेरे हाथों पर
तू कितनी अल्हड़ है, चाहे भोली है
कुछ न होगा शेष समझना—
बस मेहंदी रंग लाने दे।

—शशि पाण्डेय
पी० ९० पेंशन बाड़ा, रायपुर (म. प्र.)



राजसत्ता और विनाश

जनवरी अंक में आचार्य जे. बी. कृपलानी का लेख 'राजसत्ता किसका विनाश नहीं करती !' विचारोत्तेजक लगा। आचार्य ने सत्तालोलुपों के सामान्य चरित्र को सही उद्‌घाटित किया है। लेकिन सनातन काल से चली आ रही इस समस्या का समाधान क्या है ? देश के रोग का निदान तो सड़क पर चलनेवाला राहगीर भी बाखूबी कर लेता है, और वह शायद समाधान भी सुझा सकता है, पर उसका समाधान आदर्शवादी अधिक होता है, व्यावहारिक कम, क्योंकि सत्ता पाते ही तुलसी की कहावत चरितार्थ हो जाती है—'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं ।' यही नहीं, स्थिति और भी विडंबनापूर्ण हो गयी है। 'प्रभुता' पाकर व्यक्ति के सारे गुण लुप्त हो जाते हैं और उनकी जगह स्थापित हो जाते हैं वे सारे गलत मूल्य, जो पहले से जर्जर राष्ट्रीय जीवन को और जर्जर बनाते हैं।

—सत्यनारायण दुबे, नागपुर

मुस्लिम नेताओं की भूमिका

'कादम्बिनी' के जनवरी अंक में लियाकत हुसैन ने अपने लेख 'मुस्लिम नेताओं ने ही भारतीय मुस्लिमों को धोखा दिया' द्वारा एक चिंतनीय स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया है। भारतीय मुस्लिमों को मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई तथा डॉ. जाकिर हुसैन-जैसे राष्ट्रवादी दूरदर्शी नेताओं का नेतृत्व भी मिला, लेकिन कट्टरपंथियों के कारण वे समूचे भारतीय मुस्लिम-समाज के चिंतन को चाहकर भी सही दिशा में नहीं मोड़ पाये।

इसके अनेक कारण थे, पर जो एक मुख्य कारण मेरी समझ में आता है, वह यह है कि भारत के बहुसंख्यक समाज के नेताओं ने भी अपनी राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिए मुस्लिमों को 'अल्प-संख्यक' का लेबल लगाकर, राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से अलग-थलग रखा। यह गलती स्वाधीनता-संग्राम के दिनों से चली आ रही है और सुधरने की बजाय बदतर ही हुई है, फल यह हुआ है कि आज मुस्लिमों के लिए संसद और विधानसभाओं में पृथक सीटों की मांग जोर पकड़ने लगी है।

मुझ-जैसे भारतीय मुस्लिम, जो इस देश के राष्ट्रीय जीवन में घुल-मिल जाना चाहते हैं, अलग-थलग पड़ते जा रहे हैं।

—सलमा कुरेशी, भोपाल

जनवरी अंक में लियाकत हुसैन का लेख पढ़कर श्री एम. सी. छागला की एक बात याद आ गयी। उन्होंने एक भेंट-वार्ता में कहा था कि इस देश में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को सबसे पहले 'भारतीय' होना चाहिए, फिर और कुछ। पर हम हिंदू, मुस्लिम, सिख या ईसाई पहले हैं और भारतीय बाद में।

चिंतन की इसी भूल के कारण भारतीय मुस्लिम-समाज को कुछ नेताओं को छोड़कर, सही नेता नहीं मिल पाया। पर नेतृत्व की यह दरिद्रता केवल मुस्लिम-समाज की किस्मत में बदी हो, ऐसा नहीं है। प्रायः सभी वर्ग इस बदकिस्मती के शिकार हैं।

—मोहम्मद खां पठान, वर्धा

अपराधी कौन ?

जनवरी अंक में 'अपराधों के खून-महल' लेख पढ़ने के बाद अनेक प्रश्नों ने मुझे घेर लिया। जरायमपेशा जातियां तो अपराधों के लिए बदनाम हैं ही, पर उन लोगों के बारे में क्या कहा जाए, जो अच्छे-खासे परिवारों से आने के बावजूद अपराधों की ओर प्रवृत्त होते हैं। मेरे विचार से यह कहना गलत है कि लोग जन्मजात अपराधी होते हैं। स्थितियां ही उन्हें अपराधी बनाती हैं।

—रामेश्वर तिवारी, लखनऊ

जनवरी अंक में प्रकाशित सेवकराम ओखाड़ का व्यंग्य लेख 'संपादकजी, मेरा चरित्र बचा लीजिए' पढ़कर मजा आ गया। यों 'मजा' शब्द जरा हलका होगा, क्योंकि यह लेख हमारी चेतना को झकझोरता है कि इस देश में, जहां स्वामी विवेकानंद और बुद्ध-जैसे मनीषी हुए, वहीं हमारे राजनेताओं ने बंदर की तरह अपना कलेजा (चरित्र) पेड़ पर ही टांग रखा है।

—कपिल, दिल्ली

उस बस्ती के लोग ...

'कादम्बिनी' के नववर्षांक में निश्चित तौर पर विशेषांक की सामग्री है। काल-चिंतन की यह पंक्ति—'संघर्षों में ही आदमी की परख होती है' सार-तत्त्व प्रस्तुत करती है। संगमलाल मालवीय ने उत्तर प्रदेश के शिवगंज क्षेत्र-निवासियों की जो 'एक्स-रे रिपोर्ट' पेश की है, वह निःसंदेह हमारे राजनेताओं की कथनी-करनी के फर्क को उजागर करती है। आजादी के ३२ वर्ष बाद भी 'उस बस्ती के लोग मौत का इंतजार करते हैं' पढ़कर रोमांच तो होता ही है, गुस्सा भी आता है।

हमारे नेताओं ने वर्ग-संघर्ष को टालने के लिए जाति-संघर्ष उत्पन्न कर दिया है। 'मुस्लिम नेताओं ने ही भारतीय मुस्लिमों को धोखा दिया है' लेख से भी यही स्पष्ट होता है।

—पद्मा स्वामी, दिल्ली

जीवन की अंतिम शाम

'कादम्बिनी' में 'यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी' लेखमाला पढ़कर मैं अपने प्रिय पति की 'अंतिम शाम' न भुला सकी। वे हृदय रोग से इतना डर गये थे कि मृत्यु के छह महीने पूर्व से उन्होंने एक सिगरेट तक नहीं पी, जबकि रोजाना पचास-साठ सिगरेट पीते थे। जीवन के अंतिम दिन दोपहर बारह बजे वे मुझसे बोले, "डॉ. प्रमोद को बुला लो।" मैंने पूछा, "कोई खास बात है क्या?" वे बोले, "नहीं।" मैंने कहा, "ये दिल्ली है और डॉक्टर समय पर ही आएंगे।" उन्होंने पूछा, "कब आएंगे?" मैंने उत्तर दिया, "शाम ५ बजे के बाद।" यह सुनकर वे लेट गये और हर घंटे बाद पूछने लगे, "अब क्या बजा है?" जब मैंने बताया, "पांच बज गये हैं", तब वे खुश हुए और बोले, "अब डॉक्टर को फोन कर दो।" थोड़ी देर बाद डॉक्टर साहब आ गये और उन्होंने अपना सब हाल डॉक्टर को बताकर कहा, "अब मुझे नींद आ रही है।" डॉक्टर ने जाने के लिए बैग उठाया ही था कि वे बिस्तर पर लेट गये और सदा के लिए सो गये। —निर्मला, पालमपुर

दिसंबर अंक में सांप्रदायिकता संबंधी महादेवीजी का लेख दिशा-ज्ञान प्रदान कर गया। 'कादम्बिनी' के सभी स्थायी स्तंभ न केवल रोचक, वरन ज्ञानवर्धक भी होते हैं। —जे. अशोक कोठारी, चंद्रपुर

द्रविड़ कौन थे?

दिसंबर अंक में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के लेख 'द्रविड़ आस्ट्रेलिया से आये थे' में भ्रामक तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। ये वैदिक मान्यताओं के भी विरुद्ध हैं। आचार्य वाजपेयीजी कहते हैं, 'वेदों में कहीं 'द्रविड़' शब्द नहीं आया है।' जबकि मैं ऋग्वेद के एक मंत्र में 'द्रविड़' शब्द दिखा सकता हूं। द्रविड़ आस्ट्रेलिया से नहीं आये। वे भी यहां के निवासी हैं। आर्यों से पूर्व जंगली अथवा द्रविड़ इस देश में नहीं थे, बल्कि आर्य जाति से ही, धर्म से भ्रष्ट होकर दस्यु आदि बने। ये शब्द गुणवाचक हैं।
—डॉ. देशबंधु आर्य, सरायतरीन (संभल)

आर्य मध्य एशिया से आये थे और द्रविड़ आस्ट्रेलिया से, तो भारत के मूल निवासी कौन थे? क्या भारत निर्जन था? बात ऐसी नहीं है। आर्य और द्रविड़ दोनों भारत के मूल निवासी हैं। एक उत्तर में रहता था और दूसरा दक्षिण में। दोनों की दो संस्कृतियां थी, एक को यक्ष और दूसरे को रक्ष।

यह तो अंगरेजों की कूटनीति थी, जिसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उनके और मुसलमानों की तरह आर्य और द्रविड़ भी विदेशी थे, जिससे यहां के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना और मातृभूमि के प्रति अनुराग न उत्पन्न हो। —उमेश धर्मयोगी, गोरखपुर

आगामी अंक में

चतुर्थ विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर
क्या मुसीबत नहीं है प्रकाशन-जगत में

जहां रेल है भूतनी !

एक ऐसा पवित्रस्थल जहां रेल का नाम भूतनी है और भांग को 'सुख निदान सिंह' नाम से पुकारा जाता है। होली के अवसर पर एक दिलचस्प यात्रा-वृतांत

मैं लेखक नहीं रहा !

नोबेल पुरस्कार विजेता दार्शनिक लेखक ज्यां पाल सार्त्र अपनी वृद्धावस्था की चर्चा करते हुए कहते हैं--'लेखक के रूप में उनका जीवन नष्ट हो चुका है।' सावधान ! प्रत्येक लेखक के साथ यह हो सकता है !

ज्योतिष

जन्मतिथि की संख्या और जीवन-विकास के आयाम

यदि आपको अपनी सही जन्मतिथि का पता है तब अपनी जिंदगी का क्रम बना सकते हैं। आचार्य कालीचरण मिश्र, अंक-शास्त्र विशेषज्ञ का विशेष लेख

और होली पर हास्य-व्यंग्य की अनूठी रचनाएं

० सेवकराम ओखाड़ू होली के मूड में ० उल्लू को सलाम ! ० एक था बादशाह ० राजदरबार में हास्य ० कुएं की चोरी ० अंतर्राष्ट्रीय पागल वर्ष

प्रतीक्षा कीजिए

--यह होली अंक है

--यह विश्व पुस्तक मेला अंक भी है

--बुद्धि और मनोरंजन का समन्वय

'कादम्बिनी' पढ़िए : समय के साथ चलिए

वर्ष २० : अंक ४
फरवरी, १९८०

कादम्बिनी

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

कहानियां

स्थायी स्तम्भ

मुखपृष्ठ : एम. एस. अग्रवाल (कुतुबमीनार), प्रदीप चंद (मॉडल)

दिल्ली पर विशेष

कविताएं

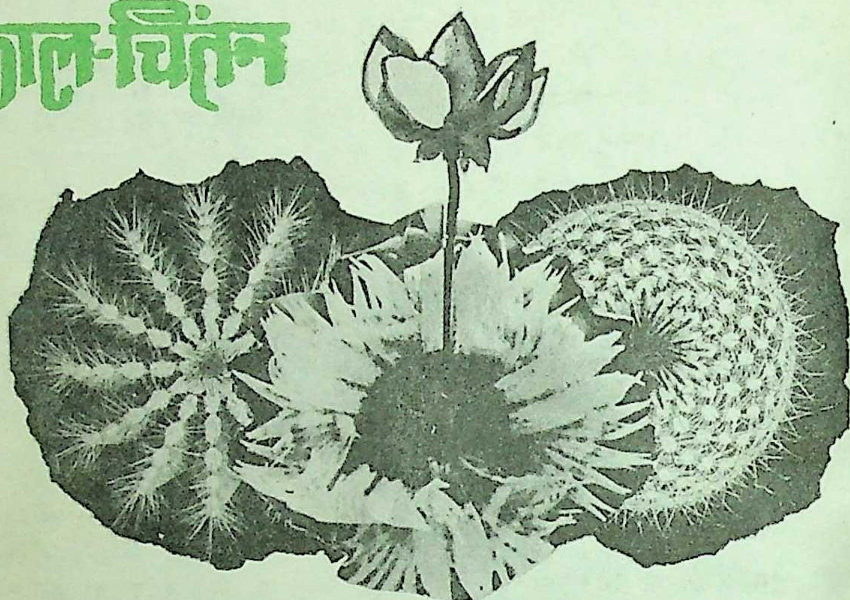
सार-संक्षेप

संपादक
राजेन्द्र अवस्थी

कार्यकारी अध्यक्ष
एस. एल. खुराना
हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह

संपादकीय सहयोगी
संयुक्त-संपादक
शीला झुनझुनवाला
सह-संपादक : दुर्गाप्रसाद शुक्ल
उप-संपादक : प्रभा भारद्वाज, डॉ. जगदीश चंद्रिकेश, भगवतीप्रसाद डोभाल, सुरेश 'नीरव', कामोद प्रसाद
प्रूफरीडर : स्वामी शरण
चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

काल-चिंतन



-- मेरे पैर में कांटा चुभ गया है; कांटा पैर में चुभा है; दर्द समूची देह में है; दर्द का केंद्र कहीं है और दर्द का विस्तार कहीं और तक--क्यों है यह ?

-- विद्युत-जैसी प्रक्रिया के पीछे कौन-सी सहज स्वाभाविक संगति है ?

●

-- कांटे का चुभना अचानक किसी अनपेक्षित स्थिति का सामना करना है। ऐसी स्थितियां हमारे जीवन में बहुत बार आती हैं।

-- हमारे आसपास की कठोर जमीन दलदल बन जाती है। हरे-भरे खेत सूखकर अपना मुंह फाड़ देते हैं।

-- हमारे शरीर का सुदृढ़ संगठन वायवी आघात को भी नहीं सह सकता। वृक्षों की हरी कोंपलें प्रकृति का हर उद्दंड प्रकोप सह सकती हैं, लेकिन हम उन कोंपलों से भी हीन और कमजोर हैं। जरा-सी ठंड हमारे फेफड़ों को हिला देती है, गरमी का आघात खून को पानी और पसीना बना देता है, बरसात की स्वाति-धारा विवश करती है हमें कि हम छाया की तलाश करें और उस सुख का लाभ न उठा पायें जिससे सीप में मोती बनता है। जरा-सा मानसिक असंतुलन हमारी चेतना को ही ले डूबता है।

-- बलिष्ठ और सुदृढ़ शरीर अर्थहीन है ! अभेद्य किले हर सुरक्षा के बावजूद सुर-

क्षित नहीं रह सके। इसलिए सुरक्षा के लिए बलिष्ठ-शक्ति उतना अस्तित्व नहीं रखती।
-- तब... वह क्या है, जो हमें सुरक्षित रख सकती है।

●

-- पहले तो चिंतन की दृष्टि है : सुरक्षा। किससे ? असुरक्षित हम होते भी हैं तो कहां ?

-- जिन प्राकृतिक उपादानों से अपने को हम बचाना चाहते हैं, हम ही उनकी सृष्टि करते हैं।

-- इसका आधार उनकी गुणात्मकता है : ओषजन के बिना जीवन के अस्तित्व में प्रश्नवाचक चिह्न लग जाता है; फूलों से जो कुछ उपलब्ध होता है, वह हमारी आंतरिक रक्त-शिराओं को गतिवान बनाता है और वनों की स्थापना हम स्वयं करते हैं, क्योंकि उनकी उपादेयता के प्रति उपेक्षित रहकर हम कोई खतरा नहीं मोल लेना चाहते।

-- फूलों के बीच कैक्टस क्यों लगाते हैं हम--इसीलिए न कि निरंतरता और स्थिरता का मूल माध्यम कैक्टस है। उसके कांटे भी फूटकर छोटा-सा सौंदर्यबोधक अंकुर फोड़ते हैं और हम कांटों से घिरे रहकर निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे वे सुरक्षा की कोई दीवार हों!

-- एक साथ दो लक्ष्य : सौंदर्य भी और सुरक्षा भी!

-- सौंदर्य अ-पारिभाषित है, क्योंकि उसका मूल्य हमारी दृष्टि में निहित है। दृष्टिबोध ही मूल्य की सृष्टि करता है।

-- यह एक विडंबना है, किंतु सत्य है।

-- सत्य का उद्भव दर्द से होता है!

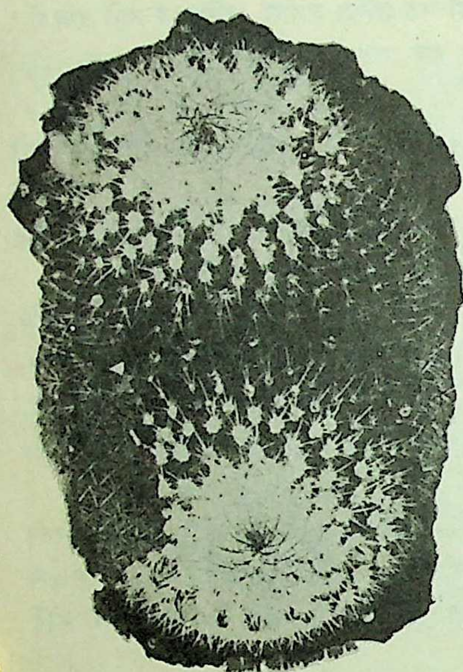
-- सत्य का अंत भी एक दर्द है!

-- सत्य के अस्तित्व के लिए कई बार बेहिसाब दर्दों के थपेड़े झेलने पड़ते हैं।

-- यह एक अनिवार्य नियति है और हमारी जीवनी-शक्ति के साथ जुड़ी हुई है!

-- यदि जीवनी-शक्ति हमारे भीतर है, तो शरीर का बलिष्ठ न होना, कमजोरी नहीं है।





— हमारे भीतर सौंदर्यबोध की जिज्ञासा है, तो कांटों पर व्यर्थ होने की संज्ञा आरोपित नहीं की जा सकती !

●

— शक्ति का स्रोत वास्तव में हमारा मस्तिष्क है ।

— पृथ्वी का संचालन जैसे वायु-किरणों से होता है, मस्तिष्क के द्वारा ही हमारी समूची शारीरिक क्रिया अर्थ रखती है ।

—इसीलिए कहीं चुभन और कहीं दर्द !

●

— आखिर चुभन और दर्द का अनुभव करता कौन है—वही जो संवेदनशील है; दृढ़ होते हुए भी जिसके भीतर वृक्ष की कोंपलें सदाबहार बनी रहती हैं, जो गेहूं के पौधे में आनेवाली सबसे पहली बाल के भीतर की नाजुक रसता को कभी पनपकर बढ़ने नहीं देता, वह उसे वहीं रोक लेना चाहता है ।

— सृजन ऐसे ही आयामों का अभिलाषी है ।

— मनुष्य की प्रकृति ही जब वास्तविक रूप से इतनी नाजुक है, तो जरा-से कांटे का दर्द भी तो इसे पहुंचेगा ही । कांटा चाहे पैर में गड़े या वृक्ष में प्रहार करे, मानसिक संवेदनाएं हर जगह क्रियाशील रहेंगी ।

— इसलिए कहीं चुभन और कहीं दर्द-जैसी प्रक्रिया न तो अस्वाभाविक है और न चौंका देनेवाली । वह एक सार्थकता का बोध है, जिसे हर संवेदनशील व्यक्ति को विवश झेलना पड़ता है ।

राजेन्द्र अवस्थी

अमरीका के प्रख्यात श्रमिक नेता जॉर्ज मीने को एक प्रेस-क्लब में भाषण के लिए बुलाया गया । अपनी बारी आने पर जॉर्ज मीने ने दिवंगत चीनी नेता माओत्सेतुंग की प्रसिद्ध लाल किताब का यह उद्धरण दोहराया—"वार्ताएं, भाषण प्रमुख संक्षिप्त और विषयानुरूप होने चाहिए । इसी तरह सभाएं भी देर तक न हों ।" और यह कहकर जॉर्ज मीने अपनी कुरसी पर बैठ गये ।

भारतीय सेना : कुछ गुप्त दस्तावेज

● ले. कर्नल जे. आर. सहगल

उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य की गहन भावना के साथ मैं यह लिख रहा हूं, ताकि उच्चाधिकारी कुछ आत्म-मंथनकर उन बातों को दूर कर सकें, जो हमारी सेना की जड़ों को कुतर रही है। ये सेना में मेरे पच्चीस वर्षों से भी ज्यादा के अनुभव, निजी जानकारियों और अवलोकनों पर आधारित हैं। सेना में रहते हुए भी मैंने स्वीकृत माध्यम यानी 'क्वाटरली समरी ऑव इंटेलिजेंस रिपोर्ट' के जरिये सेना के हित में उस तरह के विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये थे। थल-सेना में लेफ्टिनेंट कर्नल से लेकर उच्च पदों पर आसीन कमांडरों को उन मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त करने की छूट है, जिनका असर सेना के मनोबल पर पड़ता है।

रक्षामंत्री, संसद या जनता के पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे सेना में मनोबल की वास्तविक स्थिति, इसका इनसानी रिश्तों से संबधित पत्र या तैयारियों की सही स्थिति का जायजा लिया जा सके। उन्हें सभी कुछ स्थल सेनाध्यक्ष के माध्यम से ही पता चलता है। यहां तक कि सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर भारत के राष्ट्रपति के पास भी सेना के मामलों को जानने का कोई जरिया नहीं है।

पाकिस्तान के मेजर जन. फजल मुकीम खान, जिन्हें सैन्य मामलों की आलोचना करने के कारण थल-सेना से सेवामुक्त होने को विवश कर दिया गया था, तथा बाद में १९७२ में भुट्टो द्वारा सेना में वापस लाया गया था, ने अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान क्राइसिस इन लीडरशिप' (पृष्ठ २५७) में लिखा है : 'प्रतिरक्षा के विषय को सिर्फ कुछ चुनिंदा हाथों में सीमित करके रख दिया गया। न तो इस पर जनता द्वारा कभी विचार-विमर्श हो सका और न ही कभी त्रुटिपूर्ण कार्यों के लिए जिम्मेदार लोगों से जवाब-तलब किया गया। जनता के प्रति उत्तरदायित्व के अभाव ने हमें पिछली गलतियों से कुछ भी सीखने से वंचित रखा। इससे हमारी सैन्य-क्षमता के विषय में एक भ्रामक तसवीर बन गयी।'

१९७१ की विनाशकारी हार की विस्तृत चर्चा करते हुए मुकीम खान ने पृष्ठ २५८-२५९ पर यह भी लिखा है :

'सही ढंग से गठित राजनीतिक सरकार न होने के कारण, उच्च पदों पर



लेफ्टिनेंट कर्नल जे. आर. सहगल १९६२ में चीन तथा १९६५ व १९७१ में पाकिस्तान से हुए युद्ध में भाग ले चुके हैं। यह लेख उनकी बहुर्चाचित पुस्तक '१९६२ : युद्ध जो लड़ा नहीं गया' के एक अध्याय का सार है।

अफसरों की नियुक्ति और पदोन्नति का काम एक ही व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर था। धीरे-धीरे व्यक्तियों के कल्याण के लिए संस्था के कल्याण की बलि चढ़ने लगी।

पदोन्नति में धांधलियां

उपर्युक्त टिप्पणी हमारी अपनी सेना के मामलों को भी समान रूप से प्रतिबिंबित करती है, जबकि हमारे देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था है। कृष्णामेनन ले. जनरल बी. एम. कौल की पदोन्नति के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, पर हर स्थल सेनाध्यक्ष ने मनमाने अधिकारों के रहते, अपने गुट के अफसरों के हितों की खातिर पदोन्नति प्रणाली का दुरुपयोग किया। अनेक अफसर, जिनमें अनिवार्य व्यावसायिक योग्यता की कमी थी, जो युद्ध और शांति दोनों ही समय में सैनिकों की कमान संभालने में पूर्णतः विफल रहे थे, जिनका कोर्ट मार्शल हो चुका था, यहां तक कि कुछ का दोष भी सिद्ध हो चुका था, भारतीय थल सेना में ब्रिगेडियर, मेजर जनरल और उससे भी ऊपर के पदों तक पहुंचने में कामयाब हो गये।

'आर्मी ऐक्ट' बनाते समय संसद की भावना यह रही थी कि सेना में पदोन्नतियों और कार्यकाल बढ़ाने संबंधी मामले एक स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकारी यानी राष्ट्रपति द्वारा निपटाये जाएं, जैसा कि ब्रिटेन सहित अन्य सभी लोकतांत्रिक देशों में होता है। लेकिन व्यवहार में ये अधिकार स्थल सेनाध्यक्ष ने स्वयं ले लिये और इस प्रकार यह परंपरा हमारे यहां भी चलती रही है। ब्रितानी राज के दिनों से चले आ रहे पुराने प्रतिरक्षा सेवा नियम संख्या ११७ के तहत, भारतीय थल-सेना में पदोन्नति और कार्यकाल बढ़ाने संबंधी अधिकार सेनाध्यक्ष और अन्य जनरलों के हाथों में ही सीमित थे। उसमें एक बेहतर संशोधन १९६२ में हुआ, जिसके अनुसार पदोन्नति और कार्यकाल बढ़ाने के अधिकार पूर्णतः सेनाध्यक्ष को दे दिये गये और रक्षा-मंत्रालय मात्र रबड़ की मोहर लगाने के योग्य रह गया। इसके फलस्वरूप प्रत्येक सेनाध्यक्ष ने अपने-अपने उम्मीदवारों को लाने की गरज से उच्च कमान के पदों

पर चयन के आधार को या तो बहुत बदल डाला या उसमें जरूरी संशोधन कर डाले।

मंत्रालय व सेनाध्यक्ष की मिली-भगत

रक्षामंत्री अथवा उनका मंत्रालय इस बात से परिचित है कि ये मनमाने अधिकार गैरकानूनी हैं, लेकिन वह इन पर कोई ऐतराज इसलिए नहीं उठाता, क्योंकि मौका पड़ने पर इससे पर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है। मंत्रालय अधिकांशतः सेनाध्यक्ष द्वारा किये गये चुनावों पर अपनी सहमति प्रकट कर देता है। इसका परिणाम हमारी सेना के लिए काफी घातक रहा है। सेवारत अफसर इसे अच्छी तरह जानते हैं। कुछ मुंहफट कमांडरों ने तो हिम्मत करके अपनी प्रतिक्रियाओं को 'क्वाटरली समरी ऑव इंटेलिजेंस रिपोर्ट्स' में भी प्रस्तुत किया है।

उच्च पद कितने ?

तीस हजार से ज्यादा अफसरोंवाली थल-सेना में उच्चपदों के लिए बहुत कम स्थान अधिकृत हैं। दो वर्ष पूर्व के आंकड़े इस प्रकार हैं :

जनरल	१
लेफ्टिनेंट जनरल	२४
मेजर जनरल	८२
ब्रिगेडियर	२०४
कर्नल	२२४
लेफ्टिनेंट कर्नल	१२६८

मेजर-तक के पदों पर समयावधि के आधार पर पदोन्नतियां होती हैं। इसके बाद यह सेनाध्यक्ष का अधिकार है। ले. जनरल और मेजर जनरल कुल अधिकृत अफसर संख्या का ०.३ प्रतिशत तथा ब्रिगेडियर ०.६ प्रतिशत है। प्रथम चयन पद यानी ले. कर्नल के पद कुल संख्या का ४ प्रतिशत हैं। यदि सेना के इस अभिजात वर्ग का चयन सेनाध्यक्ष अथवा उनके गुट के लोगों की इच्छा और सनक पूरी करने के लिए होता है, जैसे कि इतने सारे वर्षों से होता रहा है, तब मैं यह पाठकों के निर्णय पर छोड़ता हूं कि युद्ध में इसके क्या परिणाम होते होंगे। हम खुशकिस्मत हैं कि पाकिस्तान के सामने भी यही समस्या है। लेकिन उसने निष्ठा और दृढ़ता के द्वारा कुछ सीमा तक इस पर काबू पा लिया है। लेकिन हमारे सामने इसके अलावा उत्तर में भी एक मोर्चा है। कम्युनिस्ट राज्य आने के बाद से चीनी सेना में व्यावसायिक पुट आ गया है। कुछ भी हो, दूसरे पक्ष में भी यदि कमजोरियां हैं, तब इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपनी सेना में भी कमजोरियों की छूट दे दें।

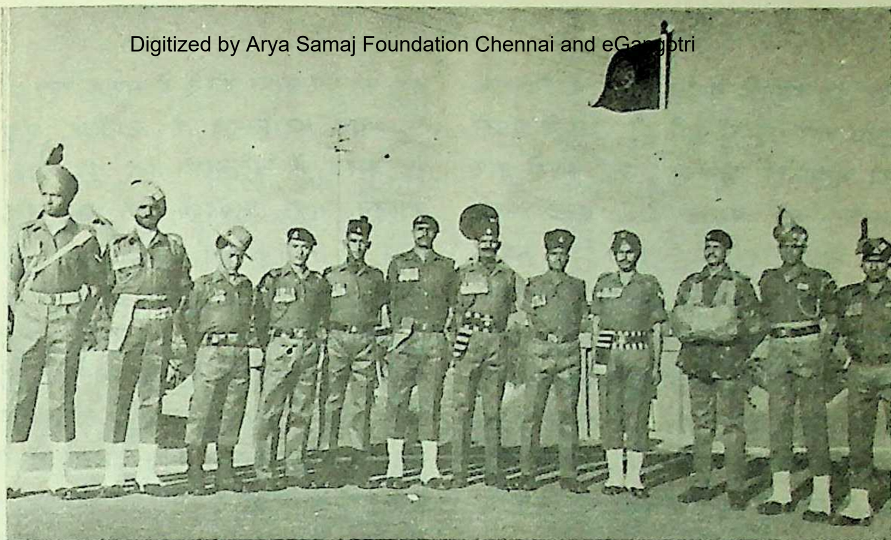
१९६२ की पराजय के बाद कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने प्रेस तथा जनता के पास घटनाओं का तथ्यपूर्ण विवरण नहीं पहुंचने दिया। उन्होंने हार का सारा दोष राजनीतिज्ञों के माथे मढ़ दिया। उनका कहना था कि राजनीतिज्ञों ने सेना की जरूरतों की हमेशा उपेक्षा की तथा अन्य पदों पर पदोन्नतियों के मामले में दखलं-

दाजी की। ले. जनरल हेंडरसन ब्रुक्स ने पराजय के संबंध में जांच की थी। यह जांच उन्होंने सेना के अधिकारियों की जरूरत के मुताबिक की। यह एक जानी-मानी बात थी कि जन. ब्रुक्स कौल के प्रति कुछ शत्रुता का भाव रखते थे। युद्ध के बाद नेहरू के टूट जाने और मेनन के मंत्रिमंडल से निकल जाने के बाद कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो पराजय की न्यायिक जांच करा पाता। पुलिस की गोली से कुछ गुंडों की मृत्यु पर तो विधायक लोग जांच आयोग और न्यायिक जांच की मांग करने लगते हैं, पर उन्होंने इस बात में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी कि युद्ध में हजारों जवानों और अफसरों की मृत्यु (मृत—१३८३, लापता—१६९६, बंदी—३९६८; कुल संख्या=७०४७) के कारणों की भी न्यायिक जांच करायी जाए। जनरल चौधरी ने एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह स्थिति का पूरा फायदा उठाया और सेना की उच्च कमान के लिए ज्यादा मनमाने अधिकार हासिल कर लिये। इसके बाद तो सेना के मामलों में उन्हें और उनके उत्तराधिकारियों को पूरी छूट रही।

नेफा युद्ध का कुल नतीजा यह था कि सेनाओं को जनता और प्रेस से अछूता रखने और सेनाध्यक्षों के हाथों में असीमित अधिकार बनाये रखने की नीति अनवरत रूप से चलती रही। फलतः आरक्षी सेनाओं की स्थिति और बिगड़ गयी।

भ्रष्टाचार की जड़ पदोन्नति

९ पैरा फील्ड रेजिमेंट में जब मैं सब-आल्टर्न था, तभी से एक ब्रिगेडियर को भली-भांति जानता था। वह काम के प्रति निष्ठावान और एक मजबूत सिपाही थे। साहसिक काम करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। अपने प्रशिक्षक के रूप में हम उनके दृढ़ और सैनिकोचित तरीकों की बड़ी कद्र करते थे। बैटरी कमांडर (मेजर) के रूप में वह हमारे लिए आदर्श थे। मुझे पता चला कि रेजिमेंट की कमान संभालनेवाले ले. कर्नल के पद तक उन्होंने अपने आदर्श और तरीके बनाये रखे। लेकिन जब उन्हें अपना भविष्य जाम होता नजर आया, तो सेना में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रभावशाली लोगों से संपर्क बनाने शुरू कर दिये और बड़ी-बड़ी पार्टियां देने लगे। इस खर्च को पूरा करने के लिए उन्हें भ्रष्ट तरीके अपनाने पड़े। जिन सैनिकों के हित का वह पहले ध्यान रखते थे, अब उन्हीं का रुपया उड़ाना शुरू कर दिया। पकड़े जाने पर कोर्ट मार्शल हुआ, जिसमें उन्हें भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया। उन्हें सजा हुई तथा सेना की नौकरी से निकाल दिया गया। यहां तक कि अच्छी रिपोर्ट प्राप्त करने के उद्देश्य से भ्रष्ट मामलों में उस अफसर का साथ देनेवाले लोगों को भी नहीं छोड़ा गया। मेजर के पद तक के जूनियर अफसर न्याय होता देख प्रसन्न थे। लेकिन स्वयं को न्याय से ऊपर समझनेवाले उच्चा-



वीरता के लिए पुरस्कार प्राप्त भारतीय सेना के योद्धा

धिकारी इससे खुश नहीं थे, क्योंकि इसी तरह के कारनामों में वह खुद फंसे हुए थे।

इसके बाद कुछ अजीब बातें शुरू हुईं। रक्षामंत्री तक पहुंच निकाली गयी। एक अन्य मंत्री ने मामले में खास दिलचस्पी दिखायी। स्थल सेनाध्यक्ष ने उस पूर्णतः भ्रष्ट अफसर की मदद करने से साफ इनकार कर दिया। रक्षामंत्री ने जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा दी गयी सजा, जिसकी सेनाध्यक्ष पुष्टि कर चुके थे, को ताक पर रखकर ब्रिगेडियर को पुनः उसी पद पर नियुक्त कर दिया और इस प्रकार सेनाध्यक्ष को अपमानित किया।

सेनाध्यक्ष काफी क्रुद्ध हुए। लेकिन मंत्री के पास सेनाध्यक्ष द्वारा किये गये अनेक अवांछित कामों का रेकार्ड मौजूद था। उन्हें उनके द्वारा की गयी अनुचित पदोन्नतियों, नियुक्तियों और पक्षपात संबंधी कितने ही गैरकानूनी कामों की याद दिलायी गयी। अब छलनी छाज को क्या कहे! सेनाध्यक्ष को अपमान का घूंट पीकर रह जाना पड़ा।

पर अभी इससे भी बुरा होना बाकी था। राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिगेडियर के संपर्कों से जनरल लोग आतंकित हो चुके थे। हद तब हुई जब उसने एक मेजर पर दबाव डाला कि वह अपनी युवा पत्नी को उनके पास भेजे। एक मामूली-सी बात पर मेजर के खिलाफ जांच आयोग बिठा दिया गया, जिससे उसका पूरा कैरियर चौपट हो सकता था। मेजर ने भी अपनी पहुंच का फायदा उठाया। सामान्यतः वरिष्ठ अफसरों को ऐसी हरकतों पर कोई ध्यान नहीं देता,

पर इस मामले में ब्रिगेडियर के खिलाफ तुरंत कार्रवाई की गयी और उसकी चालों का भंडाफोड़ हो गया। उन्हें दूसरी बार जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा सजा मिली और उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। लेकिन एक बार फिर ब्रिगेडियर के राजनीतिक संपर्कों ने रक्षामंत्री पर असर डाला। सेनाध्यक्ष से कुछ सौदेवाजी हुई और अवकाशप्राप्ति पर उन्हें एक अच्छी राजनैतिक नियुक्ति मिल गयी, जो मुश्किल से ही सेना के किसी आदमी को मिलती।

संप्रदाय व भतीजावाद

एक मेजर जनरल का मामला भी एक अच्छे अफसर के अधःपतन का ऐसा ही उदाहरण है। आरंभ में वह एक अच्छा सैनिक था, लेकिन बाद में उसने भ्रष्ट तरीके अपनाने शुरू कर दिये और अमरीका में अनैतिक आचरण के लिए पकड़ा गया। सीनियर अफसर के प्रशिक्षण से निकालकर उन्हें वापस भारत भेज दिया गया। यही नहीं, उन्हें ले. कर्नल के पद से नीचे उतारकर मेजर बना दिया गया, ताकि सेनाध्यक्ष के आदेश के मुताबिक वह मेजर के पद पर ही खत्म हो जाएं। जब इस मामले की जानकारी प्रधानमंत्री को हुई, तब उन्होंने इच्छा प्रकट की कि संभव हो तो उस अफसर को सेना से ही निकाल दिया जाए। लेकिन बाद में सैनिकों के मनोबल को गिराता हुआ, भाई-भतीजावाद और सांप्रदायिकता की मदद से वह कर्नल बना और कुछ समय बाद मेजर जनरल तक का पद प्राप्त करने में सफल रहा।

गार्ड बटालियन के कमांडर, एक ले. कर्नल ने खुलेआम एक युवा सब-आल्टर्न तथा सूबेदार को घूंसों और जूतों से पीटा। उन पर कायरता का आरोप लगाया गया। बंगला देश में अपनी बटालियन की असफलता पर परदा डालने के लिए उन्होंने इन कनिष्ठ अफसरों का कोर्ट मार्शल भी करवाया। कर्नल के अनुसार सब-आल्टर्न ने अपनी कंपनी से भागकर कायरता का परिचय दिया था। पर वह सब-आल्टर्न एक अवकाश प्राप्त सेनाध्यक्ष का संबंधी था। इसलिए अंत में उसे और सूबेदार, दोनों को बरी कर दिया गया। उक्त कर्नल न केवल इस गंभीर अपराध से साफ बच गया, बल्कि उसे पदोन्नत कर तुरंत मेजर बना दिया गया।

बंगला देश दुश्मन क्यों?

देश में बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि भारतीय सेना द्वारा मुक्ति दिलाने के फौरन बाद बंगला देश भारत-विरोधी क्यों हो गया। असल में हमारी सेना के कुछ उच्च अफसर वहां की सार्वजनिक संस्थाओं और संपत्ति की लूट-खसोट में लग गये। कुछ कनिष्ठ अफसर भी उनके साथ इस लूट-खसोट में मिल गये।

बाद में अनेक कनिष्ठ अफसरों को बलि का बकरा बनाकर उनका कोर्ट मार्शल कर दिया गया। लेकिन इन

भ्रष्ट उच्च अफसरों का कुछ नहीं बिगड़ा ।

इस लूट में हमारे उच्च अफसर मुश्किल से कुछ हजार रुपये मूल्य की वस्तुएं एकत्र कर पायें होंगे, पर बंगला देश के समाचारपत्रों ने यह प्रचार किया कि भारतीय सेना ने बंगला देश को इतना लूटा है जितना पाकिस्तानियों ने पिछले पच्चीस सालों में भी नहीं लूटा होगा।

ये उदाहरण हमारी सेना में उच्च स्तरों पर मौजूद अस्वस्थ परंपराओं का संकेत देते हैं। वरिष्ठ पदों पर पदोन्नति करने की पद्धति इसके लिए मूलत: दोषी है ।

यह बात कोई गुप्त नहीं है कि मंत्री, मंत्रालय तथा सेनाध्यक्ष के बीच अकसर अपने प्रत्याशियों की पदोन्नति के लिए सौदे होते हैं।

प्रतिरक्षा सेवा नियम के अंतर्गत उच्चतर कमान के लिए चयन समिति की सेनाध्यक्ष स्वयं अध्यक्षता करता है, या अध्यक्ष मनोनीत कर सकता है। अत: जहां तक सेना में पदोन्नति का सवाल है, संविधान के प्रावधानों तथा आर्मी ऐक्ट के विरुद्ध सेनाध्यक्ष सर्वोच्च अधिकारी है। यह समिति ही अफसरों की पदोन्नति और कार्यकाल के विषय में निर्णय लेती है। समिति के सदस्य, अपने-अपने प्रत्याशियों की सूची पहले ही लेकर आते हैं जिस पर वे सौदेबाजी करते हैं। ●



सेना में पदोन्नति के लिए अधिक अवसर

सेना-दिवस पर आयोजित एक भव्य परेड में भाषण करते हुए चीफ ऑव आर्मी स्टाफ जनरल ओ० पी० मलहोत्रा ने बताया कि सेना के अफसरों और जवानों की अधिक पदोन्नति के लिए कदम उठा लिये गये हैं । उन्होंने कहा, 'अफसरों के लिए ब्रिगेडियर की श्रेणी तक अधिक स्थान बनाये गये हैं। जवानों और जूनियर कमीशंड अफसरों के लिए उनकी भी पदोन्नति के रास्ते बताये जाएंगे ।'

उन्होंने इस बात पर भी प्रसन्नता व्यक्त की कि भारत सरकार ने सैनिकों की सेवा-अवस्थाओं में सुधार के लिए काफी अच्छे कदम उठाने की स्वीकृति प्रदान की है। जनरल मलहोत्रा ने कहा कि भारतीय सेना की यह परंपरा रही कि सैनिक अपने कल्याण की चिंता से मुक्त रहे क्योंकि उसके कल्याण की जिम्मेदारी उसके उच्चतर कमांडरों पर है।

समय के हस्ताक्षर

हमारे नये प्रतिनिधि : अभिनंदन

नये वर्ष के शुरू होते ही इस देश की राजनीति ने फिर एक नये अध्याय में प्रवेश किया है। तीन वर्ष के भीतर ही इतना बड़ा परिवर्तन इस बात का प्रतीक है कि इस देश की जनता अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक है। तीन साल के इतिहास का यदि लेखा-जोखा किया जाए, तो ऐसा लगता है जैसे एक इमारत बनते-बनते अचानक ढह गयी। उसके ढहने के कारण भी वही हैं, जो सचमुच किसी इमारत के इस तरह गिर जाने के होते हैं। यह बात विचित्र है कि जो जनता निष्कपट भाव से अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए देश को चलाने का अधिकार जिन लोगों को देती है वे ही उसी जनता के साथ खिलवाड़ करने लगते हैं। जब अपने ही चुने लोगों का चरित्र गिर जाए तब वह समूचे राष्ट्र का चारित्रिक पतन होता है। यह परिवर्तन संभवतः चारित्रिक पतन की चरमसीमा है। ऐसा ही कुछ तीन वर्ष पहले हुआ था। अब इस देश को सुदृढ़ सत्ता मिली है, देखना यह है कि होता क्या है? निश्चय ही जो गलतियां हुई हैं (चाहे वे किसी ने भी की हों) अब दोहरायी नहीं जाएंगी, ऐसी आशा करनी चाहिए।

इन दिनों हमारे देश के सामने समस्याओं के इतने अधिक ढेर लगे हुए हैं कि उनके बारे में सोचते ही सहसा एक कंपकंपी दौड़ जाती है। भीतरी दृष्टि से देश प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों तरह की विपत्तियों को झेल रहा है। कानून और व्यवस्था एक बड़ा सवाल बना हुआ है। बढ़ती हुई बेकारी और लगातार हड़तालों के कारण उत्पादन-क्षमता में बेहिसाब कमी हुई है। सुरक्षा की दृष्टि से हमारे ऊपर ही एक खतरा उपस्थित हो गया है और पाकिस्तान तथा चीन के साथ संबंधों को अच्छा बनाये रखना, हमारी सरकार की नीति के लिए बहुत महत्त्व की बात हो गयी है। अनेक प्रयत्नों के बाद इस वर्ष बजट में रक्षा-व्यय बढ़ेगा, इसमें संदेह नहीं। आखिर इसका असर देश की और प्रत्येक निजी आदमी की आर्थिकता पर तो पड़ेगा ही।

श्रीमती इंदिरा गांधी को एक बार फिर जनता ने इस कठिनाई के समय अवसर दिया है। वह बहुत-सी बातों को भूल गयी और उसने फिर से अपने नेतृत्व के लिए यदि श्रीमती गांधी का चुनाव किया है, तो यह उनके ऊपर एक बहुत बड़ा उतर-

दायित्व सौंपा है। वर्तमान मंत्रिमंडल में पुराने चेहरों की अपेक्षा नये चेहरों की संख्या अधिक है। इससे पूरे शासन-सूत्र में नवीनता आएगी ऐसा सोचना गलत नहीं होगा। श्रीमती गांधी ने इस बीच जो धैर्य दिखाया है, वह भी उनके स्वभाव के विपरीत है। और यह भी इस बात का संकेत है कि उनके मन में संभलकर चलने की पूरी इच्छा है, ताकि इस देश की जनता ने जो विश्वास उन्हें दिया है वह टूटने न पाये। चुनाव से पहले और चुनाव के समय इस बात की जोरदार चर्चाएं थीं कि यह चुनाव जातिवाद और पैसे के बल पर लड़ा जाएगा, लेकिन जो स्थिति सामने है उससे स्पष्ट है कि ये दोनों बातें गलत सिद्ध हुई हैं। इन्हें लेकर फिर हमारा विश्वास इस देश के जनमानस पर और भी सुदृढ़ हो जाता है। वह किसी भी कीमत पर अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों और दमन को सहन नहीं करेगी। दुनिया के अनेक देशों में प्रजातंत्र लड़खड़ाकर टूट गया, लेकिन यह देश इतना बड़ा होते हुए भी इतनी विविधताओं के बावजूद अपने को अब भी पूरी तरह संभाले हुए है। इसे नहीं भूलना चाहिए कि वैदिक युग में जब यहां आश्रम व्यवस्था थी, तब से यहां की जनता बराबर स्वतंत्र रही है। और जब भी कोई शासक उसके ऊपर आया है, उसने उसका विरोध किया है। समूचा इतिहास देखने से लगता है जैसे नदी के पानी की तरह सब कुछ यहां से गुजरकर बहता रहा है। जब-जब लोगों ने बांध बांधने की कोशिश की है उसमें दरार आयी है और वे प्रलय के शिकार हुए हैं। जिस देश की सांस्कृतिक विरासत इतनी मजबूत और गहरी हो, उसके प्रति आस्थावान होना, गलत नहीं होगा। हम इसी विश्वास के साथ अपने नये प्रतिनिधियों का अभिनंदन करते है, इस आशा के साथ कि वे भविष्य में हमें धोखा नहीं देंगे।

भारत की सातवीं लोकसभा

कुल स्थान = ५४२

घोषित परिणाम = ५२५

१७ निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव होना बाकी है।

घोषित दलीय स्थिति :

कांग्रेस (इ)	३५१	सी. पी. आई. (एम)	३५
लोकदल	४१	डी. एम. के.	१६
जनता	३१	ए. आई. डी. एम. के.	२
कांग्रेस (अ)	१३	अकाली दल	१
सी. पी. आई.	११	मुस्लिम लीग	३
		अन्य	२१



प्रेमचंद

वे दूसरे नामों से लिखते रहे!

● डॉ. शिवनंदन कपूर

वर्षों तक लोग नहीं जान पाये कि स्वयं स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'चाणक्य' नाम से लेखन कार्य किया। अन्य लेखकों द्वारा अन्य नामों से लिखने की परिस्थितियां और कहानी अपने-आप में काफी रोचक है।

ये नामकरण नाम को आकर्षक एवं साहित्यिक बनाने के लिए भी किये जाते हैं। पंतजी बचपन में गोसाईंदत्त थे। उषा सक्सेना 'प्रियवंदा' बन गयी। स्वर्गीय मोहन राकेश पहले मदन मोहन गुगलानी थे। कमलेश्वर अपने वास्तविक रूप में कैलाश सक्सेना हैं। इसी तरह शैलेश मटियानी 'रमेशचंद्र' और 'अमरकांत' श्री राम वर्मा हैं। ये सब अपने छद्म नामों में ऐसे छिपे हैं कि पहचाने नहीं जाते।

मुंशी धनपतराय ने लेखन के क्षेत्र में अपना नाम प्रेमचंद रखा। स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन पहले वैष्णव साधु रामादार थे। सन १९३० में बौद्ध-भिक्षु बनने पर उन्होंने राहुल नाम ग्रहण किया। सांकृत्य गोत्र को उन्होंने सांकृत्यायन रूप दे दिया। श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय इस लंबे नाम के विपरीत उन्हें लोग अज्ञेय के रूप में ही जानते हैं।

शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम पहले पुच्छन था। कई और कल्पित नाम उल्लेखनीय हैं। वैद्यनाथमिश्र 'नागार्जुन,' धर्मवीर सक्सेना 'भारती', महेंद्र कुमारी 'मन्नू भंडारी' के नामों से ही विख्यात हैं।

आर्थिक विवशता भी एक कारण

नाम—परिवर्तन के और भी कई कारण होते हैं। कभी-कभी आर्थिक कठिनाइयों के कारण लेखक अनेक नामों से लिखने के लिए विवश हो जाता है।

विश्वनाथ मुखर्जी ने 'नंदकिशोर त्रिपाठी' नाम अपनाया था। कुछ ऐसा साहित्य भी है, जिसे वे अपने नाम से लिखना नहीं चाहते। सत्य-कथा के क्षेत्र में अनेक ऐसे नाम मिलते हैं। यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' ने 'शांति भट्टाचार्य', और 'रजत रश्मि' के नाम से कई कहानियां लिखी हैं। राधेश्याम शर्मा 'गिरजाशंकर' और 'गिरजापंडित' के नाम से भी लिखते हैं। महिला नाम से लिखनेवालों में तमिल के भी अनेक लेखक मिल जाएंगे, जैसे 'सुजाता,'


राहुल सांकृत्यायन

कोई भी लेखक छद्म् नाम से क्यों लिखता है। इसके कई कारण हो सकते हैं--सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक। विश्व के अनेक साहित्यकारों ने पहले लोक-लाज के भय से छद्म नाम से लिखना शुरू किया, और जब उनका छद्म नाम बेहद लोकप्रिय हो गया, तब उनको असली नाम की आवश्यकता ही न रही।

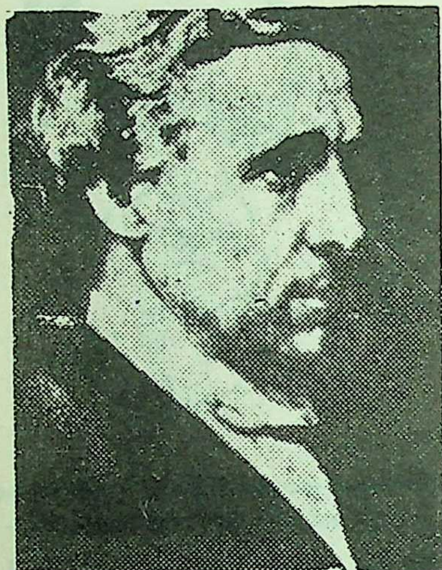
'इंदिरा पार्थसारथी', 'जयकांत' आदि।

मान-सम्मान का भ्रम

विदेशों में भी कितने ही लेखक छद्म नामों से लिखते हैं। गणितज्ञ चार्ल्स लुटविज डाजसन ने जब प्रसिद्ध कथा-कृति 'एलिस-इन वंडरलैंड' की रचना की तो उसे लेविस कैरोल के नाम से प्रकाशित कराया था। उन्हें भय था कि कहीं उनके साथी उन्हें बालकथा-लेखक के रूप में जान जाएंगे, तो सम्मान न देंगे। पर आज गणितज्ञ की अपेक्षा उस बाल-कथा-लेखक को ही लोग जानते हैं।

ट्रेवर डडले स्मिथ ने विभिन्न प्रकार की कृतियों के लिए अलग-अलग छद्म नाम निश्चित कर लिये थे। रोमांचक कृतियों में वे 'एडम हाल' थे। उत्कृष्ट युद्ध-रचनाएं उन्होंने 'एलस्टन ट्रेवर' के नाम से लिखीं। साहस की कहानियों पर भी यही नाम अंकित रहता था।

मार्क ट्वेन का वास्तविक नाम 'सेमुअल लैंगहार्न क्लीमंस' था। इस नाम के पीछे भी एक कहानी है। उनका बचपन मिसीसिपी पर बीता था। वहां नदी की गहराई कम हो जाने पर नाविक कहा करते थे 'मार्क ट्वेन' यानी पानी दो पुरसा है। वह उन्हें इतना पसंद आया कि विख्यात हो जाने के बाद भी उन्होंने इसे परिवर्तित न किया।



बाल-कथा लेखक : लेविस कैरोल

छद्म नाम की लोकप्रियता

कुछ लेखकों के समक्ष यह विवशता भी थी कि वे एक निश्चित समय तक अपने वास्तविक नाम का उपयोग लेखन-कार्य में न कर सकते थे। इस कारण उन्हें छद्म-नाम का सहारा लेना पड़ा। डेविड कार्नवेल ने ऐसी ही परिस्थितियों में जान ले कैरे के नाम से 'दि स्पाई हू केम इन फ्राम दि कोल्ड' लिखा था। वे उस समय बॉन में ब्रिटिश दूतावास में कार्यरत थे। विदेश मंत्रालय अपने कर्मचारियों को वास्तविक नाम से लिखने की अनुमति नहीं देता था।

ओ हेनरी ने कई जोरदार कहानियां लिखी हैं। कुछ कहानियां तो उसने बंदी-गृह में एक कैदी के रूप में भी लिखीं। वह नहीं चाहता था कि लोग उसके वास्तविक रूप को कहानीकार के रूप में जानें। उसका वास्तविक नाम विलियम सिडनी पोर्टर था। वह पहले टेक्सास के ऑस्टिन नामक स्थान पर एक राष्ट्रीय बैंक में खंजाची था। गबन के कारण उसे सन १८९८ में पांच वर्ष की सजा हुई।

उपहास की आशंका

प्राय: लेखकों में पहले-पहल एक संकोच होता है, कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी कृति जनता द्वारा पसंद न की जाए और उन्हें उपहास का पात्र बनना पड़े। इसलिए उन्हें कृत्रिम नाम की आड़ लेनी पड़ती है। एलीनर बरफोर्ड ने भी जब लिखना प्रारंभ किया, तब अपना नाम 'विक्टोरिया होल्ट' रख लिया। इस नाम से केवल वह तथा उनका प्रकाशक ही परिचित था।

आर्थर वेड लेखन-कार्य करने के पूर्व एक सामान्य लिपिक था। अपने नाम से लिखने में उसे संकोच लगा। इसलिए उसने कृत्रिम नाम 'सेनक्स रोमर' से रोमांचक रचनाएं लिखीं।

अगाथा क्रिस्टी ने वैसे तो विख्यात जासूसी उपन्यास ही लिखे हैं। पर जब उसने कुछ गोथिक उपन्यास या प्रेमाख्यान लिखे, तब उन्हें प्रचलित नाम से ही छपाना उसे रुचिकर न लगा। उन्होंने उन कृतियों को 'मेरी वेस्टकाट' के नाम से प्रकाशित कराया। वे रचनाएं विशेष लोकप्रिय न हुईं। इसलिए उन्होंने उस छद्म नाम को छोड़ दिया।

'सेसिल डे लेविस' अमरीका का दो

बार राज-कवि चुना गया। वह एक उत्कृष्ट आलोचक भी रहा। किंतु जब उसने जासूसी उपन्यासों की रचना की, तब उसे लगा, लोग एक कवि को अपराध-साहित्य लिखते देख नाक-भौं सिकोड़ेंगे। इस कारण उसने अपना छद्म नाम 'निकोलस ब्लेक' रख लिया। इस नाम से उसने छत्तीस से भी अधिक जासूसी उपन्यास लिखे। वे बिके भी खूब। ब्रिटिश लेखक फिलिप कार्टर ने 'मार्जीरी एलिंघम' के नाम से अपराध-साहित्य की रचना की। टार्जन की कहानियां लिखनेवाला 'विलियम ली' वास्तव में 'विलियम बरोज' था।

मैक्सिम गोर्की का नाम 'अलेकसेसी मैक्सीमोविच पेशकोव' था। अब इतने लंबे नामवाले लेखक को लोग कैसे याद रखते? अतः 'गोर्की' से आज सभी परिचित हैं। 'बारबरा मकनवोडेल' ने जब लिखना शुरू किया तो उसे लगा कि उसकी रचनाओं की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा है। उसने नाम बदलकर 'बारबरा काटलैंड' रख लिया। उस नाम से लिखे प्रेमाख्यान खूब चले। लेस्ली चार्ल्स बोयर यिन चीनी पिता और अंगरेज मां की संतान थे। उन्होंने 'लेस्ली चार्टीज' -जैसे छोटे नाम से लिखा।

अन्य छद्म नामों में 'एलेरी क्वीन' और 'साकी' हैं। उनके वास्तविक नाम 'फ्रेडरिक डैने' तथा 'हैक्टर हग मनरो' हैं। वाल्टेयर का वास्तविक नाम 'फ्रेंकोइस



छत्तीस से भी अधिक उपन्यासों के लेखक : निकोलस ब्लेक

मेरी हेनरी बायल' है। एरिक ब्लेयर ने जार्ज आरवेल के नाम से समाजवाद की कटु आलोचना की थी। उपन्यासकार डी. एच. लारेंस को सन १९२१ में सी. एच. डेविडसन के नाम से स्कूली बच्चों के लिए 'मूवमेंट्स इन यूरोपियन हिस्ट्री' लिखनी पड़ी थी।

मानव का रूप देह के साथ मर जाता है। पर उसके नाम का रूप भले ही वह कृत्रिम हो, अरूप होते हुए भी अमर रहता, और जड़ होते हुए भी निरंतर बोलता रहता है।

—३८७, टपाल चाल,
खंडवा (म. प्र.)

शोक-संदेश और मंत्रीजी के हस्ताक्षर

● शंकर पुणतांबेक

आॅफिस में पहुंचने पर मंत्रीजी के सामने ज्यों ही फाइलें पेश की गयीं, तो उन्होंने बाबू से पूछा, "देश में किसी बड़े आदमी की मौत-वौत तो नहीं ? शोक संदेश तो नहीं जारी करना है ?"

बाबू ने कहा, "नहीं, कोई नहीं मरा है । प्रातः के अखबार में भी नहीं, रेडियो पर भी नहीं ।"

"तुम्हें ठीक-ठीक मालूम है न ? ऐसा न हो औरों के जारी हो जाएं और मैं पीछे रह जाऊं ।"

"सर ये फाइलें ।"

"कहीं कोई दुर्घटना वगैरह तो नहीं"

"नहीं, कोई दुर्घटना वगैरह भी नहीं"



"क्या कोई भी दुर्घटना नहीं ? रे दुर्घटना न हुई हो, तो कहीं बस-दुर्घट तो हुई ही होगी ।"

"आश्चर्य की बात है, इतना ब देश ! कितनी रेलें व बसें दिनरात दौड़ रहती हैं । कहीं कोई भी दुर्घटना नहीं ।

"सर, ये फाइलें ।"

"हुई होंगी, दुर्घटनाएं अवश्य हु होंगी । पर ये अखबारवाले दें तब न अखबारवालों ने कभी सरकार का सा दिया है ।

"सर, फाइलें . . . ।"

"लगता है यह हफ्ता बिना शोक-संदेश के जाएगा । और कुछ नहीं तो क कोई बाढ़-बाढ़ आयी होगी । उसमें लो मरे होगें ।"

"नहीं, बरसात को खत्म हुए चा महीने हो गये । इन दिनों बाढ़ कैसी ?

"इस साल बरसात ऐसे ही खत्म ह गयी, बिना बाढ़ के । बड़ा दगा दिया बा ने । आयी ही नहीं ।"

"सर, फाइलें . . . ।"

"बाढ़ का भी क्या नजारा होता है

हेलीकॉप्टरों में से देखते ही बनाता है। लोग मर रहे हैं, मकान ढह रहे हैं, जानवर बह रहे हैं। सब कुछ कैसा अनोखा दृश्य होता है जो बार-बार देखने का मौका नहीं आता।"

"सर, फाइलें . . .।"

"हमारी घरवाली देख नहीं सकी है अब तक। पता नहीं, अगले साल भी बाढ़ आएगी या नहीं।"

"ये फाइलें सर . . .।"

"सूखे के क्या हाल हैं ?"

"इस साल उसकी भी कृपा रही। कहीं सूखा भी नहीं पड़ा।"

"अजीब साल है। बाढ़ भी नहीं सूखा भी नहीं।"

"ये फाइलें सर !"

"कहीं कोई गरीबी . . . भूख से तो नहीं मरा ?"

"हां कुछ जानें अवश्य गयीं हैं भूख से एक देहात में।"

"ओह, तो तुमने पहले क्यों नहीं बताया ? हम शोक-संदेश के लिए मरे जा रहे हैं और तुम हो सो ऐसे सुनहरे मौके को दबा रहे हो। फौरन एक शोक संदेश तैयार करो और . . . और लोगों के पहले मेरा संदेश जाने दो अखबारों में रेडियो पर सात दिन में एक भी संदेश न जा सका। यह भी कोई बात हुई।"

"लेकिन सर, भूख से मरनेवालों पर शोक-संदेश जारी करने की मनाही है।"

"मनाही है, किसकी मनाही है ?"



"ऊपर से।"

"क्यों ?"

"सरकार समझती है, लोग ज्यादा खाकर तो मर सकते हैं, पर भूख से नहीं। भूख के कारण जहर से मर सकते हैं, रेल में कटकर मर सकते हैं, पर भूख से नहीं मर सकते। और ऐसी आतमहत्या को मौत पर शोक-संदेश जारी करने की जिम्मेदारी विरोधी दल की है, सरकार को नहीं"

"बड़ी अजीब बात है। मैं मंत्रिमंडल में सवाल उठाऊंगा। लोग भूख से आत्म-हत्या कर लें और हम शोक-संदेश भी जारी न कर सकें।"

"सर, ये फाइलें . . ."

"ठहरो यह किसका फोन है। . . . देखो, हमारी घरवाली ने कहा है कि रिश्तेदारी में एक जगह मुंडन है। आज ही

हंसिकाएं : काव्य में

अस्त्र

निरस्त्रीकरण वर्ष की
पहली सुबह का लेखा
एक तानाशाह को
नाखून काटते देखा

बधाई

(हारे हुए नेता की बधाई)
चुनाव परिणाम
अद्भुत अपूर्व
'कभी तुम भूतपूर्व
कभी हम भूतपूर्व'

शिष्य

"गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है . . .
और गुरु—
तुमने ऐसे कच्चे घड़े बनाये
कि कोई सोहनी—
अपने महीवाल तक न पहुंच पाये !

अभिनंदन

(स्वागत के समय-चुने हुए नेता ने कहा)
भाइयो !
अब आपको मुझे मिलने में
शर्म न आयेगी
शीघ्र ही मेरी झोपड़ी
एक बढ़िया कॉटेज बन जाएगी

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

निकलना चाहिए। सो फाइलों को मार गोली। हम वहां जा रहे हैं, सरकारी दौरा निकालकर। दो दिन बाद लौटेंगे।

"ठीक है सर।"

"और देखो इस बीच कोई दुर्घटना वगैरह हो सकती है . . . रेल-दुर्घटना, बस-दुर्घटना। हम ऐसी जगह जा रहे हैं जहां प्रेस रिपोर्टर नहीं, संचार के भी कोई अच्छे साधन नहीं। अतः कोई दुर्घटना वगैरह होती है, तो हमारी ओर से शोक संदेश जारी होने में काफी देर हो जाएगी इसलिए पहले से ही हमारा शोक-संदेश तैयार करा लो और हमसे 'साइन' करा लो।"

"लेकिन सर . . ."

"हम नहीं चाहते कि लोग मर जाएं और उन बेचारों की आत्माएं शांति के लिए हमारे संदेश की राह देखती तड़पती रहें।"

—१६३, जिला पेठ, जलगांव-४२५१०

एक घुड़सवार अपनी घुड़सवारी की प्रशंसा करते हुए अपने मित्र को बता रहा था, "एक दिन तो अजीब ही संकट था मेरे सामने। मैं घोड़े को एक दिशा में ले जाना चाहता था और घोड़ा मुझे दूसरी दिशा में ले जाना चाहता था।"

मित्र, "फिर तुमने क्या किया ?"

घुड़सवार, "अंत में मैंने घोड़े की ही इच्छा मान ली।"

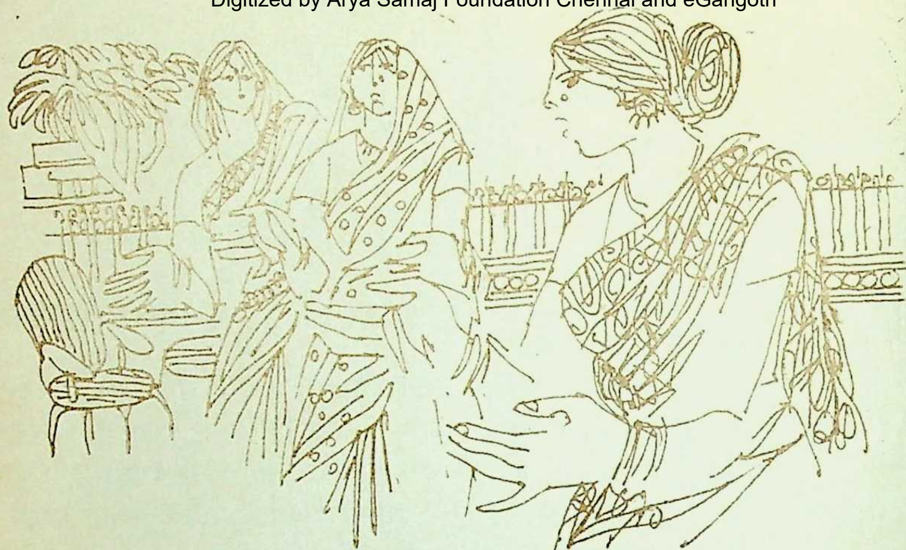
कहानी

हरशिंगार

• विभा देवसरे

उस कॉलोनी में मार्गरेट विलियम का आना संसार के आठवें आश्चर्य-जैसा ही था। मार्गरेट विलियम सबके लिए अजूबा थीं—सिर्फ अजूबा। उनके आते ही पूरे महल्ले में तहलका मच गया था। इत्तफाक से उस पूरी कॉलोनी में वही एक ऐसा घर था, जिसका मालिक दिल्ली से दूर मद्रास में रहता था। चर्चा यह थी कि मार्गरेट विलियम मद्रास से ही आयी थीं और मालिक-मकान ने वहीं उनसे 'एडवांस' लेकर चाभी सहित उन्हें मकान दे दिया था। नहीं तो अरसे से मकान में ताला पड़ा था। गरमी की छुट्टियों पर तो मकान अखाड़ा बना रहता। चहार दिवारी से कूदकर बच्चे अमरूद तोड़ ले जाते। महल्ले के बच्चों की टीमों में होड़-सी बनी रहती कि कौन जाकर पहले उस अमरूदवाले घर में अड्डा जमाता है। 'रिजर्वेशन' के बतौर कोई बच्चा अपनी टीम की निशानी छोड़ आता। फिर घंटों उस जगह पर उनका कब्जा बना रहता, लेकिन जब से मार्गरेट विलियम उस घर में आ गयी थीं, किसी की हिम्मत नहीं होती कि फाटक खोलकर अंदर घुस जाए। यों भी मार्गरेट विलियम ने गेट पर तख्ती टांग रखी थी, 'कुत्ते से सावधान'। सुबह-शाम मार्गरेट विलियम स्वयं ही अपने कुत्ते को लेकर बाहर निकलतीं।

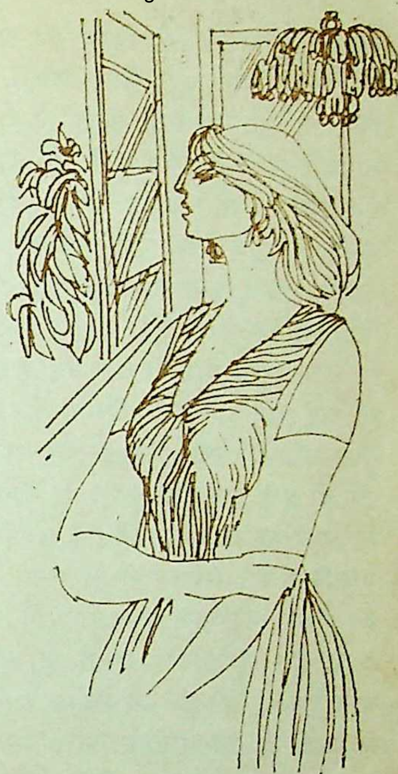
मार्गरेट विलियम को लुके-छिपे देखना सभी को अच्छा लगता। पूरा ऊंचा कद, चंपई रंग, 'स्टाइल' से संवरे 'बॉब्ड हेयर', और छरहरा बदन। तीखा नाक-नक्श। उम्र लगभग तीस-पैंतीस के आसपास। महल्ले के कुछ पुरुषों ने तो अपनी 'शेविंग' का समय भी तय कर रखा था। मार्गरेट विलियम जैसे ही कुत्ते को लेकर बाहर निकलतीं, लोग अपनी खिड़कियों में या बेड़े में आ जाते, और 'शेव' करने लगते। श्रीमती चोपड़ा और श्रीमती कपूर को तो यों भी अपने-अपने पतियों पर कड़ी निगरानी रखनी पड़ती थी। मार्गरेट विलियम के आने से उनका हाजमा कुछ ज्यादा ही बिगड़ा रहता था। लाख काम का दबाव रहता, बच्चे स्कूल के लिए देर से तैयार होते, पति को लंच देने के लिए एक ही सब्जी बन पाती, किंतु अपने पति को मार्गरेट विलियम से बचाने के लिए वे बार-बार 'किचन' से आना न भूलतीं।



जैसे ही मार्गरेट विलियम के घर का द्वार खुलता, श्रीमती चोपड़ा और श्रीमती कपूर चौकन्नी हो जातीं और अपने-अपने पतियों पर बड़ी मुस्तैदी से कड़ा पहरा देने लगतीं।

कॉलोनी की इस नयी चकल्लस में अगर किसी को लाभ हो रहा था, तो वह थी–सुल्लो। सुल्लो घोलू काम करने-वाली नौकरानी थी। वह सिर्फ उन्हीं घरों में काम करती थी, जिनमें खाना 'गैस' पर पकता हो, 'फ्रिज' का ठंडा पानी पीने को मिलता हो और शाम के समय मनोरंजन के लिए 'टी. वी.' देखने में कोई रोक-टोक न हो। अगर सुल्लो को अपने इस 'स्टैंडर्ड' के मुताबिक कोई ग्राहक न मिलता, तो वह वहां का काम करना मंजूर न करती। लेकिन मार्गरेट विलियम के आने के बाद, सुल्लो माई की बड़ी खातिर होने लगी थी। सबने उसे 'इन्फॉरमेशन आफिसर' बना लिया था। उससे ताजी-ताजी खबरें जानने के लिए सभी उत्सुक रहते। कॉलोनी की मुखिया श्रीमती सेठ उसे गरमागरम चाय और परांठे भी खिलातीं। सुल्लो के भी नाज नखरे, अदा और अंदाज में फर्क आता जा रहा था। नयी मालकिन मार्गरेट विलियम के घर काम करने से मानो उसकी किस्मत की लाटरी खुल गयी थी। सुबह मुंह अंधेरे सुल्लो, मार्गरेट विलियम की सेवा में हाजिर हो जाती। 'बेड टी' भी मार्गरेट विलियम सुल्लो के ही हाथ से लेतीं। दो-तीन महीनों में ही सुल्लो मार्गरेट विलियम के उतारे कपड़ों में चमकने लगी थी।

सुल्लो के लिए एक मिसेज सेठ ही ऐसी थीं जिनकी कोठी और मोटर का



रुतबा सुल्लो को कुछ विनम्र बना देता। फिर मिसेज सेठ ने आड़े वक्त पर सुल्लो की मदद भी कुछ कम नहीं की थी। सभी जानते थे कि मिसेज सेठ गरीबों की हमदर्द हैं। आड़े वक्त पर झुग्गी-झोपड़ेवालों को उधार देती हैं। जो उधार चुकता नहीं कर पाता है, वह रुपयों के ऐवज में महीनों उनके घर चार-छह घंटे काम कर आता है। सुल्लो भी कर्ज से दबी थी, पर भला हो इन मेम साहब का, जिनकी कृपा से वह मिसेज सेठ का दो सौ रुपया चुका आयी। और तो और, अब सुल्लो सारे मुहल्ले में मटक-मटककर काम नहीं करती। सिर्फ मार्गरेट विलियम के घर सुबह से शाम तक लगी रहती है। मार्गरेट विलियम के आफिस जाने के बाद ग्यारह बजे से लेकर शाम के छह बजे तक सुल्लो ही उस घर की मालकिन होती है। मार्गरेट विलियम के खुशबूदार 'शैंपू' और साबुन का इस्तेमाल कर, घंटों 'ड्रेसिंग टेबिल' पर 'क्रीम' कभी 'पाउडर' और कभी 'लिपस्टिक' का इस्तेमाल करती है। फिर एक दो घंटे मार्गरेट विलियम के गुदगुदे बिस्तर पर सोती है। भीनी-भीनी सुगंध से महकता मार्गरेट विलियम का गुदगुदा बिस्तर सुल्लो के लिए किसी स्वर्ग से कम नहीं।

एक रहस्य को सुल्लो आज तक नहीं समझ सकी और न उसने किसी से उसकी चर्चा की। हर शनिवार को मार्गरेट विलियम शाम को सुल्लो को जाने नहीं देती हैं। उस शाम किचन में बहुत अच्छा खाना बनता है। मीट और अंडे की कई तरह की सब्जियां, बिरयानी, और भी बहुत कुछ चीजें। कुछ सुल्लो बनाती और कुछ स्वयं मार्गरेट विलियम बनातीं। वह ऐसा अच्छा मसाला भूनती हैं कि सुल्लो कई बार मुंह में आया पानी गले के अंदर करती है। साढ़े आठ के करीब जब किचन में पूरी तैयारी हो जाती हैं, तब सुल्लो को 'डाइनिंग टेबल' लगाने का आदेश देकर मार्गरेट विलियम बाथरूम में घुस जाती हैं। आधा घंटे बाद जब बाथरूम

खुलता है, तब एक नये किस्म की खुशबू की भभक चारों ओर फैलने लगती है। फिर मार्गरेट विलियम बहुत भारी-सी साड़ी पहनकर मेकअप करने बैठ जाती हैं। रोज से थोड़ा गहरा मेकअप करके, साड़ी से मैच करता सेट पहनती हैं। सुल्लो मंत्र-मुग्ध-सी मालकिन का रूप निहारती रह जाती है।

उसी रात साढ़े नौ और दस के बीच दो कारें आती हैं। कुछ महिलाएं और कुछ पुरुष आते हैं। खाने-पीने का क्रम लगभग एक दो बजे रात तक चलता है। दिनभर की थकी सुल्लो बारह बजे तक खा-पीकर मालकिन का आदेश पाते ही शैम्पी कुत्ते को लेकर स्टोरवाले कमरे में सोने चली जाती है। सुबह नींद खुलते ही सुल्लो मालकिन को 'बेड टी' देने जब उनके कमरे में जाती है, तब मार्गरेट विलियम कमरे में बहुत उदास चुपचाप बैठी होती हैं। थका चेहरा ऐसा लगता है कि सिर्फ एक ही रात से नहीं, कई रातें उन्होंने ऐसे ही किसी चिंता में डूबकर बितायी हों।

सुल्लो पिछले छह महीनों से मार्गरेट विलियम को हर शनिवार को बहुत सुंदर और इतवार की सुबह घोर चिंताओं में डूबा पाती है। उसकी हिम्मत भी नहीं होती है, कि मालकिन से कुछ पूछ सके। सिर्फ इतना ही पूछ पाती है 'मेम साहब कोई गोली ला दूं।' और मार्गरेट विलियम सिर्फ इतना ही कह पाती हैं "नहीं, कोई जरूरत नहीं"। सुल्लो चुपचाप कमरे में बिखरे सिगरेट के जले टुकड़े समेटती है। कांच के खाली गिलास उठाकर कमरे से बाहर चली जाती है। सुल्लो ने इस सबकी चर्चा आज तक किसी से नहीं की है। मिसेज सेठ ने कई बार खोद-खोदकर उससे पूछा भी। अपनी पुरानी साड़ियां भी दीं। लेकिन सच तो यह है कि सुल्लो इतना ही जानती है कि मेम साहब यहां बिलकुल अकेली हैं। सुल्लो स्वयं भी शनिवार की शाम और इतवार की सुबह का रहस्य नहीं समझ सकी है। अपने आदमी तक को उसने इस बारे में कुछ नहीं बताया है।

उस दिन दोपहर को सुल्लो गेट में ताला मारकर गुप्ता स्टोर गयी थी। सुल्लो को देखते ही धूप सेकती महिला मंडली ने घेर लिया। मिसेज चोपड़ा बोली, "अरे सुल्लो, तेरी सुंदरता तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है।"

सुल्लो इस समय अपना महत्त्व आंका जाना अच्छी तरह समझ रही थी। श्रीमती सक्सेना की बगल में बैठती हुई बोली, "बीबी जी, तुम तो कैसी गुब्बारे-जैसी फूलती जा रही हो, योगासन किया करो।" सारी महिला मंडली 'हो हो' कर हंस दी। मिसेज सक्सेना ने खिसियाते हुए कहा, "बस-बस योगासन तू कर और तेरी मेम साहब करें। मुझे शो पीस नहीं बनना।" मिसेज सेठ ने मुद्दे पर पहुंचते हुए कहा, "अच्छा सुल्लो ये बता, तेरी मेम साहब ने शादी ब्याह . . ." सुल्लो ने बात काटते



हुए कहा, "बस, अकसर यही कहती हैं, मेरे मां-बाप नहीं हैं।"

मिसेज सेठ बोलीं, "कभी किसी से मिलती-जुलती नहीं? कोई बाहर से भी नहीं आता?"

सुल्लो ने चिढ़ते हुए कहा, "देखो बीवीजी बुरा मत मानना। तुम लोग भी तो कभी उनका दुख-सुख पूछने नहीं जाती हो। बच्चों तक को उनके पास नहीं भेजती हो। ऐसा कौन-सा मैल है उनमें . . .।"

"मैल?" मिसेज चोपड़ा तैश में आ गयी थीं। "जब से मुहल्ले में आयी हैं, जवान लड़कियां उनका रंग-ढंग निहारने में लगी रहती हैं, जवान लड़के कोठी के आस-पास मंडराते हैं। और तो और चार-चार बच्चों के बाप . . .।"

"आप कहना क्या चाहती हैं मिसेज चोपड़ा, मेरे कपूर साहब ने तो कभी परायी स्त्री को आंख उठाकर नहीं देखा।" मिसेज कपूर ने सफाई दी। मिसेज चोपड़ा ने कहा, "बहनजी, मैं तो जनरल बात कर रही थी। मेरे चोपड़ा साहब तो जब से क्लास वन हुए हैं, उन्हें घर में भी आफिस के काम से फुर्सत नहीं।"

मिसेज सेठ ने सबको चुप कराते हुए कहा, "हां, तो सुल्लो! तू ये बता कि हम तेरी मेम साहब से मिलना चाहें तो क्या वो मिलेंगी।" सुल्लो खुश होती हुई बोली, "क्यों नहीं? मैं आज ही कहूंगी," और उठ खड़ी हुई। मिसेज कपूर ने कहा, "वैसे आइडिया तो बुरा नहीं है, उनसे मिला

तो जा सकता है लेकिन ..." मिसेज चोपड़ा ने समस्या का समाधान किया, "औरतें ही मिलें तो अच्छा है।"

उस दिन फिर शनिवार था। हमेशा की तरह सुल्लो और मार्गरेट विलियम शाम से ही किचन में लगी थीं। नहाने के बाद जब मार्गरेट विलियम बाथरूम से निकलीं, तो खुशबू की भमक चारों ओर फैल गयी। सुल्लो को आश्चर्य तो इस बात का होता कि भरी सरदी में भी शनिवार की शाम मेमसाहब नहाती जरूर हैं। साढ़े-नौ, पौने-दस के करीब दो गाड़ियां आयीं। जिसमें कई महिलाएं तथा पुरुष थे। खाना-पीना चलता रहा। आज मेम साहब के आदेश पर भी सुल्लो सोना नहीं चाहती थी। लेकिन मेम साहब के कहने पर उसे शैम्पी को लेकर जाना ही पड़ा। सुल्लो को आज नींद नहीं आ रही थी। वह बड़े हाल के दरवाजे के पीछे खड़ी हो गयी। उसने देखा सभी लोग बहुत खुश हैं। कहकहों और शोर के बीच मेम साहब उठती हैं और रेडियोग्राम के ऊपर रखे, रिकार्ड में से एक रिकार्ड बजने के लिए लगा देती हैं। डांस के लिए उनके पैरों में थिरकन होती है। वह चाहती हैं लोग उनके साथ डांस करें... "यस... यस..." कहती हुई, वह हाथ बढ़ाती हैं, लेकिन सभी मेहमान बुत बने बैठे रहते हैं। मार्गरेट विलियम के चेहरे की खुशी अचानक उड़ जाती है। वह उदास होकर चुपचाप गैलरी में चली जाती हैं।

रिकार्ड बज रहा है। वह रिकार्ड हर शनिवार की पार्टी में बजता है। सुल्लो उसकी धुन से परिचित है। लेकिन रिकार्ड बजने पर क्या होता है, यह वह नहीं जानती थी। आज जो मेहमान आये थे, उनमें एक नया चेहरा भी था। सुडौल और खूबसूरत। उम्र यही कोई चालीस के आस-पास। एक बहुत परिचित चेहरा अंकल जानी का था। वह अधेड़ उम्र के व्यक्ति जरूर थे। लेकिन उनका व्यवहार मार्गरेट विलियम के साथ बिलकुल दोस्त-जैसा था। सुल्लो ने सुना—अंकल जानी ने नये चेहरे से कहा, "डेविड, बस यहीं से इस कहानी की ट्रेजडी शुरू हो जाती है। होता यह था कि विलियम मद्रास से दूर एक बड़ी फैक्ट्री में काम करता था। शहर से दूर फैक्ट्री के वातावरण में रहना न विलियम को पसंद था न मार्गरेट को। लेकिन फैक्ट्री का उच्चाधिकारी होने के कारण रोज मद्रास आना भी संभव न था। शनिवार की रात वह जरूर आता था। उसकी ट्रेन मद्रास सेंट्रल पर कोई सवा-नौ, साढ़े-नौ के करीब पहुंचती, वह टैक्सी लेकर सीधे घर आता, जहां उसकी प्रिय मार्गरेट, सभी दोस्तों के साथ पार्टी के लिए प्रतीक्षा किया करती। मार्गरेट को विलियम के आने का इतना पक्का अंदाज था, कि यह रिकार्ड शुरू होते ही विलियम जरूर आ जाता। फिर डांस होता। खाना-पीना होता। और देर रात को सब लोग अपने-अपने घर चले जाते।"

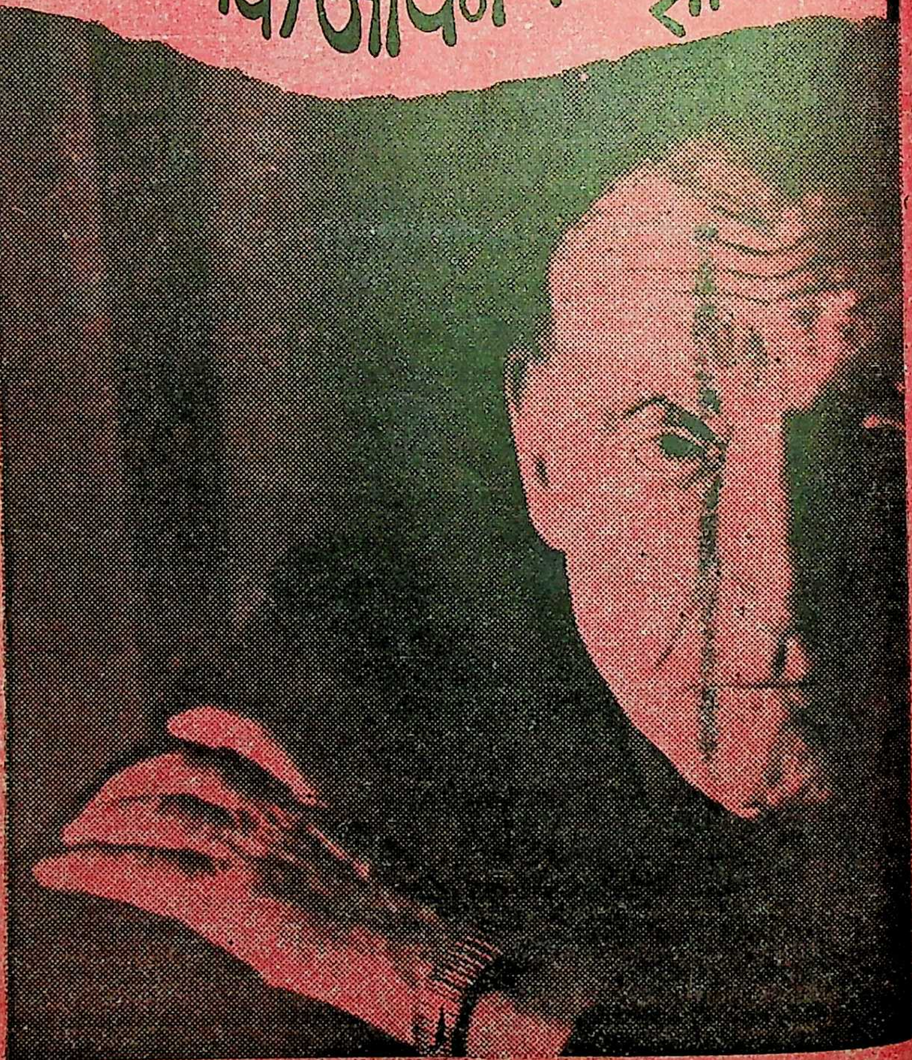
अंकल जानी अचानक एक ठंडी सांस लेकर बोले, "लेकिन एक दिन विलियम की ट्रेन का एक्सीडेंट हो गया। फिश-प्लेट निकल जाने से इंजन और बोगियां उलट गयी थीं। उनमें विलियम भी था। उस रात मार्गरेट विलियम का इंतजार करती रही। सवेरे अखबार में दुर्घटनाग्रस्त लोगों में विलियम का नाम भी था। लेकिन मार्गरेट पर उस खबर का कोई असर नहीं हुआ। वह बोली "नहीं ऐसा नहीं हो सकता, विलियम को किसी कारण फैक्ट्री में रुकना पड़ा होगा, एक्सीडेंट में किसी और विलियम की मृत्यु हुई होगी। "मार्गरेट का यह विश्वास बहुत पक्का था। अंत में मैंने यही निश्चय किया कि इसे दिल्ली ले चलूं। जगह बदलने से शायद इसे असलियत का अहसास हो सके। यहां मार्गरेट को एक अच्छी फैक्ट्री में नौकरी लगवा दी है। सब कुछ ठीक है, लेकिन हर शनिवार इसे विलियम का इंतजार होता है।

अचानक ही अंकल जानी उठे। उन्होंने डेविड से कहा, "डेविड क्या तुम मार्गरेट के लिए विलियम नहीं बन सकते हो? मैं जानता हूं कि यह शादी..." और रिकार्ड बजना अचानक ही बंद हो गया। मार्गरेट ने सुई उठाकर स्टैंड पर रख दी थी। सारे माहौल में सन्नाटे का करेंट लग गया था। सब चुपचाप उठकर डाइनिंग टेबिल पर खाना खाते रहे। अंकल जानी के गले में कौर फंस जाता है। और वह खांसने लगते हैं। मार्गरेट उठकर उन्हें पानी पिलाती है। और फिर अंकल की सजल आंखों में झांककर पूछती है, "अंकल, विलियम अगले शनिवार जरूर आयेगा न?"

अंकल कुछ नहीं कहते हैं। चुपचाप सिर झुका लेते हैं। रात गहराने लगती है, धीरे-धीरे सब उठकर चले जाते हैं। सुल्लो देख रही है, मेमसाहब का चेहरा स्याह और उदास है। देर तक वह सबको जाता देख रही हैं, जैसे सोच रही हों—क्या हुआ अगर पार्टी खत्म हो गयी? विलियम फिर भी तो आ सकता है। ऐसा पहले भी तो एकाध बार हुआ है। आते ही कहेगा, "कोई बात नहीं डार्लिंग, अब हम और तुम... ?" मार्गरेट दूर-दूर तक फैले गहरे अंधेरे में देख रही हैं। जाती हुई कारों की रोशनी अपने पीछे अंधेरा छोड़ती जाती है। मार्गरेट विलियम बहुत थकी बेजान-सी अपने कमरे में आ जाती हैं। सुल्लो चाहती है कि वह अकेली उदास मेम साहब के पास चली जाए। पर उसे डर लगता है। वह स्टोर में चली आती है। आज सुल्लो मेमसाहब को गोली के लिए भी नहीं पूछ पाती है। चुपचाप जले हुए सिगरेट के टुकड़े उठाने लगती है। कांच का खाली गिलास उठाकर बाहर चली जाती है। हर शनिवार के बाद अगली सुबह उसे ऐसा ही तो करना पड़ता है।

—एफ-बी ३०, टैगोर गार्डन,
नयी दिल्ली-११००२७

यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी



(९)

गोपाल कृष्ण विश्वकर्मा

हमारी शिक्षा का आरंभ ही मुरदों के काटने से होता है, इसलिए मौतें और रोगियों के दर्दनाक हालात, जिसे सामान्यतः अन्य लोग सहन नहीं कर सकते, हमें सहन करने की आदत पड़ जाती है, यानी कह लीजिए हम मरीजों बचाने के प्रयासों को रोक देते हैं। चाहे रोगी बचे या न बचे, हम अपने प्रयास अंत तक जारी रखते हैं।

हमारे डॉक्टरी व्यवसाय की नैतिकता ही यही है कि हम रोगी की प्राण-रक्षा का भरसक और आखिरी क्षण तक

'यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी' लेखमाला के अंतर्गत आपने भारत-सरकार के स्वास्थ्य उप-महानिदेशक डॉ. देशबन्धु विष्ट, सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. रामकुमार करौली, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान नयी दिल्ली में शल्य-चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डॉ. आत्मप्रकाश, हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉ. प्रभुदयाल निगम, सफदरजंग अस्पताल नयी दिल्ली के इंस्टीट्यट ऑव ऑरथोपीडिक्स के निदेशक डॉ. विश्वकर्मा के विचार पढ़े। इस अंक में प्रस्तुत हैं—डॉ. विश्वकर्मा के कुछ और संस्मरण

के यंत्र बनकर, यांत्रिक ढंग से उपचार करते रहते हैं। लेकिन हमारे इस 'यंत्रीकृत' हो जाने का मतलब यह नहीं है कि हमारी संवेदनाएं मर जाती हैं या हम जब समझ लेते हैं कि मरीज का बचना किसी भी तरह संभव नही हैं, तब हम उसके प्रयास करें, इसलिए 'मर्सी किलिंग' यानी मरीज को असहाय और असह्य स्थिति में देखकर मरीज के परिवारीजन लाख कहें कि मरीज को मौत की नींद सुला दें, फिर भी हम ऐसा नहीं कर सकते। यह हमारे लिए नियम-विरुद्ध और अमान-

एक मरीज लड़की जिसकी रीढ़ की हड्डी टेढ़ी हो गयी है — डॉ. विश्वकर्मा ऑपरेशन करते हुए — ऑपरेशन से ठीक हो जाने के बाद



वीय कार्य है।

दो भागों में बटी जिंदगी

हमारे व्यवसाय और कार्य-व्यापार का हमारे व्यक्तिगत जीवन पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। लेकिन हमारी दुनिया दो भागों में बटी रहती है—एक, घर की दुनिया और दूसरी, अस्पताल की दुनिया। और, ये दोनों संसार एक-दूसरे से अलग होते हैं। मैं जब अस्पताल में रोगियों के बीच घिरा होता हूं तब मुझे घर बिलकुल याद नहीं रहता। घर का कोई जरूरी काम हो या स्वयं अपनी ही तबियत खराब हो—सब कुछ भूल जाता हूं। अपने से अधिक बीमार और पीड़ा से तड़पते मरीजों के सामने अपनी तकलीफ का अहसास भी जाता रहता है।

एक डॉक्टर के सुखी और सफल जीवन के लिए यह जरूरी है कि उसका दांपत्य-जीवन सुखी हो और यह सुख तभी मिल सकता है, जबकि पति-पत्नी के बीच एक अच्छी, पारस्परिक समझ और सहनशीलता हो। एक अच्छी पारस्परिक समझ और सहनशीलता एक डॉक्टर को डॉक्टर-पत्नी से ही मिल सकती है, जैसा कि कुछ डॉक्टरों का कहना है, **(डॉ. पी. डी. निगम का विचार देखिए—'कादम्बिनी' दिसंबर, १९७९)** मेरा विचार है कि एक डॉक्टर को डॉक्टर से शादी नहीं करनी चाहिए और डॉक्टर ही नहीं बल्कि मैं तो यह कहता हूं कि अपने प्रोफेशनवाले से शादी नहीं करनी चाहिए। शादी-विवाह और घर-परिवार हम बच्चों के लिए बसाते हैं, बच्चों के लिए जिंदा रहते हैं। मान लीजिए, पति-पत्नी दोनों ही बच्चों की, घर-परिवार की कीमत पर पैसा कमाते हैं तो, फिर घर-परिवार बसाने का फायदा ही क्या हुआ ? और फिर उस पैसे का हम करेंगे क्या ? वैसे यह भी सच है, आज के संदर्भ में पैसे के बिना पति-पत्नी के बीच अच्छी पारस्परिक समझ पैदा नहीं हो सकती। लेकिन जितना पैसा चाहिए, उतना तो मिल ही जाता है। फिर पैसे के मामले में संतुष्टि तो कभी नहीं होती।

मेरी पत्नी राधा त्वचा-रोग विशेषज्ञ रही हैं। वर्षों तक उन्होंने अस्पताल में काम किया है लेकिन परिवार बसाते ही उन्होंने नौकरी छोड़ दी और घर की, बच्चों की, देखभाल की, उन्हें पाला-पोसा। इस समय हमारा बड़ा बच्चा दसवीं में पढ़ रहा है। जब वह इस जिम्मेदारी को पूरा कर लेंगी तब फिर व्यवसाय में उतर सकती हैं। मैं तो यह मानता हूं एक पत्नी के लिए सबसे पहले घर है, इसके बाद कुछ और।

स्वयं का इलाज नहीं

हमारे व्यवसाय की एक खासियत है, आप इसे खासियत ही कह लीजिए कि हम डॉक्टर होते हुए भी अपना इलाज नहीं कर सकते छोटी-मोटी बीमारी को छोड़कर। वैसे हमें दूसरे डॉक्टरों से ही उपचार कराना पड़ता है। मेरा कहना है

कि होना भी यही चाहिए । एक घटना का जिक्र करूं ! पटना मेडीकल कालेज में एक प्रो. सिन्हा साहब थे । अपने समय के माने हुए सर्जन थे, यह कह लीजिए कि उनकी टक्कर का कोई दूसरा सर्जन नहीं था । संयोग ही कहिए कि उनके इकलौते जवान लड़के के गुरदे में खराबी आ गयी, जिसके लिए आपरेशन जरूरी हो गया ।

प्रो. सिन्हा को समझाया गया कि वे यह ऑपरेशन किसी और सर्जन से करायें, लेकिन वे नहीं माने । उनका कहना था कि जब सबसे बढ़िया सर्जन मैं हूं तो किसी दूसरे, मुझसे कम योग्यता व अनुभववाले सर्जन से ऑपरेशन क्यों कराऊं ?

प्रो. सिन्हा नहीं माने और उन्होंने ऑपरेशन किया । जैसे ही आपरेशन शुरू किया और पहला ही चाकू चलाया तो जो खून निकला, उसे देख वह इतने 'नर्वस' हुए कि चाकू उनके हाथ से छूट गया और स्वयं गश खाकर बेहोश हो गये । अंत मे नतीजा यह निकला कि लड़के को बचाया नहीं जा सका । अपने नजदीकी रिश्तेदारों और परिवार-जनों के प्रति व्यक्ति में एक अजीब प्रकार का मोह, लगाव और आत्मीयता होती है, इसलिए यही आत्मीयता आड़े आकर कार्य को बिगाड़ देती है ।

आत्मीयता दवा से ज्यादा जरूरी

वैसे, मरीज को डॉक्टर से आत्मीयता की बहुत जरूरत होती है । एक और घटना का उल्लेख करूं ।

मैं उस समय कनाडा के एक अस्पताल में कार्यरत था । क्योंकि मैं एकाएक यहां आ गया था और मेरा मन नहीं लग रहा था । कभी-कभी 'डिप्रेशन' हो जाता था ।

अस्पताल में पड़े एक बूढ़े मरीज ने यह भांप लिया था कि मेरा मन यहां नहीं लग रहा है । फलतः उसने एक दिन मुझसे कहा कि 'मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं ।' मैंने कहा, 'ठीक है, मैं वार्ड का दौरा कर लूं, फिर आता हूं ।' दौरा करने के बाद मैं उस बूढ़े के पास स्टूल खिसकाकर बैठ गया और पूछा, "बोलो, क्या बात करना है ?"

"मैं कई रोज से देख रहा हूं कि

रोगियों की आशाओं का केंद्र नयी दिल्ली का सफदरजंग अस्पताल



आपको 'डिप्रेशन' रहता है।" उसने कहा।

मैंने कहा, "शायद, घर की याद आने के कारण ऐसा होता है।"

उसने पूछा, "आप शादी-शुदा हैं?"

मैंने कहा, "नहीं।"

"तो फिर कौन याद आता है?"

मैंने कहा, "अपना परिवार!"

वह बोला, "कौन-सा परिवार?"

"जिसमें मां-बाप, भाई-बहन हैं।"

बूढ़े ने आश्चर्य से पूछा, "मां-बाप भाई-बहन!" और कुछ देर सोचने के बाद बूढ़ा फफक-फफककर रो पड़ा।

मैंने उसके ोने का कारण पूछा, तो उसने बताया, "हमारे देश से तो फिर आपका देश अच्छा, जहां बच्चे मां-बाप की याद तो करते हैं। एक मुझे देखिए। मेरे कई बच्चे हैं, शादी-शुदा और ठीक-ठिकानों पर लगे हुए हैं, पास ही रहते हैं लेकिन आज तक मुझे देखने कोई भी नहीं आया। हर शनिवार को ग्रीटिंग कार्ड जरूर भेज देते हैं, इस शुभकामना का कि मैं जल्दी ठीक हो जाऊं।"

--वार्डन फ्लैट्स नं. २, मौलाना आजाद मेडिकल कालेज कैंपस, नयी दिल्ली-२

"जब मैं शीर्षासन करता हूं तो लगता है कि शरीर का सारा खून सिर में जमा हो रहा है, पर खड़े होने पर वह पैरों की ओर नहीं जाता।"

"इसलिए कि तुम्हारे पैर खाली नहीं हैं। खून तो खाली जगह में ही भरेगा। और तुम्हारा दिमाग....!"

क्षणिकाएं

छवि

तुमसे मिलने की
मन में
जब-जब प्यास जगी
छवि अपनी दर्पण में
उस दिन कुछ खास लगी

--रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

दुर्भाग्य

चंद्र से भी गया-बीता
जिंदगी का हर सुखद क्षण
एक भी ऐसी नहीं पूनम
न हो जिसमें ग्रहण!

—ब्रजेन्द्रकुमार चतुर्वेदी

सूरज

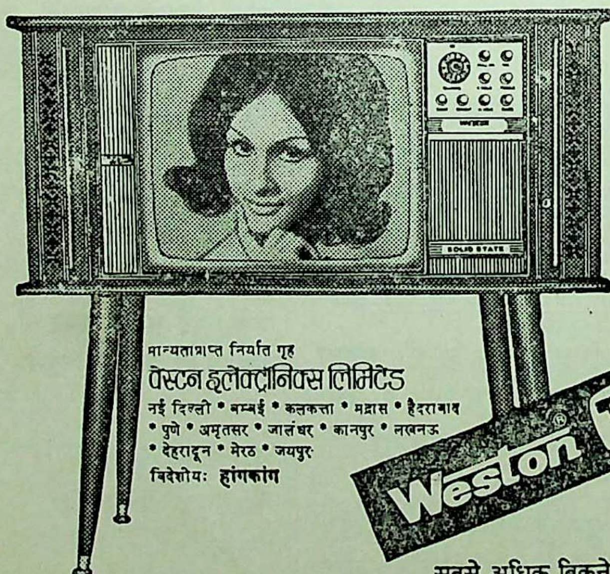
सुबह,
क्षितिज पर--
सूरज,
हौले-हौले चढ़ता,
जैसे कोई मोहक स्वर में,
मानस की चौपाई पढ़ता

—राजा दुबे

जन्म-दिन

जिंदगी के पहाड़ से
फिसली
एक चट्टान

—वीणा शंकर


SOLID STATE
मान्यताप्राप्त निर्यात गृह
वेस्टन इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड
नई दिल्ली • बम्बई • कलकत्ता • मद्रास • हैदराबाद
• पुणे • अमृतसर • जालंधर • कानपुर • लखनऊ
• देहरादून • मेरठ • जयपुर
विदेशीय: हांगकांग
Weston® TV

वह धन से ऊब गयी हैं! वह अब सब्जी बेचती हैं!

• ज्योतिर्मय

दक्षिण कैलिफोर्निया में हजार-आठ सौ की आबादीवाला एक छोटा-सा गांव है—सुआम। इसमें रहनेवाले अधिकांश परिवार या तो छोटे किसान हैं अथवा कृषक-मजदूर। गांव से कुछ हटकर एकांत में बनी हुई है एक छोटी-सी कुटिया और उसमें रहती है, विश्व के सर्वाधिक संपन्न धनकुबेर रॉकफेलर-परिवार की सदस्या मेरिऑन रॉकफेलर। मेरिऑन ने अपनी कुटिया के पास खाली पड़ी जमीन में सब्जी की क्यारियां लगा रखी हैं। रोज सुबह अपने दो बच्चों को नहला-धुलाकर मेरिऑन उन क्यारियों में लगी सब्जियां तोड़ती है और एक रेहड़ में सजाती है।

सब्जियों से भरी हुई रेहड़ को करीब मीलभर तक खींचकर मोर्टआन मुख्य सड़क पर ले जाती है और वहां खड़ी कर देती है। आने-जानेवाले लोग उस रेहड़ में रखी ताजी सब्जियों को हाथों-हाथ खरीद लेते हैं। मेरिऑन उन्हें बताती भी है कि ये सब्जियां रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कर नहीं उगायी गयी हैं बल्कि उनकी क्यारियों में प्राकृतिक खाद डाला गया है। रेहड़ खड़ी होते ही सब्जियां खरीदनेवालों का तांता लग जाता है।

यों मेरिऑन को रॉकफेलर-परिवार से करोड़ो डॉलर मिल सकते हैं और वह ऐशोआराम का; शानशौकत-भरा जीवन व्यतीत कर सकती है। परंतु उसे अपने इसी जीवन से प्यार है, जिसके लिए उसे अपने परिवार से बड़े संघर्ष करने पड़े थे। बात विश्वसनीय नहीं लगती है। खरबपति-परिवार की सदस्या मेरिऑन और इतना गरीबी का जीवन—विश्वास नहीं होता। पर हाल ही में दो अमरीकी पत्रकारों ने रॉकफेलर के वंशजों की जो कहानी कुरेदी है, वह अविश्वसनीय होते हुए भी सच है—यही नहीं, रॉकफेलर-परिवार की वर्तमान पीढ़ी को —जिसे 'कजंस' कहा जाता है—अपने ढंग से जीने के लिए कड़े संघर्ष भी करने पड़े—यह भी बताती है। उन पत्रकारों के अनुसार रॉकफेलर के वशंज अपने ढंग से जीने के लिए परिवार की समृद्धि और संपन्नता से दूर भाग चुके हैं, या भाग रहे हैं।

मेरिऑन—जो जॉन डी. रॉकफेलर के पोते नेल्सन रॉकफेलर की बेटी है—का न परिवार से कोई झगड़ा हुआ और न

परिवार ने उसे छोड़ा ही। बल्कि वह स्वयं ही सुआन की उस झोंपड़ी में आकर बस गयी, इसलिए कि उसे किसी भी मूल्य पर अपना जीवन अपने परिवार के पास गिरवी रखना मंजूर नहीं था। सब्जियां बेचकर जो आमदनी होती है, मेरिऑन उसी से अपना घर खर्च चलाती है। उसका पति बारेन बर्कले यूनिवर्सिटी से पी-एच. डी. कर रहा है और मेरिऑन का कहना है कि बारेन जब पी-एच. डी. कर लेगा तब वह भी यहीं आकर रहने लगेगा।

जिन पत्रकारों ने मेरिऑन से उस छोटे-से गांव में मुलाकात की, उसमें से एक का नाम है जॉन एडवर्ड। एडवर्ड ने मेरिऑन से पूछा, "रॉकफेलर-परिवार की समृद्धि करोड़ों लोगों के लिए आदर्श है और वे भी उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं तो आपने यह गुमनाम जिंदगी जीने का फैसला क्यों किया ?"

"उफ ! आप नहीं समझते कि समृद्धि के बंधन कितने भारी और कड़े होते हैं। औरों की बात तो मैं नहीं कहती, पर मैं अपने परिवार के शाही रहन-सहन से बुरी तरह ऊब चुकी थी। चारों ओर नौकर ही नौकर, चारों ओर दासियां ही दासियां ! औपचारिकताओं की शुष्क मर्यादाएं ओर उनमें सूखा हुआ स्नेह का निर्झर। इन सब कारणों ने मुझे यह गुमनाम जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया और मैंने अपने ढंग से जीना आरंभ किया। मैं इस जिंदगी से खुश हूं।"—मेरिऑन का उत्तर था।

तो क्या संपत्ति बंधन है ? प्रसिद्धि ऊबाऊ है ? जी हां, मेरिऑन और उसके अन्य कई भाई-बहनों की आपबीती सुनें तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ेगा। रॉकफेलर के वशंजों का बचपन न्यूयार्क के उस भव्य मकान में ही कैद रहा, जो किसी महल की तरह लगता है। ज्यादा से ज्यादा उन्हें चार हजार एकड़ में फैले पोकांटिका फार्म तक जाने की छूट थी, जहां सैकड़ों मजदूर काम करते थे। मेरिऑन का मन होता कि वह उन मजदूरों के बच्चों के साथ खेले, पर कहां खरबपति की बेटी और कहां रोज कुंआ खोदकर रोज पानी पीनेवाले मजदूरों के बच्चे ! मेल-जोल बढ़े तो कैसे ?

इन बच्चों की दुनिया न्यूयार्क की उस महलनुमा इमारत और पोकांटिका फॉर्म तक ही सीमित रह गयी। इस दुनिया से न वे बाहर कदम रख सकते थे और न ही बाहर की कोई चिड़िया अंदर पंख फड़फड़ा सकती थी। यद्यपि वह महल इतना बड़ा था और इतने अधिक लोग उसमें रहते कि लगता, जैसे कोई छोटा-मोटा गांव ही वहां आ बसा हो। परंतु ऐसा कोई भी कोना उस महल में नहीं था, जिसे बच्चे अपना कह सकें। बच्चे कहीं भी आते-जाते तो नौकर-चाकरों से घिरे रहते।

'कजंस' को दिन-रात अपने पूर्वजों का गुणगान सुनना पड़ता। पिता की जबान पर इसके सिवा कुछ आता ही

नहीं था और पूर्वजों का उल्लेख इस प्रकार किया जाता, जैसे वे कोई दूसरी दुनिया के देवता हों। यह सब इतने रूखेपन से होता, जैसे कोई अनगढ़ कथा-वाचक नीरस ढंग से कथा पढ़कर सुना रहा हो।

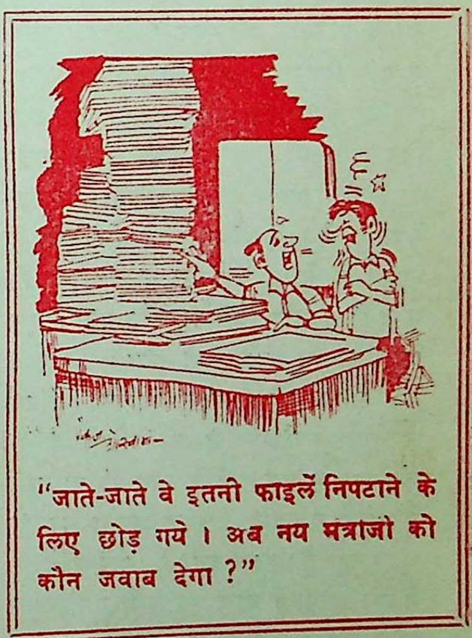
मेरिऑन और उसके भाई-बहनों का बचपन इस प्रकार नीरस और शुष्क वातावरण में बीता कि उन लोगों की शिक्षा के लिए अभिभावकों ने अच्छी से अच्छी व्यवस्था की और उन स्कूलों में भर्ती करवाया, जहां दौलतमंद लोगों के बच्चे पढ़ते थे। लेकिन दूसरे विद्यार्थियों को जब यह पता चला कि ये लोग रॉकफेलर परिवार से संबंधित हैं तो अपने आप ही उनके रौब में आ गये।

'कजंस' के सहपाठी, जो उन लोगों से बेहतर प्रभावित हुए थे, दो वर्गों में बट गये थे। एक ओर तो वे जो खुशामद में ही 'आमद' मानकर 'कजंस' को प्रसन्न करने के लिए हद दर्जे की चापलूसी करते तथा उनके पीछे पड़े रहते। मेरिऑन की बहन एलिडा के पीछे तो एक लड़का इस कदर पड़ा कि वह उसे प्यार और शादी का वास्ता देने लगा। वह कहता—'हमारे बीच पैसे को मत आने दो। मैं तुमसे प्यार करता हूं।' यह कहने के साथ-साथ ही वह एलिडा से पैसे की मांग भी करता रहता।

दूसरा वर्ग उनसे हर घड़ी खौफ खाये रहता। इसलिए उन लोगों का किसी से मिलना-जुलना तो दूर रहा, वे स्वयं पहल करते तो भी कोई उनसे बेहिचक बात नहीं करता था।

'स्नेह सौजन्य और सहज सहानुभूति प्राप्त करने में आत्यंतिक संपन्नता ही आड़ आ रही है'—इस अनुभव की तीव्र प्रतिक्रिया मेरिऑन पर हुई। उसने निश्चय किया कि मुझे किसी भी तरह साधारण लोगों की-सी जिंदगी गुजारनी चाहिए। इसके बिना न प्यार मिल सकता है और न सद्भावना।

स्नेह-सद्भाव प्राप्त करने के लिए सामान्य जीवन जीने की आवश्यकता न केवल मेरिऑन ने ही अनुभव की बल्कि वैसी ही प्रतिक्रिया अन्य भाई-बहनों पर भी हुई। सामान्य जीवन के लिए अथवा पैतृक परंपरा से ऊबकर अपनी निजता



"जाते-जाते वे इतनी फाइलें निपटाने के लिए छोड़ गये। अब नय मंत्राजो को कौन जवाब देगा?"

को तलाश करने के लिए सभी भाई-बहनों ने अपने-अपने ढंग से अपना रास्ता खोजा। वे लोग अपनी वशंगत प्रतिष्ठा तथा उत्तराधिकार में मिली जिंदगी से इस बुरी तरह घबरा गये थे कि सांड्रा तो पागल ही हो गयी। सांड्रा चाहती थी कि उसके हिस्से की सारी संपन्नि दान में दे दी जाए। लेकिन उसके अभिभावकों ने अनेक कानूनी पेंच डालकर सांड्रा को अपने मन की करने से रोक दिया। इससे सांड्रा इतनी दुःखी हो गयी कि अपना मानसिक संतुलन गंवां बैठी।

होशियार होने पर अभिभावकों ने 'कजंस' को व्यावहारिक तथा व्यावसायिक जिम्मेदारियां सौंपना आरंभ किया। आरंभ से ही परिवार की संपन्नता और ख्याति के प्रति विद्रोह का भाव रखनेवाले 'कजंस' को यह कैसे स्वीकार हो सकता था। एक दिन पाल को छोड़कर सभी लोग अपनी गरदन बचाकर भागने लगे। किसी ने समाज-सेवा के क्षेत्र में प्रवेश किया तो किसी ने राजनीति में। माइकल ने अमरीका ही छोड़ दिया और न्यूगिनी चला गया। एक भाई जापान जाकर बस गया।

सबसे सहज और सामान्य जीवन अपनाया मेरिऑन ने, जो दक्षिण कैलिफोर्निया के उस छोटे-से गांव में जा बसी है और सब्जियां बेचकर अपना गुजारा चला रही है। वह कहती है, 'मुझे खुशी है, मैं ऐसे लोगों के बीच रह रही हूं जिन्होंने रॉकफेलर का नाम तक नहीं सुना।'

तो क्या रॉकफेलर-प्रतिष्ठान का कारोबार बंद हो रहा है? नहीं, 'विनथ्राफ रॉकफेलर का बेटा विनपाल उस समय कारोबार सम्हालने आया, जब 'कजंस' ने प्रतिष्ठान से विरक्ति बतायी और किनारा कर गये। लेकिन विनपाल की गणना 'कजंस' में नहीं होती है, क्योंकि उसके पिता ने उसकी मां को छोड़ दिया था और वह बचपन से ही अपनी मां के साथ रहा था।

चार पीढ़ियों से चले आ रहे धंधे से विरक्त होकर चचेरे भाई-बहनों ने अपनी जिम्मेदारियों से पलायन किया अथवा उन्होंने अपने जीवन को सरल-सहज बनाने के लिए इस संपन्नता को लात मार दी, कहना कठिन है। ये चचेरे भाई-बहन अपने वर्तमान जीवन से संतुष्ट हैं तथा पिछले जीवन से इसको बेहतर समझते हैं। कभी-कदा कोई चर्चा भी चलती है, पिछले जीवन के बारे में अथवा पैतृक परंपरा के संबंध में तो उनका एक ही उत्तर होता है, 'हमने अपनी जिंदवी अपने परिवार के पास गिरवी नहीं रख दी है।'

—शांति कुटी, हरिद्वार

अर्थशास्त्र के प्रोफेसर ने प्रश्न-पत्र कक्षा में वितरित किये। एक छात्र ने प्रश्न-पत्र पढ़ने के पश्चात कहा: "सर, प्रश्न पत्र में एक प्रश्न तो बिलकुल वही दिया गया है, जो पिछले सत्र में भी पूछा गया था।" प्रोफेसर: "ठीक है प्रश्न वही है, लेकिन अब की बार मैंने उसका उत्तर बदल दिया है।"

रामदीन की मां

समय-तांत पर धुनती रुई
बिखर-बिखरकर रेशा-रेशा हुई
रामदीन की मां

दिनभर भरे रजाई-गद्दे
डोरे टांक रही है
कर्मठ हाथों से भविष्य के
सपने आंक रही है
सारा जीवन चुभती हुई सुई
रामदीन की मां

शब्द-शब्द साखियां समय की
आदमकद अनुभव है
संस्मरणों का खुला खजाना
गीतों का गौरव है
सन से श्वेत केश, सूरत है चांदी दूध धुई
रामदीन की मां

गली-मुहल्ले में अफवाहें
चर्चा कानों-कान
है सिंदूर शराबी इसका
बेटी तीर-कमान
आज शिला है कल की छुई-मुई
रामदीन की मां

—प्रकाश मिश्र
जयेन्द्रगंज, ग्वालियर-१

स्वयं-सिद्धा

मेरे भाल का रक्ताभ बिंदु
उदित हो न सका
जो
तुम्हारे भाग्य-पटल में
मेरी अलकों की विभाजित-रेखा
बन न सकी तुम्हारी लक्ष्मण-रेखा
तब
कह उठूंगी
'न जाओ सैंया छुड़ा के बैंया
कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूंगी
रो पड़ूंगी . . .
तुम्हारे कदमों का फूल हूं मैं
यहीं मरूंगी यहीं जिऊंगी . . .'
दोबारा कहती हूं
तुम्हारी वंश-परंपरा की सौभाग्य-लक्ष्मी
उसकी रक्षा स्वयं करूंगी

—सोहनी दयाल
६ क्लाइव रोड, इलाहाबाद

विचार-दीर्घा—१

मेरी दृष्टि में नैतिकता की परिभाषा

'कादम्बिनी' के नये स्तंभ 'विचार दीर्घा' का पाठकों ने बेहद स्वागत किया है। यहां हम प्रथम पुरुस्कृत विचार के अतिरिक्त कुछ अन्य पाठकों के विचारों के महत्त्वपूर्ण अंश भी प्रकाशित कर रहे हैं।

पुरस्कृत-विचार

क्या मनुष्य के आंतरिक जीवन के जीवंत सत्यों एवं मूल्यों को शाब्दिक जड़ परिभाषाओं तथा शाब्दिक सतही व्याख्याओं द्वारा बांधा अथवा व्यक्त किया जा सकता है? और 'प्रेम' व 'नैतिकता' जैसे सजीव विषयों को क्या शब्दों द्वारा समझाया जा सकता है?

इन प्रश्नों पर गहराई से सोचने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे आंतरिक जीवन के सत्यों तथा मूल्यों को शब्द स्पर्श नहीं कर सकते।

'नैतिकता क्या है?' इस प्रश्न के उत्तर में कहूंगा कि मनुष्य जब अपने भौतिक शरीर तथा भौतिक मन की भौतिक सीमाओं अर्थात स्व के दायरे से बाहर विशाल जगत, उसके प्रत्येक प्राणी और उसकी प्रत्येक सत्ता में अपनी स्वयं की छवि अथवा अपनत्व के 'दर्शन' करने लगता है तब जगत और जगत के प्रत्येक प्राणी तथा जगत की प्रत्येक सत्ता के साथ उसका आत्मिक अथवा हार्दिक 'एकत्व' स्थापित हो जाता है। यह 'एकत्व' की अनुभूति अथवा अंतरदृष्टि ही उसके जीवन का मौलिक सत्य बन जाती है। उस दशा में वह मनुष्य सीमित व्यक्ति न रहकर विश्व अर्थात समष्टि में परिणित होकर ससीम से असीम और लघु से विराट बन जाता है। उसके मन-हृदय में उस अकल्पनीय विशालता, संवेदनशीलता, करुणा एवं प्रेम रूपी 'दिव्य मूल्य' का स्वतः जन्म होता है जिसे हम आध्यात्मिकता, धार्मिकता, मानवता, मानवीयता या नैतिकता, किसी भी नाम से विभूषित कर सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य में अंतरदृष्टि के उदय के साथ उसके मन-हृदय में अंकुरित वह 'दिव्य-मूल्य' जो उसको संवेदनशील प्राणी बनाकर उसकी संवेदनाओं को इतना विकसित कर देता है कि वह समस्त विश्व और विश्व के कण-कण के साथ आत्मिक 'एकत्व' के संबंध में जुड़कर 'प्यार' का सजीव सागर बन जाता है—उसी मूल्य को नैतिकता की संज्ञा दी जाती है।

——भगवतप्रसाद गुप्ता
प्रवक्ता / ए. एस. कालेज सिकंदराबाद

—अन्य पाठकों की दृष्टि में नैतिकता की परिभाषा—

"वस्तुतः नैतिकता बलपूर्वक थोपा हुआ, व्यवस्था की गरज से अपनाया हुआ, शौकियाना अथवा लोक-प्रतिष्ठा के लिए किया जानेवाला आचरण नहीं है, बल्कि यह विश्व के अस्तित्व व स्थिति के लिए आवश्यक तत्त्व है, जो प्रत्येक पदार्थ व प्राणी की रग-रग में बसा हुआ है। **—डॉ. शिवलाल दवे,** सुमेरपुर पाली (राज.)

"नैतिकता बौद्धिक एवं विवेकशील मानव को 'गरिमा' प्रदान करनेवाली 'चरित्र' की वह अद्वितीय विशेषता (गुण) है जो व्यक्ति को निजी कर्त्तव्यों का बोध कराकर सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है **—डॉ. (कु.) छाया राय, जबलपुर**

नैतिकता का अर्थ होता है—मन, वचन तथा कर्म से विशुद्ध, अनुशासनबद्ध आचार-व्यवहार। दूसरे शब्दों में—"कोई भी ऐसा कर्म न करना जो कि हमारे सूक्ष्म शरीर के चेतन मन या आत्मा के निर्देश के विपरीत हो। **—राजीव कुमार कर्महे,** रायगढ़ (म. प्र.)

नैतिकता एवं नीति एक स्थिति के दो पहलू हैं। नीति सैद्धांतिक पहलू की तरफ तथा नैतिकता व्यावहारिक पहलू की तरफ संबोधित करती है। वस्तुतः नैतिकता आदर्श का अनुगमन करती है। **—कृष्णमुरारी तुलस्यान,** गोरखपुर (उ. प्र.)

नीतियों से नैतिकता का बोध होता है, नैतिकता एक ऐसा भाव है जो मनुष्य के आचरण में देखा जा सकता है तथा ऐसे आचरणों से 'निजत्व' की रक्षा करते हुए 'लोक-कल्याण' की कामना की जाती है। **—शिवकुमार तुलस्यान,** बशीपुर

"नैतिकता का आधार स्तंभ—मानवता 'परोपकार, ईमानदारी, प्रेम, अहिंसा, त्याग, सहयोग, संयम, दया और दृढ़ता' है।"

—कमलेश अग्रवाल, दिल्ली

नैतिकता का अर्थ सर्वत्र एक-सा व्यवहार करना है।

—रघुनाथ महापात्र, ब्रह्मपुर

वस्तुतः नीतिबद्ध कल्याणकारी आचरण ही नैतिकता है।

—मनोरमा, पिछोली

विचार-दीर्घा-३

'क्या बहसों से मसले तय होते हैं?'
अपने विचार तीन सौ शब्दों में लिखकर भेजिए।
पुरस्कार: पचास पये:
अंतिम तिथि—५ फरवरी, १९८०
संपादक—कादम्बिनी
विचार—दीर्घा—३
हिंदुस्तान टाइम्स लि. १८-२०
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली-१

चुटकियां

शिक्षक : बच्चों, बता सकते हो कि आदम ने सेव को दांत से क्यों काटा ?

एक छात्र : क्योंकि उसके पास चाकू नहीं था ।

*

धूप सख्त थी और मैदान में खेल रहे दोनों बल्लेबाज तीस मिनट में केवल दो रन बना पाये थे । सहसा एक पटाखा छूटा और बल्लेबाजों को लक्ष्य कर एक दर्शक चिल्लाया, "चलो, तुम्हें मुक्ति मिली । खाली बैठे स्कोरर (रन संख्या लिखने-वाले) ने हारकर स्वयं को गोली मार ली है ।"

*

धनी व्यक्ति जीवन के एक बहुत बड़े आनंद से वंचित रहते हैं, और वह है खरीदी गयी किसी वस्तु की आखिरी किश्त चुकाने का आनंद ।

*

एक बिजलीवाले ने दूसरे बिजलीवाले से कहा, "इस तार को जरा छूकर देखना ?" दूसरे बिजलीवाले ने तार छूते हुए पूछा, "अब !"

"ठीक है । अब दूसरा तार न छूना । वह तीन हजार वोल्टेजवाला तार है ।"

*

"उसका सिर दरवाजे पर लगी मुठिया के समान है ।"

"कैसे ?"

"उसे कोई भी लड़की घुमा सकती है ।"

*

डॉक्टर : यदि ऑपरेशन जरूरी हुआ, तो क्या तुम्हारे पास उसकी फीस देने लायक रकम है ?

मरीज : डॉक्टर साहब, आपकी बात को ही जरा दूसरे ढंग से कहूं । यदि मेरे पास फीस देने लायक रकम नहीं हुई, तब भी क्या आप ऑपरेशन जरूरी समझेंगे ?

*







(१०)

बात पूरब के ज्ञानी की

उन दिनों खोजा फकीर के किस्सों की सारे तेहरान में धूम थी। यहां तक कि बड़े-बड़े अमीर और विद्वान उसके पास आते और उसके किस्से सुनकर दंग रह जाते।

एक दिन फकीर के यहां रोजाना हाजिरी देनेवाले एक विद्वान ने उससे पूछा, "फकीर, किस्मत का खेल देखिए। आप ज्ञान के भंडार हैं। हम सारा काम छोड़कर आपके पास आते हैं, और रोजाना कोई न कोई बात आपसे सीखकर जाते हैं। दूसरी ओर, आपके पास इकट्ठे भिखारियों को आपकी ज्ञान की बातों से कोई मतलब नहीं। वे तो आपके पास भी नहीं फटकते। हम लोगों की दी हुई भीख पाकर ही खुद को धन्य समझते हैं।" खोजा फकीर हंस पड़ा। बोला, "तुम्हें एक किस्सा सुनाऊं। पूरब के एक बहुत बड़े महात्मा से भी उनके एक शिष्य ने यही प्रश्न किया था।"

"उनके एक शिष्य ने एक भिखारी को ज्ञान देने की कोशिश की, तो वह मुंह बिदकाकर चला गया। तब शिष्य ने महात्मा से उसकी शिकायत करते हुए कहा कि आप-जैसे ज्ञानी के पास रहकर भी भीख मांग रहा है।'

तब महात्मा ने मुसकराकर शिष्य से कहा, 'इस समय उसे तुम्हारे ज्ञान की नहीं, रोटी की जरूरत है। जब उसका पेट भरा रहेगा, तभी ज्ञान भी उसे रुचेगा।'" खोजा फकीर के इस किस्से में उस विद्वान ने अपने प्रश्न का उत्तर पा लिया।

हा! हा!!

स्त्रिय को गुणा, भाग और जोड़ से कुछ ज्यादा भार होता है। वे अपनी उम्र में सदा दो से भाग देती हैं, और वस्त्रों की कीमत में दो से गुणा करती हैं।

*

प्रथम महिला: वह गाना गाते समय अपनी आंखें क्यों बंद कर लेती है?
दूसरी महिला: वह बड़ी दयालु है। किसी को दुखी नहीं देख सकती है।

पादरी ने नन्हीं लूसी से पूछा, "तुम हर रविवार को चर्च जाती हो?" "जी हां।"
"बाइबिल देखती हो?"
"जी हां।"
"तो बताओ, बाइबिल में क्या है?"
"बाइबिल में दीदी ने अपने मंगेतर की फोटो रखी है। डैडी की टिकट भी उसी में है।"

गुजराती कहानी



• रजनीकुमार पंडया

क्या होता होगा अंदर ?

वह अपनी गोल-गोल आंखों से श्वेत बंद दरवाजों की ओर ताकती रही। सफेद दीवारें, सफेद खिड़कियां और सफेद लिबास में सजी नर्सें और डॉक्टरों के मध्य क्या होता होगा अंदर ?

मुझे याद करते होंगे ? शायद ! साड़ी के पल्लों को घुमाती हुई गीता सोच में डूब गयी। शायद, शायद क्यों ? जरूर याद करते होंगे। आदत के अनुसार आगे सरक आयी जुलफों को उंगलियों से बार-बार पीछे सरका देते होंगे। किंतु अभी तक तो शायद उन्हें बेहोश कर दिया होगा। सुना है क्लोरोफार्म से मरीज का दिमाग झकझोर दिया जाता है और वह तुरंत ही बेहोश हो जाता है। उन्हें भी ऐसा ही हुआ होगा। वैसे भी, वे पहले से ही कुछ ढीले-ढाले तो हैं ही, साधारण।

बेंच पर किसी के बैठने से कुछ झटका-सा लगा। कुछ नाराजगी-से उसने बैठने-वाली की ओर देखा। बिलकुल गंवारन लगती थी। उंगली थामे एक तीन-चार वर्ष का नंगा-सा लड़का था, बिलकुल गंदा-गंदा। गीता ने गरमी महसूस की। पल्लों से मुंह पर हवा करने लगी। मुंह पर पसीना छा गया था। चैन नहीं आ रही थी, आंखों में जलन-सी हो रही थी। शायद रातभर जागने की वजह से होगा। दीवार की चमकती हुई सफेदी में आंखें चुंधिया रही थीं। पलकें बंद करके उसने अपने हाथों को मसलकर गरमी उत्पन्न की और उन्हें अपनी आंखों पर रख दिया। अचानक ही पेट में बच्चे ने करवट बदली। पांव को थोड़ा ज्यादा फैलाकर वह स्लीपर की पट्टियों पर अंगूठा घुमाने लगी। उसे लगा वह ज्यादा बीमार है व उसे आराम की आवश्यकता है।

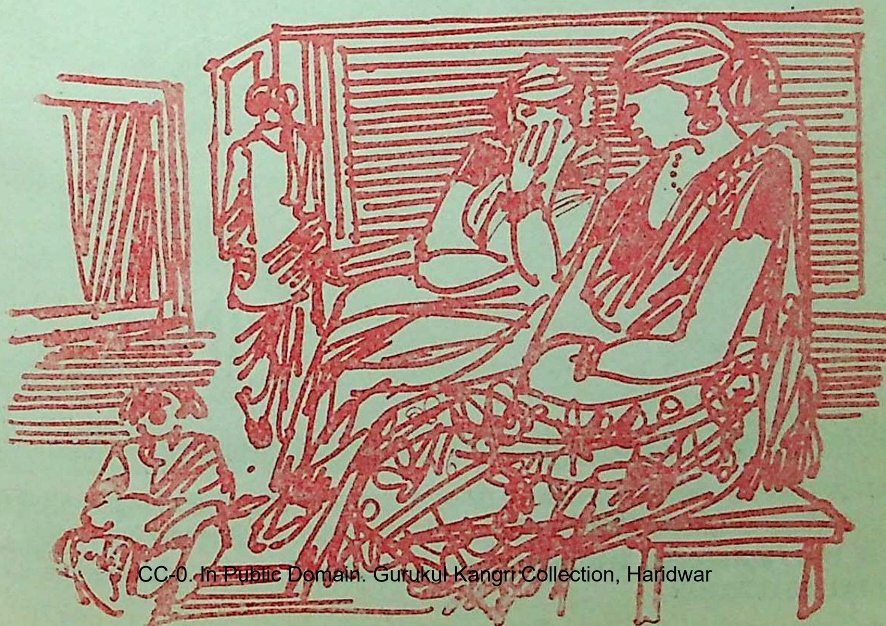
समय शायद थम गया था। उसे

बैचेनी-सी होने लगी । उसे लगा, जैसे अशांत शांति ने घेर लिया हो । पास से चैन से गुजरते अस्पताल के लोगों के प्रति वह चिढ़ से देखने लगी । कैसे हैं ये लोग ? उन्हें तो जैसे कुछ पड़ी ही नहीं । एक ऐंग्लो इंडियन नर्स किसी के साथ हंसते हुए समीप से गुजर गयी और ऑप-रेशन थियेटर का द्वार खोलकर अंदर प्रविष्ट हो गयी । आधे क्षण के लिए खुले उस द्वार के अंदर अपनी दृष्टि से भरसक देखने की गीता ने चेष्टा की । दो-तीन डॉक्टर और कंपाउंडर घिरे हुए खड़े से लगे ... और ... दरवाजा बंद भी हो गया । उसे लगा, अचानक ही हाथों से कुछ छिन-सा गया । कमाल हैं ये लोग । वह सोचने लगी । अपना ही कोई आदमी अंदर हो और खुद बाहर तपस्या करते रहना । न जाने कब छुटकारा मिलेगा । इन डॉक्टरों के पेट का तो पानी भी नहीं हिलता, किंतु हम यहां पर ... ।

"अभी हमारा टर्न है, अभी ..." उसने चौंककर ऊपर देखा । नानुभाई पास आकर खड़े थे और 'व्लिट्स' को घुमाते हुए कह रहे थे—"एक ही साथ दो ऑपरेशन चल रहे हैं अंदर ।"

"हां", उसने अपना सिर एक ओर नमा दिया । मरीज-से नानुभाई अभी भी कुछ बोल रहे थे । टूटे हुए कुछ शब्द कानों से टकरा रहे थे, 'ऑपरेशन सीरयस नहीं है । डॉक्टरों को तो बात बढ़ाकर कहने की आदत होती है । कुछ नहीं होगा ...'

नानुभाई लॉबी में टहलने लगे । आहिस्ते-आहिस्ते इंतजार करने में उसे कुछ थकान-सी होने लगी । पहियोंवाली एक कुरसी पर बिठाये, अस्थिपंजर से एक आदमी को लेकर सफेद लिबास में



सजे काला-काला-सा एक हमाल वहां से गुजरा। सिर से पांव तक ओढ़े हुए, किसी आदमी को लेकर एंबुलेंस से दो आदमी निकले और स्ट्रेचर पर लिटाकर कंपाउंड में आये और वहां से गुजरे। लॉबी का फलोरिंग घिसा हुआ था और स्ट्रेचर के पहिए आवाज कर रहे थे। स्ट्रेचर के हिलने से सोये हुए आदमी का सिर चादर के नीचे से इधर-उधर हिल रहा था— मुर्दा-सा।

"हिम्मत रखना, हां," नानुभाई फिर बोल रहे थे और 'ब्लिट्स' को गोल-गोल घुमा रहे थे, "आप औरतें तो . . ."

दूर जाते हुए स्ट्रेचर को देखते हुए वह बोली, "मैं . . . मैं . . . घबराती नहीं।"

फिर धीरे-धीरे वह निष्क्रिय-सी बन गयी। कोई भी हलचल किये बिना वह मूर्ति-सी बैठी रही। कहीं विचारों में खो गयी। स्थिर आंखों से वह ऑपरेशन थियेटर के द्वार को ताकती रही। अभी शायद ऑपरेशन शुरू हो चुका होगा। डॉक्टर और नर्सों ने घेर लिया होगा। वे बीच में सोये पड़े होंगे। वे भी कैसे हैं? कितनी बार कहा था कि स्कूटर फास्ट मत चलाइए। फिर भी मानते नहीं थे। उल्टा मुझे ही कहते थे कि तुम डरपोक हो— डरपोक! बार-बार चिढ़ाया करते थे। मैं तो कहती थी कि भले ही मैं डरपोक हूं—किंतु आपके पांव पकड़कर कहती हूं कि स्पीड का ध्यान रखा करिए। किंतु मेरी कुछ सुनते ही नहीं। अभी उस दिन ही सुबह को कहा था कि ब्रेक बराबर काम नहीं करती हैं तो बस में चले जाइए, नहीं माने। बिलकुल नहीं माने। और ट्रक के साथ स्कूटर टकराया और उनका बंफर के साथ सिर टकराया, देखनेवाले कहते हैं कि लहू तो धार-धार बहने लगा था . . . इतना-सा . . .

"इतना-सा गढ़ा भर गया था बहन" ग्रामीण औरत को सामने देखकर वह कहने लगी। "शीशे की कितनी ही परतें उनके सिर में घुस गयीं . . ."

"हाय राम फिर?" उसे कंपकंपी छूटती हो वैसे ही भाव अपने चेहरे पर लाते हुए, उसने अपने नीचे खेलते हुए नन्हें बच्चे को गोद में उठा लिया। "तुम्हारे तो होश-हवास ही गुम हो गये होंगे, यह सुनकर, नहीं बहन?"

जैसे निगाहों ही निगाहों में देखा हो, गीता सोचने लगी। बहुत पीड़ा महसूस हो रही थी, यह सब याद करते। वह सुनते ही बावरी-सी बन गयी थी, पागल न बनो,= यही ताज्जुब की बात है। नानुभाई को फोन करके अगर बुलाया न होता, तो अकेली से कुछ नहीं हो पाता। जिंदगी में इस प्रकार अस्पताल देखा ही किसने था। भगवान बचाये, लोगों को भी कैसे-कैसे रोग होते हैं। उसे सोचते ही कंपन-सी होने लगी। इस गंवारन के पति को ही लो—पेट का कोई भयंकर रोग है। कहते हैं कि यह ऑपरेशन तो जिंदगी और

मौत का सवाल होता है। मरीज खूब भोगता है, इस दर्द को। खर्च भी बहुत होता है और यह लोग तो बिलकुल कंगाल से हैं। छह महीने से इस अस्पताल में रहते हैं—जमीन, गहने सब कुछ बेच-बाचकर और ऊपर से कर्ज उठाकर...।

वह उसके सामने ही देखने लगी। बिलकुल निश्चल भाव से। जैसे कोई आजीवन कैदी वहां हो, वैसे वह बैठी हुई थी। लड़का उसके लाल-लाल कंगनों से खेल रहा था। बहुत गंदा-सा लग रहा था। शायद इस औरत ने भी कई दिनों से स्नान तक नहीं किया होगा, ऐसा लगता था। गीता धीरे से उसकी ओर सरक गयी और कहा, "तुम्हारे और कोई सगे-संबंधी नहीं हैं, क्या ?"

ग्रामीण औरत ने अपनी सिकुड़ी हुई आंखों को घुमाकर उसकी ओर देखा और बोली, "सगे तो बहुत हैं बहन, मगर हम जैसे कमजोर के साथ कौन रहता है ? घर-बार, गहने-वहने, सब कुछ बिक गया है, बहन—एक वर्ष में। रोज-रोज का कमाकर खाते थे। उसमें ऊपर से यह कठिनाई लिखी थी, नसीब में।" बोलते-बोलते उसकी आंखें गीली हो गयीं।

गीता को दया आने लगी। यहां एक नानुभाई हैं, उनसे हृदय को कितनी तसल्ली मिलती है। इन लोगों को तो सहारा देनेवाला कोई नहीं। हर रोज का कमाया खानेवाले छह-छह महीने से लहू-पानी एक कर रहे हैं। ऑपरेशन जिंदगी व मौत का प्रश्न है। चार तो बच्चे हैं, अगर यह ऑपरेशन निष्फल रहा तो ? ...उसके शरीर से एक कंपन फिर गुजर गया। उसने ग्रामीणा की ओर देखा। वह बच्चे की पीठ को सहलाती हुई ऑपरेशन थियेटर की ओर देख रही थी। उसकी पुरानी धोती का रंग भी उड़ गया था। चेहरे पर एक प्रकार की कठोरता की तह चढ़ गयी हो, ऐसा लगता था। गीता के मन में कुछ अस्पष्ट भाव उभरने लगे। उसे लगा कम से कम उसे आश्वासन तो देना ही चाहिए।

वह नानुभाई के शब्द याद करने लगी और कहा, "कहते हैं कि डॉक्टर होशियार हैं, यशरेखावाले हैं, इससे भी कठिन ऑपरेशन"...

ग्रामीण के चेहरे पर एक चमक छा गयी। वह बोली, "मैंने भी यह सुना है। हां, बहन कहते हैं कि इस डॉक्टर के ऊपर किसी देवता का हाथ है। मैं तो इन छह महीनों से देख रही हूं, बहुत से लोग इस डॉक्टर को आशीष देते हुए जाते हैं।"

गीता को लगा, वह और कुछ बोले तो अच्छा होगा। किंतु वह चुप रही और अपनी सिकुड़ी हुई आंखों से ऑपरेशन-थियेटर के द्वार के समीप बैठे हुए लोगों को देखने लगी। निमिष भर बाद, निःश्वास डालती हो वैसे उसने कहा, "भगवान-जैसा मालिक बैठा है बहन, वह हमारी लाज रखे तो बस, मैंने अपने गांव के सतवारा

देव की मनौती मान ली है, चंगे-भले घर पहुंचे तो सवा पया और एक चूंदड़ी..।"

"वैसे तो वे मानता-बानता में विश्वास नहीं रखते", वह ग्रामीणा की ओर देखकर बोली, "किंतु, मैंने तो उनसे छिपाकर हमारे कुलदेव को थाल और सोने की बाली मान ली है।"

कुछ क्षण वैसे ही भारी-भारी-से बीत गये। लॉबी में आधे तक धूप घिर आयी थी, कंपाउंड में एंबुलेंस का ड्राइवर बैंच पर बैठा बीड़ी फूंक रहा था। गीता के पेट में कुछ स्पंदन हुआ। उसने शरीर को ढीला छोड़ दिया और विचारों में खो गयी। कैसे हैं ये लोग! कुछ मालूम भी नहीं होने देते कि अंदर क्या हो रहा है। उनकी पट्टी तो कभी से हो गयी होगी। इस गंवारन का पति—उसने ग्रामीण की ओर देखा—वह कराहता हुआ पड़ा होगा, बेचारा, शायद आठ-दस वर्ष पहले ही इन्होंने शादी की होगी। हमारी तरह ही। उस समय तो रोग का कोई चिह्न भी नहीं होगा। फिर एक दिन अचानक ही मालूम पड़ा होगा, जैसे मुझे उनके एक्सीडेंट का पता लगा, मैं कपड़े सुखाती-सुखाती बाहर भाग आयी, वैसे ही उस वक्त यह ऐसी नहीं होगी—गुलाबी व स्वस्थ होगी, अभी तो बिलकुल टूटी हुई दिखायी देती है। बेचारी बोल रही थी कि अभी तो वे ठीक हो जाएं तो गांव में कंकर तोड़ने की बजाय शहर में कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लेने का विचार है।

"तुम" उसने ग्रामीणा को आकृष्ट करते हुए कहा, "कह रही थी न कि तुम दोनों को शहर में नौकरी करनी है?"

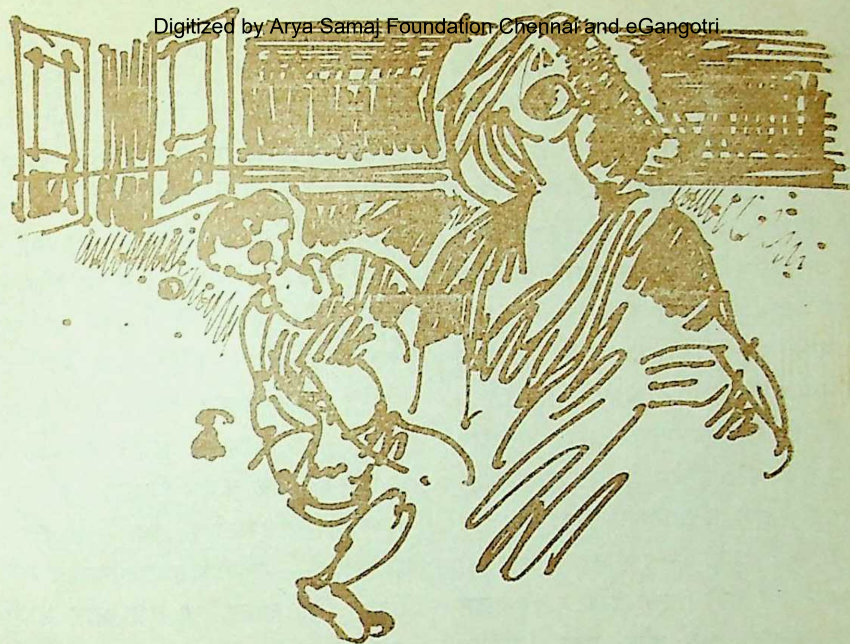
"एक बार वे सकुशल घर आ जाएं, फिर गांव में रहना ही किसे है, बहन।"

"तुम मेरे यहां आना, मैं तुम्हें अपना पता दूंगी," वह विवेकयुक्त मुंह बनाकर बोली। "मुझे तुम्हारे लिए बहुत हमदर्दी है। तुम जरूर आना, मेरे उनकी बहुत पहचान है। जरूर किसी कारखाने-वारखाने में रखा देंगे। तुम दोनों जरूर आना"। बोलने के बाद उसके चेहरे पर संतोष-सा छा गया। उसे लगा कि दुनिया में इंसानियत-जैसी कोई चीज भी है। गरीब लोगों की सहायता करने के लिए हमेशा उद्यत रहना चाहिए। दया करनेवाले के ऊपर ईश्वर भी हमेशा दया करता है। सुधीर जरूर बच जाएगा, जरूर बच जाएगा।

"तुम मेरे-जैसी दुखिया हो, इसीलिए हमारा दुःख समझ सकती हो, बहन।" वह गंवारन बोली। "तभी तुम्हारे दिल में इतनी दया भरी हुई है। नहीं तो इस जमाने में कौन किसको पूछता है?"

उसने गंभीर मुद्रा में स्लीपर की पीली पट्टी पांव के अंगूठे में मजबूती से पहन ली और हाथ से थर्मस की प्लास्टिक को खोलने लगी।

थोड़ी देर बाद फिर नानुभाई समीप



आये और कहा, "ऑपरेशन कब का शुरू हो चुका है। एक ही साथ दो टेबुलों पर ऑपरेशन चल रहा है।" लगता था, बोलते समय जैसे वह कुछ घबरा-से रहे थे, पलभर बाद उन्होंने फिर कहा, "स्ट्रेचर बाहर आये, तब घबरा मत जाना, हां।"

ग्रामीण औरत उसके सामने देखने लगी और कहा—"तब भाई, हमको जल्दी मालूम तो हो जाएगा न कि हमारे आदमी का ऑपरेशन कैसा हुआ?"

नानुभाई ने सिर हिलाकर हां कहा और फिर कुछ दूर रखी दूसरी बैंच पर जमकर बेठ गये। नानुभाई के ही शब्दों को जैसे दोहरा रही हो, गीता ने ग्रामीण की ओर मुड़कर कहा, "घबराना नहीं, समझी न? हम सभी तुम्हारे साथ हैं। देखा न, मैं भी तुम्हारी तरह कब से बैठी हूं न?"

अचानक कहीं स किसी के हंसने की ध्वनि सुनायी दी। गीता और ग्रामीण औरत दोनों ने कुछ खफा हो उस ओर देखा। एंबुलेंस का मोटा-सा ड्राइवर एक चपरासी के साथ बीड़ी फूंकते हुए हंस रहा था। गीता के मन में एकदम नफरत-सी उभर आयी—"है कुछ सेंस इन लोगों को?" फिर बोली, "बिलकुल इंसानियत नहीं है, इन लोगों में।"

ग्रामीण औरत का लड़का जोर-जोर से रोने लगा।

अचानक ऑपरेशन थियेटर का दर-वाजा खुला और दो चपरासी वाहर आये। ग्रामीणा सिर ऊंचा करके देखने

लगी, गीता एकदम सीधी होकर बैठ गयी। अभी ही, अभी ही, स्ट्रेचर बाहर आएगा, गीता के दिमाग में एकदम कई विचार आने लगे––स्ट्रेचर बाहर आएगा, डॉक्टर भी बाहर निकलेगा और जिंदगी-मौत का नाजुक फैसला आ जाएगा। वह कांप उठी––ग्रामीण औरत की ओर देखा और सरककर उसका हाथ थाम लिया, गला सूख-सा गया, बोली––"अभी जल्दी ही. . ."

उसी क्षण एक स्ट्रेचर बाहर निकला। पीछे से दो डॉक्टर जेब में हाथ डाले बाहर निकले। द्वार के आसपास बैठे लोग डर से इधर-उधर हो गये। गीता के दिल की धड़कन बढ़ गयी। एक डॉक्टर दो कदम आगे बढ़कर आये और कहा, "गोविंद केशव . . ."

फिजा कांप-सी उठी। अचानक ग्रामीण औरत आगे बढ़ आयी, उसके पांव की उंगलियां एकदम अकड़-सी गयी थीं। पांव के समीप उसका गंदा लड़का उसकी धोती पकड़े खड़ा था। वह कुछ बोलने को हुई, उसके होंठ खुले, किंतु कुछ बोल न सकी।

डॉक्टर कुछ आगे बढ़ आये। पास आकर सिर नीचे करके कहा, "अफसोस है, केस खराब हो गया है। आपको लाश सौंप दी जाएगी।"

पलभर के लिए भयंकर शांति छा गयी। परदे पर चलता चित्र जैसे थम-सा गया। दूसरे ही क्षण ग्रामीण औरत चीख उठी, वह गठरी-सी बनकर बैठ गयी और लॉबी के फर्श पर जोर-जोर से अपना सिर टकराने लगी। उसके रुदन की प्रतिध्वनि अस्पताल की दीवारों से टकराने लगी। दो चपरासी उसे उठाने का यत्न करने लगे। गीता को लगा, वह भी रो पड़ेगी। वह उसके पास जाने को सोच ही रही थी कि ऑपरेशन थियेटर का द्वार फिर खुला और दो चपरासी और एक डॉक्टर बाहर निकल आये। पीछे से एक स्ट्रेचर बाहर आयी। सुधीर सोया हुआ था। कमर तक कंबल लिपटा हुआ था। डॉक्टर ने नानुभाई को इशारे से बुलाया और कहा––"क्वाइट ए सक्सेसफुल ऑपरेशन, मि. व्यास," वे हंसे और उन्होंने हाथ मिलाया।

गीता बिजली-सी स्ट्रेचर के पास पहुंच गयी और सुधीर के कंधे को उंगलियों से सहलाने लगी। उसने धीमा-सा स्मित किया और बिलकुल जैसे कान में बोल रहा हो वैसी धीमी आवाज में कहा––"वंडरफुल गीतु, बहुत जल्द ही पूरा हुआ, बेहोश करने की जरूरत भी नहीं पड़ी।"

गीता ने होंठ दबा लिये, उसकी आंखों में आंसू तैर आये, और फिर वह एकदम बोलने लगी––"आप . . . आपने . . . देखा न? मैं कहती थी न? कहती थी न कि आपको कुछ होने का नहीं, आप . . ."

स्ट्रेचर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था और वह बोल रही थी, "मुझे तो तसल्ली थी कि, मैंने तो आपको. . . .आप चिढ़े



नहीं तो कहूं. . . . मैंने तो मनौती भी मान ली थी. . . .हां. . . .मैं कैसी हूं. . . नहीं ?" . . .तैर आये आंसुओं को पोंछती हुई वह हंसने लगी। पल भर में गीता की आंखों में अपना सुखद अतीत घूम गया। जाने क्यों, अस्पताल में भी विवाह पूर्व के वे दिन याद आ गये, जब सुधीर के आकर्षक-व्यक्तित्व को लेकर उसकी सहेलियां उसे छेड़ा करती थीं। तब वे कभी किसी बाग में बैठे घंटों बातें किया करते, भविष्य के सपने बुना करते। पर सुधीर की बीमारी ने उसके आकर्षक व्यक्तित्व की जैसे सारी कांति छीन ली थी। वह कुछ कहने को हुई, तभी स्ट्रैचर ले जा रहे चपरासी ने कहा, "बोलिए नहीं, बहन . . . भाई को आराम करने दीजिए. . .मरीज को बातें मत कराइए . . ."

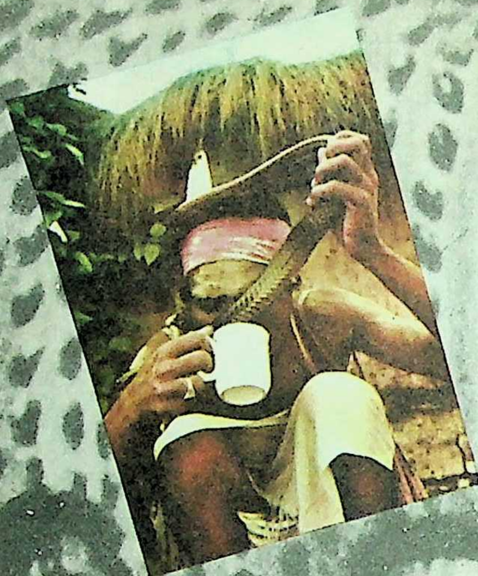
"नहीं. . . नहीं . . ." मिन्नत करती हो बैसे चपरासी की ओर देखकर उसने कहा —"वैसे तो मैं समझती हूं. . .हां. . .यह तो जरा . . ."

अचानक सुधीर ने धीरे-से पूछा— "यह इतना कौन रो रहा है. . .किसके रोने की आवाज. . .गीतु, क्या कोई. . ."

"कोई भी हो"—उसने तुरंत रुककर सुधीर के मुंह पर हाथ रख दिया, "होगा कोई, आप क्यों चिंता कर रहे हैं, आप जल्दी ही चलने-फिरने लायक हो जाएं बस, तो घर चलें।"

फिर नानुभाई की ओर देखकर उसने नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा—"ये लोग भी कुछ समझते ही नहीं. . .अस्पताल में इतना शोर मचा देते हैं. . . .!!"

अनुवादक : जयन्त रेलवाणी



मणिधारी सर्प : अनेक किंवदंतियों और कथाओं का नायक— जिसकी चर्चा मात्र तन-मन रोमांचित कर देती है

छाया : अजीत कुमार

मणिधारी सर्प का रहस्य

• रामेश बेदी

बचपन से सुनता आया हूं कि किसी-किसी फनियर सांप के सिर में मणि होती है। मणिवाला सांप बड़ा सुंदर, ऐश्वर्यवान और भयंकर क्रोधी होता है। किसी को मणि मिल जाए, तो उसके भाग जाग जाते हैं, वह राजा बन जाता है ।

भारत के प्राचीन वांङ्मय में सांप की मणि का जिक्र है। भारत का भ्रमण करनेवाले पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंगरेज लेखकों की कृतियों में सर्प-मणि का, और सांप के मस्तिष्क में पाये जाने का उल्लेख है। सदियों से इस अनमोल, दुर्लभ मणि के बारे में हम जो कुछ सुनते चले आ रहे हैं, वह अत्यंत अद्भुत तथा विस्मय-जनक है। आज भी यह रहस्य की चीज बनी हुई है। कुछ साक्षियों के आधार पर मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूं कि यह क्या है, अथवा क्या हो सकती है; और इसमें क्या विशिष्ट बात है या हो सकती है।

मेढक के मुख में

भारत में, प्रायः सभी जगह गांववालों का विश्वास है कि जब कोई मेढक असाधारण रूप से दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है, तब आयु के साथ-साथ उसका आकार भी बढ़ता जाता है। खरगोश के आकार तक पहुंचने में, वह नीचे उड़ते हुए पक्षियों को भी उछलकर पकड़ लेता है, और निगल जाता है। ऐसे मेढक के मुख से मणि पैदा हो जाती है, यह सर्पदंश की चिकित्सा के लिए अमोघ औषध है।

गरुड़ों के गले में

बी. वौल (१८८०) ने भारतीय जंगल-जीवन का ('जंगल लाइफ इन इंडिया', पृष्ठ ८२) अध्ययन करते हुए सुना था कि बूढ़े गरुड़ पक्षियों के गले की थैली में कभी-कभी सांप का विष-दंत मिल जाता है। सांप के डसे हुए स्थान के ऊपर इसे घिसकर लगा दिया जाए, तो यह विष को शरीर में फैलने से रोक देता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि गरुड़ के सिर में सर्प-मणि होती है। इसे अगर सर्प-दंश पर लगा दिया जाए, तो यह छिद्रों पर चिपककर सारे विष को चूस लेती है।

मुरारि (सातवीं शती) ने 'अनर्घ-राघव' के सातवें अंक में बताया है कि विजय प्राप्त करके लौटते हुए श्रीराम ने सीता को वह जगह दिखायी थी, जहां सांपों ने उन दोनों को कुंडलियों में जकड़ लिया था। तब गरुड़ ने उन मोटे सांपों को

छाया : अजीत कुमार

खाकर उनकी रक्षा की थी । सांपों को खाते हुए, गरुड़ के मुख में सर्प-मणियां भी आ जाती थीं; उन्हें वह अलग फेंकता था, तब ठन-जैसी आवाज उठती थी ।

खतरनाक काम

प्रचलित विश्वास है कि मणि को सांप अपने सिर में छिपाकर रखता है । अंधेरी रातों में कभी-कभी वह उसे एकांत स्थान में घास पर उगल देता है । उसके उजले प्रकाश में कीड़े-पतंगे वैसे ही इकट्ठे हो जाते हैं, जैसे कि दीपक के चारों ओर । सांप उन्हें खाकर अपना पेट भरता है । उस समय यदि कोई व्यक्ति, उधर से गुजर जाए, तो वह मणि को तो झट मुंह में डाल लेता है, पर सुख-भंग करनेवाले को बुरी तरह काटता है । मणिवाला सांप बहुत भयंकर जीव समझा जाता है । संस्कृत में एक सुभाषित है :

मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः

मणि प्राप्त करने की तरकीव यह बतायी जाती है कि सांप की आंख बचाकर मणि पर गोबर या गारा डाल देना चाहिए, और सुबह सांप के भाग जाने पर गोबर हटाकर मणि उठा लेनी चाहिए । मणि को रात्रि में उठाकर भागना खतरनाक है, क्योंकि उस समय सांप पीछा करके मार सकता है ।

चरवाहे की चातुरी

कहते हैं कि एक चरवाहे ने एक बार सांप को मणि के प्रकाश में देखा । अपनी जान को जोखिम में डालकर भी उसने मणि को हस्तगत करने का संकल्प कियां ।

भैंस की पीठ पर सवार होकर वह उस जगह पहुंचा । घास पर पड़ी ओस चाटने और कीड़े-पतंगों को खाने का आनंद लेते हुए सांप मणि से कुछ दूर निकल गया था । चरवाहे ने लोहे का ऐसा तसला साथ लिया था, जिसके बाहर के पृष्ठ पर पैनी कीलें जड़ी हुई थीं । अवसर का लाभ उठाकर उसने मणि के ऊपर उलटा तसला रख दिया । जान बचाने के लिए वह भैंस के ऊपर सवार होकर भाग निकला ।

सांप मणि के पास जब लौटा, तब गुस्से में बार-बार तसले पर फन मारने लगा । पैनी कीलों से घायल होकर उसके प्राण वहीं निकल गये । अगले दिन सूरज निकलने पर चरवाहा मणि को उठा लाया

धरती जल गयी थी

मणि प्रकाश का स्रोत है, इस लोकविश्वास का स्रोत मुझे मुरारि (सातवीं सती) के 'अनर्घराघव' में मिला । वे लिखते हैं कि विषधर के फण की मणि, सांप के लिए तो अंधकार दूर करने का साधन है, पर औरों को तो भयभीत ही करती है । स्कंद-पुराण में मणियों के प्रकाश को ऐसी तीव्र ज्वाला बताया है कि यदि एक साथ बहुत-सी मणियां रख दी जाएं, तो वे जला भी डालती हैं । श्री राम ने जब लक्ष्मण को छोड़ दिया था, तब वे सरयू-तट पर तप करने लगे थे ।

सहस्र-फणों से सुशोभित शेषनाग

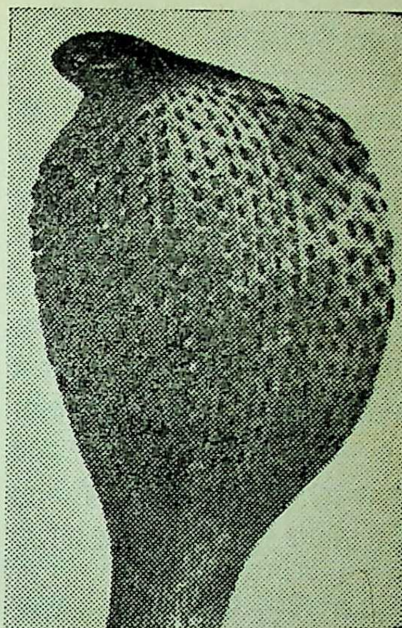
वहां प्रकट हुए। उनके फणों की सहस्र मणियों से वहां की धरती जल गयी थी।

विषों से चिकित्सा

महर्षि चरक के समय, विष के प्रभाव से बचने के लिए सर्प-मणि गले में बांधी जाती थी। वाग्भट के समय में भी विष की शांति के लिए इसे धारण करने का रिवाज था। मूल्यवान रत्नों की तरह राज-प्रासादों में चौथी शताब्दी में सर्प-मणि की प्रतिष्ठा थी। 'मालविकाग्निमित्र' में विदूषक ने विषवैद्य के द्वारा, रानी से वह अंगूठी प्राप्त की थी, जिस पर सांप की मणि जड़ी हुई थी। कालिदास के समय में (चौथी शती) सर्पदंश के उपचार में रोगी पर पानी के छींटे मारे जाते थे, और पानी के घड़े उड़ेले जाते थे; फिर मणि का प्रयोग किया जाता था।

फनियर का आभूषण

१२वीं ई.पू. में वेदांग-ज्योतिष के प्रणेता ने गणित की मूर्धन्यता बताते हुए कहा था, "मोर के मस्तिष्क पर कलगी, नागों के फन पर मणि के समान है। इसी प्रकार वेदांग-ज्योतिष में गणित का सर्वोपरि स्थान है।" काव्य-ग्रंथों में अनेक स्थलों पर सर्प-मणि को आभूषण समझा गया है। मुरारि ने समुद्र की तुलना उस सांप से की है, जिसका फन धरती है, और उस पर श्री राम बहुमूल्य सर्प-मणि के समान शोभायमान हैं। कालिदास ने सर्प-मणि को ऐसे रत्न के रूप में देखा है, जो सांप



सर्प--जिसके फन पर मणियों की धारियां हैं

को भयावह सौंदर्य प्रदान करता है।

सर्प-मणि में विशेष चमक होने का हमें अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। सरोजनी नायडू ने गुलमोहर के फूलों के उज्जवल रंगों की तुलना, उस रहस्यमयी मणि से की है, जो नागराज के फण पर चमकती है। रामेश्वरम के पास समुद्र की बड़ी लहरों में से किनारे पर हवा खाने के लिए आते हुए सांपों को, श्री राम सीता को न दिखा पाते; यदि उनके फन की मणियां, सूर्य की किरणों के संपर्क से चमक न रही होतीं। कालिदास का यह वर्णन अस्वाभाविक हो गया है क्योंकि, फनवाले सांप समुद्र में नहीं रहते।

एक नया स्पष्टीकरण

संस्कृत में मणि शब्द से सामान्यतया ऐसे मूल्यवान पत्थरों का बोध होता है, जो चमकदार होते हैं, और आभूषणों के रूप में सौंदर्य-वृद्धि के लिए धारण किये जाते हैं। मणि शब्द के इस भाव से सांप की मणि पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। मणि की सत्ता प्रत्येक जाति के सांप में स्वीकार नहीं की जाती। केवल फनियर सांपों में ही इसके मिलने का विश्वास किया जाता है। कुछ फनियर सांपों में फन के ऊपर एक निशान होता है, जो कुछ सांपों में गौ के खुर-जैसा, कइयों में ऐनक-जैसा या अन्य आकृतियों का होता है। फनियर का रंग प्रायः काला होता है, पर इस निशान का रंग सफेद होता है। काली पृष्ठ-भूमि पर यह सफेद चिह्न इस जीव को अनोखा सौंदर्य प्रदान करता है। ऐसा दीखता है, जैसे कि चिकनी चमकदार खाल पर शृंगार करने के लिए मणि पहना दी गयी हो। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रात के धुंधले प्रकाश में, मणियों के ये निशान शरीर पर अधिक चमकते देखकर, सांप के सिर में मणि होने की बात बन गयी होगी, और इसके साथ विस्मयकारी कल्पनाएं जुड़ती गयी होंगी।

क्या सांप संगीत-

सांपों में केवल आंतरिक कर्ण ही थोड़ा-बहुत विकसित होता है। श्रवण-प्रक्रिया में सहायक अन्य अंग, 'काल्यूमेला आरिस' नामक संरचना अवश्य पूर्णतया स्पष्ट होती है, जो स्तनपायी प्राणियों के एक श्रवण अंग 'स्टैपिस' से बहुत मिलती-जुलती है। इस तरह सांपों के श्रवण-अंग अधिक सुधरे नहीं कहे जा सकते। अतः वैज्ञानिकों की आम राय यही है कि सांप सुन नहीं सकते। परंतु एक प्रश्न पुनः उठ खड़ा होता है, यदि सांप सुन नहीं सकते तो फिर बीन की आवाज पर मस्त होकर वे कैसे झूमते हैं?

पिछले वर्षों, प्रख्यात सर्प-शास्त्री डॉ. पी. जे. देवरस ने बंबई स्थित अपने कार्य-संस्थान, हाफकिन विश्वविद्यालय में सर्पों की सांगीतिक रुचियों की जांच-परख के लिए विभिन्न प्रयोग किये थे। वे भी अंततोगत्वा इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि सांपों में सुनने की क्षमता का नितांत अभाव होता है। सांप बीन की आवाज से वशीभूत होकर नहीं, बल्कि एक अन्य कारण से झूमते हैं। वास्तव में फनवाला सांप 'नाग' (कोबरा) अत्यंत चंचल प्रवृत्ति का होता है। 'बीन' के हिलने-डुलने की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही वह भी अपने फनवाले भाग (हुड) को इधर-उधर घुमाता रहता है।

सांप वायुमंडलीय आवाजों को सुन पाने में भले ही असमर्थ हों, उन्हें धरातलीय स्पंदनों को शीघ्रता से ग्रहण कर लेने और उसी के अनुरूप अपनी प्रतिक्रिया

बकरे की मणि

महाभारत के आदि पर्व में सांपों का विस्तार से वर्णन है । वहां सर्प-मणि का उल्लेख नहीं है । चौदहवीं शताब्दी के शार्ंगधर भी इसके बारे में कुछ नहीं बताते ।

हां, पशुओं की पहचानों में, वे एक प्रकरण में बकरे की मणि का जिक्र करते हैं । गले में लटकती हुई स्तन-जैसी रचना के आधार पर उन्होंने अच्छी और खराब बकरियों की परीक्षा लिखी है । गले में इस आभूषण को शार्ंगधर 'बकरियों की मणि' नाम देते हैं ।

एक मणिवाला बकरा शुभ फल देनेवाला होता है । शार्ंगधर के इस 'छागल मणि' के वर्णन को मैं अपने नये स्पष्टीकरण की पुष्टि के लिए प्रमाण मानता हूं । इस प्रमाण को खोजने के बाद, फन के ऊपरवाले चिह्न के ही सर्प-मणि होने में जरा भी संदेह नही रह जाता ।


सर्प के मुंह की आंतरिक रचना

—ई-२०-ए, एम. आई. जी. फलैट्स, मायापुरी, नयी दिल्ली

प्रेमी होते हैं ?

● अरविन्द मिश्र

को तत्काल प्रदर्शित कर लेने में दक्षता प्राप्त है । सांपों के निचले जबड़ों से होती हुई, ध्वनि-कंपनें आंतरिक कर्ण तक जा पहुंचती हैं, जिससे सांप उन्हें आसानी से सुन लेते हैं । यही कारण है कि सांप केवल वही ध्वनियां सुन पाते हैं, जो अपनी तीव्रता के कारण जमीन में कंपन उत्पन्न कर पाने की क्षमता रखती हैं ।

एक बार धरातल से अपना फन उठा लेने के बाद, सांप भूमिगत कंपनों के प्रति भी अपनी संवेदनशीलता खो बैठता है क्योंकि ध्वनि-कंपनों को ग्रहण कर लेनेवाले अंगों का संपर्क जमीन से भंग हो जाता है । ध्वनि-कंपनों को मस्तिष्क तक प्रेषित करने का कार्य, सर्पों में उनके जबड़ों द्वारा संपन्न होता है

वास्तव में सांप का मस्तिष्क ही इतना विकसित नहीं होता, जिससे वह संगीत का आनंद ले सके । परंतु सांपों की कुछ प्रजातियां तीव्र आवृत्तिवाली ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होती हैं, वह संगीत के प्रति उनकी अभिरुचि के कारण नहीं, उनके स्वभावगत डर के कारण है ।

--मेघदूत विला, बख्शा तेलीतारा, जौनपुर

इटली के पक्षी विशेषज्ञों की एक टोली ने तोतों के खाने के तरीकों का दो साल तक अध्ययन करके बताया है कि सौ में सत्तर तोते खब्बू होते हैं, वे अपना दाना दायें के बजाय बायें पंजे से उठाकर चुगते हैं ।

तनाव से मुक्ति



● डॉ. सतीश मलिक

आत्म-केंद्रित

सुधीर 'राज', इलाहाबाद : मैं २५ वर्षीय साढ़े पांच फुट का स्वस्थ युवक हूं। कानून का स्नातक हूं, साथ ही निजी औद्योगिक संस्थान में कार्यरत हूं। पिछले तीन वर्षों से अस्थिरता की स्थिति से गुजर रहा हूं। जीवन में प्रशासनिक अधिकारी बनने की इच्छा थी, जो पूरी न हो सकी ; कल्पना-लोक में विचरण करने की आदत-सी बन गयी है—मेरे मन में एक अजीब-सी शंका रहती है कि कहीं मुझे क्षितिज अपनी तरफ न खींच ले। कृपया इस विकट स्थिति से उभारने में मेरी मदद करें।

मनोविज्ञान की दृष्टि से आप अंतर्मुखी व्यक्ति हैं। कुछ लोग दुनियादारी में सफल होते हैं, कुछ उससे दूर भागते हैं। आप जैसे लोगों में भी बहुत सारे गुण होते हैं। यदि किसी कारणवश इन संवेदनाओं को प्रयोग में नहीं ला सके, तो स्थिति बिगड़ भी जाती है। आपकी लालसा बहुत कुशल व बड़ा इंजीनियर या बड़े प्रतिष्ठान का प्रशासक बनने की थी, जो कि पूर्ण सफल नहीं हो सकी। 'दिवा-स्वप्न' देखने की आदत ने आपको कल्पना की ऊंची-ऊंची उड़ानों में उलझा दिया है। आप सोचते केवल अपने बारे में हैं, इसे हम मनोविज्ञान की भाषा में 'नारसीज्म' या 'आत्म प्रेम' कहते हैं। वास्तव में जहां आप पहले से बहुत हद तक अंतर्मुखी संवेदनशील हैं, वहां अपने में आपको संतुलन बनाये रखने के लिए, इसके विपरीत प्रक्रिया भी विकसित करनी चाहिए जिससे यथार्थ में जीने की आदत में अपने आपको ढाल सकने में समर्थ हो सकें। इस अंतर्मुखी स्थिति को आप लेखन, कविता आदि से प्रस्फुटित कर सकते हैं। हर समय अपने बारे में न सोचकर, समाज की जटिल अवस्थाओं पर भी चिंतन कर बोझ से मुक्ति पा सकते हैं। किंतु ऐसा लगता है कि आप यह सब नहीं कर पा रहे हैं। वास्तव में आप पूर्ण रूप से असंतुष्ट हैं, पर 'दिवा-स्वप्न' से संतुष्टि पाने की कोशिश कर रहे हैं।

जंगल या नदी के तट की शांति, या डूबते हुए सूर्य के क्षितिज की लालिमा, जहां आपको प्रिय लगती हैं, वहां वह आपको डराती भी हैं। ऐसे में यह एकांत आपको लुप्त ही न कर दे, क्योंकि आपके पांव दुनियादारी में टिके नहीं हैं।

इसलिए प्रकृति का जो आनंद आपको मिल सकता था, वही अभिशाप के रूप में आपके जीवन में घुल रहा है।

परिश्रम ही सीढ़ी

अ. ब. स., मोदी नगर: मैं ३२ वर्षीय युवक प्रतिष्ठित संस्थान में गत आठ वर्ष से लिपिक के पद पर ही कार्य कर रहा हूं। शैक्षणिक योग्यता पूर्ण होते हुए भी जीवन में कोई परिवर्तन ला पाने में असफल हूं। कृपया कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं सफल स्टैनो बन सकूं।

आपने कई परीक्षाएं पास कीं---बी. एस-सी., एम. ए. (अर्थ-शास्त्र) आदि, फिर भी आप परीक्षा व साक्षात्कार से कतराते रहे हैं। फलस्वरूप असफलताओं का अंबार जुटाते रहे हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से आप बुद्धिमान व कठिन परिश्रमी व्यक्ति हैं। पर जहां प्रतियोगिता में सम्मिलित होकर, सफलता प्राप्त कर कुशल एवं जिम्मेदार नागरिक बनने की बात है, वहां दिक्कतों के आने से पीछे हटना, आपको सफलता से वंचित करता है। दरअसल ऐसे डर बचपन में संस्कार-वश आ जाते हैं। हमारे माता-पिता, जो कुछ कर दिखाने में नाकामयाब रहे, वही हमें प्रोत्साहन देने से कतराते हैं, और अन्य मनोनुकूल कामों से रास्ता मोड़ देते हैं। इससे जहां बच्चा काम करने में उत्साहित रहता है, और साहस की आवश्यकता महसूस करता है, उससे हताश हो जाता है। फिर जिस

इस स्तंभ के अंतर्गत अपनी समस्याएं भेजते समय अपने व्यक्तिगत जीवन का पूरा परिचय, आयु, पद, आय एवं पते का उल्लेख कृपया अवश्य करें।

सफलता व शुभ अवसर के लिए तैयार रहता है, वही गवां बैठता है। कुछ त्रुटियां हमारे समाज में भी हैं, जो परीक्षाओं को बहुत महत्व देती हैं, और परिश्रम व कुशलता को गौण।

मुझे विश्वास है कि यदि आप इसी तरह अपने कार्य में दक्षता का परिचय देते रहे, तो अवश्य सफलता आपका साथ देगी।

बाल-झड़ना

अ. ब. स., वाराणसी: मैं २४ वर्षीय एम. एस-सी. भौतिकी का विद्यार्थी हूं। लगभग दो वर्षों से मेरे सिर के बाल झड़ने लगे हैं। इसकी वजह से मैं काफी चिंतित हूं। इससे मेरा मन बहुत दुखी है। क्या मुझे विग का प्रयोग करना चाहिए? कृपया कोई उपाय बतायें।

बाल झड़ने के कई कारण हो सकते हैं, उनमें से कुछ ये हैं---वंशानुगत, प्रोटीन व विटामिनों की कमी, या फिर चर्म रोगों के कारण। मानसिक तनाव इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारण हो सकता है। डॉक्टरी परीक्षण से पहले आप इसकी जानकारी ले लें कि कोई अन्य कारण तो नहीं है। मानसिक तनाव की सीमा को कम करने

की कुछ दवाइयां भी हैं, उनका प्रयोग आप कर सकते हैं। पर इसमें असली योगदान आपका ही हो सकता है। इस समय आप इस दुष्चक्र में हैं—

मानसिक तनाव (बाल झड़ना), पढ़ाई का बोझ, (समाज में खिल्ली का डर)।

विग पहनने से भी खिल्ली का अहसास आप पा सकते हैं। इस विसकस साइकिल (गहन-चक्र) से मानसिक तनाव बढ़ता ही चला जाता है। इसलिए दवाई द्वारा, योग द्वारा या फिर अपने स्वभाव द्वारा तनाव कम करना ही अच्छा है। बहुत ज्यादा दुनिया की परवाह करना भी ठीक नहीं। किसी तरह अपनी परीक्षा में सफल होने का लक्ष्य ही सामने रखें। चाहे विग ही क्यों न पहनना पड़े।

कुंठित वातावरण

अ. ब. स., भागलपुर : मैं १६ वर्षीय अविवाहित, कला का छात्र हूं। इस वर्ष मैंने आई. ए. की फाइनल परीक्षा दी है। मैं भविष्य में अंगरेजी के साथ-साथ रसायन-शास्त्र का एक अच्छा ज्ञाता बनना चाहता हूं। लेकिन मेरी पारिवारिक स्थिति बड़ी असंतोष जनक है। कभी-कभी आंदोलित होकर आत्महत्या की कोशिश तक पहुंच जाता हूं। अब मैंने घर से भाग जाने का निश्चय कर लिया है।

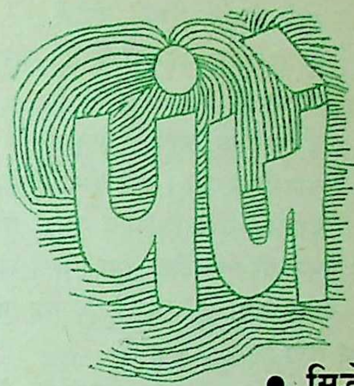
आशा है आप आई. ए. पास हो चुके होंगे। आप महत्वाकांक्षी हैं, यह तो अच्छी बात है। असंतोष पारिवारिक स्थिति व आर्थिक अभाव का यह अर्थ तो नहीं कि आप आत्महत्या या घर से भाग जाने की सोचें। आपके मां-बाप भाई-बहनों ने आपको, कुछ कष्ट उठाकर बड़ा कर, पढ़ाया लिखाया होगा। अब स्थिति भाग जाने से और बिगड़ेगी ही; न ही आप सुखी रहेंगे। इसलिए ये दोनों विचार त्याग दें। अपने परिवार के सदस्यों से खुलकर बातचीत किया करें, ताकि सौहार्दपूर्ण वातावरण व आपसी बातचीत द्वारा कुछ हल निकाला जा सके।

निरंतर आघात

क. ख. ग., कानपुर : मैं १६ वर्षीय इंटरमीडिएट (विज्ञान) की छात्रा हूं। जबसे मैंने होश संभाला, तब से मां की ममता नहीं मिली। मां वह है, जिसने मुझे जन्म दिया, पर मिली हमेशा नफरत। सिर्फ यही सुनने को मिलता है, पढ़ोगी तो अपने लिए, कौन-सा हमें कमा के दोगी। शारीरिक चोटें ही केवल मिलतीं, तो सहन कर लेती, पर ये मानसिक आघात, निरंतर अशांति मुझे जानवर बनाने में लगे हैं। मुझे लगता है कि कोई प्यार दे . . .। मैं क्या करूं . . .?

आपकी समस्या पढ़कर यह शक होने लगता है कि आप उनकी बेटी हैं या नहीं। यदि हां, तो मां भी आपको ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं। पढ़ा-लिखा स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं देखना चाहती। ।इसलिए आपको और भी दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ना चाहिए भगवान जरूर आपके ही साथ है। साथ ही हमारी हार्दिक शुभ कामनाएं भी।

कहानी



• सिद्धेश

शहर से दूर मुफस्सिल में रहते हुए घर की तरफ शाम को लौटते समय उस दिन उसने कुछ ज्यादा ही सामान खरीद लिया था। साथ में बैग रहने पर यही सुविधा होती है। आफिस से दिनभर खिचखिच के बाद घर की तरफ लौटते हुए मन के लायक कुछ भी या अंट-शंट खरीद लो, तब भी मन को बड़ा सुकून मिलता है। न हो तो, आठ आने की पावरोटी (डबलरोटी) ही सही। बच्चे सुबह में चाय के साथ कुछ न कुछ खाना चाहते हैं। चाहे भुजिया हो या रोटी।

लोकल ट्रेन पकड़ने के पहले थोड़ा समय हाथ में रहे तो घूम-घूमकर दुकानों से या फुटपाथ पर बैठे देहातों से आये हुए सब्जीवालों से कुछ न कुछ खरीदने में मजा भी आता है और समय भी कट जाता है। अन्यथा सियालदह स्टेशन के प्लेट-फार्म पर खचाखच भीड़, चिल्लपों और शरणार्थियों की खिच-पिच तथा उनके आसपास भिनभिनाती हुई मक्खियों के हवाले हो जाओ। इनके अलावा पूरे स्टेशन के बाहर-भीतर चलते हुए 'कंस्ट्रक्शन' के मारे नाक में दम है। खट्-खटाक्, टन्-टनाक् की ध्वनि और उधर ट्रेनों के 'फिस्स', 'भों . . . भों', की आवाजें कानों में हथौड़ों की तरह बजती रहती हैं। इससे तो बेहतर है कि बाहर ही चहलकदमी करते रहो, कुछ खरीदते रहो और खूब-सूरत चेहरे देखते रहो।

प्लेटफार्म के बाहर-भीतर असंख्य घड़ियों के रहने के बावजूद रोज की तरह, किसी ने तेजी से भागते हुए पूछ ही लिया, "कितने बजे हैं ?"

उसका मन किया कि कहे, "मेरी घड़ी में सुइयां नहीं हैं। वैसे कान लगाकर सुन लीजिए. मेरी घड़ी चल रही है, खराब नहीं है।" मगर वह खिन्न मन से दूसरी तरफ ताकते हुए बोला, "साढ़े सात बजने में पंद्रह मिनट बाकी हैं। क्या समझे ?"

तब तो ट्रेन छूटने में अभी पंद्रह मिनट बाकी हैं ! उसने कंधे से झूलते हुए बैग के भीतर छूकर देखा। पावरोटी, दो ठो कागजी नींबू, एक पत्रिका 'वेस्ट-बेंगाल' और एक सेर लंगड़ा आम। दुका-नदार से पूछकर उसने खरीदा था।

"लंगड़ा आम कितने का है भाई ?"

"साढ़े तीन रुपये। ऊपरवाले चार

के हैं।"

"साढ़े तीनवाले मीठे तो हैं ?"

"हां सरकार, दरभंगा के हैं। ऊपर-वाले बनारस के।"

"कौन-सा लूं, आप ही बताओ।"

"आपकी मरजी। मीठे दोनों होंगे।"

"दरभंगा एक किलो दे दो। मीठे नहीं निकले तो कल लौटा दूंगा। मेरा रोज का आना-जाना है, समझे? यह मत समझ लेना कि छोड़ दूंगा।"

"हां सरकार, हम दुकानदार हैं। बीस वर्षों से यहीं पर बैठे हैं। हम बेई-मानी नहीं कर सकते आपसे।"

"ठीक है, ठीक है। जल्दी दो। ट्रेन छूट जाएगी। फिर आधे घंटे बाद दूसरी ट्रेन है। मैं अकसर इसी से जाता हूं।"

"इसी से क्यों सरकार?" दुकानदार ने चुटकी ली।

"बस क्या बताऊं भाई। अपन तो लुट गये प्रेम में। एक स्त्री है, उसी से आंखें तीन हो गयी हैं, वह भी इसी समय मेरा इंतजार करती है।"

"हाय ! आप भाग्यवानों में से हैं सरकार। किसी ने देखा तो सही आपको, हमें तो इस बंगाल में एक भी कंगाली नहीं मिली।"

"अब यहां नहीं, दोजख में मिलेगी वह।" उसने नहले पर दहला मारा।

"सुब्हान अल्लाह। आपके मुंह में घी-शक्कर। मगर सरकार, यहां भी तो दोजख में ही रह रहा हूं, जन्नत नसीब कहां ?"

वह प्लेटफार्म पर चहलकदमी करता रहा। दूर से देखा कि उसकी वह स्वप्न-सुंदरी आ रही है। वह भी तेजी से लपका। प्लेटफार्म पर ट्रेन लगते-लगते उस पर चढ़ने के लिए वह दौड़ पड़ा। मगर आम का ख्यालकर मन मर गया। धक्का-मुक्की में कहीं आम पिचक न जाएं। आम का ख्याल कर वह स्वप्नसुंदरी से दूर खड़ा



हो भीड़ छंटने का इंतजार करने लगा! जब सभी ट्रेन पर चढ़ गये और प्लेट-फार्म खाली हो गया, तब वह भी धीरे से चढ़ गया।

घर पहुंचते ही बच्चे झोले पर टूट पड़े। बेबी ने अलग से नखरा दिखाया, "अरे, धत तेरी के। साप्ताहिक नहीं लाये? मैं धारावाहिक उपन्यास पढ़ रही थी।"

"वही प्रेम-कहानी तो? बकवास है एकदम से। बेकार के एक उपन्यास के एक अंश के लिए सवा रुपये फेंक दूं?"

"मैं कल से अनशन कर दूंगी।"

"आज से क्यों नहीं?"

"आज आम लाये हो न, इसीलिए।" हम सभी हंस पड़े बेबी की बात पर।

लड़के ने झोला अलग से देखने के बाद निराश होते हुए पूछा, "आउटलाइन मैप ऑव एशिया' नहीं लाये न, भरकर कल स्कूल ले जाना है।"

"अरे भाई मैं क्या करूं, सियालदह स्टेशन के पास कहीं नहीं मिला। कल कालेज स्ट्रीट जाऊंगा।" वह एकदम से झूठ बोल गया। दरअसल आम खरीदने के चक्कर में मैप की बात भूल ही गया था।

लड़का मानो अपराधी की तरह पिट-पिटाकर रह गया। खाने पर उसके लिए सभी इंतजार कर रहे थे। थाली में ट्रेन लाइन के नीचे पड़े 'फिश प्लेटों' की तरह यहां भी 'फिश' के टुकड़े तले रखे हुए थे। मगर आम नदारद। उसने पूछा, "आम कहां हैं?"

"आम अच्छे नहीं हैं। अभी कच्चे हैं।" पत्नी ने कहा।

"देखें तो सही।"

पत्नी सारे आमों के ऊपरवाले अंश को थोड़ा-थोड़ा-सा काटकर थाल में ले आयी। "लो, देखो अपनी आंखों से। तुम्हें तो आम पहचानना भी नहीं आता।"

"अरे दुर्भाग्यवान! आम तो आम, आदमी को पहचानने में भी बराबर भूल



करता रहा हूं। ठीक है, एक पूरा काटकर ले आओ। बाकी के पैसे कल वसूल करूंगा उस मरदूद से।"

"आम अब वापस नहीं लेगा वह। नाहक झगड़ा मोल लोगे। छोड़ो।"

"नहीं, आम तो वापस करके रहूंगा ही। भले ही पैसे वापस न मिलें।"

एक आम काटकर पत्नी ले आयी। एकदम से पीलिया रोग से ग्रस्त, दर-भंगाई आम का हुलिया देखकर उसका मन खट्टा हो गया। चखा तो मुंह खट्टा। करेला उस पर नीम चढ़ा। रेशे से भरपूर। उसको लगा, अगर वह मरदूद अभी सामने होता तो उसे मय दुकान के जन्नत भेज देता। साला वहीं मरता। दुकानदारी भी नहीं चलती। पत्नी पर अलग से गुस्सा आ रहा था कि आम के बारे में 'कमेंट' करके उसने उसे भी उसमें क्यों शामिल कर लिया? वह उसे इतना मूर्ख और दब्बू मानती है। अगर वह आम वापस करके कल दूसरे आम नहीं लाया तो उसका भी नाम नहीं।

रात बड़ी छटपटाहट में गुजरी। मारे गुस्से और पूरे शरीर में तनाव की वजह से रातभर नींद नहीं आयी। रात में ही उसने कटे-छटे आमों को उसी कागज-वाले ठोंगे में भरकर झोले में रख लिया था। रातभर आम के शोक में पत्नी बिस्तर पर अलग सोती रही।

●●

सामने फुटपाथ। फुटपाथ पर असंख्य लोग। लोगों के पार वह दुकान। दुकान पर आम। आमों के बीच बैठे वही हजरत। वह ठोंगा बढ़ाते हुए आंख लाल-पीली करके बोला, 'मियां (दरभंगिया!), आपने जान-बूझकर खट्टे और वाहियात आम दे दिये न। असली आदमी को भी नहीं पहचाना। मैं भी आम वापस लेकर आया हूं।"

लेकिन वह आदमी कलवाला आदमी नहीं लगा। कल कितने मजाक और भाई-चारे से पेश आया था। आज उसे क्या हुआ है? एकदम से गुम।

"हां, तो क्या कहते हो भाई? आम वापस ले लो।"

"नहीं भाईजान, आम कैसे वापस लेंगे? सब तो थोड़े-थोड़े काट दिये गये हैं। साबुत ले आते तब भी बात थी।"

"क्या मतलब? ईमानदारी भी कोई चीज होती है। आप लोगों ने ईमानदारी घोलकर पी ली है और अब इंसानियत ताख पर रखकर निश्चिंत बैठ गये हैं।"

"जी नहीं, ईमानदार हम भी हैं, लेकिन दुकानदारी में यह सब चलता है।"

"अच्छा, बात तो खूब बना लेते हैं आप! भलमनसाहत चाहते हैं तो आम भिखारी के बच्चों को बांट दीजिए। मैं शाम को आकर आप से बातें करूंगा। आफिस को देर हो रही है। यह मेरा थैला भी रखिए।" और वह भागता हुआ एक ट्राम पर जा चढ़ा।

देर पहले से ही हो गयी थी। वह जब

घर से चला, तभी पता चला था कि ट्रेन आज एकदम कैंटानमेंट तक ही जा रही है, उससे आगे नहीं। कल रात बारह बजे किसी ट्रैनके आउट ऑव लाइन हो जानेकी वजह से सारी गाड़ियां जंक्शन तक बंद हैं। अगर उसे आज आम लौटाने नहीं होते तो वह आज शहर और आफिस नहीं जाता। कैंटानमेंट से पैदल चलकर जंक्शन तक गया था वह। असंख्य लोग लाइन पर चलते हुए जंक्शन तक पहुंचे थे, मानो वे आफिस नहीं, हज करने जा रहे हों। तिस पर आकाश से '**आषाढ़स्य प्रथम दिवसे**' वाली उक्ति को सिद्ध करने के लिए महीन झड़ी लगी थी। यह इस बार की पहली बारिश थी। एकदम से भींगकर आम के ठोंगे को बैग में समेटे भीड़ में चढ़ा था। आम कहीं पिचक न जाएं। किसी तरह से बच-बचाकर आम की दुकान तक पहुंचा था। हजारों की संख्या में लोग अस्त-व्यस्त ट्राम-बस पकड़ने की आपा-धापी में भाग-दौड़ रहे थे। आफिस में जाते ही घोष ने छेड़ा, "इतनी देर हो गयी, आज आप आये कैसे ?"

"आपको कैसे पता चला ?"

"सुबहवाले अखबार से। सोचा था कि आप नहीं आयेंगे।"

अब वह कैसे कहे कि आम की वजह से आना पड़ा। उसके मुंह से निकलते-निकलते रह गया, 'आ . . .।'

"क्या कहा आपने ? आग, नहीं, आग तो लगी नहीं थी।"



वह कहना चाह रहा था कि आग तो दिल में लगी है, बाजार में लगी है। मगर वह चुप लगा गया। दुकानदार हजरत का चेहरा उसके आगे झूल गया था। वह मरदूद उदास और मुंह कुप्पा करके आज बैठा था, साला !

"आपके लिए आज अखबार में नयी खबरें हैं।"

"क्या?" वह चौंककर घोष की तरफ देखने लगा।

"सियालदह स्टेशन के पास नये कंसट्रक्शन में फ्लाइंग ब्रिज बनने जा रहा है। अस्सी तक तैयार हो जाएगा। और

डबल लाइन होने के पक्ष में कमीशन की रिपोर्ट चली गयी है।"

"अच्छा।" उसका चेहरा खिल आया था। बाद में काम की चिंता में आम की बात भूल गया, एकदम से।

आफिस से शाम को लौटने में भी थोड़ी देर हो गयी। बारिश जमकर हो गयी थी। अब आकाश साफ था। बस से उतरकर जब वह स्टेशन की तरफ बढ़ा, तब नजर सामनेवाली दुकान पर पड़ी। उसे जैसे हठात धक्का लगा। वह भागता हुआ आमवाली दुकान पर गया। वही हजरत अब भी बैठे थे। उसने बिना किसी भूमिका के कहा, "लाइए, मेरा थैला और बताइए आम का क्या करना है?" दुकानदार ने अपने बगल में खड़े सहायक से कहा, "इन्हें आम दे दो।"

आम लेते हुए पूछा, "और कितने देने हैं?"

"कुछ नहीं सरकार। जितने लौटाये थे, उतने ही दिये हैं। आपसे और क्या लेना?" और वह दूसरे कामों में लग गया।

इतनी जल्दी बात खत्म हो जाएगी, इसकी आशा उसे कतई नहीं थी। उसने बैग में आम रखते हुए कहा, "अब आप तो मुझे पहचान ही गये हैं। मैं अगली बार से यहीं से खरीदा करूंगा। आप ही सोच-समझकर दे दीजिएगा।"

"लेकिन सरकार, कल से तो हम लोग जा रहे हैं?"

"क्यों? क्या हुआ?"

"हम लोगों को दुकान उठा लेने का नोटिस मिल गया है। कल से सारी दुकानें तोड़ दी जाएंगी यहां की। अब शायद हम लोगों को कहीं और जगह मिले। जिंदा रहा तो फिर मिलेंगे सरकार, खुदा हाफिज!"

उसने उदास चेहरे से दुकानदार की तरफ देखा। वह दुकान उठाने की तैयारी में लगा था। रातभर में सब सामान यहां से हटा देना है, क्योंकि पौ फटते ही इन दुकानों को बुलडोजर और क्रेन के जरिये तोड़ दिया जाएगा। उसको लगा कि निर्माण की इस भूमिका में इनकी तरह के लोगों का बलिदान जरूरी है। चलते समय उसने देखा कि भारी क्रेनों के खूनी पंजे दुकानों की गरदन के आसपास मंडरा रहे हैं!

—द्वारा बालाजी इंटरप्राइजेज,
१०, प्रिंसेस स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७२

प्रेमी: तुम जिस रंग के कपड़े पहने आये हो, वे मुझे बहुत ही अच्छे लगते हैं। लेकिन, इन रंगों के कपड़ों में एक खराबी है कि इन रंगों की ओर कीड़े बहुत आर्कषित होते हैं।

प्रेमिका: और कीड़े किस प्रकार के होते हैं यह मुझे अच्छी तरह मालूम है।

विधि-विधान



आवेदन के लिए समय-सीमा

हरद्वारी लाल, संभलपुर: आपसी झगड़ों को पंच फैसले द्वारा सुलझायें जाने का हमने निर्णय लिया था। यह निर्णय लिखा हुआ है। झगड़ा लगभग ४ वर्ष पुराना है। हम न्यायालय में आवेदन करके झगड़ा फैसला करने के लिए पंच नियुक्त करवाना चाहते हैं। क्या न्यायालय में जाने से पहले हमें दूसरे पक्ष को नोटिस देना होगा। क्या उस आवेदन के लिए कोई समय सीमा है।

पंच फैसले में झगड़ा भेजने के लिए आपको मध्यस्थता अधिनियम की धारा २० के अंतर्गत आवेदन देना होगा। इस आवेदन को आगे बढ़ाने से पूर्व दूसरे पक्ष को कोई नोटिस दिया जाना आवश्यक नहीं है। जहां तक समय-सीमा का प्रश्न है, भारतीय मर्यादा अधिनियम की धाराएं आपके मामले में भी लागू होंगी।

संपादक बन सकता

रामनाथ सैनी, हरियाणा: मैं हरियाणा रोडवेज में लिपिक हूं। अब स्थानीय पत्रिका 'बेकसूर' में सह-संपादक बनना चाहता हूं। इसके लिए मुख्य संपादक मुझसे सहमत हैं। क्या मैं ऐसा कदम उठा सकता हूं? यह गैर कानूनी तो नहीं?

एक स्थान पर आप पहले से ही सेवा कर रहे हैं; आप सरकारी नौकर हैं। आपको अन्य किसीं स्थान पर नौकरी करने का अधिकार नहीं है। हरियाणा रोडवेज में सेवा करते हुए पत्रिका का सह-संपादक बनना सेवानियमों का उल्लंघन होगा, इससे आपके विरुद्ध कार्यवाही हो सकती है। यदि आप हरियाणा रोडवेज की अनुमति से सह-संपादक बनें, तब कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हरियाणा रोडवेज की अनुमति आप प्राप्त कर सकेंगे, इसमें मुझे संदेह है।

घर-समस्या

राजरानी गुप्त, कानपुर: हमारे पास नीचे की मंजिल में एक कमरा व रसोई थी। किराया भी कम था। मालिक नीचे की पूरी मंजिल एक साथ किराये पर

'विधि-विधान' स्तंभ के अंतर्गत कानून संबंधी कठिनाइयों के बारे में पाठकों के प्रश्न आमंत्रित हैं। प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं, राजधानी के एक प्रसिद्ध कानून-विशेषज्ञ—रामप्रकाश गुप्त



आपके कानूनी सलाहकार
श्री रामप्रकाश गुप्त

उठाना चाहते थे। हम व्यर्थ की झंझटों से मुक्ति पाने के लिए ऊपरी मंजिल में चले गये। क्या अब वे उस नये हिस्से से हमें खाली करवाने को कह सकते हैं? ऐसा होने पर, हम क्या अपना पुराना हिस्सा ले सकते हैं? क्या मकान-कर बढ़ने के साथ-साथ किराया भी बढ़ाया जा सकता है?

नया बना मकान आपको एक बार देने के बाद, मकान-मालिक उसे खाली नहीं करवा सकता। मकान खाली करवाने के अधिकार पर उत्तर प्रदेश शहरी भवन (प्रबंध करना, किराये पर देना, किराया व खाली करवाना) अधिनियम १९७२ के द्वारा रोक लगा दी गयी है। मकान-मालिक उक्त अधिनियम की धारा २० व २१ में वर्णीत अवस्थाओं में ही मकान खाली करवा सकते हैं।

मकान-मालिक आपके पानी की सुविधा पर भी रोक नहीं लगा सकते। पानी की सुविधा पुनः प्राप्त करने के लिए आप उक्त अधिनियम की धारा २७ के अंतर्गत कार्यवाही कर सकते हैं। निश्चित अधिकारी आपके आवेदन पर मकान-मालिक को सुविधा पुनः प्रदान करने का आदेश दे सकते हैं; यदि उस आदेश का भी पालन मकान-मालिक न करे, तो उक्त अधिकारी आपको स्वयं सुविधा चालू करवा लेने की तथा इस पर आये खर्च को देय किराये में से काटने की अनुमति दे सकता है।

गृह-कर बढ़ने के साथ-साथ, किराया बढ़ाने की अनुमति उक्त अधिनियम देता है। धारा ७ के अंतर्गत मकान-मालिक, निगम द्वारा बढ़ाये गये भवन-कर का २५ प्रतिशत भाग किरायेदार से वसूल करने का अधिकारी है।

ग्रेच्यूटी कैसे

रामसुहाग, अमृतसर : ग्रेच्यूटी की राशि मुझे अपने मालिकों से लेनी है। यह राशि बार-बार मांगने पर भी मुझे नहीं दी जा रही। अब मैं इसके लिए औद्योगिक विवाद प्रस्तुत करना चाहता हूं। मुझे यह राशि वसूलने के लिए क्या कार्यवाही करनी चाहिए? क्या मैं औद्योगिक विवाद अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता हूं?

ग्रेच्यूटी (निवृत्ति-पुरस्कार) की राशि प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही नहीं की जा सकती। आपको 'पेमेंट ऑव ग्रेच्यूटी एक्ट' (निवृत्ति-पुरस्कार-भुगतान अधिनियम) के अंतर्गत कार्यवाही करनी चाहिए। इसके लिए आपको नियत अधि-

कारी के समक्ष आवेदन करना होगा। देर से भुगतान होने के कारण आप देय राशि पर नौ प्रतिशत मिश्रित ब्याज के भी अधिकारी हैं।

ससुराल से हिस्सा

विजय बहादुर, गया : मेरा एक मित्र है, जो अपनी ससुराल की संपत्ति में से हिस्सा चाहता है। उसके २ साले भी हैं? उसे कैसे और कितना हिस्सा मिलेगा।

आपके मित्र को ससुराल की संपत्ति से कोई हिस्सा नहीं मिल सकता। जमाता का ससुराल की संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं होता। हां, आपके मित्र की पत्नी यदि चाहे, तो अपने पिता की संपत्ति से हिस्सा ले सकती है। दोनों भाई, बहन, उनकी मां तथा दादी सबको बराबर हिस्सा लेने का अधिकार है।

बहनों का हिस्सा

रमेशचन्द, भरतपुर : मेरी दो बहनें हैं, दोनों की शादी हो चुकी हैं। मेरी शादी नहीं हुई। अब मैं किसी को गोद लेना चाहता हूं। जायदाद पिताजी की है, इसमें से एक बहन अपना हिस्सा मांग रही है, लेकिन मैं हिस्सा नहीं देना चाहता। कृपया यह बताने का कष्ट करें कि बहनें इस जायदाद से हिस्सा लेने की हकदार हैं या नहीं?

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६, हमारे देश में १७ जून १९५६ को लागू हुआ। यदि आपके पिताजी का स्वर्गवास इस तिथि से पहले हो गया हो, तब आपकी बहनों का संपत्ति में हिस्सा नहीं है। आपके पिताजी की स्वर्गवास की तिथि से ही संपत्ति के बारे में निर्णय हो सकता है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू होने के बाद, यदि आपके पिताजी का स्वर्गवास हुआ हो, तो आपकी बहनें अपना हिस्सा ले सकती हैं। बहनों द्वारा हिस्सा लेने या न लेने से आपके गोद लेने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

हिस्सेदारी कैसे ?

रोशनलाल वर्मा, दिल्ली : मेरी उम्र ३० वर्ष है। साथ ही मेरे छह भाई हैं। पिता अपने पीछे १२ कमरोंवाला मकान छोड़ गये हैं। मैं अपना हिस्सा लेना चाहता हूं, इसके लिए मुझे क्या करना होगा ?

आप उक्त संपत्ति के बटवारे के लिए दावा कर सकते हैं। दावा प्रारंभ करते समय आपको यह जानना आवश्यक है कि दावा करने के बाद न्यायालय यह देखेगा कि आपकी साझी संपत्ति का बटवारा संभव भी है या नहीं। बटवारा संभव न होने की स्थिति में न्यायालय को विभाजन अधिनियम १८९३ की धारा २ के अंतर्गत अधिकार है कि वह उक्त संपत्ति को बेचने का आदेश दे दे तथा प्राप्त राशि आप सब भाइयों में बांट दे। संपत्ति बेचे जाने की स्थिति में आप चाहें तो न्यायालय की अनुमति लेकर संपत्ति खरीद सकते हैं। ●

लाहौर का मोची दरवाजा स्थित विशाल मैदान। इस ऐतिहासिक मैदान में लगभग पचास हजार व्यक्ति एक रोमांचकारी व दिल हिला देनेवाले बर्बर दृश्य को देखने के लिए इकट्ठे हुए हैं।

मैदान के बीचोबीच लकड़ी की दो टिकटिकी रखी हैं। पास में ही सैनिक अधिकारियों के लिए कुर्सियां रखी हैं।

हथकड़ियों से जकड़े दो युवकों को बदले 'अल्ला-हो-अकबर' के नारे लगाकर खुशी व्यक्त कर रहे हैं।

दोनों युवकों को दस-दस कोड़ों की सजा दी गयी थी, परंतु वे तीन-तीन कोड़े खाकर ही अचेत हो जाते हैं। पास खड़ा डॉक्टर उनकी जांच करता है, उन्हें होश में लाने की दवा दी जाती है, और होश में आते ही फिर उन पर बेंत प्रहार शुरू कर दिया जाता है। चारों ओर बैठे व खड़े दर्शक इस रोमांचकारी व निर्मम कोड़ा

जब मेंहदी हसन को भी कोड़े लगे

धकेलते हुए सैनिक बीच मैदान की ओर बढ़ रहे हैं। युवक सहमे हुए, अर्ध मूर्च्छित से हैं।

दोनों को अर्धनंगा कर अलग-अलग टिकटिकी (लकड़ी का स्टेंड) पर बांध दिया जाता है। सैनिक कर्नल संकेत करता है, और दो हट्टे-कट्टे व्यक्ति पूरी ताकत लगाकर पांच फुटी बेंतों से तड़ातड़ प्रहार शुरू कर देते हैं। जैसे ही बेंत युवकों की कमर, बांह या टांगों पर पड़ती है, वह जोर से चीत्कार कर उठते हैं। एक युवक प्रहार होते ही 'या अल्लाह' कहता है, तो दूसरा 'आह मर गया' की आवाज करता है। दूसरी ओर दर्शकों में से कुछ कट्टरपंथी इस बर्बर कांड पर आंसू बहाने के

● शिवकुमार गोयल

प्रहार के बर्बर दृश्य से जैसे अपना मनोरंजन कर रहे हैं?

मुहम्मद सलीम तथा अब्दुल ईज्जम नामक इन दोनों युवकों को १५ नवंबर को फौजी अदालत ने बलात्कार के अपराध में छह-छह मास की सख्त कैद तथा दस-दस कोड़ों की सजा दी थी। मुहम्मद सलीम पर एक अविवाहिता युवती से बलात्कार करने तथा अब्दुर्ररज्जाक पर एक विवाहिता के घर में घुसकर उसके साथ जबर्दस्ती करने का आरोप था।



सरगोधा नगर!

अतिरिक्त सेशन जज राव मुहम्मद हय्यात की अदालत में एक सुंदरी नर्स तथा एक युवक पुलिस से घिरे खड़े हैं।

जज निर्णय सुनाते हैं, 'कोहनूर सुगर मिल की नर्स मिस ... एवं समाज सुरक्षा क्लर्क सरफराज अली गलत ढंग से व्यभिचार के दोषी पाये गये हैं। दोनों को इस्लामी शरीयत (कानून) के अनुसार दस-दस साल की कैद तथा तीस-तीस कोड़ों की सजा सुनायी जाती है।'

और मिस कलशूम अख्तर नामक यह नर्स सजा सुनते ही गश खाकर गिर पड़ती है।

रावलपिंडी के एक होटल पीरी के मालिक को मय नौकर सहित शराब परोसने तथा होटल में लड़कियां सप्लाई करने के आरोप में फौजी अदालत में पेश किया जाता है।

अदालत सभी को कोड़ों की सजा सुना देती है। होटल मालिक अत्यंत वृद्ध है। डॉक्टर उसकी जांच कर फतवा देता है, 'बूढ़ा एक भी कोड़ा सहन नहीं कर पायेगा।'

फौजी अधिकारी मैदान में इकट्ठी भीड़ के समक्ष आदेश देता है, 'बूढ़े का मुंह काला करके मैदान में घुमाओ।' बूढ़े मियां को लंगूर बनाकर घुमाया जाता है। इसी बीच उसके युवा बेटे सलालुद्दीन को बाप के बदले कोड़े लगाये जाते हैं। वही पुराना नाटक दोहराया जाता है—कोड़ों की आवाज व बदले में करुण चीत्कार



मेंहदी हसन

'हाय अल्ला मर गया।' दर्शकों में से एक विदेशी अपने साथी से कहता है, 'यह कौन-सा न्याय है कि बाप के बदले बेटे के शरीर को लहुलुहान किया जाए?'

दो विदेशियों को, जो पर्यटन के लिए पाकिस्तान आये थे, कराची में शराब व मदक पीने के आरोप में पकड़ लिया जाता है। फौजी अदालत उन्हें भी कोड़ों की सजा देती है, परंतु दस-दस की जगह चार-चार कोड़ों की।

वे अंगरेजी में कहते हैं कि उन्हें यह मालूम नहीं था कि इस देश में शराब पीना जुर्म है। अतः उन्हें क्षमा किया जाए। परंतु फौजी अफसर जवाब देता है, 'यह मजहबी कानून है। इसमें किसी के साथ रियायत नहीं की जा सकती।'

बेचारे दोनों पर्यटक कोड़े सहन करते

है, परतु साथ ही पाकिस्तान के अन्य कार्यक्रम स्थगित करके, अपने देश को लौट जाते हैं, उसी समय।

बलात्कार से लेकर शराब पीने तक कोड़े

पाकिस्तान में जनरल जिया के फौजी शासन द्वारा, नयी इस्लामी शरीयत सजा के अंतर्गत सार्वजनिक स्थान पर कोड़े लगाये जाने की प्रथा शुरू करने से नवंबर', ७९ तक लगभग पांच हजार व्यक्तियों को इस प्रकार से दंडित किया जा चुका है। बलात्कार, छेड़खानी, अपहरण से लेकर चोरी, तस्करी, मिलावट, वेश्यावृत्ति, शराबपान जमाखोरी-जैसे अपराधों तक में कोड़े लगाने की सजा दी जा रही है। मुजफ्फरगढ़ की फौजी अदालत ने मुहम्मद सद्दीक नामक युवक को बिना लाइसेंस की बंदूक रखने के अपराध में पंद्रह कोड़ों की सजा सुनायी। इसी प्रकार रावलपिंडी के एक पार्षद आर. हुसैन शाह को एक विवाहिता के अपहरण के आरोप में एक वर्ष की कैद के साथ-साथ १५ कोड़ों की सजा दी गयी। लाहौर के गुलाम नबी नामक व्यक्ति को जाली इंस्पेक्टर बनकर दुकानदारों से जुर्माना वसूलने पर कोड़ों की सजा दी गयी। सियालकोट जेल से फरार हुए एक कैदी को अपने यहां पनाह देने पर मेराजदीन नामक व्यक्ति को कोड़े लगाये गये।

कोड़े लगाने की सबसे रोमांचकारी घटना का प्रदर्शन रावलपिंडी में किया गया जिसमें एक साथ ३० व्यक्तियों को एक लाख दर्शकों की भीड़ के सामने कोड़े लगाये गये।

रावलपिंडी के सेंट्रल गवर्नमेंट अस्पताल की विशाल छत पर यह प्रदर्शन किया गया, जिससे चारों ओर से दर्शक इसे देख सकें। विशाल मैदान के अलावा पेड़ों व आसपास के मकानों की छतों पर भी दर्शक चढ़कर इस निर्मम व रोमांचकारी दृश्य को देख रहे थे। अनेक विदेशी पर्यटकों, पत्रकारों तथा कैमरामैनों ने भी रावलपिंडी के इस कोड़ामार बर्बर प्रदर्शन को देखा।

एक प्रत्यक्षदर्शी का बयान

एक प्रत्यक्षदर्शी विदेशी पत्रकार के अनुसार कुछ व्यक्ति तो कोड़ों के निर्मम प्रहार से चीखनेवालों की दर्दनाक आवाज सुनकर बेहोश तक हो गये थे। इस पत्रकार के अनुसार 'प्रदर्शनस्थल पर डॉक्टरों का एक दल भी था, जो कोड़ों से बेहोश हुए व्यक्ति को होश में लाकर पुनः कोड़े सहन करने के लिए तत्पर कर देता था। कोड़े मारने वाले साक्षात दैत्य-से दिखायी देते थे तथा वे पूरी ताकत से झपटकर कोड़े लगाते तो लगता कि जैसे एक ही प्रहार से उसकी खाल उधड़ गयी होगी।'

पाकिस्तान स्थित एक अमरीकी संवाददाता हैंब्रेग के शब्दों में, 'मैं दूरबीन से देख रहा था। पहले कोड़े के प्रहार से ही शरीर पर लाल धारी उभर जाती थी। दूसरे प्रहार से खाल फट जाती थी तथा तीसरा प्रहार उसे बेहोश करने को काफी

था। बाद में प्रत्येक अभियुक्त को घंटों बेहोश रहना पड़ता था तथा उसे स्ट्रेचर पर ही ले जाया जा सकता था।'

मेंहदी हसन पर भी कोड़े

केवल संगीन अपराधों में ही कोड़े लगाने की सजा नहीं दी जा रही, अपितु शराब पीने-जैसे कृत्य को भी 'इस्लाम विरोधी' करार देकर सार्वजनिक कोड़े लगाने शुरू कर दिये गये हैं। प्रख्यात फिल्म गायक श्री मेंहदी-हसन जैसी हस्ती भी शराब पीने के अपराध में कोड़ों का शिकार हो चुकी है। बताया जाता है कि जोश मलीहाबादी तो इस घटना के बाद अपने को अत्यंत आतंकित व घुटन में महसूस करने लगे हैं।

अमरीकी पत्रकार हैंब्रग ने टिप्पणी की है शराबपान के एक अपराधी को कोड़े लगाये जाते समय उनके पास बैठे एक पाकिस्तानी दर्शक ने कहा था, "पास खड़ा होकर कोड़े लगवानेवाला कर्नल स्वयं शराब में धुत्त है—जिया स्वयं रोज शराब में डूबा रहता है, फिर इस बेचारे गरीब की ही खाल क्यों उड़ायी जा रही है?"

बर्बर प्रथा

कोड़े लगाये जाने की प्रथा अत्यंत बर्बर व सामंती प्रकृति की परिचायक कही जा सकती है। किसी युग में गुलामों को कोड़ों से पीटकर आतंकित रखा जाता था। अंगरेजों ने भी भारत में कुछ समय तक देशभक्तों पर बेंत प्रहार कर आतंक बैठाने का प्रयास किया। युवक चंद्रशेखर आजाद पर बेंत प्रहार किये जाने की घटना सर्वविदित है। परंतु आमतौर पर इस बर्बर प्रथा को सभी सभ्य देशों में समाप्त कर दिया गया है। इंग्लैंड में तो १९४८ में कानून बनाकर कोड़े लगाने की सजा को समाप्त कर दिया गया था।

कुछ पिछड़े हुए मुस्लिम देश तेजी से विकसित युग में भी अब पुनः पुराने व घिसे-पिटे रीति-रिवाजों को इस्लाम व शरीयत के नाम पर लादने का प्रयास कर रहे हैं। कुछ मुस्लिम देशों में चोरी के अपराध में हाथ काट देने-जैसी सजा अभी भी लागू है, जबकि मानवतावादी दृष्टिकोण वाले व्यक्ति 'फांसी'-जैसे शब्द को ही शब्दकोष से निकलवाने के आकांक्षी हैं।

लाहौर हाईकोर्ट द्वारा अमल पर रोक

पाकिस्तान में महिलाओं को सार्वजनिक स्थल पर कोड़े न लगाकर जेल में परदे के पीछे कोड़े लगाये जाते हैं। सरगोधा की नर्स कलशूम अख्तर, जिसे ३० कोड़ों की सजा सुनायी गयी थी, की 'रिट' पर लाहौर हाईकोर्ट ने सजा पर अमल रोक दिया है। ब्रिटेन व अमरीका स्थित अनेक पाकिस्तानी महिलाओं ने पाकिस्तानी महिलाओं को कोड़े लगाने की सजा पर आपत्ति व्यक्त करने का साहस प्रदर्शित किया है। परंतु पाकिस्तान के फौजी शासकों के कानों पर इससे जूं रेंगेगी, यह असंभव ही दिखायी देता है।

—पिलखुवा (गाजियाबाद)

एक पेड़ मेरे आंगन में

एक पेड़ है
मेरे आंगन में
जिसे मैंने जब-जब काटा
वह और अधिक फैला
फिर छा गया अचानक
मेरी चेतना के द्वार पर
एक अनदेखे प्रहरी-सा
निश्चल
अटल

एक पेड़ है
मेरे आंगन में
दादा ने कहा था——
कभी इसका विश्वास न करना
क्योंकि
यह फूल-पत्ते कम देगा
अधिक लीलेगा आदमी
जहां तक बन पड़े
इससे अवश्य डरना

एक पेड़ है
मेरे आंगन में——
गांव घर के लोग
इसे अपना समझते हैं
सोचते हैं
इसके फल
स्वर्ग-द्वार के पार जाने का
पार-पत्र हैं
और वे
आज तक उन फलों में बंद
सुनहले भविष्य की प्रतीक्षा में
बेकार बैठे हैं
इसीलिए
जब भी मैं यह पेड़
जड़ से उखाड़ता हूं
वे सब मिलकर
देते हैं मुझे अनेक श्राप
और सोचने लगते हैं
कि छिन गयी है
उनके हाथों से
फिर एक बार
सुविधा फल खाने की

एक पेड़ है
मेरे आंगन में
भारतीय संविधान की अनेक विष-
धाराओं की भांति
जो पहली, दूसरी और शायद तीसरी
आजादी के बाद भी
आजादी को
गांव-घर के लोगों को
फल खाने की लालसा से
अधिक
कुछ नहीं होने देती ?

——रमेश मेहता——
——२३५, रिहाड़ी, जम्मू तवी-१८०००५



• अनिलकुमार

चाहे देश भाड़ में जाए, उनको कोई मतलब नहीं, वे दांत निपोरते रह सकते हैं। नौकरी, विचार, दोस्ती और साहित्याचार, आपात-काल में इन चारों की परख करते हुए, वे ठहाका लगाकर बड़े बोल रेकार्ड कराते रहे। उनके बड़बोले पन में दो दांतों का अचार पहले से परोसा हुआ मिलेगा। पहली आजादी यानी ४७ से ७७ का रुतबा बघारते हुए वे टेली-फोन पर कनबतियाब करते थे। हां! हां! कहिए, आपको क्या कहना है? आइ एम गवर्नमैंट ! अपना इस्मशरीफ बयान करने के सरकार महोदय के कई खटके हैं। उनके रहते-रहते ही एक गयी और दूसरी आजादी भी आ गयी। उनके छपाये कांग्रेसी चुनाव पोस्टर देखते-देखते 'जनता' के प्रचार पोस्टर बन गये। वे सबको सब से ज्यादा वफादार कार्यपालन अधिकारी नजर आने लगे। मुख्यमंत्री घोंघाजी को वे अपने सबसे बड़े पोंगाजी नजर आते थे। बस, फिर क्या था वे आंय-बांय शब्दाचार चलाने लगे। एक पत्रकार से कानफून पर कहा 'तमंचा जी, मैं किसी बम या तोप से नहीं डरता, आप से क्या डरूंगा? आप अपने अखबार में चाहे जो लिखें। 'आइ एम फियरलेस' आगे वे एक शब्द और जोड़ देते तो हम उनमें 'फियरलेस नादिया' का साक्षात कर लेते। अशोक के नीचे बिठाकर भी रावण कभी सीता का शोक नहीं दूर कर सके। अशोकवाटिका से हटकर अयो-ध्या लौटी हुई सीता को रामचंद्रजी ही कब शोक-रहित कर सके। इनकी बात विपरीत है! कभी अशोकवन में विचरे नहीं मगर इनको शोक नहीं होता। एक दिन बड़े कवि के मरने का समाचार मिला। टेलीफोन पर किसी मातहत कवि ने समाचार देने का गौरव प्राप्त करना चाहा। मगर वे वे यह सुनकर धक् रह गये—नो ... नो ... शलभ जी, वह कोई बड़ा कवि नहीं था। मुझे उनके मरने-वरने से साहित्य को कोई

स्वर्गीय अनिल कुमार न केवल गीतकार, और समीक्षक वरन एक सिद्धहस्त व्यंगकार भी थे। अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व उन्होंने यह रचना 'कादम्बिनी' में प्रका-शनार्थ भेजी थी। सामान्य पाठकों को तो वह रुचेगी ही, साथ ही स्वर्गीय अनिलकुमार के साहित्य पर काम करनेवाले शोधार्थियों के लिए भी वह उपयोगी सिद्ध होगी। —सं.

क्षति नजर नहीं आती। शोक-सभा वगैरा फ्रॉड करने की जरूरत मैं नहीं समझता। आइ एम अ–शोक !

एक दिन उक्त 'गवर्मेंट' महोदय के पिता गुजर गये। मातमपुर्सी के लिए लोग गये थे, वे अच्छे-खासे ठहाके लगाते रहे। इधर उनकी माताजी भी चल बसीं। खैर, बाप बुरा रहा होगा उनके लिए मगर मां तो उनकी अपनी सगी थी। साहब, तीसरे दिन एक मजमें में यह शोक-प्रूफ आदमी घड़ी के कांटों की तरह दोनों हाथ नचाता हुआ, दांत निपोरकर भाषण फटकार रहा था। दांत निपोरने की क्रिया भाषण का अनिवार्य तत्व न हो, शोकरहित होने का प्रमाण तो है। एक प्रतिद्वंद्वी कवि "हार्ट अटैक' से चल बसा। घर के भीतर कवि का शव रखा है। परिजन-पुरजन शोकमग्न, आंसू बहा रहे हैं। आप चमचों-ठिलवों के बीच बैठे दंत-निपोरन मुद्रा में कथकलि कर रहे हैं। घरवालों को बुरा लग रहा था, मगर वे नहीं जानते थे कि यह आदमी कसूरवार नहीं। बेहद शोक-रहित है। बे-गम ! 'गम दिये मुस्तकिल, कितना नाजुक है दिल !!' मगर यह आदमी कड़े दिलवाला है, नाजुक-दिल नहीं।

असल में ऐसा आदमी दुनिया में दुर्लभ होता है जो मां-बाप की मौत पर भी बेहद बे-गम होता है। ऐसे नायाब नस्लवालों को गमी, मैयत वगैरा में जाना छोड़ देना चाहिए। लोग खामख्वाह गलत-



फहमी के शिकार हो जाते हैं। उधर घर के लोग, दोस्त अहबाब रो-रोकर दुहरे हो रहे हैं और ये हैं कि आदतन दांत निपोर रहे हैं। पिछले दिनों एकाएक इनके कोई नजदीकी रिश्तेदार दिल की बीमारी से चल बसे। मातमपुर्सी में जाना जरूरी था। हवाईजहाज से उड़े। सारा रास्ता यह तय

करते कट गया कि कम बोलूंगा तो ऐसे कौन से शब्द भाषा से चुनूंगा, जिससे होंठ कम से कम हिलें। बस चला तो मुंह भी नहीं खोलूंगा। रोनेवालों को इसकी सुविधा भी रहती है मगर वे ऐसा नहीं कर सकते थे। टैक्सी से दरवाजे पर उतरे। मुंह खोला तो चार दांत बाहर निकल आये! अब बेचारे क्या करते? 'जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देहि! एक हरामी दोस्त का मुहावरा है—दंग निपोरन-हगभरन!!

वे बीवी को देखते ही प्रसन्नता से दांत दिखा जाते हैं। किसी मजमें में वे कुछ बोलें, इससे पहले उनके दांत बोलना शुरू कर देते हैं। जो बात वे अपनी जबान की पेचीदा लपेट में नहीं समझा पाते, उनके दांत झट कह जाते हैं। किसी पुराने कवि ने हाथी के दो बाहरी दांतों पर फब्ती कसते हुए ठीक ही कहा था—याते गजमुख हहरि कै दै निकारि द्वै दंत!

उनकी पपीतामुखी 'बिएट्रिस' के नाते हमारे कुछ दोस्त उनको 'दांते' कहा करते हैं। मराठी भाषी मित्र 'दाते साहेब' कहने में नहीं हिचकते। अलबता, अपने दुश्मनों को देखते ही उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है। फुंसीदार चेहरे से आबदारी का 'अ' गायब होकर 'शोक' की पीली मिट्टी लिप जाती है। दांत सन्निपात के मरीज की तरह जकड़ जाते हैं। ऐसे क्षणों में उनको देखना भला लगता है। ऐसे नायाब मौके पर अगर कोई फोटो खींच ले, तो उनका प्रोफाइल यानी साइड पोज बाकायदा शी-मैन मियां शफोका फरहत लगता है। जी हां, यह खयाली-पुलाव नहीं, हकीकत का लुकमा है। एक बार राज्य-सभा के आपातकालीन साहित्यिक सदस्य माननीय श्री श्रीजी के लेख के साथ छपा हुआ उनका ऐसा फोटू हमने देख लिया था। नाराजी उनके चेहरे पर फबती नहीं इसलिए वे दांतों का चून पोतकर खुशफहमी की कलई फेरते हैं।

हर बात पर दांत निपोरते जाने की आदत आदमी को बेहया बना दे, तो क्या ताज्जुब? और वे हयादार आदमी हैं भी नहीं। जी हां, उनका खयाल है अदबी दुनिया एक 'कसाईखाना' है। यहां वे एक चील की तरह हमेशा छीछड़े के लिए मंडराया करते हैं, या 'कभी-कभार' कुत्ते की तरह हड्डी चचोड़कर खुद के दांत लहूलुहान कर लेते हैं। किसी को अपने भाषण में मुल्क का जिक्र करते देख, वे तपाक से बोले—"मुल्क जाए भाड़ में! मैं खालिस कविता की बात करता हूं। कविता उनकी दूसरी बीवी है और भाषा रखैल।"

दांतों का दातारी से ताल्लुक होगा, तभी तो बेहयादार होकर भी वे दाता हैं। सरकारी दौलत उनके कलम से दान में जाती है। वे खुद हुजूर, माई-बाप सरकार हैं। उनकी कोलगेटी मुसकान देखकर रुपया लेनेवाले मर मिटते हैं।

लाखों का बजट व बिना बहस के लुटा सकते हैं। दाते साहब की दातारी पर भाऊ साहबों का विश्वास जम गया है, आगे भले ही पानीपत में पेशवों का पानी उतर जाए। फिर आजकल पानी का परहेज पालता कौन है ? मगर हमारे यहां तो सारा झगड़ा पानी को लेकर चलता है। घाट-घाट के पानी से राह-बाट के पानी की लड़ाई है। लिखा होगा कभी खानखाना ने—'पानी गयउ न ऊबरे, मोती मानुस चून !' पानी उतर जाने पर बोमोल हो गये थे, जहांगीर के जमाने में वे। आज के राज में पानी गया, मानुस प्यारा लगता है।

एक बार दाते साहब की कारगुजारियों को ले विधानसभा में बहस चली। बहस के तल्ख होते ही उनके चारों दांत एक-एक कर होंठों की खाई में गिरते चले गये। वे बे-दांती बनकर छत पर टंगे-से दिखने लगे।

मगर उनके दांत फिर नहीं उगे। यारों ने कहा बे-गम साहब बड़े बेइज्जत हुए। देख लीजिए आज चारों दांत गायब हैं। नहीं दिख रहा आज एक भी! इस्तीफा फेंका ही समझो ! हमने कहा, अजी रहने भी दीजिए, बे-गमें इस्तीफा नहीं दिया करतीं। खसम बदल लेती हैं। अपने यहां का पानी ही ऐसा है। बियर में छाना और खसम को खवास बनाया।

—१०५/३४, शिवाजी नगर,
भोपाल-४६२००६

ज्ञान-गंगा

इच्छेच्चेद्विपुलनां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कार्येत् ।
वाग्वादमर्थ संबंध तत्पत्नी परिभाषणम् ॥

जहां अत्यंत प्रीति रखने की इच्छा हो, वहां व्यर्थ धन, विवाद का लेन-देन और परोक्ष में उसकी स्त्री से संभाषण, ये तीनों ही वार्ता वर्जित हैं।

त्रिविक्रमोऽभूदपि वासनोऽसौ स शूकरश्चेति स वै नृसिंहः ।
नीवैरनी चैरति नीच नीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम् ॥

अपने कार्यों को सिद्ध करने के निमित्त परमेश्वर ने वामन, वाराह, नृसिंह इत्यादि अग्राह्यरूप भी धारण किये, इसलिए बुद्धिमान को चाहिए कि हीन, उत्तम, अत्यंत हीन, सब प्रकार के उपायों से अपना कार्य सिद्ध करें।

संघातवान्यथा वेणु न विडः कण्टकैर्वृतिः ।
न शक्यते समुच्छेतु भ्रातृसङ् घातवांस्तथा ॥

जिस प्रकार से घने मिले हुए बांस घनिष्ठ और कांटों से युक्त हो जाते हैं, और अच्छेद्य हो जाते हैं, उसी प्रकार कुटुंबी पुरुष का सहज में छेदन नहीं किया जाता अर्थात बंधु-बांधुवों से घिरा होने पर उसको नुकसान नहीं पहुचाया जा सकता।

—प्रस्तोता : महर्षिकुमार पाण्डेय

विज्ञान नयी उपलब्धियां

शुतुरमुर्ग के दत्तक अंडे

अब तक आदमियों तक ही दत्तक पुत्र ग्रहण करने की चर्चा होती रहती थीं, पर अब कुछ नयी खोजों से पता चला है कि यह भावना पशु-पक्षियों में भी होती है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण कीन्या के 'सॉवो नेशनल पार्क' में शुतुरमुर्गों द्वारा अपनाया सहचर्य का जीता-जागता प्रमाण है।

मादा शुतुरमुर्ग प्रायः दो दिन बाद अंडे देती है। इसका अंडा मुर्गी के अंडे से २५ गुना बड़ा होता है। मादा एक समय में २० अंडे तक सेती है। उनमें से अकसर ११ उसके अपने होते हैं और ९ दूसरी मादा शुतुरमुर्ग के।

ऐसी ही एक दूसरी रोचक घटना भी उनमें देखने को मिली; नर भी अंडे सेंतने में मादा की मदद करता है। मादा इस कार्य को दिन में करती है और नर रात्रि में। इस तरह नर को दूसरी मादा से रोमांस करने का अवसर भी मिलता है।

दांत और आपकी आयु

आप अपने मुख से बोलें या न बोलें, पर आपका कोई भी दांत आपकी आयु बता सकता है। टूटे हुए दांत से अब आसानी से उम्र की पहचान की जा सकती है।

इस नयी तकनीक का आविष्कार अमरीका में हो चुका है। ऊत्तकों के अमीनो अम्लों में रासायनिक प्रभाव होने से ही इस विधि की पुष्टि हुई है। दांतों का प्रयोगशाला में परीक्षण करने से किसी भी दांतधारी प्राणी की सही-सही अवस्था पता की जा सकती है। इसी परीक्षण में एक रोचक घटना सामने आयी है, जिसमें एक वृद्धा को अपनी उम्र का सही पता नहीं था, सिर्फ अंदाज से ९६ वर्ष अपनी उम्र बताती थी, पर जब उसके दांतों का परीक्षण किया गया, तब उसकी उम्र ९९ वर्ष पता चली।

वर्णसंकर भी संभव

आज तक विभिन्न गुण-सूत्रों (क्रोमो जोम्स) वाले नर-मादा के संयोग से नयी जाति का बच्चा पैदा नहीं हुआ था या फिर हम इससे अब तक अनजान थे। पर अब आपको यकीन करना ही होगा; एक मादा सेमंग और नर गिब्बन, जिनके गुनण-सूत्र क्रमशः ५० और ४४ थे, के संयोग से ४७ जोड़ी गुण-सूत्रोंवाला बच्चा पैदा हुआ।

यह विचित्र बच्चा आज चार वर्ष का हो गया है। इसकी चमड़ी के बाल काले व दाढ़ी के बाल सफेद हैं; जो कि मां की तरह हैं। गला मां के गले से भिन्न है।



चमत्कारिक बच्चा

इस चमत्कारिक युग्म से अब यह संभव हो गया है कि चिंपैंजी (गुण-सूत्र ४८) व मनुष्य (गुण-सूत्र ४६) के संयोग से औसत ४७ जोड़ी गुण-सूत्रोंवाला नया जीव जन्म ले सकता है।

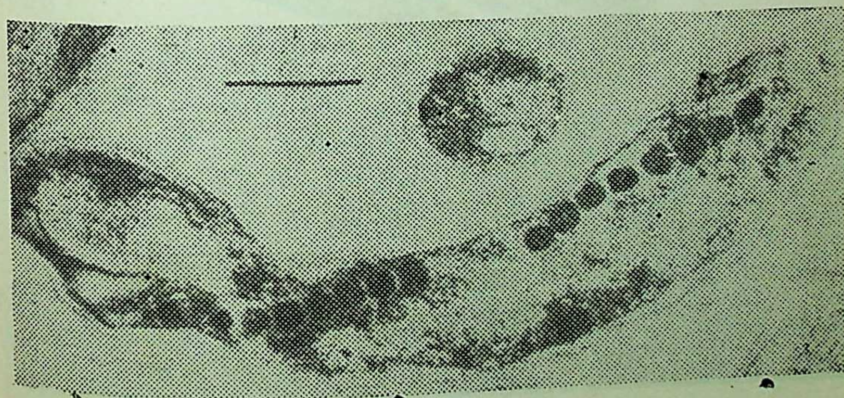
आश्चर्यजनक जीवाणु

१९७५ में एक ऐसे जीवाणु की खोज की गयी, जिसका चुंबकीय प्रभाव है। इसको अभी कोई नाम नहीं दिया गया। आर. बी. फ्रेंकेल और आर. पी. ब्लैकमोर ने अध्ययन से पाया कि 'जीवाणु' उत्तरी ध्रुव की ओर आसानी से तैरता है। वह भी क्षीण चुंबकीय क्षेत्र में, ये स्वच्छ व समुद्री पानी में अमरीका व बाल्टिक सागर में पाये गये; इनकी बनावट भू-चुंबकीय थी।

ब्लैकमोर ने रासायनिक विश्लेपण करके पाया कि जीवाणु में मैगनीटाइट अयस्क की मात्रा अधिक थी। प्रायः इसी अयस्क से लोहा प्राप्त किया जाता है। इस अयस्क को आमतौर पर 'लोडस्टोन' कहते हैं।

प्राचीन समय में समुद्री-यात्री इसी स्टोन से अपने पथ का निर्धारण करते थे। यह जीवाणु अधिकतर उस जगह पाया गया, जहां पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र उत्तर की अपेक्षा कमजोर था। ऐसी स्थिति में चुंबक जीवाणु को धरातल पर तैराने में मदद करता रहा।

प्रकृति के भीतर छुपे हुए रहस्यमय जीवाणु



मां बनने की सूचना

प्राचीन समय में मिस्र की महिलाएं गर्भ-धारण की पुष्टि के लिए प्राय: एक प्रयोग किया करती थीं, उस प्रयोग में वे स्वमूत्र को पोस्त के पौधे पर छिड़कती थीं, इससे यदि पौधे की मृत्यु हो जाती, तो वे समझती थीं कि सब कुछ सामान्य है। यदि पौधे पर कोई असर नहीं होता, तो उन्हें विश्वास हो जाता कि वे गर्भ-धारण कर चुकी हैं।

अब विज्ञान ने इससे भी सुदृढ़ विधि का आविष्कार किया है। इसमें महिलाएं 'किट' के माध्यम से अपनी गर्भावस्था का सही-सही पता कर सकेंगी।

यह 'किट' यूरोप में तैयार किया गया है। पिछले एक वर्ष से महिलाएं इन रसायनों के माध्यम से बगैर किसी डॉक्टर की सहायता से स्वयं घर पर अपने गर्भ-धारण की जानकारी पा रही हैं।

इस 'किट' की कीमत ७ से १० डॉलर तक है।

जब मां गर्भ-धारण करती है, तब उसके गर्भाशय में निषेचित अंडे से एक हारमोन का स्रवण होता है। इसे 'एच. सी. जी.' कहते हैं। यह मूत्र के साथ शरीर से बाहर बराबर निकलता रहता है। परीक्षण के समय महिला 'किट' के रसायनों को परख-नली में लेकर उसमें स्व-मूत्र की कुछ बूंदें डाले, तो परख-नली के भीतर रिंग का निर्माण हो जाता है। यही परिवर्तन महिला के गर्भ-धारण का सूचक है। अब तक ९७ प्रतिशत प्रयोग सही साबित हुए हैं।

फिर भी निर्माता अभी तक इसको शत-प्रतिशत गारंटी नहीं दे रहे हैं।

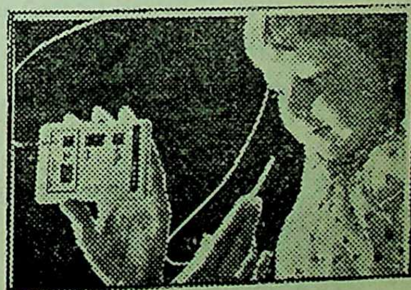
धनुर्विद्या एक चिकित्सा

अभी तक धनुर्विद्या मात्र मनोरंजन का साधन थी, लेकिन अब डॉक्टर इससे और भी बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं करने लगे हैं। जैसे अपंग बच्चों की चिकित्सा व मांसपेशियों को मजबूत करना और जो बच्चे पहिये-वाली कुरसियों से चलते हैं, उनको धनुर्विद्या के द्वारा अपने पैरों पर चलवाने का अभ्यास करवाना।

विद्युत-चालित थर्मामीटर

इस थर्मामीटर को प्रयोग में लाने से पहले झटके देने की आवश्यकता नहीं; बल्कि बैटरी से चार्ज करके शरीर का ताप माप सकते हैं। इससे २४ डिग्री सेंटीग्रेड से लेकर ४२ डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापमान ३० से ४५ सेकेंड में ज्ञात कर सकते हैं।

नया तापमापक



दिलावर खड़ा है

● देवेन्द्र कुमार

न जाने क्यों, यहां की गहमागहमी से भरी सुबह की शुरूआत, तड़कती दोपहर के बदले थकी-चुकी शाम और फिर उजाड़ बस्ती पर एकाएक उतर आनेवाला अंधेरा दिलावर को ज्यादा अच्छा लगता है। गोकि इस समय आमतौर पर यहां कोई नहीं होता। अधिकांश साथी मजदूर जा चुके होते हैं। केवल वे चार-पांच जने हैं जो खामोशी से गिरने का इंतजार करते 'खतरनाक' मकानों में रातें गुजारते हैं अंधेरे में, क्योंकि, सड़कों की बत्तियां बहुत दिन पहले ही बुझ चुकी हैं, फिर इन मकानों में बिजली का क्या काम ? ऊपर से उघड़ी हुई दीवारों के बीच कहीं-कहीं आग की छोटी-छोटी लपटें दीवारों पर कौंधती हैं और दूर से बमबारी से ध्वस्त शहर की याद दिलाती हैं।

पहली रात ऐसे ही एक क्वार्टर में बसेरा किया था दोनों ने। ईंटों के अनगढ़ चूल्हे के बीच इधर-उधर से बीनकर

अत्ती को जरूर कुछ हो गया है। हर रात सोते-सोते चौंककर उठ बैठना और वही चिल्लाना, "चोर ! चोर ! अजी, चोर घुस गया है घर में। तुम्हारा सामान चुराकर ले जा रहा है।"

यहां आये कुल जमा बीस दिन हुए हैं, लेकिन इसी बीच कैसी हो गयी है अत्ती।

सोच-विचार कर दिलावर का मन एक ही बात पर टिकता है। मन ही मन गाली देता है। जगह वाकई मनहूस है, हरदम वही धड़-धड़-धड़ाम। लाल-लाल धूल उड़ाती हवा बदन पर ठंडी लगती है, बरफीली। दिलावर को ऐसी गुम धूल में सांस लेने का खूब अभ्यास है। लेकिन, यह हवा उस हवा से कितनी अलग है, जो जमीन से आकाश की ओर उठते हुए मकानों के आस-पास धूल के बगूले उड़ाया करती है। वहां अपनी मेहनत को पलते-बढ़ते देखने का सुख होता है। लेकिन यहां . . .

कुछ दिन पहले तक यह बस्ती एकदम गुलजार थी। एकाएक किसी क्वार्टर की छत का हिस्सा गिर जाने से सब डर गये थे। जांच करनेवाली टोली आयी थी और उसने घोषित कर दिया था कि ये क्वार्टर रहने लायक नहीं रहे हैं। कभी भी गिर सकते हैं। इसके बाद कुछ दिनों में बस्ती एकदम खामोश हो गयी थी। सूरज ठेकेदार ने सब क्वार्टरों को तोड़ने का ठेका ले लिया था। गिरानेवाले मजदूरों की भीड़ में अत्ती और दिलावर भी थे।

लायी गयीं सूखी छिपटियां चट-चट की हलकी आवाज के साथ धुंआ देती हुई जल रही थीं। बिना गरदन की हंडिया में नमक मिला पानी खदबदाने लगा था।

इतनी ही देर में अत्ती ने मेहनत से लगकर जरा सफाई कर डाली थी। फर्श पर गिरे मलवे को परे सरकाकर लेटने-बैठने की जगह निकाल ही ली थी।

चूल्हे के पास घुटनों पर मुंह टिकाए आग को देखती हुई अत्ती को चौंकाने का मन नहीं हुआ उसका। चुप खड़ा वह खुश्क गले में ताजे पानी की ठंडक घूटता हुआ ताकता रहा।

तभी अत्ती ने पुकार लिया था, "आ जाओ न।" वह चोर-सा हड़बड़ाया था। फिर इधर-उधर ताककर दीवार से निकले सरिये पर अंगोछे की पोटली लटका अत्ती के पास जा बैठा था।

खाने के बाद दोनों पास-पास लेटे थे। अत्ती की हथेलियों से उठती ताजे आटे की सौंधी महक उसे संतुष्ट कर गयी थी। टूटी छत के बीच से झांकते आसमान के टुकड़े पर दो-तीन फीके सितारे टंगे थे। नंगी दीवारों से हवा बेरोकटोक घुस रही थी।

अत्ती चुप चित्त लेटी ऊपर ताक रही थी। "क्या सोच रही है रे?" उसने हौले से पूछ लिया था।

वह हंस पड़ी, "कितनी अच्छी जगह है यह।"

"रही पागल ही। अभी टूटी छत गिर जाए तो बस हो जाए... जगह ठीक-ठाक होती तो रहनेवाले ही क्यों छोड़ कर जाते।"

"मेरे तो हाथ चस-चस कर रहे हैं। ये मकान कमजोर हैं। मां री। गांव के झोपड़े की याद नहीं है?" फिर बोली थी, "जरा पूछ ले न ठेकेदार से। हमें एक घर दे दे तो ...एक न टूटेगा तो क्या हो जाएगा? मेरा तो वहुत मन कर रहा है यहां रहने को।"

दिलावर हंसता रह गया था। अत्ती भी बस ...पागल कहीं की।

रात को चाहने पर भी बहुत देर तक नींद नहीं आयी थी। अत्ती की गरम सांसें उसकी मूंछों को धीरे-धीरे गुदगुदातीं, तो एक अजानी पुलक से मन यहां से वहां तक भर जाता।

कितने दिनों बाद वह अत्ती के पास आराम से लेट पाया था। दो साल से ऊपर हो गये गांव छोड़े हुए, या पागल कुत्ते की तरह वहां से खदेड़े जाने से भागे हुए। इसके बाद वे दोनों जहां भी रहे हैं, वहां हर कहीं ढेर सारे लोगों के बीच ही, भीड़भरी रातें व दिन, किसी तरह काटे हैं।

अगले दिन वह क्वार्टर तोड़ दिया गया था। उसने अत्ती के साथ दूसरी रात दूसरे गिरने-गिराने को हो रहे मकान में गुजारी थी। उन रातों को सारी जिंदगी नहीं भूल पाएगा दिलावर।

लेकिन, यहीं बस हो गया था। उस सुबह दिलावर की नींद कुछ जल्दी टूट

गयी थी। अपने पास लेटी अत्ती को टटोला था उसने। लेकिन अत्ती नहीं थी। न जाने कहां चली गयी थी। कुछ दूर पर सफेद-सफेद कपड़ों में लिपटी एक मूरत-सी बैठी थी। बिना पल्लों के खिलाड़ी दरवाजों से आती भोर की उदास उजास में लिपटी अत्ती उसे कोई दूसरी ही मालूम पड़ी थी। वह उसी की ओर ताक रही थी। फिर लगा, जैसे उसकी ओर नहीं बल्कि आर-पार देख रही हो। मां कसम, एकदम खौफ खा गया दिलावर। भड़भड़ाकर उठा और अत्ती को झिझोड़ डाला, लेकिन उसमें कोई हरकत नहीं हुई, "क्या है रे। कैसे बैठी है? बोलती क्यों नहीं?"

लेकिन जवाब नहीं दिया अत्ती ने। उठकर कपड़े ठीक करने लगी थी। फिर बोली, "चलो, आदमी आते होगें। ठेके-दार शायद आ गया है।"

यह दिलावर की बात का जवाब एकदम नहीं था। उसने और कुछ नहीं पूछा। तेज मिजाज की गरम आंच और ठंडे सर्द रुख दोनों को ही वह अच्छी तरह जानता है। बीच-बीच में वह एकदम बेगानी-सी हो जाती है। ऐसे देखती है कि बस ...

दिन भर वह दूसरी मजदूरिनों के साथ खटती रही थी। दिलावर बीच-बीच में उसे निरख-परख लेता था। कुछ-कुछ हिसाब लगाता-सा। उसे एक झूठी उम्मीद थी। शायद, शाम को अत्ती ठीक मिले।

शाम को उसने अत्ती से बेबात ही





पूछा था, "अरी, वह रातवाला घर तो टूट गया। आज किसमें बसेरा करेंगे?"

"घर!" अत्ती ने दोहराया था।

"हां, चल। खाना-पीना नहीं करना है क्या?"

"यहीं ठीक है। वहीं क्या होगा?"

फिर दिलावर के कहने-समझाने पर अत्ती साथ चली गयी थी। उसने रोटियां सेकी थीं। मिन्नत करने पर खा भी ली थीं। लेकिन यह बात दिलावर को लगातार घेरे रही कि यह वह अत्ती नहीं है। रात में उसे पास खिसकाकर नरमाई से पूछना चाहा, तो अत्ती ने छिटककर कहा था, "दिक मत कर। तू मेरा मरद नहीं है जो ...।"

दिलावर सन्न रह गया था—सन्न। अंदर कहीं कुछ जोर से तड़क गया था। सब से बड़ा तीर है अत्ती के तरकस में यह। और चलाती भी कब है, जबकि वह एकदम कमजोर होता है।

ठीक ही तो कहती है। मैं भला मरद कहां हूं उसका। मैं तो कुछ भी नहीं हूं, कोई भी नहीं। वह पिछली बातों को एकदम भुलाना चाहता है, पर अत्ती ...।

गांव के वे मनहूस दिन। वह शाम, जब उसने अत्ती को नदी में कूदने से रोका था। और फिर जब गांववाले अत्ती पर पत्थर बरसाकर उसे मार डालने को तैयार थे, तब उसका हाथ पकड़कर वह भागता चला आया था। मुखिया का बेटा

अत्ती को काबू नहीं कर पाया था, तो उसे सरेआम चुड़ैल बताकर पूरे गांव के हाथों में पत्थर थमा दिये थे।

लेकिन इसी से क्या कोई मरद बन जाता है किसी का। नहीं। यही बात अत्ती के मन में है। बार-बार बता देती है। लेकिन यह बताना नहीं चाहती कि मरद बनने के लिए और क्या करना पड़ेगा। तब से वे दोनों साथ-साथ हैं, लेकिन शायद उनके बीच की दूरी जरा भी कम नहीं हुई है। वरना, अत्ती यह कैसे कह देती? कहा इससे पहले भी कई बार है, लेकिन कहते ही अत्ती की आंखों से बेसाख्ता बहनेवाले आंसू उसकी पोल खोल देते थे और दिलावर उखड़ते-उखड़ते रह जाता था।

इस बार एक-एक करके कई दिन बीत गये हैं, पर अत्ती की तबीयत ठीक नहीं हो पा रही है। रात को बीच में कई बार चीखकर उठ बैठती है, वही चोर-चोर चिल्लाती हुई। जैसे हर रात गुजरती है, दिलावर का वहम पक्का होता जाता है कि अत्ती को जरूर कुछ हो गया है। लेकिन क्या?

आज भी वैसी ही शाम थी। चुप, गुम अत्ती चूल्हे के पास घुटनों में सिर दिये बैठी थी। दिलावर ने अब कोशिश छोड़ दी है। वह देखना चाहता है, अत्ती के तरकस में अब कौन-सा तीर बाकी है?

अत्ती सो गयी है। लेकिन दिलावर को नींद नहीं आ रही है। पर अत्ती की नींद भी असली नहीं लगती। रह-रहकर सिहर उठती है। दिलावर मना रहा है, वह सोती रहे, तो ठीक। इसी क्या और क्यों में डूबते-उतराते उसे नींद आ गयी।

एकाएक अत्ती ने उसे झिंझोड़ डाला था। चोर-चोर चिल्लाती हुई, वह उससे चिपट गयी थी। उसे छूकर दिलावर चौंका था। अत्ती गरम दहक रही थी। शायद बुखार था।

"अजी चोर आया है।" आंखे मुंदी थी, होंठ फड़क रहे थे, "वह तुम्हारा सामान ले जा रहा है। दरवाजा बंद कर दो न।"

दिलावर न चाहते हुए भी हंस पड़ा। खूंटी पर झूलती पोटली, एक तसला और



बिना गरदन की हंडिया ले जाना है, तो ले जाए। जरूर चोर उससे भी ज्यादा जरूरतमंद होगा और यही बात उसने कांपती अत्ती के कानों में फुसफुसा दी थी।

"वह जा रहा है। छिपकर देख रहा है। दरवाजा बंद कर लो न।"

दिलावर चारों तरफ देखने पर मजबूर हो उठा। तीन तरफ दीवारों में बिना किवाड़ों के खिड़की-दरवाजे। उनके किवाड़ पहले ही अलग निकाल लिये गये हैं। हवा बेरोकटोक घुसी आ रही है। ऊपर छत भी नहीं है, और दरवाजा बंद करने को कह रही है पगली!

उखाड़े गये किवाड़ बाहर बरामदे में दीवार से टिके हैं।

अत्ती जोर-जोर से रो रही है।

वह उठ खड़ा होता है। इसे बहलाना जरूरी है। उठकर एक भारी-भरकम किवाड़ घसीट लेता है, हाथों में खुरदरी क़िनार चुभ रही है।

अत्ती घुटनों में मुंह छिपाए बैठी है। दिलावर को एकाएक गुस्सा आ जाता है। कमबख्त नखरे कर रही है। फिर अपने पर काबू करके कहता है, "चोर को आना होगा, तो कहीं न कहीं से आ ही जाएगा, छत से, खिड़की से, कहीं से भी .. तू आराम से सो जा।"

अत्ती उसकी ओर ताकती, सुबकती है, "हां जी, ठीक ही है, चोर ठेकेदार आ ही जाएगा, कहीं से भी। कैसे रोकोगे? कहीं न कहीं से जरूर ही आ जाएगा।"

कुछ पल मौन का सन्नाटा रहता है। फिर कहती है अत्ती, "ठीक कहते हो।" आवाज में गहराई की ठंडक है।

दिलावर अड़िग खड़ा रह जाता है दरवाजा पकड़े हुए। कई तसवीरें एक साथ कौंधती हैं—दिन-दोपहर की, कई बार इधर-उधर सूरज ठेकेदार और अत्ती। तब उसने कुछ न समझा था, लेकिन अब।

अत्ती औंधी लेटी है। शायद बेहोश है। दिलावर किवाड़ थामे खड़ा है। उसकी खुरदरी मुट्ठियों में दर्द की लकीरें खिंच रही हैं।

अत्ती खामोश है। दिलावर खड़ा है। वह खड़ा रहेगा कब तक?

अत्ती अधमुंदी आंखों से जागती सपना देख रही है। बीचों-बीच दरवाजा थामे खड़ा दिलावर किसी दैत्य की तरह बड़ा होता जाता है। उसका सिर बिना छतवाले घर से ऊपर उठकर काले आसमान में जा लगा है। अत्ती को नींद आ रही है।

दिलावर खड़ा जो है।

—१९०५, गली लेहस्वा,
बाजार सीता राम, दिल्ली-६

मैं अपनी परेशानी किसी से नहीं कहता क्योंकि आधे लोग तो ऐसे होते हैं जिन्हें मेरे मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं रहती, बाकी आधे मुझे परेशान देखकर खुश होते हैं।

—कर्क डगलस

बुद्धि-विलास

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें, तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए। आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प।

—संपादक

१. **गोविंद** अपने साथी राम से कम पैसेवाला है और राम दूसरे साथी मोहन के बराबर पैसेवाला है। बताइए, मोहन के पास गोविंद से अधिक पैसा है या कम ?

२. **चीन** का वह कौन-सा नगर है, जो अब से लगभग ३२ वर्ष पूर्व तक एक ऐसी मुक्त आबादी के रूप में था, जिसका वस्तुतः कोई अपना राज्य-प्रधान न था, अपना झंडा न था, अपनी भाषा न थी, अपनी करेंसी न थी, जहां आयकर नहीं था, आने-जाने में कोई पाबंदी न थी, जहां अनेक देश व जातियों के लोग पाये जाते थे—और यह अवस्था लगभग एक सौ वर्षों तक बनी रही।

३. क. **क्या** पाकिस्तान के किसी व्यक्ति को नोबल पुरस्कार मिला है? यदि हां, तो किसको, कब और किस विषय में ?

ख. अब तक कितनी महिलाओं को नोबल पुरस्कार मिल चुका है ?

ग. हाल में किस महिला को यह पुरस्कार प्रदान किया गया है ?

४. क. १९८० के लोकसभा चुनावों में किस व्यक्ति को सबसे पहले निर्विरोध निर्वाचित घोषित किया गया ?

ख. १९७७ के लोकसभा चुनावों के साथ-साथ किस राज्य की विधानसभा का भी चुनाव हुआ था ?

५. क. **सूर्य** की आंतरिक गतिविधियों के अध्ययन हेतु इस समय कौन-सा 'वर्ष' मनाया जा रहा है? यह कब से कब तक है?

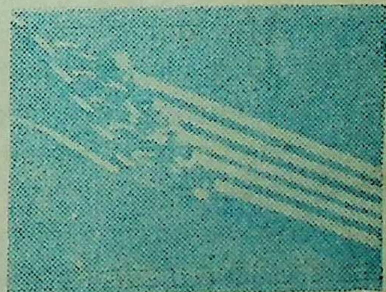
ख. निकट-भविष्य में पूर्ण सूर्य-ग्रहण (खग्रास) कब लगनेवाला है ?

ग. इससे पहले भारत में दिखायी देनेवाला पूर्ण सूर्य-ग्रहण कब लगा था ?

६. **बिजली** के बल्ब का आविष्कार किसने और कब किया था ?

७. **सिंगरेनी** कहां है ? यह किस चीज के लिए प्रसिद्ध है ?

८. **नीचे** दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है—



● प्रभा भारद्वाज



वसीयत का अर्थ होता है, अपने अर्जित धन को किसी के हवाले कर देना। अकसर मृत्यु के बाद ही वसीयत की कीमत आंकी जाती है। एक ग्रीक-कथा है कि एक बार एक राजा ने वसीयत कर दी थी कि बारह वर्ष के बाद उसकी संपत्ति की स्वामिनी उसकी पत्नी होगी। कहा जाता है कि किसी भविष्य-वक्ता ने ग्रीक के उस राजा के संबंध में भविष्यवाणी की थी कि दस वर्षों के भीतर ही उसका निधन हो जाएगा। राजा ने सावधानी के रूप में अपनी वसीयत में बारह वर्ष का समय लिखा दिया था। हुआ यह कि बारह साल पूरे हो गये, लेकिन राजा की मृत्यु नहीं हुई। कहानी है कि उसकी पत्नी, किसी और व्यक्ति से प्यार करती थी। उसने एक रात राजा का वध करवा दिया और राज्य की स्वामिनी बन बैठी।

इस घटना का प्रभाव दुनियाभर में पड़ा और लोग अपनी वसीयत को सोच समझकर करने लगे।

पलंग प्रेमिका के नाम!

धन -संपत्ति की वसीयत एक बात है, और शायराना मिजाज और मूड के मजे लेने के लिए वसीयत करना दूसरी बात है। शेक्सपियर-जैसे महान कवि ने भी एक बार अपनी प्रेमिका के साथ ऐसा ही मजाक किया था, प्रेमिका का नाम था—ऐन्नी हेथवे। शेक्सपियर ने उसके नाम अपना सेकेंड हैंड पलंग वसीयत में लिख दिया था। सेकेंड हैंड पलंग का अर्थ यह न मान लिया जाए कि वह बेकार था, असल में शेक्सपियर को पलंग बदलने का शौक था। उसने जब नया पलंग खरीदा, तब दूसरे बढ़िया पलंग को उसने अपनी प्रेमिका के नाम वसीयत में लिखवा दिया। उसमें शर्त यह थी कि मरने के बाद जब उसकी संपत्ति का बंटवारा हो तब वह पलंग ऐन्नी के यहां भेज दिया जाए। शेक्सपियर ने अपनी खब्त में इस तरह की बहुत-सी चीजें बहुतों के नाम वसीयत कर दी थीं। तब सहज ही यह कल्पना की जा सकती है कि उसके मरने के बाद किस कदर उसके उत्तराधिकारी उसकी संपत्ति को बंटोरने में लगे रहे।

बिना ब्वाय फ्रेंड्स के पांच वर्ष

शेक्सपीयर तो शायर था और शायर अकसर मूडी होते हैं। लेकिन लंकाशायर के दांतों के डॉक्टर ने तो एक दूसरी ही

मिसाल पेश की, डॉक्टर का नाम था--फिलिप ब्रैंडी । फिलिप की वहां अच्छी-खासी प्रैक्टिस थी, और उसने बहुत-से सहायक भी रखे थे। उन सहायकों में कई नर्सें भी थीं । उन नर्सों में एक नर्स थी--अमेलिया केट्टी । डॉक्टर उससे प्यार करता था और अकसर उसे केट्टी के नाम से भी बुलाया करता था ।

एक दिन अचानक फिलिप ब्रैंडी का देहांत हो गया; उसके बाद जब उसकी टेबल के सारे कागज देखे गये, तब एक वसीयत हाथ लगी। वसीयत बाकायदे कोर्ट में रजिस्टर्ड कर दी गयी थी। उसके अनुसार, डॉक्टर की संपत्ति में से १८१ हजार पौंड नर्स अमेलिया केट्टी को दिये जाने थे । लेकिन यह पैसा उसे आसानी से और तुरंत मिलनेवाला नहीं था, क्योंकि डॉक्टर फिलिप ने वसीयत में शर्त रखी थी कि उसके मरने के बाद अमेलिया किसी भी ब्वायफ्रैंड के साथ पांच वर्ष तक न तो कहीं जाएगी और न ही किसी प्रकार का मेकअप करेगी और किसी भी तरह के गहने भी नहीं पहनेगी। इन पांच वर्षों में वह पूरे मन से रोगियों कि सेवा करेगी ।

वह डॉक्टर बहुत अनुभवी था, उसने अपने तीन दोस्तों की एक कमेटी बनायी थी और वसीयत में यह भी लिखा था कि जब वे तीनों व्यक्ति निर्विवाद रूप से यह घोषित कर देंगे कि नर्स केट्टी ने डॉक्टर फिलिप की मर्जी के विरुद्ध कोई काम नहीं किया, तब उसे वह राशि दी जाएगी । कहा जाता है कि पैसों के लोभ में केट्टी ने पूरी ईमानदारी के साथ डॉक्टर की हर बात मानी, और जब वह तीन सदस्यीय समिति के सामने पेश की गयी, तब उसने कहा, "मुझे डॉक्टर द्वारा रखी गयी शर्तों



एमेलिया केटी : पांच वर्षों तक मेकअप न करने की शर्त

को निबाहने में कहीं कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि डॉक्टर जिंदगीभर मुझसे प्रेम करते रहे, फिर भी उन्होंने प्रेम का जो मूल्य मुझसे मांगा है, वह बहुत कम है।"

अंतिम दिन कब्र पर

उसने सदस्यों को यह भी आश्वस्त किया कि वह जिंदगीभर विवाह नहीं करेगी, और डॉक्टर फिलिप्स के दवाखाने को अपना समझकर चलाती रहेगी। कहा जाता है कि नर्स केट्टी पांचवें वर्ष के अंतिम दिन बहुत भाव विह्वल होकर रोयी, और उसने वह सारी रात डॉक्टर फिलिप की कब्र में बैठे-बैठे बितायी।

मेकअप करना लाजिमी!

ब्रिटिश राज्य के एक संसद-सदस्य श्री राल्फ रेनर, जिनका पिछले वर्ष ही देहांत हुआ, अपने पीछे २० पौंड की वसीयत अपनी परिचारिका के नाम कर गये। उसके साथ उनकी शर्त थी कि वह इस धन को केवल लिपस्टिक खरीदने में लगाएगी। और ३५ पौंड का एक कांपैक्ट भी खरीदेगी और जब तक यह मेकअप का सामान खत्म न हो, वह मेकअप करती रहेगी।

वह परिचारिका जब तक उनके साथ काम करती रही, तब तक उसने मेक-अप नहीं किया। इसका कारण, उसकी बनाव-श्रृंगार के प्रति अरुचि थी। बचपन से ही कठिन संघर्षों में से गुजरते रहने के कारण वह अपने आपसे लापरवाह हो गयी थी। राल्फ रेनर अपने जीवनकाल में अकसर उसे कहा करता था, "तुम इस तरह से बुझी-बुझी क्यों रहती हो, जीवन जीने के लिए है, खुद प्रसन्न रहो, दूसरों को रखो। मेकअप करना स्वयं को तरो-ताजा बनाये रखना है, थोड़ा सज-धज के रहा करो।" उसने अपने जीते जी उसके लिए तरह-तरह की लिपस्टिकें और 'कांपेक्ट' लाकर दिये, लेकिन उसने कभी उनका उपयोग नहीं किया। जिस दिन उसको अपने मालिक की इस वसीयत का पता चला, उसकी आंखें भर आयीं तो उसने सुबकते हुए सिर्फ इतना कहा, "मालिक मुझसे कितना स्नेह करते थे, उनके जीते-जी मैं यह नहीं समझ पायी। काश! यह बात मैं पहले समझ पाती और उनके कहे अनुसार मेकअप कर लेती, तो उनकी वह इच्छा तो पूरी हो जाती। अब तो मजबूरन मुझे मेकअप करना ही पड़ेगा, कम से कम उनकी आत्मा की शांति के लिए ही!"

विवाह नहीं, ब्वायफ्रेंड्स!

हड्सफील्ड की मैरियन शा ब्वायफ्रेंड्स तो रख सकती थी, लेकिन विवाह नहीं कर सकती थी। इसका कारण था ३०,००० पौंड की वसीयत, जो मेरियन शा का मंगेतर उसके नाम छोड़ गया था, मिस शा और उसका मंगेतर नूरीस हेलर ३० वर्ष तक मंगेतर रहे, लेकिन विवाह नहीं किया। उसने अपनी सीयत में, जो उसने मेरियन के नाम की, एक शर्त रखी

कि जब तक मिस शा अकेली हैं, तब तक वह उसके धन का उपयोग कर सकती है, लेकिन जैसे ही वह शादी कर लेगी, वैसे ही उसको उसकी वसीयत पर कोई अधिकार नहीं रहेगा ।

विवाह की मुसीबत

कुछ लोग अपनी वसीयत को लोगों की सेवाओं का कर्ज चुकाने के प्रयोग में लाते हैं, कुछ लोगों से बदला लेने में। फ्रांस के एक धनी व्यापारी ने १०,००० फ्रेंक एक ऐसी महिला के नाम कर दिये, जो २० वर्ष पहले उसकी सगाई को तुड़वाने के लिए जिम्मेदार थी। उसका कहना था कि वह उस महिला का आभारी है, क्योंकि उसने उसकी सगाई तोड़वाकर उस पर बहुत-बहुत उपकार किया, क्योंकि उसकी बदौलत वह अविवाहित रह सका है, और स्वतंत्रता तथा स्वावलंबन-भरा जीवन जी सका है।

उसकी एक बहन ने उसके वसीयतनामे से असंतुष्ट होकर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए कहा, "मेरा भाई सनकी था, वह कभी आयरलैंड में नहीं रहा, वह केवल वहां टैक्स-समस्या को हल करने के लिए ही गया था, लेकिन शीघ्र ही वह वापस आ गया था । उसे यह क्या सूझी ।"

इससे भी अधिक सदमा पहुंचा, ब्रिटेन के एक अमीर निवासी रिक्लूयस ऑरनैस्ट डिगवीज के संबंधियों को। जब वह सन १९७६ में मिला, तब उसने अपनी सारी संपत्ति, जो २६,१०७ पौंड थी, किसी ऐसे व्यक्ति के नाम कर दी, जिसे ८०, वर्ष के भीतर ही इस संसार में जन्म लेना था, इसके साथ उसने शर्त भी रखी कि जो हुलिया ऑरनैस्ट ने उस जन्म लेनेवाले का बताया है, उस हुलिये का आदमी अगर ८० वर्ष के भीतर पैदा नहीं हुआ, तो उसकी वसीयत की सारी संपत्ति ब्रिटेन के महाराजा के नाम कर दी जाए।

इस जन्म लेनेवाले व्यक्ति का नाम था, जीसस क्राइस्ट !

ये थीं कुछ सनकी लोगों की वसीयतें, जिनके वसीयतनामें वसीयत करनेवाले के जीवन की झलक देते हैं, और अपने आप में एक कहानी कहते हैं। इस बीसवीं सदी में पश्चिम में अब वसीयत मात्र उपकार के लिए या कर्ज चुकाने के लिए ही नहीं, बदला लेने के लिए भी प्रयोग में लायी जा रही है।

--द्वारा : 'कादम्बिनी', नयी दिल्ली-१

न्यूयार्क में तलाक के लिए आवेदन करते हुए पत्नी ने अपना दुखड़ा रोया, "महोदय, उसने घर की प्रत्येक पलेट तोड़ दी और मेरे साथ दुर्व्यवहार किया।"

"क्या उसने अपने किते पर न तो माफी मांगी, न ही खेद व्यक्त किया ?" न्यायाधीश ने पूछा ।

"कहां, महोदय ? वह कुछ कहता, इसके पहले ही उसे 'एंबुलेस' ले गयी।"

यादें भूली-बिसरी फिल्मों की !

● उपेन्द्रनाथ अश्क

चालीस-पचास वर्ष पूर्व तमाम फिल्मों में से, जिसने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, जिंदगी को समझने और जिंदगी का उद्देश्य तय करने में मदद दी और मेरे विचारों पर जिसका असर आज भी है, वह थी शांताराम की फिल्म 'आदमी'।

आज सोचता हूं तो लगता है कि शांताराम ने 'आदमी' बरुआ की 'देवदास' के जवाब में बनायी थी। उसके माध्यम से जैसे वे 'देवदास' के आत्मघाती प्यार की आलोचना करते हुए कहना चाहते थे कि जिंदगी प्यार में मरने के लिए नहीं है, प्यार की प्रेरणा से और हुमककर जीने के लिए है।

उस फिल्म से प्रभावित होकर मैंने बाद में शांताराम की बहुत-सी पुरानी-नयी फिल्में देखीं—'दुनिया न माने', 'पड़ोसी', 'डॉ. कोटनिस की अमर कहानी', 'तीन बत्ती चार रास्ता', 'दो आंखें बारह हाथ', 'झनक-झनक पायल बाजे', आदि . . .। यद्यपि 'दुनिया न माने' में बासंती, 'पड़ोसी' में मजहर खां और जागीरदार, 'डॉ. कोटनिस की अमर कहानी' में जयश्री और शांताराम, तथा 'तीन बत्ती चार रास्ता' में संध्या के अभिनय और 'झनक-झनक पायल बाजे' में गोपीकृष्ण के नृत्य की याद मुझे आज तक है तथा 'तूफान और दिया' में भरत व्यास का गीत आज भी कानों में गूंजता है, लेकिन इनमें से किसी फिल्म का मुझ पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना 'आदमी' का।

संघर्ष के वे दिन

लॉ कालेज में दाखिल होने के कुछ ही महीने बाद, चूंकि मेरी पहली पत्नी बीमार रहने लगी थी, मेरा आर्थिक संघर्ष बहुत तीव्र हो गया था, इसलिए फिल्म-विल्म देखना मैंने लगभग छोड़ दिया था। एल. एल. बी. में दाखिल हुआ तो पत्नी को डॉक्टरों ने यक्ष्मा बता दिया। मैं उसे लाहौर ले गया। पत्रकार के नाते अपने रुसूख से काम लेकर मैंने उसे गुलाबदेवी टी. बी. हस्पताल लाहौर में दाखिल करा दिया। कॉलेज की फीस जुटाने को 'ट्यूशन' ले ली। किताबों की समस्या कानूनी पुस्तकें बेचनेवाले, मेरी कहानियों के प्रशंसक, एक दुकानदार—श्री पुरी—ने हल कर दी, उनकी दुकान के पीछे बैठ मैं किताबें पढ़ता था। कानून तो मैंने

'डिस्टिंक्शन' से पास कर लिया, पर पत्नी को नहीं बचा सका।

मेरी पहली पत्नी बहुत ही भोली; उदार और हंसमुख थी। मैंने उसे बचाने की बहुत कोशिश की, पर तब यक्ष्मा घातक रोग था। मई में मैंने कानून पास किया। दिसंबर में वह चली गयी। मैं बेहद निराश हो गया। जिंदगी मुझे नितांत अर्थहीन दिखायी देने लगी। उन दिनों, जब मैंने 'कंपीटीशन' में बैठने का इरादा छोड़ दिया था, कानून की किताबों को तिलांजलि दे दी थी और मैं अपनी उदास शामें लाहौर की सड़कों पर आवारा घूमता हुआ बिताता था; कभी-कभी मन में आत्महत्या तक का विचार आता था। ऐसे 'मूड' में दो-तीन वर्ष बीत गये थे और मैं स्थिर नहीं हो पा रहा था कि अचानक एक शाम जिला कचहरी लाहौर के पास एक मकान की दीवार पर मैंने प्रभात फिल्म कंपनी की नयी फिल्म का इश्तिहार देखा, जिस पर मोटे अंगरेजी अक्षरों में लिखा था—'लाइफ इज फॉर लिविंग' और उर्दू में उसका शीर्षक था—'आदमी'।

यदि इस फिल्म के विज्ञापन का शीर्षक केवल उर्दू में होता, अर्थात सिर्फ 'आदमी' तो मैं अपनी उस उदास मनःस्थिति में कभी वह पिक्चर देखने न जाता लेकिन अंगरेजी शीर्षक ने न केवल मेरा ध्यान खींचा, फिल्म देखने की उत्कंठा भी जगा दी और मैं फिल्में न देखने के बारे में अपना इरादा बदलकर उसे देखने गया।

मैं मान लेता हूं कि उस फिल्म ने मेरी उस उदास, निराश और आत्मघाती



'लाइट ऑव एशिया' में हिमांशु राय और सीता देवी

मनःस्थिति को बदलने में बड़ा काम किया और 'जिंदगी जीने के लिए है'—यह सूत्र बद्ध-मूल होकर मेरे मन में बैठ गया। जिंदगी में पहली बार मैंने जीने के बारे में कुछ बुनियादी प्रश्नों पर विचार किया और जिंदगी का आदर्श बनाया, जिससे मैं फिर नहीं भटका।

आज चालीस वर्षों के बाद 'आदमी' की कहानी के संदर्भ में मेरी स्मृति धुंधला गयी है। जहां तक मुझे याद पड़ता है, उसमें एक सिपाही (साहू मोदक) किसी केस की तफतीश के सिलसिले में वेश्याओं की गली में जाता है और वहां एक वेश्या (शांता हुबलीकर) से प्रेम करने लगता है, जो उसे कई भाषाओं में गाना गाकर रिझाती है। दोनों का प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है, लेकिन सिपाही उसे अपनी नहीं बना सकता। वास्तव में उसे हृदय से प्यार करते हुए, वेश्या अपने आपको उसके योग्य नहीं समझती। उससे बचती है और इस प्रयास में एक लोलुप की हत्या कर देती है और अंततः उसे काले पानी की सजा होती है। साहू मोदक आत्महत्या करने का प्रयास करता है। तभी एक वृद्ध आकर उसे जीवन-संघर्ष में जीवित रहने के लिए प्रेरित करता है। फिल्म के अंत में हम साहू मोदक को उपादेय ढंग से जिंदगी जीते हुए और अपने पेशे में उन्नति करते हुए देखते हैं।

उस फिल्म में नायिका द्वारा भिन्न-भिन्न भाषाओं के गीत गाने का दृश्य अथवा एक बाग में उनके प्यार के दृश्य आज भी मेरे मन पर अंकित हैं। जिस चीज की मुझे आज भी याद है, वह उस फिल्म की तीव्र गति थी। बाग में नायक-नायिका के प्रेम के दृश्यों में विशेषकर! फिल्मी दुनिया पर व्यंग्य उस फिल्म की विशेषता थी।

शांताराम अपनी फिल्मों के लिए कभी प्रसिद्ध सितारों के चक्कर में नहीं पड़े। उन्होंने हमेशा अपनी फिल्मों के लिए सोद्देश्यता लिये हुए नये आधार-भूत विचार चुने, नयी कहानियां लिखवायीं, उन्हें रूपायित करने के लिए नये अभिनेता ढूंढ़े और अपने कुशल निर्देशन से उन्हें चमका दिया। उनकी फिल्मों का कोई 'फारमूला' नहीं रहा। 'आदमी' में मैंने जो दृश्य देखे थे, फिर उनकी किसी फिल्म में नहीं देखे। इसलिए भारत के फिल्म निर्देशकों में शांताराम 'अकेले' हैं—कोई दूसरा उन जैसा नहीं, न वे किसी दूसरे जैसे हैं। उनकी हर फिल्म पर उनके निर्देशन की गहरी छाप है।

मैं बन की चिड़िया...

उस वक्त, जब 'प्रभात फिल्म कंपनी' से शांताराम सोद्देश्य फिल्में बना रहे थे और 'न्यू थियेटर्स' में 'सुबह का सितारा'—जैसी चालू फिल्मों के बदले देवकी बोस और बरुआ एक-के-बाद एक कलापूर्ण फिल्में बनाने लगे थे, बांबे टाकीज में हिमांशु राय सामाजिक फिल्में बना रहे थे। तभी द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया

और दर्शकों में भारी बदलाव आ गया।

मैंने बांबे टाकीज के संस्थापक श्री हिमांशु राय को नहीं देखा, न वे फिल्में देखीं, जो उस जमाने में उन्होंने बांबे टाकीज से प्रस्तुत कीं—सिवा 'अछूत कन्या' के, जिसमें अशोक कुमार और देविका रानी थे और जिसका वह गाना 'हिट' गया था—

मैं बन की चिड़िया बन के
बन-बन बोलूं रे
मैं बन का पंछी बन के
संग-संग डोलूं रे

लेकिन मैंने हिमांशु राय को फिल्म के परदे पर देखा जरूर था। मुझे याद है, मैं कॉलेज में पढ़ता था, खामोश फिल्मों का जमाना था और स्टेशन रोड में नये खुले सिनेमा हॉल के मालिक लाला सोहन-लाल को मैंने पटा लिया था और मैं रोज शाम को वहां जाता था। तभी फिल्मी पत्रिकाओं में मैंने पढ़ा, हिमांशु राय अंग-रेजी में महात्मा बुद्ध के जीवन पर एक फिल्म 'लाइट ऑव एशिया' बना रहे हैं और उसमें यशोधरा की भूमिका के लिए नायिका की खोज कर रहे हैं। जब वह फिल्म बनी और जालंधर में लगी तो मैं और हसीब देखने गये। वह फिल्म चंद दिन से ज्यादा नहीं चली, पर मुझे वह साफ और 'स्लिक' लगी थी। आज मुझे उसका कुछ भी याद नहीं, सिवा एक दृश्य और महात्मा बुद्ध के रूप में हिमांशु राय की छाया के, जो फिल्म के परदे पर



लेखक

दिखायी गयी थी और यशोधरा की भूमिका में काम करनेवाली लंबी, सुंदर, सौम्य सीता देवी के। अजीब बात है कि उस फिल्म का केवल एक दृश्य याद रह गया है—जब राजा शुद्धोधन के आदेश से कपिलवस्तु की तमाम सुंदर कुंवारी युव-तियां महल के सामने दोनों ओर आ खड़ी होती हैं—यह मनाती हुई कि राजकुमार सिद्धार्थ उन्हीं को चुने और सजे-बजे हाथी पर सवार राजकुमार सिद्धार्थ मंत्री के साथ उनको देखता हुआ उनके बीच से गुजरता है। हठात उसकी आंखें बायीं पंक्ति में खड़ी यशोधरा से मिलती हैं। हाथी रुक जाता है। यशोधरा चुन ली जाती है। बस, सारी फिल्म में यह दृश्य मुझे याद रह गया है। विशेषकर महलों से निकलता हाथी। उसके शरीर पर रेशमी झोल और माथे पर चमकता मुकुट।

'लाइट ऑव एशिया' बनाने के कितने वर्ष बाद हिमांशु राय ने 'बांबे टाकीज'

की स्थापना की, मैं नहीं जानता। १९४५ में मेरे बंबई जाने से पहले भगवती बाबू और नरेंद्र शर्मा वहां मुलाजिम थे। भगवती बाबू ने कौन-सी कहानियां लिखीं, नरेंद्र ने कौन से गीत—मुझे कुछ पता नहीं। इतना पढ़ा या सुना था कि 'अछूत कन्या' के बाद पै-दर-पै 'बांबे टाकीज' की कई फिल्में फ्लाप हो गयीं, मंहगे जरमन डायरेक्टर को जवाब दे दिया गया था, आर्थिक स्थिति गड़बड़ा गयी थी तभी एक व्यक्ति ने जो साउंड रिकार्डिस्ट था, शरत की एक कहानी की नींव पर एक फिल्मी कहानी लिखी, हिमांशु राय और उनकी पत्नी देविका रानी को सुनायी! उन्होंने पसंद की और डायरेक्ट करने की इजाजत दे दी। वह 'बॉक्स ऑफिस' पर 'हिट' हो गयी और फारमूला फिल्मों का दौर चल निकला।

उस फिल्म का नाम 'बंधन' था और उस साउंड रिकार्डिस्ट का नाम था—शशधर मुकर्जी। शशधर मुकर्जी ने 'बंधन' के बाद बांबे टाकीज के लिए कई 'हिट' फिल्में बनायीं। उनमें न मुझे 'बंधन' की याद है, न 'कंगन' की और न 'किस्मत' की, लेकिन जाने कैसे मुझे 'झूला' की धुंधली-सी याद रह गयी है।

'पलट, तेरा ध्यान किधर है भई'

इससे पहले कि मैं शशधर मुकर्जी (जिनके अधीन मैंने दो वर्ष 'फिलिमस्तान' में काम किया) या 'झूला' की बात करूं, मैं दो ऐसी फिल्मों की बात करूंगा जो मुकर्जी की फिल्मों के फारमूले की सफलता को देखकर बनीं और 'हिट' हुईं। जहां तक मुझे याद पड़ता है, डायरेक्टर कारदार उनके निर्माता थे। पहली का नाम था 'शारदा' और दूसरी का 'नमस्ते'।

यह शायद १९४१-४२ की बात है। मैं ऑल इंडिया रेडियो (दिल्ली) में काम करता था। कौशल्या से मेरी शादी हो चुकी थी, जब हमारे घर (भार्गव लेन, तीस हजारी) के निकट ही नॉवल्टी सिनेमा में 'शारदा' लगी। वह हफ्तों से चल रही थी। रश कम नहीं हो रहा था। उसकी बड़ी चर्चा थी। और उसका यह गाना—हरेक की जबान पर था—

दुनिया में सब जोड़े जोड़े
आशिक फिरें निगोड़े
ओ रामा

एक दिन मैं शाम को दफ्तर से घर आया तो मैंने देखा कि रसोई के बरामदे में एक खाली टीन को ढोलक की तरह बजाता हुआ मेरा साला यही गाना गा रहा है। तभी मैंने तय किया कि मैं यह फिल्म जरूर देखूंगा और आते इतवार को मैं पत्नी को लेकर मैटनी शो देखने गया।

(क्रमशः)

"अब जब हमारा विवाह हो ही चुका है तब मैं तुम्हारी खामियां बता ही दूं।"

"रहने दो न; मैं उन्हें जानती हूं। उन्हीं के कारण तो मैं जिंदगी में अच्छा वर पाने से रह गयी।"

कहानी

प्रायश्चित

• मृदुला सिन्हा

आज फिर राकेश कालेज से आते ही उबल पड़े। गुस्से में इधर-उधर चहल-कदमी करना, मुझसे नहीं बोलना, चाय की भी मांग न करना तथा मेरी दिन-भर की दिनचर्या न पूछना, ये सारे लक्षण थे, गुस्से के। एक प्रकार का दौरा ही कहूं, तो ठीक रहेगा। जब कभी यह दौरा पड़ता, तब अपना मानसिक संतुलन खो बैठते। यूं तो उनकी संतुलन बनाये रखने और मुझसे छुपाने की ही कोशिश होती।

राकेश उनमें से न थे। मुझे कभी-कभी 'क्रोधः पापस्त कारणम्' विषय पर उनका अच्छा खासा प्रवचन सुनना पड़ता था। एक जिंदादिल से मेरी शादी मात्र छह महीने पूर्व हुई थी। आनेवाले कष्ट की संभावना और बीते हुए दुर्दिन की बखिया उधेड़कर वर्तमान के सुख को ही गंवा देना, राकेश को गंवारा न था।

हम दोनों ने एक छोटा-सा घर किराये पर लिया। परिवार के नाम पर मियां-बीवी ही थे। गांव से एक अधेड़ उम्र का नौकर भी आ गया था—गोपी। छह फुट तीन इंच का कद्दावर, आंखें भूरी-भूरी, नाक लंबी, छोटे-छोटे खिचड़ी बाल, कंधा थोड़ा झुकता हुआ। उसकी चाल उतनी ही धीमी थी, जितनी उसकी आवाज। शायद उसकी चाल और आवाज ने धीमेपन में आगे निकलने की प्रति-



योगिता कर रखी थी ।

गोपी हमारे खाने-पीने की चिंता करता और हम गोपी की । राकेश प्रायः खाते-खाते पूछ बैठते, "गोपी के लिए और सब्जियां हैं क्या ? मुझे इतना हलवा मत दो, थोड़ा गोपी के लिए रहने दो।" कुछ दिनों बाद कोई चीज राकेश की प्लेट में डालने से पहले ही मैं बोल देती, "गोपी के लिए अलग रख दिया है।" वे मेरी चुटकी का भी मजा लेते, साथ ही अपनी मनोभावनाओं की कद्र होते देख, मेरी समझ पर फूले न समाते ।

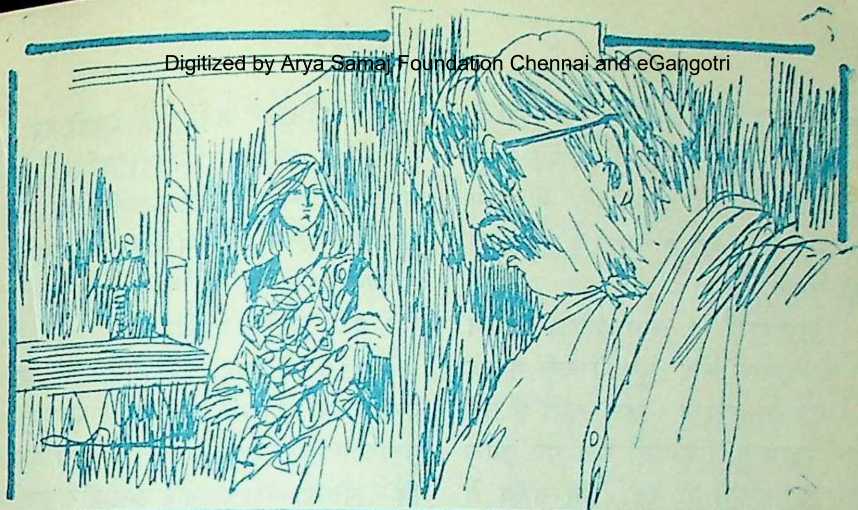
वैसे संतुलित व्यक्तित्व का धनी भी कभी-कभी अपना संतुलन क्यों खो देता है ? कारण क्या है ? उपचार क्या होगा ? ये सारे प्रश्न उभरने लगे, मुझ मनोविज्ञान की छात्रा के मस्तिष्क में । मैं उस अंतरंग मित्र-मंडली के चार सदस्यों से गाहे-बगाहे मिलती रही । कॉलेज के प्रिंसिपल, उसके विभाग के विभागाध्यक्ष, यहां तक कि उसके विभाग में कार्यरत प्राध्यापकों से भी मैंने कभी अकेले, कभी राकेश के साथ मुलाकात की। उद्देश्य था राकेश के व्यक्तित्व के हर पहलू को जानना। उनका व्यक्तित्व एक खुली पुस्तक था, जिसे मैं क्या, कोई भी पढ़ सकता था। लेकिन उसकी बेचैनी और घुटन का पता लगाना था मुझे। ताकि उसे इससे मुक्ति दिला पाऊं ।

एम. ए. का अंतिम वर्ष था । उस दिन अंतिम क्लास प्रो. डॉ. प्रसाद का था। असामान्य मनोविज्ञान की कक्षाएं मुझे ज्यादा आकर्षित करतीं । डॉक्टर साहब बोल रहे थे "मनुष्य के असामान्य व्यवहार के पीछे, सदा उसकी दमित इच्छाएं ही नहीं होतीं । बल्कि कभी-कभी चाहे-अनचाहे व्यक्ति कोई भूल कर बैठता है। उस भूल से संबंधित कोई भी प्रत्यक्ष सामने पड़ने पर, उसका अहं उस भूल को स्वीकार नहीं करता, लेकिन उस भूल की अस्वीकृत-स्मृति परोक्ष रूप से मानसिक संतुलन पर वार करती है। व्यक्ति असामान्य व्यवहार करने लगता है। कभी-कभी तो इस असामान्य व्यवहार की पुनरावृति से मनुष्य अपना संतुलन सदा के लिए खो बैठता है . . . ।"

"नहीं . . . नहीं . . . ऐसा कैसे होगा ?" मैं अकस्मात ऊंची आवाज में बोल पड़ी थी ।

डॉ. प्रसाद के साथ ही कक्षा के सारे छात्र मेरी ओर देखने लगे थे। अपने वाक्य की समाप्ति के साथ ही मुझे अपनी स्थिति का भान हो आया था। प्रोफेसर साहब वैसे ही चश्मा उठाये अपनी कुरसी को थोड़ा बायें घुमाये लड़कियों की सीट पर अपनी प्रश्नकर्ता छात्रा की ओर घूर रहे थे। मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने प्रश्नभरी दृष्टि मेरे ऊपर टिका दी थी । इतने में छुट्टी का घंटा बज गया। मैंने चैन की सांस ली ।

अभी कॉमन रूम तक पहुंची भी न थी कि एक चपरासी ने अगवानी करते हुए



कहा, "आपको डॉ. साहब बुला रहे हैं।" मैं सहम गयी। सीधे पीछे मुड़कर उनके चेंबर में पहुंची। मैं खड़ी थी। प्रोफेसर साहब ने प्रश्नभरी दृष्टि डाली। मौखिक प्रश्न था, "आपको कुछ पूछना था क्या . . . ?"

"सर ! दर असल . . . बात यह थी . . . कि . . ."

"मैं समझ गया। आपकी कोई अपनी समस्या है। जिसे आप छुपाना चाहती हैं।" "नहीं सर ! मैं आपको ठीक-ठीक बताऊं। मेरे घर में एक व्यक्ति अकसर असामान्य व्यवहार करने लगता है; आपने क्लास में कहा कि कुछ असामान्य-व्यवहार किसी व्यक्ति द्वारा बार-बार दोहराये जाने पर उसका मानसिक संतुलन सदा के लिए खो जाता है . . .

मैं . . . उनके लिए . . . घबरा गयी थी। यही. . .सच. . . है. . .सर . . .।" मैंने अंतिम दो वाक्य रुक-रुककर उगले।

"चिंता की कोई बात नहीं। मनुष्य कुछ व्यवहार ऐसा कर बैठता है, जिसे आप तत्कालीन परिवेश के अनुकूल नहीं कर सकतीं। वही व्यवहार असामान्य होते हैं। ये व्यवहार अनेक मनोवैज्ञानिक बीमारियों के कारण भी होते हैं, लेकिन इन दिनों इन सारी बातों से कोई घबराता नहीं। अनेक उपचार निकल गये हैं। कभी-कभी किसी मनोचिकित्सक से दो-चार मुलाकातों में ही बीमारी खत्म हो जाती है।"

उनकी बातों से मेरी आशाओं को बल मिला। मैंने घर लौटकर अपने कमरे में प्रवेश किया ही था कि राकेश को देख मेरी चीख निकल गयी। आज तो वीभत्स रूप बना रखा था उन्होंने। अपने सिर के बाल नोच रहे थे। कभी दोनों हथेलियों की मुट्ठियां बांध, दीवाल पर पटकते। मेरा कमरे में प्रवेश करना उन्होंने देखा नहीं। मैं उनकी हरकतों को कुछ देर

देखती रही। फिर घबरायी हुई गोपी के पास गयी "गोपी, गोपी ! आपके बबुआजी को आज क्या हो गया ?" मैं उससे छुपा न सकी। घर में दूसरा कोई था ही नहीं उसके सिवा।

"दुलहिनजी। क्या बताऊं। मैंने भी अपने बाल कोई धूप में नहीं पकाये हैं। सब समझता हूं। जब कभी मैं नंगे बदन रहता हूं, बबुआजी मुझ पर उबल पड़ते हैं। इतना ही नहीं, उस समय से लगातार दो-तीन दिनों तक मुझसे बोलते भी नहीं।" गोपी इत्मीनान से बोले जा रहा था। मैंने बीच में ही टोका, "लेकिन आज क्या हुआ ? वे कब आये ? बाहर से ही गुस्से थे क्या ? आते ही आप से क्या बोले ?

मेरे अनेक प्रश्नों का जवाब था गोपी का, "जब वे आये, तब मैं गरमी से परेशान, बाहर ही नंगे बदन बैठा था। वे समय से पहले ही आ गये थे। मुझे पीछे से झकझोरते हुए बोले, 'गोपी ! मैंने कितनी बार कहा . . . नंगे बदन मत रहा करो', बहूजी क्या बताऊं, उनका चेहरा उस वक्त लाल हो गया था। वे थर-थर कांप रहे थे। मैंने कुछ बोलना उचित नहीं समझा। मेरी समझ में कोई कारण नहीं आया। मैं तो आप ही का इंतजार कर रहा था।"

मैं एक मनोवैज्ञानिक की भांति गोपी का बयान सुनती रही। कई प्रश्न किये। कमरे में मेरे लौटने तक राकेश सोफे पर निढ़ाल हो लुढ़क गये थे। आंखें बंद थीं। मैं कुछ देर छुपके वहीं बैठी देखती रही। वे छटपटा रहे थे। अपनी मुठ्ठियों को कभी सोफे पर पटकते, कभी दोनों को आपस में ही लड़ाते, धीरे-धीरे स्थिर हो, सो गये। मैंने उनके पांव से जूते खोल दिये और उन्हें सोने दिया।

शाम के छह बजे होंगे। मैं बाहर बरामदे में बैठी थी। आज मुझे बहुत कुछ पता लग गया था। इतना निश्चित लगा कि गोपी को नंगा देखकर उन्हें दौरा पड़ता था। नंगे बदन से कोई उनकी दुःखद पूर्वानुभूति जुड़ी होगी। अंदर जाने के लिए मुड़ी ही थी कि रिक्शेवाले की घंटी बजी। रिक्शे पर बैठे सज्जन ने पूछा, "यह प्रो. राकेश का घर है क्या ?" मेरे हामी भरते ही वह उतर पड़े। बोले, "मैं उसके हाई स्कूल का प्रधानाध्यापक रमाशंकर हूं। वह घर में है क्या ?"

मैंने झट से अपना सिर ढक लिया और उनके पांव छू, उन्हें अंदर ले गयी। राकेश उनका बहुत आदर करते थे। उन्हें पिता और गुरु दोनों का दर्जा दिया था राकेश ने। कोई दिन न आता, जिस दिन अपने हेडमास्टरजी को किसी न किसी प्रसंग में याद न करते। बिना देखे ही उनके प्रति श्रद्धा ने, मेरे हृदय में भी स्थायी स्थान बना लिया था। थोड़ी देर की मेरी आवभगत से वे गद्‌गद् हो बोले, "मुझे राकेश से यही उम्मीद थी। मेरे प्रति तुम्हारे इस व्यवहार से प्रकट हो रहा है कि वह मुझे भूला नहीं है।"

वे बोल ही रहे थे कि गोपी चाय लेकर आ गया। "अरे तुम यहां हो ?" उनके हाथ में उठा बिस्कुट पुनः प्लेट में आ गया । मुझे उनका चौंकना कुछ अजीब-सा लगा । मैंने सशंकित हो पूछा, "क्यों ! आप जानते हैं इसे ?" तब तक गोपी जा चुका था । "हां जानता हूं । क्यों तुम्हें राकेश ने कुछ नहीं बताया ?" उन्होंने मुझसे प्रश्न किया, लेकिन उनकी घबराहट मुझसे छुपी न रह सकी। मेरे हठ से उन्होंने एक घटना का वर्णन किया। घटना का जिक्र सुनते ही मैं वैसे ही उछल पड़ी, जैसे किसी भिखारी को अटारी मिल गयी हो। सारी गुत्थियां स्वयमेव खुल गयीं। मैं खुशी से नाच उठी। मैंने उसी क्षण तय किया, न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।

राकेश रातभर सोये रहे । मैं जाग रही थी । कुछ भय लग रहा था उनसे । राकेश के इलाज की योजना से मन ही मन लड्डू फूट रहे थे। रोग का कारण ढूंढ़ लिया था, यही क्या कम था ? सुबह तड़के ही उठकर मैंने गोपी से कहा, "गोपी आप गांव चले जाइए। हम लोग दोपहर की गाड़ी से एक महीने के लिए कलकत्ता जानेवाले हैं।" झट से किराये के पैसे भी दिये। गोपी को हमारे अचानक कार्यक्रम पर विश्वास न हुआ। फिर भी वह चला गया।

दिन के नौ बजे थे, जब राकेश की नींद खुली। वे बड़े थके लग रहे थे। मैंने



झट से चाय दी। स्नान आदि करने के बाद, मैंने उन्हें हैडमास्टर साहब के आने की बात बतायी। वे बड़े खुश हुए। गुरु-शिष्य के स्नेह-मिलन को देखकर मेरी आंखें भर आयीं।

नाश्ते की मेज पर दोनों बैठे थे। मैं रसोईघर में थी। राकेश ने आवाज लगायी। "तुम वहां क्या कर रही हो ? गोपी कहां गया ?" मैं कुछ सामान लिये झट से वहां पहुंच धीरे-से बोली—"गोपी को गांव भेज दिया।" "क्यों ? क्या काम था ?" राकेश तिलमिला उठे।

मैंने कुछ स्थिर भाव से ही कहा—"अब वह कभी नहीं आएगा। मैं खुद अपना काम

करूंगी। मुझे सब मालूम हो गया है।" मैंने एक निगाह हेडमास्टर साहब पर डाली जो मेरी ओर ही देख रहे थे। "क्या मालूम हो गया ?" राकेश मुझ पर बरस पड़े। उठकर अंदर चले गये, मैं भ्रांतचित उनका पीछा करते, कमरे में गयी, जहां मेज पर सिर टिकाये वे बैठे थे।

मैंने धीरे-से कंधा पकड़कर उठाया। उन्होंने गरदन उठायी। कुछ देर मेरी आंखों में झांकते रहे। पुनः बोल पड़े, "स्नेह ! गोपी को पीटने में मैं बिलकुल निर्दोष था। हां, हां ! तुम विश्वास करो। मैं ठहरा हेडमास्टर साहब का प्रिय विद्यार्थी। मैंने उन्हें घर से अपने पिताजी का सबसे प्यारा नौकर, गोपी लाकर दिया था। गोपी उनका विश्वासी बन गया था।

उस दिन हजार रुपये की चोरी का इल्जाम उन्होंने उसी पर लगाया। मैंने जब उससे पूछा; गोपी चुप रहा। उसकी चुप्पी ने मेरे अंदर भी शंका पैदा कर दी। हॉस्टल के लड़कों के साथ मैंने भी उसे बहुत पीटा। उसे मारकर हम लोग तने खड़े थे। मानो बड़ी जंग जीत ली हो। लेकिन गोपी ने संभल के उठते ही मुझ पर ऐसी निगाह डाली, जिसकी व्याख्या मैं आज तक नहीं कर पाया हूं। गोपी तब बिलकुल नंगे बदन था। सारा शरीर मार से फूट गया था। लहूलुहान हो गया था। लेकिन मैं क्या करता ? तुम्हीं बताओ न बोलती क्यों नहीं ?" मुझे झकझोरा उन्होंने।

मैं कुछ देर चुप रही। फिर स्नि[illegible] भाव से कहा, "तुम निर्दोष हो। लेकि[illegible] चाहते क्या हो ?"

"स्नेह ! अब मैं गोपी को अलग नहीं कर सकता। वह यहीं रहेगा। मुझे अपनी भूल का प्रायश्चित करना है। वह यहीं रहेगा . . . यहीं रहेगा। तुमसे सारी बातें बताकर मैंने अपना बोझ हलका कर लिया है।"

"ऐसा ही होगा।" मैं बस-स्टैंड जाती हूं।" कहकर मैंने उनका कंधा थपथपाया और बस-स्टैंड की तरफ चल दी।

—१६, अशोका रोड, नयी दिल्ली

संग्रहालय के एक भृत्य ने एक सज्जन को टोकते हुए कहा, "श्रीमान संग्रहालय में धूम्रपान वर्जित है। आपने फिर भी सिगरेट पी है। इसलिए आप को पांच रुपये जुर्माना देना पड़ेगा।"

"ठीक है।" दस रुपये का नोट देते हुए व्यक्ति ने कहा, "पांच रुपये काट लीजिए।"

"श्रीमान, मेरे पास छुट्टे रुपये नहीं हैं।" भृत्य ने उत्तर दिया।

"ठीक है, फिर मैं एक सिगरेट और पी सकता हूं।" यह कहते हुए उस व्यक्ति ने दूसरी सिगरेट जला ली।

★

परमाणु शक्ति ने हमें एक ही चीज सिखायी है—शांतिपूर्ण ढंग से कार्य करो अथवा शांति के साथ आराम करो।

कलकत्ता विशुद्ध अंगरेजों का बनाया हुआ नगर है, जिसकी नीव जौब कार्नेक ने १६९१ में डाली थी, हुगली तट की उस दलदली भूमि में, जहां मछुओं के तीन गांव, कलिकाता, सुतननी और गोविंदपुर बसे हुए थे। धीरे-धीरे उनके व्यापार का यह मुख्य केंद्र बन गया। यह केवल भारत-स्थित ईस्ट इंडिया कंपनी का ही हेडक्वार्टर नहीं, बल्कि पचासों निजी अंगरेज कंपनियों का हेड-



सर विलियम जोंस

विलायती शरीर में देसी मन !

● राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

क्वार्टर भी बना। एक जमाना था जब यहां अंगरेजों की सैकड़ों दुकानें भी थीं।

सिराजुद्दौला की हार

मुर्शिदाबाद का नवाब सिराजुद्दौला, (बंगाल-बिहार पर अब ये नवाब स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे थे) अंगरेजों की बढ़ती हुई शक्ति से सशंकित हो उठा। और उनके साथ उसकी भिड़ंत हो गयी। क्लाइव, जो कंपनी की फौज का सेनाध्यक्ष था, और सिराजुद्दौला के बीच पलासी के मैदान में युद्ध हुआ। क्लाइव ने नवाब की सेना के अध्यक्ष मीर जाफर को गद्दी पर बिठाने का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया, फलतः सिराजुद्दौला की बुरी तरह हार हुई।

दूरदर्शी क्लाइव ने यह महसूस किया कि यदि कंपनी को भारत में अपना व्यापार सुरक्षित रखना है, तो उनके लिए तत्कालीन राजनीति में भाग लेकर शासनाधिकार प्राप्त करना आवश्यक है। मराठों का उत्कर्ष उनके लिए घातक था। अतः पतनोन्मुख मुगल-साम्राज्य के बादशाह शाह आलम को विवश तथा उनकी खुशामद करके उसने बंगाल-बिहार की दीवानी

उनसे प्राप्त कर ली और इस क्षेत्र पर अब ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकूमत चलने लगी।

यही आरंभ था अंगरेजों के एक ऐसे वर्ग का भारत में आने का, जो व्यापारी नहीं, कुशल शासक था, बुद्धिजीवी था, और इनमें बहुत-से ऐसे भी थे, जिन्हें विद्या से प्रेम था, जैसे—ह्यूम, ग्रियर्सन, ओल्ढम, आदि-आदि। ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रथम गवर्नर जनरल हैस्टिंग्ज को स्वयं शिक्षा से प्रेम था, अतः उसके प्रोत्साहन पर शिक्षा से संबंधित अंगरेजों का भी यहां आगमन हुआ, एक काफी बड़ी संख्या में।

बुद्धिजीवी अंगरेजों का अड्डा

गरज यह कि कलकत्ता अब बौद्धिक-शक्ति-संपन्न अंगरेजों का भी अड्डा बन गया। और ऐसे लोगों का, जिन्हें संस्कृत विद्या से खासतौर पर प्रेम था, मसलन, सर जान उडरफ, जिसने तंत्र-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अंगरेजी में अनुवाद किया है और तंत्र-शास्त्र पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा है। ऐसे जनों में शीर्षस्थ थे सर विलियम जोंस, जिनकी नसों में ऊपर से नीचे तक विद्या-व्यसन भरा हुआ था।

जोंस का जन्म लंदन में २८ सितंबर, १७४६ को हुआ था। इनके पिता स्वयं एक बड़े विद्वान व गणितज्ञ थे तथा न्यूटन के साथ उनकी घनिष्ट मैत्री थी। प्रसिद्ध गणित-ज्योतिष के ज्ञाता हैली भी उनका आदर करते थे।

१७६४ में उन्होंने ऑक्सफोर्ड में दाखिला लिया, पर इसके पूर्व ही वह अरबी और फारसी भाषाओं की पूरी जानकारी हासिल कर चुके थे। उनमें भाषा-ज्ञान-प्राप्ति की एक अद्भुत क्षमता थी; अल्प आयु में ही फ्रेंच, जरमन, स्पेनिश, पुर्तगीज, एवं लैटिन और ग्रीक पढ़ने और बोलने में उन्होंने निपुणता प्राप्त कर ली। एक बार जब वह फ्रांस जाकर सम्राट १६वें लुई से मिले, तब उनके चले जाने के बाद लुई ने कहा, 'वे एक विलक्षण व्यक्ति हैं। मेरी प्रजा की भाषा का उन्हें इतना अच्छा ज्ञान है, जितना कि मुझे भी नहीं है।'

ऑक्सफोर्ड में उन्होंने किताबें लिखनी भी शुरू कीं और कई पुस्तकें लिख डालीं। १७७१ में फारसी भाषा के व्याकरण पर एक पुस्तक प्रकाशित की तथा १७७४ में छः भागों में एशिया के विभिन्न काव्यों का एक आलोचनात्मक ग्रंथ। उनका ज्ञान किसी एक विषय तक सीमित नहीं था। राजनीति, कानून से लेकर साहित्य और दर्शन तक में वे समान दक्षता रखते थे।

संस्कृत प्रेमी सर विलियम जोंस

जोंस महोदय का सबसे बड़ा अरमान था कि उन्हें भारतवर्ष में एक अच्छी नौकरी मिल जाए, ताकि वहां रहकर संस्कृत विद्या का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसकी पूर्ति ४ मार्च, १७८३ में हुई, जब वे कलकत्ता-स्थित सुप्रीम कोर्ट के जज बहाल हुए और उसी वर्ष उन्हें 'सर' की

उपाधि भी प्राप्त हुई। आठ अप्रैल को अन्ना मेरिया सियले, जिसे वह जी-जान से प्यार करते थे, के साथ उनकी शादी हुई। तदुपरांत वे दोनों भारत के लिए चल पड़े। संस्कृत विद्या के लिए उनका उत्साह इतना गहरा था कि जहाज पर ही उन्होंने इसका अध्ययन शुरू कर दिया।

फारसी से भी प्रेम

सर विलियम जोंस ने लंदन की रायल सोसायटी के ढांचे पर कलकत्ते में समिति का गठन किया। जनवरी १७८४ में इसकी नींव पड़ी और इसकी पहली बैठक में उन्होंने वारेन हैस्टिंग्ज, से अनुरोध किया कि वे इसका सभापतित्व स्वीकार करें। पर हैस्टिंग्ज ने कहा—'यह सही है कि संस्कृत और फारसी भाषाओं में जो ज्ञान निहित है, उससे मुझे अपार प्रेम है, दिलचस्पी है। पर मैं यह महसूस करता हूं कि इसका सभापतित्व एक ऐसे व्यक्ति को ग्रहण करना चाहिए जो इसमें पारंगत हो, और ऐसा व्यक्ति सिवा, आपके इस समय दूसरा कोई नहीं है।'

अंत में जोंस को ही इस पद को स्वीकार करना पड़ा और बंगाल एशियाटिक सोसायटी के वह सर्वप्रथम अध्यक्ष निर्वाचित हुए। और तब तक अध्यक्ष बने रहे जब तक कि अप्रैल, १७९४ में उनकी असामयिक मृत्यु न हो गयी।

उपनिषदों का अध्ययन

जोंस ने उपनिषदों का पूरी लगन से गहरा अध्ययन किया और उनके तथ्य को अंगरेजी के अपने काव्य में बड़ी सुंदरतापूर्वक व्यक्त भी किया। उनका 'ओड टू नारायण' (नारायण स्तोत्र) एक ऐसी ही कृति है। उन्होंने 'हितोपदेश' व 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अंगरेजी में अनुवाद किया और प्रसिद्ध जरमन कवि गेटे को यह कहने की प्रेरणा दी कि संसार का सारा सौंदर्य यदि तुम्हें एकत्रित देखना है, तो वह शकुंतला में देखो। 'इंडोलाजी' नामक विषय-विज्ञान के जन्मदाता भी जोंस ही माने जाते हैं।

वे अस्वस्थ हो गये!

पर कठिन परिश्रम ने उनके स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया। अप्रैल, १७९४ में वह बीमार पड़े और सात दिन बाद चल बसे।

मृत्यु से पूर्व उन्होंने कुछ पंक्तियां लिखी थीं, जो उनकी कब्र पर अंकित हुईं। उनका हिंदी रूपांतर इस प्रकार है—

"यहां गड़ा हुआ है,
उसका पार्थिव शरीर
जिसे भय था परमात्मा का, मृत्यु का नहीं।
जिसने अपना जीवन लोगों की सेवा में
अर्पित कर दिया
अंत में शांति के साथ
इसे समाप्त किया, निरखते हुए शोभा
उस विश्व की, जहां उसकी सृष्टि हुई थी
संसार की शांति की कामना करते हुए
सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना से युक्त।

—बी-२, महारानीबाग,
नयी दिल्ली-६५

कहानी राष्ट्रपति-भवन की

कैसे बना राष्ट्रपति-भवन

• महेश्वर दयाल

मुगलों का राज्य मिट जाने के बाद दिल्ली की वह पहली-सी शान जाती रही। जब हमारे देश में अंगरेजों के पांव अच्छी तरह जम गये, तब उन्होंने कलकत्ता को अपनी राजधानी बनाया। कलकत्ता व्यापार और राजनीति का केंद्र बन गया और इंग्लिस्तान का गवर्नर-जनरल वहीं रहने लगा। लेकिन लार्ड कर्जन के शासन-काल में बंगाल के बटवारे पर बंगालियों में हलचल मच गयी। लार्ड हार्डिंग्ज गवर्नर-जनरल बना, तो उसे एक चाल सूझी। उसने राजनीतिक गड़-बड़ी दूर करने के लिए कलकत्ता के बजाय दिल्ली को राजधानी बनाने की ठान ली। २५ अगस्त, १९११ को उसने एक पत्र इंग्लिस्तान भेजकर सारी ऊंच-नीच बयान करके अपनी बात मनवा ली। सम्राट जार्ज पंचम से आग्रह किया कि वे स्वयं दिल्ली में आकर दिल्ली को राज-धानी बनाने की घोषणा करें। दिल्ली को राजधानी बनाने का भेद सिवा दस-बारह उच्च कोटि के अफसरों के, किसी पर न खुला।

दिसंबर, १९११ में सम्राट पंचम जार्ज अपनी पत्नी मेरी के साथ भारत आया। यह इंग्लिस्तान का पहला सम्राट था, जो भारत आया था। दिल्ली में सम्राट की सवारी बड़ी धूमधाम से निकली और १२ दिसंबर को पहाड़ी से कुछ दूर आबाद डाका गांव (वर्तमान माडल टाउन) के पास एक शानदार दरबार में सम्राट ने दिल्ली को राजधानी बनाने की घोषणा की। १५ दिसंबर, १९११ को बादशाह और महारानी ने नये शहर की स्थापना करते हुए नींव के दो पत्थर रखे।

हुकूमतों का कब्रिस्तान

दिल्ली को राजधानी बनाने की घोषणा होते ही बंगाल के निवासी और बहुत से अंगरेजों के दिलों को धक्का लगा। उन्होंने कलकत्ता के फलते-फूलते शहर की बजाय दिल्ली को राजधानी बनाने का विरोध करते हुए कहा, 'दिल्ली हुकूमतों का कब्रिस्तान है।' उन्होंने यह भी चेता-वनी दी कि दिल्ली राजधानी बनी, तो

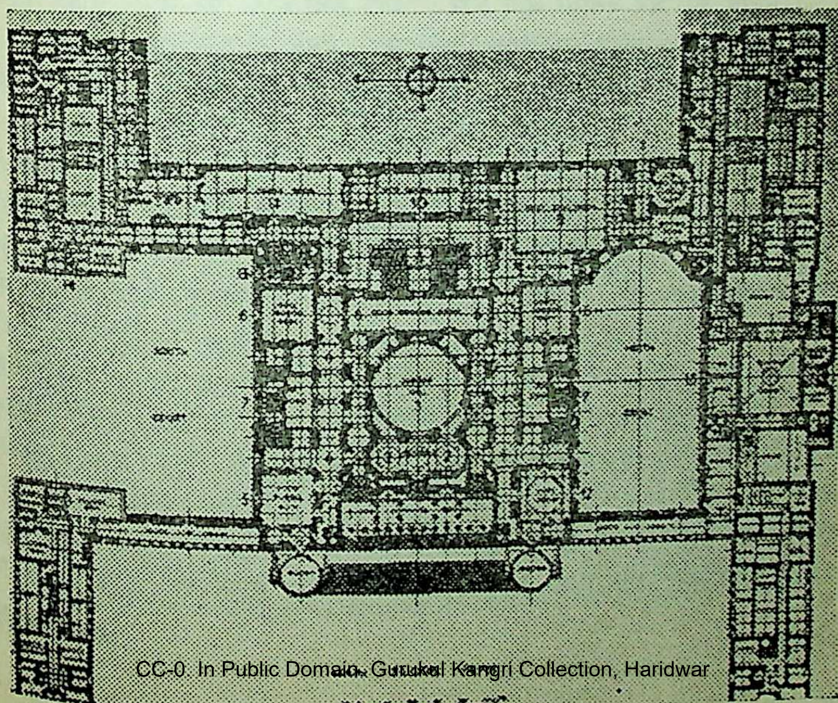
अंगरेजों का राज्य भी मिट जाएगा। लॉर्ड कर्जन का तर्क था कि नयी राजधानी पर अनगिनत रुपये पानी की तरह बहाने पड़ेंगे। लेकिन, जो लोग दिल्ली को राजधानी बनाने के पक्ष में थे, उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, 'जो दिल्ली पर शासन करता है, वह हिंदुस्तान पर शासन करता है।'

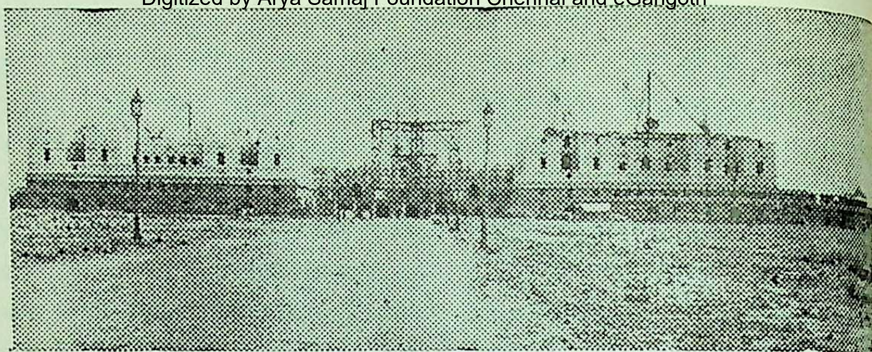
बर्तानिया सरकार ने दिल्ली में एक नया शहर बनाने के लिए तीन विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया। इसी समिति के अध्यक्ष कप्तान स्विटन थे। दो अन्य साथियों के नाम--बरोडी और एडवर्ड ल्यूटिन थे। इंग्लिस्तान के सम्राट ने इन तीनों को अपने महल में बुलवाया और बहुत देर तक हिंदुस्तान की राजधानी के बारे में बातचीत की। सम्राट ने ल्यूटिन से कहा, "इन इमारतों का नक्शा बनाने का काम तुम्हें सौंपा जाता है।" ल्यूटिन सम्राट की आज्ञा से फूला न समाया।

जब कनाट प्लेस माधवगंज था

अप्रेल १९१२ की झुलसती हुई गरमी में नये शहर को बनानेवाली समिति के तीनों सदस्य दिल्ली आये और कई दिनों तक सवेरे से शाम तक दिल्ली की तपती हुई धूप में पुरानी दिल्ली के चारों ओर नयी राजधानी के लिए उचित जगह ढूंढ़ने में लगे रहे। दिल्ली का पश्चिमी भाग अधिकांशतः दलदली था। माधवगंज (कनाट प्लेस) और मिंटो पुल के बीच का रास्ता बरसात में कीचड़ से लथ-पथ हो

नक्शा वाइसराय भवन का जो अब राष्ट्रपति भवन है





साउथ ब्लाक और नार्थ ब्लाक की अधबनी इमारत

जाता था । अजमेरी गेट से महरौली जाने-वाले, घुड़सवार, गाड़ियां, बारहखंबा या बारादरी (यूसुफजई खोखा मार्केट) के पास बनी इमारत में सुस्ताते थे । यह स्थिति देखकर ब्रेडफोर्ड ने सोचा कि सिविल लाइंस के पास बावटे की पहाड़ी पर वाइसराय का घर बनाया जाए और पहाड़ी में 'टनेल' बनाकर नये शहर के निर्माण का कार्य आरंभ कर दिया जाए । यह जगह डाका गांव के पास थी, जहां सम्राट ने दरबार किया था । स्विटन इस सुझाव से सहमत नहीं था । ल्यूटिन लिखता है कि एक दिन स्विटन और बरोडी में इतना झगड़ा हुआ कि बरोडी ११७ डिग्री टैंप्रेचर में हाथी से उतरकर पांच मील पैदल चला और घर पहुंचा ।

आपस में सुलह-सफाई हो जाने पर समिति ने पुरानी दिल्ली या शाहजहांनाबाद के पश्चिम में नया शहर बनाने की सिफारिश की । समिति की पहली रिपोर्ट को इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट के पुस्तकालय में रख दिया गया, लेकिन हिंदुस्तान की जनता को इस बारे में कुछ नहीं बताया गया ।

हार्डिंग्ज का फैसला

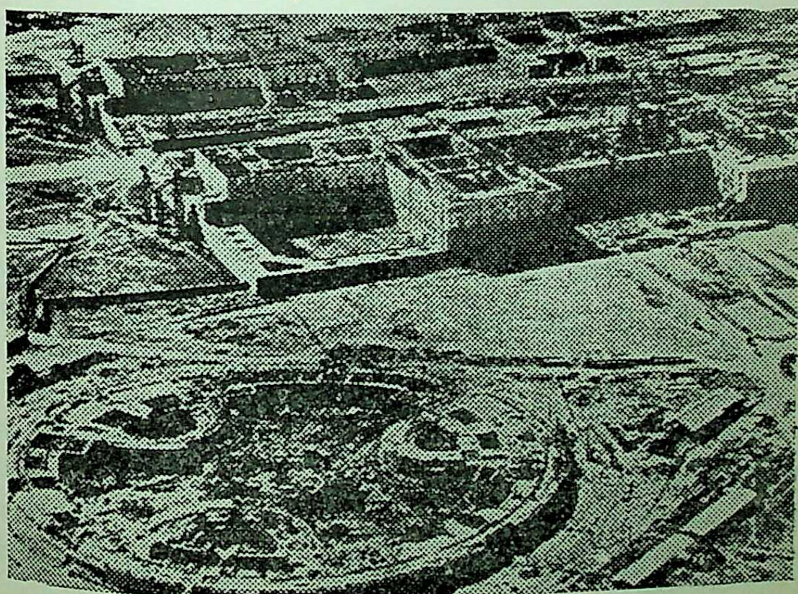
उपयुक्त स्थान की खोज में एक दिन लार्ड हार्डिंग्ज और दिल्ली के चीफ कमीश्नर हेली घोड़ों पर सवार होकर इधर-उधर घूमते रहे और रायसीना की पहाड़ी पर पहुंचकर ठहर गये । हार्डिंग्ज ने जोश से भरकर कहा, "बस मैंने फैसला कर लिया, यह जगह वाइसराय के महल के लिए सबसे अच्छी रहेगी । रायसीना की पहाड़ी से चारों तरफ का दृश्य बहुत सुंदर है । यह निश्चय करने के बाद भी एक बार हार्डिंग्ज ने फिर दिल्ली के उत्तरी भाग में पहाड़ी पर वाइसराय-भवन के निर्माण के बारे में सोचा । एडवर्ड ल्यूटिन हार्डिंग्ज के किसी निष्कर्ष पर न पहुंचने की इस मन:स्थिति से खिन्न हो गया था । उसने इस योजना के बारे में अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखा, "अगर ये लोग

बागों के शहर के बजाय केवल शहर बनाना चाहते हैं, तो मैं बावटे की पहाड़ी से प्रसन्न हूं, लेकिन यह शहर स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक नहीं होगा। लार्ड मानटेगो ने वाइसराय लार्ड हार्डिंग्ज से साफ-साफ कह दिया है कि हमें कलकत्ते से सारे दफ्तर नयी राजधानी में लाने पड़ेंगे। यह नहीं कि कुछ दफ्तर कलकत्ता में ही रहें और कुछ शिमला में। इसलिए राजधानी के लिए काफी बड़ी और खुली जगह चाहिए। मैं लार्ड मानटेगो की इस बात से सहमत हूं, लेकिन किया क्या जाए? लार्ड हार्डिंग्ज हर बात में अड़चन लगाते हैं और, उन्हें बार-बार अपनी राय बदलने की आदत पड़ गयी है। हमने दिन-रात परिश्रम करके दिल्ली के पश्चिम भाग को सोच समझकर चुना है। अगर वाइसराय अपनी नयी योजना पर अड़े रहे और उत्तरी पहाड़ी पर तथा उसके आस-पास राजधानी बनी, तो हमारी सारी करी-करायी मेहनत पर पानी फिर जाएगा। काश, तुम ऐसे समय में मेरे पास दिल्ली में होतीं और मेरी सहायता कर सकतीं।"

नक्शों का जादू

आखिर अंतिम जीत ल्यूटिन की ही हुई और लार्ड हार्डिंग्ज फिर अपनी पुरानी टेक पर लौट आया। वह चाहता था कि नये शहर की इमारतें पूर्वी ढंग की हों। उसने समिति के सदस्यों को हिंदुस्तान के ऐतिहासिक शहरों का दौरा करने का आदेश

सेक्रेटेरियट और सेंट्रल असेंबली की अधबनी इमारतें



दिया । इस आदेश पर उन्होंने जयपुर, आगरा और मांडव में बनी इमारतों को भी देखा और पुरानी दिल्ली में भी कुछ हिंदू, मुसलमानों के मकानों और हवेलियों को देखा, लेकिन ल्यूटिन को सिवाय मुगल बागों, झरनों, फव्वारों, नहरों और चश्मों के हिंदुस्तान में और कुछ अच्छा नहीं लगा । उसने वाइसराय-भवन और उसके दायें-बायें दो बड़े सरकारी दफ्तरों (नार्थ ब्लाक और साउथ ब्लाक) के कच्चे नक्शे तैयार किये ।

ल्यूटिन के बनाये नक्शों को लेडी हार्डिंग्ज देखकर रीझ गयी और 'वाह-क्या खूब !' कहने लगीं। लेकिन लार्ड हार्डिंग्ज विदेशी ढंग से बने नक्शों को देखकर सोच में डूबा रहा । विलायत जाकर ल्यूटिन ने सम्राट और उनकी पत्नी को भी नक्शे दिखाये । सम्राट चाहता था कि हिंदुस्तान की नयी राजधानी में वाइसराय भवन और अन्य इमारतें मुगल ढंग की बनायी जाए, लेकिन उसने भी इन नक्शों को देखकर अच्छा कह दिया ।

एक दिन बैठे-बैठे हार्डिंग्ज को एक नयी बात सूझी। उसने सोचा कि ल्यूटिन के अलावा और भी तो बहुत से नक्शे बनानेवाले हैं, क्यों न एक प्रतियोगिता की घोषणा करके सब को अवसर दिया जाये । ल्यूटिन को लार्ड हार्डिंग्ज की यह बात अच्छी नहीं लगी । वह मन ही मन कुढ़ने लगा । उसने अपने पुराने मित्र हरबर्ट बेकर को पत्र लिखा और उसे दक्षिणी अफरीका से अपने साथ काम करने के लिए दिल्ली बुलाया। पहले तो बेकर सोच में पड़ गया । लेकिन बाद में हर ऊंच-नीच को सोचकर वह दिल्ली आ गया।

हार्डिंग्ज पर हमला

ल्यूटिन को अपने मित्र बेकर के दिल्ली आगमन पर प्रसन्नता थी, किंतु बेकर को उसके नक्शे पसंद नहीं आये और दोनों में मनमुटाव पैदा होने लगा । ल्यूटिन चाहता था कि रायसीना की पहाड़ी पर वाइसराय-भवन इतना ऊंचा हो कि दूर से दिखायी दे सके और हिंदुस्तान की जनता के दिलों पर लाट साहब का सिक्का बैठ जाये । बेकर का पहली ही भेंट में ल्यूटिंज से मतभेद शुरू हो गया । उसे वाइसराय-भवन को सरकारी दफ्तरों से ऊंचा और सामने बनाना पसंद नहीं आया। ल्यूटिन को इससे धक्का पहुंचा । उसने अपने नक्शों को सम्राट और महारानी तथा लार्ड हार्डिंग्ज तथा उनकी पत्नी तक से मनवा लिया था, लेकिन बेकर की हट से वे नक्शे रद्दी की टोकरी में डाल दिये गये ।

नये शहर का निर्माण

उधर नये शहर के निर्माण का कार्य भी जारी रहा । नये सिरे से नक्शे बनने लगे । जब लागत की बात चली तब इंग्लिस्तान में उसकी चर्चा होने लगी । नयी दिल्ली के निर्माण में २,८००,००० पौंड का अंदाजा था, लेकिन थोड़े ही दिन में यह लागत बढ़कर ५,११३,००० पौंड

तक पहुंच गयी। अभी ये बातें चल ही रही थीं कि पहला विश्वयुद्ध शुरू हो गया। हार्डिंज ने चाहा था कि तीन साल में शहर बनकर तैयार हो जाये, लेकिन महायुद्ध के कारण काम ठप्प पड़ गया। युद्ध की समाप्ति पर ही पुनः कार्य आरंभ हुआ। ल्यूटिंज को वाइसराय-भवन, ग्रेट प्लेस (विजय चौक), किंग्जवे, राजपथ, रेकार्ड आफिस और नयी दिल्ली की सड़कें बनवाने का काम मिला। हरबर्ट बेकर को सेक्रेट्रियट की इमारतों और कौंसिल चैंबरों (लोकसभा और राज्यसभा) के बनाने का आदेश हुआ। 'आल इंडिया वार मेमोरियल' (इंडिया गेट) बनाने का काम भी ल्यूटिन को सौंपा गया। इंडिया गेट पर पहले महायुद्ध में वीरगति पानेवाले सत्तर हजार सिपाहियों के नाम खुदे हैं। इसके अलावा १३५१६ नाम उन हिंदुस्तानी और अंगरेज सिपाहियों के भी हैं जिन्होंने उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर प्राणों की आहुति दी थी।

इमारतों आदि हेतु माल-मसाला (संगमरमर, लाल व भूरे पत्थर इत्यादि) ढोने के लिए इंपीरियल दिल्ली रेलवे की स्थापना की गयी। दिल्ली के आसपास ईंटों के अनगिनत भट्टे बन गये। कई हजार कारीगर और मजदूर कई बरस तक के लिए काम में लग गये। नयी दिल्ली में पग-पग पर कब्रें और टूटी-फूटी पुरानी इमारतें थीं। उन्हें साफ करने के लिए बहुत से सरदार ठेकेदार पंजाब से आये।



नयी दिल्ली के स्वप्न-द्रष्टा एडवर्ड ल्यूटिन

दिल्ली के ठेकेदारों को इस भय से हिचक थी कि कहीं उनकी कुदाल उनके किसी पूर्वज की खोपड़ी पर न पड़ जाये।

गरमियों के दिनों में शाम के समय पुरानी दिल्ली की घुटन से बचने के लिए सैकड़ों दिल्लीवाले नयी दिल्ली खाना खाने आते थे। उन दिनों का एक गीत आप भी सुन लीजिए—

"तांगेवाले तू ले चल रसीने (रायसीना) मुझे, मारे गरमी के आये पसीने मुझे"

तांगेवाले दिन में आवाज लगाते, 'एक सवारी आरा मशीन को।' आजकल की आल इंडिया रेडियो की इमारत के पास आरे से लकड़ी काटनेवालों की मशीनें लगी हुई थीं।

वाइसराय-भवन (वर्तमान राष्ट्रपति भवन) में ३३ एकड़ भूमि है, जिसके चार खंड (विंग) हैं और दो मुख्य प्रवेश द्वार हैं, जिनके बीच में कुछ दूरी पर ३२ सीढ़ियां चढ़कर दरबार हॉल बना हुआ है, जो सारा का सारा संगमरमर का है। अंदर जाकर नाचघर बना है, जिसकी छत पर मुगल-काल के नमूने की चित्रकारी है। नाचघर के मुख्यद्वार के सामने ड्राइंग रूम है जिसके साथ भोजन का कमरा है। यों तो इस इमारत में बहुत से कमरे हैं, लेकिन ४५ कमरे सोने के लिए हैं। इमारत के बीच मुगल बाग है, जिसके बीच में बड़ा लंबा-चौड़ा घास का मैदान है। यहां जगह-जगह फव्वारे लगे हैं। इस खुली जगह में आने-जाने के लिए दायें-बायें कई द्वार हैं। भवन के ऊपर तांबे का गोल-गुंबद अपनी शान में निराला है। वाइसराय-भवन के आगे की तरफ भी बीच में खुला मैदान है, जिसके दोनों तरफ सड़कें हैं और सड़क के अंत में लोहे के किवाड़ लगे हैं। यहां पहरा रहता है।

सेक्रेट्रियट की इमारतें जिन्हें नार्थ ब्लाक और साउथ ब्लाक कहते हैं, राष्ट्रपति-भवन (वाइसराय भवन) से थोड़ी दूर आगे बनी हैं। इन कमरों में आजकल मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों के दफ्तर हैं।

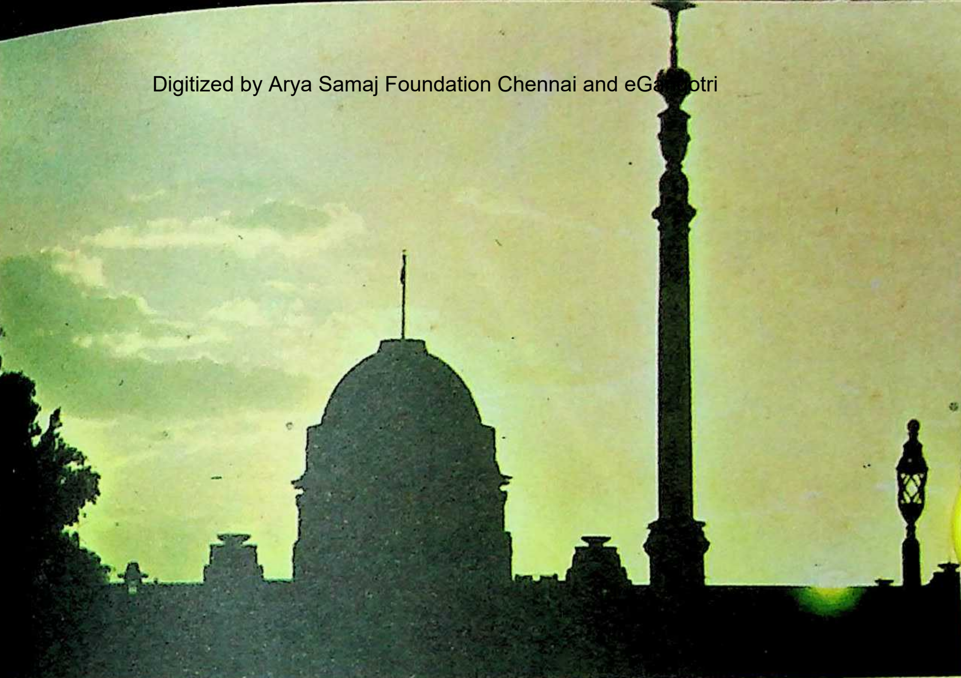
वाइसराय-भवन के उत्तर पश्चिम में असेंबली हाल और राजाओं का चैंबर बनाया गया था, लेकिन अब इन इमारतों में लोकसभा और राज्यसभा की बैठकें होती हैं।

सन १९४७ से पहले तक राष्ट्रपति भवन विलायती ढंग से सजाया हुआ था। स्वतंत्रता के बाद से उसे धीरे-धीरे हिंदुस्तानी ढंग से सजाया जा रहा है। जब डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति हुए, तब उनकी इच्छानुसार विलायती पर्दों को खादी से बदल दिया गया। इस भवन में राष्ट्रपति और उनके परिवार के रहने के लिए अलग-अलग कमरे हैं।

यों तो नयी दिल्ली आज से पचास वर्ष पहले बनकर तैयार हो गयी थी और अंगरेज वाइसराय यहां आकर रहने लगे थे, लेकिन १५ फरवरी, १९३१ को इस भवन का उद्घाटन हुआ था।

नयी दिल्ली के निर्माण में १२,०००,००० पौंड खर्च हुए थे फिर भी ल्यूटिंज की बहुत-सी आशाएं और कल्पनाएं अधूरी रह गयी थीं। वह कनाट प्लेस के पास, जो उस समय माधवगंज कहलाता था, बहुत बड़ा रेलवे स्टेशन बनाना चाहता था। योर्क प्लेस (मोतीलाल नेहरू प्लेस) पर एक बहुत बड़ा गिरजाघर और नेशनल स्टेडियम के स्थान पर विशाल सुंदर झील बनाना चाहता था। ल्यूटिन को यह भी दुःख था कि वाइसराय-भवन के सामने जयपुर-स्तंभ को लोहे के जंगले के मैदान से हटाकर बाहर पहाड़ी पर खड़ा किया गया।

—९६, बाबर रोड, नयी दिल्ली



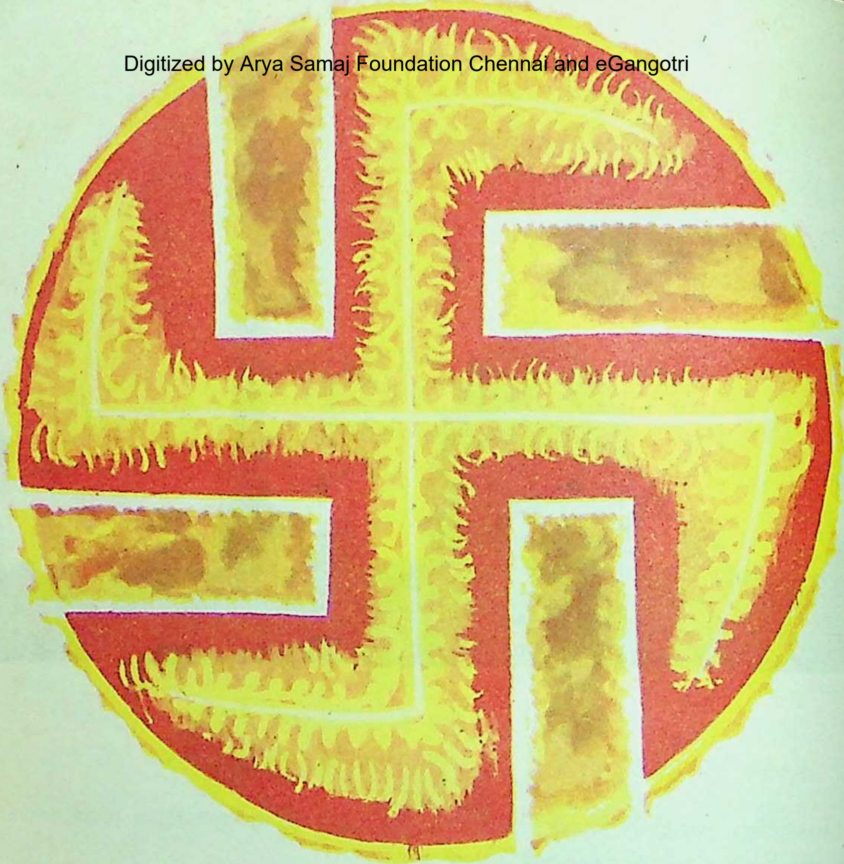
छाया : दुष्यंत कुमार

भारत की राजधानी दिल्ली स्थित राष्ट्रपति भवन का न केवल शिल्प सौंदर्य वरन् ऐतिहासिक रूप से भी एक विशिष्ट महत्त्व है।

नयनाभिराम उद्यानों एवं फौवारों से युक्त इस विशालकाय भवन का निर्माण ब्रिटिश शासन काल में सन् १९१४ में प्रारंभ हुआ था तथा पूरे नौ वर्ष में यह बनकर पूरा हुआ। अनुमानतः इसके निर्माण में लगभग एक करोड़ सात लाख रुपये खर्च हुए थे।

सुप्रसिद्ध वास्तुविद एडविन लिटन के कलात्मक निर्देशन में इस भवन को सजाया एवं संवारा गया। इस भवन की यह विशेषता है कि यह सामने से देखने पर दो मंजिला तथा पार्श्व से देखने पर तिमंजिला दीख पड़ता है। भवन के बिलकुल मध्य में ऐतिहासिक दरबार हाल बना हुआ है, जिसके ऊपर एक सौ अस्सी फुट ऊंचा काला गुंबद बना हुआ है। पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस को इसी दरबार हाल में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत की सत्ता अपने हाथों में संभाली थी।

राष्ट्रपति भवन में कुल चार सौ पंतालीस विशाल कमरे, चौहत्तर विस्तृत गैलरियां एवं दो सौ सत्ताइस गोलाकार स्तंभ हैं। भवन की मंजिलों को जोड़ते हुए अठारह जीने तथा ग्यारह लिफ्टें भी कार्यरत हैं। सुप्रसिद्ध मुगल उद्यान राष्ट्रपति भवन की सौंदर्य मंजूषा को सैंकड़ों प्रकार के गुलाबों से और भी अधिक मनोहारी बनाता है।



स्वस्तिक— विश्व की अत्यंत प्राचीन सभ्यताओं द्वारा समान रूप से अपनाया गया एक शुभ चिह्न। हिंदू, जैन, बौद्ध एवं ईसाई धर्मों के अतिरिक्त आदिम विश्वासों-वाले कबीलों में भी स्वस्तिक को प्रार्थना और पूजा में स्थान दिया गया। न केवल एशिया और मध्य एशिया में वरन यूरोप और अमरीका में भी पुरातात्विक उत्खननों के दौरान ऐसे अनेक अवशेष मिले हैं, जिन पर स्वस्तिक स्पष्ट रूप से अंकित है। हिटलर ने भी स्वस्तिक को इस विश्वास के साथ अपनाया कि वह समृद्धि और विजय का प्रतीक है। कहीं स्वस्तिक सूर्य का प्रतीक माना गया है, तो कहीं ईश्वर का। अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान एवं पुरातत्व विद थामस विलसन ने अपनी पुस्तक 'द स्वस्तिक' में इस प्राचीन चिह्न के संबंध में शोधपूर्ण सामग्री दी है। प्रस्तुत है, इसी कृति का सार।

• टी. विलसन

स्वस्तिक तेरे अर्थ अनेक

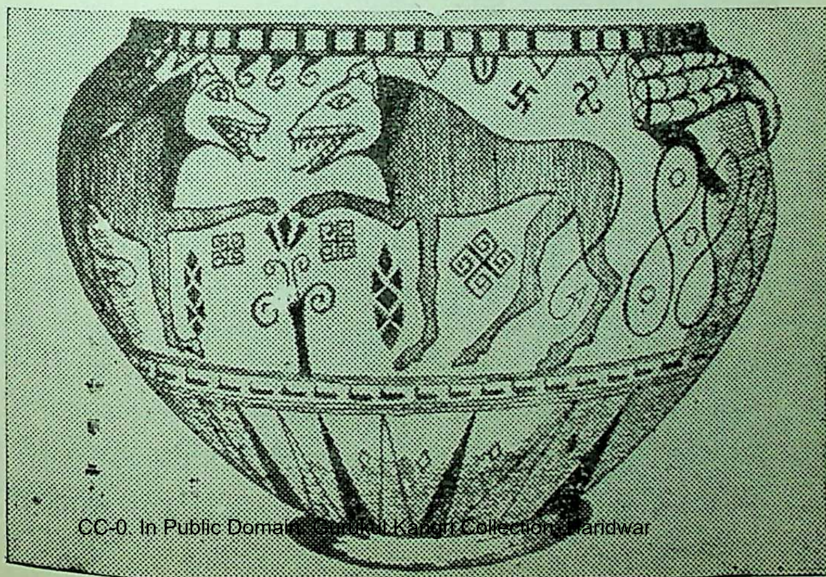
स्वस्तिक परम शुभ चिह्न है। केवल हिंदू ही नहीं, जैन, बौद्ध भी उसके महत्व को स्वीकार करते हैं। और न सिर्फ भारत में, विश्व के अनेक देशों में स्वस्तिक की प्राचीनता के पुरातात्त्विक प्रमाण मिले हैं, जिनसे हमें पता चलता है कि अत्यंत प्राचीनकाल से स्वस्तिक का शुभ चिह्न परस्पर विभिन्न सभ्यता-संस्कृतियों में भी अपने इसी शुभ अर्थ को अभिव्यक्त करता आ रहा है।

ईरान के सूसा में, मोहेंजोदाड़ो और हड़प्पा, मेसोपोटामिया, सुमेर में प्राचीन स्थानों की खुदाई में यह शुभ प्रतीक देखा गया, यूनान साइप्रस, क्रीट और रोड्स द्वीप पर खुदाई में मिले मृद्‌भांडों पर भी यह अंकित मिला है।

एथेंस में यह शवाधार के सामने बना हुआ है। ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना के एक संग्रहालय में रखे मृद्‌भांड पर बने अपोलो देवता के सीने पर चमकता हुआ अंकित है, स्वस्तिक। प्राचीन मिस्र में स्वस्तिक को एक धार्मिक और सज्जा-प्रतीक के रूप में लिया जाता था।

तुर्की में एक प्राचीन स्थान की खुदाई में ऐसे अस्थिपंजर मिले हैं, जिनके पास स्वस्तिक चिह्न से अंकित ध्वजदंड

एथेंस (यूनान) से प्राप्त एक पात्र पर अंकित स्वस्तिक



अपनाया
श्वासों-
न केवल
तनों के
हिटलर
प्रतीक
रीका के
' में इस
सार।

रखे मिले हैं, इन्हें ईसा से लगभग २२०० वर्ष पूर्व दफनाया गया था।

एक हित्ती स्मारक में, स्वस्तिक देवता के सम्मुख बलि देते व्यक्ति के उत्तरीय के छोर पर बना दिखायी देता है।

स्वस्तिक के ऐसे उपयोग प्राचीन जरमनी व स्कैंडेनेवियाईक्षेत्रों में भी दिखायी देते हैं। रोमन इंग्लैंड में इसे एक पवित्र चिह्न माना जाता था। इंग्लैंड में खुदाई में मिले एक रोमन भवन के स्वागत-कक्ष में स्वस्तिक फर्श पर बना हुआ है।

आरंभिक ईसाई स्मारकों पर भी स्वस्तिक के चिह्न देखे गये हैं। ऐसा मृतात्मा की सुरक्षा, शांति के लिए किया जाता था।

'न्यू वर्ल्ड' या अमरीकी महाद्वीप पर हुई खुदाइयों में भी स्वस्तिक के प्रतीक देखने को मिले हैं। विद्वानों का मानना है कि अमरीका महाद्वीप के आदिवासी इस चिह्न को पवित्र मानते थे। मेक्सिको, पेरू तथा सं. रा. अमरीका के कई प्रागैतिहासिक स्थानों पर खुदाइयों में मिली वस्तुओं पर स्वस्तिक के चिह्न मिले हैं।

हिटलर और स्वस्तिक

आधुनिककाल में जरमनी के तानाशाह हिटलर ने स्वस्तिक को जरमनी का राष्ट्रीय चिह्न बनाया। वह मानता था कि स्वस्तिक एक प्राचीन आर्य प्रतीक है, जो समृद्धि और विजय देता है।

स्वस्तिक हिंदू धर्म में

धर्मभीरु हिंदू तो हर शुभ कार्य करने से पहले स्वस्तिक का चिह्न अंकित करते हैं, इनमें व्यापार, मुंडन-संस्कार, विवाह व अन्य समारोह आते हैं।

इन सबसे यह पता चलता है कि अत्यंत प्राचीनकाल में भी स्वस्तिक को परम पवित्र माना जाता था। अलग-अलग विद्वानों ने इसके परस्पर भिन्न अर्थ बताये हैं। इसे हिंदुओं के चारो वर्णों का मिलन, उड़ते हुए पंछी, इंडोयूरोपीय प्राचीन देवता, वायु देवता, अग्नि या आग पैदा करने का यंत्र, नारी, नारी-पुरुष का मिलन, पाली का चिह्न, इनके अतिरिक्त इसे हिंदू देवता गणेश से भी जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि चूहे पर सवारी करनेवाले गणेश सूर्य देव हैं, चूहा रात है।

जैसा कि हमने पहले भी कहा है सूर्य-पूजा की परंपरा विश्व में सबसे प्राचीन कही जाती है। सूर्य अंधेरे का नाश करने वाला है। सिंधु-घाटी सभ्यता के अवशेषों से स्पष्ट है कि वहां के निवासी सूर्यपूजक थे।

वायवीय संहिता में स्वस्तिक को आठ यौगिक आसनों में एक बताया गया है। मत्स्य-पुराण में भी इसका जिक्र मिलता है।

हिंदू बुद्ध को सूर्य का अवतार स्वीकार करते हैं। बौद्ध मतावलंबियों के साथ यह परंपरा तिब्बत, चीन व जापान तथा बाद में दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य देशों में गयी। बुद्ध की मूर्तियों पर, चित्रों में स्वस्तिक अंकन देखने को मिलता है। अमरावती के प्रसिद्ध स्तूप में बुद्ध के

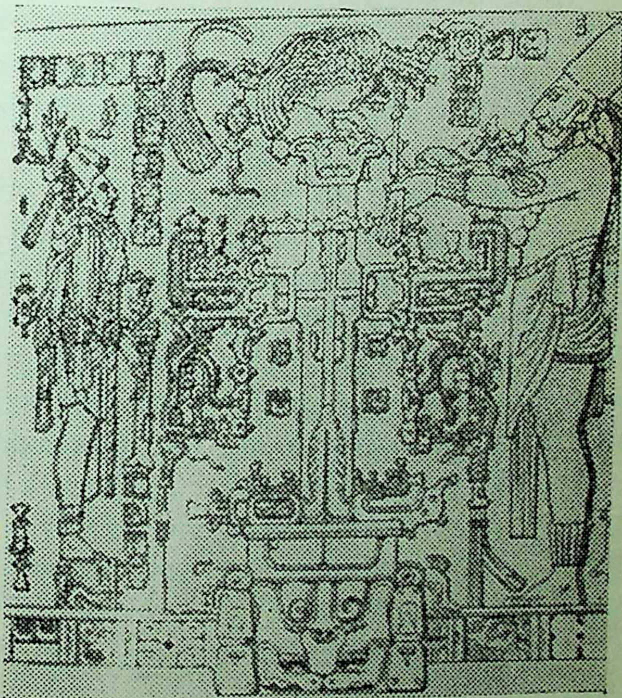
चरण चिह्नों में स्वस्तिक अंकित है। चीन में छठे राजा वू (छठी सदी) ने यह घोषणा की थी कि स्वस्तिक को सूर्य के प्रतीक के रूप में माना जाए। हड़प्पा की एक सील पर एक तरफ पांच स्वस्तिक बने हुए हैं।

प्राचीनकाल में भी आज की तरह ही एक देश की सभ्यता संस्कृति के तत्त्व व्यापारियों या सैनिकों के माध्यम से एक से दूसरे स्थान पर पहुंचते थे। और इस बात के पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं कि प्राचीनकाल में हड़प्पा, इताम, सूसा आदि नगर सभ्यताओं के बीच आदान-प्रदान के संबंध हैं। स्वस्तिक के बारे में भी यही बात कही जा सकती है, जो संभवत: इसी तरह कहीं से कहीं जा पहुंचा था। संभवत: यह हड़प्पा से मध्य एशिया गया, और बाद में वहां से अन्य स्थानों पर जा पहुंचा।

ईसा से कई सदी पूर्व इटली पर शासन करनेवाले एत्रुस्कन लोग इसे एशिया माइनर से लाये थे। इन स्थानों पर मिले अस्थिकलशों पर स्वस्तिक के चिह्न अंकित हैं।

प्राचीन तुर्की में स्वस्तिक के प्रतीक का व्यापक उपयोग किया जाता था। भारत में भी यह केवल सिंधु घाटी सभ्यता के नगरों तक सीमित नहीं था। दक्षिण भारत में अनेक क्षेत्रों में हुई खुदाई में प्राप्त वस्तुओं पर भी ये चिह्न अंकित हैं। इस तरह के सिक्के भी मिले हैं।

यह भी कह सकते हैं कि स्वस्तिक ईश्वर का सबसे प्राचीन प्रतीक मालूम देता है। पुराणों में भी इस तरह के विवरण मिलते हैं कि साधरणजन ईश्वर के प्रतीक के रूप में स्वस्तिक की पूजा करते थे।



मय-संस्कृति में स्वस्तिक का महत्त्वपूर्ण स्थान था। खुदाई में प्राप्त एक मय चित्र फलक

अमरीका में प्राप्त स्वस्तिक

अमरीकी महाद्वीप में स्वस्तिक चिह्न देखे जाने के विषय में यही कहा जा सकता है कि वहां भी यह एशिया से ही पहुंचा होगा। भले ही आज अमरीका की खोज का श्रेय कोलंबस को दिया जाए, लेकिन इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि फीनिशियाई व चीनी नाविक बहुत पहले उन क्षेत्रों में जा पहुंचे थे। अमरीका में ऐसी प्रतिमाएं मिली हैं, जिन्हें तथागत बुद्ध भी कहा जाता है। यह तथ्य अपने आपमें काफी महत्त्वपूर्ण है।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि स्वस्तिक की कल्पना पहले-पहल कहां और किसने की होगी— लेकिन इसका उत्तर कठिन है, क्योंकि यह बात गहन अतीत के गर्भ में खो गयी है।

प्रागैतिहासिक मानव ने गुफा-भित्तियों पर चित्रकला के जो बीज उकेरे थे, उनमें सीधी-तिरछी या आड़ी रेखाएं, त्रिकोणात्मक आकृतियां थीं, जो अपनी-अपनी अलग ध्वनियां व्यक्त करती थीं— विभिन्न स्थानों पर इनके अर्थ भी परस्पर भिन्न थे, पर शायद स्वस्तिक का प्रतीक ही एक ऐसा चिह्न था, जिसके मूल अर्थ को लेकर कहीं कोई बड़ा अंतर नहीं था।

चाहे वह भारत हो या सुदूर मध्य एशिया की प्राचीन नगर सभ्यताएं— स्वस्तिक को पवित्र ही पारिभाषित किया गया।

शुरू-शुरू में भारत के अतिरिक्त हर देश में स्वस्तिक को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता था, लेकिन बाद में धीरे-धीरे संस्कृत के मूल नाम स्वस्तिक को हर कहीं मान्यता मिल गयी।

डॉ. श्लेमान को ट्रॉय के प्राचीन नगर की खुदाई के दौरान कुछ वस्तुओं पर स्वस्तिक प्रतीक देखने को मिले। उन्होंने जरमनी के प्रसिद्ध भारतविद् डॉ. मेक्समूलर से उस संबंध में पूछा।

डॉ. मेक्समूलर ने अन्य बातों के साथ यह मत व्यक्त किया, 'मैं इसे ठीक नहीं मानता कि भारत के बाहर मिले इस तरह के प्रतीकों को भी स्वस्तिक कहकर पुकारा जाए। क्योंकि इससे यह पूर्वाग्रह बन जाता है कि स्वस्तिक का मूल भारत में ही है।'

भारत में स्वस्तिक संबंधी पहला उल्लेख पाणिनी के व्याकरण में मिलता है।

प्रायः बौद्ध उद्घोषणाओं के प्रारंभ और अंत में स्वस्तिक का उपयोग होता है। यह संभव है कि आर्य कबीलों में स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक माना जाता हो, लेकिन अन्य ऐतिहासिक विवरणों से पता चलता है कि स्वस्तिक के ही एक रूप क्रास को अनेक सभ्यताओं में धरती का प्रतीक माना जाता था।

तिब्बत में एक स्वस्तिक संप्रदाय भी था। उसे इस चिह्न से संबंधित नहीं समझना चाहिए।

प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. वालर के अनुसार ईसा से कई शताब्दी पूर्व ही

भारत में स्वस्तिक को पवित्र प्रतीक के रूप में मान्यता मिल चुकी थी। बाद में इसे बौद्ध मतावलंबियों ने स्वीकार कर लिया और फिर ईसाइयों ने भी इसका महत्त्व स्वीकार किया।

स्वस्तिक का अर्थ सूर्य था, इसके लिए डॉ. मेक्समूलर ने कहा है कि उत्खनन में मिले एक सिक्के पर अंकित वर्णक्रम के बीच में स्वस्तिक अंकित है। उसका अर्थ है दक्षिण या सूर्य का नगर। ऐसे सिक्के भी देखने में आये हैं, जिनमें सूर्य को गति के प्रतीक चक्र के बदले स्वस्तिक का अंकन किया गया है।

अनेक स्थानों पर खुदाई में मिली वस्तुओं पर स्वस्तिक का अंकन उसकी प्राचीनता को ताम्र-युग तक ले जाता है। उस काल के अस्त्र-शस्त्र उपकरणों और आभूषणों पर यह प्रतीक अंकित मिलता है।

विद्वान अकसर ही इस बात पर वाद-विवाद करते रहे हैं कि स्वस्तिक का उद्गम कहां हुआ होगा? और पूरे विश्व में इसकी यात्रा की प्रक्रिया क्या रही होगी? इस संबंध में एक पोलिश विद्वान मिचेल जेमिग्रोदस्की ने एक नक्शा तैयार किया था, जिसे शिकागो के 'वर्ल्ड कोलंबियन एक्सपोजीशन' में प्रदर्शित किया गया था। उसके अनुसार प्रागैतिहासिक विकास-क्रम इस तरह रहा होगा—

१. भारत और बेक्टीरिया
२. साइप्रस, रोड्स द्वीप



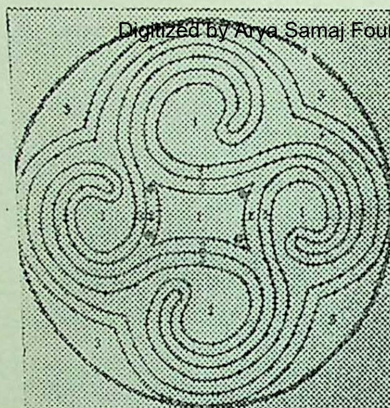
अमरावती स्तूप में अंकित बुद्ध के चरण: स्वस्तिक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं

३. उत्तरी यूरोप
४. मध्य यूरोप
५. दक्षिणी यूरोप
६. एशिया माइनर
७. ग्रीक और रोमन राज्य

क्रिश्चियन---

८. गॉल
९. बाइजेंटाइन
१०. मेरोविंगियन
११. जरमनी
१२. पोलैंड और स्वीडन
१३. ग्रेट ब्रिटेन

प्रोफेसर साइस के अनुसार, 'यह चिह्न साइप्रस व एथेंस में मिले मृद्भांडों



पीमा इंडियनों द्वारा उपयोग में लायी जानेवाली ढाल पर अंकित स्वस्तिक

पर अंकित देखा गया है, लेकिन बेबीलोन, असीरिया, फीनीशिया और मिस्र में इसकी कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए संभव है यह प्रतीक यूरोप में विकसित हुआ हो और पूर्व में एशिया माइनर तथा पश्चिम में हित्तियों के आदि स्थान तक जा पहुंचा हो।'

चीन और जापान में स्वस्तिक

काउंट गोबलेट के अनुसार, 'पहले-पहल स्वस्तिक चिह्न यूनान, साइप्रस व रोड्स द्वीप में मृद्भांडों पर ज्यामितीय आकृतियों के साथ दिखायी देते हैं, यह यूनानी मृद्भांडों को विकास-क्रम की दूसरी सीढ़ी है। एक अन्य विद्वान डॉ. रिच्टर के अनुसार फीनिशियाई व्यापारी नाविक पूर्वी देशों की यात्रा से इस प्रतीक को अपने साथ लाये थे।

जापान में स्वस्तिक की उपस्थिति के बहुत प्राचीन प्रमाण मिले हैं। वहां बुद्ध की अनेक मूर्तियां मिली हैं, जिनके आधार पर स्वस्तिक उकेरे हुए हैं। प्राचीन जापान में बनी पोर्सलीन की वस्तुओं पर भी स्वस्तिक बने हुए मिले हैं।

अमरीका में राष्ट्रीय संग्रहालय में कोरिया की बनी एक डोली है, जिसके कोनों पर धातु के बने स्वस्तिक लगे हुए हैं।

चीनी भाषा में स्वस्तिक को 'वान' कहा जाता है। इसका अर्थ अनेक या बहुत होता है। एक व्याख्या दीर्घ जीवन की भी की जाती है। (६२०-९०६ई.)

तांग-वंश के इतिहास से पता चलता है कि बादशाह ताइत्सुंग ने एक घोषणा में आदेश दिया था कि चीन में बने हुए सिल्क के वस्त्रों पर स्वस्तिक चिह्न न बनाया जाए।

तांग-वंश के इतिहास लेखक फुंग त्से ने लिखा है कि हर वर्ष के सातवें महीने के सातवें दिन मकड़ियों को लाकर उनसे जाले में स्वस्तिक के चिह्न बुनवाते हैं। अगर कहीं किसी को मकड़ी के जाले में स्वस्तिक बुना मिल जाए तो वह उसे सौभाग्य का सूचक मानता है।

उस समय स्वस्तिक चिह्न से अंकित पशुओं को पवित्र मानकर उनका दान दिया जाता था।

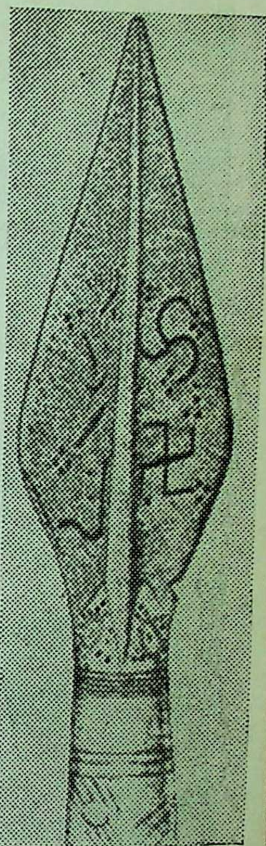
प्राचीन चीनी मृद्भांडों और वाद्य-यंत्रों पर स्वस्तिक का अंकन देखा जाता है।

तिब्बती नारियां अपने अधोवस्त्र पर स्वस्तिक की कढ़ाई करती थीं। मृतक

। प्राचीन
स्तुओं पर
हालय में
है, जिसके
लगे हुए
को 'वान'
या बहुत
न की भी
)
ता चलता
घोषणा
बने हुए
चिह्न न
खक फुंग
तवें महीने
कर उनमें
वाते हैं।
जाले में
वह उसे
से अंकित
का दात
र वाद्य-
ा जाता
अधोवस्त्र
। मृतक
दम्बिनी

के सीने पर स्वस्तिक चिह्न के रखे जा
की परंपरा भी थी। लय
ईसाई पुरातत्त्वविदों के अनुसार ा है,
स्वस्तिक ही क्रास का सबसे प्राचीन रूप तक
था।
भारत में स्वस्तिक को शुभ चिह्न पूरे
मानने के संबंध में कोई प्रमाण या उदाहरण तिक
देने की आवश्यकता नहीं है। हिंदू तो है।
इसे सबसे पवित्र प्रतीक मानते ही हैं सभी
दुकानदारों के व्यापार-स्थलों की दीवारें एक-
पर यह चिह्न गेरू से अंकित देखा जलित
सकता है। जन्म, मुंडन, विवाह या अन्य
मांगलिक पर्वों पर स्वस्तिक को प्रमुख कांसे
धार्मिक प्रतीक के रूप में अंकित किया का
जाता है। ुडा-
प्रो. वारिंग के अनुसार— 'हमने ांग्रेस
बेबीलोन व असीरिया के भग्नावशेषों हुआ
में स्वस्तिक का चिह्न खोजने के असफल वार
प्रयास किये। प्रो. मैक्स मूलर ने भी ऐसे वाद
ही विचार व्यक्त किये थे।
प्रो. रिच्टर के अनुसार उन्हें स्व ालय
स्तिक के फीनिशियाई प्रमाण भी नहीं पर
मिले, लेकिन वह इतना जरूर मानते स्तक
कि इसे सुदूर पूर्व से व्यापारी नाविक
अपने साथ फीनिशियाई बस्तियों में कई
आये होंगे और उन्हीं से यह साइप्रस कित
कार्थेज तथा उत्तरी अमरीका में प्रसारित साई
हुआ होगा।
जे. डी. भार्गव ने रूसी आर्मीनिया कांस्य
में पुरातात्त्विक स्थलों की काफी खुदा वंद
की थी। उन्हें स्वस्तिक के चिह्न देख गाल

जरमनी के ब्रांडेनबर्ग में प्राप्त एक भाला जिसके फल पर स्वस्तिक अंकित है



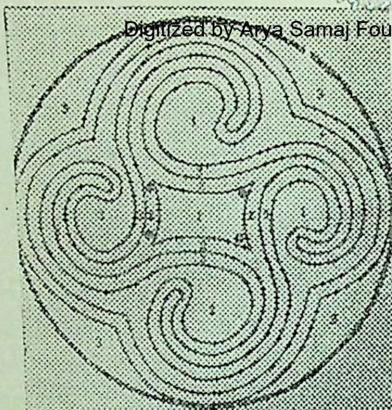
प्रदेश पर आधिपत्य होने के बाद तक भी जारी रहा।

दक्षिणी फ्रांस में एक रोमकालीन प्रस्तर वेदिका मिली है, जिसके आधार भाग पर स्वस्तिक बना हुआ है।

उसी काल का एक घड़ा भी है। उस पर अन्य आकृतियों के बीच में स्वस्तिक का प्रतीक देखा जा सकता है।

प्रो. ग्रेग ने अपनी पुस्तक में चांदी की बनी एक ऐसी छोटी गोल आकृति का जिक्र किया है, जो उन्हें स्लीफोर्स, इंग्लैंड में एंग्लोसेक्सन कब्रिस्तान में मिली थी। उस पर स्वस्तिक का सजावटी रूप दिखायी देता है।

प्रागैतिहासिक काल में स्वस्तिक



पीमा इंडियनों द्वारा उपयोग में लायी जानेवाली ढाल पर अंकित स्वस्तिक

पर अंकित देखा गया है, लेकिन बेबीलोन, असीरिया, फीनीशिया और मिस्र में इसकी कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए संभव है यह प्रतीक यूरोप में विकसित हुआ हो और पूर्व में एशिया माइनर तथा पश्चिम में हित्तियों के आदि स्थान तक जा पहुंचा हो।'

चीन और जापान में स्वस्तिक

काउंट गोबलेट के अनुसार, 'पहले-पहल स्वस्तिक चिह्न यूनान, साइप्रस व रोड्स द्वीप में मृद्भांडों पर ज्यामितीय आकृतियों के साथ दिखायी देते हैं, यह यूनानी मृद्भांडों को विकास-क्रम की दूसरी सीढ़ी है। एक अन्य विद्वान डॉ. रिचटर के अनुसार फीनिशियाई व्यापारी नाविक पूर्वी देशों की यात्रा से इस प्रतीक को अपने साथ लाये थे।

जापान में स्वस्तिक की उपस्थिति के बहुत प्राचीन प्रमाण मिले हैं। वहां बुद्ध की अनेक मूर्तियां मिली हैं, जिनके

...क जो वस्तु जितने पुराने युग की है, उस ...र उतने ही अधिक स्वस्तिक चिह्न ...वे गये। यानी समय बीतने के साथ-...थ उन क्षेत्रों में स्वस्तिक की मान्यता ...म होती गयी।

स्वस्तिक का विकास

...छ विद्वान स्वस्तिक प्रतीक का विकास ...ान में हुआ मानते हैं, लेकिन यह बात ...ब तक प्रमाणित नहीं हो सकी है।

अनेक पुरातत्त्वविद् यह मानते हैं ... प्रागैतिहासिक यूरोप में कांसा सुदूर ...य पूर्व से आया। अनमान है कि बर्मा, ...ई देश, चीन व आस-पास के क्षेत्रों में ...ी हुई टीन खदानों से बहुत पुराने ...य में खनिज निकालकर पहले-पहल ...सा बनाया गया होगा।

पश्चिमी यूरोप में प्राचीनकाल की ...सा भट्टियां खोदकर निकाली गयी हैं। ...र इसी तरह वहां हजारों की संख्या ... कांस्य उपकरण प्राप्त हुए हैं। अगर ... यह मानते हैं कि कांसे की वस्तुएं ...प्रथम एशिया में बनीं होंगी, तो यह ...कर्ष भी सही हो सकता है कि स्वस्तिक ...कित कांस्य उपकरण वहीं से यूरोप ... अन्य स्थानों पर पहुंचे होंगे।

ट्रॉय में स्वस्तिक के चिह्न कताई ...ों पर मिले हैं, तो यूनान व साइप्रस ... मृद्भांडों पर, स्कैंडेनेवियाई देशों में ...त्र-शस्त्रों तथा वस्त्रों पर भी ये पाये ... हैं। इसी तरह इंगलैंड, फ्रांस, इरिट्रिया ... मिले छोटे-छोटे कांस्य आभूषणों पर

ये अंकित हैं।

बेल्जियम में नामूर के संग्रहालय में एक छोटी हड्डी से बना उपकरण है, जिस पर कई क्रासों के बीच में स्वस्तिक का चिह्न भी अंकित है।

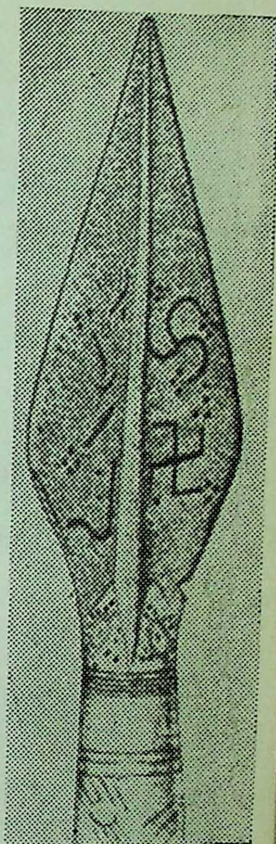
डेन्मार्क, स्वीडन और नार्वे के पूरे क्षेत्र में मिले प्रागैतिहासिक सांस्कृतिक अवशेषों में बहुत अधिक साम्यता है। इसलिए विद्वान यह मानते हैं कि इन सभी क्षेत्रों की प्राचीन संस्कृति-सभ्यता एक-सी ही है। इन्हीं देशों का सम्मिलित नाम स्कैंडेनेविया है।

एक स्थान पर खुदाई में एक कांसे की तलवार मिली है, जिस पर चांदी का स्वस्तिक बना हुआ है। १८७६ में बुडापेस्ट में हुई प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व कांग्रेस में इस पर अंकित चिह्नों पर विचार हुआ था और निष्कर्ष निकला था कि तलवार पर अंकित स्वस्तिक का अर्थ आशीर्वाद देने से है।

इसी तरह इटली के एक संग्रहालय में एक भाले का फाल रखा है, जिस पर अन्य लिपि-संकेतों के साथ-साथ स्वस्तिक भी बना है।

स्काटलैंड और आयरलैंड में कई स्थानों में स्वस्तिक चिह्न से अंकित पत्थर खुदाई में मिले हैं। उन पर ईसाई क्रास भी बने हुए हैं।

फ्रांस में स्वस्तिक का उपयोग कांस्य या लौह-युग से आगे आने के साथ ही बंद नहीं हो गया—बाद में रोमनों द्वारा गाल प्रदेश पर आधिपत्य होने के बाद तक भी जारी रहा।


जरमनी के ब्रॉडेनबर्ग से प्राप्त एक भाला जिसके फल पर स्वस्तिक अंकित है

दक्षिणी फ्रांस में एक रोमकालीन प्रस्तर वेदिका मिली है, जिसके आधार भाग पर स्वस्तिक बना हुआ है।

उसी काल का एक घड़ा भी है। उस पर अन्य आकृतियों के बीच में स्वस्तिक का प्रतीक देखा जा सकता है।

प्रो. ग्रेग ने अपनी पुस्तक में चांदी की बनी एक ऐसी छोटी गोल आकृति का जिक्र किया है, जो उन्हें स्लीफोर्स, इंग्लैंड में एंग्लोसेक्सन कब्रिस्तान में मिली थी। उस पर स्वस्तिक का सजावटी रूप दिखायी देता है।

प्रागैतिहासिक काल में स्वस्तिक

यात्रा करता हुआ पश्चिमी गोलार्ध में जा पहुंचा था, यह बात अब प्रमाणित हो चुकी है।

सेतु दो गोलार्धों के बीच

१८८१ में डॉक्टर एडवर्ड पामर को टेनेसी क्षेत्र में फेंस द्वीप पर एक टीले की खुदाई में सीप का बना एक आभूषण मिला, जिस पर स्वस्तिक से मिलती-जुलती आकृति अंकित है। स्वस्तिक की ऐसी ही आकृति स्वीडन में भी मिली है। अमरीका में मिले स्वस्तिक प्रतीकों से यह प्रश्न उभरता है कि पूर्वी गोलार्ध और पश्चिमी गोलार्ध का संपर्क कैसे हुआ होगा! क्या वहां बसनेवाले आदिम निवासियों ने किसी न किसी रूप में बुद्ध या हिंदू प्रभाव को ग्रहण किया था।

इस संबंध में काफी खोज के बाद एक ऐसी खंडित आकृति देखने में आयी, जो किसी भी तरह उत्तर अमरीकी आदिवासियों के रूपाकार और वेश-विन्यास से मेल नहीं खाती थी।

रेवरेंड-जैसी ओवंस ने कंसास के आदिवासियों की एक शोक-सभा का विवरण दिया है। उसमें कुछ पवित्र गीत गाये जाते हैं। उस अवसर पर एक सूची रखी जाती है, जिसमें कुछ पवित्र चिह्न अंकित रहते हैं। उनमें एक चिह्न स्वस्तिक का होता है।

एक कबीले की औरतें मनकों के ऐसे गहने पहनती हैं, जिन पर अलग-अलग रंगों में स्वस्तिक की आकृति बनी रहती है। एक कबीले के रीति-रिवाजों का विवरण मिस मेरी ए. ओवेन ने दिया है--'रेड इंडियन इसे (स्वस्तिक) 'भाग्य' या सौभाग्य कहते हैं। पता चलता है इसे उनका कबीला न जाने कब से बनाता चला आ रहा है। और स्वस्तिक के गहनों का उपयोग कुछ विशेष अवसरों पर ही किया जाता है।

इसी तरह सं. रा. अमरीका के न्यू मेक्सिको क्षेत्र में बसनेवाले प्लूब्लो कबीले के लोग भी स्वस्तिक से परिचित हैं। यही बात अमरीका के कई अन्य आदिवासी कबीलों के बारे में भी कही जा सकती है। इन कबीलों की परंपरा व संस्कृति की धाराओं में अलगाव होते हुए भी स्वस्तिक के शुभ रूप की समान कल्पना चकित कर देनेवाली है। आज यह कहना बहुत कठिन है कि स्वस्तिक कब और किस तरह अमरीका में पहुंचा होगा।

मध्य अमरीकी देशों में भी स्वस्तिक को शुभ चिह्न माने जाने के प्रमाण मिले हैं। निकारागुआ में एक बड़ी चट्टान पर स्वस्तिक का चिह्न उकेरा हुआ मिला है, उसे छेनी-हथौड़े की मदद से तराशा गया है।

ट्रॉय के खोजी डॉ. श्लीमान ने अपनी रिपोर्ट में चीनी मिट्टी के ऐसे प्राचीन बरतन खोज निकालने की बात कही थी, जिस पर स्वस्तिक की कई आकृतियां बनी हुई थीं। मेक्सिको की प्राचीन मय सभ्यता के नगर मयपन की खुदाई में



स्वस्तिक से अंकित प्रस्तर शिला मिली थी ।

कोस्टारिका में लेंपा नदी के तटवर्ती क्षेत्र में स्वस्तिक से युक्त मृद्‌भांड पुरातत्वविद डॉ. जे. एफ. ब्रांसफोर्ड ने खोज निकाला था ।

आदिवासी संस्कृति में स्वस्तिक

ब्राजील में आदिवासी नारियां अपने गुप्तांगों पर गोलाकार पट्टियां बांधती थीं, जिन पर कहीं-कहीं स्वस्तिक के चिह्न अंकित रहते थे । उन्हें टुंगा कहा जाता है, जो एक पश्चिमी अफरीकी शब्द है । लगता है कि शायद अफरीका के पश्चिमी तट से प्राचीनकाल में कुछ लोग ब्राजील पहुंचे होंगे और उन्हीं के साथ यह प्रतीक वहां पहुंचा होगा ।

डॉ. श्लीमान ने बर्लिन संग्रहालय में रखी एक ऐसी बोतल का जिक्र किया है, जो काशीफल के खोल की बनी हुई थी । उस पर स्वस्तिक के कई चिह्न खुदे हुए थे ।

इन सब उदाहरणों से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि अमरीका महाद्वीप पर रहनेवाले आदिवासी कबीलों को स्वस्तिक का महत्त्व पता था । ये किसी न किसी रूप में उसे शुभ चिह्न मानते थे। और संस्कारों में उसका उपयोग किया जाता था ।

बुद्धि-विलास के उत्तर

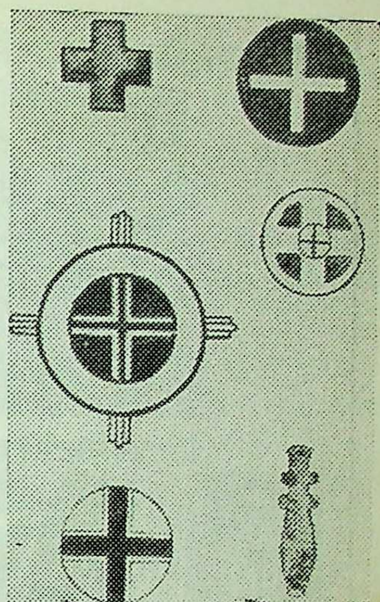
१. अधिक, २. शंघाई, ३. क. हां, प्रॉफेसर अब्दुस्सलाम, १९७९, भौतिकी, ख. छह, ग. मदर टेरेसा (शांति, १९७९), ४. क. डॉ. फारूक अब्दुल्ला (श्रीनगर, जम्मू-कश्मीर), ख. केरल, ५. क. अंतर्राष्ट्रीय सौर अधिकतम गति-विधि वर्ष (इंटरनेशनल सोलर मैक्सीमम ईयर या एस. एम. वाई.)—अगस्त १९७९ से फरवरी १९८१ तक, ख. १६ फरवरी, १९८०, ग. २२ जनवरी, १८९८ (सन १९१४ तथा १९५४ के पूर्ण सूर्यग्रहण प्रतिकूल वातावरण के कारण भारत में नहीं देखे जा सके), ६. अमरीकी आविष्कर्ता टामस अल्वा एडीसन, २१ अक्तू. १८७९ (गत वर्ष इस आविष्कारक की शतवार्षिकी मनायी गयी थी), ७. आंध्र-प्रदेश में, सरकारी कोयला खान-समूह (लगभग ३१ हजार टन कोयले का प्रतिदिन उत्पादन), ८. बुलवरकर

अमरीका महाद्वीप के कुछ आदिवासी कबीले अकसर ही अपनी देह रंगा करते हैं, इसके लिए ये मिट्टी या लकड़ी के छापे या ठप्पे बनाकर उनसे अपने शरीर पर छपाई करते हैं––एक भौगोलिक क्षेत्र में बसनेवाले अलग-अलग कबीलों में प्राय: ही इस तरह के समस्त रेखांकन देखने को मिलते हैं। उन्हें स्वस्तिक तो नहीं, पर उससे मिलते-जुलते रेखांकन अवश्य कहा जा सकता है।

इन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि स्वस्तिक का आरंभ, विकास और इतिहास अतीत के गर्भ में छिपा है, लेकिन यही एक ऐसा अकेला धार्मिक प्रतीक है, जो किसी न किसी रूप में हर जगह धार्मिक संस्कारों में, शुभ, कल्याण, लाभ और पवित्रता व आशीर्वाद-जैसी भावनाओं से जुड़ा रहा है।

संभव है इसे किसी एक देश में (वह भारत भी हो सकता है) किसी विशेष वर्ग के लोगों ने अभिव्यक्ति दी हो और फिर वहां से यह दुनिया के कोने-कोने में अपनी इसी व्याख्या और अर्थ के साथ फैल गया हो।

यह निश्चित है कि इसका उद्भव प्रागैतिहासिक काल में हुआ। ट्रॉय की तीसरी, चौथी और पांचवीं परतों में इसके अस्तित्व के प्रमाण मिले हैं। ताम्र-युग में यह मौजूद था। पश्चिम यूरोप में भूमध्यसागर से लेकर ध्रुवीय समुद्र तक। लौह-युग में भी यह पूरे यूरोप में व्यवहृत होता



कुछ लोगों का मत है कि क्रास एवं स्वस्तिक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं

रहा। आज इसके लिए संस्कृत नाम 'स्वस्तिक' का ही उपयोग होता है, चाहे वह कहीं भी हो, वैसे प्राचीन भारत में इसका नामोल्लेख पाणिनी के व्याकरण में मिलता है, जो इसका प्रमाण है कि यह उससे काफी पहले से व्यवहार में आ रहा था।

मूलत: एक आर्य प्रतीक

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि स्वस्तिक अपने मूल रूप में आर्य प्रतीक है और एशिया व यूरोप में वे लोग जहां-जहां गये यह उनके साथ गया।

यह एक विशद खोज का विषय है, और इसकी खोज के दौरान हम उस

प्रश्न का निश्चित उत्तर पा लें कि आर्य कैसे और कहां से किधर गये और कहां बसे ? प्रो. साइस का मत है कि स्वस्तिक मूलत: एक हित्ती प्रतीक था और उनसे यह आर्यों को मिला, लेकिन साथ ही वह इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि बेबीलोन, असीरिया, फीनिशिया या मिस्री इससे करीब-करीब अनभिज्ञ थे।

प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि ताम्र-युग में यह प्रतीक प्रचलित था और चेल्दी, हित्ती, आर्य कबीले इसका शुभ रूप स्वीकार करते थे—

कुछ विद्वान मानते हैं कि संभवत: पहले-पहल यह तिब्बत के बौद्ध मतावलंबियों द्वारा उपयोग में लाया गया और वहां से अन्य एशियाई देशों में इसका प्रसार हुआ।

स्वस्तिक किसी देवता का प्रतीक था या नहीं यह विवाद का विषय है, पर इतना निश्चित है इसे शुभ अवश्य माना जाता था। हो सकता है कुछ कबीले इसे केवल सजावट के रूप में प्रयोग करते रहे हों—

प्रागैतिहासिक प्रमाणों पर नजर डालने से पता चलता है कि प्राय: ही स्वस्तिक का अंकन रोजमर्रा के उपयोग की साधारण वस्तुओं जैसे घड़ा, कटोरी, कंघा, वस्त्र, आभूषण तलवार या ऐसी ही अन्य चीजों पर किया जाता था। आरमीनिया में हम इसे कांसे के बटन और कीलों पर बना देखते हैं।

प्राचीन इटली में अस्थि या भस्म कलशों पर यह अंकित होता था। स्विट्जरलैंड की झील-बस्तियों में यह मिट्टी के बरतनों पर छापा जाता था—इससे यही धारणा बनती है कि इतने व्यापक उपयोग के बावजूद स्वस्तिक, हिंदू व कुछ अन्य धर्मों को छोड़कर, औरों के लिए उतना पवित्र नहीं था।

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि दूर-दूर बसे अलग-अलग स्थानों पर स्वस्तिक का मिलना स्वयंस्फूर्त भी हो सकता है—संभव है यह कहीं से कहीं न गया हो और अलग-अलग लोगों ने इसे स्वयं मन से बनाया हो—लेकिन इस संबंध में यह कहना होगा कि स्वस्तिक, ईसाई क्रास की तरह केवल दो रेखाएं नहीं हैं, बल्कि सही स्वस्तिक बनाने में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है और यह बिना देखे अपने मन से सही-सही नहीं बनाया जा सकता। इसलिए स्वत: स्फूर्त होने की बात कुछ जमती नहीं।

एक शुभ चिह्न

भारत तथा कुछ अन्य पूर्वी देशों में आज भी इसे शुभ चिह्न मानते हैं, लेकिन अन्य देशों में अब इसके प्रति ऐसी धारणा नहीं। आज इसे कालीन और कपड़ों के बार्डर में बुना जाता है। आधुनिक यूरोप में लेपलैंड और फिनलैंड के अतिरिक्त और कहीं इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। लेपलैंड में बने कुछ बरतनों पर

समय

क्षण-बिंदु से बना काल-समुद्र
दहाड़ता है
और
डोलती है ---
रफ्ता-रफ्ता पानी ले रही है मेरी नाव
अच्छी तरह गाहे जाने पर भी
जिसमें छेद रह गये हैं
लीलने के लिए तत्पर
तुंग तरंगों को देखकर
मुझे पसीना आ रहा है
ओ अनंत कालांतक
मैं पुरुषार्थी
सार्थकताओं की चतुर्दिक् सृष्टि करता-
करता
स्वयं निरर्थक हो गया हूं
ओस के कणों में ढुलकता अनंत का संदेश
अब मेरी पकड़ में नहीं आता
वे गेसू
वे गुलाबी रुखसार, वे रंगीन नजारे
अब मेरे लिए ज्यादा सुरूर नहीं रखते
उन नीमबहशी आंखों
और शोख जुल्फों से बनी शायरी
अब मुझे व्यंजनाहीन मालूम पड़ती है
समय सच है
जो सबको अंत में 'अभिधा' पर
टिका देता है

--कुमार विमल

९६, एम. आई. जी. एच.,
लोहियानगर, पटना-२०.

स्वस्तिक के चिह्न देखे जा सकते हैं। कुछ वर्ष पहले तक आइसलैंड में इसे एक जादुई प्रतीक-चिह्न के रूप में मान्यता मिली हुई थी--इतिहास बताता है, पहले-पहल स्वस्तिक का उपयोग यहां नौवीं शताब्दी में शुरू हुआ था।

यों कहें कि आज स्वस्तिक का किसी न किसी रूप में प्रयोग पूर्वीय व स्कैंडेनेवियाई देशों तक सीमित है, ये देश प्राचीनकाल में एक-दूसरे से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे। दूसरी ओर पश्चिमी यूरोप में, जहां प्राचीनकाल में स्वस्तिक प्रतीक का प्रयोग होता था, आज बिलकुल नहीं दिखायी देता।

अगर स्वस्तिक भारत से ही अमरीका या अन्य स्थानों पर गया, और वहां इसकी व्याख्या इसी रूप में रही, तो इसके प्रमाण कभी न कभी मिलेंगे—लेकिन हमें यह भी देखना होगा कि क्या भारत व कुछ अन्य पूर्वीय देशों से बाहर स्वस्तिक का वही अर्थ था, जो यहां माना जाता है।

अगर हम स्वस्तिक को बौद्ध धर्म से जुड़ा हुआ मानते हैं, तो हमें यह भी देखना होगा कि जहां स्वस्तिक के प्रतीक मिले हैं, वहां बौद्ध धर्म की उपस्थिति के प्रमाण भी मिलें, लेकिन भारत के बाहर ऐसे प्रमाण कहीं नहीं हैं। बौद्ध धर्म का प्रारंभ ईसा से छह सदी पूर्व मानते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वस्तिक भारत से बाहर कहीं गया, तो ईसा से छठी सदी पूर्व ही गया होगा। ●

नयी कृतियां

मंचन योग्य सफल नाटक

हिंदी में रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किये जाने योग्य बहुत कम नाटक लिखे गये हैं। **'बूची टेरेस'** का प्रकाशन न केवल इस अभाव को दूर करता है, वरन कथानक एवं शिल्प की दृष्टि से भी एक परंपरा का श्रीगणेश करता है। नाटककार ने विवाह, प्रेम एवं स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक संबंधों को एक बिलकुल नयी दृष्टि से देखा है और उनकी निस्सारता एवं प्रभावहीनता को बड़ी सफलता से चित्रित किया है। वस्तुतः यह नाटक समय के प्रवाह में टूटते पारंपरिक सामाजिक मूल्यों, विशेषकर विवाह-संस्था की सार्थकता पर एक जबर्दस्त प्रश्न-चिह्न लगाता है। एक गोवानी मकान-मालकिन मिस गोरावाला तथा उसकी मुंहबोली बेटियों——मंजरी, सत्या, शोभना एवं नायक चित्रकार शेखर के माध्यम से लेखक ने एक लंबे समय से अनुभव की जा रही विवाह-संस्था की सार्थकता, हीनता और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उपजी बेचैनी को एक विद्रोहपूर्ण अभिव्यक्ति दी है, जो न केवल 'कांपेक्ट', वरन कहीं-कहीं तिलमिला देनेवाली भी है।

पात्रों के छोटे-छोटे संवादों में व्यक्त एक नया जीवन-दर्शन नाटक के पाठक या दर्शक को अंत में यह स्वीकार करने के लिए विवश-सा कर देता है कि उसके अचेतन मन के किसी कोने में शायद नाटक के पात्रों-जैसी बेचैनी और विद्रोह दबा बैठा है।

नाटक कई बच्चों की मां लेकिन फिर भी 'मिस' गोरावाला के आत्म-परिचय से शुरू होता है। और, इस आत्म-परिचय में निहित मिस गोरावाला का जीवन-दर्शन आगे होनेवाली घटनाओं में व्यक्त होता है। मिस गोरावाला भी विवाह-संस्था पर विश्वास नहीं रखती, और न उसका किरायेदार चित्रकार शेखर। शोभना, सत्या और बाद में मंजरी भी शेखर के प्रति आकर्षित हो जाती है, लेकिन नारी-स्वभाव के विपरीत उनमें न परस्पर ईर्ष्या है और न सौतिया-डाह। अपने विचारों और कार्यों से पूर्णतः विद्रोही इन लोगों के बीच है एक ब्रह्मचारी योग-प्रिय प्रोफसर, जो पुरानी सामाजिक मान्यताओं का 'प्रतीक' है। लेकिन बाद में प्रोफेसर का मंजरी से प्रेम-निवेदन उसके सिद्धांतों का मखौल उड़ा देता है।

'बूची टेरेस' आधुनिक रंगमंच की कसौटी पर भी खरा उतरता है, इसीलिए नयी दिल्ली में प्रथम सफल मंचन के बाद

वह पंजाबी और मराठी रंगमंच पर भी एकाधिक बार प्रस्तुत किया जा चुका है।

दो अंकों में बंटा यह नाटक अपने सुगठित घटनाक्रम एवं चुटीले संवादों के कारण आदि से अंत तक बांधे रखता है और न केवल देखकर वरन उसे पढ़कर भी आनंद उठाया जा सकता है। लेखक ने स्थान-स्थान पर आवश्यक दिशा-निदेश दे दिये हैं, जिससे एक ओर जहां पाठक अपनी कल्पना में एक मंच की रचना कर लेता है, वहां दूसरी ओर उनसे निर्देशक का काम भी बहुत आसान हो जाता है।

ययाति : कन्नड़ भाषा के सुप्रसिद्ध नाटककार गिरीश कर्नाड का एक बहुचर्चित नाटक है, जिसमें एक पौराणिक आख्यान के माध्यम से मानवीय दुर्बलताओं एवं दो पीढ़ियों के संघर्ष को सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है।

शर्मिष्ठा और देवयानी की पारस्परिक ईर्ष्या में फंसा ययाति, शर्मिष्ठा के पिता के कोप के कारण असमय वृद्धावस्था का शिकार होने लगता है, पर अपने पुत्र द्वारा उस शाप को स्वयं ओढ़ लेने के कारण बच जाता है। लेकिन अपनी पुत्रवधु चित्रलेखा की असामयिक मृत्यु से उसका मोह भंग होता है और वह शर्मिष्ठा के साथ वानप्रस्थ जीवन बिताने चला जाता है!

चार अंकों में बंटा यह नाटक भी अनेक स्थलों पर सफलतापूर्वक मंचित किया जा चुका है।

बूची टैरेस

लेखक--राजेन्द्र अवस्थी, प्रकाशक--पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्णगली विश्वास-नगर, शाहदरा, दिल्ली--३२, पृष्ठ--८४, मूल्य--१० रुपये।

ययाति

लेखक--गिरीश कर्नाड, प्रकाशक--सरस्वती विहार, २१, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२, पृष्ठ--८३, मूल्य--१० रुपये।

विविध

रचना और आलोचना : स्वर्गीय देवीशंकर अवस्थी के आलोचना, कविता, उपन्यास, कहानी और नाटक संबंधी निबंधों का संग्रह है। पांच भागों में बंटी इस समीक्षा-पुस्तक में हमें स्वर्गीय समालोचक के सुलझे हुए चिंतन एव पैनी दृष्टि के दर्शन होते हैं। परिपक्व भाषा-शैली में दी गयी उनकी टिप्पणियां पाठक को कुछ सोचने के लिए विवश करती हैं। स्वर्गीय अवस्थी के निधन के तेरह वर्षों बाद प्रकाशित यह पुस्तक पाठक को उनकी प्रतिभा से परिचित कराती है, साथ ही इस बात का अहसास भी कि उनकी मृत्यु हिंदी-समीक्षा को कितना दरिद्र कर गयी है।

हिंदी संदर्भ कोश : सुप्रसिद्ध आलोचक और लेखक डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की एक महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें उन्होंने अनेक संदर्भ-शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की है। न केवल छात्रों, वरन हिंदी के आम पाठकों के लिए भी यह एक उपयोगी संदर्भ-कोश सिद्ध होगा ।

रचना और आलोचना

लेखक––स्वर्गीय देवीशंकर अवस्थी, प्रकाशक––दि मैकमिलन कंपनी ऑव इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृष्ठ–– १७१, मूल्य––३५ रुपये।

हिंदी संदर्भ कोश

संपादक––डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रकाशक––भारतीय साहित्य प्रकाशन २८६, चाणक्यपुरी, सदर––मेरठ––१, पृष्ठ–– २३२, मूल्य––५० रुपये।

––डॉ. सुधांशु शेखर मिश्र

उपन्यास

सागर और सीपियां : जिन लोगों ने 'कादम्बरी' फिल्म देखी होगी, उन्हें यह उपन्यास भी एक फिल्म-जैसा लगेगा । किसी भी रचना पर फिल्म बनाने पर उसमें काफी परिवर्तन आ जाता है, किंतु इस उपन्यास को पढ़ने पर लगता है कि यह कोई उपन्यास नहीं, सिने स्क्रिप्ट है। एक-एक संवाद, दृश्य ज्यों के त्यों फिल्माये गये हैं। यही कारण है कि उपन्यास पढ़ते हुए फिल्म आंखों के आगे घूमती है।

लेखिका ने इकबाल और चेतना, सुमेर और चंपा, मिन्नी और रमेश तथा शकुंतला आदि के माध्यम से प्रेम के विभिन्न रूप प्रस्तुत किये हैं। ये सभी रूप भावात्मक उदात्तता लिये हुए भी कथा में एक उलझाव पैदा करते हैं।

दो गांव : 'शिक्षक-दिवस' पर राजस्थान सरकार प्रतिवर्ष कुछ पुस्तकें प्रकाशित करती है। शिक्षकों की रचनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहित करने की दिशा में इसे एक साहसिक कदम कहा जा सकता है। इस क्रम में इस वर्ष 'दो गांव' उपन्यास प्रकाशित हुआ है, जिसमें मुस्लिम समाज में फैली विसंगतियों को लक्ष्य बनाया गया है । आंचलिक परिवेश में ग्रामीण समस्याओं को सहकारिता-जैसी अनेक आदर्श योजनाओं द्वारा सुलझाने का प्रयास किया है ।

कहानी-संग्रह

तमतमाए चेहरों के अक्स : बारह कहानियों के इस संग्रह की हर कहानी किसी न किसी चेहरे को उभारकर उसके अक्स को सहलाती है । धरातल के साथ-साथ कहानियों की प्रस्तुति भी परिपक्व है, जो 'सोच' को अनेक प्रश्नचिह्न लगा जाती है, लेकिन ये प्रश्नचिह्न कुछ कहने को उकसाते नहीं, वरन एक संवेदनात्मक मौन की सृष्टि करते हैं। 'सहारा' की रीटा, 'तेजाब' का हरीश, 'सलीब पर' का पादरी, 'अंततः' की अमिता हमारे आसपास के

चेहरे लगते हैं। लेखिका की अनुभूति काफी सघन है, इसीलिए उसकी प्रतिक्रिया भी तीव्र है। संग्रह रोचक और पठनीय है।

जमीन से हटकर : मध्यवर्गीय समाज में फैल रही संबंधों की शून्यता, परिवेश और जीवन-दर्शन की विसंगतियों को सशक्त रूप से उभारती पंद्रह कहानियां का संकलन है। व्यक्ति चाहे क्लर्क हो या मजदूर, बूढ़ा हो या जवान सबके साथ आर्थिक पहलू सबसे बड़ी विडंबना बना हुआ है। 'बूंद-बूंद रिसना,' 'दिनचर्या' कहानियां इसी ओर संकेत करती हैं। मजदूर समाज को लेकर दो-तीन कहानियां लिखी गयी हैं, जिसमें उनके आर्थिक-शोषण के साथ साथ अस्तित्व-शोषण की बात भी कही गयी है। कहानियां छोटी, प्रभावशाली और आधुनिक हैं।

बड़ा आदमी छोटा आदमी : भी एक कहानी संग्रह है। रोजमर्रा की जिंदगी में नजर-अंदाज कर दिये जानेवाले क्षण इन कहानियों के आधार हैं। जैसे 'कोहरे के दूसरी ओर' में दूर का भाई-भाभी को खास स्थिति में देख लेना या 'रिश्तों का जंगल' में पत्नी के पास आते ही ठंडेपन का अहसास होना। कहानियां छोटी हैं, कुछ बहुत ही छोटी, फिर भी पठनीय हैं।

—डॉ. शशि शर्मा

सागर और सीपियां

लेखिका—अमृता प्रीतम, प्रकाशन—हिंदी बुक सेंटर, ४/५ आसफ़अली रोड, नयी दिल्ली, पृष्ठ—१२१, मूल्य—१० रुपये।

दो गांव

लेखक—मुबारकखां 'आजाद' सं.—डा. आदर्श सक्सेना, प्रकाशन—राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ—२२९, मूल्य—९.४८ रुपये।

तमतमाए चेहरों के अक्स

लेखिका—पुष्पलता कश्यप, प्रकाशन—संक्रांति प्रकाशन, जोधपुर, पृष्ठ—१०२, मूल्य-१० रुपये।

जमीन से हट कर

लेखिका—हेतु भारद्वाज, प्रकाशन—सस्ता साहित्य भंडार ५७/बी, पाकेट ए, फेज-२ अशोक विहार, दिल्ली, पृष्ठ—११४, मूल्य—१० रुपये।

बड़ा आदमी छोटा आदमी

लेखक—कुलदीप बग्गा, प्रकाशन—आलेख प्रकाशन, बी—८, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२, पृष्ठ—१४७, मूल्य—१२ रुपये।

हास्य

पिल्ले की सालगिरह : शाकाहारी हास्य एवं धारदार व्यंजना से युक्त छप्पन कविताओं का यह एक रोचक संग्रह है। रचनाओं में बड़े ही सहज ढंग से परिवेश की विसंगति एवं पारंपरिक विकृतियों पर प्रहार किया गया है। रचनाओं की बुनावट तथा शैली अनूठी एवं मौलिक है। रचनाएं मन को छूती-सी हैं। —सुरेश 'नीरव'

पिल्ले की सालगिरह

लेखक—प्रेमकिशोर 'पटाखा', प्रकाशन—नूतन पाकेट बुक्स, मेरठ-२, पृष्ठ—१२८, मूल्य—३ रुपये।



संजय किरवई, महासमुंद (रायपुर) : हमारे घर में नल की टोंटी खोलने पर झटका-सा लगता है। क्या नल में जल के साथ बिजली का करंट आता है ?

सामान्यत: नल में जल के साथ बिजली का करंट आने का कोई कारण नहीं, लेकिन कभी-कभी घरों में बिजली की फिटिंग ठीक न होने पर, या बरसात में जमीन या दीवारें गीली हो जाने पर उनमें करंट आ जाने से नल में भी करंट आ सकता है। कुछ लोग कामचलाऊ तौर पर 'अर्थ' के तार नलों से जोड़ दिया करते हैं, उनसे भी करंट आ सकता है। बिजली की मोटर से पानी लेने पर भी यदा-कदा ऐसा हो जाता है। आप किसी बिजली-वाले को बुलाकर अपने नल की जांच करा लें।

मिनी गुप्ता, बटाला (पंजाब) : क्या स्टेनलेस स्टील के बरतनों में खाना पकाना और खाना हानिकारक है ?

जी नहीं। इसके विपरीत अन्य धातुओं के बरतनों की अपेक्षा स्टील के बरतन स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी होते हैं। कारण यह है कि पीतल, कांसे, तांबे, अल्युमिनियम आदि के बरतन प्रयोग में लाते समय बड़े नामालूम ढंग से घिसते रहते हैं और उनकी धातु खाद्य पदार्थों में मिलती रहती है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। स्टील के बरतन में ऐसा कोई खतरा नहीं, क्योंकि ये अन्य धातुओं के बरतनों की तुलना में बहुत ही कम घिसते हैं। दूसरे दही, खटाई आदि के साथ अन्य धातुओं के बरतनों में प्रतिक्रिया होती है और खाद्य पदार्थ विषाक्त हो जाते हैं। स्टील के बरतनों में यह खतरा भी नहीं होता। तीसरे, सफाई की दृष्टि से भी स्टील के बरतन जल्दी और ज्यादा साफ हो जाने के कारण अन्य धातुओं के बरतनों से बेहतर होते हैं।

विनोद, बदलापुर (जौनपुर) : महान संगीतज्ञ मोजार्ट के विषय में जानकारी देते हुए यह बतायें कि उनके संगीत की क्या विशेषता है ?

मोजार्ट अठारहवीं शताब्दी के उन महान संगीतकारों में हैं, जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग करके संगीत का अद्भुत विकास किया और दुनिया-भर के भावी संगीतज्ञों को प्रभावित किया। उनका जन्म १७५६ में जरमनी के साल्जबुर्ग नामक नगर में हुआ था और उन्होंने चार वर्ष की उम्र से ही संगीत की दुनिया में प्रवेश पा लिया था। शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ यूरोप के देशों का भ्रमण और महान संगीतज्ञों से परिचय बढ़ाते हुए, वे जवान हुए। २६ वर्ष की उम्र में वे वियेना में जा कर बस गये, जहां उन्होंने अपनी महानतम संगीत-रचनाएं कीं।

मोजार्ट द्वारा की गयी संगीत रचनाओं की विशेषता यह है कि वे स्वरों के सौंदर्य को उजागर करने के लिए संगीत के समस्त रूपों का निरायास उपयोग करते हैं, तथापि उनकी स्वर-रचना अपने द्वारा विकसित पद्धति के अनुसार एकदम सही और शुद्ध होती है। उनके संगीत में स्वर-माधुर्य निरंतर प्रवाहित रहता है और लय कहीं टूटती नहीं। उन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक स्वर-रचनाएं कीं। जिनमें उनकी स्वर-संगतियां (सिंफनीज) बहुत प्रसिद्ध हैं। वे इतने प्रतिभाशाली संगीतकार थे कि अपनी तीन महानतम स्वर-संगतियों की रचना १७८८ में केवल छह सप्ताह के अंदर कर डाली थीं। संगीत के इतिहास में अमर उनके कई ओपेरा भी हैं, जिनमें से महानतम हैं 'फिगारो का विवाह' (१७८६), 'डान गियोवान्नी' (१७८७) और 'जादू की वंशी' (१७९१)। अपनी मृत्यु (१७९१) से पूर्व उन्होंने 'रिक्वीम मास' की रचना की, जो उनकी अंतिम रचना है। इसमें त्रासदी के कारण स्वरों का अद्‌भुत सौंदर्य है।

कस्तूरीलाल तागरा, रुद्रपुर (नैनीताल)
प्रायः जब किसी की भयंकर हार या भारी नुकसान की बात कही जाती है, तब 'वाटरलू' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह क्या है?

यों तो यह बेल्जियम के एक गांव का नाम है, लेकिन मुहावरे के रूप में 'वाटरलू' का प्रयोग १८ जून, १८१५ को यहां लड़ी गयी उस ऐतिहासिक लड़ाई से संबद्ध है, जिसमें नेपोलियन बोनापार्ट पराजित हुआ था। नेपोलियन १८०४ में फ्रांस का सम्राट बना था और उसके बाद यूरोपीय देशों से अनेक युद्ध करके तथा उनमें निरंतर विजयी होकर उसने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली थी कि वह एक प्रकार से समूचे यूरोप का तानाशाह बन बैठा था। अंततः १८१५ में मित्र राष्ट्रों ने मिलकर उसे वाटरलू की लड़ाई में हराया और सेंट हेलेना नामक द्वीप पर बंदी बनाकर रखा, जहां उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार वाटरलू की लड़ाई नेपोलियन की अंतिम लड़ाई सिद्ध हुई। इतने बड़े योद्धा और तानाशाह की पराजय के कारण वाटरलू की यह लड़ाई न केवल इतिहास में प्रसिद्ध हुई, बल्कि अंतिम और भारी पराजय का अर्थ देनेवाला एक मुहावरा भी बन गयी।

गुलशन पामार, मुक्तसर (पंजाब):
'भारी पानी' से क्या अभिप्रायः है? यह किस काम आता है?

'भारी पानी' उस पानी को कहते हैं, जिसमें हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के आइसोटोप होते हैं और जिनका परमाणु-भार हाइड्रोजन के सामान्य १.००८ से तथा ऑक्सीजन के सामान्य १६ से अधिक होता है। उदाहरण के लिए ड्यूटेरियम हाइड्रोजन का एक आइसोटोप है, जिसमें सामान्य हाइड्रोजन (प्रोटियम) से दूना परमाणु-भार होता है। इसी प्रकार एक तिगुने परमाणु भारवाला हाइड्रोजन होता

है, जिसे ट्रीटियम कहते हैं। इसके अलावा ऑक्सीजन के भी अनेक भारी आइसोटोप होते हैं, जिनसे भारी पानी बनता है। भारी पानी परमाणु-ऊर्जा प्राप्त करने के काम आता है।

हरिप्रसन्न दत्त, धनबाद : धान के खेतों में नाइट्रोजन उर्वरकों के स्थान पर हरित नील शैवाल (हरी नीली काई) से नाइट्रोजन प्राप्त करने की किसी नयी विधि का आविष्कार हुआ है। कृपया, उसके बारे में जानकारी दें।

नाइट्रोजन उर्वरकों के बहुत महंगे तथा दुर्लभ होने के कारण वैकल्पिक प्राकृतिक साधनों की खोज की जा रही हैं। उन्हीं में से एक साधन है, हरी-नीली काई।

धान की खेती के लिए हरी-नीली काई की विभिन्न किस्में बहुत उपयोगी पायी गयी हैं। इनसे हर फसल को प्रति हेक्टेयर लगभग २५–३० किलो नाइट्रोजन मिल सकता है। हरी-नीली काई खेतों में डाल देने से नाइट्रोजन स्वतः बन जाती है, क्योंकि उसके निर्माण के लिए काई सीधे प्रकाश-संश्लेषण से ऊर्जा प्राप्त कर लेती है।

नीली-हरी काई के पौधों में शाखाएं नहीं होतीं। यदि होती भी हैं, तो शैवाल-तंतुओं के रूप में। यह काई ठंडे बर्फीले स्थानों से लेकर गर्म जलवायु-वाले स्थानों तक सभी जगह हो सकती है। धान के खेत इस काई के संवर्द्धन के लिए, विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान मनीला में अनेक प्रयोगों के द्वारा पाया गया कि काई डालने से उतनी ही पैदावार मिलती है, जितनी ६० किलो प्रति हेक्टेयर अमोनियम सल्फेट डालने पर मिलती। सोवियत संघ, बर्मा, मिस्र, फिलीपीन और चीन तथा जापान में देखा गया कि काई डालने से धान की पैदावार में १० से २४ प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है।

भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान तथा अन्य संस्थानों ने भी अनेक स्थानों पर चावल की पैदावार बढ़ाने में काई के लाभदायक प्रभाव के संबंध में परीक्षण किये और पाया कि काई डालने से नाइट्रोजनवाले उर्वरक डाले बिना ही १० से १५ प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। इसके लिए एक कल्चर तैयार किया गया है, जो भारतीय कृषि-अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली से प्राप्त किया जा सकता है।

चलते-चलते एक प्रश्न और...

श्रीनाथ शर्मा, हापुड़ : बुरा जो देखन मैं चला, तुम-सा बुरा न कोय। बोलिए, क्या जवाब है?

बंधु; बिंदु ने आपका उत्तर दिया न होय।

—बिंदु भास्कर

दियासलाई की एक तीली

दो अंगुलियां और एक अंगूठा
तीनों के जोर से जब उसे जलाया गया
तब तो वह नाग की तरह अपनी जिह्वा
निकाल, फूंकार रही थी
लपक-लपककर मानो ललकार रही थी
बेचारी भूल गयी थी
कि अब तक दूर रखा गया था उसे
फूंकों के वार से, हवा के प्रहार से
सिगरेट जल गयी और फिर तब ?
मंद वायु के थपेड़े से आहत होने के लिए
निरर्थक प्रयासों द्वारा अपनी मंजिल तक
पहुंचने के लिए, बेचारी !
लड़खड़ाती, लंगड़ाती
अपनी मंजिल तक पहुंच भी न सकी
अपने जठरानल को बुझा भी न सकी
लेकिन नियति को कौन रोके !
अब तो बिना झोंके के ही
बेचारी लड़खड़ाकर गिर पड़ी
मानो यही थी उसकी नियति

—त्रिपुरारि शरण
द्वारा शोभित महाजन,
एन-११, रूद्रा साउथ, सेंट स्टीफेंस कॉलेज,
दिल्ली-११०००७



'सृजनात्मक लेखन के प्रति विद्यालयीय जीवन से रुचि। कविता मेरे लिए अपने आक्रोश एवं जीवनानुभव के विभिन्न क्षितिजों को छूने के प्रयास की अभिव्यक्ति है। हिंदी-साहित्य के अलावा पाश्चात्य-साहित्य में भी खास रुचि है और आज तक के पठनानुभव में विक्टर ह्यूगो तथा टॉल्स्टॉय ने काफी आकृष्ट किया है। संप्रति विज्ञान में भौतिक-शास्त्र का विद्यार्थी।'

कथा बजरबट्टू की

• कैलाश भारद्वाज

क्या आपने किसी नये मकान पर कोई भयंकर मुखाकृति बनी हुई अथवा काली हांडी या पुरानी जूती लटकती हुई देखी है? यदि हां, तो हो सकता है; कभी आपने सोचा हो कि ऐसा क्यों किया जाता है! नये मकान पर पुराने ढंग की कलाकारी क्यों की जाती है? यह भी संभव है कि उक्त सोच-विचार के दौरान आपको यह खयाल आया हो कि यह सब मकान को बुरी नजर से बचाने के लिए किया जाता है। जी हां, जिस प्रकार हंसमुख बच्चे को नजर लग सकती है, चंद्रमुखी नारी को नजर लग सकती है, नये ट्रक को नजर लग सकती है, उसी तरह नये मकान को भी नजर लग सकती है।

हांडी, जूती तो खैर, बहुत बाद की सूझ-बूझ हैं, किंतु भयानक दैत्यनुमा मुखाकृति बनाने की परंपरा बहुत पुरानी है। आरंभ में यह आकृति शिवालयों पर बनायी जाती थी। फिर सभी प्रकार के देवालयों पर बनायी जाने लगी, और अंत में यह आम मकानों पर भी आ गयी। इस दैत्यनुमा मुखाकृति को 'कीर्तिमुख' कहते हैं।

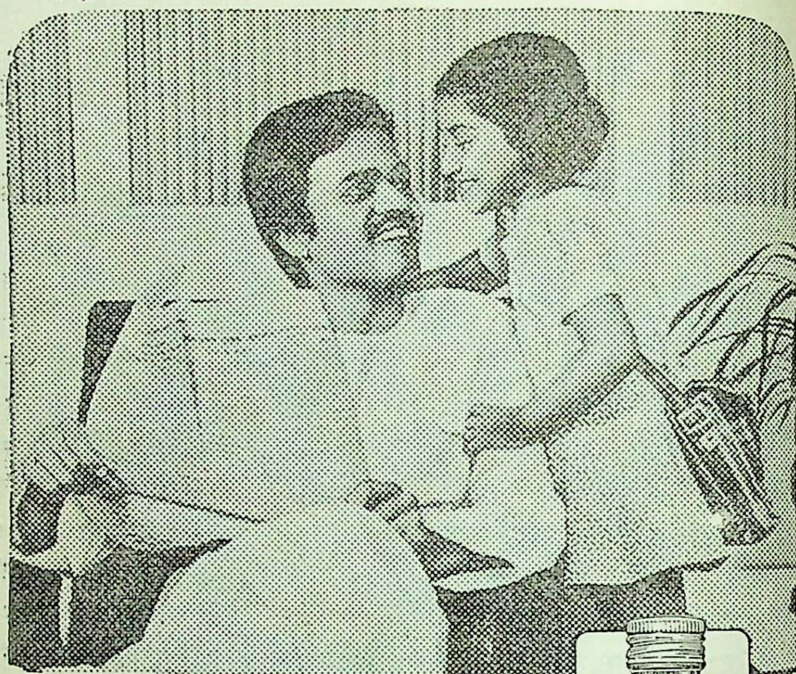
प्रश्न पूछा जा सकता है कि आखिर यह कीर्तिमुख है क्या बला! इसका उद्‌भव कैसे हुआ तथा कालांतर में यह मकानों को बुरी नजर से बचानेवाली कैसे बन गयी? असल में इस दैत्याकार मुखाकृति—'कीर्तिमुख' की अपनी ही कथा है! बड़ी विचित्र कथा! जिसे जानने के लिए हमें स्कंद पुराण खोलना होगा।

बहुत पुराने समय की बात है, जलंधर नामक एक अति शक्तिशाली दैत्य ने देवताओं को हराकर पूरी पृथ्वी पर अधिकार जमा लिया था। तब अपनी विजय को पूर्णता प्रदान करने के विचार से उसने

मकान पर लगा बजर-बट्टू



ख़ून के रिश्ते कितने गहरे...



मिनाडेक्स का भी आपके ख़ून के साथ गहरा रिश्ता है

स्वस्थ ख़ून अच्छी सेहत का आधार है। और स्वस्थ ख़ून के लिए ज़रूरत है लौहतत्व की। मिनाडेक्स में लौहतत्व की प्रचुर मात्रा के कारण इसके हर चम्मच से आपके ख़ून को पूरा फ़ायदा मिलता है।



रक्तशक्ति दायक
मिनाडेक्स®



GASGM-19-172

अपने दूत राहू को भगवान शिव के पास यह संदेश लेकर भेजा कि वे त्रिपुर-सुंदरी पार्वती को उसके हवाले कर दें। जलंधर की इस मांग की स्वभावतः बड़ी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। राहू के मुख से यह प्रस्ताव सुनते ही शिवजी ने अपनी दोनों भौंहों के मध्य में स्थित तीसरी आंख से आक्रोश की एक धारा उत्पन्न की, जिसने तत्काल ही शेर के मुखवाले एक भयंकर दानव का रूप ले लिया। मुख के अतिरिक्त इसका समूचा शरीर अत्यंत कृश व दुबला-पतला था। जिससे साफ पता चलता था कि वह न जाने कितने समय से भूखा था। फिर भी उसमें असीम शक्ति थी।

उस नर-सिंह की दहाड़ बादलों की गड़गड़ाहट-जैसी थी और आंखें जलते हुए अंगारों-जैसी। वह बहुत ही डरावनी आकृतिवाला था।

राहू ने जब यह दृश्य देखा, तब उसके होश उड़ गये! लेकिन वह इन अतिमानवीय कलाबाजियों से खूब परिचित था। अतः शिवजी का साकार क्रोध ज्यों ही उस पर झपटा, राहू तत्क्षण ही भगवान शिव की शरण में आ गया। राहू के इस अप्रत्याशित पैंतरे ने सारी स्थिति ही बदल कर रख दी। इससे न केवल राहू की जान बच गयी, बल्कि उल्टे उस भयंकर दानव की जान पर आ बनी——भूख के कारण उसकी जान निकलने लगी भोजन के लिए वह बार-बार शिवजी की ओर देखने लगा। इस पर शिवजी ने उससे कहा कि जब तक कुछ और प्रबंध हो, तब तक वह अपने ही हाथ-पांव खाना शुरू कर दे।

अब अंधे क्रोध का वह मूर्त रूप इस कदर भूखा था कि अपने हाथ-पांवों पर ही टूट पड़ा। वह ज्यों-ज्यों उन्हें खाता गया, त्यों-त्यों उसकी भूख बढ़ती गयी। नतीजा यह निकला कि हाथ-पांव खा चुकने के बाद, वह अपनी बांहें और टांगें खाने लगा। जब उसकी भी इतिश्री हो गयी, तब क्रमशः पेट, छाती और गरदन की बारी आ गयी, और अंत में मात्र मुखाकृति ही, बाकी रह गयी। वह दानव सृष्टि के संहारक शिव का साक्षात् आक्रोश तो था ही, अतः उनकी संपूर्ण संहार-शक्ति उसमें केंद्रीभूत थी। इसलिए स्वभावतः वह भयंकर भूखा चेहरा भगवान शिव को बड़ा प्रिय था। उन्होंने उससे कहा "तू मेरा प्रिय पुत्र है। तुझे पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूं।" फिर उसका नामकरण करते हुए बोले, "तू संसार में कीर्तिमुख के नाम से विख्यात होगा तथा सदा मेरे द्वार पर रहेगा। मैं तुझे वरदान देता हूं——तू सभी का पूज्य होगा। और, जो तुझे पूज्य नहीं मानेगा, वह कभी भी मेरी कृपा का पात्र नहीं हो सकेगा।"

शिव का प्रतीक

कहना न होगा कि आरंभ में कीर्तिमुख भगवान शिव का ही एक विशेष प्रतीक माना जाता था तथा शिवालय के बाहर——शिखर पर स्थान पाता था। बाद में देखा-देखी अन्य देवालयों पर भी उस आकृति

का अंकन किया जाने लगा तथा वह किसी भी प्रकार की बुराई को दूर भगाने का एक अजेय साधन ही मान लिया गया। तब कालांतर में कीर्तिमुख की मुखाकृति मकानों पर भी आ गयी। बल्कि धीरे-धीरे यह विश्वास जड़ पकड़ गया कि यदि कीर्तिमुख की यथावत् पूजा-अर्चना की जाए तो यह रोग, मृत्यु इत्यादि अनिष्टों के दैत्यों को पास नहीं फटकने देगा।

कीर्तिमुख के विषय में दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ भागों-जैसे जावा, सुमात्रा आदि में एक और ही विश्वास प्रचलित है : वहां यह समझा जाता है कि कीर्तिमुख गणेशजी का ही भयंकर पक्ष है। इस प्रकार कीर्तिमुख के रूप में गणेश ही सज्जनों को संकट से बचानेवाले हैं।

यहां यह स्पष्ट करना शायद उपयोगी होगा कि प्राचीन जीवनरोग, पशु आदि अनेक प्रकार की व्याधियों से भरपूर था। उस जमाने में इन प्राकृतिक व भौतिक संकटों को दैत्यों के रूप में ही जाना जाता था। इसीलिए घर की रखवाली के लिए गृह-देवता (तथा ग्राम की सुरक्षा के लिए ग्राम-देवता) की उद्भावना की गयी थी। कीर्तिमुख उसी परंपरा में मकान-देवता बन गया।

पुराण-कथाओं की परंपरा

पुराण-कथाओं पर विचार करते समय यह तथ्य नहीं भुलाया जाना चाहिए कि ये कथाएं अत्यंत प्राचीन हैं, फिर भी हम तक पहुंचते-पहुंचते इनके मूल रूप और मूल मंतव्य में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं। समय की मांग के अनुसार इनकी आवृत्तियां, पुनरावृत्तियां चलती रही हैं। विशेषकर पिछले दो हजार वर्षों में जिन जबरदस्त परिवर्तनों के बीच से हमारी सभ्यता को गुजरना पड़ा है, उसी के फलस्वरूप इन कथाओं पर उनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है—खासकर कथाओं में निहित मंतव्यों का तो कायाकल्प ही हो गया है।

इसलिए यदि कीर्तिमुख की कथा के साथ भी ऐसा ही हुआ हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में आदिकालीन निराकार ब्रह्म को साकार (ब्रह्मा, विष्णु व शिव) रूपों में विभाजित करने के प्रयासों के संदर्भ में ही इस प्रकार की कथाओं को देखा जाना चाहिए। साथ ही 'एंटी-हीरोइक' तेवर का प्रतिबिंब भी इन पुराण-कथाओं के उपलब्ध रूप में पहचाना जा सकता है।

यदि ऐसा न हुआ होता, तो क्रोध जैसे आत्मघाती मनोविकार पर प्रहार करनेवाली यह कथा शैव-दर्शन में डुबकी लगाकर मकानों को सुरक्षा प्रदान करने की भूमिका कैसे ओढ़ लेती ?

—वाणी विहार, रानी तालबाग, नाहन (हि. प्र.)

महिला गवाह ने पहले अपनी उम्र बतायी, फिर गीता पर हाथ रखकर कसम खायी कि जो भी कहूंगी सच ही कहूंगी।

दिल्ली पर विशेष

आजकल गरचे दकन में है बड़ी कद्रे सुखन
कौन जाए 'जौक' पर दिल्ली की गलियां छोड़कर



दिल्ली की गलियां

● डॉ. उषा मेहरा

हिंदुस्तान की राजधानी दिल्ली और दिल्ली का दिल चांदनी चौक मुगल बादशाह शाहजहां की याद दिलाता है, जो चारों ओर भूल-भुलइयों गलियों से भरा पड़ा है, जिसे शायद वहां का रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भी न जानता हो ! अपने कटरे, बाड़े, पुरे हवेलियों और फाटकों से घिरे इसके बड़े-बड़े बाजार और उनमें बसी छोटी-बड़ी गलियां हर बाहरवाले के लिए एक आकर्षण का केंद्र है।

अजनबी गलियों की दास्तान

एडवर्ड पार्क और जामा मस्जिद के चारों ओर घूमते ये महल्ले हिंदू और मुसलमानों के गढ़ हैं। यहीं से मैं पुरानी दिल्ली की अजनबी गलियों की दास्तान सुना रही हूं। दरियागंज के पुल से जामा मस्जिद की ओर बढ़ते हुए आती हैं ये गलियां। पहले घुसते ही उर्दू बाजार या मछलीवाला बाजार आता है, यहीं से बिखरी हुई गलियां हैं--

१. काला महल, २. जगत सिनेमावाली गली, ३. गली खानखाना, ४. गली हसनवाली, ५. गली नलवाली, ६. कटरा निजामुलमुल्क, ७. गली कुमारवाली।

उर्दू बाजार के बीच से निकलता मटिया महल तीन गलियों से घिरा है—

१. गोकलशाह का कटरा, २. गली गढ़इया, ३. मटिया महल।

इस महल के पास ही प्रसिद्ध मुस्लिम महल्ला है—चितली कबर ,जिसकी गलियां हैं--

१. बड़ा महल्ला, २. दुजियाने का फाटक, ३. हाजमखां की हवेली, ४. छत्ता शेख मंगलू, ५. चूड़ीवालान, ६. गली गढ़इया, ७. कुबड़ा पीपलवाली गली—यह बाजार सीताराम को निकल जाती है, ८. इमली की पहाड़ी—यह चितली कबर में निकलती है। ९. गली मैगजीन, १०. गली इमामवाली—यह मार्ग चावड़ी बाजार को जाता है।

जामा मस्जिद के इस घूमते बाग के घेरे में घूमो, तो आगे आती है गली चार रहट, जो बहुत-से रास्तों का केंद्र है। उर्दू बाजार के आगे बाजार गुलियान है और उसके अंत में दरीबाकलां नामक प्रसिद्ध ज्वैलर्स व सर्राफा बाजार है। बाजार गुलियान की गलियां हैं--

१. गली गुलियान, २. कृष्णा गली या अहमद का महल्ला, ३. वकीलपुरा।


dunhill
Pan Masala
डनहिल
पान
मसाला


प भी खाइये...
औरों को भी
खिलाइये...
गन्धित एवं स्वादिष्ट
डनहिल
सादे पान का
मसाला
dunhill
FLAVOURED
PAN
MASALA
लक्ष्मी
गन्ध भन्डार
/251, सिविल लाइन्स,
नपुर-208001
फ़ोन: 69284 • 52117

जैनियों का केंद्र

ये गलियां पहले घनी मुस्लिम आबादी से भरी थीं। अब जैनियों का केंद्र है, जो धर्मपुरा के नाम से प्रसिद्ध है।

१. छह घरा, २. गली पंचवाली, ३. पहाड़वाली बड़ी गली, इस बड़ी गली में चार छोटी गलियां हैं––गली चौकरायजी, भूतवाली गली, मिश्रजी की गली और कटरा महल सराय, छीपीवाड़ा––इसकी दो छोटी गलियां––बाबे लालू की गली और नलवाली, ५. गली पहाड़वाली-छोटी, ६. नाईवाड़ा, ७. धोबीवाड़ा, ८. शाहजी का छत्ता। ये गलियां हैं धर्मपुरा के दक्षिण में और दूसरी ओर है गली अनार, जिसके दायें सीधा धर्मपुरा जैनियों का महल्ला है। गली अनार की गलियां हैं––

१. सताई घरा, २. गली नीमवाली, ३. गली पीपलवाली, ४. कूंचा सेठ, ५. कूंचा जटमल, ६. छत्ता प्रतापसिंह, ७. गली शिवालेवाली

ये सभी गलियां किनारी बाजार में गली अनार की समाप्ति पर मिलती हैं। यह गली अनार, किनारी बाजार के बीच से शुरू होकर धर्मपुरा के मध्य मिलती है।

बाजार गुलियान के आगे दरीबाकलां है। जिसकी गलियां हैं––

१. कूंचा बुलाकी बेगम, २. कूंचा सेठ, ३. डाकखानेवाली गली, ४. मुहरवाला फाटक, ५. किनारी बाजार, ६. गली कुंजड़ेवाली, ७. गली कुंजसवाली, ८. कूंचा जटमल, ९. कटरा मशरू, १०. गली प्याऊवाली, ११. कूंचा लट्टूशाह, १२. गली खजांचीवाली।

इन गलियों में से निकलता है किनारीबाजार, जो गोटा किनारी के लिए बहुत प्रसिद्ध है। किनारी बाजार की गलियां हैं––

१. कूंचा आलमचंद, २. गली अनार, ३. छत्ता प्रतापसिंह, ४. लाला हनुमंत सहाय मार्ग, ५. धोबीवाड़ा, ६. बहलपुरी, ७. सत्ताईसरा, ८. कटरा खुशहालराय, ९. नौघरा, १०. हवेली खान जमा खां, ११. बर्फवाली गली, १२. गली परांठेवाली या प्राचीन नाम तिराहा। इसके आगे प्रसिद्ध बाजार है––मालीवाड़ा। इसकी गलियां हैं––

१. छत्ता मदनगोपाल, २. मोती बाजार, ३. बसंत-मार्केट, ४. वैदवाड़ा। वैदवाड़ा की तीन छोटी और गलियां हैं––चीराखाना, गली मंदिरवाली और छत्ता मदनगोपाल की गली, ५. गली हीरानंद, ६. गली लड़ेवाली, ७. गली पत्तलवाली, ८. भोजपुरा, ९. गली किशनदास, १०. गली छीपीयान। मालीवाड़ा के ठीक सामने जोगीवाड़ा है, और इन दोनों वाड़ों को नयी सड़क मिलाती है! जोगीवाड़े की गलियां हैं––

१. गली हनुमान, २. गली धर्मशालावाली, ३. दरोगाजीवाली गली या कन्हैया-

लाल की गली, ४. छत्ता गुसाईं, ५. भैंरोवाली गली, ६. गली गोविंद, ७. मंदिरवाली गली, ८. जट्टुमिश्र की गली, ९. गली विस्सोमल !

नहर--जिसमें बल्लियों पानी था

जोगीवाड़े की समाप्ति पर आता है मुसलमानों का दूसरा गढ़ बल्लीमारान । यहां एक नहर थी, जिसमें बल्लियों पानी था ! इसकी गलियां भी अजीबो-गरीब नामों से लोगों को भरमाती हैं। वे हैं--

१. बारादरी बड़ी या शेरअफगनखां की गली, २. बारादरी छोटी या छर्रेवाली गली, ३. गली बब्बूखां, ४. गली कुम्हार-वाली, ५. कूंचा रहमान--जिसके बीच में सुईवालान का महल्ला प्रसिद्ध है, जहां मशीनी पुर्जे ही दिखायी पड़ते हैं। कूंचा रहमान का अंत चांदनी चौक तक होता है। ६. गली चश्मा बिल्डिंग ७. कटरा आलमबेग, ८. फाटक शरीफ मंजिल ९. गली कासिमजान, १०. कटरा बिजवा-रियान, ११. फाटक जुलहान, १२. फाटक पंजाबीयान या हवेली हीसामुद्दीन, १३. गली कुप्पेवाली, १४. गली अब्बूखां, १५. कटरा बसीरगंज, १६. गली सौदागरान —यही इस महल्ले की अंतिम गली है। इसके ठीक सामने है हिंदू खत्रियों का गढ़ 'कटरा नील'।

गलियों का जाल

जामा मस्जिद के पीछे लाल किले के सामने की सड़क है, चांदनी चौक का मुख्य केंद्र। इसके दोनों ओर गलियां हैं !

यदि हम लाल किले से फतेहपुरी मस्जिद तक आगे सीधे बढ़ें, तो दोनों ओर गलियां पड़ती हैं।

दायीं तरफ की गलियां हैं— १. भगीरथ पैलेस, २. फव्वारा—यहां से स्टेशन जाते हुए बीच में आते हैं : कटरा लच्छूसिंह, इंदराकुआं और मोर सराय ।

इसके सामने दूसरी ओर बाग ही बाग हैं। ३. कटरा नगीनचंद, ४ कटरा धूलिया, ५. गली कच्चा बाग, ६. कूंचा महाजनी, ७. कूंचा नटवा, ८. कूंचा काबिल अंतार, ९. कृष्णा मार्किट, १०. कटरा नील, ११. कूंचा ब्रजनाथ, १२. कूंचा घासीराम-- इसमें दो छोटी गलियां हैं--गली भैरों-वाली और फूलवाली मंडी, १३. छत्ता भवानीशंकर ।

चांदनी चौक के बायीं तरफ की गलियां--

१. साइकिल मार्केट, २. दरीबाकलां, ३. किनारी बाजार, ४. मोती बाजार, ५. कटरा शहंशाही, ६. कटरा नवाब साहब, ७. कटरा प्यारेलाल, ८. कटरा नया या गौरीशंकर, ९. कटरा चोबान, १०. कटरा मोहन, ११. कटरा अशर्फी, १२. कटरा भंगी, १३. घंटाघर—यहां से मुड़ती नयी सड़क ।

इसका नया नाम है--अमीरचंद मार्ग!

१४. कूंचा रहमान, १५. कटरा सुभाष, १६. बल्लीमारान, १७. हवेली हैदरकुली, १८. गली कंदलाकशान,

इसके सामने कटरा बड़ियान--जिसका सीधा रास्ता नया बांस और लालकुआं को निकल जाता है। लालकुंआ का यह रास्ता चावड़ी और दूसरी ओर बाजार-सीताराम, काजीहौज और नयी सड़क की ओर घूम जाता है। यह केंद्र चारों प्रसिद्ध बाजारों को मिलाता है !

खत्रियों का गढ़

इन प्रसिद्ध गलियों में खत्रियों का गढ़ तीन स्थानों पर है—१. छीपीवाड़ा, २. कटरा नील, ३. गांधी गली—जिसे लोग गंदीगली भी कहते हैं।

छीपीवाड़े में दो गलियां हैं—

१. बावे लालू की गली, २. नलवाली गली, और अन्य गलियों को लोग प्रायः आमने-सामनेवाली का संबोधन देते हैं।

कटरा नील की गलियां (बायीं ओर की)—

१. गली संधियान, २. मनोहर मार्केट, ३. कृष्णा गली या धोबियों का कटरा, ४. गली मंदिरवाली, ५. गली घंटेश्वर—यह बड़ी गली है, जिसमें बहुत-सी छोटी गलियां हैं—

१. नलवाली गली, २. गली चांदीवाली, ३. सेठोंवाली गली, ४. गली रामचंद्र के मंदिरवाली, ५. घूनियेवाली गली, ६. छत्ता (आजकल बंद है)।

दायीं तरफ की गलियां—

१. संगम मार्केट, २. गली काली देवी मंदिरवाली, ३. गली तलैय्या, ४. नयी बस्ती, ५. रामद्वारा।

गांधी गली की ये छोटी गलियां हैं—

१. देवी-मंदिरवाली गली, २. बबेवाली गली, ३. गली कचनार, ४. हाफिज-खां का फाटक, ५. गली गऊशाला-वाली, ६. तिलक बाजार !

लालकिले से फतेहपुरी के आगे खारीबावली का प्रसिद्ध बाजार है ! इसके दोनों ओर गलियां हैं।

दायीं ओर की गलियां—

१. ईश्वर भवन, २. गली मैदगरान, ३. तिलकबाजार, ४. कूंचा चेलान, ५. गली पत्तेवाली, ६. नया बाजार।

बायीं ओर की गलियां—

१. गड़ोदिया मार्केट, २. गली बताशे-वाली, ३. नयाबांस—इसकी उप-गलियां हैं—संजोगीराम का कूंचा, तंबाकूवाली गली और गली भड़भूजेवाली। नया बांस से आगे निकल जाता है लालकुंआ !

बाजार सीताराम हौजकाजी से शुरू होकर चूड़ीवालान के चौक पर समाप्त होता है। हौजकाजी की गलियां हैं—

१. गली रामजस स्कूलवाली, २. गली थानसिंह, ३. शीशमहल ४. कूंचा पातीराम, ५. गली बजरंगबली, ६. कूंचा कास्तकारी, ७. कूंचा शरीफबेग, ८. लाल दरवाजा, ९. गली औघड़वाली, १०. गली पंचपारों की। इसे गली आर्य समाज भी कहते हैं, ११. गली टकसालीवाली बड़ी, १२. गली कुम्हारवाली, १३. कूंचा

सोहनलाल, १४. कूंचा माईदास, १५. गली टकसालीवाली छोटी, १६. गली चूड़ीवालान, १७. कूंडेवाली गली, १८. शंकरगली—इसके अंदर जाकर हिंदूवाड़ा निकल जाता है, जिसका रास्ता तुर्कमान गेट की ओर है !

अब हम उन गलियों पर आते हैं, जो चावड़ी बाजार से हौजकाजी तक पड़ती हैं—

१. दरवाजा चितली कबर का, २. कटरा मंगलसेन, ३. गली धोबीवाड़ा, ४. छत्ता शाहजी का फाटक, ५. कूंचा मीर आशिक़, ६. गली बताशेवाली, ७. नाई वाड़ा, ८. नयी सड़क़, ९. गली सट्टेवाली, १०. रघुगंज, ११. गली राजा केदारनाथवाली, १२. गली खारी कुआं, १३. गली चरखेवालान, १४. गली लोहेवाली, १५. गली रंगेवाली, १६. गली चोरघाटी (या बजरंगगली), १७. कूंचा दयाराम, १८. रूढ़ाचारवाली गली, १९. बल्लीमारान।

चावड़ीबाजार से चर्खेवालान की ओर बढ़ते हुए बल्लीमारान आ जाएगा, जिसमें आती हैं ये गलियां——

दिल्ली : तैमूर के हमले से

१८ दिसंबर, १३९८ ई. को तैमूर ने दिल्ली पर अधिकार किया।

मार्च, १३९९ को नसरतशाह दिल्ली का सिंहासन छोड़कर बिहार भाग गया। उसका मंत्री मल्लू दिल्ली सल्तनत का तानाशाह बन गया।

१४०१ में मल्लू ने नसरतशाह को अपनी कठपुतली बनाकर रखा।

फरवरी, १४१३ में मुहम्मद नसरतशाह की मृत्यु हो गयी।

२८ मई, १४१७ को खिज्र खां दिल्ली का सुल्तान बना तथा सैयद बंश की नींव डाली।

१४२१ में खिज्र खां का पुत्र मुबारक खां दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

१९ फरवरी, १४३४ में मुबारक खां का वध कर दिया गया।

१४३४ से १४४५ ई. तक—मुहम्मदशाह दिल्ली का सुल्तान रहा।

१९ अप्रैल, १४५१ को बहलोल लोदी मुहम्मद शाह को गद्दी से हटाकर दिल्ली का सुल्तान बन बैठा।

जुलाई, १४८९ दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी का ग्वालियर से लौटते समय देहांत हो गया।

१७ जुलाई, १४८९—सिकंदर शाह

१. प्यारेलालवाली गली, २. दाईवाड़ा–इसमें हैं—१. लोहेवाली गली, २. बल्लीमारान

दाईवाड़े की गलियां हैं——

१. कूंचा बीबी गौहर, २. शिवाले वाली गली।

फिर आती है प्रसिद्ध गली पासवान' इसके आगे की गलियां बल्लीमारान की गलियों में वर्णित हैं!

कुछ कूचे कुछ बाड़े

सारांशत: पुरानी दिल्ली की ये झूमती-गाती मुड़ती-मुड़ाती, भूल-भुलइयोंवाली गलियों में कुछ कूंचे हैं तो कहीं वाड़े, अनेक कटरे हैं, तो कहीं बड़ी-बड़ी शाही नामी हवेलियां, फाटक, छते। इन गलियों के अधिकांश नाम प्रसिद्ध व्यक्ति, व्यवसाय या बाहुल्य के आधार पर रखे गये हैं। कुछ भी हो, इतना कहे विना नहीं रहा जा सकता कि पुरानी दिल्ली की ये गलियां नामों की विभिन्नता और चकाचौंध के साथ इनमें आनेवाले व्यक्ति की बुद्धि को माया-जाल-सा फंसाकर रास्ता भुला देती हैं, यही इनकी खूबी है और यही है इनकी शाही——प्राचीन विशेषता।

——१२८, गली कंदला कसान,
चांदनी चौक, दिल्ली

नादिरशाह के कत्ले आम तक

दिल्ली का नया सुल्तान घोषित किया गया।

२१ नवंबर, १५१७——सिकंदरशाह की मृत्यु।

२१ नवंबर, १५१७—— इब्राहीम लोदी, इब्राहीम शाह की उपाधि लेकर दिल्ली का सुल्तान बना।

२१ अप्रैल, १५२६ ——इब्राहीम लोदी पानीपत-युद्ध में मारा गया और दिल्ली सिंहासन से लोदी सल्तनत का समापन हो गया।

१५२६ —— मुगल राजवंश की स्थापना।

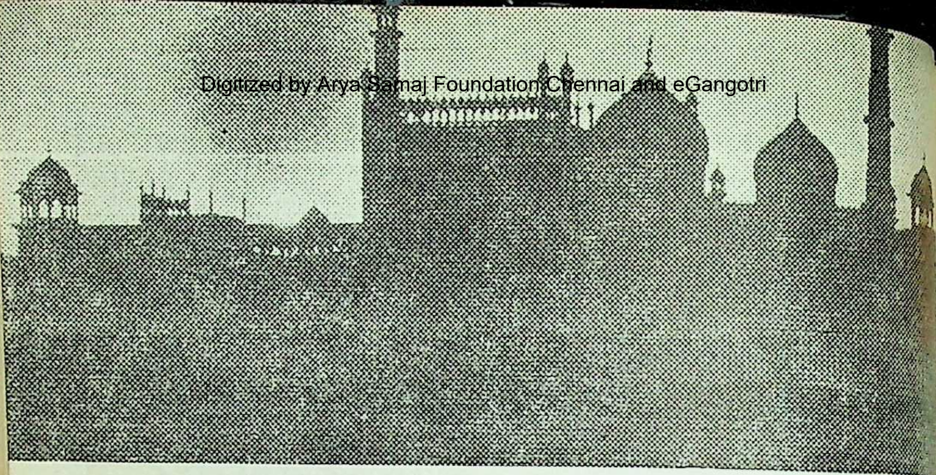
१६२८ से १६५८——शाहजहां दिल्ली का बादशाह रहा।

यह काल मुगल शासन का स्वर्ण-युग माना जाता है। शाहजहां के शासन काल में ही दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, जामा मस्जिद-जैसी इमारतें बनीं।

१६५८ से १७०७——शाहजहां को कैद में डालकर उसका पुत्र औरंगजेब गद्दी पर बैठा।

१७०७——बहादुरशाह दिल्ली का सुल्तान बना।

२० मार्च, १७३९——नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला किया। (क्रमश:)



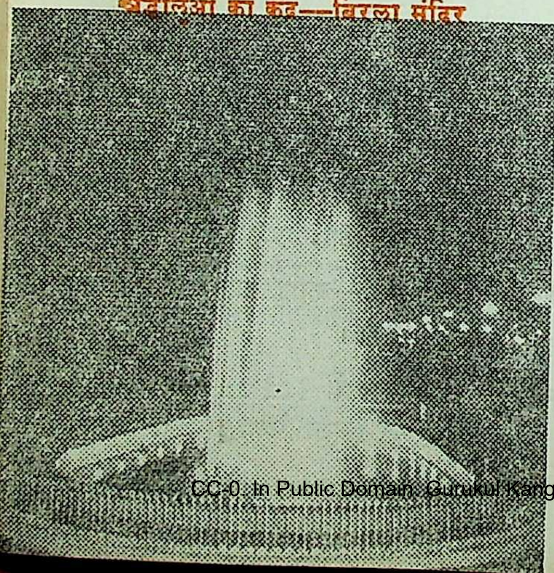
दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मस्जिद जहां वर्तमान भी अतीत है



श्रद्धालुओं का केंद्र—बिरला मंदिर



मुगलों की कला को जीवित रखनेवाले हाथ!

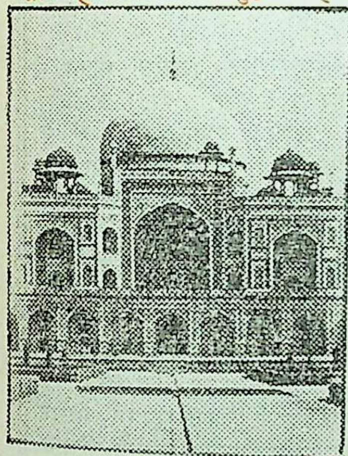


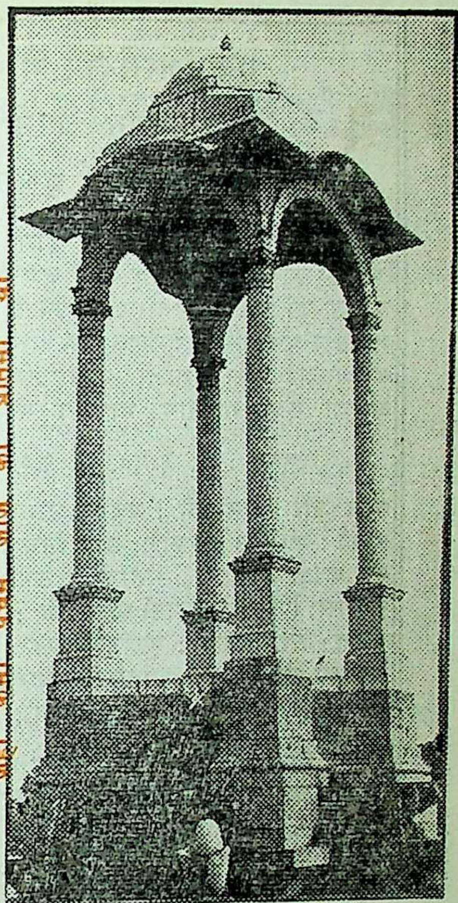
दुलहिन-सी सजी नयी दिल्ली



दिल्ली नयी-पुरानी

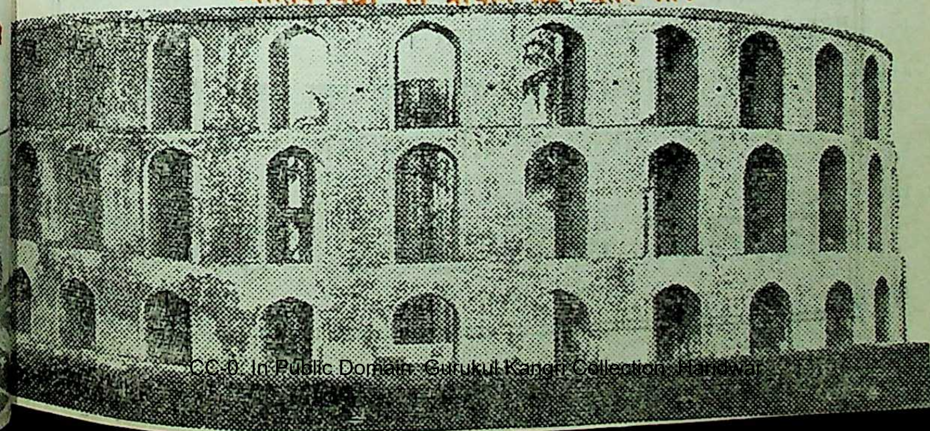
हुमायूं का मकबरा:
ताजमहल जिसकी अनुकृति है।





राजपथ पर इंडिया गेट के सामने बनी छतरी, जहां कभी पंचम जार्ज की प्रतिमा भी

ज्योतिष-विद्या का प्राचीन केंद्र: जंतर-मंतर



प्रत्येक पुलिस अफसर को दक्षता से काम लेना चाहिए

● जे. एन. चतुर्वेदी
पुलिस आयुक्त, दिल्ली

एक समय ऐसा था, जब भारतीय पुलिस के लिए कोई आचार-संहिता नहीं थी। यह आज से कोई १२०-१२३ वर्ष पहले, १८५७ की बात है। सन १८५७ के सैनिक-विद्रोह के बाद, उसकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए अंगरेज-सरकार ने १८६१ में 'इंडियन पुलिस एक्ट' की रचना की। १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ और उसके साथ ही भारतीय पुलिस के स्वरूप में परिवर्तन की ओर लोगों का ध्यान गया, क्योंकि तब तक पुलिस का स्वरूप फौज-जैसा था एवं अंगरेज सरकार द्वारा उस पर हमेशा कम खर्च किया जाता था।

पुलिस महानिरीक्षक से आयुक्त

स्वतंत्रता के बाद यह अनुभव किया गया कि बड़े शहरों में अपराधी आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों और हथियारों का उपयोग ज्यादा कर रहे हैं, अतः उनसे निपटने के लिए पुलिस को भी वैज्ञानिक उपकरणों और हथियारों से लैस करना चाहिए। इसी तरह पुलिस को जिलाधिकारी के अंतर्गत रहने के प्रश्न पर भी विचार किया गया। यह अनुभव किया गया कि पुरानी व्यवस्था से नयी समस्याएं हल नहीं होंगी। अतः ऐसे पुलिस-अधिकारी की जरूरत महसूस की गयी, जिसके पास जिलाधिकारी के अधिकार भी हों। फलतः महानिरीक्षक को आयुक्त बनाकर उसे कुछ नये अधिकार दिये गये, जैसे आग्नेय शस्त्रों का लाइसेंस देना, धारा १०७ के अंतर्गत आनेवाले अपराधों का फैसला करना, गाड़ियों की गति-सीमा निर्धारित करना इत्यादि।

अपराध-नियंत्रण के लिए नये कदम

जिन दिनों मैं दिल्ली का पुलिस-आयुक्त बना, उन दिनों राजधानी में छीना-झपटी के मामले ज्यादा हो रहे थे। इस पर काबू पाने के लिए मैंने अपने सहयोगियों की बैठक बुलायी तथा निश्चय किया कि अपराधियों को पकड़वाने में मदद देनेवाले सिपाही एवं प्रधान-सिपाही को 'आउट ऑव टर्न' पदोन्नति दी जाए। इसका अच्छा परिणाम हुआ।

मैं अपराध-नियंत्रण में लगे सभी लोगों का भावनात्मक रूप से सहयोग चाहता था। उनमें उत्साह आया और कई सिपा-

हियों ने जान की बाजी लगाकर अपराधियों को पकड़ा। मैंने यह भी घोषणा की कि जिस एस. एच. ओ. एवं उपायुक्त के इलाके में अपराध ज्यादा होंगे, उसे अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। मैंने नये पुलिस थानों एवं चौकियों की भी जरूरत महसूस की और आठ नये थाने एवं बारह पुलिस चौकियां खुलवायीं। एक नये जिले—पश्चिमी जिले—का निर्माण भी किया।

यातायात पुलिस और अपराध

पहले यातायात-पुलिस अपराध-नियंत्रण के लिए सहयोग नहीं देती थी। मैंने उसे विशेषाधिकार देकर अपराधी को पकड़ने के लिए तत्पर किया। इसी तरह मैंने आम जनता के बीच जाकर पुलिस का सहयोग देने की अपील की। डकैती रोकने के लिए चौधरी ओमप्रकाश, अतिरिक्त उपायुक्त, मध्य दिल्ली के नियंत्रण में एक विशेष पुलिस दस्ते का भी गठन किया। अब तक इस दस्ते ने डकैती के कई मामलों को निपटाकर करीब दस लाख रुपये का सामान बरामद किया है।

दिल्ली में पिछले दिनों वाहनों की चोरी की घटनाएं बढ़ गयी थीं। इसका एक कारण वाहन-मालिकों द्वारा अपने वाहनों की सुरक्षा के प्रति उदासीनता भी थी। लोग पचास हजार की गाड़ी सड़क पर छोड़कर चैन से सो जाते, अतः मैंने एक ओर वाहनों के मालिकों को अपने वाहनों पर नजर रखने का अनुरोध किया, साथ ही 'आटो थेफ्ट एसक्वेड'



जे. एन. चतुर्वेदी

का भी गठन किया। दिल्ली से जुड़े हुए राज्यों से भी संपर्क स्थापित कर, इस स्थिति पर काफी हद तक नियंत्रण किया गया। मैंने विभिन्न बस्तियों में बैठकें आयोजित कर लोगों से अनुरोध किया कि वे पंचशील पार्क या दक्षिण दिल्ली-वालों की तरह अपनी गाड़ी को सड़क पर रात को नहीं छोड़ें, क्योंकि सभी गाड़ियों का 'लॉकिंग डिवाइस' एक ही तरह का है। इससे वाहनों की चोरी की घटनाएं काफी कम हो गयीं। मैंने घरेलू नौकरों की जांच-पड़ताल भी करायी, क्योंकि अधिकांश चोरियों में नौकरों का हाथ होता है। पर लोगों का अपेक्षित सहयोग न मिल पाने के कारण इस तरह की चोरियों पर नियंत्रण संभव नहीं हो पाया है।

अपराधियों का निष्कासन

अपराध-नियंत्रण के लिए मैंने एक और महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। और वह है

हरिजनों तथा अन्य कमज़ोर वर्गों के आर्थिक

स्तर को उठाने की दिशा में

दिल्ली प्रशासन की उपलब्धियां

* हरिजनों तथा कमजोर वर्गों की भलाई से सम्बन्धित योजनाओं पर तेजी से अमल।
* हरिजन कल्याण पर पिछले वर्ष प्रशासन द्वारा ७६ लाख रुपए व्यय और इस वर्ष १०५ लाख रुपये की योजनाओं पर अमल।
* ३७ हरिजन परिवारों को बसें खरीदने के लिए आर्थिक सहायता।
* एक हजार से अधिक हरिजन विद्यार्थियों को सवा चार लाख रुपए की वार्षिक छात्रवृत्तियां।
* २०० रुपए से कम आय वाले हरिजन अभिभावकों के बालकों को ४५ रुपए प्रति बालक छात्रवृत्ति।
* पिछड़े वर्गों एवं कमजोर वर्गों के ५७७२ छात्रों को १६ लाख २१ हजार रुपए की छात्रवृत्तियां।
* हरिजन छात्र और छात्राओं के लिए अलग-अलग छात्रावास।
* ५०० रुपए से कम मासिक आय वाले अभिभावकों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावासों में मुफ्त रहने की व्यवस्था।
* प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले हरिजनों और पिछड़े वर्गों के युवक-युवतियों को मुफ्त प्रशिक्षण देने की सुविधा।
* १७८० हरिजन कारीगरों को अपने धन्धे चलाने के लिए प्रत्येक कारीगर को ५०० रुपए के मुफ्त औजार आदि।
* ३२०० सफाई कर्मचारियों को ८ लाख रुपए की लागत के ठेले।
* हरिजन बस्तियों के सुधार पर २० लाख रुपए खर्च।
* दिल्ली में प्रायः सभी १४ हजार हरिजन परिवारों को मकान बनाने के लिए जमीन।
* हरिजनों और पिछड़े वर्गों के लोगों को मकान बनाने के लिए १५०० रुपए प्रति परिवार की सहायता।
* हरिजन कल्याण के कामों में लगी गैर-सरकारी संस्थाओं को ५०% से ८०% तक का अनुदान।

हरिजनों व पिछड़े वर्गों तथा निर्धनों की हालत सुधारने में
अग्रणी : दिल्ली प्रशासन

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली
द्वारा प्रसारित

सजायाफ्ता अपराधियों को शहर से बाहर निकालने की सजा। सालभर में मैंने सात सौ व्यक्तियों को दिल्ली छोड़ने का आदेश दिया। वे किसी भी कीमत पर दिल्ली छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। कोई न कोई बहाना बनाकर दिल्ली में रहना ही पसंद करते हैं। ऐसे अपराधियों पर पुलिस की कड़ी नजर है।

दिल्ली में तैंतीस हजार आग्नेय शस्त्रों के लाइसेंस दिये जा चुके हैं। इसे कम करने की कोशिश जारी है। अब मैंने लाइसेंस देना लगभग बंद ही कर दिया है। मेरे विचार से चाकू रखना भी बंद कर देना चाहिए, क्योंकि ज्यादातर अपराधी इसी का उपयोग करते हैं। लेकिन दिल्ली में चाकुओं के निर्माण पर प्रतिबंध लगाने के बावजूद पड़ोसी राज्यों से लोग चाकू लेकर बेचने चले आते हैं और इस पर नियंत्रण मुश्किल है। फिर भी इस दिशा में मैं प्रयत्नशील हूं।

दिल्ली मेरे लिए नयी नहीं

दिल्ली में मैं पहले भी रह चुका हूं। सन १९६० में मैं उत्तरी जिले का एस. पी. था। उन दिनों की एक घटना मुझे अक्सर याद आती है।

सन १९६० के १२ जून की बात है। मैं कार्यालय में बैठा था। मुझे खबर मिली कि पंजाबी सूबे की मांग को लेकर सिख काफी संख्या में शीशगंज गुरुद्वारा पहुंच रहे हैं। वे वहां से जलूस बना प्रधानमंत्री के निवास-स्थान तक जानेवाले हैं। मुझे आदेश मिला था कि जलूस न निकलने दिया जाए। मैंने तुरंत पहुंचकर उन्हें जलूस निकालने से रोका। शहर में १४४ दफा पहले से ही लागू थी, उन लोगों ने पांच-पांच की संख्या में एक जगह एकत्रित होकर जलूस निकालने का निर्णय किया। पुलिस ने अश्रु-गैस छोड़ी फिर भी लोग नहीं हटे। हां, कुछ देर के के लिए लोग तितर-बितर अवश्य हो गये। जब पुलिस ने लाठी-चार्ज किया। फलतः एक व्यक्ति घायल होकर गिर गया। मैंने देखा कि अगर इस व्यक्ति को दोबारा लाठी लगी तो वह मर जाएगा। मैंने सिपाही को पकड़ना चाहा, लेकिन लाठी तब तक चल चुकी थी। उसकी चोट मुझे भी लगी।

कुछ देर बाद सारे आंदोलनकारी पुनः एकत्रित हो गये। साथ ही अश्रु-गैस से बचने के लिए उन्होंने गीले कपड़े अपने पास रख लिये थे। इस बार वे कुछ ज्यादा ही उत्तेजित थे।

प्रदर्शनकारी मेरे विरुद्ध नारा लगा रहे थे "क्या होया, चतुर्वेदी मोया।" साथ ही साथ पत्थरों, जूतों और चप्पलों की भी वर्षा कर रहे थे। मुझे चोट भी आयी। मैं सिपाहियों के साथ पिट रहा था। पहले तो सिपाहियों ने प्रयत्न किया कि वे तितर-बितर हो जाएं, लेकिन वे सफल नहीं हो सके। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर सोच रहा था कि क्या किया जाए? तभी एक सिपाही मेरे पास


शीतल!
आकर्षक!
सुखद!
मोदिकाटन
आपकी प्रिय फ़ैब्रिक
से प्रस्तुत

आया एवं मुझे गोली चलाने का आदेश देने का सुझाव देने लगा। मैंने उसे ढाढस बंधाया, लेकिन उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसने राइफल में गोली भरकर सिपाहियों को उत्तेजित करना शुरू कर दिया।

अब मैं पूरी तरह आतंकित हो गया था। मेरे दिमाग में नादिरशाह की याद कोंचने लगी। मैं सोचने लगा कि क्षणभर में यहां लाशों का ढेर लग जाएगा और अगले दिन मैं मुअत्तल कर दिया जाऊंगा। मेरा नाम कल अखबार में बड़ी-बड़ी सुर्खियों में छपेगा। लोग मेरी तुलना नादिरशाह से करेंगे। फिर भी मुझे ईश्वर पर विश्वास था। एकाएक मैं अपने-आप आगे बढ़ने लगा। हालांकि आगे बढ़ने का खतरा था, फिर भी पता नहीं कौन-सी शक्ति मेरा साथ दे रही थी। मैं जैसे-जैसे आगे बढ़ा, वैसे-वैसे लोग पीछे हटते गये। अंततः मैं उनके बीच पहुंच गया। कुछ लोगों ने मुझे गालियां भी दीं पर मैं मुसकराता रहा। अंततः कुछ बुजुर्गों ने मेरा साथ दिया एवं वे लोग वहां से चले गये। १७ जून को पंडित नेहरू ने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रत्येक पुलिस अधिकारी को चतुर्वेदी से प्रेरणा लेनी चाहिए एवं इसी तरह धैर्य से काम लेना चाहिए। सभी अखबारवालों ने भी मेरी प्रशंसा की। एक उर्दू अखबार ने लिखा—'एक मुसकान जो जादू कर गयी।'

—११ अलीपुर रोड, दिल्ली

वचन-वीथी

मानव जाति का अंत इस तरह होगा कि सभ्यता अंततः उसका गला घोट देगी।

—एमर्सन

किसी समाज का जीवन उसके प्रवाह, बाढ़ और उचित परिवर्तन पर निर्भर करता है।

—स्वामी रामतीर्थ

समाधि में ही साक्षात्कार होता है। समाधि के एक क्षण की तुलना में पठन-पाठन और मनन का सहस्र वर्ष भी नहीं ठहरता। —डॉ. सम्पूर्णानन्द

जो कृतिकारों की धूल उड़ाते हैं, उनमें अधिकांशतः मूढ़ व परगुण द्वेषी होते हैं। —शैली

जिसका हृदय सहानुभूति के भाव से परिपूर्ण है, उसे ही समालोचना करने का अधिकार है। —अब्राहम लिंकन

मैं अपने सम्मान पर आघात पहुंचने की अपेक्षा दस सहस्र बार मरना ज्यादा अच्छा समझता हूं। —एडीसन

सबसे अच्छी सरकार कौन-सी है? जो हमें अपने ही ऊपर शासन करना सिखाती है।

—गेटे

दिल्ली प्रशासन सामर्थ्य और सीमा



● प्रेम प्रकाश कोहली
(मुख्य सचिव, दिल्ली प्रशासन)

दिल्ली विविधताओं की नगरी है। दिल्ली की शासन-व्यवस्था भी विविध प्रकार से संचालित होती है। केंद्र शासित प्रदेश होने के कारण, प्रदेश के शासनाध्यक्ष लेफ्टीनेंट गवर्नर हैं। इसके साथ ही यहां महानगर परिषद भी है, जो महानगरी के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करती है। वस्तुत: दिल्ली का प्रशासन केंद्र सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार ही चलता है। साथ ही दिल्ली प्रशासन, जिसका प्रधान मुख्यकार्यकारी पार्षद होता है, द्वारा बनाये गये कायदे-कानूनों का पालन नागरिकों को करना आवश्यक है।

लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि मेयर, लेफ्टीनेंट गवर्नर एवं मुख्य कार्यकारी पार्षद के बीच दिल्ली प्रशासन ही समन्वय स्थापित करता है। वैसे इन सभी के कार्य एवं अधिकार बंटे हुए हैं, इसी तरह यहां नगर पालिका भी है, जिसका प्रधान अध्यक्ष होता है। दिल्ली प्रशासन के साथ-साथ नगर पालिका भी शहर के विकास के लिए कार्य करती है। लेकिन आय के स्रोत से लेकर अधिकार क्षेत्र तक सभी में विभिन्नता होने के कारण आपस में समन्वय अपने आप स्थापित हो जाता है।

दिल्ली प्रशासन मुख्यत: शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम एवं उद्योग के विकास के लिए कार्य करता है। केवल विधायी शक्ति को छोड़कर, सारे अधिकार दिल्ली प्रशासन के पास हैं। वैसे इस कमी को दूर करने के लिए दिल्ली प्रशासन को यह अधिकार देने की बात संसद तक पहुंची है।

दिल्ली प्रशासन योजना बनाने से लेकर, धन राशि प्राप्त करने तक के लिए योजना आयोग के आधीन होता है। दिल्ली प्रशासन के सामने अभी बड़ी समस्यायें बिजली, प्रदूषण, पुनर्वास, स्वास्थ्य एवं बाढ़ पर नियंत्रण की है। इन समस्याओं से निबटने के लिए दिल्ली प्रशासन ने कई योजनाएं बनायी हैं।

दिल्ली के विकास के लिए दिल्ली प्रशासन ने १९८०-८१ में एक सौ चालीस करोड़ रुपये खर्च करने की योजना बनायी है, जबकि १९७९-८० में एक सौ आठ करोड़ रुपये प्रावधान था। अगले वर्ष तक दिल्ली विद्युत प्रदाय अंडर टेकिंग (डेसू) के कर्मचारियों के लिए भवनों का निर्माण पूरा हो जाएगा। ●

प्रिय संरक्षक !

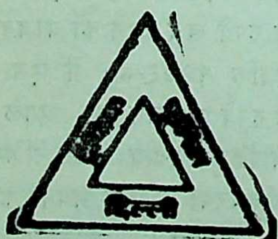
बच्चों को सुरक्षा की जरुरत है

अपने बच्चों को बताएं

* सड़क सुरक्षा, नियम ।
* कभी किसी अनजान व्यक्ति के साथ कहीं न जाएं ।
* कभी किसी अनजान व्यक्ति की गाड़ी में न बैठें ।
* कभी किसी अनजान व्यक्ति से कोई मिठाई, पैसे आदि न लें ।
* हमेशा मित्रों के साथ खेलें और अंधेरा होने से पहले अपने घर लौट जाएं ।

याद रखें

* हमेशा जहां जाएं उस स्थान का पता और वापिस आने का समय बताकर जाएं ।
* छोटी उम्र के बच्चों के साथ उनकी पहचान व पता हमेशा उनके साथ रखें ताकि उनको ढूंढने में आसानी हो ।
* बच्चों को कभी जेवरात और कीमती वस्तुएं न पहनाएं ।
* स्कूलों के आसपास गाड़ी सावधानी से चलाएं ।
* सड़कों पर बच्चों को संरक्षण दें
* हमेशा गाड़ी सावधानी से चलाएं ताकि गाड़ी में बैठे बच्चे सुरक्षित रहें



"दिल्ली ट्रैफिक पुलिस"
द्वारा जारी

डी. ए. वी. पी. ७९/३८६

दिल्ली में यातायात-व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न

● पी. एस. बावा
(उपायुक्त, यातायात-पुलिस दिल्ली)

हर महानगर की अपनी समस्याएं होती हैं। दिल्ली की भी अपनी समस्याएं हैं, जिनमें से एक है—यातायात-व्यवस्था की। विगत दस वर्षों में वाहनों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अक्तूबर, १९७९ तक वाहनों की संख्या ४,७५,३५९ हो गयी है, जबकि १९६९ में यहां की संख्या १,४४,६८० थी।

दिल्ली की यातायात-व्यवस्था को और समुन्नत बनाने के लिए नयी दिल्ली क्षेत्र के पांच स्थानों—तिलक ब्रिज, जनपथ, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, कस्तूरबा गांधी मार्ग व बाराखंबा रोड पर क्लोज-सर्किट टेलीविजन संयंत्र लगाये गये हैं, जिनसे पुलिस-मुख्यालय में बैठे हुए ही ट्रैफिक के 'फ्लो' के देखते हुए, सिगनल को 'एडजस्ट' किया जा सकता है और जरूरत पड़ने पर उद्घोषणा द्वारा निर्देश भी जारी किये जा सकते हैं। ये पांचों संयंत्र अभी प्रयोग के तौर पर लगाये गये हैं और इनसे वांछित परिणाम मिल भी रहे हैं।

जब से मैंने ट्रैफिक उपायुक्त का कार्य-भार संभाला है, तब से मैं निरंतर प्रयत्नशील हूं कि ट्रैफिक-नियंत्रण को भी समाज की एक समस्या समझी जाए। काफी दौड़-धूप के बाद मैंने इसमें सफलता भी पायी है लेकिन मुझे अब तक जनता से अपेक्षित सहयोग नहीं मिल पा रहा है।

ट्रैफिक-व्यवस्था में व्यापक सुधार लाने के लिए ट्रैफिक-कानून में मूलभूत परिवर्तन आवश्यक है। इसके साथ ही चालकों को वाहन-लाइसेंस देने में सतर्कता आवश्यक है। दिल्ली में ऐसे बहुत-से चालकों को लाइसेंस दे दिये गये हैं, जिन्हें सिगनल एवं अन्य ट्रैफिक-नियमों का ज्ञान नहीं है।

आम जनता का ध्यान इस ओर दिलाने के लिए 'सिटीजन वार्डेन फोर्स' की नियुक्ति की गयी है। इसमें ऐसे लोगों की, जो इसे समाज की एक प्रमुख समस्या मानते हुए निःशुल्क सेवा के लिए तैयार होते हैं, नियुक्ति की जाती है। मैं यातायात-सुधार के लिए जनता द्वारा दिये गये परामर्शों का स्वागत करता हूं और बार-बार परामर्श मिलने की अपेक्षा भी करता हूं।

—दिल्ली मुख्यालय, नयी दिल्ली

संगीत बिखेरते झरनों का शहर

● श्रीचंद छाबड़ा

अध्यक्ष, नयी दिल्ली नगरपालिका

विदेशी राजनयिक किसी भी देश की राजधानी को देखकर ही उस देश की संपन्नता का अनुमान लगाते हैं। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश देश अपनी राजधानी को सुंदर एवं आकर्षक बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। दिल्ली को भी आकर्षक बनाने का प्रयत्न जारी है, लेकिन कुछ कठिनाइयों के कारण इस कार्य में पूर्ण सफलता नहीं मिल पायी है।

नयी दिल्ली नगरपालिका का अध्यक्ष होने के नाते, नयी दिल्ली को सुंदर बनाने की मैं स्वयं पर विशेष जिम्मेदारी समझता हूं। मैं पहले भी नयी दिल्ली नगरपालिका का अध्यक्ष रह चुका हूं। अपने उस कार्यकाल में मैंने (सन १९६५) रीगल सिनेमाघर के पास एक विशाल पार्क बनवाया। कनाट प्लेस के सेंट्रल पार्क को भी मैंने आकर्षक बनाने की कोशिश की। जब मुझे पुनः इस दायित्व को संभालने का अवसर दिया गया, तब मैंने नयी दिल्ली को और सुंदर व आकर्षक बनाने की योजनाएं शुरू कीं। मेरे इन प्रयत्नों की देश में ही नहीं, विदेशों में भी सराहना हुई है। विदेशियों की दृष्टि में नयी दिल्ली अब अधिक साफ-सुथरी और सुंदर हो गयी है।



दिल्ली मात्र राजधानी नहीं, वह देश का आइना भी है। लोकसभा व राज्यसभा में भारत की जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाले संसत्सदस्य यहां निवास करते हैं, विदेशी राजदूत भी यहीं रहते हैं, कुछ लोग गरीबी और बेरोजगारी का वास्ता देकर नयी दिल्ली के सौंदर्यीकरण का विरोध करते हैं। लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूं।

नयी दिल्ली नगरपालिका ने राजधानी के गरीब बृद्धों को पैंतालीस रुपये प्रति महीना देने का निश्चय किया है। नगरपालिका ने निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध भी किया है। नगरपालिका के विद्यालयों में पढ़नेवाले बच्चों को पोशाक एवं दिन का खाना निःशुल्क प्रदान किया जाता है। जन-स्वास्थ्य के प्रति भी हम सतर्क हैं, आकर्षक अस्पतालों का निर्माण किया गया है, कई अस्पताल निर्माणाधीन हैं। बारात-घर, युवक-केंद्र, स्वास्थ्य-केंद्र, कर्मचारियों के लिए आवास-स्थान एवं विद्यालयों के लिए भवनों के निर्माण की योजना भी शुरू की जाएगी। राजधानी में ऐसे झरनों का भी निर्माण किया जाएगा, जिनमें फुहारे की ऊंचाई के आधार पर रंग एवं संगीत-स्वर बदलते रहेंगे। ●

कभी कभी आप चाहते हैं आपकी मम्मी ने सुपरस्टिच इस्तेमाल किया होता

न केवल ऐसी परेशानी से बचाने के लिए...



बल्कि
पेटी के लूप बनाने
बटन टांकने
बटन के काज बनाने
बखिया करने
रफ़ू करने
कढ़ाई करने
मशीन की सिलाई करने
आदि हर काम के लिए।

सचमुच यह आपकी मम्मी का अच्छा मित्र है और बच्चों को भी परेशानी से बचाने वाला... सुपरस्टिच धागों की नई
कार्यकुशलता और उत्कृष्ट
जो सिलाई व रफ़ू के लिए सर्वोत्तम है–
सुपरस्टिच धागों का रंग पक्का होता है–
सुपरस्टिच धागे मजबूत और टिकाऊ होते हैं–
सुपरस्टिच धागे अनेकानेक रंगों और शेडों में मिलते हैं–
हर गृहिणी को सुपरस्टिच धागे अपने पास रखने चाहिए

लीजिए सुपरस्टिच

सर्वोपयोगी **मोदी धागे**
४० से अधिक देशों में मिलते हैं

गांववालों से हम श्रम मांगते हैं

दिल्ली से एक घंटे की दूरी पर एक शहर है मोदी नगर। सभी जानते हैं, यह शहर ४६ वर्ष पहले बीहड़ जंगलों को काटकर रायबहादुर स्वर्गीय गूजरमल मोदी ने बसाया था, चीनी का एक बड़ा कारखाना स्थापित करने के साथ, एक औद्योगिक नगर बसाने का उनका बचपन में देखा गया एक सपना था। वर्षों बाद स्व. मोदी के पुत्र श्री सतीश मोदी ने 'मोदी कार्पेट फैक्ट्री' की आधारशिला एक ऐसे ही वीरान इलाके में रखी और वहां 'गूजरमल मोदी ग्राम' अपने अस्तित्व में आने लगा।

"भारत में शहर से ज्यादा गांव हैं, अगर देश की उन्नति चाहिए, तो गांवों की ओर मुखातिब होना होगा।" श्री सतीश मोदी का यह दृढ़ विश्वास है।

"किसान की आमदनी से गांव नहीं चल सकता" श्री सतीश मोदी कहते हैं, "गांव की प्रगति के लिए जो जरूरी है, वह किसान कहां से मुहय्या करेगा। हमने जो गांव अपने संरक्षण में लिये हैं, वहां पक्की सड़कें बनवायी हैं, पीने के पानी की व्यवस्था की है, दवाखाने खोले हैं, स्कूल खोले हैं। बेहद गरीब गांवों में जरूरत की चीजें मुफ्त बांटी हैं, उनके लिए रोजगार मुहय्या किया है। हमारी प्रगति धीमी जरूर है, लेकिन ठोस है।"

दो वर्ष में अगर किसी एक गांव में भी इतना कुछ हो जाए, तो समझना चाहिए प्रगति संतोषजनक स्थिति से ज्यादा है—ग्यारह गांव अपने आप में मायने रखते हैं।

श्री सतीश मोदी महत्वाकांक्षी युवक हैं। जन-कल्याण की चिंता का रोग है उन्हें। बंबई के जसलोक अस्पताल की तरह का एक अस्पताल दिल्ली में खोलने का सपना वह देख चुके हैं। एक ऐसा अस्पताल, जिसमें समाज का हर वर्ग पनाह पा सके, हर वर्ग को आवश्यक सेवाएं मिल सकें।

"इस महत्त्वाकांक्षी अस्पताल के लिए जमीन की मांग फिलहाल सरकार ने नामंजूर कर दी है," सतीशजी कहते हैं, "हालांकि यह अस्पताल एक बार खुलने के बाद न केवल भारत का, बल्कि एशिया भर में अपने ढंग का अकेला अस्पताल होगा। जनता को जनार्दन कहा गया है। अगर यह सच है, तो जनता जनार्दन के लिए कल्याणकारी यह अस्पताल जरूर खुलेगा और इसके लिए आपकी शुभकामनाएं चाहिए।"

—शु. व.

FROM

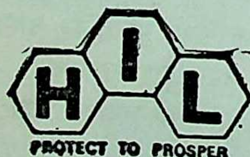
PUBLIC HEALTH
TO PLANT PROTECTION

HIL is now closer to the farmer.

Offering plant protection in an effort to increase food production.

HIL believes that in increasing food production, protection to crops is as vital as growing them. That's why we now enter the agricultural sector with a wide range of pesticides—Hildan 35EC (Endosulfan), Hildit 50 WDP (DDT), Hilbeech 50 WDP (BHC) and Hilfol 18.5 EC (Dicofol).

HIL is constantly involved in extensive research activities for the development of indigenous technology. Technology for basic manufacture and formulations of products such as Methoxychlor, Dicofol, Endosulfan, BHC granules, etc. Products that are most effective for Indian condition and for which an adequate supply at the farm level will be ensured.



INSECTICIDES LIMITED
HINDUSTAN

(A Government of India Enterprise)
Hans Bhawan, Bahadur Shah Zafar Marg, Wing-1,
New Delhi-110002.
Factories' Delhi, Udyogmandal (Kerala) Rasayani (Maharashtra).
Regional Sales Offices :
Hyderabad *Ahmedabad.

दिल्ली के ग्रामों का औद्योगीकरण

● एम. एस. मलिक

दिल्ली में ग्राम-औद्योगीकरण की समस्या देश के अन्य राज्यों की तुलना में कम है। इसका एक कारण यह है कि संघीय क्षेत्र दिल्ली की कुल ५५ लाख की जनसंख्या में से केवल ५ लाख की आबादी गांवों में रहती है। दिल्ली प्रशासन ने ग्रामोद्योग विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

जहां राज्यों में जिला-उद्योग केंद्रों की स्थापना की गयी है, वहां दिल्ली में जिले न होने के कारण यहां के प्रत्येक विकास खंड में उद्योग-केंद्रों की स्थापना पर विचार किया जा रहा है। इन केंद्रों में प्रशिक्षण एवं उत्पादन इकाइयां होंगी, जिनमें गांव के लोगों को विभिन्न शिल्पों का प्रशिक्षण दिया जाएगा। प्रत्येक विकास-खंड तथा पटपड़गंज में अनेक लघु उद्योग-बस्तियों की स्थापना की जा रही है।

पटपड़गंज साइकिल तथा आटो-पार्ट्स औद्योगिक बस्ती के लिए १५५ एकड़ भूमि अधिग्रहित करली गयी है, जिस पर विकास-कार्य प्रगति पर है। इस बस्ती में ६०० खंड होंगे और इनके पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर यमुनापार क्षेत्र में पिछड़े वर्ग के लगभग १५,००० लोगों को रोजगार मिल सकेगा।

दिल्ली-प्रशासन का उद्योग-विभाग एक महत्त्वाकांक्षी योजना पर विचारकर रहा है, जिसके अंतर्गत एक जगह केंद्रित उद्योगों को देहाती क्षेत्रों में स्थानांतरित किया जाएगा।

देहाती नवयुवकों में उत्पादन-क्षमता पैदा करने के लिए इन केंद्रों में विद्युत-चालित न्यून तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाएगा। तकनीकी ज्ञान के साथ-साथ उन्हें कार्य-स्थल भी दिये जाएंगे और बाद में इन देहाती उद्यमियों को रानी झांसी रोड पर बन रहे फैक्ट्री-कांप्लेक्स में बिक्री-स्थल व दुकानें आवंटित की जाएंगी।

इस प्रकार उत्पादन तथा विक्रय में आवश्यक समन्वय स्थापित करके, इस योजना को अधिक कारगर बनाया जाएगा। इस योजना के अंतर्गत बढ़ईगीरी, लुहार-गीरी, स्टील-फर्नीचर, टोकरी-बनाना, दर्जीगीरी, कसीदाकारी, खादी तथा ग्राम-शिल्प आदि उद्योग स्थापित किये जाएंगे। चुने हुए बीस गांवों में गांव-सभा के माध्यम से इनके लिए किराये पर कार्यशालाएं उप-लब्ध करायी जाएंगी।

दिल्ली में इस समय लगभग तीस हजार हेक्टेयर बंजर-भूमि पड़ी है। इसमें से लगभग एक हजार हेक्टेयर भूमि का विकास देहाती औद्योगिक इकाइयों के लिए किये जाने का प्रस्ताव है।

दिल्ली में लड़कियों का पहला स्कूल

● सरला शर्मा

पिछली सदी और वर्तमान सदी में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अंतर आया है। आजकल लड़कियों को स्कूल भेजना एक साधारण बात समझी जाती है, लेकिन इसी बीसवीं शताब्दी के आरंभ में लड़कियों की शिक्षा अचिंतनीय थी, अवांछनीय समझी जाती थी। अंगरेजों का शासन था। बाल-विवाह, अंध-विश्वास, कठोर परदा-प्रथा जैसी-कुप्रथाओं में नारी जकड़ी हुई थी।

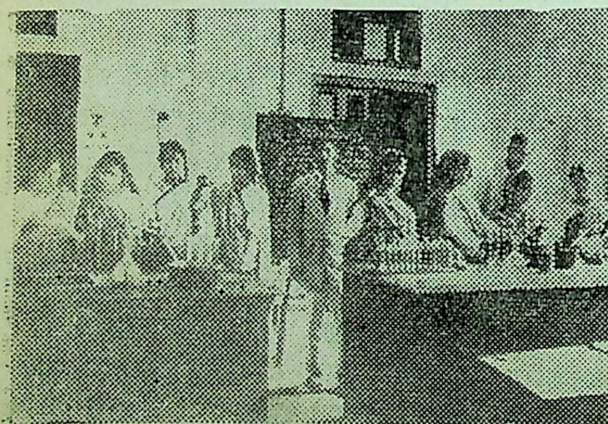
उत्तरी भारत जहां नारी कठोर परदे में जकड़ी हुई, अंध-विश्वास में पली और बाल-विवाह, छुआछूत, निरक्षरता से अभिशप्त थी, उसकी हीन दशा किसी से छुपी नहीं थी। यह समझा जाता था कि नारी का काम केवल घर चलाना और बच्चे पालना है। उसे ज्ञान व शिक्षा से क्या लेना-देना ? पढ़-लिखकर कोई नौकरी थोड़े ही करनी है ? उसका स्थान केवल घर में ही है।

ऐसे हालत में नारी को शिक्षित करने के लिए घर की चार-दीवारी से बाहर निकालना क्रांति से कम नहीं था।

दिल्ली में इसका बीड़ा लाला जुगलकिशोर व उनके सहयोगियों ने उठाया, जिन्होंने दिल्ली में १९०४ में इंद्रप्रस्थ कन्या विद्यालय खोला, जो लड़कियों का सर्वप्रथम स्कूल था और १९२४ में इंद्रप्रस्थ कालिज खोला जो लड़कियों का सर्वप्रथम कालिज था।

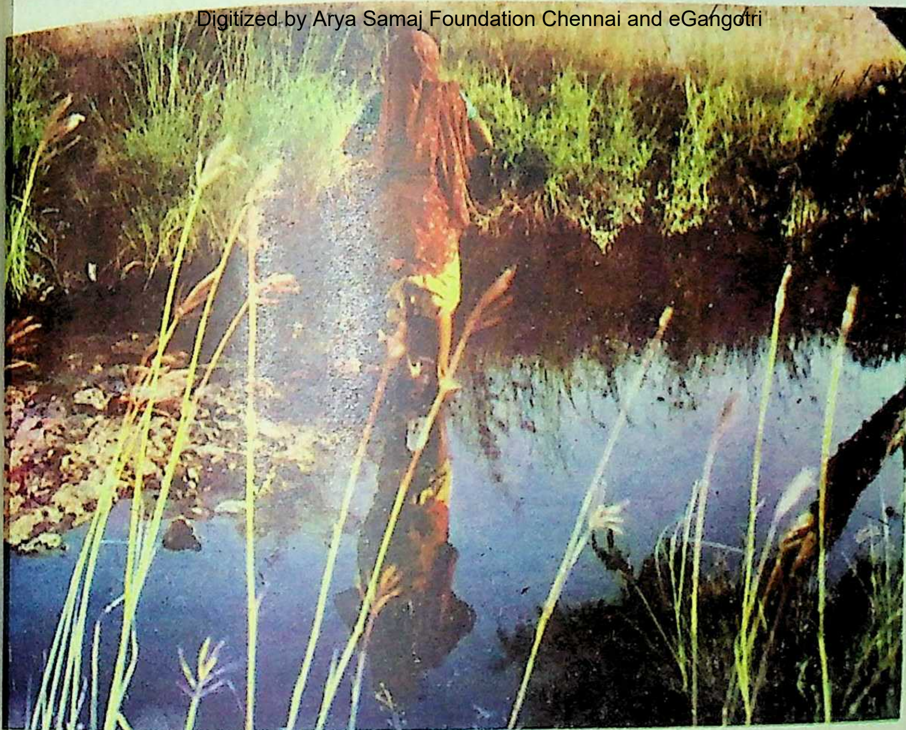
आज यह बात अजीब-सी लगती है कि उस समय उन्होंने घर-घर जाकर माता-पिता से अनुरोध किया कि 'बहू-बेटियों को पढ़ाओ, स्कूल में भेजो, शिक्षा से वे बेहतर बनेंगी, बिगड़ेंगी नहीं।'

—१७, जोग ध्यान बिल्डिंग, चांदनी चौक, दिल्ली-६



इंद्रप्रस्थ गर्ल्स हायर-सेकेंडरी स्कूल में सन १९२८ में लड़कियों को केमेस्ट्री भी पढ़ायी जाती थी। उन दिनों का एक चित्र

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गौरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित



समस्या-पूर्ति—१०

अपनी ही छाया

ऊपर प्रकाशित चित्र को ध्यान से देखिए और उसके नीचे बड़े अक्षरों में लिखी पंक्ति पढ़िए। इन्हें लेकर आपको एक कविता लिखनी है—गीत, गजल या छंदहीन पंक्तियां भी। आपकी रचना मौलिक तथा छह पंक्तियों की ही हो। प्रविष्टि पोस्ट-कार्ड पर ही भेजें। जो श्रेष्ठ रचना होगी, उसे पुरस्कृत किया जाएगा।

प्रथम पुरस्कार—२५ रुपये
द्वितीय पुरस्कार—१५ रुपये
अंतिम तिथि—५ फरवरी, १९८०

छाया : सुधीर सक्सेना

रजि. नं. डी.-


ली के रंग अनेक
कादम्बिनी
भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका

NEW

Rico

MAGIMIX

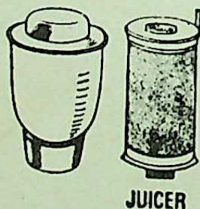
MIXER

'यह कैसे कार्य करता है-जैसे जादू !

नया मैजिमिक्स, निर्बाध गति से, बहुत
कम समय में इडली और दोसाई के
लिए चावल और दाल पीसता है ।
चटनी बनाना कोई कठिन कार्य नहीं ।
मसाला सेकेण्डों में पीस देता है ।
स्वादिष्ट लस्सी, मिल्क शेक, कोल्ड काफी आदि ।
इतना शीघ्र कि आप सन्तुष्ट हो जाएंगे ।
आप इस माडल से विभिन्न
अन्य आइटमों को
पीस/मिला सकते हैं व आप इसे पसंद करेंगे।

सभी प्रमुख स्टोर्स में प्राप्य—
सीएसडी और आईएनसीएस कैंटीनों में भी प्राप्य
ऐच्छिक उपांग





JUICER

सेल्स एवं सर्विस : **नयानी ब्रदर्स,** १०१८४, आम्रा पैलेस, आर्यसमाज रोड,
यूनियन बैंक आफ इण्डिया के ऊपर, करोलबाग, नई दिल्ली-५ ।
टेली. : ५६७७७८ ।

आपके प्यारे बच्चे को स्वस्थ, सुन्दर व सुडौल बनाने वाली पहली अनूठी पुस्तक

बेबी हैल्थ गाइड

पहली बार मां बनने जा रही स्त्रियों के लिए एकमात्र गाइड



बड़ा साइज
पृष्ठसंख्या 260
फोटोग्राफ्स 180
रेखाचित्र 42

मूल्य 24/-
डाकखर्च 4/-

प्रामाणिकता की पहचान
महिला विषयों की विशेषज्ञ लेखिका
श्रीमती आशारानी व्होरा द्वारा लिखित एवं
१८ विशेषज्ञ डाक्टरों से साक्षात्कार पर आधारित

यह पुस्तक आपके लिये क्या कर सकती है?

1. आपका बच्चा स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल व लम्बे कद वाला बने—इसके लिए जन्म से पांच वर्ष तक आहार सम्बन्धी विस्तृत जानकारी एवं स्तनपान की आवश्यकता तथा उसके सही ढंग से अवगत करायेगी.
2. गर्भकाल की मुश्किलों व जटिलताओं से बचने के उपाय तथा गर्भवती के लिए उपयुक्त भोजन की जानकारी देगी.
3. शिशु की मालिश व स्नान के सही और वैज्ञानिक ढंग की जानकारी देगी.
4. बच्चों की आंखों व नाक-कान-गले को नीरोग रखने के उपयोगी सुझाव देगी।
5. बच्चों में होने वाली आम शिकायतों एवं बीमारियों, जैसे—दस्त लगना 0 सर्दी व लू लगना 0 जुकाम-खांसी 0 खसरा व छोटी माता 0 जिगर बढ़ना 0 सूखा रोग 0 पीलिया 0 पेट में कीड़े 0 गलसुए 0 आंख दुखना 0 दांत निकलना 0 अंगूठा चूसना 0 बिस्तर भिगोना आदि से आपके बच्चे को सुरक्षित रखेगी
6. बच्चों में होने वाली खराब आदतों, जैसे—0 जिद्दीपन 0 चिड़चिड़ापन 0 ढीठपन 0 मचलना-रोना 0 डरना 0 क्रोध और उद्दण्डता 0 अशिष्टता 0 चोरी व झूठ बोलना आदि से आपके बच्चे को बचा कर आज्ञाकारी 0 विनम्र 0 सभ्य 0 शिष्ट तथा अनुशासनप्रिय बनाने में मदद करेगी.
7. बच्चे के पालन-पोषण में सहयोगी साधनों–बचावी टीकों का टाइम टेबल, स्वास्थ्य-प्रगति का रिकार्ड-चार्ट, उपयुक्त खेल-खिलौने, आकर्षक व सुविधाजनक फर्नीचर तथा अन्य उपयोगी उपहारों की सचित्र जानकारी देगी
8. नासमझी के कारण होने वाली विभिन्न दुर्घटनाओं से आपको सचेत करेगी तथा दुर्घटना हो जाने पर प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी देगी

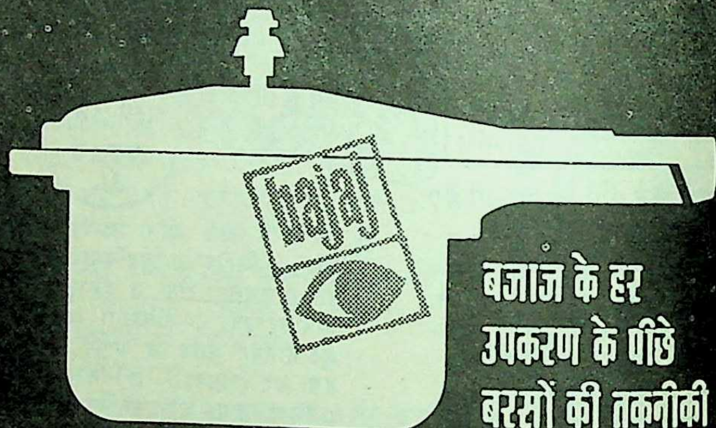
........इसके अतिरिक्त अन्यान्य ढेरों सचित्र जानकारियां।



अपने निकटतम बुकस्टाल से प्राप्त करें अन्यथा सीधे हमें लिखें

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

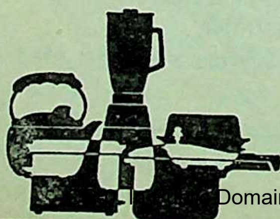
प्रेशर कुकर का
नाम जान लिया...
समझिए सब कुछ
जान लिया!



बजाज के हर
उपकरण के पीछे
बरसों की तकनीकी दक्षता
जो दोष रहित
सेवा की गारन्टी है।

बजाज प्रेशर कुकर को ही लीजिए। यह हमारी तकनीकी जानकारी का ही परिणाम है कि हमने कई साइजों में ... मोटी चद्दर वाले प्रेशर कुकर बनाए हैं। आइ. एस. आइ. ... के साथ साथ ये स्टेनलैस स्टील वेंट ट्यूब और लम्बी ... वाले गास्केट से युक्त हैं।

भारत में विविध और बहु-उपयोगी घरेलू उपकरण बनाने में बजाज अग्रणी हैं। इन उपकरणों की बिक्री और बिक्री के बाद की सेवा-सुविधा देश के कोने कोने में उपलब्ध है।





आज ही खरीदें... बजाज ही ...

heros' BE-468 HIN

आस्था के आयाम

वे 'भुलक्कड़' नहीं थे

सापेक्षवाद के जनक, नोबल-पुरस्कार विजेता अलबर्ट आइंस्टीन के एक मित्र थे, संगीतकार लियोपोल्ड गोदोव्सिकी।

एक दिन गोदोव्सिकी ने आइंस्टीन से कहा, "मेरा नाई तुमसे मिलने के लिए बेहद उत्सुक है।" आइंस्टीन ने कहा, "मैं इसी समय तुम्हारे साथ उसकी दूकान पर चलता, लेंकिन जल्दी में हूं। तुम उसका पता दे दो। कभी उससे मिल लूंगा।"

आइंस्टीन ने नाई का पता जेब में रखा, और चले गये। काफी समय बीत गया। आइंस्टीन को न्यूयार्क जाने का समय ही नहीं मिला, पर 'भुलक्कड़' के रूप में प्रख्यात वे नाई से मिलने का अपना वायदा कभी नहीं भूल पाये। एक दिन उन्हें खबर मिली कि गोदोव्सिकी चल बसे। फलतः उन्हें न्यूयार्क जाना पड़ा और गोदोव्सिकी के परिवार को सांत्वना बंधाने के बाद आइंस्टीन ने जो पहला काम किया, वह उस नाई से भेंट का था।

इस बीच नाई गोदोव्सिकी के साथ हुई अपनी बात को भूल चुका था। उसने सोचा, इतने महान वैज्ञानिक भला उसकी दूकान पर क्यों कर आयेंगे।

पर जब उस दिन उसने आइंस्टीन को अपनी दूकान पर आया देखा, तब मारे प्रसन्नता के उसकी आंखें छलछला आयीं। भावावेश से उसका गला रुंध गया।

पश्चाताप का दंड

दिल्ली की एक अदालत। भीड़ से खचाखच भरा कमरा। माननीय न्यायाधीश की किसी व्यवस्था पर क्षुब्ध होकर अपराधी ने अपनी चप्पल उतारी और निशाना साधकर माननीय न्यायाधीश की ओर फेंक दी। क्षणभर में अदालत में सन्नाटा छा गया। वहां उपस्थित लोगों और पुलिस अधिकारियों के चेहरे क्रोध से तमतमा उठे। कुछ सिपाही अभियुक्त की ओर बढ़े।

तभी न्यायाधीश ने उन्हें रोका। कहा, "इससे कुछ मत कहिए। न इसे पीटिए, न इसे किसी प्रकार का दंड दीजिए। अपने किये पर यह स्वयं पश्चाताप करेगा। आत्म-ग्लानि ही उसके लिए सबसे बड़ा दंड होगा।"

सिपाहियों के बढ़ते कदम रुक गये। अभियुक्त का चेहरा अभी भी निर्विकार

था। पर भीतर ही भीतर उसके मन में शायद भीषण द्वंद्व चल रहा था।

सुनवाई खत्म हो चुकी थी। सिपाही ने अभियुक्त को ले जाने के लिए उसका हाथ पकड़ा। पर अभियुक्त ने क्रोध से उसका हाथ झटक दिया और माननीय न्यायाधीश की ओर बढ़ा। लोग एक बार फिर सकते में आ गये। पर यह क्या ! अभियुक्त ने माननीय न्यायाधीश के सामने लगी लकड़ी की रेलिंग पर बार-बार अपना सिर पटकना शुरू कर दिया था। वह पश्चाताप की आग में जल रहा था।

माननीय न्यायाधीश के चेहरे पर संतोष की आभा थी। मनुष्यता में उनके विश्वास को एक और प्रमाण मिल गया था।

फ़िल्में बनाम प्रतिष्ठा

वे एक सेशन जज के सुशिक्षित और होनहार बेटे थे। पिता का स्वप्न था कि बड़ा होकर बेटा उनकी तरह ही किसी ऊंचे पद पर आसीन होगा। पर पुत्र था कि उसे फिल्मों में काम करने की धुन थी। उन दिनों मूक चित्रपटों का जमाना था। लोग फिल्मों में काम करना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते थे। पर वह था कि फिल्मों में न केवल काम करना, वरन नाम भी करना चाहता था। वह सिद्ध करना चाहता था कि फिल्मों में कामकर नाम कमाया जा सकता है, और प्रतिष्ठा भी पायी जा सकती है। और उसने अपने जीवन से यह सिद्ध कर भी दिया।

यह युवक और कोई नहीं, मूक और बाद में सवाक चित्रपटों के प्रसिद्ध हास्य-अभिनेता दीक्षित थे, जो हालीउड के प्रसिद्ध हास्य अभिनेता हार्डी के भारतीय प्रतिरूप माने जाते थे। दीक्षित के मित्र बताते हैं कि वे संस्कृत के अच्छे जानकार थे और मनुष्यता तो मानों उनमें कूट-कूटकर भरी थी।

विकलांग बच्ची की खुशी के लिए

बंबई की एक विकलांग बच्ची, जिसके शरीर में स्वर्गीय मुकेश के गानों को सुनकर ही हरकत होती। एक सहृदय अधिकारी को इसका पता लगा, तो उन्होंने मुकेश से अनुरोध किया कि वे अपने व्यस्त समय में से कुछ क्षण निकाल-कर कभी-कभी उस बच्ची को गीत सुना दिया करें। भावुक मुकेश इसके लिए फौरन तैयार हो गये। फिर एक दिन मुकेश ने राजकपूर से बच्ची के पास चलने का आग्रह किया।

राजकपूर ने वायदा निभाया। वे मुकेश के साथ उस बीमार बच्ची के घर गये और काफी देर तक उसका मन बहलाते रहे। ●

शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए

● ज्ञानेन्दु

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों, उन पर चिह्न लगाइए और इसी पृष्ठ से आरंभ उत्तरों से मिलाइए।

१. **अवर्षण**--क. दुःख, ख. वर्ष का अंत, ग. सूखा, घ. अभाव।

२. **निगूढ़**--क. जो मीठा न हो, ख. गहरा, ग. असत्य, घ. रहस्यमय।

३. **मनोहत**--क. सुंदर, ख. निराश, ग. पागल, घ. घायल।

४. **अनिद्र**--क. रोगी, ख. बेचैन, ग. जिसे नींद न आती हो, घ. आलसी।

५. **आर्ष**--क. आदर्श, ख. ऋषि-संबंधी, ग. उच्च, घ. उद्धरण।

६. **पेटार्थी**--क. बहुत खानेवाला, ख. लंबा-चौड़ा, ग. पेट की खातिर सब कुछ करनेवाला, घ. घृणित।

७. **कदाचार**--क. कभी-कभी, ख. बुरा चाल-चलन, ग. अन्याय, घ. अत्याचार।

८. **दाय**--क. बारी, ख. दमन, ग. जिम्मेदारी, घ. पैतृक या किसी संबंधी से प्राप्त होनेवाली संपत्ति, जिसका पानेवालों में बंटवारा हो।

९. **प्रभृति**--क. विद्वान, ख. अधिक, ग. आदि, घ. बली।

१०. **निग्रह**--क. झगड़ा, ख. अवरोध, ग. निराशा, घ. जिद।

११. **गह्वर**--क. गड्ढा, ख. भारी, ग. ढाल, घ. अंधेरा।

उत्तर

१. ग. सूखा, वर्षा का अभाव। **अवर्षण** का प्रभाव अभी तक मौजूद है। (**अनावर्षण** शब्द का भी प्रयोग होता है)।

२. घ. रहस्यमय, अति गुप्त, जो आसानी से समझ में न आ सके। इन **निगूढ़** बातों में मेरी जरा भी रुचि नहीं है।

३. ख. निराश, जिसका दिल टूट गया हो। पराजय से **मनोहत** नहीं होना चाहिए।

४. ग. जिसे नींद न आती हो। चिंताओं ने उसे **अनिद्र** बना दिया है। (सं. **अनिद्रा**)

५. ख. ऋषि-संबंधी, ऋषिकृत। 'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्'—यह आर्ष-

वाणी है।

६. ग. पेट की खातिर सब कुछ करनेवाला, खुदगरज, तुच्छ। **पेटार्थी** का कहीं आदर नहीं होता।

७. ख. बुरा चाल-चलन, बुरा आचरण। **कदाचार** की सर्वत्र निंदा होनी चाहिए। (वि.-कदाचारी)

८. घ. पैतृक या किसी संबंधी से प्राप्त होनेवाली संपत्ति, जिसका पानेवालों में बंटवारा हो। यह **दाय** तो झगड़े की जड़ बन गयी है।

९. ग. आदि, वगैरा। सभा में अनेक विद्वान, कलाकार **प्रभृति** उपस्थित थे।

१०. ख. अवरोध, रोक, बंधन। इच्छाओं के **निग्रह** से ही मन को संतोष प्राप्त होता है।

११. क. गड्ढा, गर्त। तुम्हारी संचेतना किस **गह्वार** में डूब गयी है?

पारिभाषिक शब्द

वीटो = निषेधाधिकार
मोरेटोरियम = अधिस्थगन
डाक्ट्रिन = मत, सिद्धांत
डाइटेटिक्स = आहार-शास्त्र
एक्जीक्यूटिव = कार्यकारी
ऐडमिनिस्ट्रेटिव = प्रशासनिक
कनसाइनमेंट = प्रेषित माल
डिस्पैच = प्रेषण
डिलीवरी = सुपुर्दगी, भुगतान

समस्या-पूर्ति प्रतियोगिता-१०



अपनी ही छाया

परिणाम

प्रथम पुरस्कार

जरा पलटकर देख री पीछे
नीचे गहराई में जल के
जल किरणों से प्रतिबिंबित हो
अपनी ही छाया झलके
रंग बसंती, धूप बसंती
और बसंती सी काया
छुपी नजर से छिपी निरखती
है केवल अपनी ही छाया

—बी. बी. श्रीवास्तव
मसौधा, मोतीनगर, फैजाबाद

द्वितीय पुरस्कार

बिना तुम्हारे प्रियतम अब
खलता एकाकीपन है
कैसे धीरज धरूं?
तुम्हारा मोह मुझे ठगता है
अब तो अपनी ही छाया से
मुझको डर लगता है

—गौरीशंकर वैश्य, 'विनम्र'
प्रधान डाकघर सीतापुर (उ. प्र.)

प्रतिक्रियाएं

नेता बन गये

फरवरी अंक में प्रकाशित लेख 'भारतीय सेना : कुछ गुप्त दस्तावेज' खोजपूर्ण व वास्तविक स्थितियों के चित्रण में पूर्णतः सक्षम रहा। सच पूछा जाए तो हमारे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों ने हर क्षेत्र में अपनी घुसपैठ से गंदगी भर दी है। इसी का दुष्परिणाम है कि प्रशासनिक अधिकारियों का एक वर्ग भी नेता बन गया है।

—सुनीलकुमार ओझा, गोरखपुर

संतोष कहां ?

फरवरी अंक में रामेश बेदी का लेख 'मणिधारी सर्प का रहस्य' पढ़ा। संतोष नहीं हुआ, क्योंकि सांप उतना भयंकर नहीं होता, जितना हम मानते हैं। भारत में सांपों की लगभग २३३ जातियां हैं, जिनमें से ५५ जातियों में कमोबेश विष होता है। इनमें से भी सिर्फ चार तरह के सांप आदमी के लिए घातक होते हैं, वे हैं—नाग, करैत, घोणए और फुरसा।

—चंद्रभूषणप्रसादसिंह 'चन्द्र', कुशी, बिहार

कुछ नहीं कर सकते

जनवरी अंक में 'भारत विभाजन के लिए जिम्मेदार कौन ?' लेख में लेखिका पद्माशा ने अच्छे प्रश्न उठाये हैं। कहना पड़ रहा है कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधी-नेहरू की कमजोरियों के कारण ही देश के टुकड़े हुए। क्रांतिकारी इस तथ्य को मानते हैं कि अंगरेज थोड़ी देर और रुकते, तो एक और जबरदस्त क्रांति होती, तब न पाकिस्तान बनता और न ब्रिटिश पूंजी बच पाती।

—सुधीरबाबू विद्यार्थी, शाहजहांपुर

समस्या आड़े नहीं

आज मैं हिंदी भाषा बोल और लिख सकता हूं। इसका मुख्य कारण है, मेरा 'कादम्बिनी' पढ़ना। महाराष्ट्र में मेरी पढ़ाई हुई। हिंदी बोलना समस्या थी, लेकिन कादम्बिनी का नित्य पठन होने से यह समस्या आड़े नहीं आयी।

खासकर 'शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए' के द्वारा नये-नये शब्दों का ज्ञान प्राप्त होता है। कई मराठी और हिंदी शब्दों में समानता है।

'पारिभाषिक शब्दों' से केवल आंग्ल-भाषा पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं। हिंदी, मराठी और संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी आसानी से चलाया जा सकता है। 'कादम्बिनी' का यह प्रयास अखिल भारतीय भावात्मक-एकता को कायम करने का सही रास्ता होगा। स्व. वि. स. खांडेकरजी (ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त) से एक बार मिला था, तब चर्चा के दौरान वे बोले, "मनुष्य केवल भाकरी (ज्वार की रोटी) पर जीता नहीं, बल्कि बिना भाकरी के रह भी नहीं सकता।" यही भूमिका 'कादम्बिनी' निभा रही है।

—ना. बा. कुलकर्णी, (रंगराव) मुगलसराय

भारत से प्रभावित

हम सभी को पत्रिकाएं पढ़ने का शौक है। इसके लिए मित्रों ने एक मित्र-मंडल बनाया है। जिसमें कई पत्रिकाएं मंगाते हैं। परंतु आप यह सच मानें कि उन सबमें 'कादम्बिनी' का अपना एक अलग ही रंग होता है। 'कादम्बिनी' इसमें में प्रकाशित रचनाएं पढ़कर ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य की अन्य पत्रिकाओं में इस स्तर की सामग्री दुर्लभ है।

फरवरी ८० के अंक में 'स्वस्तिक' के बारे में उपयुक्त जानकारी प्राप्त हुई। लेकिन उसमें लेखक ने भारतीय संदर्भ में विशेष महत्त्व नहीं बताया है। स्वस्तिक मूलतः भारत की देन है। कई देशों की सभ्यता भारत से प्रभावित है।

—सतीशचंद्र दीक्षित, भोपाल

मनुष्य इतना परेशान क्यों ?

'कादम्बिनी' का फरवरी-अंक ज्ञान-विज्ञान एवं मनोरंजन से भरपूर लगा। 'काल-चिंतन' की ये पंक्तियां कि सत्य का उद्भव दर्द से होता है, सत्य का अंत भी एक दर्द है; कटु सत्य यह तो है ही, सार-तत्त्व भी प्रस्तुत करती हैं। मृदुला सिन्हा की 'प्रायश्चित' कहानी में सहज अभिव्यक्ति द्वारा मनोवैज्ञानिक पहलुओं का स्पष्ट विवेचन किया गया है।

—गायत्री सिन्हा, छपरा, मुजफ्फरपुर

श्रद्धांजलि



२२ जनवरी, १९८० को बाल-साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक श्री स्वर्ण-सहोदर का जबलपुर में हृदयावरोध से निधन हो गया। ५० बालोपयोगी कृतियों के रचयिता श्री स्वर्ण-सहोदर को उनकी बाल-साहित्य संबंधी विशिष्ट सेवाओं तथा हिंदी भाषा के विकास-कार्य के उपलक्ष्य में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ ने ५ हजार रुपये से पुरस्कृत किया था, एवं म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन के विदिशा अधिवेशन में उनका अभिनंदन किया गया था।

जनवरी अंक में प्रकाशित 'ऋषि-मुनियों के नामकरण', 'जहां पक्षी आत्महत्या करते हैं' लेख तथा 'सत्य' व 'अंतर्द्वंद्व' कविताएं प्रभावशाली रहीं। 'शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए' और 'आस्था के आयाम' 'कादम्बिनी' के बहुत ही उपयोगी स्तंभ हैं, जिनसे जहां पाठकों को कुछ नया सीखने को मिलता है, वहां प्रेरणा भी मिलती है।

—जगन्नाथ प्रसाद 'जलेश', दमोह

वर्ष २० : अंक ५
मार्च, १९८०

कादम्बिनी

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

स्थायी स्तंभ

मुखपृष्ठ : प्रेम कपूर, अनिल के० दुग्गल

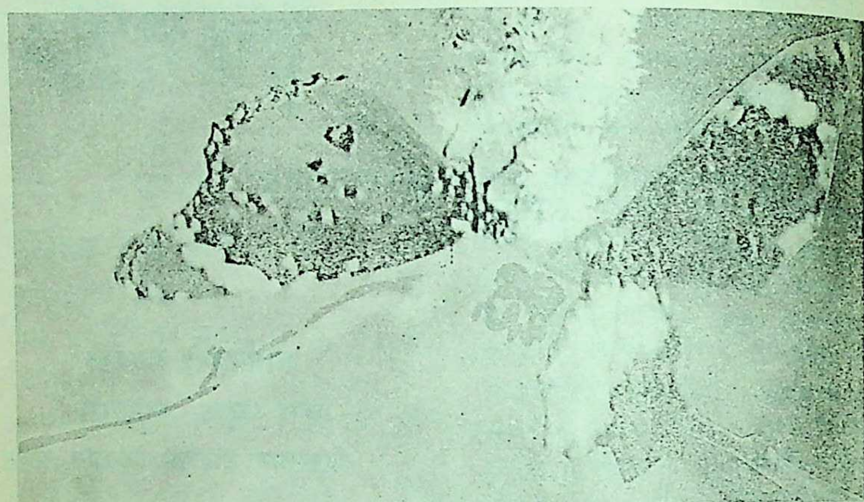
संपादक
राजेन्द्र अवस्थी

कार्यकारी अध्यक्ष
एस. एल. खुराना
हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह

संपादकीय सहयोगी
संयुक्त-संपादक
शीला झुनझुनवाला

सह-संपादक : दुर्गाप्रसाद शुक्ल,
उप-संपादक : प्रभा भारद्वाज, डॉ. जगदीश चंद्रिकेश, भगवतीप्रसाद डोभाल, सुरेश 'नीरव' कामोद प्रसाद, प्रूफ रीडर : स्वामी शरण
चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

काल-चिंतन



--मौसम !

--मौसम तुम्हारा स्वागत है !

--बदलते हुए मुखौटों के बीच साल भर में एक बार ही तो तुम खुलकर सामने आते हो : जैसे हो, ठीक वैसे ही !

--कौन इस तरह खुलकर आने का साहस करता है ? प्रकृति के नैसर्गिक उपादानों को ढकने की आदमी ने कितनी जल्दी कोशिश की और उद्घोष किया कि वह एक 'सभ्यता' को जन्म दे रहा है !

--सभ्यता को जन्म देकर उसने अपने हाथों ही अपने को दूसरों के हवाले कर दिया। उस नादान बच्चे की तरह, जो अंगारे को खिलौना समझकर पकड़ लेता है और फिर दंड का भागीदार बनता है। हमने अपने हाथ-पैर काटकर यदि अपनी निजी स्वतंत्रता को सार्वजनिक बनाकर 'सर्वजन हिताय' कहकर एक क्षण का सुख पाया था, तो जिंदगी भर का दर्द भोगने के लिए भी हमें तैयार रहना चाहिए।

--बाहरी शत्रुओं से लड़ा जा सकता है, जब हम अपने-आपसे शत्रुता मोल ले लेते हैं, तो लड़ाई का कोई बिंदु ही नहीं रह जाता; शेष रहता है दर्द, घुटन और पछतावा।

●

--दूसरों के हवाले हैं हम !

--सभ्यता का कंगारू हमारे ऊपर है, वह जब चाहे हमें भीतर कर सकता है और जब

चाहे निकाल फेंक सकता है बिना समय और मौसम की परवाह किये।

--तब हम रह जाते हैं चमड़े की खोल में मढ़े हुए घेरे! उसका आवरण हमारे अस्तित्व को अपने नाम से विस्फारित करता है।

--कछुए की पीठ हैं हम या तो गेंडे की खाल, या फिर भैंस की बेपरवाह नियामत!

--पूरा शरीर हमारा शंख-जैसा समुद्री कीड़ा है या फिर हम सीप में बंद हैं और इंतजार करते हैं, कोई तो मोती समझकर हमारे आवरण को दस्तक देगा और हमें बाहर निकालेगा।

--सच पूछिए तो हम सब बिके हुए दास हैं --

- बुद्धि के नाम
- संपत्ति के नाम
- समाज के नाम
- धर्म के नाम
- अपने कहे जानेवालों के नाम; या फिर
- एक मजबूर कैद के निवाले!

--हमारा मस्तिष्क निरंतर विद्रोह करता है। कई बार वह बगावत पर उतारू हो जाता है। सहन का दर्द दीवार फांदकर बाहर निकल जाता है, लेकिन फिर दीवार से लगे दलदल में वह फंस जाता है!

--एक अट्टहास.......!

-कहते हैं, जिस आदमी के भीतर जितना दर्द होगा वह उतना ही अधिक अट्टहास करेगा। वह हमेशा हंसमुख नजर आयेगा। और सुखी होने का परिचय देगा। एक विष है शायद जिसे वह पीता रहा है और उसका अभ्यस्त हो गया है! वही विष दूसरों को अमृत दिखायी देता है!

--वह करे भी क्या? पछतावे का प्रतिकार और क्या हो सकता है!

--रोज सुबह हम जीते हैं और हर शाम मरते हैं, लेकिन फिर दूसरी सुबह फिर-फिर जीने के लिए!

--अपने बंद कमरों में योजनाओं के ताने-बाने बुनते हैं और बाहर निकलते ही ज्वालामुखी के शिकार हो जाते हैं। इस चिंतन और टूटन में शेष रह जाता है एक लावा... तो क्या हम सब मात्र एक लावा नहीं हैं?

--हैं!

--अवश्य!

--लावा ही तो, जिसकी ज्वलनशीलता और शक्ति-क्षमता समाप्त हो चुकी है!

--तब भी एक और विडंबना शेष रह जाती है, जैसे कटे हुए हाथ और टूटे हुए पैर-वाले आदमी से कोई जबरन साइकिल चलाने को कहे; और उसे चलाने की नाकाम कोशिश भी करनी पड़े; हमें उसी तरह की कोशिश करनी पड़ती है !

--निर्देशक शक्तियां हैं--हमारे ही बनाये आवरण !

- हमारी ही दी हुई संज्ञा : सभ्यता !
- हमारे ही गौरव-घमंड को पराजित करते हुए उपादान : भौतिक विरासत !
- हमारी विराट प्रगति : विज्ञान !
- हमारी अपार क्षमता : 'पिंडौरा बॉक्स' में बंद कीड़े !

--निरंतर भयग्रस्त हम अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीते हैं !

--अब हम नंगे होकर अपने घर से बाहर नहीं आ सकते, क्योंकि हमने ही आदेश दिया है कि यह अवांछनीय हरकत है !

--समानता, एकरूपता, सम-सामयिकता और समाजवाद को हमने ही पीछे ढकेला है और विकासवाद के नाम पर वास्तव में आदमी और आदमी के बीच 'हीनवाद' पैदा करनेवाला इतना बड़ा उल्का-खंड बन गया है कि अब उससे मुक्ति नहीं है !

--मुक्ति के बहाने हम अपना मन बहला लेते हैं कभी-कभी !

--तो आइए यह मन बहलाने का मौसम है; जितना कुछ उतार सकते हैं, उतार लीजिए; जितना कुछ हंस सकते, हंस लीजिए; आइए तो सही.....गले मिल लें हम--आज ही मिल सकते हैं, कल नहीं..... !

--होली का मौसम और फाग की मस्ती फिर हमारी जिंदगी में आएगी, किसने यह निश्चित प्रमाण-पत्र दिया है !

राजेन्द्र अवस्थी

महाकवि पद्‌माकर के शब्दों में

आई खेलि होरी घरं नवलकिसोरी कहूं, बोरि गई रंगन सुगंधन झकोरं है
कहै पदमाकर इकन्त चलि चौकी चढ़ि, हारन के बारन के फंद बंद छोरं है
घाघरे की घूमनि सुऊरुन दुबीचे दाबि, आंगि हू उतारि सुकुमारी मुख मोरं है
दंतन अधर दाबि दूनरि भई सी चाहि, चौवरि-पचौवरि कं चूनरि निचोरं है

फागुन आयो मन मस्तायो

फागुन आयो मन मस्तायो गैल गलिन में राहन में
रस को सागर सों लहरायो प्यासी प्यासी बांहन में

●

डोलि गई कोऊ चूनरिया रंग बसंती दिख्यो
कोऊ ने रूप पे गीत लिख्यो कोऊ बिन मोल बिक्यो
धूप के गाल पे धरिके अबीरा, कोऊ बुलावत छांहन में

●

केसर की गगरी छलकी आनंद आयो नयो
रंग ने सोयो अंग जगायो अनंग सवायो भयो
चेतन पंख लगाइ उड्यो अरु, चेतना आगई पाहन में

●

देखि लियो मलयानिल कूं गोरी भई तिरछी
स्याने कहे गजगामिनि वाकों तो छोरा कहें बरछी
रूप की मूरत प्रान को मंदिर, जन जन के बिंदराबन में

●

होरी की भीर जुरी जब तें हैं बावरी अंखियां
ग्वालन के संग नाचत गावें आसावरी सखियां
कोऊ नहीं सुख, जो सुख होवै, रंगन के अवगाहन में

——वीरेन्द्र मिश्र

कृष्ण कुंज, तीसरी मंजिल, दादाभाई रोड़,
क्रास ३, विलेपार्ले (पश्चिम), बंबई-५६

नहीं भूलता गुजरा हुआ जमाना

एक चेहरे के भीतर जैसे दूसरा चेहरा भी होता है। वैसे ही एक जिंदगी के भीतर भी दूसरी जिंदगी होती है। उस दूसरी जिंदगी में कभी कुछ ऐसा गुजर जाता है कि भुलाये नहीं भूलता। पढ़िए यहां कुछ विख्यात व्यक्तियों की गुमनाम जिंदगी की वह छिपी हुई दास्तान—यहां वे बड़े मजे से उजागर कर रहे हैं।

कायमगंज बनाम शिकोहाबाद

मेरे क्षुद्र जीवन में कितनी ही ऐसी घटनाएं घटी हैं, जिन्हें मैं नहीं भुला सकता, पर उनमें दो घटनाएं ऐसी हैं, जो मेरे लिए चिर-स्मरणीय हैं। एक घटना सन १४ की है और दूसरी सन ३५ और ४० के बीच की है।

सन १९१४ में मैं फर्रुखाबाद गवर्नमेंट हाई स्कूल में ३० रुपये महीने पर सहायक अध्यापक था। उन दिनों ३० रुपये एक अच्छी रकम मानी जाती थी और मुझ इंटर पास स्कूल मास्टर को उस पर अभिमान भी था। मैं फर्रुखाबाद से फीरोजाबाद का टिकट लेने के लिए स्टेशन पर पहुंचा, तो भीड़ में टिकट की खिड़की पर खड़ा होना अपनी शान के खिलाफ समझकर इंतजार करता रहा। इसलिए टिकट बड़ी देर से मिला और हड़बड़ी में टिकट लेकर प्लेटफार्म पर पहुंचा। वहां दो गाड़ियां खड़ी थीं—

शैशव का भोलापन

अपनी मेज पर बैठा लिखने में व्यस्त था। पास के कमरे में बच्चे खेल रहे थे। सहसा सुनता हूं, मेरे छोटे भाई की पांच वर्षीय बेटी मेरे छह वर्षीय बेटे से कह रही है, "मैं तुमसे शादी करूंगी।"

"कर लेना," मेरे बेटे ने तुरंत उत्तर दिया।

मैं कुछ सोच पाऊं कि आठ वर्षीय बड़ा बेटा तुनककर बोल उठता है, "कर लेना ? कैसे कर लेना ? तू नहीं कर सकता शादी।"

छोटा बेटा भी भड़क उठता है, "क्यों नहीं कर सकता ? मैं करूंगा।"

बड़ा बेटा सहसा बुजुर्ग हो उठा, "देख, पिताजी ने अम्मा से शादी की है न ?"

"हां की है।"

"अम्मा का घर कहां है--इलाहाबाद ! पिताजी यहां दिल्ली में रहते हैं। तभी उनकी शादी हुई। तुम दोनों एक ही जगह रहते हो। तुम्हारी शादी नहीं हो सकती।"

छोटा बेटा जैसे सोच में पड़ गया। दो क्षण सन्नाटा छाया रहा फिर वह मेरी भतीजी से कहता है, "हां, यह शादी नहीं हो सकती ! मैं नहीं करूंगा तुमसे शादी।"

मैं सांस रोके भतीजी की प्रतिक्रिया की राह देखता हूं कि जैसे --तूफान आ जाता है। मेरी भतीजी चीख उठती है, "कैसे नहीं करेगा शादी, तुझे करनी होगी...।" और यह कहते-कहते अपने हाथ के खिलौने को मेरे छोटे बेटे के सिर पर दे मारती है और तीर की तरह भागती चली जाती है।

अब जो मेरी हंसी छूटती है, तब मुझे यह भी पता नहीं रहता कि वे बच्चे भी जोर-जोर से हंस रहे हैं। हंसे जा रहे हैं।

इस घटना के सभी पात्र आज अपनी-अपनी गृहस्थी को लेकर व्यस्त हैं, पर मुझे जब भी इसकी याद आ जाती है, तब खूब हंसता हूं--शैशव के भोलेपन पर।

विष्णु प्रभाकर

(विष्णु प्रभाकर,
सुविख्यात कथाकार)

८१८ कूंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-६

कुछ और चेहरे



'रो तो रही ही नहीं हैं'

मेरा पुत्र विनय दोबारा अमरीका जा रहा था। इस बार शायद वह हमेशा के लिए, वहीं पर बसने के लिए जा रहा था। उसकी विदाई का प्रसंग बहुत ही विषादपूर्ण था।

विदाई देनेवाले हम स्वजनों में अहमदाबाद से आयी मेरी पुत्री का पुत्र आशिष भी था। सात-आठ वर्ष का आशिष इस विषादभरे वातावरण को कौतूहल-पूर्वक देख रहा था।

जब विनय हम सबके पैर छूने के बाद अपनी मां के पैर छूने लगा, तब तो सारा वातावरण इतना बोझिल बन गया कि हम सब रुआंसू हो आये। उसकी मां तो सचमुच ही रो पड़ी.—ऐसा रुदन जो निशब्द था। मां ने पैरों पर झुके विनय को उठाया और आशीर्वाद दिया, लेकिन उसका रुदन जारी रहा। विनय और हम सब देखनेवालों की आंखों में आंसू भी थे।

मेरी अस्सी वर्ष की वृद्धा बहन भी विनय को विदा देने आयी हुई थी। सभी के पैर छूने के बाद विनय ने उनके भी पैर छूए। मेरी बहन ने उसे बीच में ही रोकते हुए अत्यंत प्रेम से कहा, "अरे तू मेरे पैर तो पहले ही छू चुका है बेटा! इस तरह बार-बार पैर नहीं छूते बेटे।"

यह सुनते ही आशिष जोर से बोल पड़ा, "बेटा-बेटा तो कह रही हैं, लेकिन रो तो रही ही नहीं हैं।"

यह सुनते ही हम सबके चेहरे पर हंसी आ गयी, रोते हुए विनय और उसकी मां के चेहरे पर भी।

गुलाबदास ब्रोकर

—३७७, एम० वी० रोड,
विलेपारले, वेस्ट, बंबई—५६

(गुलाबदास ब्रोकर,
सुपरिचित गुजराती कथाकार)



मेरे पिताश्री पद तो भक्ति के रचते थे और भाव-विह्वल होकर उन्हें गाते भी थे, लेकिन कहानियां हंसानेवाली कहते थे। मैं सोते समय माता-पिता--दोनों से कहानियां सुनता था। पिताजी उच्चारण दोष से उत्पन्न एक हास्य-कथा सुनाते थे--लाखन बाबू के तीन पुत्र थे, जिन्हें उन्होंने एक जमींदार के घर नौकर रखवा दिया था। उनमें एक 'स' को 'श', दूसरा 'ख' को 'श' और तीसरा 'स' या 'श' को 'फ' कहता था। मैंने बचपन में यह पूरी कहानी कविता के रूप में ढाल दी थी। कुछ अंश याद हैं--'तीन पुत्र लाखन बाबू के, तीनों बड़े निराले। रूप सभी के अलग-अलग थे, एक रंग थे--काले।' जमींदार के पहले नौकर ने पैर दबाते हुए एक कहानी शुरू की,--'शांत शमंदर पार एक शाधू पाले थे शांप।'

जमींदार ने घबड़ाकर कहा--'हद्द हो गयी, कथा न कहिए, चुप ही रहिए आप।'

सुबह उठते जमींदार की वार्त्ता दूसरे भाई से यों हुई--'जमींदार ने कहा, अरे मेरा पदत्राण किधर है।' दूसरे भाई ने उत्तर दिया--"हाय, आपकी तो शड़ाऊं की शूंटी गयी उशड़ है।'

इतने में तीसरे भाई ने बाहर से आकर कहा--'फुक्कर को फिवफंकर बाबू के घर पर फरकार! फतनारायण की पूजा है आये लिए हंकार। उनके फाले फंभुफरणजी पहने फंडो गंजी, अभी आपफे मांग रहे हैं एक बड़ी फतरंजी।'

यह काव्य-कथा सुनकर बचपन में मेरे दोनों बच्चे--अभिताभ (आई. ए. एस.) और अनामिका (कथा-लेखिका और कवयित्री) बहुत दिनों तक मेरे मित्रों से हंस-हंसकर यह कहते थे कि 'मेरे पिताजी फुफता (मेरे गांव का नाम) के फयामनंदन किफोर हैं।' आज भी जब मैं होली में अपने गांव जाता हूं, तब सभी मुझे इसी नाम से याद करते हैं।

(डॉ. श्यामनंदन किशोर,
कवि, आलोचक, शिक्षाविद--)

--अनिकेत, मुजफ्फरपुर--२ (बिहार)

बेटा ! खून सस्ता और नमक महंगा

चुनाव की गरमी ने लू का रूप ले लिया था। १२ दिसंबर, ७९ की शाम। भागलपुर जिला। सुलतानगंज प्रखंड से कुछ ही दूरी पर स्थित अब्जूगंज कस्बा। मैं जोर-शोर से आमसभा में स्थायी और स्वच्छ शासन के लिए वकालत कर रहा था। तालियां बज रही थीं, तब मुझे लगा कि मैंने बाजी मार ली। तभी कोने से एक हीरोनुमा नौजवान ने कहा, "हों हों इंदिरा गांधी को वोट दो, फिर कभी चुनाव नहीं होगा।" मैं इसका जवाब देने की सोच ही रहा था कि दूसरे कोने पर चिथड़े में लिपटा एक बूढ़ा खांसते-खांसते बोला, "हों हों, इंदिरा गांधी को मत वोट दो, तो साले-साल (हर साल) चुनाव का ही जश्न मनाना।"

२५ दिसंबर को पीरपैंती से सात मील दूर गंगा नदी के एक दियारे पर खवासपुर नामक ग्राम में मैं ग्रामीणों से मत देने का आग्रह कर रहा था। चीजों के पहले और उस समय के दामों पर मेरी फिलासफी और आंकड़ों के अंबार से लोग उदासीन लग रहे थे। तभी बगल के खेत में घास काटती एक बुढ़िया ने कहा, "हां बेटा, अब तो खून सस्ता और नमक महंगा।" भीड़ की नजर उसकी तरफ उठ गयी। खून और नमक ने मेरी बात को साफ-साफ कर दिया था।

३ जनवरी, १९८०। भागलपुर शहर से सटा हुआ देहाती क्षेत्र। कांग्रेस कार्यकर्त्ता लोगों को विश्वास दिला रहे थे कि कांग्रेस (आई) का शासन आते ही सरसों का तेल आठ रुपये किलो मिलने लगा। इसी प्रकार चावल, गेहूं, सूजी और फलों के दाम भी गिरने लगेंगे। जब 'सुमन' अपनी बात के अंतिम छोर पर था, और काफी चीजों के नाम गिना चुका था, तभी एक जूते सी रहे मोची ने पुकारकर कहा, "बाबूजी ! सभी चीजें अपने पेट के लिए रख लो। सिर्फ 'प्याज' हम गरीबों के लिए छोड़ देना। अब तो प्याज-रोटी भी दूभर हो गयी है।" "सुना था, 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' की कीमत में समानता थीं; मगर इस राज में सेव चार रुपये किलो और प्याज छह रुपये किलो।" यह व्यंग बगल में खड़े एक शिक्षक ने कसा।

भागलपुर शहर में नये साल के दिन नयी प्याज (सागवाली) दस रुपये किलो बिकी थी और सेब चार रुपये।

भा. झा आजाद

(भगवत झा आजाद)
लेखक एवं सांसद)

—७, अशोक रोड,
नयी दिल्ली-११०००१

अब वो रंगीनियां कहां संसद में

उम्र का एक अरसा गुजर चुका है फिर भी जीवन के कुछ लम्हे हमेशा ही हरे-भरे रहते हैं और हरी-भरी पगडंडियां भी बनाते हैं। ऐसा ही एक क्षण १९५८ में लोकसभा में बीता था, जिसकी याद अब तक मुझे हंसा जाती है।

मैं वित्त उपमंत्री की हैसियत से मंत्रि-मंडल के सदस्यों के बैठने की जो जगह होती है, वहां बैठी हुई थी। लोकसभा में वित्त-विधेयक पर बहस हो रही थी।

मोरारजी भाई वित्त-मंत्री थे और बलीराम भगत वित्त-विभाग में मेरे एक सहयोगी। तीन दिन तक वित्त-विधेयक पर लगातार बहस हो चुकी थी। और बहस का चौथा दिन था। भगतजी और मैं करीब-करीब थक से गये थे, क्योंकि मोरारजी भाई खुद तो लोकसभा के सदन में दिन भर बैठा ही करते थे, अपने उप-मंत्रियों पर भी कड़ी निगरानी रखते थे कि हम सदन से उठकर बाहर न जाने पायें। ठीक स्कूल के कोई बड़े हेड-मास्टर की तरह जिसके प्रति विद्यार्थियों में आदर तो होता ही है, पर साथ ही, कुछ भय भी होता है। ऐसा ही कुछ रिश्ता हम दोनों उपमंत्रियों का, हमारे वित्त-मंत्री के साथ था। मोरारजी भाई की निगरानी से निकलना बहुत मुश्किल था। जब भी उठने की कोशिश करते मोरारजी भाई पीछे मुड़कर एकदम से कह देते थे, "वित्त-विधेयक पर इतनी अहम बहस चल रही है, और तुम लोग गपशप करने के लिए सेंट्रल हाल में पहुंचना चाहते हो।"

हम चुपचाप बैठ जाते। समझ में नहीं आता कि कैसे बाहर निकलें। तब तक भाई सतीशजी, जो उद्योग-विभाग के उपमंत्री थे, कक्ष में आये और आकर श्री जयसुखलाल हाथी के निकट बैठ गये। मैंने अपने बेंच पर बैठे-बैठे सतीशजी का मुसकराकर अभिवादन किया और इशारे से कहा कि बड़ी बोरियत हो रही है।

तभी जवाहरलालजी प्रधान-मंत्री की जगह से उठकर मोरारजी भाई के पास आकर बातें करने लगे। उसी वक्त सतीश-जी ने इशारा किया कि हाथीजी के द्वारा एक कागज का पुर्जा भिजवा रहे हैं। मेरे देखते-देखते उन्होंने हाथीजी को कागज का पुर्जा दिया भी। मैंने यह भी देखा कि हाथीजी के साथ उनकी कुछ गुफ्तगू भी हो रही थी। लेकिन शायद, हाथीजी ने सतीशजी की बात नहीं समझी कि पुर्जा मेरे लिए था। उन्होंने उस कागज को जवाहरलालजी की ओर बढ़ा दिया।

नेहरूजी के हाथ में पुर्जा जाते ही सतीशजी का रंग फीका हो गया। मैं स्वयं भी घबरा गयी कि न जाने क्या लिख दिया है उन्होंने। मैं सिटपिटायी हुई इस बात का इंतजार करने लगी कि देखूं पंडितजी क्या करते हैं। पंडितजी ने नजरों

के कोनों से एक झलक हमें देखा और हमें सुनाते हुए मोरारजी भाई से यह कहा कि "मोरारजी, यह मेरा तो हो नहीं सकता शायद, यह फिक़रा तुम्हारे डिप्टी मिनिस्टर के लिए लिखा गया है। तुम्हीं अपने हाथ से तारकेश्वरी को दे दो।" मोरारजी भाई ने उसको पढ़ा, अपनी टोपी सीधी की और बनावटी गुस्से की शक्ल बनाते हुए, मुझसे कहा कि, "क्या यही वित्त-विधेयक की बहस को ध्यान से सुनने का तरीका है? खैर पढ़ लो, तुम्हारे लिए क्या लिखा हुआ है।" मैं घबरायी, सहमी-सी उस पुर्जे को हाथ में लेकर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

इस जज़्बये-दिल के बारे में
एक मशविरा तुमसे लेता हूं
उस वक्त मुझे क्या लाजिम है,
जब तुम पे मेरा दिल आ जाए

पढ़कर मैंने भी नजर छिपाकर देखा कि जवाहरलालजी टेढ़ी गरदन कर हमारी तरफ इशारा कर के मुसकुरा रहे थे और मोरारजी भाई अपनी पीठ और सीधी कर, सदन को ऐसा महसूस करा रहे थे कि जैसे बहुत गुस्से में हों। पंडितजी की अदा तो बड़ी स्वाभाविक मालूम हुई पर मोरारजी भाई की उतनी ही अस्वाभाविक। मुझे भी अकसर शरारत सूझ जाया करती है। और अपनी शरारती नोंकझोंक के लिए बदनाम भी हूं। मैंने पंडितजी को सुनाते हुए मोरारजी भाई से कहा, "मोरारजी भाई, किसी का दिल किसी पर मचल जाए तो क्या ऐलान करके तय होगा? दिल के मचलने का वक्त वित्त-विधेयक खतम होने के बाद ही आये, यह हमारे संविधान में कहां लिखा हुआ है?"

मोरारजी भाई के बोलने से पहले ही, पंडितजी ने स्पीकर की नजर बचाकर एक मुक्का मेरे कंधों पर लगाया और कहा, "शाबाश तारकेश्वरी, मैं देख रहा हूं कि मोरारजी को तुम पत्थर से इंसान बनाने में लगी हो।" और फिर मोरारजी भाई की तरफ मुखातिब होकर कहा, "सच कहो मोरारजी भाई, तारकेश्वरी की बात तुम्हें अच्छी लगी कि नहीं। देखो—भाई, बनावटी जवाब मत देना, सच कहना।" और मोरारजी भाई ने बड़े जोरों से हंसते हुए पंडितजी से कहा था, "मेरी मंत्री बहुत नटखट है और कभी-कभी बड़े गैर-जिम्मेदारी के काम करती है।" और मैंने एकदम से जवाब दिया कि "मोरारजी भाई! मैं भी एक दिल ले के आयी हूं, मुझको भी एक गुनाह का हक है।" संसद के कई सदस्यों का ध्यान वित्त-विधेयक से हटकर हमारी उस गुफ्तगू की तरफ खिंच आया था।

तभी एक विरोधी नेता ने उठकर टोक दिया और कहा, "हमारे प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री और दोनों उपमंत्रियों के बीच क्या 'रोमांस' हो रहा है। यह सुनते ही जवाहरलालजी झट से उठकर अपनी सीट पर चले गये, मोरारजी भाई गंभीर हो गये, मैं शरमाकर सिमट गयी और बली-

राम भगतजी 'चाईनीज लाफिंग बुद्धा' की तसवीर बन गये।

उसके बाद मैं बार-बार सेंट्रल हाल भी गयी हूं, संसद में भी गयी हूं, परंतु अब न वह गूंज मिली है, न वह वाता-वरण मिला है, न वह रवानी मिली है, और न वह मासूमियत दिखायी पड़ी है। जवाहरलालजी नहीं रहे, मोरारजी भाई बहुत बदले हुए नजर आये। न सतीश संसद में हैं, न मैं संसद में हूं। और कभी सदन की दर्शक-दीर्घा में बैठी भी हूं, तब ऐसा महसूस किया है, जैसे सदन और सेंट्रल हाल दोनों बदल गये हैं। मोरारजी भाई को प्रधान-मंत्री के रूप में एक बार देखा था, उसी समय 'जोश' का एक शेर याद आ गया— **आंखों के खेल खेले हैं,**

पी है और पिलायी है
अब वो रंगीनियां कहां या रब,
अब तो तू है, तेरा देसाई है

बी-१६, एन. डी. एस. ई. पार्ट-२,
नयी दिल्ली-११००४९

तारकेश्वरी सिन्हा
(महामंत्री, कांग्रेस–अर्स)

सबसे अच्छी धुन

'आकाशवाणी' के इंदौर केंद्र पर 'स्क्रिप्ट रायटर' के कार्यकाल (१९६०–६२) में प्रसारण संबंधी बहुत-सा लेखन मुझे करना पड़ता था। एक गीतकार होने के नाते विशेष रूप से संगीत-विभाग की ओर से प्रायः मेरे गीतों की मांग बढ़ रही थी, क्योंकि, गायकों को औरों की तरह साहित्यिक गीत-संग्रहों की रचनाएं देने की अपेक्षा संगीत की दृष्टि से उपयोगी रचनाएं अलग से लिखकर या प्रदत्त धुनों पर लिखकर देने के लिए मैं सुपरिचित था।

हुआ यह कि 'आकाशवाणी', इंदौर के एक संगीत-सर्जक महोदय को मेरे एक संगीत-रूपक के अंतर्गत निहित पांच गानों की धुनें बनाने को दी गयीं। गीतों के साथ ही प्रारंभ में ही एक सूची भी सुविधा की दृष्टि से संलग्न कर दी गयी।

एक सप्ताह बाद धुनों सहित संगीतकार महोदय मुझसे मिले और धुनें सुनाने लगे। वे तल्लीन थे और मैं चकित ! उन्होंने सूची को प्रथम गीत समझकर उसकी भी धुन बना डाली थी। मैंने उन्हें समझाने की बड़ी कोशिश की, पर वे तो नितांत दृढ़ थे और कह रहे थे, "सबसे अच्छी धुन तो इसी गीत की बनी है। वाह साहब, इसे कैसे हटा दूं !"

—कृष्णकुंज, तीसरी मंजिल, दादा भाई नौरोजी रोड, क्रास, विलेपारले, बंबई-५६

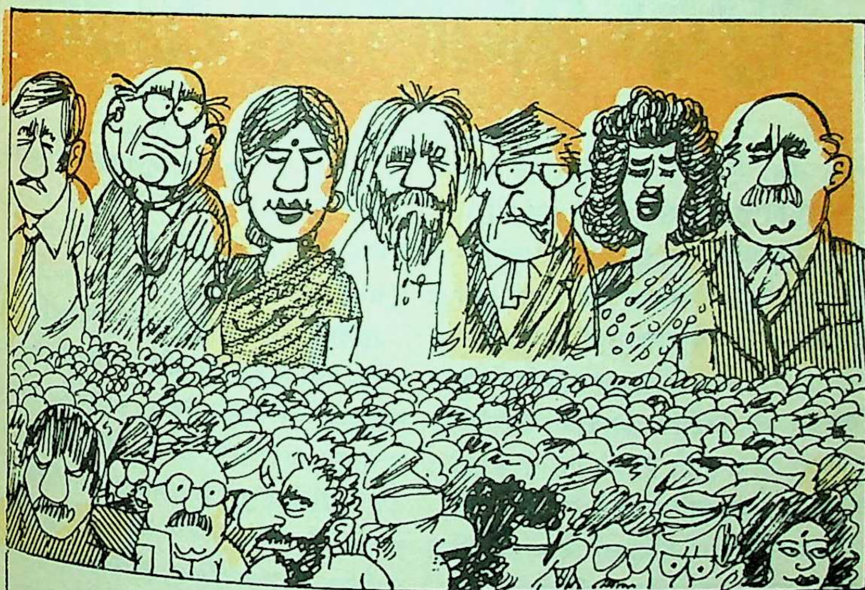
(वीरेन्द्र मिश्र,
सुप्रसिद्ध गीतकार)

मार्च, १९८०


होली है!







बुद्धिजीवी और बंद कमरे !



किसी भी देश की संस्कृति, समाज-व्यवस्था, सभ्यता, शालीनता, अभिव्यक्ति, नीति और आदर्श इत्यादि के यथार्थ मापदंड का माध्यम साहित्य ही है। विश्व के सदन में किसी भी देश का साहित्य ही उसका सही परिचय-पत्र है।

निहित अतीत और जीवन-पद्धति साहित्य के भीतर ही तो निहित है, उस देश का अतीत—और उसकी जीवन पद्धति। वही अतीत जिसकी बुनियाद पर वर्तमान का प्रासाद खड़ा है। अतीत के इस दर्शन से ही हमें पता लगता है कि हमारी संस्कृति एवं समग्र भारत-दर्शन की

एक अपरिचित व्यथा

● आशापूर्णा देवी

समाज में लेखक का एक विशिष्ट स्थान है और समाज को लेखकों से अनेक अपेक्षाएं भी हैं। सृजनशील साहित्यकारों के बारे में प्रयास करने का अर्थ है, मानव-समाज के विकास के लिए प्रयास करना। लेखक यदि समस्याओं से मुक्त होता है, और निश्चित भाव से लेखकीय सुविधाएं प्राप्त होती हैं, तो यह न केवल लेखक के लिए बल्कि देश के लिए भी लाभप्रद होगा। 'साहित्य' देश को ही नहीं, संपूर्ण मानव समाज की संपत्ति का प्रतीक है।

चिंतन-धारा का मूल स्रोत एवं दर्शन एक है।

इसीलिए साहित्य के मूल्य क्षणिक नहीं, बल्कि शाश्वत और कालजयी हैं। साहित्य अतीत की रक्षा करता है, वर्तमान को धारण करता है, तथा भविष्य का निर्माण करता है। वर्तमान को धारण करता है; मैं इसलिए बोल रही हूं कि साहित्य समसामयिक जीवन-धारा का निर्धारण भी करता है।

मान लीजिए कि हमें जीवन में सारी भौतिक सुविधाएं प्राप्त हैं और यदि काव्य और संगीत जो आंतरिक जीवन के लिए आवश्यक हैं, का अभाव है, तो क्या हमारा जीवन असहनीय बोझ नहीं हो जाएगा ?

साहित्य जीवन-रूपी बोझ को संबल प्रदान करता है, और मनुष्य को आनंद की अनुभूति के उस संसार में ले जाता है जहां सुख और उपलब्धि है । रूप-रस-गंध का जहां स्पर्श है और जहां स्पंदन भी है । साहित्य की शक्ति असीमित है ।

दाहरण है । यों हमारे देश में समाज सो सद्‌बुद्धि से और कुछ कुशाग्र महिलाओं है प्रयास से थोड़ी-बहुत सुविधाओं का ज्वार :र नारी-समाज को मिला । किंतु की प्रेरणा शिक्षित महिलाएं कितनी हैं ? सृजन पाठकेश में दो लाख महिलाएं स्थापित करता हुपाय हैं । न केवल नारी

लेखक अपने लेअनगिनत मनुष्य भी वीय संवेदना को, या प्रकृतिऔर प्रवंचित व्यक्त करता है, वह देश के किसी भी कोने में बैठकर लिखा जाए, संसार के सभी मनुष्यों के लिए समान होता है । व्याकुल पाठक सहज ही यह सोचने लगता है कि

कौन जानता है, इस निर्लज्ज स्वार्थपरक, क्षमतावान लोगों की पृथ्वी में इस प्रकार का आदर्श समाज स्थापित हो सकेगा या नहीं ? फिर भी आशावादी और आस्थावादी साहित्यकार अपनी लेखनी से इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते रहेंगे ।

आत्मा का दिव्य प्रकाश

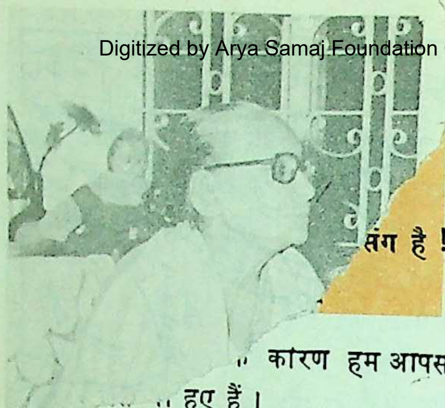
हृदय में जब उपलब्धि की अनुभूति होती है तब उसकी संपूर्णता में वह दूसरे को भी सम्मिलित करता है । समवेत उपलब्धि का यह परिणाम ही साहित्य है । आत्मा के इस दिव्य-प्रकाश में ही अनुभूति का विकास होता है। इसी संदर्भ में किसी कवि ने लिखा है—

जो बात कभी सुनी नहीं
वह बोल रहा हूं
एक अपरिचित व्यथा भीतर जागी है
जो संवाद लाया हूं किसे सुनाना है ?

लेखक ने जो कुछ भी लिखा है, वह पाठक का ही दर्द है, जिससे वह निरंतर महसूस करता रहा है । और उसे विस्मय होता है, यह देखकर कि जिस दर्द को वह अभि-व्यक्त नहीं कर पा रहा था, उसे लेखक ने किस प्रकार अपनी लेखनी से व्यक्त कर दिया । यही है साहित्य की यथार्थ शक्ति ।

भाषा : सभ्यता का प्रथम आविष्कार

मानव सभ्यता का प्रथम आविष्कारक है —भाषा । भाषा, जिसके माध्यम से वह आंतरिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता



... कारण हम आपस ... हुए हैं।

आज के समाज में नव मूल्यों की स्थापना का ज्वार-सा आ गया है। नये मूल्य-बोध उत्पन्न हो रहे हैं, पुरानी सभ्यता, पुराने मुल्य, पुराने आदर्श, पुरानी आस्थाएं, पुराने विश्वास इन सबसे मनुष्य जकड़े रहना नहीं चाहता है।

निषेधात्मक दर्शन से घिरा समाज

समाज एक निषेधात्मक दर्शन से घिरा हुआ है। समाज में शांति नहीं है, स्वस्ति, निरापदता, भविष्य के प्रति आस्था तथा न्याय के प्रति विश्वास दिखायी नहीं दे रहा है। और इसी 'नहीं' की लंबी जमीन का निवासी होकर रह गया है, आज का आदमी। इन सब कारकों का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा है। निराशा की मलिनता और विद्रोह की ज्वाला साहित्य की प्रत्येक विधा में, चाहे वह कविता हो या कहानी, दृष्टिगत हो रही है। भारत में जितनी भी भाषाएं हैं, उन सबके साहित्य नवमूल्यों के प्रति चिंतित हैं, और वे बड़ी तेजी से आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। हर भाषा की अपनी सीमाएं है। यदि हम इन सीमाओं को पार कर दूसरी भाषा में झांके, तो उसमें भी यही सब बात दिखायी देंगी। अफसोस! हम अपनी आंचलिक साहित्यिक-गतिविधियों के प्रति उदासीन रहते हैं। हम यह नहीं जान पाते हैं कि हमारे निकट में ही क्या हो रहा है, कौन-सी आंचलिक भाषा में ... हो रही है?

आज की सबसे बड़ी जरूरत है, विभिन्न आंचलिक भाषाओं को समझने की कोशिश करना, ताकि हमें यह बात ज्ञात रहे कि ... भाषाओं में क्या कुछ लिखा जा रहा है। यह कार्य अनुवाद के माध्यम से भी किया जा सकता है। इसमें सभी आंचलिक भाषाएं परस्पर निकट आ सकती हैं। ... भी संभव है कि जब भाषा के स्तर पर हम परस्पर एक-दूसरे को समझ लेंगे तब ... की दृष्टि, असहिष्णुता का भाव ... लंबे समय से चली आ रहीं गलतफहमियां दूर हो जाएंगी।

नयी हवाओं के कितने ही प्र... यहां आये, परंतु दर्शन, संस्कृति, ... विश्वास तथा निष्ठा सदैव हमारी एक... ही रही हैं। हम सब संस्कृति के एक ... सूत्र में बंधे हुए हैं। हमारे तीर्थ-स्थान ... की चारों दिशाओं में फैले हुए हैं। ... नागरिक हर मौसम में इन तीर्थ-स्थानों की यात्राएं करता है। इसी में हमें भा... की विशिष्ट संस्कृति 'विभिन्नता में एकता' के दर्शन देखने को मिलते हैं। ... विशिष्ट बात और है। आंचलिक भाषाओं ...

का भारतीय भाषाओं में ही अनुवाद करना पर्याप्त नहीं है, हमें उनका अनुवाद अंगरेजी भाषा में भी करना होगा।

लेखक और पाठक का सेतुबंध

लेखक और पाठक के बीच सेतुबंध का कार्य करने वाला है—पत्रिका का संपादक या प्रकाशक। कुछ लोगों को छोड़कर अधिकांश व्यक्ति इस क्षेत्र में व्यावसायिक दृष्टिकोण लेकर ही आते हैं। इसलिए साहित्य को भी इन लोगों ने व्यवसाय का एक माध्यम बना लिया है। लेखकों को यह लाभ नहीं मिल पाता।

यह सत्य है कि प्रतिभा अपना मार्ग स्वयं बनाती है। लेकिन इस युग में अब इतनी सचाई नहीं रह गयी है। यह युग प्रतियोगिता तथा सुविधावाद का है। संपादकों एवं प्रकाशकों ने भी इसी सुविधावाद का मार्ग अपनाया है। जिन प्रसिद्ध साहित्यकों की रचनाएं बाजार में अच्छी तरह बिकती हैं और जिन्हें वे आंखें बंद करके प्रेस में भेज सकते हैं, केवल उन्हीं लोगों को छापने में ये लोग ज्यादा व्यस्त रहते हैं।

जब कभी मैं ग्रामीण एवं पिछड़े अंचलों के नवोदित रचनाकारों के निराश चेहरे देखती हूं तब मुझे बहुत पीड़ा होती है। साथ ही साथ मुझे यह भी अनुभव होता है कि यदि उन्हें उचित सुविधाएं मिलतीं तो साहित्य के क्षेत्र में यह अपनी प्रतिभा का प्रमाण दे सकते थे। हमारे देश में नारी-जगत इस बात का सटीक उदाहरण है। यों हमारे देश में समाज की सद्बुद्धि से और कुछ कुशाग्र महिलाओं के प्रयास से थोड़ी-बहुत सुविधाओं का अधिकार नारी-समाज को मिला। किंतु आज भी शिक्षित महिलाएं कितनी हैं? अभी भी देश में दो लाख महिलाएं असहाय एवं निरुपाय हैं। न केवल नारी समाज ही नहीं बल्कि अनगिनत मनुष्य भी इस संसार से वंचित शोषित और प्रवंचित हैं।

मानव होते हुए भी वे मनुष्य के आदर्श कोटि के अंतर्गत नहीं आते क्योंकि करोड़ों लोगों का जीवन चंद सामर्थ्यवान लोगों की लोभ-लालसा की आहुति मात्र है।

कवि व साहित्यकार सदैव इसी वैषम्य और अन्याय के विरुद्ध लड़ते आये हैं। उन्हें प्रतीक्षा है भविष्य के एक उज्ज्वल समाज की, जिस समाज में हर मनुष्य को मानवोचित अधिकार मिलेंगे।

कौन जानता है इस निर्लज्ज, स्वार्थपरक, क्षमतावान लोगों की पृथ्वी में इस प्रकार का आदर्श समाज स्थापित हो सकेगा या नहीं? फिर भी आशावादी और आस्था-वादी साहित्यकार अपनी लेखनी से इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते रहेंगे।

—१७ कानूनगो पार्क,
पोस्ट गड़िया, २४-परगना
पश्चिम बंगाल

हम आपकी भी कहानी छापेंगे !

इसके लिए जरूरी नहीं कि आप कहानीकार हों। आपके जीवन में कोई ऐसी घटना अवश्य घटी होगी, जो भुलाये नहीं भूलती। यह घटना कैसी भी हो सकती है, जीवन में घटित कोई नाटकीय प्रसंग, सैर-सपाटे के दौरान हुआ दिलचस्प अनुभव या वह क्षण जब कोई दुर्घटना घटते-घटते टल गयी।

'कहानी' दो सौ शब्दों से बड़ी न हो। प्रत्येक प्रकाशित रचना पर २५ रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा। कोई भी रचना वापस नहीं की जाएगी, इसलिए रचना की एक प्रति आप अपने पास रख लीजिए।

रचना भेजने का पता, संपादक आपकी कहानी 'कादम्बिनी', हिंदुस्तान टाइम्स, नयी दिल्ली--११०००१ अंतिम तिथि-- १० मार्च

आगामी अंक में

- स्वर्ग में जीने के लिए वे वहां मरने जाते हैं
- राजनीति कृषि-व्यवस्था का विनाश करती है
- रामकथा के विविध आयाम

साथ ही रोचक कहानियां ● भावभीनी कविताएं
और एक से एक बढ़कर सभी स्थायी स्तंभ

इस अंक में प्रस्तुत है संग्रहणीय
उत्तरप्रदेश परिशिष्ट

अखिल भारतीय गीत-गजल प्रतियोगिता
परिणाम अगले अंक में

'कादम्बिनी' पढ़िए : समय के साथ चलिए

हास्य का रंग आज भी गालिब है!

● भास्कर दुबे

बहुत पहले ग्रीस में आर्कीलोकस हुआ, जो हास्य का पंडित माना गया। उसके पश्चात साइमोनाइडस, अमोरधस और हिपोनेक्स ने भी व्यंग्य लिखे। ईसा से पूर्व (५८०-५६२) सुसारिअन नामक ग्रीक ने रंगमंच पर फूहड़ मजाक और गंवारू व्यंग्य पेश कराने आरंभ किये। रोमन-काल (१४८-१०३ ईसा से पूर्व) में सर्वप्रथम हास्य-लेखक गेअस लूसीलस हुआ, फिर जूवीनेल, मार्शियल अप्यूलियस और पैट्रोनियस। स्क्यूरे और मोरिओंस मध्यकालीन 'वफून' (विदूषक) की भांति दरबारों में आने लगे।

मेक्सिको- विजय के उपरांत मोंटीजूमा के दरबार में विदूषक अक्सर विकलांग होते थे। उनकी वेशभूषा भी अलग होती थी—मुंड़ा हुआ सर, रंग-बिरंगे वस्त्र, फंसी हुई 'ब्रीचिज', एक पांव का पायता दूसरे रंग का, सर पर बड़ा टोप, जैसा कि धर्म-पुजारी पहनते थे, और जो लटककर सीने और कंधे पर झूलने लगता, टोपे में टंके हुए कपड़े के गधे-जैसे कान। हाथ में डंडा, जिसमें एक बड़ा गुब्बारा लटका रहता था। कोई-कोई विदूषक पेटीकोट या झगला भी पहनते थे।

लगभग सभी देशों के दरबार में विदूषक रखने की प्रथा थी। नाटकों में भी विदूषक भाग लेते थे। चीन के प्रमुख हास्य-नाटक 'पो पा की' (बीणा की





कहानी) चौदहवीं सदी में खेला गया, जिसके लेखक थे—काओ टौंग किया।

फ्रांस के प्रख्यात लेखक मेस्ट्रे पियरे पैटेलिन ने जन-जीवन पर हास्य लिखे, जो १४७० में बहुचर्चित हुए। पश्चिमी देशों के दरबारों में 'कोर्ट जेस्टर' (विदूषक) रखे जाते थे, जिनका काम ही राजा को हंसाना होता था। अक्सर ये विदूषक राजा को खाना खाते समय भी हंसाने की चेष्टा करते रहते थे क्योंकि ऐसा विश्वास था कि हंसना पाचन-क्रिया के लिए बहुत लाभदायक होता है।

इटली के अंदर राज-दरबारों और गिरजाघरों में 'फार्स' (प्रहसन) खेले जाते थे, जिन्हें 'फार्स स्पिरिचुअली' कहा जाता था। इटली में ही 'मास्क कामेडी' (बनावटी वेश के सुखांत नाटक) का जन्म हुआ। जिनका विधिवत अभिनय सन १५०२-४२ में पदुआ निवासी ए. बोअल्को ने प्रारंभ किया। बोअल्को स्वयं को 'रूजांटे' कहता था, जिसका अर्थ होता है 'जोकर।'

स्पेन में डी ला क्रूज की हास्य-रचना 'सेंटीज' बहुत मशहूर रही। फिर सर्वेंटीज के 'डोने विर्वक्लोट' ने मान्यता पायी।

जरमनी के सम्राट रूडोल्फ ऑव हैब्सबर्ग के दरबार में फैफ कैपाडोक्स नाम का विदूषक था। मैक्सीमिलन के दरबार में कुंज वान डेर रोजन नामक विदूषक रहता था। इंग्लैंड में ऐडमंड आइरनसाइड के दरबार में हिटार्ड 'कोर्ट फूल' यानी हिटार्ड नामक 'दरबारी बेवकूफ' रहता था। चार्ल्स प्रथम के दरबार में 'मकल जान' नाम का विदूषक रहता था, जो संभवत: आखिरी दरबारी-विदूषक था।

ईसाई धर्म-गुरु जो स्वभाव से ही धीर-गंभीर होते थे, वे भी साल में एक

दिन 'नान सीरियस' होते । हर १४ जनवरी को बिओवस में एक उत्सव मनाया जाता, जिसे 'फीस्ट ऑव दि फूल्स' (मूर्खों का उत्सव) कहा जाता था। इसी से संबद्ध 'फीस्ट ऑव दि ऐस' (गधे का उत्सव) भी मनाया जाता था। इस उत्सव में एक गधे पर मखमली जरदोजी की झूल डाली जाती। शहर की सबसे सुंदर लड़की को इस गधे पर बैठाया जाता और उसके हाथ में एक छोटा बच्चा या गुड़िया दे दी जाती। जलूस शहर भर में घूमता हुआ बड़े गिरजे पहुंचता, जहां उसका स्वागत पादरीगण करते। लड़की को गधे से उतारते वक्त गीत गाते और साथ में गधे की बोली—'हीं...हीं' भी बोलते, जिसे दर्शक भी तीन बार दोहराते। इसके पश्चात एक लड़का 'बिशप' बनता और चर्च की परंपरा का 'फार्स' होता। चर्च संगीत की पैरोडी गायी जाती, जिसमें अश्लील गाने भी होते थे।

भारत में व्यंग्य की पैनी धार!

यद्यपि स्वर्ण-युग (गुप्तकाल) में वैसे तो भारतीय कला चरम सीमा पर पहुंच गयी थी, लेकिन कहीं भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि गुप्त राज-दरबार में विदूषक रखे जाते थे। नाटक, प्रहसन, तमाशे, मेले आदि हुआ करते थे। संस्कृत के प्रख्यात नाटकों में विदूषक हुआ करते थे। मास के 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' और 'स्वप्नवासवदत्ता' के विदूषक वसंतक, शूद्रक के 'मृच्छकटिक' का मैत्रेय, कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' का गौतम, 'विक्रमोर्वशीय' का माणवक और 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का माढव्य, इन्हें कौन भूल सकता है?

मुस्लिम कालीन दरबारों में विदूषक होता था, पर तब तक हास्य-व्यंग्य का स्तर इतना बदल चुका था कि कल का सिद्ध विदूषक केवल भांड बनकर रह गया। जलाल्लुद्दीन खिलजी के दरबार में भांडों ने उसी की नकल उतारी थी और बजाय नाराज होने के बादशाह ने उन्हें इनाम-इकराम दिया। मुहम्मद हुसैन 'आजाद' ने अपनी किताब 'अकबरी दरबार' में राजा बीरबल का जिक्र करते हुए लिखा, 'राजा बीरबल का असली नाम राजा महेशदास था और वे जाति के भाट ब्राह्मण थे। बीरबल दो हजारी मनसबदार थे पर उन्हें लाखों का इनाम मिल जाता था। अकबर के नाम के साथ बीरबल का नाम उसी तरह आता है, जैसे सिकंदर के साथ अरस्तू का। अकबर ने बीरबल को 'साहब



उस्सैफ को 'जर्रीं कलम' की उपाधि भी दी थी। केवल बीरबल ही ऐसे थे जिन्हें अकबर आराम के वक्त अकेले अंतःपुर में बुला लेते थे और फिर उनसे चुटकले सुनते थे। बीरबल सिद्ध हाजिर-जवाब भी थे।'

बर्नियर ने अपनी पुस्तक 'ट्रेवेल्स' में जिक्र किया है कि शाहजहां को खिचड़ी खाने का बहुत शौक था। एक बार ईरान से एक एलची (राजदूत) हिंदुस्तान आया। शाहजहां ने उसे दावत पर बुलाया। उस दिन मुरगा इतना लजीज बनाया गया कि एलची उसकी हड्डी तक से बड़ी देर तक चिपटा रहा। शाहजहां ने यह देखकर व्यंग कसा, "एलचीजी, फिर कुत्ते क्या खायेंगे?" एलची ने तत्काल उत्तर दिया, "खिचड़ी।" यह जवाब सुनकर शाहजहां लाजवाब हो गया।



आखिरी मुगल बादशाहों के दरबारों में तो भांडों और चापलूसों का चलन बहुत ही बढ़ गया। चाहे वह मुहम्मद शाह रंगीले का दरबार हो या अहमद शाह अलबेले का।

नवाबों के दरबारों में

अवध के नवाबों के यहां तो भांड और चापलूस मुसाहिब एक तरह से छा गये थे। यहां तक कि अच्छे पाये के शायर भी भांडों-जैसे काम करने लगे। कई मरतबा तो नवाब स्वयं उनके साथ स्वांग में शिरकत भी करते। सुलेमान शिकोह के काल में 'इंशा' और 'मुसहफी' के स्वांग और एक दूसरे पर चोट करने का जिक्र मुहम्मद हुसैन 'आजाद' ने अपने ग्रंथ 'आबेहयात' में किया है।

सैयद इंशा के समकालीन 'जुरअत' भी कम नहीं थे। एक बार वह, नवाब शुजाउद्दौला के दरबारी भांड करेला से उलझ पड़े। वह भला क्यों चूकने लगा। उसने दूसरे ही दिन भरे दरबार में स्वांग भरा। अपने साथी को जच्चा बनाया और उस पर भूत का असर बताकर झाड़-फूंक करने लगा और साथ ही चिल्लाता रहा, "अरे नामर्द, क्यों गरीब मां की जान को लागू हुआ है, जुरअत है तो बाहर निकल।" जुरअत साहब पर घड़ों पानी पड़ गया।

अब्दुल हलीम 'शरर' लिखते हैं कि लखनऊ में भांडों के दो गिरोह थे। एक कश्मीरी और दूसरे अवध के। रुहेले सरदारों ने भी भांडों को प्रोत्साहन दिया

और इसी कारण वे बरेली में पाये जाते थे। बरेली के अलावा मुरादाबाद में भी भांडों के खानदान थे। बरेली के डामेटाड़ी लखनऊ में बस गये। लखनऊ में 'करेला' भांड बहुत मशहूर हुआ और फिर उसके बाद सजन, कायम दायम, रजबी, नौशाह बीबी कद्र आदि मशहूर हुए। आखिर जमाने में फज्ले हुसैन, खिलौना, बादशाह-पसंद आदि की मंडलियां प्रसिद्ध हुईं।

नवाबकाल में भांडों का बोलबाला था। दरबार में, शाही जलसों में, वैवाहिक महफिलों में—सब तरफ इनकी पूछ होती। न किसी स्टेज की जरूरत, न रिहर्सल की तवालत। माहौल देखकर फौरन ही संवाद गढ़ लेते और तुकबंदी करने लगते। मौके महल के मुताबिक ऐसे-ऐसे करिश्मे दिखलाते कि महफिल जाफरान हो उठती। इतने मुंहफट कि नवाब हो, रईस हो, शायर हो, तवाइफ हो, कोई भी मुअज्जिज हो—इनके तीरों से नहीं बच पाता। खरी-खरी सुना जाते, और इनाम पाते सो अलग।

एक बार किसी महफिल में हजरत 'दाग' भांडों की किसी हरकत पर नाराज हो गये। उन्होंने भरी महफिल में भांडों को फटकारा। उस वक्त तो भांडों ने गरदन झुकाकर झाड़ सुन ली, पर कुछ ही देर बाद उन्होंने अपना बदला ले ही लिया। महफिल में फौरन ही एक स्वांग भरा गया, जिसमें एक साथी हाथ में बंदूक लिये शिकारी बन आया और दूसरा



उसके साथ-साथ हो लिया। थोड़ी ही देर में तीसरा साथी शेर बनकर सामने गरजने लगा। बंदूकधारी के औसान खता हो गये। हाथ थर-थर कांपने लगे, जुबान सूख गयी और निशाने नहीं बंधे, सो अलग। दूसरे साथी ने कहा, "शेर सामने है। अबे नामर्द, दाग! अबे बुजदिल, दाग! अबे कमजर्फ, दाग!" दाग साहब यह छींटाकशी सुनकर पानी-पानी हो गये।

मुहम्मदशाह रंगीले के जमाने में 'करेला' दिल्ली में ही था। जब नादिरशाह ने दिल्ली फतहकर ली, तब एक दिन लालकिले में महफिल जमीं। नादिरशाह ने एक अलबेली हसीन तवाइफ़ को देखकर

कहा, "अगर हिंद की इस औरत की शादी किसी विलायती मर्द से कर दी जाय, तब बच्चा कैसा होगा ?"

करेला तत्काल ही अदब से बोला, "हुजूर, नादिर होगा।" जवाब फड़कता हुआ रहा, क्योंकि नादिर का अर्थ 'श्रेष्ठ' भी होता है।

हाजिर-जवाबी में लाजवाब

एक बार किसी माने हुए कंजूस नवाब के लड़के की शादी में भांड आये। काफी देर बाद नवाब साहब ने अंदर से एक पुराना दुशाला मंगवाकर भांडों को इनाम-बतौर े दिया। दुशाला पुराना तो था ही, मगर इस कदर भुगता हुआ था कि एकाध जगह छेद भी हो गये थे। भांडों ने तत्काल ही स्वांग भरा। एक साथी चश्मा पहनकर दुशाले को गौर से देखता हुआ, कुछ अटक-अटककर पढ़ने की कोशिश करने लगा। दूसरे साथी ने पास आकर पूछा, "मियां! क्या पढ़ रहे हो ?"

साथी बोला, "इस दुशाले पर कुछ लिखा है;" और फिर अटक-अटककर पढ़ता हुआ बोला, "ला इलाह इल्लिल्लाह।" दूसरे ने कहा, "हां, हां और पढ़ो। आगे लिखा होगा मुहम्मद रसूल लिल्लाह।"

पहला साथी झल्लाकर बोला, "अमां मुहम्मद रसूल लिल्लाह कैसे लिखा हो सकता है। ेखते नहीं हो, यह दुशाला तो हमारे रसूल से बहुत पहले का है।" नवाब साहब इतने झेंपे कि उन्हें भांडों को नया दुशाला भेंट ्रना पड़ा।

नवाबीकाल में लखनऊ के मुफ्ती भी अपने अधिकार के नशे में जमीन पर पांव नहीं रखते थे। जिसे चाहे पकड़वाकर बुला लेते और उससे बेगार करवाते। बदकिस्मती से उन्होंने एक बार कुछ भांड पकड़वा लिये। फौरन स्वांग भरा उन्होंने। एक भांड सर झुकाकर बैठ गया। दूसरा बोला, "क्यों मियां, किस सोच में बैठे हो ?" वह बोला, "बीवी की फिक्र में हूं। बीवी चाहिए।" साथी ने पूछा, "कैसी बीवी चाहिए, हजारवाली या पांच सौ वाली ?" भांड ने सर हिलाकर मनाकर दिया।

साथी बोला, "तो क्या सौ-वाली चाहिए ?"

अबकी बार वह बोला, "नहीं, मुफ्ती चाहिए।" मुफ्ती खानदान पर घड़ों पानी पड़ गया और शायद, जिंदगी में पहली बार उन्होंने भांडों को इनाम देकर पीछा छुड़ाया।

मुगलकाल के बाद ब्रिटिश शासनकाल की रियासतों में भी कहीं-कहीं विदूषक रहे, मगर यह परंपरा धीरे-धीरे खत्म-सी हो गयी। फिल्मों के आने के बाद भंडई करीब-क ीब बंद ही हो गयी, लेकिन हास्य का ंग आज भी गालिब है, अब फिल्मी परदे पर 'कामेडियन' हमें हंसाते हैं।

—एफ-४८, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-११००१६

हिंदी फिल्मों के हंसोड़ अभिनेता सबके तरीके हैं जुदा-जुदा!

बुद्धू अडवाणी, गौरी, दीक्षित, याकूब, इंडियन-चार्ली, वास्ती, वी. एच. देसाई, राजकपूर

● **उपेन्द्रनाथ 'अश्क'**

पुराने जमाने के हास्य-अभिनेताओं में बुद्धू अडवाणी, गौरी, दीक्षित, याकूब, इंडियन-चार्ली, वास्ती, वी. एच. देसाई और राजकपूर प्रमुख हैं। यानी वे हास्य-अभिनेता, जिनकी कोई न कोई फिल्म मैंने देखी है। इनमें भी मुझे गौरी, दीक्षित और गोप की किसी फिल्म की कोई याद नहीं है । बुद्धू अडवाणी का सिर्फ चेहरा मुझे याद रह गया है ।

नूर मुहम्मद, उर्फ **इंडियन चार्ली** को जहां तक मुझे याद पड़ता है, मैंने उसकी पहली ही फिल्म में देखा । फिल्म का नाम मुझे याद नहीं, केवल दृश्य याद है कि वह मोटर साइकिल पर अपने मित्र के पीछे बैठा है। मोटर-साइकिल हवा-सी उड़ती जा रही है कि आगे सड़क पर किसी गड्ढे के कारण जोर से धचका लगता है और चार्ली उछलकर पीठ के बल सड़क पर आ गिरता है। उसके मित्र को पता नहीं चलता है और वह दूर निकल जाता है।

दूसरा दृश्य जिसकी मुझे स्पष्ट याद है, वह 'जरीना' फिल्म का है। इसे हॉलीवुड पलट डायरेक्टर इजराअमोर ने डायरेक्ट किया था। उस जमाने की प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री जुबैदा, नर्तकी जरीना की भूमिका में उतरी थी।

...कस्बे के सिनेमा हॉल में, 'जरीना' फिल्म लगी है ? और हॉल के बाहर नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में जरीना (जुबैदा) के पोस्टर लगे हैं। इंडियन चार्ली (जिसका असली नाम नूरमुहम्मद था, और यह भी हो सकता है कि यही वह पहली फिल्म हो, जिसमें मैंने मोटर साइकिलवाला ऊपर का दृश्य देखा हो) फिल्म को देखने के लिए बेतरह लालायित है। लेकिन उसकी जेब खाली है। वह बार-बार बेटिकिट हॉल के अंदर दाखिल होने की कोशिश करता है। लेकिन हरबार खदेड़ दिया जाता है। आखिर गेटकीपर को उस पर तरस आ जाता है। वह उससे

कहता है कि अगर तुम पांच आदमियों को फिल्म देखने के लिए तैयार कर दो, तो तुम्हें मुफ्त अंदर जाने की इजाजत दे दी जाएगी, चार्ली उल्लसित हो उठता है। हॉल के बाहर आ खड़ा होता है। तभी रास्ता चलते, दो व्यक्ति जरीना का पोस्टर देखने लगते हैं। वह उनके पास जाकर कहता है—

"इस फिल्म को मत देखना !"

"क्यों ?"

"इसमें जरीना नंगी नाचती है।"

और उसके परे होते ही वे दोनों टिकिट-घर की ओर बढ़ जाते हैं।

इस युक्ति से चार्ली बाकी तीन लोगों को तैयार कर देता है और मजे से हॉल के भीतर जा बैठता है।

चार्ली की किसी फिल्म का एक और दृश्य मेरी याद के परदे पर अंकित रह गया है। उसमें चार्ली एक मेजर या कर्नल के यहां कुछ काम पाने जाता है। बरामदे में कर्नल का बड़ा-सा चित्र लगा है। पहली दृष्टि में ही चार्ली पहचान जाता है कि यह उसी कर्नल का चित्र है, जो उसके साथ खड़ा है। पर वह कर्नल को (जिसका पार्ट उल्हास कर रहा है) प्रसन्न करना चाहता है। वह उस चित्र की ओर देखकर पूछता है, "यह शानदार तसवीर किसी महान हस्ती की लगती है।"

उल्हास कहता है, "बताओ ये किसकी तसवीर है ?"

तब दोनों हाथ मलते हुए, एक नजर कर्नल पर डाल, तसवीर को बड़े ध्यान से देखकर वह कहता है, "यह तो किसी बड़े वीर-योद्धा की तस्वीर है।"

कर्नल प्रसन्न होता हुआ उसे लुकमा देता है।

"हां हां, बताओ, ध्यान से देखो। यह किसकी तसवीर है।"

चार्ली फिर एक बार उसकी ओर देख-देखकर बांछें खिलाता हुआ कहता है, "मैं पहचान गया, यह तो आपकी तसवीर है।"

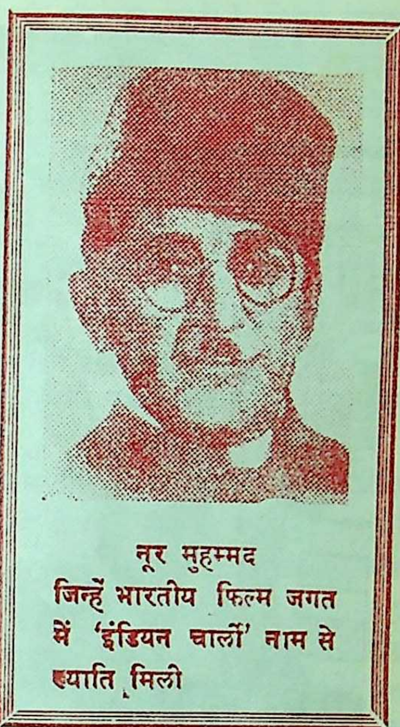
कर्नल बहुत प्रसन्न होता है और जाहिर है कि चार्ली की मनोवांछा पूरी हो जाती है।

बी. एच. देसाई की अदाएं

पुराने जमाने के हास्य-अभिनेताओं में सर्वाधिक लोकप्रिय वी. एच. देसाई थे। मुझे याद है कि फिल्म के परदे पर उनके आते ही (बिना हास्य की किसी भंगिमा अथवा संवाद के) लोग हंसने और तालियां पीटने लगते।

मुझे एक फिल्म का (शायद 'झूला' का) दृश्य याद है जिसमें देसाई लड़की या लड़के के पिता की भूमिका में आता है। वह बंद गले का कोट और पतलून पहने बाहर से तेज-तेज कमरे में दाखिल होता है। कोट उतारकर खूंटी पर टांगता है, और खड़े-खड़े ही पतलून उतारता है, और दर्शक देखते हैं कि नीचे से कमर में बंधी-बंधायी धोती निकलती है। और इतने भर से लोग हंसी के मारे लोट-पोट हो जाते हैं।

मुझे देसाई की किसी फिल्म के एक और दृश्य की याद है। जिसमें वह एक सिरमुंडे, लंबी, चोटीवाले ब्राह्मण की भूमिका अदा करता है। जो दृश्य मेरी याद के परदे पर अंकित है, उसमें वह पंडित कहीं भाषण दे रहा है कि अचानक वह अटक जाता है। और आगे क्या कहना है, एकदम भूल जाता है, तब जैसे घबराहट में उसकी चोटी खड़ी हो जाती है। भाषण याद करने के प्रयास में, जैसे उसका अष्ट-कोण चेहरा कई-कई कोण बनाता है और उसकी आंखें ऊपर टंग जाती हैं, वह दृश्य देखने के ही काबिल था और उसे देखकर दर्शकों की आंखों में हंसते-हंसते पानी आ गया था।


नूर मुहम्मद
जिन्हें भारतीय फिल्म जगत में 'इंडियन चार्ली' नाम से ख्याति मिली

जहां तक मैं जानता हूं, मुझे फिलिमिस्तान में देसाई के साथ काम करने और पंचगनी में उनके पड़ोस में रहने का सुयोग मिला है। वह शुरू से अभिनेता नहीं थे। वह पेशे से एडवोकेट थे। लेकिन, वे बीमार हो गये थे और बीमारी से उनके दिमाग पर असर हो गया था और वह वकालत करने के लिए सर्वदा अयोग्य हो गये थे। गोरे रंग के आदमी थे, लेकिन उनके चेहरे की बनावट में कुछ ऐसे कोण थे, जो अनायास हास्य उपजाते थे।

पर उनमें दोष यह था कि उनके दिमाग में कुछ अटता नहीं था। वह एक लाइन का डॉयलाग भी याद नहीं कर पाते थे। मंटो ने अपनी किताब 'गंजे फरिश्ते' में लिखा है कि एक बार बांबे टॉकीज के जरमन डॉयरेक्टर ने पचहत्तर 'रीटेक' लिये, तब भी देसाई संवाद सही नहीं बोल पाये। और उसे बाद में 'डब' करना पड़ा।

मुझे फिलिमिस्तान स्टूडियो में प्रोड्यूस होनेवाली फिल्म 'आठ दिन' की शूटिंग के समय की एक घटना याद आती है। रात की शूटिंग थी और अशोककुमार फिल्म डायरेक्ट कर रहे थे और नायक के रूप में भूमिका निभा रहे थे। देसाई बंदूक लिये चौकीदार की वरदी पहने थे। लीला मिश्रा भी उसी दृश्य में काम कर रही थी। लंबा-सा ट्रालीशाट था। देसाई को कुछ ऐसा संवाद बोलना था—

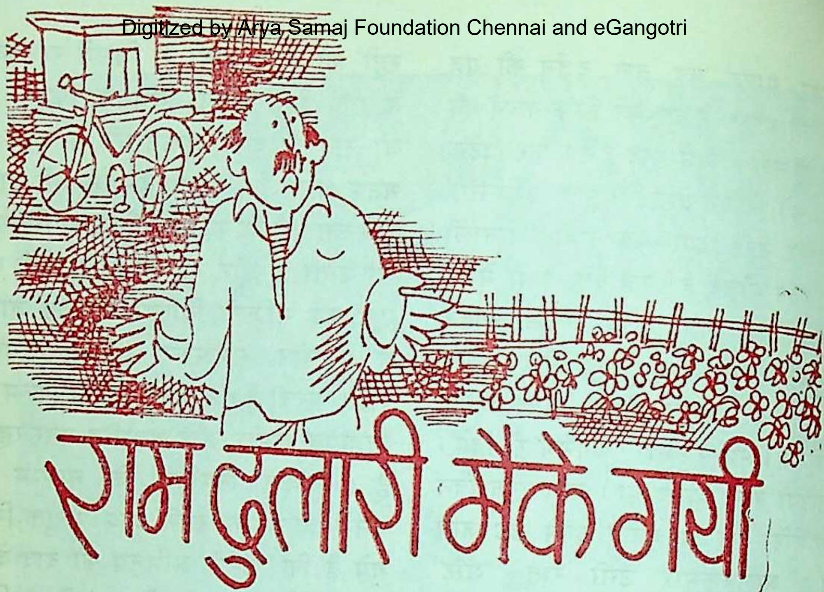
"मेजर साहब जब तक दुर्जन की यह दोनाली मौजूद है आपको फिक्र करने की जरूरत नहीं।" मुझे याद है टेक पर ीटेक लिये गये, लेकिन देसाई ने पूरा 'डॉयलॉग' बोलकर नहीं दिया—वे कभी "दोनाली का दुर्जन मौजूद है" कह देते, कभी मेजर साहब भूल जाते, कभी कर्नल साहब कह देते। कभी आधा वाक्य बोलकर शेष में अ:..अ... करने लगते। रात के दो बज गये। अशोककुमार लगभग रो दिये। स्टूडियो बहुत व्यस्त था। और एक दिन की शूटिंग पर दो हजार रुपये उठ जाते थे। अशोककुमार उसी रात 'शॉट' लेना चाहते थे। लेकिन, जब किसी तरह भी संवाद सहित पूरा शॉट नहीं लिया जा सका तब अशोककुमार को भी बांबे टॉकीज के जरमन डॉयरेक्टर का अनुकरण करना पड़ा और डॉयलॉग बाद में डब कर दिया गया।

राजकपूर: सूक्ष्म हास्य की बानगी

लेकिन फिल्मी हास्य-अभिनेताओं में मेरा प्रिय अभिनेता राजकपूर है। जहां अन्य अभिनेताओं की भूमिका एवं अभिनय में भी थोड़ी फूहड़ता का समावेश रहता है, राजकपूर की एक्टिंग में सूक्ष्म हास्य, या कहूं ऐसे हास्य की बानगी मिलती है, जिसमें करुणा रहती है, बिलकुल चार्ली चेपलिन के अभिनय की तरह। निश्चय ही राजकपूर ने हास्य के क्षेत्र में चार्ली चेपलिन से बहुत कुछ लिया है। मुझे शंभुमित्रा द्वारा निर्देशित राजकपूर की फिल्म 'जागते रहो' की याद आती है, जिसमें राजकपूर ने एक देहाती का अभिनय किया है, जो रात के वक्त महानगरी में कहीं से भटक आता है। प्यासा है—नल से पानी पीने लगता है कि कहीं से पुलिस का सिपाही आ जाता है और वह डरकर फ्लैटों की एक कई मंजिली बिल्डिंग में छिप जाता हैं। चोर समझकर पुलिस उसका पीछा करती है। राजकपूर सारी फिल्म में निहायत गंभीर और भयभीत बना रहता है। लेकिन स्थितियों के माध्यम से उसमें हास्य के इतने दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं कि उसके अभिनय की दाद देनी पड़ती है। एक फ्लैट में पंजाबी पुलसिए सरदार भांगड़ा कर रहे हैं और गा रहे हैं—'की मैं झूठ बोल्या-कोई ना।' राजकपूर सिर के साफे को सरदारों की तरह बांधकर ठोड़ी पर से लपेट लेता है और लगभग सरदार लगता है।

एक मंजिल के गलियारे में शायद कूड़े के लिए खाली ड्रम पड़ा है। उधर से मोतीलाल बहुत ज्यादा पिये हुए, लड़खड़ाता हुआ दाखिल होता है। राजकपूर डरकर खाली ड्रम को अपने ऊपर ओढ़ लेता है और शराबी के इशारे पर कभी चलने लगता है और कभी रुक जाता है। यह दृश्य एक अद्भुत करुणा और हास्य उत्पन्न करता है। शब्दों में उसे बयान करना असंभव है।

—४४-के, केदार बिल्डिंग, सब्जीमंडी, दिल्ली-११०००७



राम दुलारी मैके गयी

शाम को पंडित शीतलाप्रसाद बेहद परेशान और उदास थे। सारा घर उन्हें खाने को दौड़ता था। पांच बजे जब वह नौकरी से वापस आये, तब उन्होंने अपनी साइकिल नीचे खड़ीकर, सामने लगे दो कमरे के छोटे-से फ्लैट में निहायत उदासी के साथ प्रवेश किया। इसके बाद जब वे पीछे की बाड़ी में गये, तब तो ऐसा लगा कि अब उनकी आंखों से आंसू गिरे बगैर नहीं रहेंगे। सिर झुकाये थोड़ी देर वह वहीं खड़े रहे फिर उन्होंने अपने आस-पास देखा, फिर ऊपर आसमान को।

उन्हें लगा, जैसे सारी हवा किसी साइकिल के पहिये की तरह चारों तरफ चक्कर काट रही है और उसका एक बगूला ठीक उसी तरह सीधे खिंचकर उनके ऊपर आकर गिर रहा है, जैसे

• सेवकराम ओखाड़

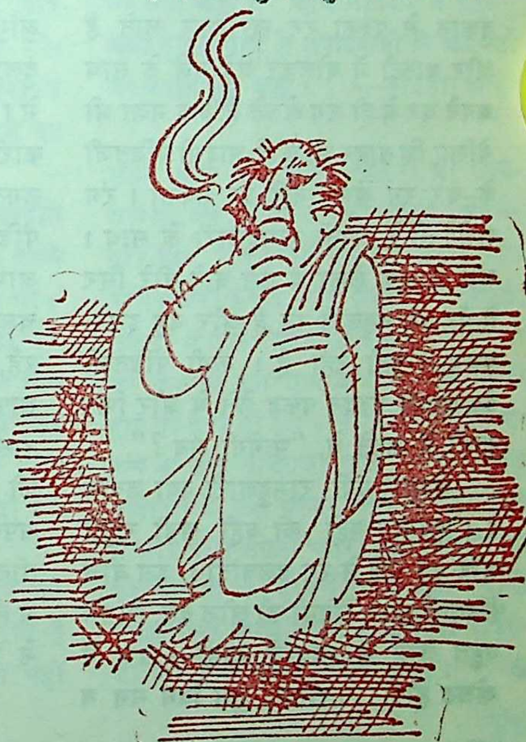
गहरे पानी में पड़ती हुई भंवर नीचे की ओर जाती है।

पंडितजी ने बहुत लंबी और उदास सांस लेकर अपने कपड़े बदले और छोटे-से ड्राइंगरूम में जाकर बैठ गये। ड्राइंग-रूम क्या है—एक खाट, जिसके चारों पहियों के नीचे चार ईंटें रखी हैं। उस पर बिछा हुआ पतला-सा गद्दा और उसके ऊपर चौखानेवाली हैंडलूम की चादर। सामने दो तिपाइयां रखी हैं और कोने में रैकनुमा एक टेबल है, जिसमें दो-चार किताबें रखी हैं, कुछ पत्र-पत्रिकाएं और उन पर एक कोने में कम से कम पचास बरस पुरानी एक घड़ी तथा दूसरे कोने में एक दाढ़ीवाले बूढ़े का पुतला, जो रह-

रहकर अपना सर चलाता है। पंडितजी ने बीड़ी सुलगायी और धुएं के कश के साथ सब कुछ भूलने की कोशिश करने लगे।

पंडित शीतलाप्रसादजी के लिए वैसे यह दिनचर्या कोई नयी नहीं थी। जब-जब दफ्तर से लौटे हैं, हर शाम लगभग उन्होंने यही किया है। अंतर यही है कि जब तक रामदुलारी थी, वे उसके पास बैठकर बहुत देर तक बड़े प्यार से उससे बातें करते रहते थे। लेकिन वह थी गूंगी, इसलिए कोई जवाब तो नहीं दे पाती थी, सिर्फ अपने चेहरे से खुशी प्रकट करती थी। कई बार पंडितजी रामदुलारी से लिपटकर अपने दुःख-दर्द को बांट लेते थे, यहां तक कि बहुत बार उन्हें फूट-फूटकर रोते हुए भी देखा गया है। जिस दिन वह खुश रहते थे, अपने साथ वह रामदुलारी के खाने के लिए उसकी पसंद की चीज लाया करते थे और अपने हाथों से उसे खिलाते। फिर कई बार तो नाच-गाकर चौकड़ी भरते हुए चक्कर लगाते। इस पूरी प्रक्रिया में वह कई बार फिल्मी गाने गाते, कई बार ठेठ वेद-मंत्रों का जाप करते थे। बेचारी रामदुलारी न तो पढ़ी-लिखी थी और न बोल सकती थी, लेकिन कई बार देखा है कि वह भी तन्मय होकर पंडितजी का साथ देने में न चूकती थी!

पंडितजी के शौक और भी हैं। यानी जब मूड आता है, तब रामदुलारी से बातें करते-करते अचानक खुरपी उठाकर अपने छोटे-से किचन गार्डन में चले जाते हैं। छोटे-से बगीचे में एक ओर उन्होंने मोगरे की बेल लगा रखी है, दूसरी ओर रातरानी का पौधा। किनारे पर कुछ देसी-विदेशी गुलाब और बीच में सब्जियां। बाप रे! इत्ती छोटी-सी जगह में पंडितजी गोभी उगाते हैं, झुक्कों में बैंगन फलते हैं, मिर्च के झाड़ में पत्तियों से अधिक मिर्चें होती हैं। फिर धनिया की पत्ती, पालक और गाजर तथा मूली। चूंकि रोज खाने के लिए इनमें से कुछ न कुछ निकल आता



है, क्योंकि यह एसी चीजें हैं कि इनका कोई हिस्सा पंडितजी को पसंद है, तो कोई रामदुलारी को।

एक जमाने से लेकर यह क्रम चला आ रहा है। इस क्रम में व्यवधान भी पड़े हैं, पर मजबूरी का नाम महात्मा गांधी, पंडित शीतलासहाय को कई बार रामदुलारी से बिछुड़ना पड़ा है।

पंडितजी जानते हैं कि आज पूर्णिमा की रात्रि है और रात को होली जलेगी, सुबह रंग खेला जाएगा। पंडितजी और लोगों की तरह नहीं हैं कि बाजार से बना-घटी गुलाल खरीद लायें और उसे ही लगाकर संतोष कर लें, वह तो बड़ी से बड़ी दुकान से पक्का रंग खरीदकर लाते हैं और बाल्टी में घोलकर बड़े मजे के साथ अपने घर में ही रंग खेलते हैं, अब मजा भी देखिए कि बाहर का कोई आदमी पंडितजी के घर रंग खेलने नहीं आ सकता। रंग खेलेंगे तो वे अपनी रामदुलारी के साथ। लोटे में रंग लेकर वे उसे धीरे-धीरे सिर से पैर तक नहलाते रहे हैं और वह इधर-उधर भागती रही है। कभी पंडितजी ठेठ उसकी गरदन पकड़ लेते थे और फिर कानों में कहते थे, "भागेगी अब?"

बेचारी गूंगी रामदुलारी क्या जवाब दे। चुपचाप वहीं की वहीं खड़ी रहती और बड़े मजे से रंग डलवाती। इस बीच पंडितजी अपने रेडियो को खोल देते, जिसमें बहुत तेजी से आवाजें आतीं—'ब्रज में खेलत होरी... रसिया तुझ बिन मन न लागे रे... हाय होरी में बरजोरी, हम तो खेलेंगे होरी।' होली खेलत हैं गिरधारी कहीं गाना लग गया 'रामदुलारी मैके गयी, खटिया हमरी खड़ी कर गयी' तब पंडितजी बाकायदा ताली पीट-पीटकर रामदुलारी के चारों तरफ नाचने लगते थे। फिर रामदुलारी के पास अपना मुंह ले जाकर खूब जोर से हंसते—"हमारी रामदुलारी तो हमारे पास है, खटिया खड़ी होगी, तो दुश्मनों की।"

जिंदगी में जितना खुश पंडित शीतलाप्रसाद को होली के दिन देखा गया है, उतना जिंदगी में किसी दिन नहीं। बाकी दिन तो अकेले उदास हवाओं से भरे कमरे व खुले आंगन में प्रतीक्षारत बैठी बेचारी रामदुलारी—बस यही कुछ तो रहता है जिंदगी में। घर में कोई बच्चा न हो, कोई किलकारी न सुनायी पड़े, तो सारा घर सूना ही लगता है। रामदुलारी बांझ नहीं थी, लेकिन पंडितजी की नसीब ही बांझ थे। छोटी-सी आमदनी और उसमें इतना बड़ा खर्च चलाना उनके लिए मुश्किल था। बच्चा रहे, तो तोड़फोड़ करे, पंडितजी का बगीचा साफ हो जाए। इसलिए उन्होंने बड़ा सहज रास्ता अपना रखा है। जब-जब बच्चे होने की नौबत आती है, वे रामदुलारी को अपने गांव भेज देते हैं। जब बच्चा दो-तीन महीने का हो जाता है, तब उसे गांव में ही छोड़कर रामदुलारी फिर पंडितजी के घर आ धमकती है।

गांव में बच्चे पालनेवालों की कमी

नहीं है। जहां दस-बीस रहते हों, एकाध तो ऐसे भी पल जाता है। आज पंडितजी परेशान इसीलिए हैं कि रामदुलारी बच्चा जनने चली गयी है, और कल उन्हें होली का दर्द अकेले ही झेलना पड़ेगा। किसके साथ रंग खेलेंगे वह, किसके सामने नाचेंगे। चारों तरफ सुनसान और अकेलापन। अकेलापन आदमी को वैसे भी काटता है।

पंडित शीतलासहाय अब तक बीड़ी का एक पूरा बंडल पी चुके थे। रात काफी उतर आयी थी। रामदुलारी के विछोह में उन्होंने खाना भी नहीं खाया और अपनी खाट पर दुबककर सो गये। बाहर कुत्ते भौंक रहे थे। और दिन होता तो रामदुलारी इन कुत्तों से डरती और कांपती। तब पंडितजी को बार-बार परेशानी होती। आज केवल एक सूनापन तैर रहा है। इसलिए कुत्तों के भौंकने का भय उनके मन में नहीं है।

सिर पर चादर डाले-डाले उन्होंने उंगलियों में कुछ गिनना शुरू किया। अपने आप से उन्होंने पूछा, 'खत कब आया था।' फिर उन्होंने ही जवाब दिया, 'कोई ३० दिन हो गये होंगे।' रामदुलारी ४० दिन पहले ही तो फिर से मां बनी है। वे फिर सोचते-सोचते उंगलियों पर गिनते रहे। अभी कम से कम बीस-पचीस दिन तो लग ही जाएंगे तब तक ...।

पंडित शीतलासहाय खर्राटे भरने लगे हैं। इस निश्चय के साथ, वह सोये हैं कि कल सारे दिन अपनी खाट से नहीं

एक पत्रिका के नव-नियुक्त संपादक ने एक कवि की कविता वापस लौटा दी। सालभर बाद वह कवि महोदय उनसे मिलने आये और अपनी वही रचना देते हुए बोले, "यह वही कविता है, जिसे आप सालभर पहले लौटा चुके हैं!"

"तब इसे दोबारा देने का अभिप्राय?" संपादकजी ने भौं चढ़ायीं।

"यह तो अनुभव की बात है!" कवि महोदय ने कहा।

"अनुभव... कैसा अनुभव!"

"इसमें परेशान होने की क्या बात है। आप को पूरे एक वर्ष का अनुभव हो चुका है—संपादकी का! मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा!" कवि महोदय ने रहस्यमयी मुसकराहट से संपादकजी के कंधे को थपथपाते हुए कहा। —नंदिता सिन्हा

उठेंगे और चाहे बाहर कितना भी शोर-गुल हो, वह अपने ध्यान को एकाग्र रखेंगे—पूरा दिन रामदुलारी की याद में काटेंगे। रामदुलारी सफेद और चिकनी-सी सूरत, सैकड़ों में एक, तेज और चंचल। पंडितजी को कम से कम एक बार में पांच किलो दूध तो देती ही है। पांच किलो दूध निकालने के बाद पंडितजी मूली का एक झाड़ उखाड़ते थे, उसे धोकर मूली तो खुद खाते थे और पत्ता अपनी प्यारी गाय रामदुलारी को खिलाते थे। हाय! आज वही बेचारी रामदुलारी उनसे अलग है, उसे भी पंडितजी की याद जरूर आती होगी। ●

तंत्र-शास्त्र धर्म से परे है

● तृप्त नारायण झा

प्रत्येक मनुष्य के सामने कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जब उसकी बुद्धि काम नहीं करती, बल भी साथ नहीं देता और व्यक्तित्व निःस्तेज हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह किसी अदृश्य दैवी-शक्ति का सहारा चाहता है। वह शांति प्राप्त करना चाहता है। शांति प्राप्त करने का ही अर्थ ब्रह्मानंद प्राप्त करना है।

तंत्र-मार्ग इसका सुगम और सरल उपाय बताता है। इसके द्वारा जहां एक ओर भौतिक समस्याओं का समाधान मिलता है, वहीं वह आध्यात्मिक उत्थान का पथ भी प्राप्त करता है। इसका प्रधान कारण यह है कि तंत्र का मानव-शरीर से गहरा लगाव है। किसी धर्म विशेष से इसका कोई संबंध नहीं है। इष्ट या अन्य साथ मात्र प्रतीकात्मक हैं। तत्र का संबंध मानव मात्र से है।

शरीर का तंत्र से संबंध

शरीर में छह चक्र हैं। प्रथम का नाम—मूलाधार है। इसका स्थान गुदामार्ग के डेढ़-दो अंगुल ऊपर रीढ़ में है। तंत्रशास्त्र और योगशास्त्र के अनुसार यहां चार दल वाला अधोमुख कमल है, जिसके पत्ते पर क्रमशः 'व', 'श', 'ष' और 'स' अक्षर अंकित हैं। इसके बीच में त्रिकोण है और उस पर अधोमुख स्वयंभू लिंग है, जिसे विद्युतशक्ति कुंडलिनी ने आवेष्टित कर रखा है। योगशास्त्र ने इसे ही जगाना योगियों का लक्ष्य माना है।

तंत्र ने इसे दूसरे रूप में लिया है। इस चक्र में नर-पशु के अद्भुत और स्थायी सामंजस्य का दिग्दर्शन मिलता है। यहां नर का मात्र धड़ है और पशु की गर्दन। उसकी गर्दन सूंड़-युक्त है और यह एक देन है। शास्त्रों ने उसका संबोधन 'गणेश' कहकर किया है। इस चक्र का वह अधीश्वर है। वह मूलाधार के मूल में स्थित है। गणेश का बीज मंत्र 'गं' है। पृथ्वी के असाधारण गुण गंध को 'गं' कहा गया है। यदि इस बीज को सिद्ध किया जाए, तो भौतिक संसिद्धियां शीघ्र प्राप्त होती हैं। वैसे भी लक्ष्मी के साथ गणेश-पूजन का जो विधान है, उसमें भी तात्विक रहस्य छिपा हुआ है। लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र से बतायी गयी है और मूलाधार स्थित

चतुष्टदल कमल के प्रथम दल पर अंकित अक्षर 'व' जल तत्व का द्योतक है। अप् (जल) महाभूत का श्रीगणेश अधिपति है। तंत्रशास्त्र में गणपति को आधार माना गया है। अतः लक्ष्मी और गणेश का सात्विक संबंध है।

मैंने 'कादम्बिनी' के नवंबर, १९७९ के अंक में 'तांत्रिक भूत-प्रेत बनते हैं' शीर्षक लेख के अंतर्गत 'ॐ गं गणपतयै नमः' का उल्लेख किया है। जिज्ञासु पाठकों ने इस मंत्र को सिद्ध करने की प्रक्रिया बताने का आग्रह किया है। इस संबंध में मैं अपने अनुभवों को बताना उचित समझता हूं।

मैं कामाख्या में भूत-भावन भगवान शंकर की आद्याशक्ति मां काली की आराधना में लीन था। तड़के उठकर मानसर में श्रद्धापूर्वक स्नान करता और उस सर (तालाब) के घाट पर स्थित श्रीगणेश और महाभैरवी की प्रतिमाओं का अर्चन-पूजन करने के बाद मां के मंदिर में जाता था। एक दिन मैं स्नानकर श्रीगणेश-विग्रह के समीप पहुंचा कि मूर्ति की एक आंख से छोटी-सी ज्योति निकली और महाभैरवी की मूर्ति में समा गयी। मुझे घोर आश्चर्य हुआ, परंतु समझा कुछ नहीं। लेकिन उस दिन साधना में मन रम गया। दो बजे जब मंदिर की परिक्रमा कर रहा था कि बलि-स्थान के समीप श्रीगणेश की विशाल एवं कुपित मूर्ति देखी और उनका वाहन—चूहा कुछ कुतर-कुतरकर रखता जा रहा था। एक अंबार-सा लग गया था। दरअसल, पहले और बाद में भी वहां कोई मूर्ति नहीं थी। दूसरे दिन मानसर में स्नान करते समय पता चला कि 'मैंने सिद्धिदाता गणेश की विधिवत् उपासना नहीं की है, अतः सारी तपस्या निष्फल हो रही है।'

मैंने अपने ही इष्ट से अनुनय-विनय करना शुरू कर दिया और उनकी कृपा से एक दिन अर्द्ध-समाधिस्थ अवस्था में मूलाधार स्थित श्रीगणेश के दर्शन हुए और इस चक्र का रहस्योद्घाटन हुआ।

केदार मार्ग में साधना

१० मई, १९७८ को गौरीकुंड से श्रीकेदारनाथ को विदा हुआ। ऋषिकेश से ही मेरे साथ ग्राम सराणा, पोस्ट भदराणी, जिला जालौर (राजस्थान) स्थित सोमनाथ मंदिर के महंत श्री बालकानंद गिरि थे। पहाड़ों की खड़ी चढ़ाई पर चढ़ना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था। पैर सूज गये थे, मैं नाक के अलावा मुंह से भी सांस ले रहा था, फिर भी अजीब घुटन-सी हो रही थी।

उस दिन अक्षय तृतीया थी और संध्या के पहले वहां पहुंचना जरूरी था। लेकिन तन-मन हार चुका था। मैं बैठ गया यह सोचकर कि अब कल जाऊंगा। गिरिजी भी बैठ गये। उन्हें कोई तकलीफ नहीं थी, क्योंकि वे वर्षों गिरनार पर्वत पर रह चुके थे। बैठने के कुछ ही मिनट बाद श्रीगणेशजी से सहायता लेने की मन में भावना आयी। फिर क्या था,

मूलाधार स्थित गणेश का ध्यान करने लगा। दस मिनट के अंदर ही शरीर में नयी स्फूर्ति आ गयी और मालूम पड़ने लगा कि मेरी गरदन में गणेशजी ने सूंड़ लपेटकर खींचना शुरू कर दिया है। फिर वहां से केदारनाथ मंदिर तक बैठने का कहीं नाम तक नहीं लिया। गिरिजी को भी आश्चर्य हो रहा था और मैं तो केवल वक्रतुंड ही अपनी गरदन में लिपटा देख रहा था।

अतः इस चक्र पर ध्यान लगाने और पूजन करने से सद्यः लाभ होता है, शरीर नीरोग हो जाता है, मन प्रसन्न रहता है, बुद्धि प्रखर हो जाती है।

गं बीज की उपासना

'गं' बीज की उपासना मुख्यतः दो तरह से की जा सकती है—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल-पूजन के लिए ताम्र-पत्र या भोज-पत्र पर गणेश-यंत्र का निर्माण करा लेना आवश्यक है। यों तो गणेश-यंत्र कई तरह के हैं, लेकिन उनमें मुख्यतः तीन हैं। प्रथम यंत्र ओंकार है, द्वितीय यंत्र स्वस्तिक है और तृतीय यंत्र दो त्रिकोणों के बीच में अंगरेजी के 'यू' अक्षर से युक्तकर बनाया जाता है। तीनों यंत्रों के आकार-प्रकार निम्नांकित हैं—

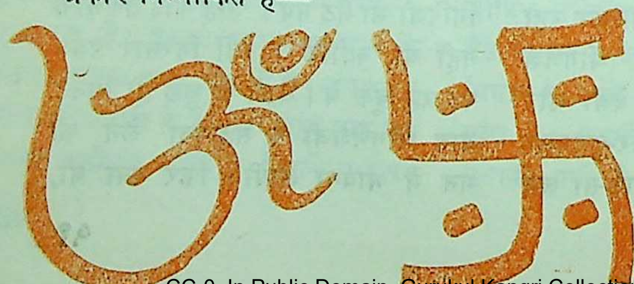
तीसरे यंत्र के मध्य में स्थित संकेत ॐ का उल्लेख ऋग्वेद संहिता के 'गणानान्त्वा गणपति ॐ हवामहे' में मिलता है।

इस यंत्र का पंचोपचार पूजन करें और अष्टगंध, सिंदूर, जूही के फूल, शमी के पुष्प-पत्र चढ़ायें और कठबेल, जामुन तथा गुड़ का भोग लगायें। धूप-दीप भी दें। फिर, इष्ट मंत्र का जाप करें। इसका तांत्रिक मंत्र है—'ॐ श्रीं ह्रीं क्रीं ग्लौं गं गणपतयै नमः।' जाप कम से कम एक हजार प्रतिदिन होना चाहिए। बारह लाख जाप का एक मंडल होता है। चार मंडल पूरा करने पर अभीष्ट सिद्ध हो सकता है।

सूक्ष्म-उपासना

सूक्ष्म-उपासना के लिए यंत्र तथा वाह्य सामग्रियों की आवश्यकता नहीं है।





ओंकार
स्वस्तिक
त्रिकोण

गीत

टिमटिमाता है सुबह के चराग-जैसा है
ये शहर तो मेरे जख्मों के दाग जैसा है
बस्तियां खाक हुईं, पर न रोशनी, न धुआं
यह फसाना मेरे सीने की आग जैसा है
तिलिस्म-सा है घड़ीभर का इसको क्या कहिए,
आपका प्यार ही साबुन के झाग जैसा है
काटता रहता है दिन-रात बेवजह चक्कर
ये आसमान भी मेरे दिमाग जैसा है
मैं समझता हूं जिसे दोस्त आज भी अपना
आइना कहता है, जहरीले नाग जैसा है

—सुरेश कुमार
द्वारा 'रंजनी मासिक' जी. टी. रोड, अलीगढ़

साधक को चाहिए कि वह अपने पेट को साफ रखे यानी कब्ज को कभी भी पास न फटकने दें। इसके लिए त्रिफला या सदाबहार फूल के पत्ते और फूल का प्रयोग निरापद रूप से किया जा सकता है। फिर स्नान करने के बाद प्राणायाम करना शुरू कर दें और पूरक में एक बार, कुंभक में चार बार और रेचक में दो बार मंत्र का जाप करें। इस क्रम को धीरे-धीरे बढ़ाना होगा। जप के समय मूलाधार में चतुष्दल कमल के मध्य त्रिकोण स्थित देव का ध्यान करना होगा। इस विधि से कुंडलिनी शीघ्र जागृत होती है। परंतु, यह विधि बहुत खतरनाक है। यदि कुंडलिनी जग गयी और आगे के उपाय ज्ञात नहीं हैं, तो वैसी स्थिति में साधक को जान से भी हाथ धोना पड़ सकता है।

अतः स्थूल-पूजन अधिक निरापद है। लेकिन उस क्रम में भी कुछ तांत्रिक क्रियाएं करनी पड़ती हैं, जो गुरु परंपरा से ही प्राप्त की जा सकती है। फिर भी मंत्र-जाप निष्फल नहीं जाता। मंत्र इस प्रकार है—

ओ३म् गणानां त्वा गणपति ॅ हवामहे। प्रियाणान्त्वा प्रियपति ॅ हवामहे ॥ निधीनान्त्वा निधिपति ॅ हवामहे वसोमम। आहम-जानिगर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥

—अभिनव तांत्रिक,
कालकाजी मंदिर, नयी दिल्ली-११००१९

विचार-दीर्घा—२

- बुद्धिजीवी दरबारी बन गया
- वह कुर्सी हथियाने में लगा रहा
- उसकी भूमिका नगण्य रही

'विचार दीर्घा-२' में चर्चा का विषय था—'स्वतंत्रता के बाद देश की राजनीति में बुद्धिजीवियों की भूमिका कहां तक रही है ?' इस चर्चा में भाग लेनेवाले प्रायः सभी पाठकों का मत है कि अधिकांश बुद्धिजीवी न केवल अपनी सही भूमिका निभाने में असमर्थ रहे हैं, वरन वे अवसरवादी भी सिद्ध हुए हैं।

पुरस्कृत-विचार

स्वाधीनता संघर्ष के जन-आंदोलनों को नेतृत्व और दिशा अधिकतर बुद्धिजीवी-वर्ग ने ही दी थी। परंतु दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश की राजनीति में बुद्धिजीवियों की भूमिका अत्यंत नगण्य रही है। प्रजातंत्र के सम्यक्-विकास के लिए राजनीति पर बुद्धिजीवियों का प्रभुत्व होना चाहिए था, परंतु यहां इसके विपरीत राजनीतिज्ञ बुद्धिजीवियों पर हावी हो गये।

भारतीय लोकतंत्र के प्रारंभिक वर्षों में नेहरूजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय योजनाओं का जो क्रम चला और क्रमशः आधुनिकता का जो वातावरण बना, उसमें राष्ट्रीय चेतनावाला प्रतिश्रुत बौद्धिक वर्ग पृथक पड़ता गया और इस स्तर पर आधुनिकता के पक्षधर के रूप में अंगरेजी की मानसिकतावाले संगठित होकर सत्ता के स्रोतों से जुड़ते गये। अपनी इस स्थिति में वह शक्ति और अधिकार पाता गया। वह अपने निहित स्वार्थ की दृष्टि से दलों, नेताओं तथा शक्ति-सामंतों से समझौता तथा सौदेबाजी करता रहा।

विडंबना यह है कि सत्ता-परिवर्तन होने पर भी देश का बुद्धिजीवी वर्ग कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सका।

यदि बुद्धिजीवी वर्ग देश का सही दिशा निर्देशन करता, तो आज भारतीय प्रजातंत्र के भविष्य पर इस प्रकार प्रश्नवाचक चिह्न न लगाये जाते। वर्तमान भारत की अनेक समस्याओं का एक प्रमुख कारण यह है कि यहां का बुद्धिजीवी वर्ग सजग नहीं रहा। वह वास्तविक अर्थ में देश के राजनीतिक घटना-चक्र में सहभागी नहीं बना। उसने अपने दायित्व एवं कर्तव्य का सम्यक निर्वाह नहीं किया।

—डॉ. भक्तराम पाराशर
१३/२३६, गीता कालोनी, गांधी नगर,
दिल्ली-११००३१

 (विचार-दीर्घा—४ का विषय पृष्ठ १७३ पर देखिए)

होली उपवास हुई
डूब रहा सूरज पूरब में
सब धरती आकाश हुई
पनघट की सूरत में
मरघट और जिंदगी प्यास हुई

पानी पीने लगे हंस सर
विषधर केवल दूध पिये
हीरों की कुर्बानी देकर
धुंधले दर्पण देख लिये
जब-जब भी बारात सजाओ
भांवर अधिक उदास हुई

कठिन नहीं तारों का गिनना
सांसें गिनना मुश्किल है
आंधी खेल रही राहों में
मंजिल का मुख धूमिल है

दिन के सपने हंसे सुबह पर
आशा और निराश हुई
पनघट की सूरत में
मरघट और जिंदगी प्यास हुई

कहते बीते दिन याद न कर
क्या भूलूं क्या याद करूं
इस कोलाहल के क्षण-क्षण में
कैसे अनहद नाद भरूं

तब निर्वसना दीवाली थी
अब होली उपवास हुई
डूब गया सूरज पूरब में
सब धरती आकाश हुई

—मधुर शास्त्री

३२३३ कूचा ताराचंद, दरियागंज, दिल्ली

कैसी होली है!

प्यार की फुहार

गंध लिये सपनों पे, प्यार की फुहार है
अंग-अंग महक रहा खिली डार-डार है

छू लिया मन सतरंगी किरणों ने
भर गया गुलाल कोई मेरे इन नयनों में
किसके घर आने से गा उठी बहार है

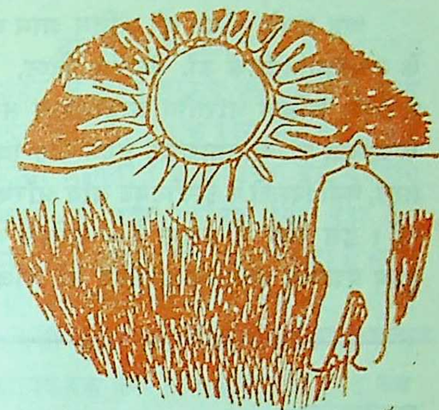
सुरमई घटाओं से झांक रहा कोई है
चटकीले रंगों से बांध रहा कोई है
जाने वह है कहां जिसको यह पुकार है

गीतों की रुनझुन है, पायल की छम-छम है
साज सभी सज उठे, झूम रही सरगम है
दे गया पल भर में कोई युगों-सा दुलार है

—मंजू दीक्षित

मैस्कॉट (इंडिया) टूल्स एंड फोर्जिंग
मेरठ रोड, गाजियाबाद

छोटा किसान



शांत संभ्रांत वे
वातानुकूलित कक्षों में बैठे
निर्णय करते हैं तुम्हारे भाग्य का
बीत जाता है दिन
आ पहुंचती है उनकी लियोजीन्ज
देरी कर दी है अपने अंत में
एक दिन की और मान
एक और दौर शुरू होता है
आज रात क्या हो ?
वह उम्दा शराब
या फिर काफी होगी शॅंपेन, और केवियार
खेतों में खुदाई--आपका दूसरा दौर
और उनका विदा लेने से पहले
एक और जाम
बेच दी हैं सस्ते दाम उन्होंने आपकी बेटियां
एक साल के लिए और
कर्ज के भार का बुन दिया है तानाबाना

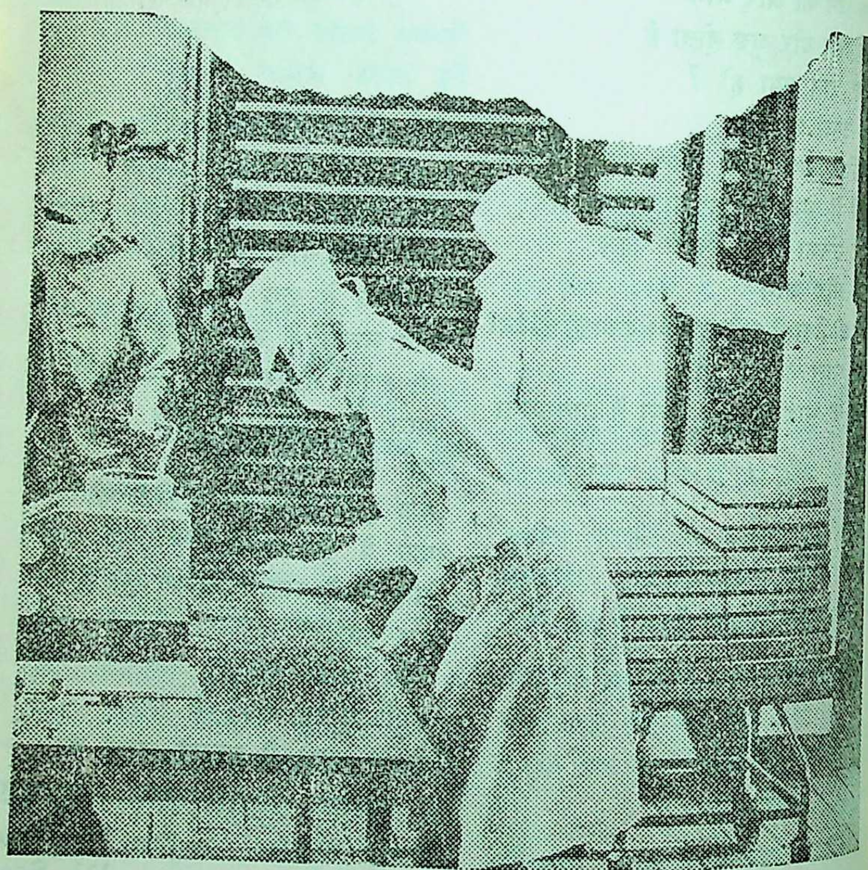


कोई भी बीज बोएं आप
उगाते हैं वे खाली शब्द
और अर्थहीन प्रस्ताव
काले, भूरे, गोरे या गंदमी
या बीच में कुछ और
कौन जानता है उस कीचड़ को
जो टखनों से घुटनों तक सनी होती है
आज फिर झुकती है कमर
एक और भार ढोते
कल होगी बारी आपके बेटों की
क्या वे कुछ बोलेंगे ?
ओह भाई क्या भाग्यवान हो तुम
इस सप्ताह
शांत संभ्रांत वे
वातानुकूलित कक्षों में
निर्णय करते हैं तुम्हारे भाग्य का

—फ्रांसवान मस्ट्रिूट

—Ere Prysstraat
111, Soest,
Holland.

'यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी' लेखमाला के अंतर्गत आपने भारत-सरकार के उप-महानिदेशक डॉ. देशबंधु बिष्ट, सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. रामकुमार करौली, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली में शल्य-चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डॉ. आत्मप्रकाश, हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉ. प्रभुदयाल निगम, सफदरजंग अस्पताल, नयी दिल्ली के इंस्टीट्यूट ऑव ऑरथोपेडिक्स के निदेशक डॉ. विश्वकर्मा के विचार पढ़े। इस अंक में प्रस्तुत हैं--अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली के मुख्य प्रशासन अधीक्षक प्रोफेसर डॉ. राजेन्द्रप्रसाद सिन्हा के विचार।



यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

कुछ ही दिनों पहले की बात है। मैं रोजाना की भांति अपने आफिस से निकलकर वार्डों के 'राउंड' पर जा रहा था। यों, 'ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज' में रोजाना ही भीड़ होती है, पर उस दिन भीड़ कुछ ज्यादा ही थी। इस भीड़ में रोगी थे, उनके संबंधी थे, प्रारंभिक जांच के लिए आये लोग थे। मैं उन सब पर सरसरी नजर डालता आगे बढ़ रहा था।

सहसा मैंने देखा, 'लिफ्ट' के पास खड़ी एक लड़की अचानक गिर पड़ी है। मैं चौंक उठा। 'राउंड' छोड़कर तुरंत उसके पास पहुंचा। लड़की बेहोश हो चुकी थी। उसे तत्काल चिकित्सा की जरूरत थी। मैं सारा काम छोड़कर पहले उसकी चिकित्सा की व्यवस्था कराने लगा। वहां उपस्थित लोगों ने समझा, शायद वह लड़की मेरी कोई संबंधी थी, इसीलिए मैंने इतनी तत्परता दर्शायी, पर ऐसी बात नहीं थी।

दरअसल, उस लड़की को अचानक गिरता हुआ देखकर मुझे वर्षों पहले घटी एक घटना याद आ गयी थी।

उन दिनों मैं अमरीका के ह्यूसटन शहर में जार्ज हरमन अस्पताल में काम कर रहा था। एक दिन मैंने देखा, एक रोगी अस्पताल के 'काउंटर' पर भुगतान करने के बाद एकाएक गिर पड़ा है। संयोग से एक वरिष्ठ डॉक्टर वहां से गुजर रहे थे। मरीज को गिरता देखकर, वे तुरंत उसकी ओर दौड़े। उसके हृदय की गति शायद रुक गयी थी। डॉक्टर ने तुरंत उस मरीज के मुंह से मुंह मिलाकर कृत्रिम श्वास (आर्टीफिशियल रेसप्रेशन) दी। थोड़ी देर में उसकी हृदयगति चलने लगी। उसके बाद उन्होंने उसे तुरंत अस्पताल में भरती करवा दिया। किसी भी अस्पताल की प्रतिष्ठा ऐसे ही सहृदय और कर्तव्य-परायण डॉक्टरों और कर्मचारियों से बनती है।

आशाओं का केंद्र

'ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज', जिसे 'मेडिकल इंस्टीट्यूट' नाम से भी जाना जाता है, लोगों की

आशाओं का एक बड़ा केंद्र है। उससे न केवल राजधानी, वरन देश के अन्य प्रदेशों में रहनेवाले छोटे-बड़े गरीब-अमीर सभी काफी अपेक्षाएं रखते हैं। कारण, यह चिकित्सा-संस्थान न केवल नाम और आकार में बड़ा है, वरन उसमें चिकिसा-क्षेत्र में अनुसंधान के साथ-साथ इलाज के लिए भी आधुनिकतम उपकरणों की व्यवस्था है।

इतने बड़े चिकत्सा-संस्थान का मुख्य प्रशासक अर्थात 'चीफ मेडिकल सुपरिंटेंडेंट' होने के नाते मैं रोजाना सैकड़ों मरीजों के संपर्क में आता हूं। इनमें से कई मरीज ऐसे भी होते हैं, जो कई कारणों से मन पर छाप छोड़ जाते हैं। मुझे एक परिचित युवक रोगी का चेहरा अकसर याद आता है। हम लोग काफी कोशिश के बावजूद उसे बचा न पाये थे। इसका एक कारण यह भी था कि वह युवक हिम्मत हार बैठा था।

इस लेखमाला में अनेक डॉक्टरों ने रोगी के मनोबल की चर्चा करते हुए उसे इलाज के लिए महत्त्वपूर्ण बताया है। मेरा भी अनुभव यही है। वह युवक कई दिनों से पैर के दर्द से पीड़ित था। उसने परिवार के सदस्यों का ध्यान कई बार अपने पैर के दर्द की ओर आकर्षित करवाना चाहा, किंतु लोगों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। फलतः उसके मन में यह बात घर कर गयी कि सभी लोग उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। धीरे-धीरे उसे परिवार के लोगों पर संदेह रहने लगा और यह संदेह दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया। इस घटना से उसे मानसिक आघात भी लगा और उसकी स्मरण-शक्ति जाती रही। तथा उसे परिवार का हर सदस्य बेमानी लगने लगा। जब उसे अस्पताल में भरती कराने लाया गया, तब वह यही चिल्ला

रोगियों की आशाओं का केन्द्र, नयी दिल्ली का अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान



प्रोफेसर राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा, डी. एच. ए., एम. बी. ए. (अमरीका), एम. एच. ए. नयी दिल्ली, एम. काल. (पटना) के प्रसिद्ध अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान (ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज) में सदस्य, सचिव एवं चीफ मेडिकल सुपरिटेंडेंट के पद पर कार्य कर रहे हैं। प्रोफेसर सिन्हा ने अमरीका में शिक्षा के दौरान अस्पताल-प्रशासन में विशेष योग्यता प्राप्त की, तथा ह्यूस्टन के जार्ज हरमन अस्पताल को, जो निरंतर घाटे के कारण गिरी स्थिति में था, अपने कुशल प्रशासन द्वारा न केवल लोकप्रिय, वरन आर्थिक रूप से संपन्न बनाने में योग दिया। इतनी बड़ी सफलता के बावजूद उन्होंने स्वदेश लौटना पसंद किया। 'ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट'



लेखक

के निर्माणावस्था से ही वे उसके साथ संबद्ध हैं।

रहा था, "डॉक्टर, इन लोगों को हटाओ, ये मुझे मार डालेंगे।" उसे यह विश्वास हो गया था कि अस्पताल में उसे मार डालने के किसी साजिश के तहत लाया गया है और अब वह एक बहुत बड़े खतरे से घिर गया है। मैंने उसे समझाया, "घबराओ नहीं, यहां तुम ठीक हो जाओगे।"

और सचमुच, दस दिनों में उसकी हालत में काफी सुधार हुआ। डॉक्टरों ने मुझसे कहा कि उसे शाम तक उसके कमरे में स्थानांतरित कर देंगे। अभी हम लोग बातें कर ही रहे थे कि उसकी बहन घबरायी हुई आयी और मुझसे बोली, "जाने क्यों भाई साहब बहुत घबरा रहे हैं; जल्दी चलिए।"

मैं डॉक्टरों के साथ तुरंत उस युवक के पास पहुंचा, पर तब तक उसका प्राणांत हो चुका था।

उस रात मैं काफी देर तक सोचता रहा कि वह युवक तो अच्छा हो गया था, फिर एकाएक उसकी मृत्यु क्यों हुई! और इस प्रश्न के परंपरागत उत्तर से मन को समझाना पड़ा कि शायद वह दीपक के बुझने के पूर्व की आखिरी लौ थी।

युवक का रोग असाध्य नहीं था। वह शायद बच भी जाता, पर वह हिम्मत

हार चुका था।

जीवन के प्रति अदम्य विश्वास

इसके विपरीत एक बासठ-त्रेसठ वर्षीय वृद्ध थे, जिनमें जिंदगी जीने का अदम्य विश्वास था। उनकी पौरुष-ग्रंथि (प्रॉस्टेट ग्लैंड) का दूसरी बार ऑपरेशन किया जा रहा था। यह ऑपरेशन काफी कठिन होता है तथा उनकी उम्र को देखते हुए सभी को चिंता भी थी। पर उन्हें विश्वास था कि अभी ग्रह कुछ खराब चल रहे हैं, जो थोड़े ही समय में बदलनेवाले हैं और वे निश्चित ही ठीक हो जाएंगे। वे आठ दिन अस्पताल में भर्ती रहे। और सच, उनका ऑपरेशन सफल रहा और वे ठीक होकर घर चले गये।

'आदमी ज्यादा खाने से मरता है'

ऐसा ही आत्म-विश्वास मैंने आचार्य जे. बी. कृपलानी में देखा है। पिछले वर्ष वे अहमदाबाद से बीमार-हालत में यहां लाये गये थे। आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान में उनका इलाज चल रहा था। एक दिन एक डॉक्टर ने मुझे बताया कि आचार्य कृपलानी बहुत कम खाते हैं, बिलकुल 'न' के बराबर। उन्हें समझाइए।

मैं आचार्य कृपलानी के पास गया और उन्हें समझाने के खयाल से हंसते हुए कहा, "दादा, कुछ खाया-पिया करें। नहीं तो ठीक कैसे होंगे?"

आचार्य कृपलानी भी हंस पड़े। बोले, "देखो, आदमी कम खाने से नहीं मरता। ज्यादा खाने से मरता है। मेरी चिंता न करो। मैं ठीक हो जाऊंगा।"

और कुछ दिनों बाद से सचमुच स्वस्थ हो गये।

नेताओं का आत्म-विश्वास

आयुर्विज्ञान संस्थान में मुझे अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले लोगों को भी देखने का मौका मिला है। एक बात जो मुझे उन सबमें दिखायी दी, वह है उनका आत्म-विश्वास, मनोबल। उन सबमें अटूट इच्छा-शक्ति थी। यह बात और है कि ज्योतिष आदि पर विश्वास के कारण भी उनकी इच्छा-शक्ति को और बल मिलता है।

हम सब भी यथाशक्य रोगियों व उनके तीमारदारों के विश्वास और आस्था को बनाये रखने में सहायता देते हैं। कुछ डॉक्टर-जैसे डॉ. आत्मप्रकाश—तो मरीज की इच्छानुसार ही किसी निश्चित तिथि पर ऑपरेशन करते हैं। इससे परेशानी तो होती है, पर हम सब इसके अभ्यस्त हो गये हैं। (क्रमशः)

दो आदमियों में इस बात पर लड़ाई हो रही थी कि कौन उम्र में बड़ा है?

एक सज्जन ने बीच-बचाव करते हुए एक से पूछा, "जब आपके पिता का विवाह हुआ था, उस समय आपकी उम्र क्या थी?"

"तीन वर्ष!" वे झट से बोल पड़े और हंसी के बीच झगड़ा समाप्त हो गया।



वे अमरीकी हैं पर भारतीय कहलाते हैं

● अनंतराम गौड़

"द गॉडफादर' फिल्म में नायक की भूमिका अभिनीत करनेवाले मार्लन ब्रैंडो ने १९७२ का 'आस्कर' पुरस्कार लेने से इनकार करके समस्त संसार का ध्यान अमरीका के रेड इंडियनों की समस्याओं के प्रति आकृष्ट कर दिया था। मार्लन ब्रैंडो ने अमरीकन फिल्मों में रेड इंडियनों के अपमान और दक्षिण डकोटा में वूंडेड नी की घटनाओं के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के उद्देश्य से यह निर्णय लिया।

इसने लोगों में यह उत्सुकता पैदा कर दी थी कि पश्चिम के एक अत्याधिक समुन्नत लोकतंत्र में इन उपेक्षित अल्पसंख्यकों की समस्याएं क्या हैं, और उनकी प्रतिनिधि संस्था 'अमरीकन इंडियन मूवमेंट' के सदस्यों ने वूंडेड नी पर कब्जा करने-जैसा उग्र कदम क्यों उठाया?

वूंडेड नी कस्बा ओगलाला सू जनजाति के आरक्षित क्षेत्र (अर्थात कर-मुक्त भूमि) पाइनरिज में स्थित है। उक्त 'अमरीकन इंडियन मूवमेंट' के सदस्यों ने अचानक इस पर हमलाकर, इसे अपने कब्जे में करने के बाद, इसके ग्यारह निवासियों को बंधक बना लिया था। इस प्रतीकात्मक संघर्ष के लिए रेड इंडियनों द्वारा वूंडेड नी को चुनने का कारण, उनका इस

ऊपर : प्यबलो इंडियन नृत्य की एक मुद्रा



रेड इंडियन ढोल-वादक

से भावानात्मक संबंध है। रेड इंडियनों और अमरीकन सैनिकों के मध्य अंतिम संघर्ष वूंडेड नी में १८९० में हुआ था। यह कस्बा अब भी रेड इंडियनों के कब्जे में है, और उसके नेता यह कह रहे हैं कि वे प्राण दे देंगे, लेकिन कब्जा नहीं छोड़ेंगे। अमरीकी प्रशासन से इनको यह शिकायत है कि उसने रेड इंडियनों के साथ की गयी संधियों को गोरों के हित के लिए बार-बार तोड़ा, और इनकी दशा बदतर बना दी है।

इतिहास पर एक दृष्टि

समुद्री मार्ग से भारत की खोज करते हुए, जब क्रिस्टोफर कोलंबस का जहाज अमरीका के तट पर लगा, तब उसने समझ लिया कि वह इंडिया अर्थात भारत पहुंच गया है। अतएव उसका, आगे चलकर नये संसार के नाम से विख्यात होनेवाले अमरीका के इन मूल-निवासियों को, जिनका रंग तांबे-जैसा था, इंडियन की संज्ञा देना स्वाभाविक ही था। इसके बाद वास्तविक इंडिया (भारत) का पता चलने पर अमरीका के ये मूल निवासी 'रेड इंडियन' कहलाये जाने लगे।

संयुक्त राज्य अमरीका में आज लगभग दस लाख रेड इंडियन रहते हैं, जो 'ढाई सौ से अधिक विभिन्न जनजातियों के सदस्य हैं। अमरीका के दक्षिण-पश्चिम में रहनेवाले नेवाहो इंडियनों की संख्या एक लाख से अधिक है, जो अन्य समस्त जनजातियों से ज्यादा है।

हिरन और जंगली भैंसों का शिकार, ये रेड इंडियन बड़े शौक से करते थे। इनके शिकारियों, योद्धाओं और व्यापारियों ने जिन मार्गों का इस्तेमाल किया था, उन पर अब सड़कों और रेलों का जाल बिछाया जा चुका है। अमरीका में सबसे पहले इनके ही किसानों ने अनाज, आलू तथा कई अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थों की खेती शुरू की थी।

जुल्मों की कहानी

अपाके, चेयेनें, ब्लैकफुट, कमांडे, ओगाला एवं सियोक्स जैसी अनेक जनजातियों के पास गोरों द्वारा उनसे की गयी संधियों को तोड़ने, और उन पर जुल्म ढाने के अनगिनत किस्से हैं। रेड इंडियनों की समस्याओं और इतिहास का निकट से विशिष्ट अध्ययन करनेवाले अंग्रेज

लेखक चार्ल्स फाले के अनुसार सन १८९० के बड़े दिन पर उनकी पत्नियों और बच्चों के साथ लगभग ३०० निहत्थे सियोक्स रेड इंडियनों की हत्या करने के पुरस्कार-स्वरूप अमरीकन सैनिकों के एक दस्ते को 'मेडल ऑव आनर' दिये गये थे।

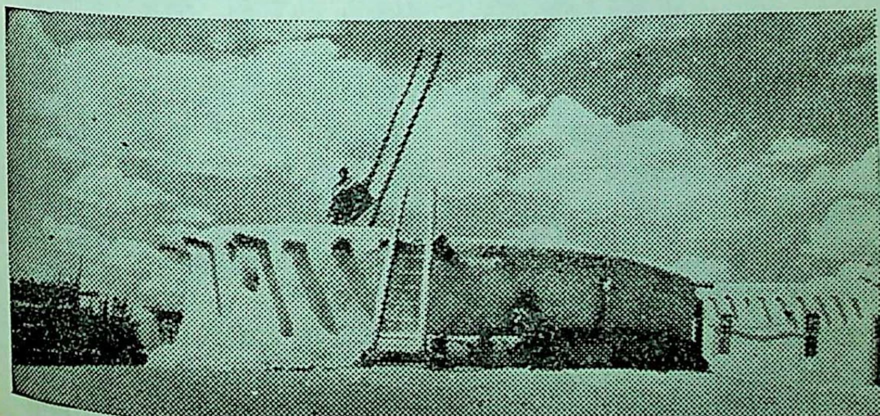
चार्ल्स फाले के ही अनुसार सन १६२० में जब अंगरेजों ने अमरीका की धरती पर पहले पांव रखा ही था, तब इन रेड इंडियनों ने ही इनको भूखों मरने से बचाया था। फिर ६० वर्षों के अंदर केवल वे ही इंडियन बच सके थे, जिनको गुलाम बनाकर बेच दिया गया था; शेष सबका सफाया कर दिया गया। अमरीकन क्रांति के बाद संयुक्त राज्य की कांग्रेस (संसद) ने इंडियनों को समानता के अधिकार दिये तथा इस बात पर भी कांग्रेस ने अपनी सहमति व्यक्त की कि उनके अधिकारों और राज्य-क्षेत्रों का अब आगे अतिक्रमण नहीं किया जाएगा।

अत्याचारों पर भारी खर्च

'इंडियंस ऑव द अमेरिकाज' नामक अपनी पुस्तक में इंडियन अफेयर्स के भूतपूर्व कमिश्नर जॉन कोलियर ने यह स्वीकार किया है कि सन १८४९ तक, जब ब्यूरो ऑव इंडियन अफेयर्स युद्ध विभाग के अधीन रहा, तब तक सेना अपने 'जनजातीय समाजों का अवश्यमेव उन्मूलन करना है' के अघोषित निर्णय पर कार्य करती रही। इसी वर्ष से यह विभाग गृह विभाग के अधीन आ गया, लेकिन इस ब्यूरो के स्थानांतरण से नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गृह विभाग ने 'इंडियनों के उन्मूलन' के कार्य को सन १९३० के दशक तक पूरी मुस्तैदी से जारी रखा।

जॉन कोलियर ने आगे बताया है कि सन १८६२ और १८६७ के बीच सियोक्स, चेयेने और नेवाहो जनजातियों से हुए युद्धों में ही अकेले संयुक्त राज्य सरकार को

प्यबलो गांव का एक घर



१० करोड़ डालर का खर्च वहन करना पड़ा था। सन १८६८ में इंडियन अफेयर्स के कमिश्नर द्वारा लगाये गये एक अनुमान के अनुसार प्रति इंडियन को मारने का खर्च उस समय १० लाख डालर चल रहा था। फिर भी 'इंडियनों से भूमि छीननी है और इंडियन समाजों का सफाया करना है' संबंधी सरकार के निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं आया था।

अधिकतर इंडियन अपने नाम गोरों जैसे ही रखते हैं। ऐसी ही एक अपने प्रयासों से सुशिक्षित रेड इंडियन महिला श्रीमती स्टेला लीच, जो पेशे से नर्स हैं, ने चार्ल्स फाले को बताया कि इस बात से सभी सहमत हैं कि बेहतर शिक्षा से इंडियनों के जीवन को सुधारा जा सकता है। लेकिन यह तिरस्कृत और गोरों से भरे 'ब्यूरो ऑव इंडियन अफेयर्स' ने इंडियनों के लिए एक ऐसे कृत्रिम संसार की रचना कर दी, जो उनको नष्ट करने पर ही उतारू है। 'इंडियन तो अकरीका के युद्धबंदी हैं, और ब्यूरो ऑव इंडियन अफेयर्स उनका प्रहरी' श्रीमती लीच ने इस बारे में अपना यह मत व्यक्त किया।

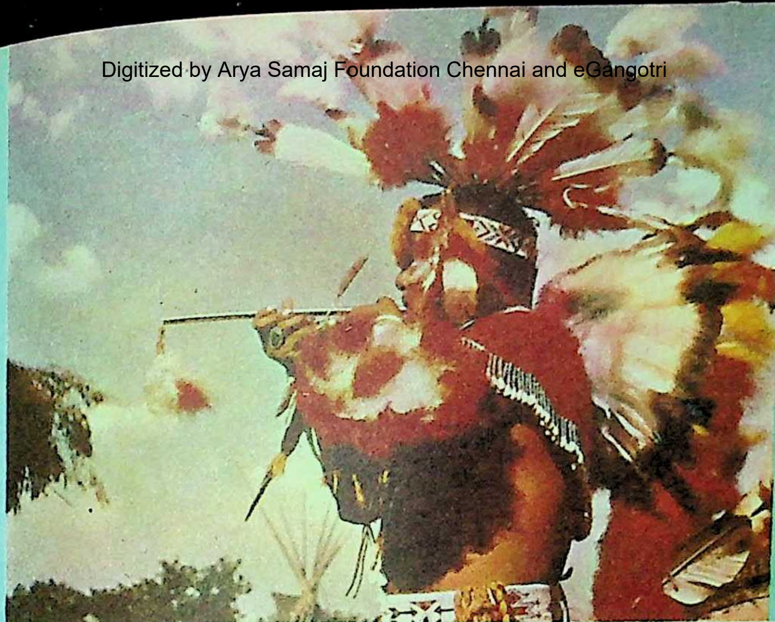
ब्रिटिश संग्रहालय के पुस्तकालय में रेड इंडियनों से संबंधित उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों में एक पत्र क्रिस्टोफर कोलंबस का मिलता है, जो उसने सन १४९२ में यहां उतरने के तुरंत बाद स्पेन के राजा को लिखा था। उसके एक अंश में लिखा गया है—'इतने सरल और विनीत तथा शांतिप्रिय हैं ये लोग कि इनसे बेहतर लोग संसार में अन्यत्र नहीं मिलेंगे। वे अपने पड़ोसी को अपनी ही तरह प्यार करते हैं, उनकी बातें बड़ी मजेदार होती हैं, यद्यपि यह सच है कि वे नंगे रहते हैं, लेकिन उनका आचार-व्यवहार बड़ा शिष्ट और प्रशंसनीय है।'

अमरीकन जनरल का विरोध

एक शताब्दी बाद अंगरेज उपनिवेशवादियों ने भी इन्हें अपना शिकार बनाया। प्लिमथ के गवर्नर ने ऐसे ६०० रेड इंडियनों को, जिन्हें वे दानव कहते थे, जिंदा जलवा दिया।

इस भीषण नरसंहार को देखकर जनरल सैंडबोर्न-जैसे सहृदय गोरे अमरीकी तक ने वाशिंगटन प्रशासन से इन शब्दों में विरोध प्रकट किया था—'एक घुमंतु छोटी-सी बंजारा जाति के विरुद्ध इतने शक्तिशाली राष्ट्र के लिए इस स्तर पर युद्ध का संचालन करना बड़ा अपमानजनक है; यह एक राष्ट्रीय अपराध है, जो इतना दमनकारी है कि एक न एक दिन हम पर या हमारे बच्चों पर दैवी प्रकोप अवश्य लाएगा।' फिर भी सैंडबोर्न ने शेष चेयेने जनजाति को नष्ट करने में सेना की भरपूर सहायता की और सन १८९० में वूंडेड नी के सुनियोजित नरसंहार को इतिहास में अंकित कर दिया।

—सी. २ बी./११२ सी, जनकपुरी,
नयी दिल्ली-५८



परंपरागत वेशभूषा में एक किओवा--बांसुरीवादक

चटक रंगों का संसार : रंग भरता एक सेमीनोला चित्रकार

विश्व पुस्तक
के अवसर प
विशेष

क्या खुशहाल नहीं है प्रकाशन जगत

भारतीय पुस्तक-जगत इस समय एक गंभीर संकट से गुजर रहा है। कागज का दिनों-दिन बढ़ता अभाव, मुद्रण की बढ़ती दरें और इनके फलस्वरूप पुस्त की बढ़ती कीमतों से सिकुड़ता बाजार—इस तरह पुस्तक-जगत के सामने नहीं, अनेक समस्याएं हैं। नयी दिल्ली में २९ फरवरी से ९ मार्च तक आ विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर यहां प्रस्तुत हैं—पुस्तक-जगत से लोगों—लेखकों, प्रकाशकों और विक्रेताओं की समस्याएं—

समस्याएं एक नहीं, सैकड़ों

—अरविन्द कुमार

(राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली)



किसी भी अन्य व्यवसाय की तरह प्रकाशन-व्यवसाय की भी सैकड़ों समस्याएं हैं। इनके बारे में कुछ ही पंक्तियों में लिखना संभव नहीं है। हिंदी में कथा-साहित्य तथा सामान्य पाठकों के लिए साहित्येतर विषयों के प्रकाशन की सबसे बड़ी समस्या है पुस्तकों को कम मूल्यों पर पुस्तक-प्रेमी पाठकों तक पहुंचाना। देश के छोटे से छोटे शहर में भारतीय तथा विदेशी पाकेट—बुक्स के विक्रेता तो हैं, हिंदी की पुस्तकों के विक्रेता नहीं। पूरे देश में फैले हिंदी पुस्तकों के एक विशाल पाठक समूह को पुस्तकें सुलभ नहीं होतीं। मिलते हैं केवल विदेशी उपन्यास, और हिंदी की ऐसी पाकेट–बुक्स जिनमें से अधिकांश के लेखक नकली हैं और जो केवल एक बिक्री के फार्मूले के आधार पर लिखी जाती हैं।

पाठकों तक पुस्तकें पहुंचाने के इस प्रयास में बाधा बनती है कागज, छपाई, जिल्दबंदी तथा डाक की बढ़ती हुई दरें। न चाहते हुए भी हम पुस्तकों के मूल्य अधिक रखने पर बाध्य हो जाते हैं और इससे हमारे और पाठकों के बीच की दूरी और भी अधिक हो जाती है। ●

बढ़ते हुए मूल्य और अच्छी पुस्तकों का अभाव

—विश्वनाथ

(राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली)

अनेक कारणों से पिछले कुछ वर्षों में पुस्तकों की बिक्री दुनियाभर में कम हुई है। भारत में भी ऐसा होना स्वाभाविक है, विशेष रूप से इसलिए, क्योंकि यह गरीब देश है और मध्यम वर्ग के जो लोग पुस्तकों में रुचि रखते हैं, वे उनको खरीद सकने में समर्थ नहीं होते। पुस्तकों के मूल्य यदि आवश्यकता से अधिक न बढ़ते, तो शायद स्थिति इतनी न बिगड़ती, जितनी कि वह बिगड़ गयी है।

साहित्यिक रचनाओं का अभाव

लेकिन पुस्तकों की बिक्री घटने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हमारे जीवन से पुस्तकें ही कम हो गयी हैं। कम हुआ है, पढ़ना। इसलिएअ नावश्यक पुस्तकों की छपाई कम हो जाए और वे ही पुस्तकें छपें, जिनका जीवन में उपयोग है। जिसे हम 'साहित्य' कहते हैं, उस पर शायद इसका कुछ असर पड़ सकता है। लोगों को शिकायत है कि साहित्यिक रचनाएं प्रकाशक नहीं छापते--परंतु इसी का दूसरा पहलू यह भी है कि अच्छा साहित्य लिखा ही नहीं जा रहा और यह स्थिति संसार के सभी देशों में एक समान है।

हुआ यह है कि बदली हुई परिस्थिति को प्रकाशक तथा पाठक कोई भी ठीक से हृदयंगम नहीं कर सका है। मैं यह मानता हूं कि हमारे देश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए, किताबों की कीमतें कम से कम ही रखी जानी चाहिए।

क्या, जो किताब हम दस रुपये की बेचते हैं, उसे पांच रुपये में बेचा जा सकता है? हम जानते हैं कि कागज और जिल्द किताब का मूल्य बढ़ाने में सबसे ज्यादा योग देते हैं। यह जरूर है कि सस्ते कागज पर न छपाई बहुत अच्छी आएगी न देखने में किताब सुंदर लगेगी। पर किताब सस्ती काफी होगी और ज्यादा लोग उसे खरीदने में समर्थ हो सकेंगे।

प्रकाशकों का दोष !

ऐसी स्थिति में होता यह है कि लेखक स्वयं प्रकाशक को बुरा-भला कहता है। किताब के जो रिव्यू छपते हैं, उनमें इस बात को रेखांकित किया जाता है कि किताब देखने में खराब लगती है। यह ध्यान कोई नहीं देता कि किताब सस्ती है।

किताब पर लगी कोई भी दफ्ती की जिल्द डेढ़-दो रुपये से कम की नहीं होती। इससे ज्यादा भी हो सकती है। अब यदि दो रुपये ही किताब की लागत भी हो, तो कुल लागत चार रुपये हो जाती है और--चौगुने मूल्य के नियम के अनुसार--किताब की कीमत पंद्रह-सोलह रुपये रखनी पड़ती है। यदि जिल्द दफ्ती की न रखकर सादा ही रहने दी जाए और उसका मूल्य पचास पैसे हो तो उसी किताब की कीमत नौ-दस रुपये से ज्यादा न होगी।

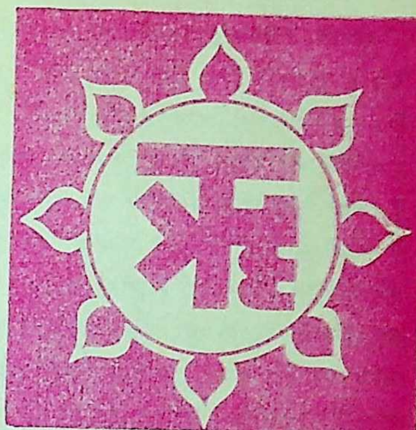
ऐसा नहीं कि ऐसे पेपरबैक भारत में चले नहीं हैं, परंतु अभी तक अच्छे साहित्य के लिए उनको मान्यता नहीं मिल पायी है। पेपरबैक अपने देश में चटपटी कथा-कहानियों के लिए सीमित होकर रह गया है।

मुझे लगता है कि अपने देश में किताबों की बिक्री बढ़ाने की दृष्टि से अभी तक कुछ नहीं किया गया है।

पुस्तकों की बिक्री न बढ़ने के कई कारण हैं। कैसी पुस्तकें छप रही हैं, इसकी जानकारी लोगों को नहीं होती। भारत में दरजन भर बड़ी भाषाएं हैं और सबमें अच्छी-अच्छी पुस्तकें बराबर छपती हैं,

'ऋ' का आधार है ऋत, अर्थात वह शाश्वत व्यवस्था, जो अराजकता और भ्रम को संतुलन और सुंदरता में बदल देती है। इसी शाश्वत व्यवस्था ने वाक् को भी जन्म दिया। ज्ञान और सत्य को अपने में सहेजकर यह व्यवस्था मानवता को हर भोर को प्रकाश से भरती रहेगी।

अज्ञान और ज्ञान से ज्योतिर्मय करने का माध्यम है—मुद्रित शब्द।



परंतु किसी को पता नहीं चल पाता कि किस भाषा में क्या छप रहा है?

पुस्तक मेले में विदेशी प्रकाशक

गत कुछ वर्षों से देश में पुस्तक मेले तथा प्रदर्शनियां भी बड़े पैमाने पर ही हो रही हैं, परंतु उनसे भारतीय पुस्तक-व्यवसाय को कुछ विशेष लाभ हुआ है, इसमें मुझे संदेह ही होता है। पहली बात तो यही कि इनका संगठन जिस प्रकार का होता है, उनमें भारतीय पुस्तकें एकदम दब जाती हैं और विदेशी प्रकाशकों की पुस्तकें चमककर सामने आ जाती हैं। भारत सरकार पुस्तकों के विकास को महत्त्वपूर्ण नहीं समझती।

किताबों की बिक्री बढ़ाने के लिए जो भी उपाय संभव हों, किये जाने चाहिए। जब मैं छोटा था, लोग किताबों के गट्ठर बांधकर घरों में बेचने के लिए आते थे। क्या अब घर की जरूरी चीजों की तरह दोपहर के बाद लड़कियां घर-घर जा कर, किताबें नहीं बेच सकतीं? ●

बिक्री और कमीशन की समस्या

—राजेन्द्रशंकर भट्ट
(स्फटिक प्रकाशन, जयपुर)

चूंकि प्रकाशक पूर्णतः व्यवसायी **होता** जा रहा है, उसके सामने **मुख्य** समस्या अपने प्रकाशनों की **बिक्री बढ़ाना** हो गयी है। समाज और समय **की आव-श्यकता** से प्रकाशक कटते जा **रहे हैं। तब-**मन की उथलपुथल और उतेजना **में उलझते** जा रहे हैं। अधिकाधिक **प्रकाशन मनुष्य** को ऊपर उठाने का दायित्व **निभाने में** असफल हो रहे हैं।



ऐसा नहीं है कि ऐसे प्रकाशन प्रस्तुत नहीं हो सकते, शिकायत यह है कि इनकी बिक्री नहीं होती।

दूसरे, हिंदी प्रकाशनों पर कमीशन देने के दर की कोई सीमा ही नहीं रही है। इसने विवाद, विसंगति और विकृति से सारे प्रकाशन जगत को आलिप्त कर दिया है। सब कुछ नीचे से नीचे जा रहा है।

जो उपयोग के लिए पुस्तक लेता है, उसे कोई कमीशन नहीं मिलना चाहिए—यह स्थिति स्वास्थ्यप्रद विकास के लिए आवश्यक है। दूसरे, एक चिंतनकर्ता समुदाय होना चाहिए, जो यह बताता रहे कि क्या प्रकाशित होना चाहिए, और जो प्रकाशित हो, उसका निष्पक्ष मूल्यांकन करता रहे। तीसरे, प्रकाशक को अपने सामाजिक दायित्व का बोध सदा रहना चाहिए—वह राष्ट्र के अतीत और राष्ट्र की आकांक्षा को सामने लानेवाला है—आज राष्ट्र की क्या स्थिति है, यह बताने वाला है। नितांत व्यवसायी दृष्टिकोण से यह दायित्व नहीं निभाया जा सकता। ●

प्रकाशन व्यवसाय नहीं, कला

—मूलचंद गुप्त
(पंचशील प्रकाशन, जयपुर)



पुस्तक प्रकाशन मात्र व्यवसाय नहीं है। मेरी दृष्टि में वह एक दायित्व-पूर्ण कला है और हर कला समस्याओं से आक्रांत रहती ही है। आज प्रकाशन तेजी से हो रहे हैं, पर उतनी तेजी से समस्याएं भी आ रही हैं। कागज की महंगी दरें, प्रेस-व्यवस्था की दायित्वहीनता, स्तरीय लेखन का अभाव और पुस्तक-विक्रय के मार्ग की बाधाओं ने प्रकाशन-जगत को समस्याओं के कटघरे में खड़ा कर दिया है। प्रकाशन का कार्य मात्र किसी प्रकाशक का ही दायित्व नहीं है। उसे लेखक, पाठक, प्रेस, सरकार, शिक्षा-संस्थानों सभी के एकजुट सहयोग की अपेक्षा होती है।

प्रायः कहा जाता है कि आज पाठक नहीं हैं। मैं सोचता हूं, पाठकों की कमी नहीं है, कमी है उचित मूल्य पर मिलने-वाले कागज की, उन सभी के सहयोग की, जो प्रकाशित साहित्य को वितरित और प्रसारित करने में योग दे सकते हैं। पाठ्य पुस्तकों के लिए ही नहीं, सभी प्रकार की स्तरीय पुस्तकों के प्रकाशन के लिए भी कागज पर्याप्त मात्रा में ठीक दरों पर मिले तो पुस्तकों का मूल्य कम होगा और जब ऐसा होगा तो विक्रय बढ़ेगा, पाठक बढ़ेंगे। एक बात और विक्रय के साथ ही पुस्तक-कमीशन की पद्धति को भी मर्यादित होना चाहिए। ●

पुस्तकों और पाठकों के बीच दरारें

——कृष्णचंद्र बेरी

(हिंदी-प्रकाशन संस्थान, वाराणसी)



विश्व पुस्तक मेले का चिह्न

अपने पचास वर्षों के प्रकाशकीय जीवन के आधार पर कह सकता हूं कि देश में पुस्तकें पढ़ने की इतनी बड़ी भूख की मैंने कल्पना नहीं की थी। किंतु पुस्तकों के बेतहाशा बढ़ते मूल्य तथा डाक की दरें पाठक और पुस्तकों के बीच बहुत बड़ी दरार बन गये हैं। कागज की महंगाई और अच्छे कागज का सुलभ न होना, एक दूसरी अहम समस्या है।

हिंदी प्रकाशन-जगत अभी तक समाचार-पत्रों की अपेक्षित सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सका है। पुस्तक-विक्रेताओं का अभाव तो है ही, उनके यहां हिंदी-पुस्तकों के स्टाक के अभाव में पुस्तकालय अंगरेजी की पुस्तकें खरीद लेते हैं। नियोजित रूप में काम न करना, सूची-सेवा एवं प्रचार माध्यमों की कमजोरी और वितरण व्यवस्था में खामी विचारणीय है। थोड़ी-सी सूझबूझ और साहस से काम लिया जाए तो पुस्तकों की बिक्री चौगुनी हो सकती है।

परिष्कृत रुचि बनाने के लिए प्रकाशकों को सस्ती-भोंडी किस्म की पुस्तकें नहीं छापनी चाहिए। रुचि परिष्करण ही पाठकों की संख्या में वृद्धि करेगा। प्रारंभ में सस्ती किस्म की पुस्तकें अधिक बिकती तो दिखायी देती हैं, किंतु इससे स्थायी पाठक नहीं बनते।

सरकारी खरीद के चक्रजाल से जब तक बाहर निकलकर प्रकाशक सामान्य पाठकों तक पहुंचने की चेष्टा नहीं करेंगे; भारतीय प्रकाशन-जगत समुन्नत नहीं होगा। पुस्तकों में कमीशन की होड़, जायज-नाजायज तरीकों से पुस्तकें बेचना और उसके परिणामस्वरूप पुस्तकों के मनमाने दाम रखना——एक बीहड़ समस्या है, जिससे निपटने के लिए किसी भी ईमानदार प्रकाशक को सही रास्ते के लिए संघर्ष करना पड़ेगा।

हिंदी में संदर्भ-ग्रंथ और बड़े लेखकों की रचनावलियों की खोज है। मराठी और बंगला के प्रकाशकों का अनुकरण हिंदी के प्रकाशकों को करना चाहिए, और देखना चाहिए कि इन भाषाओं में क्यों कम मूल्य में पुस्तकें सुलभ हैं? सरकार को इन दोनों तरह के ग्रंथों के लिए सस्ते मूल्य का कागज प्रकाशकों को देना चाहिए। विभिन्न भाषाओं के अच्छे प्रकाशन हिंदी में अनूदित हों, मूल के साथ ही प्रकाशित हों, ऐसी समय की मांग है। ●

स्वदेशी प्रकाशनों का विकास



• नरेंद्र कुमार
(विकास पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली)

पुस्तक-प्रकाशन के संदर्भ में मैं अपनी बात इस तथ्य से शुरू करूंगा कि यह उद्योग ज्ञान के आधुनिकतम पहलुओं से संबद्ध एक प्रक्रिया है। यही कारण है कि रेडियो, टेलिविजन तथा प्रचार-प्रसार के अनेक माध्यमों के बावजूद यह प्रकाशन अपनी महत्ता एवं उपयोगिता के आधार पर अब भी प्रगति कर रहा है। पुस्तक-प्रकाशन के संदर्भ में कुछ मुख्य कठिनाइयां भी हैं और प्रकाशक लगातार उनका अनुभव करते हैं। जैसे—हमारे देश के जन-मानस के एक बहुत बड़े भाग का अशिक्षित होना। बहुभाषी देश होने के कारण प्रत्येक भाषा के पाठक-वर्ग का सीमित होना। लोगों में अपने निजी पुस्तकालयों को बनाने की प्रवृत्ति का अभाव। पाठकों की आर्थिक-क्षमता का कमजोर होना। विदेशी प्रकाशनों की अनियंत्रित बाढ़। पुस्तकालयों में कोष की कमी। विद्यालयीन-पुस्तकों का राष्ट्रीयकृत होना। (किसी अन्य विकसित देश में विद्यालयीन पुस्तकों का प्रकाशन राष्ट्रीयकृत नहीं हैं)। कागज का बेहद महंगा होना।

इन कठिनाइयों के होने के बाद भी हमारे देश का प्रकाशन-उद्योग विकासशील देशों में सबसे आगे है। विकसित देशों में हमारा पुस्तक-प्रकाशन विश्व में तीसरे स्थान पर आता है। भारत में पुस्तक-प्रकाशन से जुड़े प्रकाशकों की संख्या अनुमानतः दस हजार है।

इस व्यवसाय के विकास के लिए मैं यह आवश्यक मानता हूं कि इसे देश में एक स्वस्थ्य वातावरण मिले, तभी पुस्तकों का यह संसार समाज में कुछ प्रभावी भूमिका निभा सकता है। पुस्तक प्रदर्शनी एवं पुस्तक-मेले इस वातावरण को बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रम भारत के प्रत्येक शहर एवं कस्बों में आयोजित किये जाने चाहिए।

किसी भी देश का विकास तभी संभव है, जब वहां के स्वदेशी-प्रकाशनों को विकसित किया जाए। तभी उस देश के रचनाकारों को अभिव्यक्ति मिल सकती है और उस देश की संस्कृति एवं साहित्य का विकास हो सकता है। •

एक आत्मघाती समस्या

—लक्ष्मीचंद्र जैन
(भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली)



प्रकाशन-जगत की समस्याओं से साक्षात्कार करना, उन्हें भोगना और पाठकों के लिए उन्हें प्रस्तुत करना, दो दूर के छोर हैं। प्रकाशन-जगत की समस्याओं को मोटे रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. हिंदी का प्रकाशन-जगत, २. अंगरेजी का, और ३. अन्य भारतीय भाषाओं का।

हिंदी-प्रकाशन की स्थिति आज कितनी संकटपूर्ण है, इसकी चर्चा बहुत हुई है, होगी और 'कादम्बिनी' के इस अंक में भी उन पहलूओं की चर्चा आपको विस्तार से मिलेगी। वह पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है, यह मैं मानता हूं। किंतु जो एक उज्ज्वल और आशाप्रद पक्ष है, उसकी भी चर्चा हो, ताकि पूरे संवाद को संतुलन मिले, यह आवश्यक है। आबादी की औसत वृद्धि के साथ, शिक्षा-प्रसार के साथ प्रौढ़ों को शिक्षित करने के उपक्रम के साथ, महिलाओं और बालकों की समस्याओं पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार-चर्चाओं के साथ, हिंदी प्रकाशन-जगत में एक अभूतपूर्व चेतना का सचार हुआ है, जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रकाशकों के साथ-साथ अनेक मध्य-वित्तीय और थोड़े-से साधनों को जुटाकर साहस के साथ आगे बढ़नेवाले अनेक नये प्रकाशक सामने आये हैं। आज बाल-साहित्य का चित्र पिछले दस क्या, पांच साल पहले के चित्र से भी अनुपाततः कहीं अधिक समुज्ज्वल हो गया है। इस के फलतः एक ओर पाठकों की सेवा-संख्या के विस्तार के कारण प्रकाशकों में उत्साह भरा है, और दूसरी ओर घंटिया साहित्य को प्रश्रय देकर—घटिया ही नहीं, कामोत्तेजक और हिंसात्मक घटनाओं के विवरण को रसात्मक बनाकर पाठकों की चेतना को कुंठित किया है। इस प्रकार का साहित्य समाज को अपनी व्यावसायिकता का लक्ष्य बनाकर साहित्य के स्तर को गिरा रहा हैं, उसकी छवि को धूमिल कर रहा हैं। हां, हिंदी-प्रकाशन को 'व्यवसाय' के रूप में संगठित करने की नयी क्षमताओं का उदय हुआ है। इन क्षमताओं का उपयोग साहित्य को अधिक से अधिक वासनापूर्ण और उत्तेजक बनाने की होड़ में संलग्न है।

जिन लेखकों ने ऐसा साहित्य रचकर लाखों रुपये कमाये हैं, वे भी अपना नाम गुणात्मक रूप से 'अच्छे' लेखकों में शामिल करवाने का प्रयत्न करते हैं।

हिंदी-प्रकाशन जगत की एक आत्मघाती समस्या का जिक्र मैं अंगरेजी प्रकाशन-जगत के संदर्भ में करना चाहता हूं। हिंदी के प्रकाशकों में होड़ है, उन्हें टकराने के लिए मजबूर किया जाता है, कि वह सरकारी खरीद के लिए अधिक से अधिक कमीशन दें। खरीद का भी सबसे बड़ा स्रोत सरकारी अनुदान है। अंगरेजी प्रकाशक संगठित हैं। वे कमीशन की दरों पर प्रायः सर्व-सम्मत रहते हैं—निर्णय में भी और क्रियान्वयन में भी। सरकारी कमेटियों और अखिल भारतीय प्रकाशकों के सामूहिक संस्थाओं में अंगरेजी प्रकाशकों का ही वर्चस्व है। ●

बाल-साहित्य: कुछ प्रश्नचिह्न

——सुभाष जैन

(शकुन प्रकाशन, नयी दिल्ली)

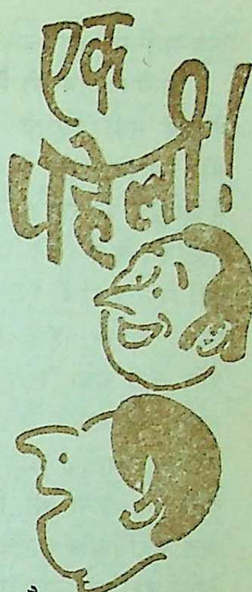
हिंदी में प्रस्थापित लेखकों व प्रकाशकों, दोनों ही की ओर से बाल-साहित्य की उपेक्षा हुई। लेखकों ने इसे बचकाना समझा, प्रकाशकों ने घाटे का सौदा। कारण कुछ भी हो, बाल-साहित्य को वांछित प्रोत्साहन नहीं मिला।

सर्वप्रथम अच्छी पांडुलिपि प्राप्त-करना ही एक समस्या है। वस्तुतः बाल-मनोविज्ञान और बाल साहित्य लेखन की तकनीक के जानकार लेखक इने-गिने ही



हैं। यही बात चित्रकारों के संबंध में भी कही जा सकती है। लेखक व चित्रकार में आवश्यक तालमेल बैठाना प्रकाशक का दायित्व है ही। कागज, छपाई तथा प्रसार-प्रचार के बढ़ती कीमतों ने यों तो संपूर्ण प्रकाशन-जगत को प्रभावित किया है, पर बाल-साहित्य के प्रकाशकों को अधिक। वह अपनी पुस्तकों का मूल्य नहीं बढ़ा सकता। अन्यथा बिक्री की समस्या जो पहले ही काफी जटिल थी, भयंकर रूप धारण कर लेगी। वैयक्तिक खरीद नगण्य होने के कारण बाल-साहित्य प्रकाशन सरकारी खरीद पर निर्भर है। खेद है कि बाल-वर्ष में यह खरीद १० प्रतिशत भी नहीं रही। बाल-वर्ष के अंतर्गत इक्के-दुक्के प्रकाशनों के अलावा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सका। बाल-वर्ष में बाल-साहित्य की ऐसी उपेक्षा? तब तो बाल-साहित्य के भविष्य के बारे में गंभीरता-पूर्वक विचार करना होगा। सरकारी स्तर पर भी इसके प्रोत्साहन को प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए। ●





हास्य-व्यंग्य

• कन्हैयालाल कपूर

जब आप मेरे कमरे में प्रविष्ट होते हैं, तो आपको सामने की दीवार पर एक उल्लू का चित्र दिखायी देता है। इसे गौर से देख लीजिए तथा याद रखिए कि मेरे कमरे में इसके अतिरिक्त और कोई अन्य चित्र नहीं। यह चित्र मेरे मित्रों के लिए एक पहेली बना हुआ है। जब मेरा कोई मित्र पहली बार मुझसे भेंट करने के लिए आता है, तो दो-एक मिनट तक इस चित्र को देखने के बाद कह उठता है, "अरे भाई रशीद! यह क्या मजाक है।"

"मजाक नहीं साहब! यह तो उल्लू है।" मैं अत्यंत गंभीरता से उत्तर देता हूं।

"उल्लू! यह तो अत्यंत अशुभ पक्षी है। इसका चित्र आपने . . .।"

"देखिए महोदय! सब उल्लू अशुभ नहीं होते। विशेषकर यह उल्लू तो कदापि नहीं। जब से मैंने यहां इसका चित्र लटकाया है, मुझे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई है।"

"अच्छा, तो इसका मतलब यह हुआ कि यह चित्र एक प्रकार का जादू या टोना है।"

"कुछ भी समझ लीजिए। मुझे गणित-विषय में सदैव अंडा मिला करता था, परंतु जब से यह उल्लू मेरे कमरे में आया है, मैं गणित में प्रथम आने लगा हूं।"

"सचमुच, तब तो इस चित्र की कद्र करनी चाहिए।"

"जी हां! काफी कद्र कर रहा हूं। प्रति दिन सुबह उठकर उसे बड़े अदब से सलाम करता हूं।"

"उल्लू को सलाम करते हो! विचित्र बात है।"

"जरा भी विचित्र बात नहीं। जीवन में जिन लोगों को अकसर सलाम किया जाता है, वे भी यही कुछ होते हैं।"

"जो भी हो, मैं नहीं मानता कि उल्लू को सलाम किया जाए।"

"तो मत कीजिए। सलाम की बजाय

'गुड-मार्निग' कह लिया कीजिए।"

प्रत्येक मित्र को मैं इस उल्लू के बारे में एक नयी कहानी घड़कर सुनाता हूं और उसकी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह सच है या झूठ। एक मित्र के बल देने पर कि मैंने यह चित्र क्यों लगा रखा है, मैंने उसे बताया, "आप शायद जानते होंगे कि गांधीजी अपने पास तीन बंदर रखा करते थे, जिन्हें वे अपना गुरु मानते थे। उनमें से एक बंदर का कथन था कि 'कोई बुरी बात मत सुनो', दूसरे का कहना था कि 'कोई बुरी बात मत कहो', और तीसरे का आदेश था कि 'कोई बुरी बात मत देखो'। मैंने तीन बंदरों के स्थान पर इस उल्लू को अपना गुरु बना रखा है।"

"अच्छा, इस उल्लू के क्या-क्या आदेश हैं?" मेरे मित्र ने प्रश्न किया।

"इस उल्लू के भी सिर्फ तीन आदेश हैं। पहला यह कि उल्लू मत बनो, नहीं तो लोग हंसी उड़ाएंगे। दूसरा यह कि किसी को उल्लू मत कहो, नहीं तो झगड़ा हो जाएगा और, तीसरा यह कि हमेशा अपना उल्लू सीधा करने का प्रयत्न किया करो क्योंकि, इसी में फायदा रहता है।"

"बहुत अच्छे! तब तो यह उल्लू बड़े काम का है।"

"जी हां! नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी कि किसी कोयल की बजाय इस उल्लू का चित्र टांगता।"

एक बार मैंने इसी उल्लू के लिए यह कहानी घड़ी कि हमारे परिवार के एक बुजुर्ग बड़े ख्यातिप्राप्त कलाकार हुए हैं, यह उनकी ही कला का नमूना है।

"आश्चर्य! आपके बुजुर्ग ने अपनी तूलिका का जोर उल्लू बनाने पर लगाया।"

"जी हां, वे मानते थे कि संसार में अधिकांश लोग उल्लू होते हैं। कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति उनसे अपना चित्र बनाने का अनुरोध करता, तब वे उल्लू का चित्र बनाकर कहते, 'लीजिए, चित्र हाजिर है'।"

"बड़े जिंदादिल थे आपके बुजुर्ग!"

"इसमें क्या शंक है कि यह चित्र एक महान शाहकार है और वास्तव में एक करोड़पति का है। उसके पास अनंत धन था, लेकिन अक्ल बिलकुल नहीं थी।"

"तो क्या इस करोड़पति ने यह चित्र स्वीकार कर लिया।" "जी, नहीं। यदि स्वीकार कर लेता तो, फिर यहां कैसे होता? उसने तो हमारे बुजुर्ग पर मुकदमा चलाने की धमकी दी।"

"तब आपके बुजुर्ग ने क्या किया?"

"उन्होंने कहा, बड़ी खुशी से मुकदमा दायर कर लीजिए। हर समझदार अदालत मुझसे सहमत होगी कि मैंने आपका सही चित्र बनाया है।"

कुछ दोस्तों की सेवा में यह तर्क पेश करता हूं, "देखिए जनाब, यह तसवीर आपके लिए नहीं, आनेवाले उल्लू के लिए है।"

"वह कैसे?" "जब कोई पहली बार

इस कमरे में आता है, तब दुआ-सलाम के बाद जब उसे कोई उपयुक्त बात करने के लिए नहीं सूझती, तब यह चित्र उसके काम आता है ।"

"वह कैसे ?"

"वह इस तरह कि वह चित्र की ओर संकेत करके पूछता है, 'यह किसका चित्र है', और मैं मुसकराकर उत्तर देता हूं, यह मेरा चित्र है।"

"आपका ? नहीं, नहीं । यह चित्र आपका नहीं हो सकता ।"

"यदि मेरा नहीं, तब फिर आपका होगा ?"

"वह घबरा-सा जाता है और कहता है, 'यह तो उल्लू का चित्र है'।"

"मेरा भी यही विचार है ।"

"यह आपने क्यों लगा रखा है ?"

"ताकि इसके संबंध में बातचीत की जा सके ।"

"परंतु आप किसी प्रसिद्ध पक्षी का चित्र भी लगा सकते थे ?"

"मेरे विचार में उल्लू से श्रेष्ठ कोई पक्षी नहीं है ।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"बिलकुल ठीक कह रहा हूं। देखिए, जब आप कोई हरकत करते हैं जो कि आप को नहीं करनी चाहिए थी, तब बेचारे उल्लू को कोसा जाता है।"

"कैसे ?"

"लोग आप से कहते हैं, 'उल्लू कहीं का ।' हालांकि, इसमें उल्लू का बिलकुल कोई कसूर नहीं होता है !"

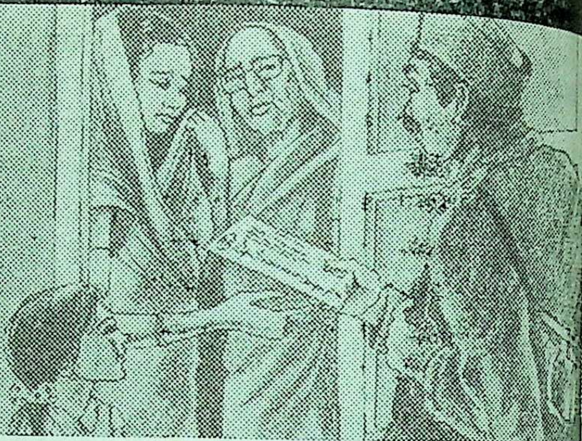
"आनेवाला खामोश हो जाता है, बगले झांकने लगता है। फिर हड़बड़ाकर कहता है, 'अच्छा मुझे जाने की अनुमति दीजिए'।"

तो इसीलिए मैंने इस उल्लू के संबंध में दरजनों-दरजनों किस्से मशहूर कर रखे हैं । जब मेरे दोस्त मेरी अनुपस्थिति में



13 जनवरी 1979
श्रीमती लक्ष्मी के लिए एक मनहूस दिन था।

16 फरवरी 1979
उसे जिन्दगी का
खुद ही सामना
करने के लिए
हिम्मत मिली
और आर्थिक
सुरक्षा भी।



9 दिसम्बर 1978
कोचीन, केरल के एक मैकेनिक श्री विजय ने अपनी 5000 रु० की जीवन बीमा पालिसी के लिए पहला तिमाही प्रीमियम जमा किया।

13 जनवरी 1979
श्री विजय की एक मोटर साइकल दुर्घटना में मृत्यु हो गई। उसके परिवार में पत्नी और एक छोटी बच्ची ही शेष रह गये।

20 जनवरी 1979
श्री विजय की मृत्यु के बारे में जीवन बीमा निगम को सूचना दी गई। निगम ने दावे के लिये जरूरी फार्मों को भेजा। श्रीमती लक्ष्मी ने सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ दावे संबंधी कागजातों को पूरा करके जमा कर दिया।

16 फरवरी 1979
निगम के त्रिवेन्द्रम मंडल कार्यालय ने दावा निपटाया और श्रीमती लक्ष्मी को चैक मिल गया। 1978-79 के दौरान निगम द्वारा निपटाये गये 55.05 करोड़ रु० की कुल राशि के 78,000 मृत्यु दावों में से यह भी एक था।

(यह एक सच्ची घटना है। केवल पात्रों के नाम काल्पनिक हैं।)

निगम की सदा यह कोशिश रहती है कि उसकी कार्यप्रणाली सरल हो और 5,000 रु० व कम बीमाराशि की पालिसियों के मामले में, मामूली आवश्यकताओं पर अकसर जोर नहीं दिया जाता है। विभिन्न आवश्यकताओं का मुआयना, कम राशि के बीमेदारों की जरूरतों को खासतौर पर ध्यान में रखते हुए, बराबर किया जाता है।

अधिकतर दावों के निपटारे के लिए मूलभूत आवश्यकताएं निम्न हैं :—

- **सक्षम प्राधिकारी द्वारा मृत्यु प्रमाण**
- **पालिसी बान्ड**
- **नामजद व्यक्ति या उत्तराधिकारी द्वारा विधिवत् भरे गये दावा फार्म**

(पालिसी में हिताधिकारी के पक्ष में नामांकन रहने से मदद मिलती है।)

कोई भी दावा तब तक अस्वीकृत नहीं किया जाता जब तक किसी धोखाधड़ी या महत्वपूर्ण जानकारी छिपाये जाने के बारे में पता न चले।

दावा कार्यवाही में देरी का अनुभव होने पर (मूल आवश्यकताएं दे देने के बाद) कोई भी दावेदार निगम के उस मंडल कार्यालय, जहां दावा कार्यवाही चल रही है, के कार्यभारी अधिकारी से सम्पर्क कर सकता है।



भारतीय जीवन बीमा निगम

RADEUS/LIC/SP-14

किसी स्थान पर एकत्रित होते हैं और उस उल्लू की चर्चा शुरू हो जाती है, तब वे आपस में झगड़ते हैं। एक कहता है, 'लेकिन मुझे तो रशीद ने बताया था कि यह चित्र उन्हें एक उल्लू के घोंसले में मिला था।' दूसरा इस बात को काटकर कहता है, 'बिलकुल गलत। यह तो रशीद के ड्राइंग-शिक्षक की पहली कलाकृति है। वह तोता बनाना चाहते थे। तोता तो बन नहीं सका, उसके स्थान पर उल्लू बना डाला।' तीसरा सवाल उठाता है, 'मुझे तो यह बताया गया था कि यह उल्लू हरगिज नहीं, यह आस्ट्रेलिया का पक्षी है, जिसका नाम 'आस्ट्रकास्टर्जलू' है।'

लिखने का तात्पर्य यह है कि मेरे समस्त मित्र यह रहस्य खोलने के लिए घंटों सिर पटकते हैं, लेकिन फिर भी इस गुत्थी को सुलझा नहीं पाते कि मैंने यह तसवीर क्यों लटका रखी है।

अब आपसे क्या परदा। वास्तविकता तो यह है कि मैंने एक कबाड़ी को दस रुपये उधार दिये थे। लगातार दस महीने तकाजा करने के बावजूद, जब मैं उससे यह रकम वापस नहीं ले सका, तब एक दिन तंग आकर मैं उसकी दुकान से यह उल्लू का चित्र उठा लाया। यह चित्र मैंने इस लिए लटका रखा है कि यह मुझे इस बात की याद दिलाता रहे कि किसी आदमी को ऋण नहीं देना चाहिए और यदि दोगे तो खामख्वाह उल्लू बनोगे।

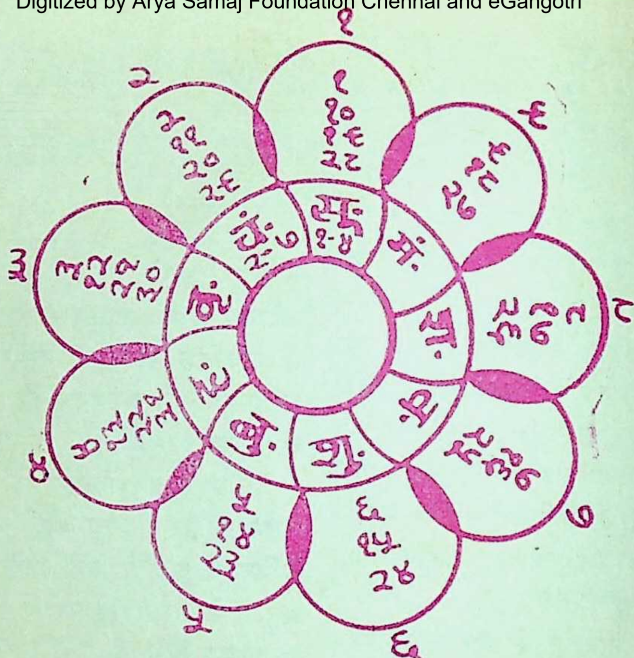
—अनु. : कुलदीप अविनाश भंडारी

आधुनिक भक्त

घिसे हुए माथे
नये चरणों की तलाश में हैं
ये आधुनिक भक्तों का माथा है
जो प्रभुओं की चरणरज को
चंदन समझता है
बड़े से बड़ा परिवर्तन हो
समय के पैर फिसल जाएं
लेकिन ये वहीं के वहीं टिके हैं
प्रभुओं के आशीर्वाद पर
य हमेशा बिके हैं

ये चिकने घड़े हैं
अपने पर एक बूंद भी नहीं ठहरने देते
चाहे समाज हो, या संस्कृति, या सत्ता
इनको पता है के सबके चरण होते हैं
और सबके चरणों में इनके लिए
पवित्र धूल होती है
उस धूल से इनके माथे का
चंदन बनता है
इनको प्रभुओं के चरणों की पहचान है
चरणों पर माथा रगड़ते-रगड़ते
इन्हें जो कुछ मिला है
उससे ही इनके जीवन-पंक में—
सफलता का पंकज खिला है

—गोपालकृष्ण कौल
कल्पनानगर, गाजियाबाद (उ. प्र.)



जन्म-तिथि से अपने भविष्य का पता लगाइए

• प्रो. पी. टी. सुंदरम

हस्तरेखा-विज्ञान की भांति आज अंक-विज्ञान भी दिनों दिन लोकप्रिय होता जा रहा है। यद्यपि पश्चिमी देशों में अंक-विज्ञान अथवा 'न्यूमरोलॉजी' ने काफी विकास किया है, तथापि हस्तरेखा-विज्ञान की भांति अंक-विज्ञान का बीज भी भारत में ही पड़ा, पला और बढ़ा। हस्तरेखा-विज्ञान की भांति अंक-विज्ञान भी हमें अपने गुण-दोषों से परिचित कराता है और उसकी सहायता से कोई भी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य, अपनी सीमा को जानकर अपने जीवन-विकास के नये आयाम खोज सकता है।

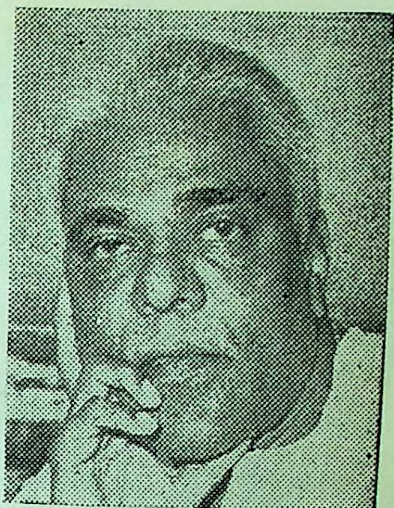
अंक-विज्ञान में १ से लेकर ६ तक की

संख्याओं का महत्त्व है। इनमें से प्रत्येक संख्या एक-एक ग्रह का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे १ सूर्य का, २ चंद्रमा का, ३ गुरु का, ४ हर्षल का, ५ बुध का, ६ शुक्र का, ७ वरुण का, ८ शनि का और ९ मंगल का। ये नौ संख्याएं मूलांक कहलाती हैं। यदि आपका जन्म १ से लेकर ९ तक की किसी तारीख को हुआ है तो वही तारीख आपका मूलांक होगी। इसके बाद संयुक्त संख्याएं होती हैं; यथा १० से लेकर ३१ तक। इनमें किसी एक तारीख में जन्म लेनेवाले लोग उसकी दोनों संख्याओं को जोड़कर अपना मूलांक निकाल सकते हैं। जैसे यदि आपका जन्म २५ तारीख को हुआ है तो २५=२+५=७ अर्थात आपका मूलांक ७ होगा।

यहां हम प्रत्येक मूलांक का फल दे रहे हैं। आप अपना मूलांक निकालकर, इस फल के अनुसार स्वयं का जीवन-क्रम निर्धारित कर सकते हैं।

मूलांक १ : सूर्य का अंक

सूर्य को मूलांक १ का प्रतिनिधि ग्रह माना गया है। जिन व्यक्तियों का जन्म १, १०, १९, या २८ तारीख को होता है, उनका मूलांक १ होता है तथा सूर्य उनके जीवन को प्रभावित करता है। ऐसे व्यक्ति महत्वाकांक्षी, साहसी, परिश्रमी तथा उद्यमी होते हैं। उनकी इच्छा सदैव चरम शिखर पर पहुंचने की होती है तथा किसी विभाग के प्रमुख पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद वे न केवल अपने अधिकार को बनाये



प्रो. पी. टी. सुंदरम--'कादम्बिनी' पाठकों के लिए अपरिचित नहीं हैं

रखते हैं, वरन अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा आदर की दृष्टि से भी देखे जाते हैं।

२१ मार्च से २८ अप्रैल तथा १० जुलाई से २० अगस्त तक आकाश में सूर्य प्रखर होता है। अतः इन दो अवधियों में १ मूलांकवाले व्यक्तियों का समय श्रेष्ठ होता है। इसी तरह अक्तूबर, नवंबर व दिसंबर में सूर्य की किरणें क्षीण प्रभाव डालती हैं। इसलिए ये तीन मास १ मूलांक वाले लोगों के लिए अनुकूल नहीं होते। १ मूलांकवाले व्यक्तियों में जहां अनेक गुण होते हैं, वहां कुछ दोष भी होते हैं— जैसे वे निरंकुश, जरूरत से ज्यादा सौंदर्य-प्रिय तथा दिखावे के लिए सामर्थ्य से अधिक भी खर्च कर सकते हैं। जिन तारीखों या वर्षों का जोड़ सात होता है;

वे १ मूलांकवाले लोगों के लिए अशुभ होते हैं। रंगों में सुनहरा-पीला या ताम्रवर्ण और रत्नों में माणिक और दिनों में रवि-वार—१ मूलांकवाले व्यक्तियों के लिए शुभ होते हैं।

मूलांक २ : चंद्रमा का अंक

जिन व्यक्तियों का जन्म २, ११, २० या २९ तारीखों में से किसी एक तारीख को होता है, उनका मूलांक २ होता है और चंद्रमा उनके जीवन को नियंत्रित करता है। २० जून से २७ जुलाई तक आकाश में चंद्रमा की स्थिति अनुकूल होती है। अतः २ मूलांकवाले व्यक्तियों के लिए यह समय अच्छा होता है। इसी तरह से वे तारीखें और वर्ष जिनका योग दो होता है, ऐसे लोगों के लिए शुभ होते हैं।

२ मूलांकवाले व्यक्ति कल्पनाशील, कलाप्रिय, रूमानी और सहृदय होते हैं। १ मूलांकवाले व्यक्तियों की भांति २ मूलांकवाले भी अन्वेषण-प्रिय तो होते हैं, पर वे अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत नहीं कर पाते। इस दोष के अलावा उनमें अकारण बेचैन रहने, स्वयं पर विश्वास न होने का भी दोष रहता है। वे अत्याधिक संवेदनशील भी होते हैं। अतः उन्हें इन दोषों को दूर करना चाहिए। रंगों में हलका हरा रंग, श्वेत रंग, तथा अंगूरी रंग एवं रत्नों में मोती २ मूलांकवाले लोगों के लिए शुभ होते हैं। ५ अंकों के जोड़वाली तारीखें तथा वर्ष अशुभ होते हैं।

मूलांक ३ : गुरू का अंक

जिन व्यक्तियों का जन्म ३, १२, २१ या ३० तारीख को होता है, उनका मूलांक ३ होता है। ३ मूलांक गुरु द्वारा नियंत्रित होता है। ऐसे व्यक्ति दृढ़, साहसी, महत्त्वाकांक्षी और अपने क्षेत्र में चरम-शिखर पर पहुंचनेवाले होते हैं। पर ऐसे व्यक्ति निरंकुश व ईर्ष्यालु भी होते हैं। अतः उन्हें इन प्रवृतियों से बचना चाहिए। ३ मूलांकवाले लोगों के लिए १९ फरवरी से २० मार्च तथा २१ नववंबर से २७ दिसंबर तक का समय अनुकूल ोता है। ३, १२ तथा २१ तारीखें इनके लिए शुभ तथा १ एवं ७ का अंक एवं तारीखें अशुभ होती हैं। दिनों में सोमवार और गुरुवार, रंगों में पीला, बैंगनी, नीला और गुलाबी तथा रत्नों में पीला पुखराज लाभ-प्रद होता है।

मूलांक ४ : हर्षल का अंक

४ का अंक हर्षल अर्थात यूरेनस का अंक माना गया है। ४, १३, २२ और ३१ तारीखों में से किसी एक तारीख को जन्म लेनेवाले व्यक्तियों का मूलांक ४ होता है। ऐसे व्यक्तियों का एक विशिष्ट चरित्र होता है। वे हमेशा किसी भी बात को विप-रीत दृष्टिकोण से देखते हैं और इसीलिए तर्क के दौरान हमेशा विपरीत रुख अख्त्यार करते हैं। अकारण विरोध की यह प्रवृत्ति लोगों को मित्र बनाने की बजाय शत्रु ही बनाती है। ऐसे व्यक्ति नीति-नियमों के भी पाबंद नहीं होते और उनकी चले तो

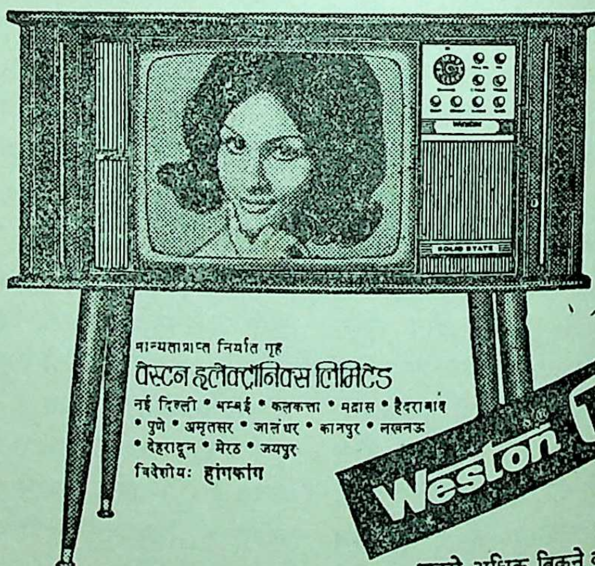
ये वही बेजोड़ टी वी सेट है जिसकी आपको तलाश थी

क्रिस्टल डीलक्स S सॉलिड-स्टेट

इन खूबियों की जांच करें

- बढ़े हुए रिजोल्यूशन के जरिये ज्यादा साफ तस्वीर
- स्वर को संतुलित रखने के लिए उच्च और मंद नियंत्रण की अलग व्यवस्था
- सही हाई-फाई आवाज पाने के लिए वूफर-ट्वीटर स्पीकर
- एम्लीफायर की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है
- डायरेक्ट रिकॉर्डिंग की सुविधा
- बेहतर दिखाई पड़ने के लिए अतिरिक्त डैनिश स्क्रीन

इसके साथ ही वेस्टन की जब जहां चाहें बिक्री बाद की सेवा उपलब्ध है और आप महसूस करेंगे कि आपके पास देश का सर्वाधिक विशिष्ट टीवी सेट है।
वेस्टन क्रिस्टल डीलक्स एस !



भारत का
सबसे अधिक बिकने वाला टीवी

वे समाज और सरकार तक में आमूल-चूल परिवर्तन कर डालें। इसीलिए ऐसे व्यक्ति कभी-कभी विद्रोही भी बन जाते हैं। इन व्यक्तियों की एक विशेषता यह भी होती है कि वे सामाजिक प्रश्नों, समस्याओं और सुधारों के प्रति न केवल एक ठोस और परंपरा-विरुद्ध दृष्टिकोण अपनाते हैं, वरन वैसा ही समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। ४ मूलांकवाले व्यक्ति भौतिक सुखों के प्रति उदासीन रहते हैं और धन के प्रति आकर्षण अनुभव नहीं करते। ४ मूलांकवाले व्यक्तियों में कुछ दोष भी होते है, जैसे-वे अत्याधिक संवेदनशील तथा छोटी-छोटी बात पर आहत अनुभव करते हैं। यदि उन्हें अपने कार्य में सफलता न मिले तो वे एकांतवासी हो जाते हैं।

४ मूलांक वाले व्यक्तियों के लिए शनिवार, रविवार और सोमवार शुभ दिन होते हैं और रंगों में नीला, खाकी या भूरा तथा रत्नों में नीलम अनुकूल सिद्ध होता है। चार के जोड़वाली तिथियां और वर्ष इनके लिए शुभ माने जाते हैं।

५ मूलांक : बुध का अंक

५ को बुध का अंक माना गया है। ५, १४ और २३ तारीखों में से किसी एक तारीख को जन्म लेनेवाले लोगों का यही अंक मूलांक होता है। ऐसे व्यक्तियों में अनेक विशेषताएं होती हैं, जैसे वे क्रियाशील, विचारवान, विनोदी और स्थितियों का सदुपयोग करनेवाले होते हैं। लेकिन ५ मूलांकवाले व्यक्ति इतना अधिक काम करते हैं कि मानसिक तनाव के शिकार हो, चिड़चिड़े और बात-बात पर उखड़नेवाले हो जाते हैं। अतः ५ मूलांकवाले व्यक्तियों को इन दोषों से बचना चाहिए। जिन तिथियों और वर्षों का योग ५ होता है, वे इनके लिए फलप्रद सिद्ध होती हैं। दिनों में बुधवार, और शुक्रवार तथा रंगों में हलका हरा, श्वेत-भूरा इनके अनुकूल होता है। इनके लिए हीरा और पन्ना शुभ रत्न माने गये हैं।

६ मूलांक : शुक्र का अंक

६ को शुक्र का अंक माना गया है तथा ६, १५, या २४ तारीख को जन्म लेनेवाले व्यक्तियों का यही मूलांक होता है। ६ अंकवाले व्यक्तियों का व्यक्तित्व आकर्षक होता है और वे अन्य लोगों द्वारा बेहद सराहे, यहां तक कि पूजे भी जाते हैं। एक ओर जहां वे रूमानी और कलाप्रिय होते हैं, वहां दूसरी ओर वे अपने लक्ष्य के प्रति गहरी आस्था के साथ बढ़नेवाले होते हैं। वे चित्रकारों, संगीतकारों और कलाकारों को आश्रय देते हैं, पर इन गुणों के साथ उनमें कुछ दोष भी होते हैं, जैसे वे विरोध पसंद नहीं करते और क्रोधित होने पर आगा-पीछा नहीं देखते। ऐसे व्यक्तियों के लिए दिनों में मंगलवार, गुरुवार तथा शुक्रवार, तारीखों और वर्षों में वे, जिनका जोड़ छह होता है, शुभ होते हैं। रंगों में नीला और रत्नों में हीरा इनके लिए शुभ माना गया है।

७ मूलांक : वरुण का अंक

७ को वरुण या नेपच्यून का अंक माना गया है। ७, १४ और २५ तारीख को जन्म लेनेवाले लोगों का मूलांक ७ होता है। ७ मूलांकवाले व्यक्ति स्वतंत्र व मौलिक विचारधारावाले होते हैं। वे यात्रा-प्रिय भी होते हैं तथा हमेशा विदेशों की यात्रा करने की योजना बनाया करते हैं। ७ मूलांकवाले व्यक्ति सफल लेखक, चित्रकार या कवि हो सकते हैं और उनके विचारों में दार्शनिकता का पुट होता है। यद्यपि वे स्वयं कभी भौतिक सुखों के प्रति नहीं दौड़ते, तथापि अपने मौलिक-चिंतन के कारण कभी-कभी धनवान बन जाते हैं। चूंकि वे सहृदय भी होते हैं, अतः दिल खोलकर दान दिया करते हैं। ऐसे व्यक्ति सफल व्यवसायी भी बन सकते हैं। धर्म अथवा परंपरागत विचारों के प्रति इनका दृष्टिकोण अलग ढंग का होता है। वे लीक पर चलना पसंद नहीं करते।

इन गुणों के साथ-साथ उनमें कुछ दोष भी होते है, जैसे वे कभी-कभी उतावलेपन में गलत काम कर जाते हैं। कभी-कभी जरूरत से ज्यादा आलोचना कर बैठते हैं।

वे तिथियां और वर्ष, जिसका योग सात होता है, ७ मूलांकवाले व्यक्तियों के लिए शुभ माने गये हैं। दिनों में रविवार, सोमवार, बुधवार, रंगों में सफेद, हलका नीला तथा रत्नों में लहसुनिया इनके लिए अनुकूल और लाभप्रद कहा गया है।

८ मूलांक : शनि का अंक

८ को शनि का अंक माना गया है। जिन व्यक्तियों का जन्म ८, १७ या २६ तारीख को होता है, उनका मूलांक ८ माना गया है। ८ मूलांकवाले व्यक्ति शांत, सौम्य और एकांतप्रिय होते हैं। न वे हलकी बात करते हैं और न हलका मजाक। वे दिखावा भी पसंद नहीं करते। यद्यपि वे ऊपर से कठोर दिखायी देते हैं तथापि हृदय से वे अत्यंत कोमल और सच्चे मित्र होते हैं।

पर इन गुणों के बावजूद ८ मूलांकवाले व्यक्ति दूसरे लोगों द्वारा हमेशा गलत समझे जाते हैं। वे दो परस्पर विरोधी जिंदगी बिताते हैं, एक ओर जहां वे दार्शनिक, धार्मिक, गुह्य-विद्याओं के प्रेमी तथा लक्ष्य के प्रति दृढ़ आस्था रखनेवाले होते हैं, वहीं दूसरी ओर वे अराजकता और तरह-तरह की सनकों के शिकार भी हो जाते हैं। वे तिथियां और वर्ष जिनका योग आठ होता है, ऐसे व्यक्तियों के लिए



बहरा लुटेरा !

शुभ और महत्त्वपूर्ण होते हैं।

दिनों में शनिवार तथा रंगों में काला, नीला, भूरा तथा बैंगनी सौभाग्यप्रद माना जाता है। इनके लिए नीलम शुभ रत्न माना गया है।

९ मूलांक : मंगल का अंक

९ को मंगल का अंक माना गया है। ९, १८ तथा २७ तारीख को जन्म लेनेवाले व्यक्तियों का यही मूलांक होता है। मूलांक वाले व्यक्ति साहसी और वीर होते हैं, पर कभी-कभी जल्दबाजी में गलत काम कर नुकसान उठाते हैं। इनमें यही दोष है।

चूंकि ९ अंकवाले व्यक्ति सैनिक व नेता होते हैं, अतः उन्हें दुर्गुणों से बचना चाहिए। जल्दबाजी के कारण वे कभी दुर्घटना का भी शिकार हो सकते हैं। ९ मूलांकवाले व्यक्तियों में गजब की संगठनात्मक प्रतिभा होती है। स्नेह और सहानुभूति के बदले में वे कुछ भी कर सकते हैं और इस कारण कभी-कभी उन्हें हानि भी होती है। अतः उन्हें इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखना चाहिए। ९ के अंक को अत्यंत भाग्यशाली अंक माना गया है।

जिन तिथियों और वर्षों का योग ९ होता है, वे इस मूलांकवाले व्यक्तियों के लिए लाभप्रद सिद्ध होते हैं। दिनों में मंगलवार और शुक्रवार तथा रत्नों में मूंगा ९ मूलांकवाले व्यक्तियों के लिए शुभ माना गया है। ●

वचन-वीथी

जो खुशहाली में उद्धत और उन्मत्त हो जाए और बुरी दशा में अवनत और शिथिल, वह बहुधा कमीना और नीच होता है।

—एपीक्यूरस

समझदारी का एक लक्षण यह है कि दुस्साहस न करे।

—थोरो

धनवान होकर मरने के घमंड पर नरकवासी दहाड़ मारकर हंस पड़ते हैं। —जॉन फोस्टर

समय, सत्य के अतिरिक्त, हर वस्तु को कुतर खाता है।

—हक्सले

अति वर्षा से संगमरमर तक घिस जाता है। —शेक्सपियर

जो लोगों की तुच्छ गलतियों को भुला नहीं सकता, वह दरिद्र आत्मा है। —फैल्थम

उद्धत शब्दों का बचाव नहीं हो सकता; क्योंकि नम्रता का अभाव समझदारी के अभाव का द्योतक है। —पोप

हमें रजकण बनना चाहिए। संसार की लात सहन करना सीखना चाहिए। —महात्मा गांधी

बुद्धि-विलास

१. नीचे दिये गये प्रश्नों को पढते ही तत्काल उत्तर दीजिए—

क. ९८७६५४ × ० = ?

ख. ९८७६५४ + ० = ?

ग. ९८७६५४ − ० = ?

२. रमेश तथा मोहन विपरीत दिशाओं में चलना आरंभ करते हैं। रमेश ५ मील तथा मोहन ६ मील चलते हैं। तत्पश्चात

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें, तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए। आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प।——सं.

दोनों अपने दायीं ओर २ मील चलते हैं। उसके बाद फिर दोनों अपने दायें मुड़कर ३ मील चलते हैं। अंत में दोनों पुनः अपने दायें मुड़कर २ मील चलते हैं। अब बताइए कि दोनों एक-दूसरे से कितने फासले पर हैं?

३. क. दिल्ली और बंगाल की खाड़ी के बीच अनुमानतः कितना फासला है?

ख. यमुना (दिल्ली में) बंगाल की खाड़ी से अनुमानतः कितनी ऊंचाई पर है?

४. क. गोआ कितने वर्षों तक पुर्तगाली आधिपत्य में रहा?

ख. उसे कब मुक्त कराया गया?

५. क. दुनिया के सबसे पहले मौसम-संबंधी उपग्रह का क्या नाम था?

ख. वह कब छोड़ा गया था?

६. नक्शे में एक अक्षांश कितनी दूरी प्रकट करता है?

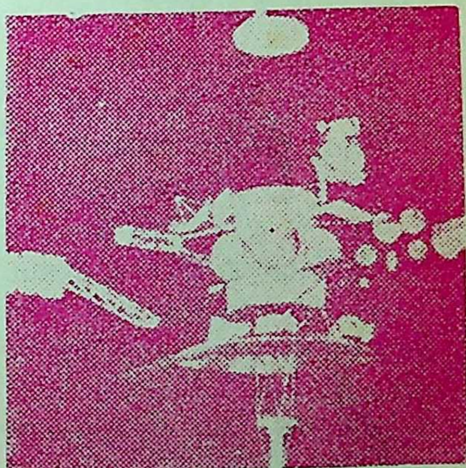
७. मानव-शरीर में कितनी हड्डियां होती हैं?

८. भारत में एक ऐसा बिजलीघर निर्माणाधीन है, जो दुनिया में सबसे अधिक ऊंचाई पर स्थित बताया जाता है। बताइए, वह कहां है?

९. भारत में भवन-निर्माण संबंधी प्रमुख संस्थाएं कौन-सी हैं?

१०. ऑरोविले कहां है? इसकी क्या विशेषता है?

११. नीचे दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है—



अमीर खुसरो भी वसंतोत्सव मनाते थे!

• महेश्वर दयाल

जाड़े की बर्फीली और ठंडी हवाओं के मंद पड़ते ही हर एक की जान में जान आ जाती है। ऋतु बदलते ही सारी प्रकृति का सौंदर्य निखर पड़ता है। वसंत आया और सरदी से ठिठुरी हुई दुनिया अंगड़ाई लेकर जाग पड़ी। जीवन और मस्ती का संयोग हुआ। नयी उमंगों से भरपूर, नशे में चूर सब नाच उठते हैं। जंगल में मंगल हो जाता है। टहनियों में कोंपलें फूटने लगीं और देखते ही देखते हरे-हरे पत्तों से सारे पेड़ लद गये।

पवन के नर्म-नर्म झोंकों के साथ फल-फूल और पौधे झूम उठे हैं। पेड़ों पर पक्षी चहचहा रहे हैं। चारो ओर हरियाली ही हरियाली है। खेतों में सरसों फूल रही है। सरसों के फूल अशर्फियों की भांति बिखरे हैं। जिसका जी चाहे अपनी झोलियां भर ले। धरती ने वासंती जोड़ा पहन रखा है। आम में बौर आये हैं। कोयल ने अपना गीत छेड़ा है। वन में टेसू फूले हैं। बागों में रंगबिरंगे फूल खिले हैं। मालिन ने गेंदुए सजाये हैं। दूर मधुर सुरीली तान में कोई अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह का गीत अलाप रहा है—

सकल बन फूल रही सरसों
अमवा बौरे, टेसू फूले
कोयल कूकत डार-डार
गोरी कर सिंगार
मालिनयां गेंदुआ ले आई कर सों
सकल बन फूल रही सरसों
तरह-तरह के फूल लगाये
ले गेंदुआ हाथन में आये
निजामुद्दीन के दरवज्जे पर
आवन कह गये आशिक...
अरु बीत गये बरसों
सकल बन फूल रही सरसों

हजारों वर्षों से हमारे देश में वसंत उत्सव मनाया जाता रहा है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में लिखा है कि ऋतु-उत्सव में सब लोग हर्ष और उल्लास में डूब जाते हैं। राजा हर्षवर्धन ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'रत्नावली' में राजा और

प्रजा की खुशियों का वर्णन किया है, जिसकी मुख्य नायिका, विदूषिका अपने प्रेमी से कहती हुई दिखायी गयी है, 'ठीक है, मदन अपने पूर्ण श्रृंगार में आज के दिन धरती पर उतरता है, लेकिन मैं समझती हूं कि यह त्योहार न कामदेवता का है, न तुम्हारा, वरन मेरा है, क्योंकि ऋतु का उन्माद मुझसे है, फूलों का सौंदर्य मुझसे है और कली की मुसकान मेरी है। मेरे ही कारण हर एक नशे में झूमता-सा नजर आता है। यहां तक कि वातावरण भी उन्मादित होकर वासंती रंग में डूब गया है और हर ओर खुशबुएं उड़ रहीं हैं।'

सुबंधु ने 'वासवदत्ता' में लिखा है कि 'हजारों नर-नारी बागों में इकट्ठे होते हैं। मिल-जुलकर गाते हैं, नाचते हैं और आपस में गाली-गलौज भी करते हैं।' राजा हर्ष के राजकवि ने 'कादम्बरी' में वसंतोत्सव पर एक-दूसरे के हंसी-ठिठोली और स्वांग भरने की चर्चा की है। राजकवि लिखता है कि 'कुछ लोग एक बुढ़िया को टूटी-फूटी खाट पर बैठाकर उसका झूठ-मूठ विवाह रचाते हैं।' इसी प्रकार बहुत से कवियों, लेखकों और नाटककारों ने वसंतोत्सव मनाने पर लोगों के मस्ती में डूब जाने, मदिरा-पान करने और रंग-भरी पिचकारियों से खेलने का भी वर्णन किया है।

वसंत-पंचमी के दिन सब पीतांबर पहनकर मंदिरों में देवी-देवताओं पर सिगरी और सरसों के फूल चढ़ाते हैं। उस दिन सरस्वती के साथ कामदेव और रति की पूजा भी होती है।

वसंत-पंचमी हिंदुओं का त्योहार था, लेकिन आज से सात सौ बरस पहले मुसलमानों ने भी वसंतोत्सव मनाना शुरू कर दिया। अमीर खुसरो ने अपने पीर हजरत निजामुद्दीन औलिया (दिल्लीवाले जिन्हें सुल्तानजी के नाम से याद करते हैं) के मन-बहलाव के लिए वसंत-पंचमी मनानी शुरू की, जो आज भी बड़े जोश से मनायी जाती है। कहा जाता है कि हजरत निजामुद्दीन औलिया को अपने प्यारे और सुंदर भांजे मौलाना तकीउद्दीन नूह से, जो बड़े हसीन, गबरू, मिलनसार जवान थे, बड़ा प्रेम था। साथ ही इनके भांजे को भी आप से इतना लगाव था कि पांचों वक्त की नमाज पढ़कर यह दुआ मांगते थे कि या अल्लाह मेरी उमर भी महबूबे-इलाही हजरत निजामुद्दीन को दे दे कि वे सदा लोगों का भला, व दुःख-दर्द दूर करते रहें। सुल्तानजी


अमीर खुसरो

का भी यही हाल था कि दम भर भी अपने भांजे के बिना चैन नहीं पड़ता था। यहां तक कि आप नमाज में भी अपने भांजे को दायें हाथ पर खड़ा करते कि उनकी शकल दिखाई देती रहे। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है? भांजे साहब उठती जवानी ही में इस जहान से उठ गये। महबूबे इलाही के दिल पर ऐसी चोट लगी कि वे हर वक्त उदास रहने लगे। उन्होंने गाना सुनना भी बंद कर दिया।

जब इस बात को चार-पांच महीने हो गये, तो आप तालाब की सैर को, जहां अब महरौली में बावड़ी बनी हुई है, कुछ

दिल्ली : नादिरशाह की वापसी

१५ मई, १७३९ तक—नादिरशाह दिल्ली में रहा और जाते समय तीस करोड़ रुपये की नकद धन राशि, एक हजार हाथी, सात हजार घोड़े और दस हजार ऊंट लेकर अफगानिस्तान चला गया।

२८ अप्रैल, १७४८—इक्कीस वर्षीय युवक अहमदशाह दिल्ली का बादशाह बना।

१७४८ जनवरी से मार्च तक—अहमदशाह अब्दाली ने तीन बार दिल्ली पर हमला किया।

१८ जुलाई, १७६०—मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ ने दिल्ली पर कब्जा कर के मराठा सम्राज्य का बिगुल बजाया।

१७६० से १७७१—इस बीच दिल्ली का सिंहासन खाली रहा। दिल्ली का बादशाह शाह आलम, अहमद शाह अब्दाली के भय से दिल्ली से बिहार भाग गया। उसका मंत्री नजीब उद्दौला तानाशाह बन बैठा।

६ जनवरी, १७७२ को शाह आलम ने पुनः दिल्ली पर कब्जा कर लिया।

३० जुलाई, १७८८—गुलाम कादिर रुहेला ने शाह आलम की गद्दी छीन ली तथा उसे अंधा कर के कैदखाने में डाल दिया।

४ मार्च, १७८९—महादजी सिंधिया के प्रयास से गुलाम कादिर रुहेला को मार दिया गया तथा शाह आलम को पुनः गद्दी पर बैठा दिया गया।

१८५६ से १८५८—लार्ड कैनिंग भारत का गवर्नर जनरल बना। १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम इसी काल में हुआ। इसके पश्चात भारत में विक्टोरिया का शासन स्थापित हुआ। और गवर्नर जनरल के स्थान पर वायसराय नियुक्त होने लगे।

१८५८–१८६३ ई०—लार्ड कैनिंग ने भारत में ब्रिटिश शासन का पुनर्गठन किया।

१८८०–१८८४ ई०—लार्ड रिपन

साथियों के साथ जाकर बैठ गये। उन दिनों वसंतपंचमी का मेला था। अमीर खुसरो अपने पीर के साथ नहीं थे। वे पीछे रह गये थे। उन्होंने देखा कि खेतों में सरसों फूल रही है। हिंदू काजी देवी या कालिकाजी के मंदिर पर गेंदुए बना-बना-कर हंसते गाते-बजाते चले जाते हैं। उन्हें भी यह ध्यान आया कि मैं भी अपने पीर के मन को बहलाऊं। एकाएक उनका चेहरा खिल उठा। उन्होंने अपनी पगड़ी खोलकर कुछ पेंच इधर और कुछ उधर लटका लिये। उनमें सरसों के फूल उलझाकर फारसी भाषा में एक मिसरा अलापते हुए उसी तालाब की तरफ चले, जिधर आपके

से भारत-विभाजन तक

ने स्वायत्त शासन कानून बनाया।

१८९९ से १९०५ ई०—लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में विभक्त किया।

१९०५ से १९१० ई०—लार्ड मिंटो ने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली बनायी।

१९१० से १९१६ ई०—लार्ड हार्डिंगज, दिल्ली में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक के अवसर पर शोभा यात्रा निकाली गयी। लार्ड हार्डिंगज पर इस समय क्रांतिकारियों ने बम फेका। सौभाग्य से वह बच गया।

१९१६ से १९२० ई०—लार्ड चेम्सफोर्ड—असहयोग आंदोलन इसी काल में हुआ।

१९२१ से १९२६ ई०—लार्ड रीडिंग—के समय में गांधीजी का सविनय कानून भंग का आंदोलन चला।

१९२६—१९३० ई०—लार्ड इरविन—ने गांधीजी से स्वराज्य आंदोलन की व्यापकता देखकर समझौता किया

१९३१ से १९३७ ई० लार्ड विलिंग्डन के समय दूसरी व तीसरी कान्फ्रेंस हुई।

१९३६–४३ ई०—लार्ड लिन लिथगो के काल में इंडिया एक्ट लागू हुआ तथा आठ प्रांतों में कांग्रेस मंत्रि-मंडल बने

१९४३–४७ ई०—लार्ड वेवल— के समय में ही १९ दिसंबर, १९४६ ई० को संविधान परिषद की प्रथम बैठक डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

१३ मार्च, १९४७ से १४ अगस्त १९४७ ई०—लार्ड माऊंटबेटन के काल में ही ६ जून को भारत-विभाजन की घोषणा।

१५ अगस्त, १९४७ से २० जून १९४८ तक लार्ड माउंटबेटन भारत के वैधानिक गवर्नर जनरल रहे।

२१ जून, १९४८ से २५ जनवरी १९५० तक श्री चक्रवर्ती राज गोपालाचारी प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल बने रहे।

पीर गये थे ।

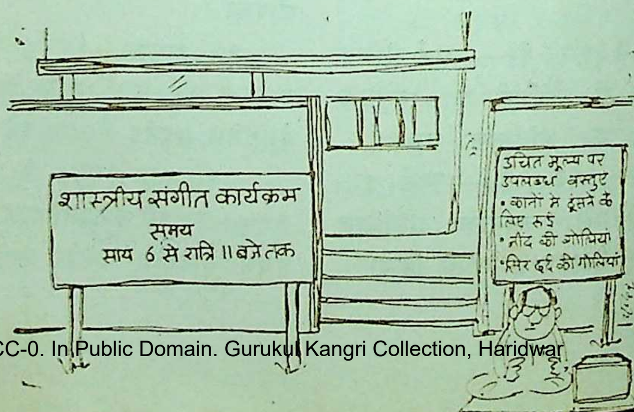
अमीर खुसरो माने हुए संगीतज्ञ थे । वे ऊंची अलाप में गा रहे थे, **'अश्क रेज आमदा अस्त अब्रे बहार ।'** जहां तक इस अलाप की आवाज पहुंचती थी, यह जान पड़ता कि दूर आकाश तक उसकी गूंज सुनायी दे रही है । थोड़ी देर में हजरत निजामुद्दीन ने इधर-उधर देखा, उनकी आंखें अमीर खुसरो को ढूंढ रही थीं । कहने लगे, "आज हमारा तुर्क (अमीर-खुसरो) कहां है ?" उनके कानों में खुसरो की सुरीली तान पहुंच रही थी, बोले, "जाओ, खुसरो को हमारे पास ले आओ ।" लोग अमीर खुसरो को ढूंढ़ते हुए आये, तो क्या देखते हैं कि खुसरो निराली अदा से, मस्तानी चाल से धीरे-धीरे झूमते हुए चले आ रहे हैं । ढूंढ़नेवाले साथी भी उसी ंग में रंग गये । उनमें से एक हजरत निजा-मुद्दीन के पास आया और आते ही कहा, "हजरत, अमीर खुसरो के पास जाकर आना बहुत कठिन है । रंग में रंग मिल जाता है ।" हजरत निजामुद्दीन यह सुनते ही खड़े हो गये और अपने प्यारे हमदर्द को लेने चल पड़े । खुसरो उन्हें दूर से देख ही रो दिये । आंखों में आंसू उमड़ आये । पीर पास आये, तो बेताब होकर यह शेर पढ़ा—

अश्क रेज आमदा अस्त अब्रे बहार
साकिया गुल बरेज बादा बयार

यह शेर सुनना था कि हजरत बेचैन हो गये और तड़पते रहे । दिल संभला तो आंसू की लड़ियां फूलों के गजरों में बदल गयीं ।

अमीर खुसरो को वसंत का मेला इतना अच्छा लगा कि उनके पीर की उदासी दूर हो गयी । और इस तरह मुस-लमानों में वसंत का मेला शुरू हो गया। निजामुद्दीन औलिया ने राग सुनना फिर शुरू कर दिया । कुछ दिन बाद हर पीर फकीर के मजार पर बसंत चढ़ने लगी।

समय बीतता गया और हिंदू और मुसलमान वसंत के मेले को बड़ी धूम से मनाने लगे । दिल्लीवाले वसंत के दिन पीले कपड़े पहनते । मरदों के साफे, बच्चे-बच्चियों के कुर्ते-कुर्तियां और औरतों की साड़ियां पीतांबर होती थीं । जिसे देखा धानी और



वसंती जोड़े पहने हाथों में पीली सरसों के गेंदुए लिये हंसती-बोलती, गाती-गुनगुनाती, इठलाती फिरती दिखायी देतीं।

दिल्ली में कई जगह वसंत चढ़ती थी, आज भोलूशाह की वसंत है, तो कल रसूलनुमा की। कभी हरे-भरे की वसंत है, तो कभी शाह बड़े की। कभी सुलतानजी की वसंत है, तो कभी तुर्कमान की।

मुगलकाल में लिखी आज से २५० वर्ष पुरानी एक फारसी पुस्तक में वसंत के मेले का हाल दरगाह कुली बहादुर ने बड़ी चटखारेदार भाषा में लिखा है। वसंत के दिन सवेरे से शाम तक चहल-पहल रहती। बागों, मैदानों और मकानों में भीड़ इकट्ठी हो जाती। सब एक से एक बढ़िया कपड़े पहनकर आते। अमीर अपने डेरे जमा लेते। खाने-पीने का सब सामान साथ होता। चांदनियां और ईरानी कालीन बिछ जाते। छमछम करती वेश्याएं आकर अपना नाच दिखातीं, कव्वालों की बारी आती तो आकाश गूंज उठता। वे अमीर खुसरो की कविता,-वसंत अवश्य गाते—

हजरत ख्वाजा संग खेले धमाल
बाइस ख्वाजा मिल बन बन आयो ता में
हजरत रसूल साहब जमाल
हजरत ख्वाजा संग खेले धमाल
अरब यार तेरो वसंत मनायो
सदा रक्खे लाल गुलाल
हजरत ख्वाजा संग खेले धमाल।

—९६, बाबर रोड, नयी दिल्ली-१

लघु-कथा

ऊंटों का बंटवारा

एक सूफी संत थे। वे चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उनके तीन शिष्य आपस में न लड़े। अतः उन्होंने एक वसीयत की—जो सबसे वृद्ध शिष्य हो उसे कुल ऊंटों की आधा संख्या मिले और प्रौढ़ शिष्य को एक तिहाई ऊंट तथा सबसे छोटे शिष्य को कुल ऊंटों का नौवां भाग मिले। मृत्यु के बाद वसीयत पढ़ी गयी, तो सब अचरज में पड़ गये। वसीयत के अनुसार ऊंटों का बंटवारा हो ही नहीं सकता था। किसी ने कहा, "इस वसीयत में जरूर कोई राज है।"

तीनों शिष्य अपने शहर के पैगंबर मुहम्मद साहब के दामाद हजरत अली के पास पहुंचे। हजरत अली उनकी समस्या सुनकर पहले मुसकराये, फिर बोले, "इसमें कोई परेशानी की बात नहीं। मैं अपनी ओर से एक ऊंट और मिला देता हूं। तब बंटवारा हो जाएगा!" और अली ने ऊंटों का बंटवारा कर दिया—सबसे वृद्ध शिष्य को ९ ऊंट मिले। दूसरे को कुल ऊंटों का एक तिहाई हिस्सा यानी ६ ऊंट मिले। सबसे छोटे शिष्य को कुल ऊंटों का नौवां हिस्सा अर्थात २ ऊंट मिले। सत्रह ऊंटों का इस तरह बंटवारा होने के बाद हजरत अली ने अपना ऊंट वापस ले लिया।

—गौरी नागर

तनाव से मुक्ति

● डॉ. सतीश मलिक

कैसे बिखर गयी ?

अ. ब. स., भोपाल : पैंतालीस वर्षीय विवाहित सहायक-प्रोफेसर हूं। मैं आज से तीन वर्ष पूर्व अपनी ही एक २० वर्षीय छात्रा के प्रति आकर्षित हो गया। मध्यम वर्ग की होने से, इसका प्रारंभ सहानुभूति से होकर, वित्तीय सहयोग एवं अंत में प्रेम व शारीरिक संबंध से, और गहरा हुआ। मैं चाहकर भी उससे दूर नहीं रह सका, न मेरे प्रति उसका आकर्षण कम हुआ। मेरा स्थानांतरण हो जाने पर मैंने उसे स्थानांतरित स्थान पर सर्विस दिलवा दी थी। इससे माता-पिता की सहमति से वह स्वतंत्र रूप से मेरे पास आ गयी। यद्यपि वह पृथक मकान में रहती थी, फिर भी हमारा मिलन होता रहा। यहां आने पर मैंने उसे न केवल आर्थिक सहायता दी, वरन एक परिवार के सदस्य के स्वरूप समस्त सुविधाएं दीं। लेकिन छह माह के बाद ही वह एक सामान्य शादी-शुदा शिक्षक, जिसकी एकमात्र योग्यता, मुझ से आयु में कम होना हो सकती है, के संपर्क में आयी व मुझसे छिपकर मिलती रही। एक-दो बार शिक्षक को उसके घर देखा भी, शंका भी हुई, पर मैंने इसे अधिक महत्त्व नहीं दिया।

यह फिसलन शुरू हुई, तो उसका अंत तीसरे व्यक्ति से गर्भाधान में हुआ। गर्भाधान की जानकारी भी मुझे डॉक्टर के रोग-परीक्षण के दौरान हुई। मैं ही उसके अधिक करीब था; उस स्थिति में मेरे अलावा उसका कोई सहारा नहीं था। मेरे लिए भी और कोई रास्ता नहीं। गर्भपात समय पर करवाया।

अब रात-दिन मेरे मस्तिष्क में गत वर्षों की छोटी-मोटी घटनाएं घूमा करती हैं। घंटों सोचा करता हूं, सब कुछ देने के बाद भी उसने ऐसा क्यों किया? कभी-कभी बदले की खूनी-भावना भी उठती रहती है। मस्तिष्क में हर समय तनाव बना रहता है। नींद भी नहीं आती। कभी-कभी यही लगता है कि यह तनाव मेरे जीवन का अंग हो गया है। क्या करूं ? कैसे भूलूं जिसे वर्षों प्यार किया। उसे और कैसे प्यार करूं, जो इस प्रकार बिखर गयी।

आपकी प्रेमिका आपसे २० वर्ष छोटी है। यह स्वाभाविक ही है कि वह किसी जवान व्य त या आपसे उम्र में

छोटे (चाहे वह विवाहित ही क्यों न हो) की ओर आकर्षित हुई। आप उसकी संपूर्ण भावनात्मक आवश्यकताओं को नहीं समझ पाये, जिससे कुछ कमियां आपकी ओर से निरंतर बनी रहीं। आपने चाहे कितनी ही सुविधाएं प्रदान की हों, पर उसे आप सम्मानजनक दर्जा समाज में नहीं दे सकते। आपने उससे शादी तो नहीं की, पर सिर्फ स्वार्थ के लिए संबंध रखना चाहते थे। आपसे छिपकर, संबंध बनाने की, जो कोशिश वह करती रही, उसके पीछे अपने अस्तित्व की रक्षा का ख्याल उसे कचोटता रहा। आपको इस बात का धक्का लगा है कि आपका अहं कहीं जा छिटका। शायद, मन में कहीं 'स्त्रियों के मन को जीतनेवाला' चरित्र आप पालते रहे। इस 'कांपलेक्स' को भी गहरा धक्का लगा।

मनुष्य के लिए मर्दानगी एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है, दूसरे व्यक्ति के सम्मुख उसकी यह भावना स्वतः ही उभर आती है।

मेरे विचार से आप इन घटनाओं पर अपना दार्शनिक रुख अपनाएं। यदि आप समस्याओं को समझने में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लें, तो आपकी मनोदशा धीरे-धीरे सुधर सकती है। वैसे इस संबंध का पता चलने पर आपको स्वतः ही पीछे हटना चाहिए था। इस रास्ते पर उसे धकेलने के लिए आप ही पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

इस स्तंभ के अंतर्गत अपनी समस्याएं भेजते समय अपने व्यक्तिगत जीवन का पूरा परिचय, आयु, पद, आय एवं पते का उल्लेख कृपया अवश्य करें।

सामान्य जीवन कैसा ?

सुखदेव लोखंडे, बस्तर : २९ वर्षीय विवाहित एवं निस्संतान, स्वस्थ युवक हूं। प्लांट ऑपरेटर के पद पर कार्यरत हूं। विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण हर बात को विज्ञान एवं सत्यता की दृष्टि से देखता हूं। एक बार मैंने पढ़ा था कि मनुष्य का सिर सभी अंगों से भारी है। इसी बात को लेकर मेरे अचेतन मन में बार-बार यही ख्याल आता रहता है कि बच्चे का सिर मां के पेट में लगता होगा तथा पेट भारी व दर्द करता होगा। जब मैं अधिक सोचने लगता हूं, तब सिर में तनाव उत्पन्न हो जाता है। डॉक्टर साहब ! कृपया मुझे ऐसी सलाह दें, जिससे मुक्ति पा सकूं और सामान्य जीवन बिताने की स्थिति में आ सकूं। श्रीमन ! क्या दिल्ली के अतरिक्त नागपुर या रायपुर में मनोवैज्ञानिक केंद्र हैं ?

विज्ञान सत्य को जानने का सीधा रास्ता है। विज्ञान कला एवं सुंदरता को अपनी ही दृष्टि से देखता है। इस दृष्टि के सामने सभी कलात्मक पहलू गौण हो जाते हैं। कला एवं सुंदरता भी 'सत्य' है।

दूसरी बात यह है कि अधूरा ज्ञान बहुत खतरनाक साबित होता है। आपने यह तो जान लिया कि सिर सभी अंगों से भारी होता है, पर यह नहीं जान पाये कि प्रकृति इतनी बेवकूफ नहीं—बच्चेदानी और बच्चे के बीच, मां के गर्भ में 'एम्निो-आटिक' तरल पदार्थ होता है, जो तैरता रहता है। इस व्यवस्था से बाहरी झटके या अंदर से बच्चे के झटके पर भी संतुलन बना रहता है। न मां को चोट आती है, और न बच्चे को।

गर्भवती स्त्री यदि मां बनने की इच्छुक है, तो उसके लिए पेट में बच्चे का विकास आनंददायक अनुभव की प्राप्ति है।

आत्मग्लानि से मरी

क. ख. ग., बाराबंकी : मेरे जीवन में दो वर्षों से अजीब-सा परिवर्तन आ रहा है। विपरीत सेक्स की ओर से प्यार पाने की असीम इच्छा, जैसे-भाई का प्यार, पिता का प्यार। पिता ने शराब के कारण प्यार नहीं किया, उपेक्षा भी उनकी बहुत सही। उनसे नफरत करना चाहती हूं, पर वह भी नहीं कर पा रही हूं। मैं ऐसा प्यार चाहती हूं, जो सिर्फ मेरे लिए हो, पर ऐसा नहीं हो सकता, इसलिए दुखी हूं। स्वार्थी दुनिया को देखकर आत्महत्या करने का मन होता है। पर इस दुनिया को न छोड़ पाने का कारण भी यही है। दो वर्ष पूर्व ताऊजी के लड़के ने मेरी नादानी का फायदा उठाकर, मुझसे शारीरिक संबंध बनाये, अब इस कार्य से बार-बार आत्मग्लानि के कारण न तो मैं मर सकती हूं, और न ही आनेवाले समय में शादी के बाद पति को मुंह दिखाने के काबिल हूं। मरने पर ऐसा डर लगता है कि कहीं 'पोस्टमार्टम' की रिपोर्ट से मेरे कुकृत्यों का पता न चल जाए।

आप जब छोटी थीं, तब नासमझी में अपने चचेरे भाई के फुसलाने में आ गयीं। आपने जान-बूझकर कुछ नहीं किया, इस-लिए आपको चरित्रहीन नहीं कहा जा सकता। वैसे सेक्स मात्र से ही चरित्र की परिधि को नहीं सिमटाया जा सकता।

मनोचिकित्सक होने के नाते मैं यह कह सकता हूं कि आपको जो अनुभव हुआ है, यह एकदम असाधारण नहीं है, बल्कि सामान्य है। हां, प्रत्यक्ष रूप में चाहे लड़के या लड़कियां इसे स्वीकार न करें, पर अप्रत्यक्ष रूप में ऐसे लोगों का प्रतिशत बहुत अधिक है।

आपको अपने होनेवाले पति से कुछ भी बताने की जरूरत नहीं। पहले आप उसे अच्छी तरह से समझ लें, फिर उसके बाद सोच-समझकर ही बतलायें। कई पुरुष 'खुला दिमाग' होने की डींग जरूर मारते हैं, पर जब अपनी पत्नी की बात होती है, तब अपनी 'खुली दिमागियत' भूल जाते हैं।

क्या इतना काफी नहीं कि आपने अपनी भूल 'कादम्बिनी' के माध्यम से स्वीकारी, और अपने को हलका किया। आत्महत्या का विचार त्याग दें। •



• रोमेश जोशी

गोबर लिपे, हजार-बारह सौ कच्चे घरों की बेतरतीब पंक्तियोंवाला इलसा गांव। गांव से थोड़ा हटकर बना पक्का गेरुआ-पीला और सफेद पुता ऊंचे तिगड्डे पर खड़ा पुलिस थाना, जनता और पुलिस के बीच सुवाच्य दूरी बनाये हुए। पूरा परिवेश ऐसा लगता है, जैसे सिपाहियों की बेडौल खाकी वरदियां सुखाकर कोई 'लाइन अटेच' धोबी रखवाली करने खड़ा हुआ है। वैसे खाकी मकानों की इस बस्ती में रखवाली करने लायक कुछ है नहीं। अपराध के नाम पर मुरगियों व बकरियों की चोरी होती रहती है, जिनकी सिपाही लोग अपने स्तर पर तफतीश कर लेते हैं। हत्या अगर होती है, तब काटी हुई गरदन लेकर हत्यारा खुद ही थाने पहुंच जाता है।

थानेदार जियालाल का रुख भी गांववालों के प्रति उदासीन बना रहता है। गांव के एकमात्र अध-पक्के मकान में लगनेवाली बैंक की ऋण प्रदायनी शाखा में कभी-कभार, उनका शुभागमन होता भी है, तो बस ताश खेलने के लिए। पैसे निकालने या जमा करने के लिए नहीं।

ताश की महफिल में अकसर जीत जाने के बावजूद बैंक में खाता खुलवाने के सवाल पर थानेदार जियालाल का सधा-सधाया जवाब होता, "क्या करें साहब, यहां इस थाने में कोई 'इनकम' तो है नहीं। पगार जो है, सो घर का खर्चा चलाने के लिए ही कम पड़ती है। और उधार या ओवरड्राफ्ट तो आप घर खर्च के लिए देंगे नहीं? देते हों, तो अभी खाता खुलवा लेतें हैं, यहीं।"

थानेदार साहब का खर्चा वास्तव में इलसा गांव से नहीं चलता, बल्कि आसपास के कुछ छोटे-छोटे गांव उन्हें खर्चा देते, जहां जमींदारी के अवशेष रूप में बचे-खुचे संपन्न परिवार इक्के-दुक्के पर दीवानी-फौजदारी का 'कुटीर-उद्योग' कायम करते रहते। या फिर खर्चा चलता था इलाके के सवर्णों-लट्ठधारियों द्वारा हरिजनों और गरीबों पर की जानेवाली 'रेप'-लीलाओं से। थानेदार जियालाल अकसर उन छोटे-छोटे गांवों के बीच पंच-



नामा, बयान, तफतीश में व्यस्त रहते ।

वह पुलिस अफसर ही क्या, जो जरूरत के मौके पर गैरहाजिर हो। श्री जियालाल थाना-भवन के कोने में स्थित अपने 'चैंबर' में ठीक उनतीस फरवरी की तरह डटे हुए थे। वे काम करने के पक्के मूड में थे और रोजनामचा भरते हुए अनेक अविश्वसनीय कार्यों को विश्वसनीय बनाने के मूड में थे।

"आइए, मुल्क के मालिक !"

स्वागत-वाक्य के वजन ने थाने में प्रवेश करते कृपाराम को जड़ से हिला दिया। चुपचाप खड़े रह जाने के सिवा, उसे कुछ नहीं सूझा। उसे लगा, अर्जी देने, अगर वह हेड साब के पास ही चला जाता, तो अधिक अच्छा रहता।

"बैठिए हुजूर, विराजिए । अभी हाजिर होता हूं आपकी सेवा में। जरा ये अपने हाथ का काम पूरा कर लूं। बैठिए ना आप ।"

कुरसियां खाली पड़ी थीं, लेकिन 'शिष्टाचार-सप्ताह' की मर्यादा में आदेशित सौम्य भाषा का प्रबल प्रयोग करते हुए थानेदार जियालाल ने उसे जहां बैठने का इशारा किया था, वहां खाली जमीन थी। उकड़ू बैठ गये 'मुल्क के मालिक' उर्फ कृपाराम ।

"अब सुनाइए, क्या कष्ट है? मुरगी चोरी चली गयी आपकी ?"

"नहीं हजूर, कूआ ने पंप ...।"

कृपाराम के उत्तर पर ध्यान दिये बिना, उन्होंने उसके हाथ से अर्जी लेकर पढ़ना शुरू कर दिया। अर्जी पढ़ने के बाद उन्होंने मुसकान का झंडा आधा झुका दिया और कृपाराम को सीधी नजर से घूरते रहे। फिर 'शिष्टाचार-सप्ताह' की शब्दावली को अलविदा कहकर गुर्राये, "क्यों बे कुत्ते की औलाद, सच बता, किसने दी तुझे ये अकल ?"

"मां कसम साब, झूट नीं बोलता। सच्ची केरिया हूं। आप चावो तो पूछी लो, ने चली ने दीखी लो।"

"सो तो मैं सब करूंगा ही, पर तू ये बता कि तुझे ये अर्जी किसने लिखवायी।"

परंतु कृपाराम को मिली उस निपट

ग्रामीण सूझ में किसी बौद्धिक गहराई या अय्यार-तत्व की तलाश व्यर्थ थी। थानेदार जियालाल भी अकल देनेवाले को कोई नोबल-पुरस्कार नहीं देनेवाले थे। कृपाराम ने सूत्र नहीं बताया। सीधी-सी बात का सूत्र होता भी तो क्या! आठेक साल पहले, तीसरी बेटी की शादी में कृपाराम जलवा दिखाना चाहता था। पूरी जात जिमाने की मंशा पूरी करने के लिए उसे जमीन गिरवी रखने की खुजाल चल रही थी। तभी मुसीबत में फंसे ग्रामीणों के सनातन उद्धारकर्ता पटवारीजी आड़े आ गये। बाबाओं का चक्र-सुदर्शन धरने के लिए कनिष्टिका ऊपर उठाये, उन्होंने कृपाराम का दुखड़ा सुना और गज को ग्राह के मुंह से खींच लेने की योजना का मसौदा पेश किया।

रातोंरात कृपाराम की सूखी जमीन में कुआं आ लगा। मिनट-दर-मिनट कुआं हाथ-हाथभर गहरा होता गया। ठीक चालीस हाथ नीचे पानी निकल आया। सुबह होते-होते कुएं की पाल बंध गयी और बैंक के अफसरों ने कुआं अपनी नजर के सामने खुदने और मुंडेर पर बैठे कृपाराम की हालत ऋण चुकाने लायक आसूदा होने की तसदीक कर दी।

अनखुदा कुआं कृपाराम को तीन हजार में पड़ा। गवर्नमेंट नामक किसी नैनसुख संस्था की योजना के अंतर्गत कृपाराम को कुल छह हजार रुपये मंजूर किये गये थे। उसमें से पच्चीस प्रतिशत 'सबसिडी' थी। 'सबसिडी' के डेढ़ हजार बिना कुआं खुदवाये कृपाराम को कैसे मिल सकते थे? शेष साढ़े चार हजार में से डेढ़ हजार और उन लोगों के नजराने हुआ, जिन्होंने बेटी की शादी में उसकी नाक रख ली थी। बदले में कृपाराम को सिर्फ कुछ कागजों पर अपना नाम लिखना पड़ा।

जात जिमाने का जलवा अब तक





जमीन पर आता, बैंकवालों का 'लोन चुकाओ' 'लोन चुकाओ' का तगादा शुरू हो गया। जो पहले-पहले तो चा-पानी में चुप होता रहा, फिर जमीन नीलाम करने की धौंस देने लगा। लेकिन जमीन तो वही थी, आधी बजरी विनपीयत। कुछ बचे तो लोन चुकाये कृपाराम। पर पटवारीजी फिर महाप्रभु बने—नरसिंहावतार, जिन्होंने हरिण्यकश्यप का पेट चीरने के लिए प्रहलाद को विरासत में मिलने वाले महल का खंभा चीरकर दर्शन दि थे।

उन्होंने 'लोन-शय्या' पर पड़े भीष्म पितामह बैंक की प्यास बुझाने के लि कृपाराम को कुएं पर डीजल पंप बैठाने का मार्ग बता दिया। फारमूला इस बार भी शिक्षा-नीति की तरह सुस्पष्ट था। पचास धन पचीस धन पचीस। जो बचे ढाई हजार रुपये में बैंक की कुछ किश्तें चुक गयीं। 'लोन चुकाओ', 'लोन चुकाओ' का धनुवात टल गया। कृपाराम के हाथ में कुछ नहीं आया।

शांति थोड़े ही दिन रही। इस बार बैंक का तगादा चा-पानी से भी नहीं टल रहा था। पटवारीजी भी इस बार कन्नी काट गये। और एक दिन बैंक-नोटिस का पीला कागज कृपाराम के दरवाजे पर चिपक ही गया।

विदाई की मुद्रा में कृपाराम खेत की मेड़ पर खड़ा हो गया। अन्नदात्री भूमि को हाथ जोड़कर देख रहा था। मकई कटने पर बचे खूंटों की आंखों में आंसू आने जैसी कोई समस्या नहीं थी। पर कृपाराम अपने सामने धुंधलाये दृश्य से समस्या हल करने की मांग कर रहा था। कुआं तो बेटी की शादी में बन गया, पर उस पर पंप क्यों लगा? पंप लग सकता है, तो ट्रेक्टर क्यों नहीं आ सकता? उत्तर मिला, इसमें कोई जादू नहीं है, सब साले चोर हैं। पंप कुएं समेत गायब कर दिया।

मेड़ पर ऐसे ही बड़बड़ाते हुए, कृपाराम को उपाय सूझ गया था। अर्जी में उसने चार दिन पहले कुआं चोरी चले जाने की शिकायत की थी। उसके कुएं और पंप के गवाह थे, सरकारी कागजात, पटवारीजी, बैंक के अफसर, बाबू लोग और कुएं पर पंप लगानेवाली कंपनी।

अर्जी में यह भी लिखा था कि सब तरफ से हारकर आखिरी उपाय के रूप में ही वह थानेदार जियालाल की इजलास में आया था। और उसे यह भी मालूम था कि अगर थानेदार भी उस जादूगर पार्टी में शामिल ो गये, तो वह कहीं का नहीं रहेगा। जूते पड़ेंगे सो हासिल के।

मगर कृपाराम की 'दुहाई-दुहाई' की गुहार सुनकर अंधेर नगरी के इस थानेदार का थानेदारत्व जाग उठा। इलसा गांव का पहला चटपटा केस सामने था, "शाब्बाश पट्ठे, खूब लिखी है अर्जी। मत बता लिखवानेवाले का नाम। बोल, तेरे खेत में कुआं और पंप लगवा दूं तो?"

"हुजूर, हजार आपके।"

"ठीक है। रही। पर साले अर्जी से पीछे हटा तो?"

"अरे नीं हजूर।"

"साले, हटा तो चमड़ी उधेड़कर रख दूंगा। अरे, हेड-साब इसकी अर्जी ले लेना, पर दर्ज मत करना। और बुलाना जरा उन बैंकवाले जुवाड़ियों को।"

अगले तीन माह थानेदार जियालाल की तंत्र-विद्या को सिद्ध करनेवाले दिन थे। कृपाराम के खेत में कुआं उग आया। काली सूची में जाने के डर से डीलर ने मुफ्त में पंप लगा दिया। हजार रुपये थानेदार साब की नजर करते हुए, कृपाराम ने समय से बाकी किश्तें चुकाने का वादा किया। बाकी किश्तें पटवारीजी और बैंक के अफसरों ने भी चुकायीं। और जियालाल का बैंक में खाता खुल गया।

मामले को सही सलामत निपटाकर जादूगर जियालाल अपनी कला पर स्वयं मुग्ध थे। उनका विश्वास बढ़ गया था। बात-बात पर ठठाने और गालियां देने लगे थे। तभी एक दिन, तीन निरीह ग्रामीण घनकू, साधूसिंह और जनकू ने थाने में डरते-डरते प्रवेश किया।

"क्या है ` ?"

"हुजूर!"

"बोल ना?"

"एक अरज है।"

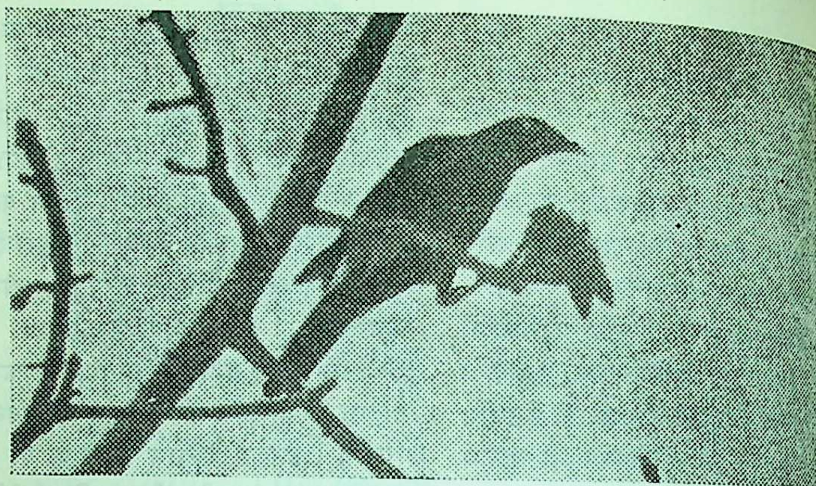
"क्या हुआ?"

"हुजूर, हमारे भी कुएं और पंप चोरी चले गये हैं।"

—द्वारा-किसान बीज भंडार, गोल चौराहा, नयी आबादी, मंदसौर-४५८००१

एक मशहूर फिल्म तारिका ने शादी के बाद अपने पति महोदय से पूछा, "क्यों डियर, तुम मुझसे अब भी प्यार करते हो?"

पति महोदय ने मुसकराते हुए जवाब दिया, "क्यों नहीं! मेरी तो शुरू से ही विवाहित स्त्रियों में दिलचस्पी रही है।"



हर कौआ काना नहीं होता

● पंडित विष्णुकांत शुक्ल

हिंदी की एक पुरानी कहावत है— 'सौ पै लंगड़ा हजार पै काना, ताके ऊपर ऐंचकताना।' इसका अर्थ है— एक लंगड़ा सौ बदमाशों के बराबर होता है, काना हजार के बराबर और ऐंचकताना उससे भी ऊपर है। कहना चाहिए, लंगड़ा, काना और ऐंचकतानों की 'पावर' या 'पोटेंसी' उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। ये तीनों गुण एक साथ नहीं रह सकते। एक पैर में खराबी होने पर लंगड़ा और एक आंख में गड़बड़ होने पर काना होता है। 'ऐंचकताना' दोनों आंखों से 'क्रॉस मैथड' में कटाक्ष वीक्षण करता है।

यहां बात काने कौए की चल रही है। कौआ काना न आज तक देखा, न सुना। यानी हर कौआ काना नहीं होता। त्रेता-युग में केवल एक घटना हुई थी, जिसमें कौआ सबसे पहली और अंतिम बार काना हुआ था। भगवान राम वनवास के समय पंचवटी में सीता और लक्ष्मण के साथ रह रहे थे। एक दिन इंद्र के पुत्र जयंत ने अपनी जवानी के जोश और

अज्ञान में श्रीराम की शक्ति देखने के लिए काक रूप धारण किया और तुलसीदासजी के अनुसार 'सीता चरन चोंच हति भागा, मूढ़ मंद मति कारन कागा।' तुलसी मर्यादावादी कवि हैं, इसीलिए प्राचीन संदर्भ में 'चरन चोंच हति' यह संशोधन कर लिया गया है। वाल्मीकि इससे भिन्न रिपोर्ट देते हैं—'जयंत सीता के स्तनों पर आघात करके भागा।' खैर, कुछ भी हो, यह नालायकी करके जयंत भागा। उसके पीछे-पीछे रामजी का मंत्र-प्रेरित सींक का बाण चल पड़ा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक उसे न बचा सके। अंत में नारद मुनि ने जयंत को विकल देखकर भगवान राम की शरण में भेजा और रामचंद्रजी ने 'कंसेशन' कर दिया, एक (दाहिनी) आंख फोड़कर ही छोड़ दिया। यहां सबसे पहली बार कौआ काना हुआ है।

वंश-दोष पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता है। इसीलिए काने कौए की भविष्य की पीढ़ियां भी 'काना, विशेषण से जोड़ दी गयीं। अब अच्छा-खासा कौआ भी इसी वंश-दोष के कारण 'काना' माना जाता है। इसीलिए कौआ चंटता और धूर्तता गुणों या दुर्गुणों में पक्षियों में सर्वश्रेष्ठ है। सुप्रसिद्ध नीतिग्रंथ 'पंचतंत्र' में 'पक्षिणां चैव वायसः' कहकर कौए की धूर्तता को प्रमाणित कर दिया है। इसकी भक्ष्या-भक्ष्यता का कोई नियम या विचार नहीं है, इसीलिए यह पक्षियों में चांडाल माना जाता है।

किंतु कौए को केवल धूर्त ही मानना इसके प्रति सरासर अन्याय है। काक-भुशुंडी (रामचरितमानस के अनुसार) रामकथा के अद्वितीय वक्ता और ज्ञाता हैं। पक्षिराज गरुड़ तक का अज्ञान उन्हीं की कृपा से दूर हुआ था—इस दृष्टि से काक परम चतुर पक्षी माना जाना चाहिए। कहते हैं, कौए की मां ने अपने बेटे को समझाया—'बेटे, जब कोई आदमी जमीन की ओर झुके, तो तुरंत उड़ जाना।' कौए ने पूछा—'और जो उसने पहले से ही हाथ में छिपा रखा हो तो . . . ?' मां-बेटे के इस संभावना-प्रश्न से अत्यंत प्रसन्न हुई। इस कहानी में आदमी को कंकड़-पत्थर या ढेला उठाने के लिए झुकते हुए संभावित किया गया। पर प्रत्युत्पन्नमति मेधावी काक ने अपने 'क्रॉस क्वश्चन' से मां को निश्चित और प्रसन्न कर दिया। कौए के ज्ञान से संबंधित एक कथा 'महाभारत' में आती है, जिसके अनुसार कौआ एक सौ एक प्रकार की उड़ानें जानता है।

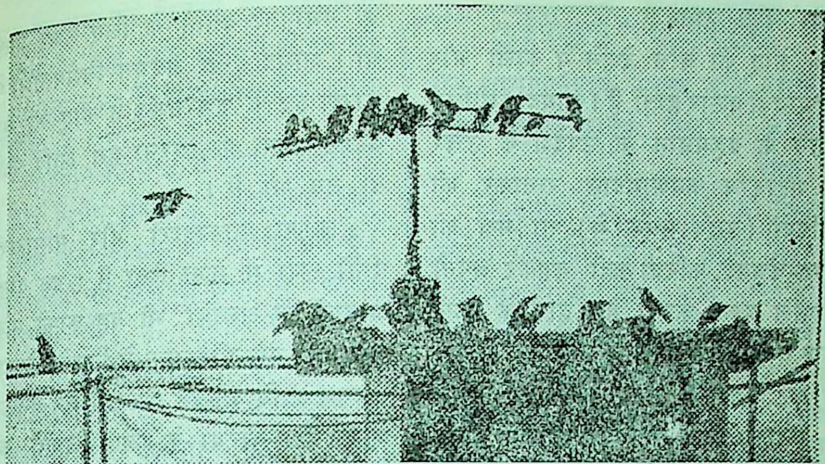
कौआ बहुत फुर्तीला पक्षी है। सतर्क भी है। अपने आहार पर एकदम आता है, पर खाने से पहले चौकन्ना रहता है। कांव-कांव करके 'ऑल क्लीअर' करने के बाद ही खाता है। बुद्धि और त्वरा में इसका मुकाबला नहीं है। कुत्ते के सामने पड़े हुए भोजन को दो कौए मिलकर उठा लेते हैं। एक कौआ कुत्ते के पिछले पैर में चोंच से प्रहार करता है। कुत्ता

घूमकर पीछे देखता है, इसी बीच दूसरा कौआ कुत्ते के सामने पड़ी हुई रोटी आदि झपट ले जाता है।

कौआ भारत के सभी तीर्थों पर मिलता है। इसीलिए इसके नाम के समान ही पंडों का एक नाम 'तीर्थध्वांक्ष' ही प्रसिद्ध है। श्राद्धों में 'काक-बलि' परम आवश्यक होती है। उस समय अन्य किसी पक्षी को याद नहीं किया जाता। भले ही रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि बिहारी ने 'जौं लौं काग सराध पख' लिखकर कौए का बहिष्कार कराने की चेष्टा की है, पर कौए का मूल्य घटा नहीं है। कौए की अवस्था बहुत होती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार धर्मराज ने कौए को वरदान दिया था—"जैसे दूसरे प्राणियों को मैं नाना प्रकार के रोगों द्वारा पीड़ित करता हूं, वे रोग मेरी प्रसन्नता के कारण तुम पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। मेरे वरदान से तुम्हें मृत्यु का भय नहीं होगा। जब तक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तब तक तुम जीवित रहोगे। मेरे राज्य—यमलोक में स्थित प्राणी, अपने पुत्रों द्वारा तुम्हें भोजन कराये जाने पर तृप्त होंगे।" काकभुशुंडी की तो कल्पांत में भी मृत्यु नहीं होती। एक यही पक्षी ऐसा है, जिसने राम और कृष्ण के साथ क्रीड़ा की है। रसखान ने 'काग के भाग' की इसी नाते सराहना की है, और तुलसी ने तो राम-काक-लीला का बहुत विस्तृत परिचय अपने 'मानस' में दिया है।

कौआ लोक-जीवन से संबद्ध है। सुबह होते ही उसकी 'कांव-कांव' किसी अतिथि के आने की सूचना देती है। पूरा 'काक-तंत्र' इसी पक्षी से संबंधित है। बच्चे की आंख और मुंह धोती हुई पहले भारतीय माताएं 'कौची-कौची कौआ खाय' कहा करती थीं। अब की मम्मियां इस गीत को भूलकर साबुन के रगड़ों से बच्चों के कोमल कपोलों के साथ अन्याय करती हैं। कौआ शकुन और अपशकुन बताता है। 'शकुन-शास्त्र' में यह विषय पूरे विस्तार से बताया गया है। कौए का मनुष्य के सिर पर बैठना मृत्यु-तुल्य कष्ट देनेवाला माना जाता है। कौए की वाणी से अपने पति की आने की सूचना मानकर महाकवि विद्यापति की नायिका प्रसन्न होकर, कौवे की चोंच सोने से मंढ़वा देना चाहती है। 'साकेत' की उर्मिला कौए को खीर खिलाती है। जायसी के कौए तो नागमति की विरहाग्नि के कारण ही धुएं से काले हो गये हैं। तांत्रिक प्रयोग-उच्चाटन में काक पक्षों का विधान है। आजकल भी 'झूठ-बोले कौआ काटे', 'भोर होते कागा पुकारे' का खूब प्रचार हुआ है। उत्प्रेक्षा अलंकार का एक फिल्मी गीत था, 'लागे उनकी सूरतिया कुछ ऐसी भली, जैसे कौए की चोंच में अनार की कली।'

न्याय-शास्त्र में काक के आधार पर न्याय बन गये हैं। 'काकतालीय न्याय', 'काकदंत गवेषण न्याय', 'काक अक्षि-



भोजन की तलाश में छत पर बैठक !

गोलक न्याय' प्रसिद्ध न्याय अथवा नियम बन चुके हैं। नीति-शास्त्रों की परंपरा में 'पंचतंत्र' के अंतर्गत 'काकोलूकीय' नामक तीसरा तंत्र अलग से ही काकलीला से संबद्ध है। काक और उलूक (उल्लू) परस्पर शत्रु हैं। इन दोनों के इसी वैर को संस्कृत में 'काकोलूकम्' कहते हैं। देखिए, यहां भी 'प्रिफ्रेंस' कौए को ही दी गयी है। 'पंचतंत्र' में कौए की बुद्धिमता की कितनी ही कहानियां आयी हैं।

चाणक्य ने 'काकचेष्टा' को विद्यार्थी के लिए आवश्यक माना है। काक के पंखों की चमक और सुंदरता से प्रभावित होकर ही शायद कवियों ने सुंदर अलकों को 'काकपक्ष' की संज्ञा दी है। मकोय को संस्कृत में 'काक माची' कहते हैं, यह हरे शाकों में श्रेष्ठ चार शाकों में (आयुर्वेद के अनुसार) गिनी गयी है। काक जंघा, काक चिंचा क्रमशः एक चमत्कारी बूटी और गुंजा का नाम है। सोना तोलने में यही काक चिंचा (रत्ती) काम आती है। कवियों के प्रिय खंजन पक्षी के लिए संस्कृत में 'काकछद' और 'काकछदि' शब्द प्रयुक्त होते हैं। और तो क्या, कोयल को भी 'काकजात' कहा जाता है। यहां कोयल की चालाकी से तंग आकर किसी भले आदमी ने उसकी 'गार्जियनशिप' ही साफ कर दी। होता यह है, कोयल किसी भी छल-प्रपंच से अपने अंडे कौए के घोंसले में देती है। कौआ बेचारा गणित तो पढ़ा नहीं, अतः अपने अंडों में कोयल के अंडों की वृद्धि को पहचान नहीं पाता, और अपने ही अंडों के समान उन पराये अंडों को भी सेता है। इस प्रकार कोयल के बच्चों का जन्म कौए के घर में होता है। इसीलिए कोयल के बच्चे को 'काक-

जात' कहा जाता है।

कौए की चोंच देखने में काली और स्वभाव में कठोर होती है। शायद, इसीलिए उद्धव के ब्रह्मज्ञान के उपदेश के उत्तर में महाकवि जगन्नाथदास रत्नाकर की गोपियां (उद्धव शतक में) 'ता मुख को काक-चंचुवत करिबो कहौ' कहकर अपनी आपत्ति प्रकट करती हैं। हाथ के लिखे लेख या पुस्तकों में जब कुछ शब्द लिखने से छूट जाता है, तब एक विशेष चिह्न ¬ बनाकर ऊपर छुटा हुआ शब्द या वाक्य लिख दिया जाता है। यह विशेष चिह्न 'काकपद' कहलाता है। यानी कौवे के चोंच, पैर, पंख, आंख—सभी अंगों के आधार पर कितने ही शब्द बन रहे हैं। नींद की झपकी को काकनिद्रा कहा जाता है।

'कै' धातु शब्द करने के अर्थ में आती है। इसी से 'कन्' प्रत्यय होने पर काक शब्द बनता है। यह काक और कौआ अलग-अलग रूपों में भी मिलता है—पहाड़ी कौआ द्रोण—एकदम काला और बड़ा होता है, इससे बचा हुआ—साधारण। सफेद कौआ एक विशिष्ट काक भेद है। 'काकतंत्र' में इसके भी चार भेद स्वीकार किये गये हैं। कौआ ही ऐसा पक्षी है, जो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सर्वत्र और सर्वदा प्राप्य है। कौए की चाल भी कितनी ही हैं—'कौआ चला हंस की चाल' यानी कौआ चलता भी है, दौड़ता है, फुदकता है, उड़ता है। पानी के जहाजों पर पहले जमाने में कौआ जमीन की दूरी या समीपता बताने के लिए रखा जाता था। शायद इन्हीं अद्‌भुत विशेषताओं के कारण इंद्र के पुत्र जयंत ने कौए का रूप धारण किया था, वरना हंस आदि पक्षी तो तब भी थे।

कौआ शाकाहारी और मांसाहारी दोनों रूपों में मजा लेता है। इन दोनों आहारों के अलावा भी वह काफी माल खाता है। गले और नाक से निकले श्लेष्मा, बलगम आदि को बड़े प्यार से चुन-चुनकर खाता है। गौरैया के जिंदा बच्चों को खा लेता है। चिड़ियों के अंडों को नहीं छोड़ता। चूहे को बड़ी खुशी से खाता है—जिंदा हो या मुरदा सब चलता है। घरों में रात की बची हुई भोजन सामग्री को जो आजकल की सुघड़ और 'होमसाइंस' की 'एक्सपर्ट' गृहिणियों द्वारा सड़क या नाली में फेंक दी जाती है। यह कौआ निबटा देता है। देखा जाए तो गंदगी को दूर करने में कौआ मनुष्य जाति का अत्यंत सहायक है, या फिर 'हैल्थ-आफीसर' है, गंदगी 'प्रूफ' अफसर। यह मरीज को छूकर 'डिटॉल' से हाथ नहीं धोता, न साबुन ही रगड़ता है, पर साफ और स्वस्थ रहता है।

संस्कृत में कौए के लगभग छत्तीस नामों में एक नाम 'काण' है। इसी के आधार पर यह पक्षी काना कहा जाने लगा है। हिंदी प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में कभी-कभी इसे 'ढेड़' भी कहा जाता है। इस कथन में इसका चांडालत्व ही कारण है। आयुर्वेदिक औषधियों एवं वनस्पति [illegible]नों में ही

काक के नाम पर कितनी ही औषधियों के नाम हैं। यही नहीं, मुख के भीतर भी कौआ जुड़ा हुआ है, भाषा-वैज्ञानिक इससे परिचित हैं।

भारतीय मान्यता में कौए का पितरों से कोई विशेष संबंध है। इसीलिए मृत्यु के दसवें दिन 'काक-स्पर्श' का विधान है। इसमें कौओं को बलि दी जाती है। कौआ किफायती जीव है, इसीलिए सीमित साधनों में जीवन-निर्वाह करना भी 'काक चर्या' कहा जाता है। स्नान के प्रकरण में काकस्नान और गजस्नान का भी नाम आता है। काकस्नान आज के 'अपटूडेट' विद्यार्थी और शौकीन लोग सरदियों में खूब करते हैं। इस स्नान में सिर को थोड़ा-सा भिगो लेते हैं। 'जोरू के गुलाम' या 'चिड़ी के गुलाम,' को संस्कृत में 'काक रूक' कहते हैं। 'काका' एक औषधि का नाम भी है। हिंदी में काका बाबा और काकी दादी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पंजाबी में बच्चे और बच्ची को काका-काकी कहा जाता है। शायद बहुत अधिक बोलने के कारण दोनों ही भाषाओं में यह शब्द प्रचलित हो गया है।

अक्ल के मामले में कोयल कौए को धोखा देती है। ईश्वर की सृष्टि में सेर को सवा सेर बराबर मिलता है। लोगों ने वाणी के माधुर्य पर ही कोयल को कौए से ऊंचा स्थान दे दिया। लेकिन कोयल दीखती कितने समय है और बोलती कितना है?

—हिंदी-विभागाध्यक्ष,
जे. वी. जैन कालेज, सहारनपुर

ज्ञान-गंगा

मौनं कालविलंवश्च प्रयाणं भूमि दर्शनम्।
भ्रुकुत्यन्यमुखी वार्त्ता नकार: षडिध: स्मृत:।

—वार्त्ता सुन के चुप हो जाना, तत्काल करनेवाले कार्य में समय विताना, वार्त्ता सुनकर चल देना, बात सुनते समय भूमि को देखना, भृकुटीचढ़ाना और दूसरे की ओर मुख फेर के वार्त्ता करने लगना। ये छह प्रकार के लक्षण इनकार करने के हैं। अर्थात मुख से उत्तर नहीं देने पर भी ये छह लक्षण नट जाने के समझने चाहिए।

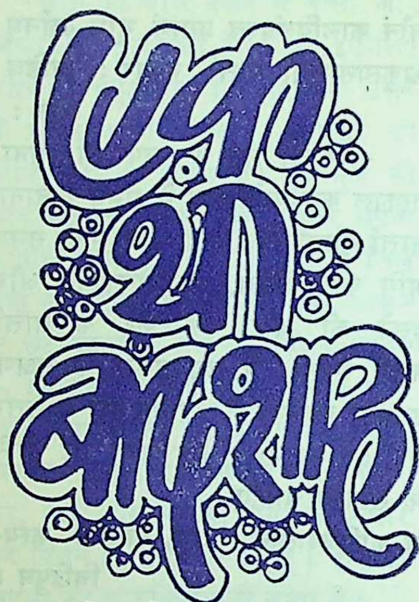
न काश्चिदात्मन: शत्रुं, नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्।
प्रकाशयेन्नापमानं, न च निःस्नेहतां प्रभो:।

—किसी के प्रति अपनी शत्रुता को, अपने प्रति किसी की शत्रुता को, अपने अपमान को और स्वामी के स्नेह-परित्याग को कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

उपकृतिरेव खलानां दोषस्य गरीयसो भवति हेतुः।
अनुकूलाचरणेन हि कुप्यन्ति व्याधयोऽत्यर्थम्।

—दुष्टों के साथ उपकार करना ही महान दोष का कारण होता है। रोग के अनुकूल आचरण करने से वह और अधिक बढ़ता है।

—प्रस्तोता : महर्षिकुमार पांडेय



● अजीज ने सिन

एक बार का जिक्र है, इसी भूमंडल पर एक ऐसा देश था, जहां बातें ज्यादा होती थीं और काम बहुत कम। प्रजा को बादशाह एक आंख न भाता। प्रजा तो प्रजा, स्वयं बादशाह के महल में लोगों को उससे बहुत घृणा थी। बादशाह सलामत थे ही इस योग्य।

जनता को बादशाह से जितनी घृणा थी, युवराज से उन्हें उतना ही प्यार था। वह पूरे साम्राज्य के स्नेह और चाहत का एक मात्र हकदार समझा जाता। उसका इशारा पाते ही, हर व्यक्ति जान कुर्बान करने को तैयार हो जाता। प्रेम की यह भावना एक-तरफा नहीं थी। युवराज को भी देश और जनता से बेहद प्यार था।

वह जब कभी बादशाह सलामत की कड़ी निगरानी से आंख बचाकर सैर-सपाटे के बहाने महल से बाहर निकलता, तब देश के उजाड़, बियाबान इलाके देखकर खून के आंसू बहाता। अकसर उसे ऊंची आवाज में यह कहते सुना गया—

'आह ! ए मेरे प्यारे वतन! क्या यह तेरी धरती सदा यूं ही वीरान पड़ी रहेगी ?'

देश के पत्रकारों को युवराज से विशेष स्नेह था। स्वयं युवराज भी प्रजा के सभी वर्गों में सबसे अधिक पत्रकारों को ही चाहता। जब कभी उसे बादशाह सलामत की ओर से पत्र-पत्रिकाओं पर डाले जाने-वाले नाजायज दबाव का अहसास होता, तब वह परेशान होकर कहता, "जिस देश में 'प्रेस' आजाद नहीं, वहां प्रजातंत्र फल-फूल नहीं सकता।"

युवराज को जब अवसर मिलता, तब पत्रकारों से गुप्त प्रेस कांफ्रेंस करता। उनकी समस्याएं बहुत गौर से सुनता। उधर पत्रकार भी युवराज के इर्द-गिर्द इस आशा में एकत्र रहते कि शायद किसी दिन प्रजा बादशाह का तख्ता उलट दे और उसकी जगह युवराज को तख्त पर बिठा दे, तो 'प्रेस' को पूरी आजादी नसीब हो जाए।

कई बार युवराज पत्रकारों को बड़ी-

बड़ी दावतें देता । उनके साथ तसवीर खिंचवाता । कभी-कभी इन तसवीरों की पुश्त पर यह लिखकर पत्रकारों को देता-- 'मित्रता के सर्वोत्तम दिनों की यादगार !' और अपने हस्ताक्षर भी अंकित कर देता ।

भाषण और लेखन की आजादी के पक्षधर युवराज से देश के कलाकारों को भी बड़ा लगाव था । युवराज के कद्रदानों में कम आयवाले सरकारी कर्मचारी और मजदूर वर्ग के लोग भी शामिल थे । उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यदि युवराज सिंहासन पर बैठा, तो उनकी तंगी के दिन सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएंगे । कृषक भी युवराज के शुभचिंतक थे । हर व्यक्ति इस आशा पर जीवित था कि वह बादशाह बनेगा, तो देश को स्वर्ग बना देगा ।

बादशाह को युवराज के इतने लोकप्रिय होने का अहसास हुआ, तो उसने उस बेचारे पर अत्याचार ढाना शुरू कर दिया । जनता से मिलने और बातचीत करने पर प्रतिबंध लगा दिया ।

अंततः वह दिन भी आ गया, जब बादशाह को तख्त से उतारकर युवराज को बादशाह बना दिया गया । जनता ने खुशियां मनायीं । शाही महल का स्टाफ नये बादशाह को इस महान सफलता पर बधाई देने गया । नये बादशाह ने इन सब को बड़े गौर से देखा, और फिर विस्मयपूर्ण आवाज में पूछा, "आप लोग कौन हैं ?"

वे बड़े आश्चर्यचकित हुए । अब युवराज उन्हें पहचान नहीं रहा था । आखिर एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर अपना परिचय करवाया, "बादशाह सलामत ! मैं वही पुराना नाचीज सेवक हूं, जो शाही महल में आपकी नजरबंदी के दिनों, अपने प्राण हथेली पर रखकर आपके गुप्त पत्र अखबारों को पहुंचाया करता था ।"

बादशाह गहरी सोच में डूब गया । दिमाग पर जोर डालते हुए बोला, "यह कब की बात है ? मुझे तो ऐसी कोई घटना याद नहीं आती । मैंने तो आज जीवन में



पहली बार तुम्हें देखा है।

लोगों ने भरसक प्रयत्न किये, पर नया बादशाह किसी को पहचान न सका।

अगले दिन पत्रकारों का एक प्रतिनिधिमंडल नये बादशाह को बधाई देने आया।

बादशाह ने बारी-बारी, हर पत्रकार को सिर से पांव तक गौर से देखा। फिर बोला, "मैं आप लोगों को नहीं पहचान पा रहा हूं, शायद आप लोगों से कभी मुलाकात नहीं हुई।"

एक पत्रकार ने बादशाह से कहा,



"बादशाह सलामत! यह कैसे हो सकता है! क्या आप मुझे भी नहीं पहचानते, जिसे आप बहुत बे-तकल्लुफी से 'मेरे भाई' कहा करते थे?"

"आप जरूर धोखा खा रहे हैं।" बादशाह ने बड़े विश्वास से कहा, "मुझे इस बात का बिलकुल पता नहीं। आपने मेरी ही शक्ल का कोई अन्य आदमी देखा होगा।"

पत्रकार ने जेब से एक तसवीर निकाली और बादशाह को दिखायी। यह तसवीर दोनों ने इकट्ठे खिंचवायी थी।

तसवीर पर बादशाह के उन दिनों के ऑटोग्राफ थे, जब वह युवराज था। साथ ही प्रेमभरे शब्द भी दर्ज थे। बादशाह ने तसवीर देखी, पर न तसवीर पहचानी और न अपने हस्ताक्षर!

लोगों ने आपस में विचार-विमर्श किया। उन्होंने सोचा, शायद अचानक बादशाहत मिलने की खुशी में बादशाह अपनी याददाश्त खो चुका है। अतः उसे खुली हवा में खूब सैर करायी गयी। फिर उसे उसी दलदल और बंजर इलाके में ले गये, जहां स्वर्ग बनाने की आकांक्षा में वह तड़पता रहता था। बादशाह ने गौर से दलदल पर नजर दौड़ायी और फिर पूछा, "यह कौन-सी जगह है? मुझे यहां क्यों लाया गया है।"

"हुजूर! यह वही दलदल है, जहां से पानी की दिशा मोड़कर आप इर्द-गिर्द

के बंजर इलाके को हरा-भरा बनाने की स्कीमें बनाया करते थे।"

बादशाह ने एक बार फिर गौर से दलदल की ओर देखा और कहा, "खुदा की कसम, मैं इस जगह को जीवन में आज पहली बार देख रहा हूं। उफ! कितनी गंदी जगह है यह। कितनी बदबू आ रही है। काश! मैं यहां कभी न आता। मुझे फौरन वापस महल ले चलो।"

एक दिन उसके सामने एक बड़ा खूबसूरत, सुनहरे फ्रेमवाला आदमकद आईना लाया गया। इसलिए कि भला बादशाह अपने आपको पहचानता भी है या नहीं। बादशाह ने आईने में अपने आपको देखा। देर तक नजरें जमाये रखीं, फिर बोला, "यह कौन व्यक्ति है ?"

"आप हैं बादशाह सलामत।"

"नहीं! नहीं!! नहीं!!! यह मैं तो नहीं।"

"जनाब! जरा गौर से देखिए। दिमाग पर जोर डालिए। यह तो आप ही हैं।"

"नहीं, नहीं, मैं नहीं हूं। आइए, आप लोग स्वयं देखिए और फैसला कीजिए कि यह मैं हूं या कोई और।"

दर्शकों ने आगे बढ़कर आईने में देखा, तो उनके विस्मय की सीमा न रही। आईने में बादशाह के प्रतिबिंब के बजाय एक अजीब वस्तु दिखायी दे रही थी। उसके गधे-जैसे लंबे-लंबे दो कान थे। बैल-जैसे दो सींग। बैल की ही आंखों-जैसी दो



मोटी-मोटी आंखें। शरीर पर बंदर की तरह लंबे-लंबे बाल। वनमानुष-जैसा भारी-भरकम शरीर। सूअर-जैसी थूथनी और गेंडे-जैसा मुंह। लोगों ने बादशाह को न्यायसंगत मानते हुए क्षमा मांगी और सब अपने-अपने घरों को चल दिये। उस दिन से प्रजा के मन में एक नयी आशा ने जन्म लेना शुरू किया—एक नया युवराज, शाही महल में नजरबंदी, वर्तमान बादशाह का तख्ता उलटकर नये युवराज को बादशाह बनाने की आशा।

—अनु.: सुरजीत

चलते हैं मजाक सात पीढ़ियों तक

सामान्य जीवन के हास-परिहास में चाहे किसी ने भाग न लिया हो, किंतु किसी न किसी अवसर पर उससे आनंद अवश्य प्राप्त किया होगा। वास्तव में ये हैं तो बड़े सरस, लेकिन कभी-कभी बड़े कसैले लगते हैं।

सको शिष्ट और अशिष्ट परिहास दो वर्गों में रखा जा सकता है। शिष्ट हास्य



● डॉ. रहमतउल्लाह

का संबंध पढ़े-लिखे सभ्य सुसंस्कृत लोगों से है और अशिष्ट परिहास का अनपढ़ गंवारों से। औरतों का हास विशिष्ट होता ही है, बालकों या नवयुवकों के हास की भी विचित्र शैलियां प्रचलित हैं।

प्रत्येक गांव में विचित्र हंसी हंसनेवाले एक-दो व्यक्ति अवश्य रहते हैं। जब कभी गांव में मेहमान आते हैं, तब हंसी-मजाक की बैठकें जमा करती हैं। कभी-कभी ये मजाक सात पुश्त तक पहुंच जाते हैं।

भारत के रंगीन त्योहार होली में इसकी प्रमुखता देखी जाती है, किंतु इसमें किसी प्रकार की कटुता नहीं आने पाती। बिना किसी छल-कपट के गाली दी जाती है, या सुनी जाती है। होली में फबीला, कबीरा और रंगीला जोगीड़ा के रूप में हास-परिहास का रिवाज है। होलिका दहन के बाद जिस अपशब्दावली का उच्च स्वर से उद्घोष किया जाता है, उसे कबीर कहते हैं। इसका निशाना प्रायः भाभियां

हुआ करती हैं। यहां बूढ़ी या जवान भाभी का भेदभाव नहीं रह जाता। दादा लोग भी बिना जोश में अपने बिना दांत की भाभियों को प्रेम से याद करने लगते हैं और दबी जबान से पुरानी गजटेड शब्दावली का उद्घोष करने लगते हैं। इसको सुनकर नये देवर और भी आग उगलने लगते हैं। नगरों में शिष्टाचार का थोथा प्रदर्शन होने के कारण ऐसी स्वाभाविक अभिव्यक्तियां प्रायः कुंठित हो जाया करती हैं।

होली के अवसर पर कहीं-कहीं जोगीड़ा बोलने की प्रथा भी लोकप्रिय है। इसकी प्रतियोगिताएं हुआ करती हैं। रातभर काट-छांट या सवाल-जवाब चलते रहते हैं। फूहड़पन और सेक्स की प्रधानता रहती है, फिर भी किसी के तेवर नहीं चढ़ते। जोगीड़ा बोलना या बनाना सब के वश की बात नहीं है। इसके कुछ विशिष्ट उस्ताद होते हैं, साथ में साथी, चेले-चपाटे बीच-बीच में वाह-वाह, हू-हू, हाय-हाय, अररर, सारा रा रा आदि बोलते रहते हैं, जिनसे आयोजन में रमणीयता बनी रहती है।

हमारे देश में इनका प्रचार प्राचीनकाल से देखा जाता है। विवाह के प्रायः सभी अनुष्ठान विविध मंगल-गीतों से पूरित होते हैं। गाली या परिहास इन्हीं में से एक है। परछन से लेकर बारातियों के विदा होने तक इस परिहास के रूप में गालियां गायी जाती हैं। महिलाएं ही इनको जीवित बनाये हुये हैं। मुस्लिम दरबारों में भी इनका प्रचार था। लालकिले में वैवाहिक उत्सवों में गालियों के रूप में विविध हास-परिहास होते थे। इनको 'सीठना' कहा जाता था। मुगल सम्राट शाहआलम द्वारा रचित कुछ गालियों और छेड़-छाड़ का आनंद आप भी ले सकते हैं।

समधी ने समधिन को
जल्दी हाथ में ले दिखलाया
मोटा-खासा बड़ा सुनहरा,
भला पलंग का पाया
छाती दिखावें आंख लड़ावें
बोलत बोल बढ़ावा
समधिन आयी समधी के ढिग
लेकर हाथ चढ़ावा



बारातियों के आगमन और उनके क्रिया-कलापों का वर्णन और भी रंगीला है—

समधन के घर जुटे बराती
आपस में कह थामक धूमा
जाम पिला शरबत के सबने
मिरजा बाबा का मुंह चूमा

दरबारी हास-परिहास के अतिरिक्त लोक-जीवन में भी गाली की रीति बड़ी लोकप्रिय है। परछन के समय आज भी दर्शकों की छाती पर नौबत बजा करती है, पीठ पर ढोलक पीटी जाती है। द्वार-पूजा पर आये बारातियों का शिष्ट कमेंट तो आज भी प्रचलित है। एक रसीला मजाक इस लोक गीत में देखिए—

बरतिहवन की जुलफी में तीन-तीन सड़क
—क्या खूब है
एक लंदन को जाए, एक जरमन को जाए,
एक काबुल को जाए—क्या खूब है
एक बी.एन.डब्ल्यू.आर. एक ई.आई.आर.
एक जी.आई.पी.आर. क्या खूब है
इनकी जोड़ियां छबीली, उनकी बहिना
रंगीली, नाही काते चरखा क्या खूब है

द्वार पर बारात का स्वागत करते हुए औरतें कहती हैं—

हीरा जड़े दरवाजे, मोती जड़े दरवाजे,
दमाद आज आयो रे

आज भी सजी-धजी बारात पर महिलाएं लोट-पोट हो जाया करती हैं। चारों ओर से नोक-झोंक, देख-रेख, बोली-ठोली होने लगती है—

हाली-हाली बिड़वा जोड़ावा हो कवन
राम द्वारे अइली बारात, सुरुजवा हो
× × ×
छक छौड़ा पूता मोरे गौरा लूटन अइले,
छक छौड़ा पूता

कि हां जी ऊंची अटारी क इंद्र झरोखा
राम आये ससुरारी हो
कि हां जी माताजी बहिना के नमवाँ न
जानी, कइसक गाइब गारी हो

विवाह के समय मड़वे में हास-परिहास देखिए—

ई बर काग भुसुंडी हो,
मोर मानिक सुंदर हो
× × ×
इमली घोटाने मेरा छोटा-सा भैया आया रे
भाई भी आया, भतीजा भी आया,
भाभी की सारी लहराता आया

मड़वे में जेठ द्वारा ताग-पाट पहनाते समय भी गाली के रूप में सुंदर हास-परिहास होता है—

जरा लाइट दिखाओ मैं भसुर देखूंगी
भसुर होंगे पुरान, गाली दूंगी हजार,
भसुर साले को मंडप में बांध रखूंगी
डाल होगी खराब, गाली दूंगी हजार,
भसुर साले को मंडप में बांध रखूंगी
× × ×
यही भसुरवा के हाथी अइसन दांत रे,
यही दतवां से चइला चीरेल हमार
यही भसुरवा के कुचुर-कुचुर आंख रे,
यही अखियां से चितवेला गौरा हमार

विवाह के बाद जब वर आंगन में खिचड़ी खाने बैठता है, तब गालियों की बौछार होने लगती है। रूठे वर को मनाने के लिए विनती की जाती है—

सखी कइसे हम मनाई, शिव मानत नाहीं

×××

कि अरे लाला जेवना परोसी
आगे रखी गइले
रउरे सुन लेइ हमरो अरजिया
कि अरे लाला

अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त करके जब वर भोजन करने लगता है तब और भी विचित्र गालियों के द्वारा परिहास चलता है—

छीया दूर करो, छीया दूर करो,
साला निकम्मा है रे, छीया दूर करो

समधी को संबोधित करके गाया जाता है—

निहुर-निहुर पड़वे बैठे समधी भड़ुवे,
कटहर की तरकारी की वाह-वाह ।

×××

पाख बराबर भोर भात खइली
नाद भरल मोर दाल जी
जूठी पतरिया कांखि दाबि देहली जी,
निहुरलनिहुरल जाली जी
कुकुरा के भेखे

शादी के अवसरों पर कुछ व्यावसायिक गायक-गायिकाएं, नर्तकियां तथा भांटिने भी सुंदर गारियां गा-गाकर परिहास करती हैं।

'तोरी बोलिया सुने कोतवाल, तूती बोले रे', तथा 'हरा-हरा बसवा कटवले रे, मोर रावण जोगियां' विशेष लोकप्रिय है।

विवाह के अतिरिक्त अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए भी पुरुषों को मधुर समुझावन देती हुई गारियां गायी जाती हैं—

आया है कैसा जमानाजी वाह-वाह
है मरदाना, भेष जनाना,
चाल चले जेल-खानाजी वाह-वाह
इन निर्लज्जों को शर्म न लागे,
औरत के फैशन बनानाजी वाह-वाह

अनेक उपदेशात्मक गारियां भी प्रचलित हैं—

कि हां जी देशवा के रीति कुरीति सुनाइले
धीरे-धीरे ग्रास उठायी
कि हां जी देसवा के चाल कुचाल सुधारहु,
नवका डूबि जनि जाई

×××

जब से भई अनमेल की शादी
दुनिया सिटत मिटि जाई
कि हां जी बाल-विवाह मति करो मोरे
लालन बाल विवाह दुखदाई
कि हां जी वो बेटा बेचवन के लाजो
न लागे कठिन दहेज मोलाई

गांधीजी, जवाहरलालजी को भी उपमान बनाया जाता है—

गांधी भइया दुलहा, जवाहरलाल समधी ।

इस प्रकार सभी वर्गों में इनका प्रचार है।

—२३४, बाजबहादुर,
आजमगढ़-२७६००१

चटकियां

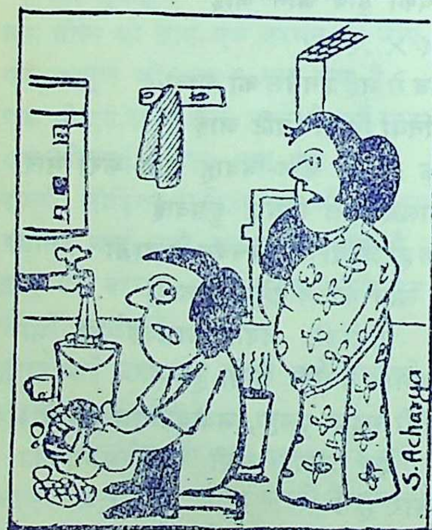
एक डॉक्टर से उनके मित्र ने पूछा, "तुमने उस 'रिसेप्शनिस्ट' लड़की को क्यों हटा दिया? अच्छी-खासी तो थी।"

डॉक्टर ने कहा, "उसे हटाना जरूरी हो गया था। मैंने अपने कानों से सुना---दो-तीन रोगियों ने उससे कहा कि आधी बीमारी तो तुम्हारी एक मुसकराहट से ही दूर हो जाती है।"

*

क्लर्क, "सर! मेरी पत्नी ने कहा है कि मैं आपसे कहूं, आप मेरा वेतन बढ़ा दें।"

मालिक, "ठीक है, कल मैं अपनी पत्नी से सलाह लूंगा।"



"आपके लिए कपड़े धोने व बर्तन मांजने के लिए मैं गरम पानी कर देती हूं, फिर भी 'आप कहते हैं कि मैं काम की औरत नहीं हूं।"

एक पहाड़ी नगर के एक अच्छे होटल में विभिन्न प्रकार के व्यायामों का प्रबंध था। उस होटल में ठहरे, एक सज्जन ने व्यायामों के प्रति अपनी रुचि नहीं दिखायी। हर समय आराम करते रहते। होटल छोड़ते समय मैनेजर ने बड़ी नम्रता से कहा, "कृपा करके इस होटल की परंपरा को न तोड़ें, और कोई बहुत ही साधारण-सा व्यायाम कर लें। बस, अपने दोनों हाथ बिना मोड़े हुए नीचे तक लाकर, इस अटैची को छू लें।"

उन सज्जन ने बाखुशी अटैची को छू लिया। "अब एक कृपा और" मैनेजर ने वैसी ही विनम्रता से कहा, "इस अटैची को खोलकर इसमें से होटल का तौलिया भी निकाल दें।"

*

रात में फोन की घंटी बजी, तो वकील साहब को अच्छा न लगा। उठकर रिसीवर कान से लगाया ही था कि आवाज आयी, "आप कहां से बोल रहे हैं?"

"जहन्नुम से"

"शुक्रिया! बस, इतना ही जानना था कि तुम्हारे-जैसा बदतमीज स्वर्ग में तो नहीं पहुंच गया?" और फोन कट गया।

*

पत्नी---"दांत में इतना दर्द है, तो तुम दांत के डॉक्टर के पास जाकर, दांत निकलवा क्यों नहीं लेते?"

"इस शहर में दांत के दो ही डॉक्टर हैं। और, उन दोनों पर मैं भारी इनकम टैक्स ठोक चुका हूं।"

किस्से खोजा फकीर के

(११)

सौगात का बोझ

एक दिन की बात है, खोजा फकीर के पास रोजाना किस्से सुनने आनेवाले लोगों ने उससे कहा, "फकीर, तुम हमें हमेशा कुछ न कुछ देते हो। हम चाहते हैं कि अपनी औकात के मुताबिक तुम्हें कुछ भेंट दें।"

खोजा फकीर हंस पड़ा। बोला, "तो देर क्यों करते हो? जो देना हो कल ले आओ।"

दूसरे दिन सारे लोग अपनी भेंट लेकर खोजा फकीर के पास पहुंचे। फकीर ने उन पर नजर डाली और ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "तो तुमने भी वही भूल की।"

फकीर को घेरकर बैठे लोग अचरज में पड़ गये। उन्होंने एक साथ पूछा, "कौन-सी भूल, फकीर?" फकीर बोला, "एक बार एक सूफी के पास भी लोग इसी तरह सौगातें लेकर पहुंचे थे। उनमें से अनेक लोगों ने अपनी-अपनी सौगातों पर अपना नाम लिख रखा था, ताकि सूफी को मालूम पड़ जाए कि किसने कितनी कीमती सौगात दी है। पर कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने अपनी सौगात पर नाम नहीं लिखा था। सूफी ने बिना नामवाली सौगातें ले लीं और नामवाली सौगातें लौटा दीं। लोगों ने कारण पूछा, तो सूफी ने कहा, "किसी को सौगात देना एक अच्छी आदत है, पर अपने नाम के साथ सौगात देकर हम सौगात लेनेवाले पर एक बोझ लाद देते हैं। और ऐसी सौगात किस काम की, जो लेनेवाले पर बोझ बन जाए।"

किस्सा सुनाकर फकीर तो हंस पड़ा, लेकिन उसे सौगात देनेवालों के चेहरे उतर गये।

रेलगाड़ी में एक महिला अपने कुत्ते को साथ ले जा रही थी। उसने गार्ड से कहा, "मैंने इसका भी टिकट खरीदा है, इसलिए इसे भी दूसरों की तरह सीट पर बैठने का अधिकार है।"

"आप ठीक कहती हैं।" गार्ड बोला, "लेकिन दूसरे यात्रियों की तरह इसे भी सीट पर पांव रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

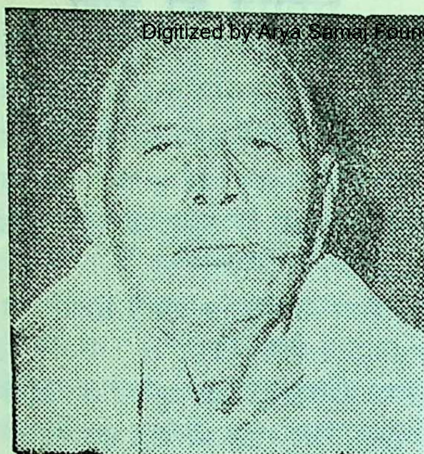
हा! हा!!

अजयः "तुम एम. ए. किस विषय में कर रहे हो?"

विनोदः "गृह-विज्ञान में।"

अजयः "क्यों?"

विनोदः "तुम्हारी भाभी नौकरी जो करती है!"



एक टहनी थी, परंतु भारतीय रूढ़िवादी पंडित ऐसा नहीं मानते। इतना ही अंतर है। जहां तक आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास का संबंध है। भारत के पुरानपंथी पंडित और यूरोप के आधुनिकताबोधवाले विद्वान, दोनों ही मानते हैं कि इनका स्रोत वैदिक भाषा है, यही नहीं, वैदिक भाषा के बाद संस्कृत-पालि अपभ्रंशवाली परंपरा भी दोनों कोटि के विद्वानों को स्वीकार है। वैदिक भाषा से

वे पढ़ना चाहते थे

• किशोरीदास वाजपेयी

डॉ. रामविलास शर्मा को भाषा-विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। उनका एक ग्रंथ अभी-अभी प्रकाशित हुआ है—'भारतीय प्राचीन भाषा, परिवार और हिंदी।' इसकी भूमिका में लेखक का कथन है—"यद्यपि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की स्थापनाएं भारत में प्रचलित रूढ़िवद्ध धारणाओं से पृथक मानी जाती हैं; किंतु यह भिन्नता दिखाऊ है। वास्तव में दोनों की एक ही सामान्य भूमि है कि समस्त आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्‌भव और विकास उस आदि भाषा से हुआ है, जो वैदिक भाषा के रूप में उपलब्ध है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञानी मानते हैं कि यह वैदिक भाषा भारत-ईरानी भाषा की

भिन्न यहां एक या अनेक अन्य आर्य भाषाएं भी थीं, यह उनके लिए कल्पनातीत है। वैदिक भाषा से पहले भी यहां कोई प्राचीनतर आर्य भाषा थी, ऐसा मानने का पाप न तो प्राचीनता प्रेमी भारतीय पंडितों ने किया है और न आधुनिकता प्रेमी पाश्चात्य विद्वानों ने ही। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के विकास के लिए आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की स्थापनाओं का महत्त्व स्वतः स्पष्ट है।"

वैदिक भाषा एक सुदीर्घ विकास का परिणाम है, "जब वेदों की रचना हुई, उससे पहले ही भाषा का वैसा पूर्ण विकास हो चुका होगा।" (भारतीय भाषा विज्ञान, पृष्ठ–११३)

जिसने अंगरेजी नहीं पढ़ी (!)

"वैदिक भाषा का आधार एक जन-भाषा थी। उसमें बहुत-सा साहित्य था, जो नष्ट हो गया। वेदों की रचना से पहले छोटा-मोटा और हलका-भारी, न जाने कितना साहित्य बना होगा और तब वेदों का नंबर आया होगा।' (उपर्युक्त) 'उस जनभाषा के अनेक प्रादेशिक भेद थे। उन प्रादेशिक भेदों में से जो एक साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसी में वेदों की रचना हुई होगी; परंतु अन्य प्रादेशिक रूपों के भी शब्द प्रयोग गृहीत हुए होंगे।" (उपर्युक्त, पृष्ठ–११४) "हिंदी का विकास समझने के लिए प्राचीन आर्य भाषा के उन रूपों पर ध्यान देना होगा, जो न वैदिक भाषा में हैं और न संस्कृत में।" (उपर्युक्त, पृष्ठ–१२६)।

इन स्थापनाओं से निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक भाषा से पहले, जो जन-भाषा-परंपरा रही है, उसे पहचानना जरूरी है; उसके प्रदेशगत भेदों को ध्यान में रखना जरूरी है, ये प्रदेशगत भेद ऋग्वेद की रचना के समय विद्यमान थे; उससे पहले भी थे।

डॉ. शर्मा ने आगे लिखा है, "वाजपेयीजी ने आर्यों की 'मूल भाषा' तथा 'वैदिक भाषा' की चर्चा की है। वैदिक संस्कृत एक मात्र 'मूल भाषा' नहीं है। वैदिक भाषा के समानांतर कौन-सी

कनखल (उ. प्र.)
१४ जनवरी, १९८०

प्रियवर,

एक छोटा-सा लेख भेजा है––अंगरेजी न पढ़ने का दंड। यदि आप मार्च के अंक में किसी तरह निकाल दें, तो बहुत अच्छा हो; फरवरी के अंत में मैं अपने साहित्यिक जीवन की स्वर्ण-जयंती मना रहा हूं।

भवदीय

किशोरीदास वाजपेयी

(किशोरीदास वाजपेयी)

भाषाएं बोली जाती थीं, उनका कुछ ज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान से हो सकता है। इस पुस्तक में मध्य देश की आर्य भाषा अथवा आर्यगण भाषाओं के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह वाजपेयीजी के इस 'मूल भाषा' वाले सूत्र का विस्तार है।"

डॉ. राम विलास शर्मा हिंदी साहित्य के इस युग में कैसे ईमानदार हैं कि इस पंचकौड़ी लेखक की पुस्तक के बारे में सब साफ-साफ कह दिया। यह इसलिए कि वे हिंदी में एम. ए. नहीं हैं।

वह दंड क्या है?

वह दंड, जिसका उल्लेख शीर्षक में है, समझने होंगे। उसे समझना कठिन नहीं है। जिस पुस्तक को डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने ग्रंथ में महत्त्व दिया है, उसका प्रथम संस्करण सन १९५८ में निकला था; एक हजार प्रतियां छपी थीं। उसकी वे प्रतियां अभी (सन १९७८ में) समाप्त हुई हैं! बीस वर्षों में एक हजार प्रतियां बिकीं! कारण यह है कि इस ग्रंथ का किसी ने कहीं नाम ही नहीं लिया! कहीं कोई उद्धरण नहीं! किसी परीक्षा के कोर्स में उसे रखना तो बहुत दूर की बात है! तब बिक्री कैसे हो? कोई उपन्यास तो है नहीं कि 'जनरल' बिक्री हो जाती! यह ओछा इसलिए कि उस ग्रंथ का लेखक अंगरेजी नहीं पढ़ा; बस। डी. लिट. लोग सोचते हैं कि इस 'वे पढ़े' की पुस्तक का नाम लेना अपनी बेइज्जती है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने, सन १९५४ में, एक लेख में लिखा था—"आज की दुनिया में कितना अंधेर है! हमारे देश का सांस्कृतिक जीवन कितना नीचा है, इसका सबसे ज्यादा ज्वलंत उदाहरण हमें पंडित किशोरीदास वाजपेयी के साथ हुए और हो रहे बरताव से मालूम होता है। आज बहुत थोड़े लोग हैं, जो पंडित किशोरीदासजी को समझते हैं और जो समझते हैं, वे भी अपनी ईर्ष्या से नहीं चाहते कि लोग इस अनमोल हीरे को समझें, इसकी कद्र करें।"

"क्या यह दुनिया एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त करने के लायक है, जिसमें अनमोल प्रतिभाओं को काम करने का अवसर भी न मिले, और ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे गुलछर्रे उड़ाते राष्ट्रीय तथा अंतर-राष्ट्रीय मंच पर अपना नाच दिखाएं?" राहुलजी भी हिंदी में एम. ए. नहीं थे और इसीलिए यह सब उन्होंने कह दिया।

'ईर्ष्या' का कारण यह है कि वह व्यक्ति अंगरेजी बिलकुल नहीं पढ़ा और हिंदी के बस 'दर्जा तीन' तक प्राइमरी मद-रसे में इसने पढ़ा है! 'डी. लिट्.' विद्वान सम-झते हैं कि साधारण कलम-घिस्सू ने, जो कुछ दिया है, उससे तो हम लोगों के कृतित्व

> **"आदमी के जीवन में दो समय ऐसे होते हैं, जब वह औरत को समझ नहीं पाता।"**
>
> **"अच्छा। कौन-कौन से?"**
>
> **"शादी से पहले और शादी के बाद।"**

पर पानी ही फिर गया और हम कहीं के नहीं रहे; रुपया भले ही कमा लें! वे अनुभव करते हैं, कि हमारे शब्द-शास्त्रीय ग्रंथ इसके कारण वेकार हो गये। और रस-विवेचन भी गया! तब वे इस हीरे की चमक को रोकें न, तो क्या करें?

इन डी. लिटों के एक प्रतिनिधि ने सन १९५२ में मुझे एक पत्र लिखा था, जो प्रयाग के सम्मेलन-संग्रहालय में सुरक्षित है। उसमें लिखा था—"आपने सभी बड़े लोगों की पगड़ियां उछाली हैं; इसलिए हिंदी भाषी प्रदेशों में आपकी कौड़ी न उठेगी।"

'बड़े' का मतलब है, 'डी. लिटी विद्वान'। 'डी. लिटी' विद्वान आपस में एक दूसरे का सतही खंडन-विखंडन करते रहते हैं, सो सब 'समीक्षा' है; क्योंकि वे बराबरी-वाले हैं। परंतु एक 'वे पढ़ा' आदमी यदि आदर के साथ भी किसी की कोई गलत बात को ठीक करे, तो वह पगड़ी उछालना है! 'वे पढ़ा' वह है ही, जिसने अंगरेजी नहीं पढ़ी!

तो, अब आप ही वताइए कि यह अंगरेजी न पढ़ने का कितना बड़ा दंड है! जिसकी 'भारतीय भाषा विज्ञान'—जैसी पुस्तक की एक वर्ष में केवल ५० प्रतियां बिक सकें, उसे रायल्टी क्या मिलेगी? भूखों मर जाए तो ठीक! झंझट दूर हो! परंतु यह बेशरम 'चौरासी में भी जी रहा है!' क्या किया जाए!

—कनखल, हरिद्वार

तुम!

तुम
सीधी, सरल, राधा-सी
हंसी-सपाट
तुम रोम-रोम फूल, सुवास
मैं ताप!
तुम बिजली
मैं बादल
तुम निर्झर की खिड़की
मैं पवन अशांत!
यह खुशबू कहां से आयी?
कैसे फैल-पसर जाते हैं, तुम्हारे शब्द-भाव
आकाश पर
बन बादल / फिर इंद्रधनुष . . .
और बंसी?
पूछता है जब हर कोई पर्यटक
यह सब—
निहारने लगता हूं, तब मैं
चुप—
चोर-सा. . .
तुम्हारा नाम लूं, न लूं?

अनादि मिश्र
ए–२/९४, सफदरजंग एनक्लेव,
नयी दिल्ली–११००१६

हँसिकाएं

कारण

चावल कच्चे रहे
दाल गली न—(इसीलिए)
खिचड़ी सरकार चली न

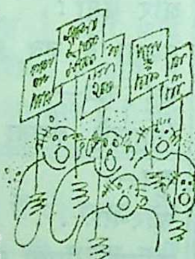
प्रेस कांफ्रेन्स

नया मंत्री
पत्रकारों के प्रश्नों का
उत्तर दे रहा था डरता हुआ
जैसे कोई ऊंघता छात्र
गणित का सवाल हल करता हुआ

लघु कुटीर

कुटीर-उद्योग के आयाम नये
कि—मंत्रीपद पाते ही
उनके—
पत्नी-पुत्र-पौत्रों के नाम
कुंज-कुटीर बन गये

मुद्रा



तराजू में बैठकर
नेता यों भन्नाये
कि उन्हें तौलने के लिए
समग्र नगरवासी
खोटे सिक्के लाये

—डॉ. सरोजनी प्रीतम
सी-१११, न्यू राजेन्द्र नगर, नयी दिल्ली

आश्वासन

(एक)



उनके अर्थों में
आश्वासन
श्वास-क्रिया का
एक आसन
जैसे सांस ली
और निकाल दी
आश्वासनों की बात कही
कहकर टाल दी

(दो)

वे सूखा पीड़ित क्षेत्र में आये
खाली बादलों से गड़गड़ाये
यहां पानी से भरे बादलों का लोप है
कारण चुनावी ताप का प्रकोप है
जब हम चुनाव जीतकर आएंगे
विश्वास कीजिए पानी से भरे बादल साथ
लाएंगे

पोस्टर की जगह

इस बार कागज की कमी के कारण
हम पोस्टर नहीं छपवाएंगे
तभी एक श्रोता ने आवाज कसी
"तो क्या, पोस्टर की जगह
कुर्सी की तरह
खुद चिपक जाएंगे ?"

—प्रेमकिशोर 'पटाखा'
३३, अर्जुन नगर, गाजियाबाद



नेताजी

मंच पर आने से पहले ही
तबले की ताल से भी
तेज--तालियों की गड़गड़ाहट से--
वो इतना फूल गये,
कि-- रटा-रटाया भाषण ही--भूल गये

सरकारी तंत्र

अफसर की पहचान
फाइल-फोन
कुरसी-मेज
और--
कलमदान
बाबू का रूप--
घड़ी,
टाई-सूट
ऊपर-से
चमकदार बूट
चपरासी का हाल--
मुंह में बीड़ी
पिचके गाल,
धंसी आंखें
फटे हाल



--अश्विनी कुमार
सेक्टर १२-६८६ आर. के. पुरम् , दिल्ली

विजय

सोचता था--
अकेले कृष्ण के बल पर
पांडवों ने, कौरवों का
कैसे नाश किया होगा ?
लेकिन अब लगता है
(चुनाव परिणाम देखकर)
ऐसा जरूर हुआ होगा

--सुरेन्द्र शर्मा
नयाबांस, दिल्ली-६

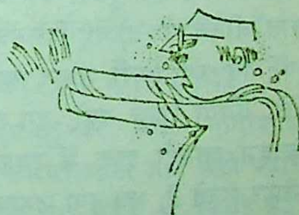
नेता

नेता एक ऐसा थैला है
जो भाषण के कपड़े
और आश्वासन के धागे से बनता है
जनता के वोट पाकर पांच साल के लिए
तनता है

प्रगति

सच !
इतनी प्रगति की है विज्ञान ने
वस्तु नहीं, विज्ञापन आता है ध्यान में

--सुरेश नीरव'
ए २/१३४ सफदरजंग एनक्लेव,नयी दिल्ली



लघु-कथा

दिल जलाया रोशनी न हुई

इत्तफाक की बात है कि हमारे महल्ले में एक शायर साहब ने मकान किराये पर लिया। जैसा कि शायरों के बारे में कहा जाता है, 'बिना इश्क किये शायरी नहीं होती।' लोग टोह में रहने लगे कि इनकी महबूबा का पता जरूर लगाएंगे, जिसके नशे में डूबकर यह ऐसी कड़कती गजलें कहा करते हैं....

अब हाल यह है कि उधर शायर साहब की खिड़की खुली, इधर लोग अपनी-अपनी छतों से आधे लटक गये।

कई दिन निकल गये, कोई भी चांद का टुकड़ा, उनकी खिड़की में नहीं दिखा... पर अचानक एक दिन गजब हो गया... खिड़की से एक सुर्ख आंचल लहराकर इतनी तेजी से उस अंधेरे कमरे में गुम हुआ कि लोग अपनी सांसें रोके आधी रात तक अपनी छत की मुंडेरों पर लटके रहे कि रात बीतने पर तो वह दिलरुबा बाहर आएगी, तब रंगे हाथों शायर साहब को पकड़ेंगे, "मियां! अब कहो, तुम तो कहते थे कि हम शायरी इश्क में डूबकर नहीं, दर्द पीकर करते हैं, अब क्या जवाब है?"

पर शायर भी गजब की हिम्मतवाले निकले, दरवाजा खोलकर खिड़की और बंद कर ली। मुंह-अंधेरे ही उनके महल्ले वालों ने दरवाजे पर दस्तकें शुरू कर दीं, काफी देर के बाद शायर साहब आंखें मलते हुए बाहर आये।

एक दूर-दृष्टिवाले सज्जन ने बड़ी बारीकी से उनके चेहरे के भाव पढ़ते हुए कहा, "वल्लाह... आप जैसा शायर हमारे महल्ले में आकर बस गया और हमको कानोंकान भी खबर न हुई, वह तो कल रात पता चला कि आप किसी बड़े मुशायरे में गये थे, हम आज ऐसे आपको छोड़ने वाले नहीं, हमें वही नज्म सुनाइए, जो आप मुशायरे में पढ़कर आये हैं।"

उनके मुड़ते ही पूरा मजमा उनके कमरे में उमड़ आया। चारों तरफ कागजों के ढेर... एक तख्त; एक सुराही—कुछ बर्तन, बस यही कुछ था, उस अजीबोगरीब हस्ती के पास, हां! एक सुर्ख शाल जरूर एक खूंटी पर टंगा था.... शायद उसी की झलक हवा के झोंके से बिजली की तरह कौंधकर गायब हो गयी थी।

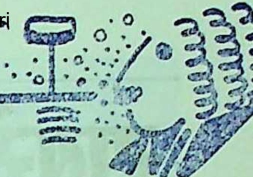
वे तख्त पर बैठकर अपनी नज्म पढ़ रहे थे—

दिल जलाया रोशनी न हुई
क्या जलायें बहुत अंधेरा है

और चिढ़े हुए लोग उनके खिड़कीनुमा दरवाजे से बाहर निकलने की आपाधापी कर रहे थे।

—राजकुमारी 'रश्मि'

विधि-विधान



किरायेदार की समस्या

कुदराय जोंको, चाईबासा : मैं एक शिक्षक हूं और यहीं आठ साल से एक मकान में किराये पर रह रहा हूं। मकान-मालिक धमकी दे रहा है कि या तो मैं उसके लड़कों को मुफ्त में ट्यूशन पढ़ाऊं या मकान खाली कर दूं। इस समस्या से निपटने के लिए विधि-सम्मत राय दें।

मकान-मालिक की धमकी से डरकर उसके बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना तो उचित नहीं है। आप अध्यापक हैं, राष्ट्र के निर्माता हैं। इस प्रकार के दबाव का आपको प्रतिरोध करना चाहिए। ट्यूशन न पढ़ाने पर मकान-मालिक आपको मकान खाली करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

वसीयत को निरस्त करना

क. ख. ग., मध्यप्रदेश : एक आदमी मेरे एक रिश्तेदार को बहकाकर ले गया और उसे अस्पताल में भर्ती कराकर उसके नाम के खाते का वसीयतनामा रजिस्ट्री करा लाया। जिस समय दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराये गये, उस समय उन्हें अस्पताल के रजिस्टर में भर्ती दिखाया गया है और रजिस्ट्री के समय अस्पताल से खारिज। इस संबंध में मेरे रिश्तेदार ने रिपोर्ट तो दर्ज की, लेकिन न्यायालय में दीवानी मामला नहीं बनाया। यह बात सन्, ७१ की है। क्या अब दीवानी में मामला किया जा सकता है? बतायें कि अब इस संबंध में क्या किया जाना चाहिए।

आपके पत्र से मालूम होता है कि आपके रिश्तेदार वसीयत को निरस्त कराना चाहते हैं। उन्हें इस आशय का एक प्रलेख, जिसमें पुरानी वसीयत लिखने की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उसे निरस्त करने की बात रहे, लिखकर पंजीकृत करा देना चाहिए। इससे पुरानी वसीयत निरस्त हो जाएगी। न्यायालय में जाने के लिए भी इसमें तीन वर्ष की अवधि बाधक नहीं होगी। वसीयत को निरस्त घोषित करवाने के लिए आपके रिश्तेदार कार्यवाही कर सकते हैं।

'विधि-विधान' स्तंभ के अंतर्गत कानून संबंधी कठिनाइयों के बारे में पाठकों के प्रश्न आमंत्रित हैं। प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं, राजधानी के प्रसिद्ध कानून-विशेषज्ञ—रामकाश गुप्त

चोर से कैसे निपटूं ?

विजयकुमार बंग, नागौर : मेरे मकान की बालकनी और मेरी पड़ोसी की बालकनी एक दूसरे से मिली हुई है। पड़ोसी का लड़का चोर है। वह महल्ले

में चोरी की तीन-चार वारदातें कर चुका है। उसने मुझे भी सावधान रहने की धमकी दी थी। दो महीने पहले मैं गांव गया था, तब बालकनी के रास्ते उस लड़के ने मेरे कमरे में घुसकर संदूक में से एक पॅट, रुमाल, पर्स व चाबी का छल्ला निकाल लिया, चाबी का छल्ला मुझे बाद में बालकनी में मिला। उस लड़के को उसके घरवालों ने काफी डराया-धमकाया, लेकिन वह चोरी कबूल नहीं कर रहा। बताइए, मुझे कानूनी तौर पर क्या करना चाहिए?

आपको चाहिए कि आप पुलिस में रिपोर्ट लिखा दें और उन लोगों से भी पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दें, जिनके यहां चोरी हुई हैं। पुलिस स्वयं इस मामले में उचित कार्यवाही करेगी और चोर को पकड़कर सजा दिलाएगी।

न्याय कहां मांगू

एन. कुमार जैन, नयी दिल्ली : एक नेता के कुपुत्र ने अलवर (राजस्थान) में जनवरी ७६ में शरारतन मेरी बहन को अपने स्कूटर से कुचल डाला, जिससे बहन की 'कालर बोन' टूट गयी और सिर में गंभीर घाव आया। पुलिस ने काफी हील-हुज्जत के बाद अभियुक्त के खिलाफ मुकदमा चलाया और साढ़े तीन साल बाद अदालत ने अटूट साक्ष्यों व मेडिकल रिपोर्ट के बावजूद अभियुक्त को असीमित रूप से दोषी मानकर साल भर की परीवीक्षा-जैसी नगण्य सजा देकर छोड़ दिया। उच्च न्यायालय में अपील की पूरी गुंजाइश के बावजूद, स्थानीय जिलाधीश व प्रासीक्यूशन विभाग को मेरे कई आवेदन देने पर भी कोई कार्यवाही नहीं की। अब तो अपील की अवधि भी निकल गयी। बताइए, अब मैं क्या करूं?


आपके कानूनी सलाहकार
श्री रामप्रकाश गुप्त

किसी भी न्यायालय के निर्णय को अपील में ही चुनौती दी जा सकती है। अपील करने के लिए समय-सीमा कानून द्वारा निर्धारित की गयी है। समय-सीमा समाप्त होने के बाद अपील करने की अनुमति नहीं होती। हां, यदि भारतीय मर्यादा अधिनियम में वर्णित कारणों में से किसी कारण से अपील में विलंब हो, तो अपील समय के बाद भी सुनी जा सकती है। आपके मामले में ऐसा कोई कारण तो नजर नहीं आता। अब तो आप दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करवाने पर जोर दे सकते हैं।

कर-निर्धारण की समस्या

रामलुभाया, कानपुर : तिमाही का ब्यौरा बिक्री-कर कार्यालय में नहीं दिया गया। क्या बिक्री-कर अधिकारी हमें बगैर सूचना दिये कर-निर्धारण कर सकते हैं? अगर ऐसा कर दिया गया है तो हम क्या

कार्यवाही कर सकते हैं ?

उत्तर प्रदेश बिक्री-कर अधिनियम, १९४८ की धारा ७(३) के अंतर्गत यह आवश्यक है कि बिक्री-कर अधिकारी सही निर्णय करके निर्धारण करने से पूर्व करदाता को आवश्यक सूचना दे। यदि अधिकारी इस प्रकार का नोटिस दिये बगैर निर्धारण कर दें, तो करदाता धारा ९ के अंतर्गत अपील कर सकते हैं या धारा ३० के अंतर्गत इकतरफा कार्यवाही को निरस्त करने का आवेदन कर सकते हैं। कर-निर्धारण अधिकारी के विवेक पर फिर कुछ आधारित नहीं रहता। नोटिस न दिये जाने का तथ्य स्पष्ट होने पर अधिकारी के पास पुराना फैसला निरस्त करने के अलावा कोई मार्ग नहीं रह जाता।

वसीयत का तरीका

अवतार बिहारी, अलवर: अचल संपत्ति की वसीयत करने का वैधानिक तरीका क्या है ?

वसीयत पर वसीयत करनेवाले के साथ दो साक्षियों का होना आवश्यक है। इन दोनों साक्षियों को वसीयत करनेवाले की उपस्थिति में हस्ताक्षर करने चाहिए तथा वसीयत करनेवाले को भी साक्षियों के समक्ष वसीयत पढ़ या सुनकर तथा समझकर हस्ताक्षर करने चाहिए। वसीयत करनेवाला व्यक्ति यदि चाहे तो पंजीकरण करा सकता है, परंतु पंजीकरण न कराने से वसीयत की मान्यता पर कोई अंतर नहीं पड़ता। वसीयत उन प्रलेखों में नहीं आती जिनका कानूनन पंजीकरण आवश्यक है।

प्रोबेट सर्टीफिकेट की व्यवस्था

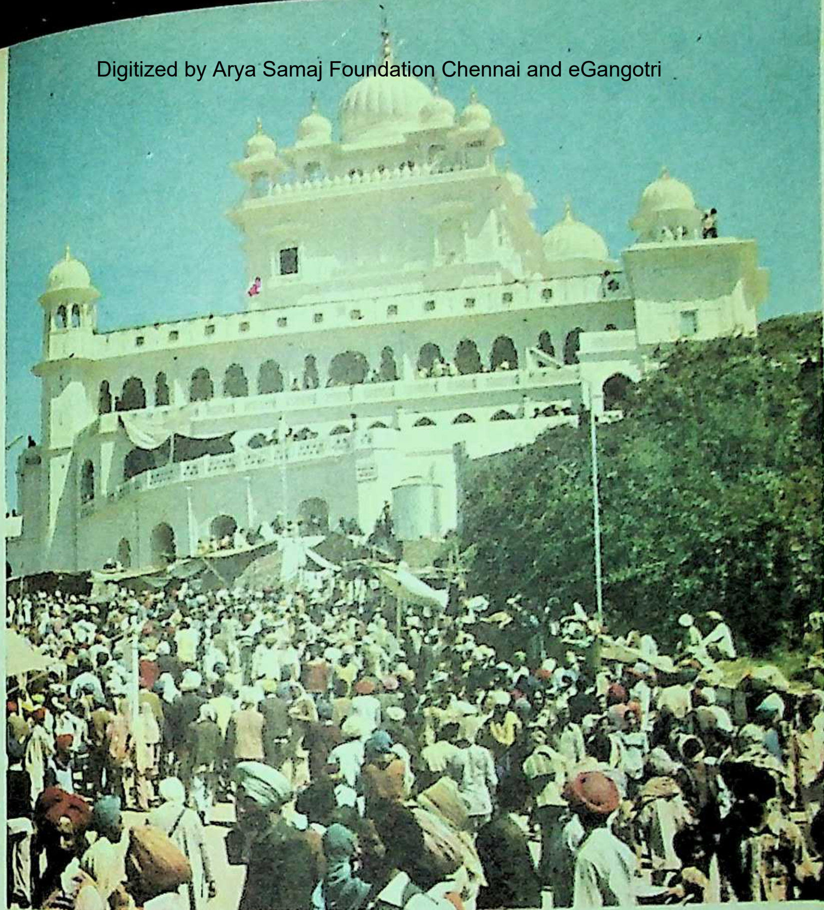
उमा, जबलपुर: क्या रजिस्टर्ड वसीयतनामे पर प्रोबेट-सर्टीफिकेट लेना जरूरी है? प्रोबेट-सर्टीफिकेट के लिए दरख्वास्त लगी है, लेकिन विपक्षी चाहता है कि समझौता हो जाए। क्या समझौता कर लेना चाहिए?

वसीयतनामे का प्रोबेट लिया जाना चाहिए। प्रोबेट देने की व्यवस्था भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम में की गयी है। इसके लिए आपने आवेदन कर ही रखा है।

आपके आवेदन का निर्णय शीघ्र हो, उसके लिए आपको न्यायालय में अपनी तरफ से देरी नहीं करनी चाहिए। मुकदमे का निर्णय आपके जागरूक रहने पर शीघ्र हो सकेगा। आपको अपने समर्थन में वसीयतनामे में उल्लिखित गवाहों की साक्षी भी न्यायालय में देनी होगी।

वसीयतनामा रजिस्टर्ड होने की स्थिति में आपका पक्ष काफी सबल नजर आता है। आपके पत्र से यह स्पष्ट नहीं होता कि विरोधी पक्ष ने क्या आपत्ति की है। जहां तक समझौते का प्रश्न है, वह निर्णय तो आप स्वयं मुकदमे की वस्तु-स्थिति के आधार पर कर सकेंगी।

> **दूसरों ने तुम्हारे प्रति जो अपराध किये हों उनका उपाय है, उन्हें विःस्मरण कर देना।** —साइरस



छाया : दुष्यंत पाराशर

जहां रेल हैं भूतनी

• दुष्यंत पाराशर

शिवालिक की हरी-भरी पहाड़ियां और इन पहाड़ियों के पास बसा आनंदपुर। आनंदपुर—जिसे सन १६४४ में सिखों के नवम गुरु श्री तेगबहादुरजी ने बसाया और जहां दशमगुरु श्री गोविंदसिंहजी ने सन १६९९ में खालसा-पंथ की स्थापना की।

यों तो आनंदपुर न केवल सिखों और हिंदुओं के लिए, वरन उनके लिए भी जो अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध प्राणपण से संघर्ष करने की मन में जोत जलाये रहते हैं, एक पवित्र तीर्थ-स्थान है। वर्ष भर यात्री दूर-दूर से आनंदपुर पहुंचते हैं और अपनी श्रद्धा की भेंट चढ़ाते

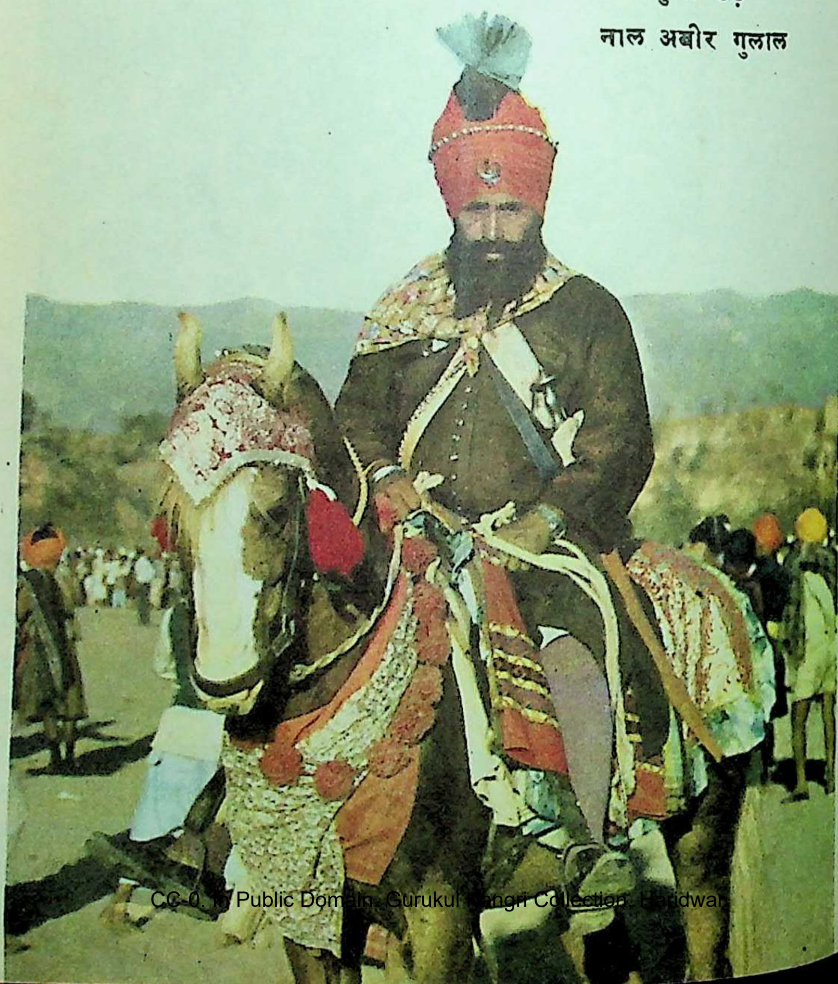
है। पर प्रतिवर्ष होली के दिन समस्त आनंदपुर में एक निराला वातावरण बन जाता है।

जिस दिन उत्तर भारत के अधिकतर मैदानी इलाके होली के रंग और हुड़दंग में डूबे होते हैं, उस दिन आनंदपुर अतीत की यात्रा में सब कुछ भूला होता है।

दशम गुरु श्री गोविंदसिंहजी ने आनंदपुर में धर्म की रक्षा के लिए सिखों को युद्ध का प्रशिक्षण देना शुरू किया था। इसीलिए वे 'सच्चे पातशाह' और 'संत-सेनानी' भी कहलाये। दशम गुरु गोविंदसिंहजी ने होली-जैसे 'रंग और हुड़दंग' के त्योहार को भी एक नया रूप दे दिया और आनंदपुर में होली रंग खेलने की बजाय एक शौर्य-प्रदर्शन का त्योहार बन गया।

पंजाब में यों भी होली पर एक विशेष मस्ती होती है। खेतों में उगी गेहूं की कोपलें 'ऊंबी' अथवा 'बाली' बन जाती हैं, तब होली आती है। पंजाब का किसान गा उठता है—

फागन विच फगुआ उड़े
नाल अबीर गुलाल



छाया: दुष्यंत पाराशर

साथ ही किसी खेत की मेंड़ से यह बारहमासा हवा में तैरने लगता है—

फगन के महीने वे मैं
पंजरंग खेलां
वे लाल अतर अंबीर
वे पंजरंगा मेलां

—फाल्गुन मास में मैं पांच रगों से खेलती हूं। अपने प्रियतम के लाल रंग में इत्र और अबीर मिलाकर पांच ंगों से होली खेलती हूं।

यह भी कि—

फगन दे महीने
सतगुरु खेले होरी
चोली पचरंग
मेरी भिज्जी चोली
पचरंग चोली
लंबिया बाहां

—फाल्गुन मास में मेरे सतगु होली खेलते हैं (सतगुरु अर्थात कृष्ण और प्रियतम) मेरी चोली पचरंग हो गयी है और भीग गयी है।

आनंदपुर में होली

गुरु गोविंदसिंह के उस समय से आज तक, चैत्र मास के कृष्ण पक्ष के प्रथम दिवस पर होला महल्ला के दिन आनंदपुर के पश्चिमी छोर पर चरणगंगा का किनारा एक रणक्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है।

निश्चित तिथि से कई दिन पहले सिखों के दस्ते रंग-बिरंगी पोशाकें पहने, धर्म-ध्वजा फहराते आनंदपुर की ओर चल देते हैं। ये काफिले गुरुओं का गुण-गान करते, कीरतपुर के विभिन्न ऐतिहासिक गुरुद्वारों में शीश झुकाकर आनंदपुर की घाटी में एकत्रित विशाल जन-समूह में विलीन होते जाते हैं।

केशवगढ़ के ऐतिहासिक गुरुद्वारे के चारों ओर शामियानों का एक विशाल नगर उभर आता है। सिख धर्म में सेवा भावना का जो ऊंचा स्थान है, उसका जीता-जागता प्रमाण होला महल्ला के दिनों में यहां देखने को मिलता है। गुरु के लंगर में प्रत्येक व्यक्ति के लिए भोजन की व्यवस्था होती है। यात्रियों का सामान सुरक्षित रखने के लिए गठरी-घर बनाया जाता है, जिसमें स्वयंसेवक कार्य करते हैं।

होले महल्ले के मेले में सभी कुछ होता है—बच्चों के लिए सर्कस, खेल-तमाशे, खरीदारी के लिए हाट-बाजार और धर्म-विद्वानों के प्रवचन भी।

निहंग सिखों के दस्ते एक विशेष आकर्षण का केंद्र होते हैं। सुसज्जित घोड़ों पर सवार और पैदल, नीले-पीले लंबे चोंगे पहने, सर पर असाधारण रूप से बड़ी पगड़ियां बांधे, भाले, तीर, तलवार सजाये, लोहे के मनकों की माला लिये ये संत-योद्धा अपने में एक ऐतिहासिक परंपरा को संजोये रहते हैं।

मुगलों के अत्याचारों से टक्कर लेने के लिए गुरु गोबिंदसिंहजी ने धर्म-वीरों की जिस सेना का गठन किया था, उस की एक झलक आज भी निहंगों के रूप में

देखने को मिलता है। पिता का नाम गुरु गोबिंदसिंह और गांव आनंदपुर ही इनका संक्षिप्त परिचय है। और धर्म-रक्षा के काम में आना ही इनका सौभाग्य होता है। मन के निर्मल किंतु स्वभाव के तीखे, निहंगों का जीवन निराला होता है। इनकी निजी बोली में विभिन्न संज्ञाओं के स्थान पर अत्यधिक प्रभावशाली शब्दों का समन्वय पाया जाता है। जैसे ये मिर्च को 'लड़ाकी' दूध को 'समंदर,' रेल को 'भूतनी' और भांग को 'सुखा-निदान सिंह' के नाम से पुकारते हैं।

होला महल्ला के दिन निहंग पूरे विधि-विधान और सम्मान सहित भांग घोटते हैं, जिसे स्वयं सेवनकर, अपने घोड़ों को भी पिलाते हैं। इसके बाद इनके दल जत्थेदार सरदारों के पीछे जलूस के रूप में निकल पड़ते हैं। नगाड़ों की गगन-भेदी ध्वनियों के साथ वह जलूस आनंदपुर से चरणगंगा की ओर अग्रसर होता है। रास्ते में निहंगों के दल शस्त्र-विद्या का प्रदर्शन करते, गुलाल उड़ाते चलते हैं। तीन-चार किलोमीटर का रास्ता दर्शकों से भरा रहता है। संध्या समय दर्शकों की भीड़ चरणगंगा से विशाल मैदान के चारों ओर एकत्रित होने लगती है। धीरे-धीरे किसी रोमन सर्कस-जैसा दायरा खचाखच भर जाता है और नजर आती हैं केवल रंग-बिरंगी पगड़ियां ही पगड़ियां।

एक विशेष आकर्षण होता है गुरु गोबिंदसिंहजी की यादगार—एक सजा-संवरा सफेद घोड़ा, जिसे सम्मान सहित मेले में लाया जाता है। कहा जाता है कि यह गुरूजी के घोड़े का ही वंशज है।

शाही अंदाज से घोड़ों पर सवार निहंगों के सरदार मेले में पहुंचते हैं और उनके पीछे आती है निहंगों की बेकाबू घुड़सवार और पैदल सेना। मैदान में घुड़सवार नैजेबाज अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। यहां कोई प्रतियोगिता अथवा नियम नहीं होता। विभिन्न आयु वर्ग के शहसवार अपने मनमाने ढंग से शस्त्र-कला के कमाल दिखाते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है और घोड़ों के टापों की आवाजें तेज होती जाती हैं, उजाला सिमटने लगता है। सूर्य की अंतिम किरणों में चमकते शस्त्र और घुड़दौड़ से उठी धूल के पीछे झांकता आनंदगढ़ का दुर्ग, मानो इतिहास का एक सजीव पृष्ठ—देखते ही देखते सालभर के लिए शाम के धुंधलके में खो जाता है।

—२/२६ सर्वप्रिय बिहार, नयी दिल्ली-१६

जरमनी के एक घड़ी निर्माता ने काले डायलवाली एक ऐसी कलाई-घड़ी बनायी है, जिसके डायल पर हर तीस सेंकड में एक नंगी लड़की की तसवीर उभर आती है। लड़की दस सेंकड तक रहती है और फिर धूमिल होकर गायब हो जाती है।

क्लर्क

• रवीन्द्रनाथ त्यागी

हमारे समाज से वर्ण-व्यवस्था भले ही उठ जाए, पर हमारे दफ्तरों से वह कभी नहीं उठेगी । यह तो संभव है कि एक हरिजन और एक पंक्तिपावन ब्राह्मण साथ बैठकर भोजन कर लें, पर यह कदापि संभव नहीं है कि दफ्तर के बड़े साहब और छोटे बाबू साथ बैठकर चाय पी लें । क्लर्क को तो इसी वर्ण-व्यवस्था में जीना पड़ेगा; और कोई चारा नहीं । मैं लगभग चौबीस वर्षों से एक अफसर के नाते क्लर्कों से जुड़ा हुआ हूं और इसी अनुभव के आधार पर उनके बारे में आज कुछ कहूंगा ।

चेखव एक निराशावादी कलाकार थे, उन्होंने एक क्लर्क की मौत को लेकर एक व्यंग्य रचना लिखी थी । मैं एक आशावादी लेखक हूं और इस कारण क्लर्क की मृत्यु पर नहीं, बल्कि उसकी जिंदगी को लेकर कुछ कहूंगा । वैसे यह भी शायद असलियत ही है कि एक ईमानदार और कार्य-तत्पर क्लर्क की जिंदगी और मौत में कोई खास फर्क नहीं होता । बहरहाल चेखव और मेरे बीच जो बुनियादी फर्क है, वह मैंने साफ कर दिया । चेखव और मेरे बीच यह अंतर सदा से रहा ।

स्थिति जो है, वह यह है कि बरखुरदार जब कालेज या यूनीवर्सिटी में पढ़ते हैं, तब तक वे लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, या लाला अमरनाथ बनने की सोचते हैं और इसी प्रकार जो कला-प्रेमी छात्र होते हैं, वे दिलीप कुमार, अशोक कुमार या किशोर कुमार बनने की योजना बनाते हैं । दूसरों की क्या बात करूं, मैं स्वयं कभी जयप्रकाश नारायण बनने के सपने देखा करता था । यह तो कालेज छूटने के बाद पता चलता है कि न आप लाला बनने की स्थिति में हैं और न कुमार और इस पर घरवालों का तकाजा कि आप जल्दी कोई धंधा करें और घर की



सहायता करें। तब आपकी आंखें खुलती हैं और आप सोचते हैं कि गम और भी हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा।

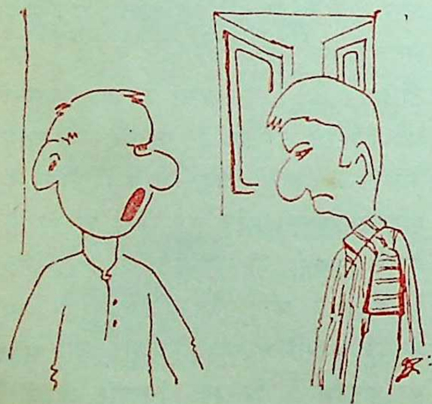
परिणाम यह रहता है कि आप भारतीय प्रशासन सेवा से शुरू कर के तंबाकू की इंसपेक्टरी तक के सारे इम्तहानों में बैठते हैं और अंत में चलकर किसी दफ्तर में बाबू हो जाते हैं। क्लर्कों का जन्म सदा से इसी भांति होता आया है।

दफ्तर में आकर नये बाबू की ठीक वही स्थिति होती है, जो कि पिंजरे में किसी जंगली पक्षी की या कांजी हाउस में हरियाणा के किसी सांड की। वह दफ्तर से विरक्त होता है और उसका एक अदद दिल जो होता है वह अभी भी कालेज के कंपाउड की स्मृतियों में ही खोया रहता है। वे मजाक पसंद प्रोफेसर, वे खुले दिल दोस्त और वे साथ पढ़नेवाली सुंदर लड़कियां। वह क्लर्क होने के बाद भी देवानंद जैसे बाल रखता है, विवेकानंद-जैसी दृढ़ मुद्रा रखता है और स्वामी दयानंद की भांति हर किसी से हर समय शास्त्रार्थ यानी कि हाथापाई को तैयार रहता है, पर खेद की बात यह है कि धीरे-धीरे उसे इन क्रियाओं में भी आनंद नहीं आता। देवानंद, विवेकानंद, और दयानंद में जो आनंदवाला अंश होता है, वह गायब होता जाता है। वह अभी भी बढ़िया सिगरेट पीता है और सिनेमा जाता है, मगर पहलेवाली बात अब नहीं रहती। वह दफ्तर के बड़े साहब को गालियां देता है, उनसे नफरत करता है, जिसका कारण यह है कि वह तो बड़ा साहब है और वह है सिर्फ एक बाबू।

किसी-किसी हालत में बाबू जो होता है, वह साहब से ज्यादा पढ़ा-लिखा परिश्रमी और ईमानदार होता है, पर इस तकदीर को क्या कहा जाए, जिसमें क्लर्क होना ही लिखा था। इसी आक्रोश के कारण नये बाबू ट्रेड यूनियन को मजबूत करते हैं, अन्याय का विरोध करते हैं, अफसर का घेराव करते हैं. और भूख-हड़ताल पर बैठते हैं। भूख-हड़ताल प्रायः सांकेतिक ही रहती है और कुल मिलाकर कोई भी बाबू तीन या चार घंटे से ज्यादा भूखा नहीं रहता। इस अवधि के बाद पहला बाबू हट जाता है और उसकी जगह कोई दूसरा बाबू भूख हड़ताल पर बैठ जाता है। वे दिशाहीन होते हैं और उनकी इस दशा को राजनीतिक पार्टियां जो होती हैं वे दिशा प्रदान करती हैं। नया बाबू अब भी चेखव, रूसो और मार्क्स को पढ़ता है और दुखी होता है। वह पहली बार समझता है कि 'तुझसे भी दिल फरेब है गम रोजगार के'। इन गमों का वह जितना भी विरोध करता है, उतना ही उनमें फंसता जाता है। वह दस बजे आता है, बाइसिकल को स्टैंड पर खड़ा करता है, बाकी बाबुओं और फाइलों से भरी बैरक में जाता है और पांच बजे तक के लिए अपनी कुरसी में कैद हो जाता है। **मौत का इलाज है फिराक, जिंदगी का कोई**

इलाज नहीं।

धीरे-धीरे स्थिति यह रहती है कि या तो नया बाबू कुछ दिनों बाद नौकरी छोड़ देता है और या फिर परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। बाकी समयसिद्ध बाबुओं की भांति वह भी उसी हालत में आ जाता है कि 'कर क्लर्की, खा डबल-रोटी, खुशी से फूल जा।' उसे भी अनुशासन में रहने की आदत पड़ जाती है और वह भी बड़े साहब की इज्जत और खुशामद करने में जुट जाता है। वह शतरंज के पिटे हुए मोहरे की भांति संसार से अलग हो जाता है। जहां नया बाबू दफ्तर से विरक्त रहता है, वहां पुराना बाबू जो होता है, वह दफ्तर को छोड़कर शेष संसार से विरक्त हो जाता है। वह सिर्फ दफ्तर की ही बात करता है। वह अफसर के रोमांस की चर्चा करता है, स्टेनोग्राफर से दोस्ती की कोशिश करता है और बाकी वक्त में अपने पुराने साथियों का गला काटता



है। वह समझ जाता है कि ये जो नियम, उपनियम और अधिनियम इत्यादि हैं, वे एक तरफ हैं और साहब और उसकी मेमसाहिबा जो हैं, वे दूसरी तरफ। और वे सारे नियमों, उपनियमों और अधिनियमों के ऊपर हैं। प्रमोशन और दौरा, साहब देता है, न कि कानून की किताब।

वह विद्रोह भूल जाता है और उसके स्थान पर भाग्य, पूर्वजन्मों के कर्म, ज्योतिष व पूजापाठ में अपने को समर्पित कर देता है। घर पर सत्यनारायण की कथा होती है, जिसमें कलावती नाम की एक अति सुंदर कन्या की चर्चा की जाती है। वह अपने कमरे में पहले भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद के चित्र टांगा करता था, पर अब वह वहां दुर्गामाता और हनुमानजी के चित्र टांगता है। वह दफ्तर में या तो ओवरटाइम, पेंशन, प्रॉविडेंट-फंड और इंक्रीमेंट का हिसाब लगाता है या फिर आराम से मेज पर टांग फैला-कर किस्सा चहार दरवेश पढ़ता है। पहले वह कसरत करता था, मगर अब वह केवल या तो व्रत करता है, या फिर कोई कीर्तन। छुट्टी के दिन वह बड़े साहब के घर जाता है, जी हुजूरी करता है और उनके कुत्ते से दोस्ती गांठता है।

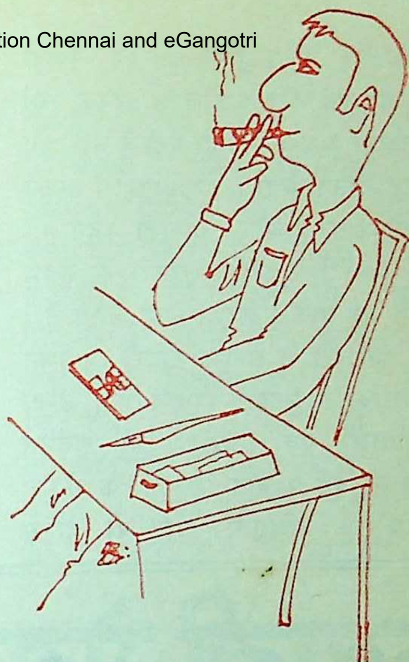
कुछ बाबू लोग तो अपनी स्थिति से इतना ज्यादा संतुष्ट हो जाते हैं कि वे अवसर आने पर भी अफसर नहीं बनना चाहते। बकौल शायर के—

हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए,
पयामे मौत भी मुज्दा है जिंदगी के लिए।

पिछले दिनों एक वरिष्ठ मंत्री ने कहा था कि यदि कोई गलत रकम चपरासी को दी जाती है, तो वह बख्शीश कहलाती है, यदि किसी बा ू को दी जाती है, तो दस्तूर कहलाती है, यदि किसी नेता को दी जाती है, तो उसे पार्टी के लिए फंड कहकर पुकारा जाता है और यदि वही रकम किसी अफसर को ी जाती है, तो रिश्वत कही जाती है। कितनी सुंदर परिभाषा है। जिसके अनुसार देश में सिवाय अफसर के और कोई रिश्वत ले ही नहीं सकता। हां तो कुछ बाबू ऐसे भी होते हैं, जो दस्तूर लेने की इस प्रथा को बदस्तूर निभाते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि इस बाबू-वर्ग में न जाने कितनी ऐसी प्रतिभाएं छिपी पड़ी हैं, जिन्हें अगर वसंत की हवा लगती, तो वे खिलकर फूल हो जातीं। शरत् बाबू अकाउंटेंट जनरल के दफ्तर में क्लर्क ही तो थे और चार्ल्स लैंब क्या था, वह भी तो ईस्ट इंडिया कंपनी के लंदन स्थित दफ्तर में एक छोटा-सा बाबू ही था।

एक दिन आता है कि बाबू जो है, वह मर जाता है। अगर यह क्रिया दफ्तर ही में संपन्न की जाती है, तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी अजीब होती है। कुछ लोग दुःखी होते हैं, और कुछ लोग खुश होते हैं, क्योंकि मृत्यु के तुरंत बाद दफ्तर में छुट्टी हो जाती



है। सच्ची बात तो यह है कि यह खुशी कभी-कभी अफसरों को भी होती है। शोक प्रस्ताव पढ़ा जाता है, दो मिनट मौन रखा जाता है। और उसके बाद बंदा जो है, वह खुशी-खुशी शाम को क्लब में ब्रिज खेलने का प्रोग्राम बनाता है। इसके बाद खाकसार जो है, वह गैराज से गाड़ी बैक करता है और घर जाते-जाते अकबर इलाहाबादी का यह शेर गुनगुनाता है—

हम क्या कहें अहबाब
जो कारें-नुमायां कर गये
बी. ए. हुए, नौकर हुए
पिंशन मिली, फिर मर गये

—ज्वाइंट कंट्रोलर, डिफेंस एकाउंट्स,
मेरठ छावनी

कहानी रोटरी क्लब की

● मधु मिश्र

कई बार ऐसा हुआ है कि सैकड़ों वर्ष पूर्व घटी कोई घटना अनेक वर्षों के पश्चात हू-ब-हू वैसी ही घटी है और हमें बरबस मानना पड़ा है कि इतिहास अपने को दोहराता है और दोहराता रहेगा।

लोंबार्डी के सम्राट रोटरी के संदर्भ में भी यह बात अक्षरशः लागू होती है। छठी शताब्दी में सम्राट रोटरी ने जिन मान्यताओं को सिद्धांत का रूप दिया, उन्हीं मान्यताओं एवं सिद्धांतों को लगभग तेरह सौ वर्ष पश्चात शिकागो के सैंतीस वर्षीय युवा अभिभाषक पाल पी. हैरिस ने पुनः विश्व के सामने रखकर उन्हें ताजा कर दिया।

सदियों का लंबा अंतराल भी इतिहास के इस सत्य को वर्तमान से काट नहीं सका। और आज भी, छठी शताब्दी के सम्राट रोटरी की विचारधारा किसी संग्रहालय की धरोहर न होकर, विश्व के सौ से भी अधिक देशों में कार्यरत है।

सम्राट रोटरी जिस लोंबार्डी प्रदेश का लोकप्रिय शासक था, उसका भी अपना एक विशिष्ट इतिहास है। लोंबार्डी का नाम लोंबार्डी वहां के रहनेवाले निवासियों की जाति लोंबार्डी के आधार पर पड़ा। 'लोंबार्ड' का शाब्दिक अर्थ है—लंबी दाढ़ीवाले। लोंबार्ड लोग भूरे बालों वाले होते थे तथा उनकी आंखें नीले रंग की होती थीं। ये लोग चेहरे पर लंबी दाढ़ी रखा करते थे। ईसा की मृत्यु के तुरंत पश्चात लगभग पहली शताब्दी की बात है, जब वर्तमान पश्चिमी जरमनी के आसपास एल्बा नदी बहा करती थी। लोंबार्ड लोग एल्बा नदी के उत्तरी किनारे पर रहा करते थे तथा किसी भी तरह एल्बा नदी के दक्षिणी किनारे पर अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे। इस उद्देश्य हेतु वे लगातार पांच सौ वर्ष तक भटकते रहे तथा कई बार दक्षिणी तट के लोगों से इन लोगों ने युद्ध भी किया।

पांच शताब्दियों तक लगातार भटकने के पश्चात अंत में लोंबार्ड लोग उत्तरी इटली के क्षेत्रों में पहुंच गये। यहां की भूमि उन्हें राज्य बसाने के लिए उपयुक्त लगी। इन लोगों का विश्वास था कि उत्तरी इटली की जमीन पर राज्य स्थापित करना उनके लिए ईश्वर का आदेश है और अब वह समय आ गया है, जब हमें इधर-उधर भटकना छोड़कर इस जमीन पर अपना राज्य बसा लेना

चाहिए ।

इसी विचार से संचालित हो प्राचीन सभ्यता का गौरवशाली राज्य लोंबार्ड वर्तमान उत्तरी इटली के क्षेत्र में स्थापित कर दिया गया। आज भी उत्तरी इटली में उस समय के सुसंस्कृत एवं विकसित राज्य बरगामों, ब्रेसकीया, कोमो, क्रिमोना, मांठुआ, माहलन, सौंड्रियो तथा वेनिस अपनी ऐतिहासिक गरिमा को उद्घोषित करते हुए विद्यमान है। अपने समय में ये राज्य उद्योग तथा संस्कृति के अनुपम केंद्र थे।

राजकीय-निर्णय अधिकारियों की समिति की सलाह पर किया करता था। इस समिति के सदस्य कुशल योद्धा एवं विद्वान हुआ करते थे। सम्राट रोटरी ने जिस प्रजातांत्रिक राज्य-पद्धति का समावेश इतिहास में किया, आगे चलकर वही प्रजातांत्रिक विचारों का आधार स्तंभ सिद्ध हुआ। सम्राट रोटरी का विधान तीन सौ पृष्ठीय पुस्तक के रूप में आज भी इटली के संग्रहालय में सुरक्षित है। सम्राट रोटरी ने अपने शासनकाल में अनुसूचित जन-जातियों के उत्थान हेतु

एक सम्राट की दिमागी उपज

निरंतर पांच सौ वर्षों तक दक्षिणी दिशा में भटकने के पश्चात लोंबार्ड जाति के लोगों ने जो राज्य स्थापित किया, वह इतिहास के पृष्ठों में आज भी अपनी विकसित सभ्यता तथा संपन्न उद्योगों के लिए गौरवपूर्ण ढंग से उल्लिखित हैं। सन ६३६ से ६५२ तक सम्राट रोटरी यहां का राजा रहा। उसके द्वारा बनाये गये राज्य-नियम एवं विधान आज भी कई राष्ट्रों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुए हैं तथा वे आज तक सम्राट रोटरी की उस आचरण-संहिता का पालन कर रहे हैं।

लोंबार्डी में राजा एक निर्वाचित प्रतिनिधि हुआ करता था तथा वह अपने

उल्लेखनीय रूप से कार्य किये। रोटरी ने लोंबार्ड जाति के लोगों को इन आदिवासियों से शादी करने की अनुमति देकर न केवल अपने भावनात्मक संबंध इन लोगों के साथ सुधारे, बल्कि अपनी जनसंख्या का भी विस्तार कर लिया। सम्राट रोटरी का शासनकाल धर्मनिरपेक्षता एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों हेतु आज तक याद किया जाता है।

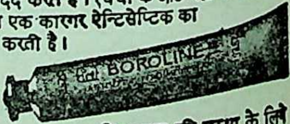
इतिहास की पुनरावृत्ति

कहावत है कि इतिहास अपनी पुनरावृत्ति करता है। सम्राट रोटरी के संदर्भ में यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हुई है। सदियों की लंबी खाई भी रोटरी








BOROLINE

की शासन पद्धति को वर्तमान से काट नहीं पायी है। सम्राट रोटरी की राजकीय-आचरण-संहिता केवल इतिहास के शोधार्थियों की संपत्ति बनकर नहीं रह गयी है, बल्कि वर्नमान में भी अनेक राष्ट्रों के लिए प्रेरणाधार सिद्ध हुई है और हो रही है।

शिकागो के एक पैंतीस वर्षीय प्रतिष्ठित अभिभाषक पाल पी. हैरिस, विधान और कानून के क्षेत्र में मौलिक रूप से कुछ करना चाहते थे। साथ ही वह अदालती जीवन से हटकर समुदाय एवं संप्रदायों हेतु एक निरपेक्ष दर्शन भी समाज को देना चाहते थे। वह स्वस्थ्य नागरिकता, ग्रामीण-शहरी संबंध, सद्भाव एवं अंतर्राष्ट्रीय शांति संबंधों पर अपने विचारों को कार्य रूप में परिणित करना चाहते थे। और यही सब विचारकर उन्होंने २३ नवंबर १९०५ को रोटरी क्लब की स्थापना की। रोटरी क्लब की गोष्ठियां एक निश्चित क्रम में (रोटेशन में) सदस्यों के घर आयोजित की जाती हैं। इसलिए भी इसका नाम 'रोटरी क्लब' पड़ा। रोटरी शब्द जहां क्रमिक गोष्ठियों की प्रवृत्ति को इंगित करता है, वहीं दूसरी ओर सम्राट रोटरी के राजकीय-दर्शन को भी पुनर्जीवित करता है। इतिहास को अपने दोहराये जाने का एक ज्वलंत प्रमाण पॉल पी. हैरिस की इस संस्था में देखने को मिलता है। आज इस संस्था की शाखाएं एक सौ से भी अधिक देशों में कार्यरत हैं तथा दुनिया के विभिन्न देशों में इसकी लगभग ग्यारह हजार शाखाओं में करीब ५ लाख सदस्य हैं, जो कि सम्राट रोटरी के सिद्धांतों को बीसवीं शताब्दी में भी न केवल जीवित रखे हुए हैं, बल्कि उनका दुनिया के नक्शे पर प्रचार-प्रसार करते हुए वर्तमान के हाथों से इतिहास की मधुर स्मृतियों को सजा-संवार भी रहे हैं।

—१६१९/५३ नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००५१

लायंस क्लब

'लायंस क्लब इंटरनेशल' अराजनैतिक एवं गैर संप्रदायवादी व्यावसायिकों, उद्योगपतियों एवं बुद्धिजीवी नागरिकों की एक बहुचर्चित संस्था है। यह संस्कृति, उद्योग एवं व्यवसाय के रचनात्मक विकास के लिए कार्यरत हैं। इस क्लब की स्थापना मेल्विन जांस द्वारा शिकागो में सन १९१७ में की गयी। वर्तमान में इस संस्था की विभिन्न चौहत्तर देशों में शाखाएं रचनात्मक कार्यक्रमों के अधार पर कार्यरत हैं। अनुमानतः इस संस्था के विश्वभर में ५५,०००० सदस्य हैं। क्लब का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ्य प्रशासन एवं सुयोग्य नागरिकता का प्रसार करते हुए विश्वभर में एक मानवीय दृटिकोण विकसित करना है। क्लव की सदस्यता केवल आमंत्रित करके ही दी जाती है।

बाबा के बजरंगी

● कृष्णचंद्र शर्मा

आज करीब पचास साल बाद एकाएक हमें अपने स्वर्गीय बाबा की याद क्यों सताने लगी, यह तो हमें भी ठीक नहीं मालूम। खैर, वे हमारे बाबा थे और किसी के नहीं; फिर हमें छोड़कर और किसे याद आयेंगे! आखिर, हमारे सिवा वे सभी लोग जिन्होंने उन्हें कभी न भूलने का बीड़ा उठाया होगा—यानी उनके दोस्त भी और दुश्मन भी—न जाने कब इस दुनिया से कूच कर गये!

अपने बचपन में हमने बड़ों-बड़ों को दूर से ही उनको 'परनाम' करते और बच्चों को उनके पास जाकर 'परसाद' मांगते देखा था।

बुढ़ापे तक डंड-बैठकें पेलने के कारण मोटापा और दुबलापन दोनों ही उनके पास फटकने से घबराते थे। आधा-पौन घंटा मुगदर घुमाने के बाद वे अपनी भुजाओं में हमें मछलियां तैरती दिखाते थे। सिर पर सफेद बालों के गुच्छे ऐसे मालूम होते, जैसे किसी ने कपास धुनकर रख दी हो। छाती पर झाड़ियां-सी उगी दिखायी देतीं। बड़ी-बड़ी आंखें मानो गुस्से में हरदम लाल-लाल रहतीं। रामलीला में परशुराम का पार्ट करते-करते वे असली जिंदगी में भी परशुराम-जैसे क्रोधी बन गये थे।

सुबह को एक घंटा हनुमान-चालीसा का पाठ करने के बाद जब वे बगल में मृगछाला दबाये, खड़ाऊं खटखट करते बाहर आते, तब धरती डोलने-सी लगती। शाम को 'संकटमोचन' मंदिर जाकर बजरंगबली की आरती उतारते और अंत में डंड पेलते हुए, उन्हें सिर नवाते। वहीं अपनी 'चौकड़ी' में बैठकर वे शंकर की बूटी भी छानते और बादाम और ठंडाई के साथ सेवन करते। फिर अपने 'परबाबा' यानी मोटे सोंटे के साथ घर लौटते, जहां बेचारी औरतें उनका 'भोजन' गरम बनाये रखने के लिए चूल्हे से सटी बैठी ऊंघती रहतीं। शाम के भोजन के बाद वे जैसे समाधि की अवस्था में रम जाते। एक चौकी पर गुमसुम बैठे, दोनों हाथों में माला लिये, फेरते रहते। बीच-बीच में वे हम बालकों को ऐसी फटकार मारते कि हम चौंककर उछल पड़ते। कभी-कभी तो उनकी छींक से ही धोती ढीली हो जाती।

उनके जीवन का जो रहस्य अब मैं आपको बताने जा रहा हूं, उसे सुनकर

आपकी अक्कल के भी बक्कल उतर जायेंगे। हो सकता है आप भी उनके नुसखे को, अगर खुले तौर पर नहीं तो शायद लुक-छिप कर ही, अपना लें। एक दिन हमने उनसे बड़े सहमते हुए पूछा, "बाबा, आपको इतना गुस्सा क्यों आता है?" बड़े संयत ढंग से वे बोले, "अबे उल्लू के पोते! तू ऐसी बात हमसे पूछता है, जिसे पूछने की तेरे बाप को भी हिम्मत नहीं हुई। खैर, तू बाप से ज्यादा 'अकलवंद' दिखायी देता है, इसलिए तुझे बताते हैं। जरा मेरा 'परबाबा' (यानी सोंटा) तो उठइयो।" हमने समझ लिया कि अब खैर नहीं, लेकिन उनकी आज्ञा का पालन न करने पर कहीं वे उसे हमारी पीठ पर न बजाने लगें, यह सोचकर हमने सहमते-सहमते कोने से सोंटा उठाकर उन्हें दिया।

वे बोले "देख! यह 'परबाबा' यानी जादू का सोंटा बाबा बजरंगी ने अपने हाथों से हमें दिया था और कहा था कि कलजुग में 'परसराम' बनकर तुम इससे अपने 'सत्रुओं' की खबर लेते रहना। सो बेटा, रामलीला में मैं इसे 'मिरगछाला' में लपेटकर गिनगिनकर 'सत्रुओं' की पीठ की धूल झाड़ता रहता हूं। यह सुनकर हम खुशी में उछल पड़े, जैसे कि आज के बच्चे सिनेमा के परदे पर 'ढिशुम-ढिशुम' देखकर उछलते हैं। तभी बाबा सोंटे को जमीन पर बजाते हुए बोले, "अबे, तूने अभी इसकी पूरी करामात सुनी कहां! देख, हमारा यह पड़ोसी है न काबा, इसने **एक** बार हमारे चबूतरे की एक **'बालिस्त'** जमीन हड़पने की 'कोशिश' की थी। **सो** दूसरे पड़ोसियों के हमारे पास **फटकने से** पहले ही हमने 'सारे' की पीठ **की 'पर-**बाबा' से मरम्मत कर दी। **'सारे' की सिट्टी** गुम हो गयी। फिर 'सारे' ने **ना जाने** कितने वकीलों की ठोड़ी में **हाथ डाला और** कचहरी-अदालत के दरवाजे **झांके, मगर** मजाल है कि हमारी आधी इंच **जमीन भी**



दाब सका हो !" 'परबाबा' के यह गुन सुनकर हमारी तो भुजाएं फड़क उठीं।

इसके बाद उन्होंने रहस्य की एक और परत खोली। बोले, "और बेटा, तीस साल से जाड़े, गरमी, बरसात में—मैं नियम से 'हनुमान-चालीसा' का जो पाठ करता हूं, उससे भूत-प्रेत, देव-दानव किन्नर-फिन्नर कोई भी मेरे पास फटकने की जुर्रत नहीं कर सकते, 'मनुस्य' तो है किस खेत का बथुआ ! इसी की बदौलत मैंने अपने 'सत्रुओं' की छाती पर मूंग दली है। सुन, वो कैसे !"

हम कान-आंख दोनों से ही तन्मय होकर सुन रहे थे। अपनी नंगी तोंद पर हाथ फिराते हुए बाबा बोले, "बेटा, आंख बंदकर हनुमान-चालीसा का पाठ 'सुरू' करते ही बजरंगी बाबा 'साच्छात' हमारे सामने 'परगट' हो जाते हैं। फिर वे अपनी गदा घुमाते हुए, हमारे बिना कहे ही, काने पड़ोसी की पीठ पर धमाधम... धमाधम गदा बजाने लगते हैं और यह काना ससुरा हाय-बिल्ला मचाता रहता है। इसके अधमरा हो जाने पर बजरंगी बाबा कूदते-फांदते आगे बढ़ते हैं। फिर वे हमारे कुनबे के ताऊ हमारे असली 'सत्रु' के यहां पहुंचते हैं, जिन्होंने हमारी नाबालगी में हमारे पिता की जायदाद, यानी इस छोटे मकान पर अपनी नजर गड़ायी थी। बिरादरीवालों ने उनकी बदनियती नहीं चलने दी, वे किसी न किसी तरह हमें तंग करने से बाज नहीं आते थे। आखिर, हमने बजरंगी बाबा के दरबार में फरियाद की, तो बच्चू की हवा बैरंग हो गयी। सच जानियो पोतूराम कि बजरंगी बाबा की गदा की मार से ही ताऊनी ताऊ के प्रान-पखेरू उड़ गये। लेकिन बजरंगीबली अब तक उनके 'दरबज्जे' पर जाकर गदा फटकार आते हैं, ताकि 'सत्रु' की औलाद भीगी बिल्ली बनी रहे।"





बाबा बड़ी मस्ती में बजरंग बली के चमत्कार सुनाये जा रहे थे और हम बड़े ध्यानमग्न होकर सुन रहे थे। भुजाएं हमारी भी जोरों से फड़कने लगी थीं कि लगे हाथों बाबा ने एक और किस्सा सुना डाला। बोले, "बेटे पोतूराम, अब उस नुक्कड़वाले पनवाड़ी की बात भी सुन ले। एक दिन उसने हमारे पान के टुकड़े में चूना कुछ ज्यादा लगा दिया, जिससे हमारा मुह फट गया। सो, हमने भी 'सारे' को मुंहफट होकर सौ गारी सुनाय दी। साम को हनुमानचालीसा का पाठ करते समय हमें उस कम्मखत का फिर ध्यान हो आया। हमारे देखते-देखते बजरंगी बाबा ने उसकी खोपड़ी पर ऐसी गदा जमायी कि उसके मुंह से कत्थे की माफिक गाढ़ा-गाढ़ा खून निकल पड़ा। उसके बाद उस हरामजादे ने सपने में भी हमसे मजाक नहीं की।"

हमारा दुर्भाग्य कि हमारे बचपन में ही एक दिन वे बड़ी शांति के साथ हनुमानचालीसा की पोथी अपने सिरहाने रखे हुए, हम सबको बिलखता हुआ छोड़कर, स्वर्ग सिधार गये। हां, उनके अंतिम समय का एक दृश्य अब भी हमारी आंखों के सामने घूम जाता है।

जब बाबा का 'विमान' सजकर तैयार हो गया और उसे कंधा देने के लिए काना पड़ोसी, नुक्कड़ का पनवाड़ी और बाबा के कई घोषित 'सत्रू' आगे आये, तब हमारी लड़क-बुद्धि में एक बात रह-रहकर घुमड़ने लगी। हमें यह लगता कि स्वर्ग के लिए उड़ान भरने से पहले हमारे बाबा एक बार हड़बड़ाकर उठेंगे और ललकारकर कहेंगे—'सत्रूओं, जिस तरह बजरंगबली अर्जुन के रथ पर बिराजमान रहे, वैसे ही हमारी इस अर्थी पर भी बजरंगी बाबा मय परवत के बिराजमान हैं, सो सत्रुओं, समसान तक हमें ले जाते-जाते तुम भी नरक में पहुंच जाओगे . . . आक् थू !"

मगर, ताज्जुब है कि बाबा टस से मस नहीं हुए! जितने क्रोधी थे, उससे अधिक क्षमाशील निकले। वे ऐसी नींद में सोये कि एक बार भी करवट नहीं ली—बहुत गहरी छानकर सोये थे न!

—बी-३३/१० दुर्गापुरी स्ट्रीट,
मौजपुर, दिल्ली-११००५३

गांवों को डकैतों का भय है!

● प्रेम जनमेजय

मेरे मन में गांव देखने की विशेष लालसा रही है। हिंदी फिल्मों में लहलहाते खेतों में सुंदरियों को अठखेलियां करते, खुशहाली से गीत गाते देख यह लालसा जाग्रत हुई है। इस बार मैंने निश्चित ही कर लिया कि चाहे दो-तीन दिन की छुट्टी लेकर जाऊं, पत्नी को 'भारत-माता ग्राम-वासनी' के दर्शन जरूर करवाऊंगा और अपनी लालसा भी पूर्ण करूंगा। इस असार क्षणभंगुर संसार में, न जाने कब कूच का डंका बज जाए और इस एक लालसा के कारण विश्व में पुन: जन्म लेना पड़े।

मैंने मामाजी को पत्र लिख दिया कि आपके बार-बार के निमंत्रण से विवश हम गांव आना चाहते हैं। दस-पांच दिन वहां रुकेंगे, बतायें हम कैसे आयें? लगभग लौटती डाक से ही मामाजी का अत्याधिक प्रसन्नता से भरा पत्र मिला। उनके परिवार को हमारे आगमन की सूचना से अत्याधिक प्रसन्नता हुई थी। मैंने और पत्नी ने अटैची संभाली, ऑफिस से छुट्टी ली और महिमा-मयी अभूतपूर्व ग्रामीण-अंचल की यात्रा आरंभ की।

धूल उड़ाती, ठकठकाती, हमारी पाचन-प्रक्रिया को बढ़ाती बस ने उछल-कूदकर बीनापुर के बस स्टैंड पर पहुंचा ही दिया। मामाजी बस स्टैंड पर ही उपस्थित थे। बड़े प्यार से उन्होंने मुझे गले लगाया।

"आओ, कैसी रही यात्रा! कोई तक-लीफ तो नहीं हुई?"

"नहीं, खास नहीं। मामीजी और बच्चे कहां हैं? दिखायी नहीं दे रहे," मैंने प्रणाम करते हुए कहा और पत्नी को संकेत किया कि वह पांव छुए।

"वे सब घर में तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। चलो, पहले जल्दी से सामनेवाले टैंपो पर सामान रख लो, बातें तो घर जाकर हो ही जाएंगी। यह टैंपो अगर निकल गया, तो पहुंचने में रात हो जाएगी।"

हमने फटाफट सामान रखा, टैंपो घर्र-घर्र करता चल दिया। टैंपो की गति सिद्ध कर रही थी कि गांवों में आधुनिक वाहन पहुंच गये, हैं परंतु गति अभी बैल-गाड़ी की ही विद्यमान है।

मैं चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण को देखकर मुग्ध होना चाहता था, परंतु चिलचिलाती धूप और प्यास ऐसा होने नहीं दे रही थी। उड़ती हुई धूल सिद्ध कर

रही थी कि केवल गोधूलि के समय ही पथ से पशुओं के घर लौटने पर धूल नहीं उड़ती है, अपितु टैंपो के गांव की ओर जाने से भी धूल उड़ती है। 'धूसर भुजंग-सा' मैं और पत्नी गांव के सौंदर्य को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। न लहलहाते हुए खेत दिखायी दे रहे थे और न अठखेलियां करती हुई ग्राम-सुंदरियां।

"मामाजी, क्या गांव अभी ज्यादा दूर है?"

"नहीं बेटे, आधे घंटा का रास्ता है। फिर वहां से तांगा ले लेंगे, ज्यादा देर नहीं लगेगी," मामाजी ने पीठ थपथपाते हुए मुस्कराकर कहा।

टैंपो ने एक निश्चित स्थल पर हमें लाकर लगभग फेंक दिया। दो-तीन तांगेवाले खड़े थे। एक ने मामाजी को संबोधित करके कहा, "राम-राम पंडितजी, ले आये मेहमानों को। देर लगा दी।"

"हां भई, रग्घू देर हो ही गयी। बस अब तुम जल्दी तांगा चला दो। रात से पहले पहुंच जाएं," तांगे पर शीघ्रता से सामान रखते हुए मामाजी ने कहा।

"जल्दी ही करेंगे, पंडितजी! हमें भी रात की चिंता है।"

"मामाजी, पानी नहीं मिलेगा?" मुझे प्यास लग रही थी।

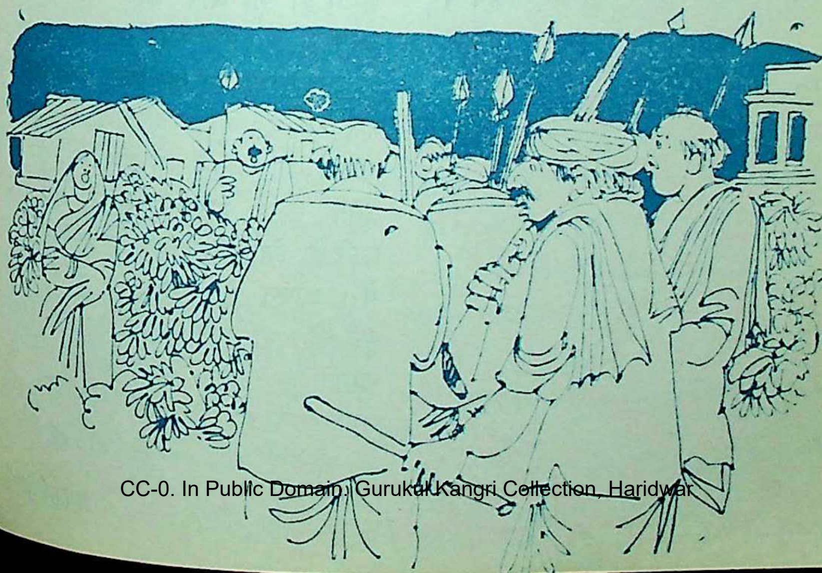
"बस, अब घर पहुंचे ही, वहीं लस्सी पिलायेंगे तुम्हें। चलो रग्घू, देर हो रही है।" मामाजी की शीघ्रता मन को संदिग्ध कर रही थी।

गंजी धरती, इकलौते पेड़, खाली-सा वातावरण, बौराये-से पशु-पक्षी विश्वास नहीं हो रहा था कि यह गांव है।

"मामाजी, क्या गांव अभी आया नहीं?" मेरी जिज्ञासा ने अंततः अपना मुंह खोला।

"बेटा! यह गांव ही तो है, क्यों अच्छा नहीं लगा।"

"नहीं, यह बात नहीं। वे लहलहाते



हुए खेत नहीं दिखायी दे रहे हैं।"

"अरे, अच्छा—हा . . . हा. . . हा . . . सच बेटा, बिना लहलहाते खेतों के गांव कैसा! फसल कट चुकी है न, इसलिए ऐसा लग रहा है बेटा! देखा रग्घू, हमारे भानजे इसे गांव मानने को तैयार नहीं हैं। पहली बार आये हैं न!"

"हां पंडितजी, अब तो शहरवाले गांव से इतनी दूर हो गये हैं कि गांव उनके पहचानने में ही नहीं आता है।"

यह व्यंग्य मुझ पर था। मैं चुपचाप, ग्रामीण सौंदर्य के नाम पर जो कुछ दिखायी दे रहा था, देखने लगा।

●●

जब घर पहुंचे, तब तक शाम धुंधला चुकी थी। परिवार के तथा आस-पड़ोस के कुछ लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। मामीजी मिलकर बड़ी प्रसन्न हुईं। बच्चे तो सहमे-से, पहली बार देखने के कारण बार-बार नमस्ते करने के लिए कहने पर



भी हाथों में हाथ फंसाये कोने में खड़े थे।

मामाजी का कच्चा-पक्का मकान काफी बड़ा था। अन्य घरों से लालटेन अथवा दीए का मद्धिम-सा प्रकाश छनकर बाहर बिखर रहा था। हिलता हुआ मद्धिम प्रकाश किसी आशंका से कंपित लग रहा था।

"अच्छा पंडितजी, तुम मेहमानों की आवभगत करो, हम चलते हैं। रात भी घिर आयी है, चलकर घर-बार संभालें। तुम भी अपने किवाड़ ठीकठाक बंदकर लो। कोई जरूरत ो, तो पुकार लेना।" एक बुजुर्ग-से व्यक्ति ने आये हुए पड़ोसियों की ओर से, जैसे प्रतिनिधि बनकर कहा। सब धीरे-धीरे राम-रामकर चल दिये।

रात घिरने की आशंका का रहस्य अब मुझे भी चिंतित करने लगा था। मैंने मामाजी से पूछ ही लिया, "क्या बात है मामाजी, यहां रात को क्या कोई शेर-वेर आता है, जो आप लोग रात से इतना डरते हैं?" मेरा स्वर व्यंग्यात्मक था।

मामाजी घर का मुख्य दरवाजा बंद कर रहे थे। मुख्य दरवाजे के बाद एक आंगन था, जिसमें हम लोग बैठे हुए थे। इसके बाद बड़े-बड़े कमरे आरंभ हो जाते थे, जिनमें बड़े-बड़े दरवाजे लगे हुए थे। आंगन में एक ओर दो भैंस बंधी हुई थीं। मामाजी ने किवाड़ का सांकल लगाते हुए कहा, "पहले स्नान कर लो, जंगल-पानी हो लो, फिर करते हैं आराम से बातें। रात अधिक हो गयी, तो

दिक्कत होगी।"

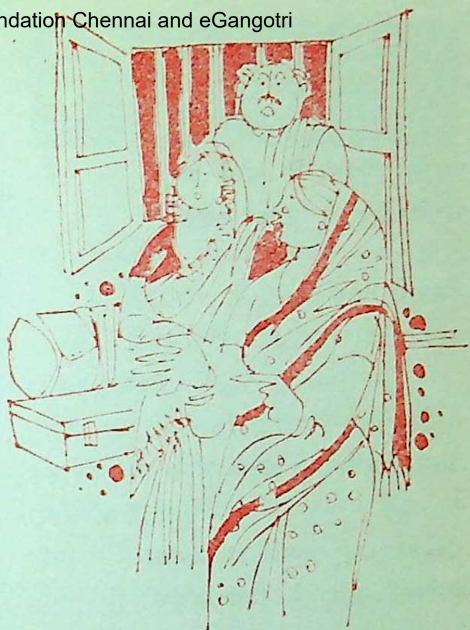
"आप बताते क्यों नहीं हैं कि क्या दिक्कत होगी? कब से रात का डर हमारे दिल में बैठा रहे हैं, पहले आप बताइए, तभी हम कुछ करेंगे।" मैं लगभग बिगड़-सा गया। कम बोलनेवाली मेरी पत्नी की आंखें भी यही कह रही थीं।

"बेटा, यहां रात को डाकू आते हैं।" मामाजी के यह कहते ही, मेरी पत्नी की चीख निकल गयी और मेरी भी हालत कुछ साहसपूर्ण नहीं थी। "डरने की कोई बात नहीं है; घर में दो-दो बंदूकें हैं। आस-पड़ोस सारा इकट्ठा हो जाता है।" मामाजी ने समझाते हुए कहा।

"इसलिए रात को कोई घर से बाहर नहीं निकलता है।" मैंने पूछा।

"हां बेटा! बाहर निकलने की बात तो छोड़ो, वे तो घर में भी चैन नहीं लेने देते हैं। आकर बल्लमों से घरों के दरवाजे खोदते हैं। मुओं के पास बंदूकें, बल्लम, लाठियां, न जाने क्या-क्या होते हैं। मैं तो इनसे कब से कह रही हूं कि छोड़ दो यह जगह," मामीजी एकदम आवेश में आकर बोलीं, और फिर एकदम उनके स्वर में विवशता आ गयी, "पर बेटा, अपनी जमीन कोई ऐसे छोड़ी जाती है?"

पत्नी चुपचाप बैठी आतंकित-सी गांव के वर्णित 'सौंदर्य' का 'पान' कर रही थी। उसके चेहरे पर–'कहां आकर फंस गये' का-सा भाव था। मैं भी चुप-सा हो गया था। हमारी इस चुप्पी को लक्षित करके



मामाजी ने समझाया, "अरे ऐसी डरने की कोई बात नहीं। दुनिया में बहादुर बनना चाहिए, नहीं तो ऐसे डाकू जीने नहीं देगें।"

"सुनो, कल सुबह ही निकल पड़ेंगे यहां से," पत्नी ने एकांत मिलते ही अपना निर्णय मुझे सुनाया।

"अब आये हैं, तब दो-एक दिन ठहर लेंगे। मामा-मामीजी क्या सोचेंगे। ये लोग भी तो यहां रहते हैं," मैंने समझाया। परंतु आतंकित मैं भी कम नहीं था।

"पर मैं नहीं रह सकती," पत्नी ने सहमते हुए कहा।

●●

मामीजी ने खाना अच्छा बनाया था,

इनके भी बयां हैं जुदा-जुदा

प्यासी धरती के सीने पर
बरसे भी तो पत्थर बरसे
—निजाम

कितनी यादें लिपट के रोती हैं
जब कोई शख्स घर बदलता है
—महमूद इशकी

पहले ही पी लिया है किसी ने लहू तमाम
अब क्या मिलेगा खुश्क रगों को निचोड़के
—माहिर अनसारी

उसका नाम किसी से सुनकर
कितनी जोर से दिल धड़का है
—सुल्तान सुबहानी

जिंदगी तूने तो सोचा भी न होगा ये कभी
जीनेवाले तेरी तसवीर बने बैठे हैं !
—याकूब उसमानी

ठहर जाए तो मैं तेरा घर हूं
तू न ठहरे तो रास्ता हूं मैं
—डॉ. मोगन्नी तबस्सुम

तमाम उम्र भटकती रही सवालों में
थमी नजर तो नजर का जवाब सामने था
—अमीर अहमद खुसरो

दे गया मुझको अकेलेपन का सन्नाटा कोई
याद आती हैं बहुत भूली हुई तनहाइयां
—लुतफुर रहमान

हर शाम घर को लौटके आता रहा मगर
घर में कभी मैं खुद को मुकम्मल न ला सका
—रऊफ अनजुम

परंतु उसका स्वाद तो डाकू ले उड़े थे। पत्नी ने विशेष आग्रह पर भी थोड़ा-बहुत खाया और मुझ से भी 'बाहर' जाने के भय से पेट भरकर नहीं खाया गया। थोड़ा खाने के कारण मैंने पत्नी से कहा, "अगर तुम यहां दस-पांच दिन रह जाओ, तो अच्छी-खासी डाइटिंग हो सकती है।"

"तुम ही क्यों नहीं डटकर खाते।" पत्नी का व्यंग सार्थक था, क्योंकि मैंने घर से चलते हुए गांव में खूब डटकर खाने और सेहत बनाने की बात की थी।

जून की गरमी के बावजूद गांव की रात में ठंडक थी। खुले आंगन के कारण बड़ी मधुर हवा मन को छू रही थी, परंतु साथ-साथ छू रहा था डाकुओं का भय। मामाजी के साथ मैं तो इधर-उधर की बातें, गप्पें चला ही रहा था, परंतु पत्नी मामीजी के साथ बातें करते 'हां', 'हूं' में ही उत्तर दे रही थी।

"चलो, अब काफी रात हो गयी है, तुम लोग भी सफर के थके हुए होगे, सो जाओ", मामाजी ने जम्हाई लेते हुए कहा।

"नहीं, हम तो कोई खास नहीं थके हैं। अभी टाइम ही क्या हुआ है, जागते हैं," पत्नी ने एकदम बात काटकर कहा। वस्तुतः यह उसका भय बोल रहा था।

पत्नी—मेरी एकमात्र प्रेमिका, साथ हो, विरह का कोई कारण न हो और फिर भी 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' की वेदना में गुजरना पड़े, कितनी बड़ी यंत्रणा है

यह! पत्नी करवटें बदल रही थी और मैं उसका साथ दे रहा था। मामा, मामीजी को शायद हमारी नींद की चिंता के कारण नींद नहीं आ रही थी। थोड़ी देर करवटें बदलने के बाद पत्नी उठ बैठी।

"क्यों क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"पेट में दर्द हो रहा है।"

"सुनो, मुन्नू की अम्मा, बहू को जरा चूरन निकाल दो। अभी ठीक हो जायेगी।

गर्म पानी के साथ चूरन खिलाकर मामीजी ने पत्नी को आराम से आंखें बंद करके लेट जाने की सलाह दी।

थोड़ी देर बाद देखा, तो पत्नी फिर अपनी चारपाई पर बैठी हुई थी। मामाजी और मामीजी खर्राटे भर रहे थे।

"दर्द कम नहीं हुआ क्या?"

वह मेरे कान के पास आकर फुस-फुसायी, "बाहर जाए बिना, लगता है यह दर्द ठीक नहीं होगा।"

"क्या बात करती हो? बाहर खतरा है, इसलिए मामाजी ने पहले ही कहा था कि जाना हो तो हो आओ," मैंने खीझते हुए कहा।

"यह अपने वश की बात है क्या?"

मामाजी की नींद खुल गयी थी। "बहू के पेट का दर्द ठीक नहीं हुआ क्या?"

"नहीं मामाजी, बढ़ गया है। बाहर जाने को कह रही है।"

"बाहर?" मामाजी का स्वर थोड़ा चिंताजनक था, "अच्छा, देखता हूं।"

मामाजी उठे। उन्होंने अंदर से बंदूक उठायी मुझे भी एक लाठी उठा लेने को कहा और फिर आवाज लगायी, "किशना, चौधरी, भीमसिंह जरा बाहर आना।"

दूसरी ओर से उनके उत्तर आ गये। हम सबके हाथों में कोई न कोई हथियार था। पत्नी के साथ मामीजी भी थीं।

लग रहा था जैसे किसी शहंशाह को पूरे ठाठबाट के साथ नित्यकर्म करवाया जा रहा हो। इस समय तो सोचकर हंसी आती है, परंतु उस समय हम सब बड़ी मुस्तैदी के साथ अपनी 'ड्यूटी' पर तैनात थे। बाकायदा मोर्चा बनाया हुआ था। कहीं जरा-सी भी आहट होती, सब सतर्क हो जाते। इस दल में तीन बंदूकधारी, चार बल्लमधारी और चार-पांच ही लाठियां धारण किये हुए थे।

"बेटा! अगर तुम्हें भी..."

"नहीं... नहीं, मामाजी... मुझे कुछ ऐसा नहीं है...।"

लगभग रात आंखों में कटी। अंतिम पहर में नींद आ गयी। उठा तो देखा, पत्नी सामान बांध रही है और मामा-मामीजी उसे समझा रहे हैं। मैं जानता था कि अब पत्नी जाने से रुकेगी नहीं।

अंततः जिस तरह हमारी राजसी सवारी गांव में आयी थी, उसी तरह लौट पड़ी।

अब कभी गांव जाने की बात कहता हूं, तो पत्नी के पेट में दर्द शुरू हो जाता है।

—ए-६४, नौरोजी नगर, नयी दिल्ली-१६

भारतीय ज्योतिष में रंग

● प्रहलाद राय व्यास

आपने होली में रंग देखे होंगे, बोली में रंग देखे होंगे, लेकिन ज्योतिष में आपने रंग नहीं देखे होंगे। अतः आपको ज्योतिष में रंग बताये जा रहे हैं।

ज्योतिष में रंगों पर विचार करने से पूर्व रंग कितने हैं, यह समझना आवश्यक है। मुख्य रंग दो ही हैं, एक सफेद, दूसरा काला। शेष रंग इन्हीं के योग से बनते हैं। तंत्र-शास्त्र में तीन प्रधान रंग माने गये हैं—पहला शुक्ल, दूसरा कृष्ण, तीसरा रक्त-वर्ण। ज्योतिष में बारह ग्रह हैं—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, हर्षल (प्रजापति) नेपच्यून (वरुण) एवं प्लेटो (इंद्र)। इनमें से प्रधान ग्रह नौ ही हैं। इन नौ ग्रहों में भी सात ग्रह प्रधान हैं, क्योंकि राहु, केतु को छाया-ग्रह माना गया है। ज्योतिष में राशियां भी बारह ही हैं यथा—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन, तो रंगों में बारह ही रंग हमारे यहां प्रचलित हैं। सूर्य व चंद्रमा नक्षत्रों के स्वामी हैं। मंगल को भूमिनंदन, बुध को चंद्रमा का पुत्र, वृहस्पति को देव गु , शुक्र दैत्यगुरु तथा शनि को सूर्य का पुत्र कहते हैं।

राशियों के रंग

मेष राशि का रंग लाल है, वृष राशि का रंग सफेद है। मिथुन राशि का हरा, कर्क का श्वेत लाल, सिंह का धुमैला और पांडुवर्ण है। कन्या का चित्र वर्ण, तुला का नील धूम्रवर्ण है। वृश्चिक का सुनहरा, धनु का पीला, मकर का चितकबरा, कुंभ का नोलिया सदृश भूरा तथा मीन का श्वेत रंग है। मेष और वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल है। वृष और तुला राशि का स्वामी शुक्र है। बुध, कन्या व मिथुन राशि का स्वामी है। कर्क राशि का स्वामी चद्रमा है। सिंह राशि का स्वामी सूर्य है। धनु व मीन राशि का स्वामी वृहस्पति है। मकर व कुंभ राशि का स्वामी शनि है।

सूर्य का रंग

सूर्य सभी ग्रहों का सम्राट है। वह जगत की आत्मा है। मानव शरीर में आत्मा सूर्य का प्रतीक है। जिस व्यक्ति के जन्म लग्न में सूर्य, राहू या केतु के साथ हो, तो उसकी आत्मा को आजीवन अशांति बनी ही रहेगी, चाहे वह कितना ही धनाढ्य अथवा उच्च पदासीन क्यों न हो। सूर्य

से ही सभी रत्नों एवं धातुओं में रंग आता है। इसी से वनस्पति पकती है। यह सभी जीवों में गरमी पहुंचाता है। यह भूमि से १३ लाख गुना बड़ा है और भूमि से नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है। सभी ग्रह इसके चारों तरफ घूमते हैं। सूर्य की आकर्षण शक्ति से ही सभी ग्रह अपनी-अपनी जगह ठहरे हुए हैं। यह केवल अपनी जगह घूमता है। इसकी एक सहस्र किरणें हैं, इसीलिए इसको सहस्रांशु भी कहते हैं। मानव शरीर में मस्तिष्क को भी सहस्रांशु कहते हैं। अंशु का अर्थ कोठरियां याने 'सेल्स' हैं। दिमाग में एक हजार कोठरियां याने 'सेल्स' हैं। प्रत्येक 'सेल' में इतनी शक्ति है कि किसी भी विद्या एवं विज्ञान की उत्पत्ति से उसके अहं तक का ज्ञान एक 'सेल' स्वयंमें समाहित कर सकता है। स प्रकार मानव का मस्तिष्क एक हजार भांति की विद्याएं वं विज्ञान पूर्णतः सीख सकता है। योग उपासना में जब कुंडलनी जागृत होकर सहस्रार या सहस्र कमलदल में पहुंच जाती है, तो साधक को श्वेत रंग के प्रकाश की अनुभूति होती है। यही सदाशिव की प्राप्ति कहलाती है। सूर्य में प्रधान रंग सात हैं। यह संकल्प बीज एवं भौतिक विज्ञान की आणविक प्रचेतना का प्रतीक है। व्यक्ति को सार्वभौम सत्तात्मकता, अधिकार, प्रशासनिकता, वैज्ञानिकता, राजनीतिज्ञता एवं आयुष्य-वृद्धि आदि को उपलब्धि में सहकार प्रदान करता है। यह सौर-मंडल के मध्य भाग में स्थित है। चंद्रमा सूर्य का मंत्री कहलाता है। चंद्रमा का ंग श्वेत है। मानव शरीर में यह मन का प्रतीक है। चंद्रमा का संबंध मानव के मन से बहुत ही घनिष्ठ होता है। यही कारण है कि चंद्रमा के शुक्ल पक्ष में दिखायी देने पर प्रत्येक प्राणी प्रसन्न होते हैं, क्योंकि जिन सात्त्विक अंशों से मनुष्य का मन बनता है। वे सात्त्विक पदार्थ चंद्रमा में अधिक होते हैं। सभी वनस्पतियों में रसों की उत्पति चंद्रमा से होती है। गर्भ



में बालक की अभिवृद्धि चंद्रमा से होती है। चांदनी रात में सोने से सुंदरता बढ़ती है। कुमदादि फूल चंद्रमा की चांदनी में खिलते हैं। यह शीतलता प्रदान करता है।

ज्योतिष में चंद्रमा को मुख्य माना जाता है। इसीलिए चंद्र-कुंडली बनायी जाती है। क्योंकि, यह भाग्य का, शरीर का, तथा माता का स्वामी है। जिसके जन्मकाल में चंद्रमा बलवान, स्वग्रही अथवा वृष राशि में उच्च का चंद्रमा हो अथवा

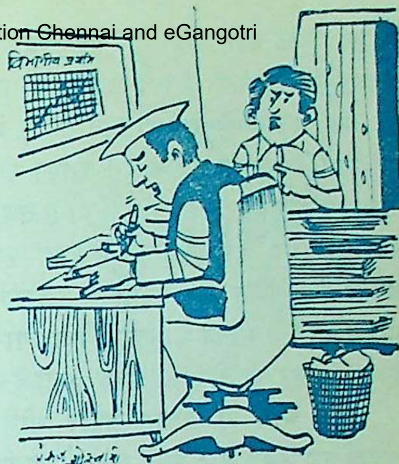
बृहस्पति के साथ योगयुक्त हो, तो वह जातक जन्मजात भाग्यशाली होता है। जिसके जन्मकाल में वृश्चिक राशि में चंद्रमा हो, तो वह दुर्भाग्यशाली होता है। वृश्चिक राशि में चंद्रमा नीच का होता है, अतः जिसके जन्मकाल में वृश्चिक राशि का चंद्रमा हो, तो उसे बसरे का श्वेत अछिद्र मोती चांदी की अंगूठी में पहनना चाहिए। यदि यह संभव न हो, तो उसे दुर्गा देवी की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि चंद्रमा दुर्गा का स्वरूप है। सूर्य और चंद्र ब्रह्मांड की आंखें हैं। मानव शरीर में दाहिनी आंख सूर्य एवं बांयी आंख चंद्रमा का प्रतीक है। नाक के दाहिने स्वर को सूर्य स्वर एवं बायें स्वर को चंद्र स्वर कहते हैं। इन स्वरों के माध्यम से ही शकुन-अपशकुन एवं भविष्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। चंद्रमा भूमि से लगभग ढ़ाई लाख मील दूर है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। चंद्रमा जल-तत्त्व का भी प्रतीक है। यह कला का विकास करनेवाला सौंदर्य का प्रवर्तक है। साथ ही यह हृदय की कुंठाओं को शमनकर शांति की स्थापना करता है। इसीलिए चंद्र दर्शन पर हमें स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता प्राप्त होती है। मोती एवं चांदी इसके रत्न एवं धातुएं हैं। हृदय रोग में मोती की भस्म खाने से आराम मिलता है। चंद्रमा श्वेत रंग का प्रतीक है। मोती का रंग भी श्वेत होता है, इसलिए मोती धारण करने से मानसिक रोगों का निवारण होता है एवं शांति मिलती है। यह अग्नि कोण का स्वामी है।

मंगल सूर्य से पंद्रह करोड़ और पृथ्वी से बयालीस करोड़ ऊंचा है। इसमें अग्नि तत्त्व विशेष है और जल कम। इसलिए इसका रंग सुर्ख सिंदूरी है। यह क्रूर ग्रह माना जाता है। मानव शरीर में यह रक्त एवं प्रशासनिक पाशविक चेतना का प्रतीक है।

यह दक्षिण दिशा में त्रिकोणात्मक है इसीलिए इसका तंत्र भी त्रिकोण बनता है। यह मनुष्य को महाप्राण बनाता है और उसमें भक्तिभाव, धार्मिकता एवं मांगलिक कार्यों के प्रति अभिरुचि पैदा करता है। साथ ही यह उग्र होने के कारण मानव में उग्रता एवं क्रोध भी पैदा करता है, क्योंकि सिंदूर-वर्ण उत्तेजक होता है। भूमि कार्यों जैसे—भूमि खरीदना, बेचना, मकान खेती आदि में समर्थ सहयोग प्रदान करता है। मंगल कलह-कारक, पराक्रमी एवं युद्ध-प्रिय होता है। इसीलिए यह नवग्रहों में सेनापति कहलाता है। देवी, भैरव, गणेश, हनुमान आदि की पूजा सिंदूर से ही की जाती है, क्योंकि ये देवता उग्र हैं एवं मंगल के ही प्रतीक हैं। देवताओं में यह कार्तिकेय का प्रतीक है। इसका रत्न मूंगा है तथा धातु सोना व तांबा है। जिस व्यक्ति के जन्मकाल में मंगल खराब हो अथवा कर्क राशि में नीचे मंगल हो, उसे अवश्य ही मूंगा पहनना चाहिए। जन्मकाल के समय मंगल खराब होने से रक्त में एक प्रकार का कीटाणु

पैदा होता है, जो चर्मरोग आदि बीमारियां शरीर में उत्पन्न कर देता है, तथा रक्त का संचालन पूर्णत: मस्तिष्क तक नहीं होने देता है, जिसके कारण मानव के मस्तिष्क में रक्त पूर्णत: नहीं पहुंच पाता है और मानव क्रोधी, चिड़चिड़ा एवं तामसी हो जाता है। मूंगा पहन लेने से मूंगे में विद्यमान स्थित शक्ति उस कीटाणु को नष्ट कर देती है तथा शरीर में रक्त का संचार मस्तिष्क तक सही ढंग से होने लगता है जिससे मानव स्वस्थ रहता है एवं उसकी क्रोधी प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह मान्य है कि पत्थर में चेतना सुषुप्तावस्था में, वृक्षों में स्वप्नावस्था में तथा मानवों में जागृतावस्था में हैं। रत्नों में रंग, ज्योति एवं शक्ति होती है। रत्नों में चेतनाशक्ति जागृत सुषुप्तावस्था में रहती है। रंगों में दो शक्तियां होती हैं। एक आकर्षण और दूसरी विकर्षण। पत्थरों में, रत्नों में पंचभूत के तत्व निहित हैं। क्योंकि, वे भूमि का ही अंश होते हैं। उनमें पानी भी होता है, जिसे रत्न का रंग कहते हैं। रत्न की कीमत उसके पानी पर ही निर्भर करती है। धातुओं में भी आकर्षण-शक्ति होती है। इसी कारण हमारे देश में पत्थरों, धातुओं एवं विभिन्न रंग के रत्नों की मूर्तियां बनायी गयी हैं, जिनमें यही रहस्य निहित है। धातु एवं रत्न माफिक न आने पर तत्काल प्रतिक्रिया देते हैं।



"विभाग में आजकल सफाई अभियान चल रहा है। तुम्हारा कागज भी शायद उसी में साफ हो गया है।"

बुध भूमि से बारह करोड़ मील ऊंचा है। यह ईशान कोण में है। यह सूर्य के साथ ही रहता है। कभी-कभी वक्र होने पर सूर्य से इसका साथ छूट जाता है। अन्य ग्रह सूर्य के साथ रहने से तेजहीन हो जाते हैं, परंतु बुध सूर्य के साथ होने पर और बलवान हो जाता है। यह बुद्धि एवं व्यापार का दाता है। बुध खराब होने से मनुष्य को यकृत-रोग होता है। इसका रंग हरा है तथा धातु कांसा है तथा रत्न पन्ना है। हरा रंग धन-धान्य, व्यवसाय एवं बौद्धिक क्षमता को पुष्ट करनेवाला होता है।

वृहस्पति देवताओं का गुरु माना जाता है। यह शुभ ग्रह है तथा सूर्य से

पचास करोड़ मील ऊंचा है। यह विज्ञान-दाता एवं मोक्षदाता है। देवताओं में यह इंद्र का प्रतीक है एवं मानव-शरीर में यह प्राण-चेतना का प्रतीक है। इसका रंग पीला-सुनहरा है। इसकी धातु सोना है तथा रत्न पुखराज है। यह महत्त्वांकाक्षा का प्रतीक है। पीला रंग पहनने व पुखराज धारण करने से मानव के अंदर की महत्वा-काक्षाएं बाहर की ओर आकर्षित होती हैं।

शुक्र भूमि से सोलह करोड़ मील ऊंचाई पर स्थित है। उसमें जल का भाग बहुत है इसलिए इसका रंग नीला मिश्रित विशिष्ट श्वेत है। यह रंग सृजन का प्रवर्तक है। यह सभी चौसठ कलाओं का अभिवर्द्धन करता है। इस रंग को धारण करने से मनुष्य में आत्म-विश्वास, आत्म-श्लाघा, सेक्स के प्रति तीव्र अनुराग की वृद्धि होती है। इस रंग के प्रधान गुणों की अर्चना हेतु हीरा धारण करने की परंपरा है।

शनि का नीला रंग

शनि की ऊंचाई उन्यासी करोड़ मील है। यह आलस्य, दुःख, मृत्यु कारक है। इसका रंग नीला है। इसकी धातु लोहा है तथा इसका रत्न नीलम है। यह सूर्य का पुत्र है। नीली रश्मि से नींद आ जाती है। नीली रोशनी शांति प्रदान करती है, लेकिन शांति का नाम मृत्यु है, संघर्ष का नाम ही जीवन है। पूर्वजन्म में किये गये पापों की सजा यह शनि ही मानव को भुगताता है। शरीर में यह लौह का प्रतीक है। अतः शनि खराब होने पर आदमी दिवालिया हो जाता है एवं उदर एवं वायु रोगों से पीड़ित रहता है। शनि का रंग काला भी माना जाता है, यह यमराज का स्वरूप भी है एवं कल्याणकर्ता शिव का स्वरूप भी है। जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है कि ये तीन ही प्रधान हैं, जो प्रधान सात ग्रहों के सात प्रकारों में तथा अनगनित उप-भेदों में अभिव्यक्त हैं। नीला रंग सुशील मान-सिक चेतना का भी प्रतीक है। नीला रंग व्यक्ति में सहिष्णुता, मानसिक धैर्य, सम-न्वय, चमत्कार एवं ज्योति का विकास भी करता है किंतु व्यक्ति के रूप में कभी-कभी अंतर्मुखी होने पर आत्मकेंद्रित भी बनाता है।

शनि खराब हो, तो मानव को भिखारी बना देता है और शनि बलवान हो तो मानव को धनाढ्य बना देता है।

राहु-केतु यह भूमि के दोनों ध्रुव हैं। उत्तर ध्रुव राहु एवं दक्षिण ध्रुव केतु है। राहु का रंग गोमूत्र-जैसा है, इसीलिए इसका रत्न गोमेद है तथा केतु का रंग बिल्ली की आंख-जैसा होता है। इसका रत्न लहसुनिया है जिसे वैडूर्य कहते हैं तथा अंगरेजी में जिसे 'कैट्स आई' भी कहते हैं। इसमें बिल्ली की आंख की तरह सफेद धारी चमकती है इसकी गति विपरीत है। यह जन्मकाल में जिस राशि में होते हैं, उसी का फल देते हैं।

—९१-बी, दिव्य कुटीर, तनेजा ब्लाक
आदर्श नगर, जयपुर-४

प्रवेश



"बाहरी घटनाओं की भीतरी प्रतिक्रिया कविता बनकर सामने आती है। जो कुछ मेरे जीवन में टूट-फूट होती है, वही मेरी भाषा मुझे कथा देकर फिर औरों के सामने ले आती है। वह मेरी आंतरिक अनुभूतियों को बाहरी थपेड़ों से बचाने के लिए दीवार है, और मैं निरंतर उसे मजबूत बनाने के लिए शब्दों के साथ जूझती हूं।"

मेरी प्रतिध्वनियां

रोज ही तुम
मेरे अस्तित्व को
अपने भारी बूटों तले कुचलते हो
और मेरी विवशताओं पर
अट्टहास करते हो
तुम्हें अपने पुरुषत्व पर
बहुत दंभ है न !
लेकिन तुम भूल जाते हो
कि
दूर-दूर तक फैला
मेरा ही लहू
एक दिन इतिहास बन जाएगा
और तब
तुम पूरी शक्ति लगाकर भी
खामोश नहीं कर पाओगे
मेरी निष्कंप प्रतिध्वनियों को

—राजश्री रंजिता
माधव बिहारी पथ, छपरा (बिहार)

काव्य प्रेत का अवतरण

• श्रीनंदन चतुर्वेदी

पूरे तीन वर्ष बाद शहर लौटा। शहर बिलकुल बदल गया। मेरे एक शुभ-चिंतक ने कहा, "शिवदास घाट गली में एक किरकांट बाबा रहता है। उसका ताबीज ले आओ, नहीं तो कहीं के नहीं रहोगे। अगर ताबीज से असर होता न दिखे, तो भारतेन्दु-भवन की बगल में एक पलीता बाबा रहता है। वह पलीते से दागता है, उसके पास चले जाना। भूत-बाधा उसके उपचार से शर्तिया मिट जाती है। एक कनफटिया भी है, जो छावनी में बसता है; रोग से बचने के लिए

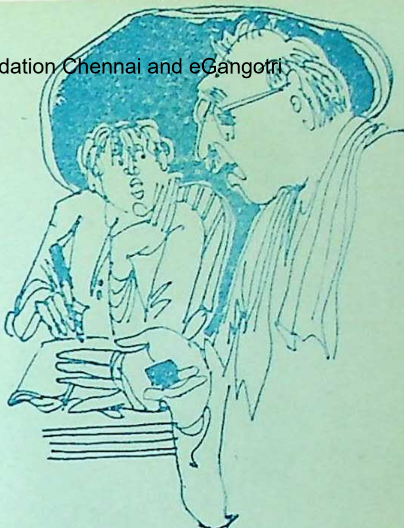


जैसे टीका लगवा लेना जरूरी होता है उसी तरह इस शहर में आनेवाले को भूत-बाधा से बचने के लिए इन बाबाओं के ताबीज, भभूत आदि जरूरी होते हैं।"

मैंने बात ध्यान से सुनी, पर सुनकर ही रह गया। मुझे अपने ग्रह-वर्ग पर विश्वास था। मैं बाबा के पास नहीं गया।

मेरा विश्वास मिथ्या प्रमाणित हुआ। मैंने अनुभव किया कि मैं अकारण ही गुन-गुनाने लगा हूं। मैं एक दोस्त के पास से खाली डायरी उठा लाया। कविताएं लिखने लगा और सुननेवालों को तलाशने लगा। उन दिनों जो कुछ लिखता, सब मुझे कविता-जैसा लगता। पर असल में वह कौन-सी विधा होती थी, यह मैं आज भी नहीं बता सकता। अब, जब भी उन रचनाओं को देखता हूं, तब मुसकरा उठता हूं। उन दिनों शहर के बहुत-से लोग वैसा लिख रहे थे। कितने ही तो अब तक वैसा ही लिख रहे हैं।

मैं हैरान नहीं था। सब कुछ सहज



लगता था, एकदम स्वाभाविक। कविताएं लिखता। हर क्षण गुनगुनाता रहता। जो मिलता उसे ही सुनाने बैठ जाता। राह चलते दोस्तों से जा चिपकता। कवियों से दोस्ती गांठते देर नहीं लगी। फिर तो दैनिक क्रम हो गया। प्रातःकाल जल्दी उठकर नौकरी पर, नौकरी से आते ही किसी कवि के घर। स्वयं न जाता, तो कोई कवि मुझे लेने आ पहुंचता। वहीं से कवि-गोष्ठी में पहुंच जाता। एक गोष्ठी रात्रि दस बजे पूरी होती, तब तक दूसरी में जाने का समय हो जाता। वहां पहुंचकर रात के दो बजे तक कवियों के साथ बैठा रहता। मुझे सोचने का समय ही नहीं था कि मेरा घर-बार भी है।

देर रात गये घर पहुंचकर कुंडी खटखटाता। माता-पिता नाराज होते। पत्नी रोज-रोज रूठती रही, फिर रूठकर पीहर चली गयी। फिर भी मुझ पर कोई असर न हुआ। किसी दिन यदि पांच गोष्ठियां भी होतीं, तो मैं पांचों में पहुंचता। शहर में दो सौ से अधिक लोग कवि बन गये थे।

लिखते-लिखते पांच डायरियां भर गयीं। सारा घर परेशान था। ससुराल से भी चिंता प्रकट करनेवाले पत्र आने लगे। मां बोली, "यह पगला गया है।" पिता बोले, "इसे तो किरकांट बाबा के पास ले जाना पड़ेगा।" उन्होंने एक दिन मुझे कमरे में बंदकर बाहर से सांकल लगा दी। मैंने अंदर बैठे-बैठे थोड़ी-सी देर में चार कविताएं लिख डालीं; फिर खिड़की की जाली तोड़कर एक क्रांतिकारी की तरह बाहर निकल आया। बगल में डायरी दबाये, दबे पांव घर से निकल भागा। दिन इसी तरह निकलते गये।

एक दिन पिताजी घर आये, तो बड़े प्रसन्न थे। मैं उस समय भी कुछ गुनगुना रहा था। उन्होंने घर में पैर रखते ही मुझे आवाज लगायी और एक ताबीज जेब से निकालकर, मेरी बांह पर बांध दिया। बोले, "इसे इसी तरह बांधे रहना। यह किरकांट बाबा का ताबीज है, जिसमें पलीता और कनफटिया दोनों बाबाओं की भभूत की चुटकी है।"

मुझे नया अनुभव हुआ। मेरे मस्तिष्क से तरन्नुम जाता रहा। कविता लिखने की याद ही भूल गया। गोष्ठी की कतई याद नहीं आती। दो दिन तक संयोगवश कोई कवि भी सामने नहीं आया। पिता प्रसन्न हुए। एक दिन मैंने ताबीज उतारकर रख दिया, तब देखा कि मैं फिर से

स्त्रियां अपनी मनोभावनाएं
अनेक सुन्दर ढंगों से
व्यक्त करती हैं।

विमल उनमें से
एक है!



१००% पॉलिएस्टर साड़ियां

अपने विमल विक्रेता से ... पॉलिएस्टर टिश्यू क्रेप.
इनके अलावा, सिल्क सिलिमोर, स्वीट सॉफ्टी, विनोल्टा, ... सिक और फ्रेंच शिफॉन

कवि होने लगा था। दस-पंद्रह कवि भी घर आ पहुंचे थे। उन्होंने पूरे सात दिन की कवि-गोष्ठियों के कार्यक्रम वतला दिये। कोई कार्यक्रम ऐसा न था, जो रात एक बजे से पहले पूरा होने वाला हो। मैं अपनी डायरी संभालकर उनके साथ चलने को तैयार हो गया।

अंदर से पिताजी मेरी और कवियों की हरकतें देख रहे थे। उन्होंने मुझे अंदर बुलाया और कहा, "इस तावीज को मैंने लोबान की धूनी लगा दी है, बांध लो।" कहते हुए लपककर उन्होंने मेरी बांह पर दोवारा तावीज बांध दी। मैं अचानक बदल गया। कवियों के बीच आया और बोला, "मैं कहीं नहीं जाऊंगा। घर और नौकरी का बहुत काम सिर पर चढ़ गया है।"

मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य ही कोई ऊपर का असर था, जो इस शहर की हवा में मिल गया था। मैंने पता करना चाहा और स्वयं ही किरकांट बाबा के पास पहुंचा। बावा मुझे देखते ही बोला, "मैं तुम्हारे आने का प्रयोजन जान गया हूं। उत्तर यों है कि तुम्हारा निष्कर्ष सही है। तुम्हारे पिता को भी कोई मेरे पास लाया था। मैंने उनसे पलीता और कनफटियाबाबा की भभूत मंगवाकर अपने तावीज को उससे पुष्ट कर, अमोघ कवच के रूप में बनाया और तुम्हें पहनाने को दिया था, जो इस समय तुम्हारी बांह पर बंधा है। इस शहर पर पिछले दो वर्षों से प्रेत का प्रभाव है। वह समर्थ प्रेत कितने ही भूतों का स्वामी है। स्वच्छंद विहार करते रहना उसका स्वभाव है। लोक-लोकांतर तक उसकी गति है। प्रेत योनि से पहले जब मनुष्य था, तव वह पहुंचा हुआ तापस और असफल कवि था। वह घूमता हुआ इधर से निकला, तो शहर पर लुभा गया। अपनी पूरी मंडली के साथ वह शहर में रम गया। कितने ही भूत उसने खुले छोड़ दिये हैं। चूंकि स्वयं कवि था, इसलिए अनुचर रूप में उसने वे ही एकत्र किये, जो कवि थे और मरकर भूत बन गये थे। वे सब इसी के साथ रहते और इसके आदेश का पालन करते हैं। प्रेत का आदेश है कि जो जिसके साथ लगने की सामर्थ्य रखता हो, वह उसी के साथ लग जाए। इसीलिए यह शहर कवि-नगर बन गया है।"

बाबा फिर बोला, "जन्मजात कवि इस शहर में बहुत थोड़े हैं। ये सैकड़ों की संख्या में दिखनेवाले कतई कवि नहीं हैं। इन पर भूतों का असर है। कविता ये नहीं लिखते, इनके सिर पर चढ़ा भूत लिखवाता है। भूत जिस स्तर का कवि रहा, उसी स्तर की कविता लिखवा देता है। इसीलिए कोई बहुत अच्छी, तो कोई एकदम पोची कविता ला रहा है। प्रेत ने भी एक को तलाश कर रखा है। वह और किसी को नहीं लगता। वह केवल शहर भ्रमण करता और भूतबाधित कवियों को एकत्र कर अपने यहां भूत-दरबार लगाता है। प्रेत के आवास पर जो भूत-दरबार

इस तरह जोड़ा जाता है उसमें अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता रहती है। जिसके जो मन में आये, कविता कहकर पढ़ देता है। स्वयं प्रेत भी मस्ती में आकर पढ़ने लगता है। कभी बड़ी उच्च कोटि की, तो कभी एकदम घटिया। कभी कतरन छाप कविता भी वह ले आता है, कभी एकदम मौलिक चीज देता है, किंतु वह मौलिक सामग्री जितनी रचता है, वह निकृष्ट तो नहीं, पर लचर जरूर होती है। ऐसी चीज को सुनकर भूत खिल्ली उड़ाते हैं, पर वह उसमें भी बड़ा आनंद लेता है। तुम्हारे ऊपर उसी प्रेत के एक सेवक-भूत कवि का असर था। जितनी गोष्ठियों में तुम गये, वे सब भूत मंडलियों की महफिलें थीं। अगर तुम तावीज पहने हुए कभी भूत-दरबार में पहुंच जाओ, तो वहां उपस्थित सभी कवि कोई न कोई बहाना बनाकर उठ भागेंगे। वे इसके सामने टिक नहीं सकते।"

मैंने पूछा, "बाबा! इस प्रेत से शहर का पीछा, कब छूटेगा? मैं देख रहा हूं, लोग कविता लिख रहे हैं और काम-काज में पिछड़ रहे हैं। लोग गोष्ठियों के चक्कर में रातभर जागते और दिनभर ऊंघते हैं। कहीं-कहीं तो—पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि सारा का सारा परिवार कविता-लेखन में लग गया है और भूखों मर रहा है। क्या उनकी मुक्ति का कोई उपाय है?"

"कठिन है," बाबा बोला, "उपाय तो है, पर करे कौन? सारे शहर पर प्रेत की छाया है। जब तक मति न बदले, तावीज कौन लेने आये? भूत आदमी की मति को सामान्य होने कैसे देगा? प्रेत ने तो कवि-शंखिनी और काव्य-पिशाचिनियां तक नगर में छोड़ रखी हैं। पूरे शहर में केवल तीन आदमी हैं, जो प्रेत बाधा का निवारण कर सकते हैं—पहला मैं किरकांट बाबा, जो इन्हें दवात में उतारकर ढक्कन लगा देता है। दूसरा पलीता बाबा, जो इन्हें जलती लकड़ी से दागता है और तीसरा कनफटिया जिसके झाड़ू की मार के भय से ऐसे प्रेत भाग जाते हैं। उसका चिमटा तो इन्हें साक्षात काल लगता है।"

बाबा कहने लगे, "यह शहर इसी तरह चलेगा। आदमी यों ही जीता रहेगा। ये सब भूत बड़े प्रेत के अधीन हैं। वह इन्हें बाबाओं तक आने नहीं देगा, फिर भी तावीज तो ले जाओ।"

तावीज लेकर मैं नमस्कार कर उठ आया। तब से अब तक खिन्न हूं। मैं भूत-बाधा से छूट गया, पर मेरे साथी नहीं छूटे। मेरी हार्दिक अभिलाषा है, शहर प्रेत-बाधा से मुक्त हो, पर अभिलाषा से क्या होता है! फटे में पांव मैं नहीं डाल सकता। यहां भूत खेलते रहेंगे। कविता पलती रहेगी। कवि हाथों में डायरियां लिये, शहर के कोने नापते रहेंगे। किरकांट बाबा के तावीज मेरे पास हैं, पर कोई लेने नहीं आता। कोई तावीज चाहे, तो मुझ से संपर्क करे।

१४/३१९, बजाजखाना, घंटाघर,
डाकोतपाड़ा, कोटा-३२४००६

शिशिरकुमार गोयल, भोपाल: प्लेस मछली कैसी होती है ?

प्लेस मछली ३० से ५० सेंटीमीटर तक की लंबाई की एक बड़ी-सी मछली होती है, जिसके शरीर के किनारे इतने चपटे और झालरदार होते हैं कि वह एक झालर लगी हुई प्लेट-जैसी लगती है। यह जल-तल में रहनेवाली मछली है और वहां यह अपने शरीर को रेत में लगभग आधा गाड़े हुए शिकार की प्रतीक्षा में पट पड़ी रहती है या उसी स्थिति में तैरती है। इसीलिए इसकी आंखें और नासिका-छिद्र ऊपर की ओर रहनेवाले हिस्से में होते हैं। उसका यह हिस्सा रंगीन होता है, जबकि तल की ओर रहनेवाला हिस्सा सफेद होता है। विभिन्न रंगोंवाले स्थानों में तैरते समय प्लेस मछली के ऊपरी हिस्से के रंग बदलते रहते हैं और नये स्थान पर पहुंचकर वहां के जल-थल के रंग के अनुकूल बन जाते हैं।

सुनयना भगीरथ, अकोला : 'इलेक्ट्रोग्राफी' और 'इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी' में क्या अंतर है?

प्राणियों के शरीर में जीवित ऊतकों की वैद्युत गतिविधियों का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'इलेक्ट्रोग्राफी' कहलाता है, जबकि 'इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी' हृदय की मांस-पेशियों और धमनी-तंत्र की वैद्युत गतिविधियों में होनेवाले परिवर्तनों से उत्पन्न अवस्थाओं की जांच करके हृदय-रोगों के निदान की पद्धति है।



बहादुरसिंह बाजवा, लुधियाना : क्या 'मजबूती' (strength) ही 'सख्ती' (hardness) है? यदि नहीं, तो दोनों में क्या फर्क है?

मजबूती अलग चीज है, सख्ती अलग। मजबूती तनाव-सहन की क्षमता है, जबकि सख्ती भेदन के प्रतिरोध की क्षमता। मान लीजिए, किसी तार पर आप पांच किलो वजन लटकाते हैं और तार खिचने के बाद उस वजन को संभाले रहता है, तो यह उसकी मजबूती है। यदि पांच की जगह दस किलो वजन लटकाएं और तार उसे संभाल न पाकर टूट जाए, तो कहा जाएगा कि तार इतना मजबूत नहीं था। सख्त उस चीज को कहा जाता है, जिसे खुरचना, भेदना या छेदना कठिन हो। उदाहरण के लिए, हीरा कांच को काट सकता है, कांच हीरे को नहीं काट सकता। इसे हम यों कहते हैं कि हीरा कांच की तुलना में अधिक सख्त है। यह जरूरी नहीं कि जो चीज मजबूत हो, वह सख्त भी हो। उदाहरण के लिए, रेशमी धागे बड़े मजबूत होते हैं, क्योंकि उन्हें तोड़ने में काफी जोर लगाना पड़ता है, लेकिन उन्हें हम सख्त नहीं कह सकते। दूसरी तरफ कांच

का गिलास एक सख्त चीज है, लेकिन वह बड़ी आसानी से टूट जाता है, इसलिए हम उसे मजबूत नहीं कह सकते।

सुकांत वर्मा, गोरखपुर : पृथ्वी के वातावरण-प्रदूषण को रोकने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने उद्योगों को अंतरिक्ष-स्थित ग्रहों-उपग्रहों पर ले जाने की बात कही है। क्या यह परिकल्पना असंगत और हास्यास्पद नहीं?

जी नहीं! आरंभ में प्रत्येक वैज्ञानिक की परिकल्पना असंगत और हास्यास्पद लगती है, लेकिन अनिवार्य आवश्यकताओं से उत्पन्न परिकल्पनाएं सही, संगत और फलप्रद होती हैं। पृथ्वी पर औद्योगिक विकास के कारण उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वातावरण-प्रदूषण मानव-जाति के लिए गंभीर खतरा बनता जा रहा है। पहली समस्या तो उद्योगों से निकलनेवाले कचरे, गंदगी, धूल, धुएं, गैसों आदि को ठिकाने लगाने की है, क्योंकि इनका प्रभाव हमारे जीवन पर बहुत बुरा पड़ता है। जैसे—कार्बन डाइऑक्साइड का जमाव भी इतना बढ़ गया है यदि इसका कोई उपाय नहीं किया गया, तो एक या दो शताब्दियों में हमारा सांस लेना मुश्किल हो जाएगा। इसी तरह उद्योगों से होनेवाले ताप-उत्सर्जन से तापमान भी इतना बढ़ गया है कि सौ साल बाद यह लगभग सूर्य-ताप के समान हो जाएगा। अतः इस प्रदूषण को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। उद्योगों को अंतरिक्ष में ले जाने का विचार इसलिए भी असंगत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अब अंतरिक्ष-विज्ञान इतनी प्रगति कर चुका है कि यह कार्य असंभव नहीं रह गया है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उद्योगों को अंतरिक्ष में ले जाने की समस्या का समाधान क्या होगा, लेकिन यह तय है कि समाधान संभव है।

रामरूप श्रीवास्तव, भिलाईनगर : 'स्पेक्ट्रल एनालिसिस' क्या है?

हिंदी में इसे वर्णक्रमीय विश्लेषण कहते हैं। प्रकाश की किरणों में एक निश्चित वर्णक्रम होता है, (जैसे सूर्य की किरण में बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल) जिसका विश्लेषण करके हम यह मालूम कर सकते हैं कि अमुक प्रकार का प्रकाश जिस स्रोत से आ रहा है, उसके भौतिक तथा रासायनिक तत्त्व क्या हैं, उनकी गति, ऊर्जा, नाभिकीय सक्रियता आदि कितनी है और उस स्रोत का तापमान क्या है। इस विश्लेषण से अनेक प्रकार की जानकारी प्राप्त करने तथा विभिन्न कार्यों में उसका उपयोग करने की दृष्टि से आधुनिक विज्ञान में इसका बड़ा महत्त्व है।

मंसूर, जमशेदपुर : 'कोको' क्या चीज है?

'कोको' उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में उगनेवाला एक वृक्ष है, जिसकी फलियों से प्राप्त होनेवाला कोको, अनेक प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों में प्रयुक्त होता है। कोको चाय या काफी की तरह का

एक स्फूर्तिदायी पेय, पोषक खाद्य-पदार्थ और दवाइयों तथा सौंदर्य-प्रसाधनों के निर्माण में काम आनेवाली चीज है। प्राचीन यूनान में इसे 'थियोब्रोमा' (अर्थात देवताओं का आहार) कहा जाता था, शायद इसीलिए इसके वृक्षों को 'थियोब्रोमा कोको' कहते हैं। कोको में लगभग ४० प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, २७ प्रतिशत वसा तथा १८ प्रतिशत प्रोटीन होती है, जो ठोस पोषक आहार हैं। साथ ही इसमें थियोब्रोमाइन तथा कैफीन नामक तत्त्व होते हैं, जिनसे शरीर में ताजगी आती है।

एम. एल. शर्मा, जालौर: 'कास्मिक-डस्ट' क्या है? सुना है कि प्रतिवर्ष हजारों टन यह धूल पृथ्वी पर गिरती है। क्या इससे पृथ्वी के भार और उसकी गति में कोई परिवर्तन नहीं होता?

जिस तरह यात्रा करते समय हम पर और हमारे वाहनों पर धूल पड़ती है, उसी प्रकार पृथ्वी की अंतरिक्ष-यात्रा में उस पर भी एक प्रकार की 'धूल' गिरती है। हालांकि, इसे धूल कहना अटपटा लगता है, क्योंकि इसमें छोटे-छोटे महीन कणों से लेकर कई सौ किलोग्राम अथवा कई टनों भारवाले बड़े-बड़े उल्का-पिंड तक होते हैं। पृथ्वी पर एक दिन में लगभग २० हजार टन ऐसी 'धूल' गिरती है। कभी-कभी तो इससे भी ज्यादा। उदाहरण के लिए, १९३८ में यह 'धूल' इतनी ज्यादा गिरी थी कि पृथ्वी के कई भागों में दिन का प्रकाश काफी धुंधला हो गया था। लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है। पृथ्वी के भार और गति पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि यह 'धूल' ज्यादातर तो गैसों या वाष्पीय तत्वों के रूप में होती है, जो पुनः पृथ्वी के वायुमंडल से निकलकर अंतरिक्ष में चले जाते हैं। जो ठोस चीजें पृथ्वी पर आती हैं, उनसे भी कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि पृथ्वी भी अपने घूर्णन में बहुत-सी 'धूल' अंतरिक्ष में बिखेरकर हलकी होती रहती है।

अभिनेता जब पूरी रात बाहर बिताकर सवेरे घर लौटा तब पत्नी ने चिढ़ कर पूछा, आप सुबह छह बजे क्यों लौटे?"

"नाश्ते के लिए", बड़ी मासूमियत से अभिनेता ने जवाब दिया।

★

अभिनेत्री अपनी सहेली को बता रही थी, "कल रात जब बड़ी देर से वे घर लौटे, तब मैंने गुस्से में उनसे कह दिया, "मैं तुम्हारा मुंह नहीं देखना चाहती।"

"अच्छा? फिर उन्होंने क्या किया?" सहेली ने प्रश्न किया।

अभिनेत्री ने एक गहरी सांस लेते हुए कहा, "फिर उन्होंने बत्ती बुझा दी...।"

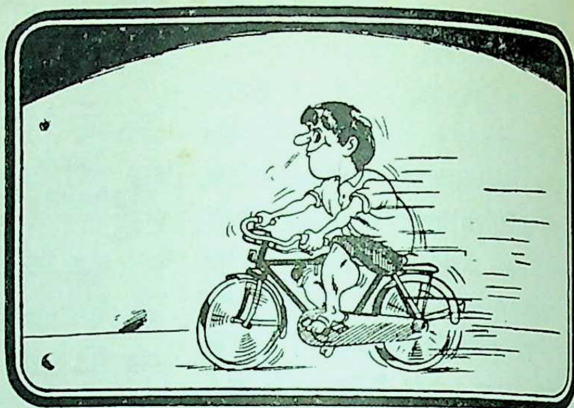
चलते-चलते एक प्रश्न और...

परमेश अरोड़ा, हिसार। सबसे बड़ा और कठिन काम क्या है?

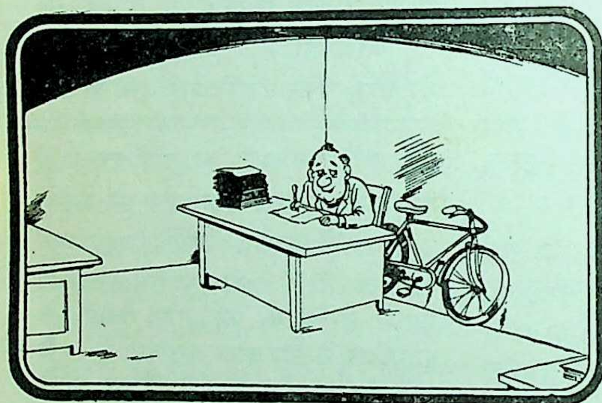
छोटे-छोटे आसान कामों को बताये बिना कुशलतापूर्वक करना।

—बिंदु भास्कर

मजे साइकिल के

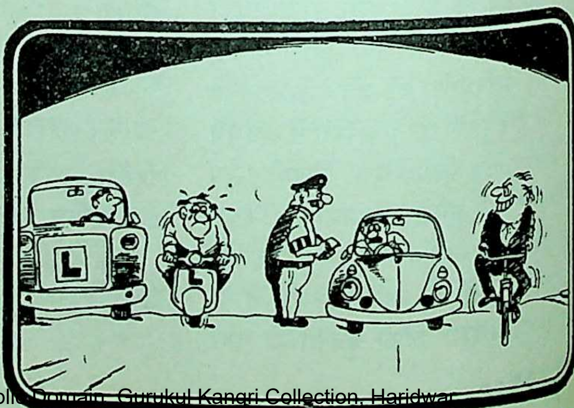


सफर का सफर कसरत की कसरत

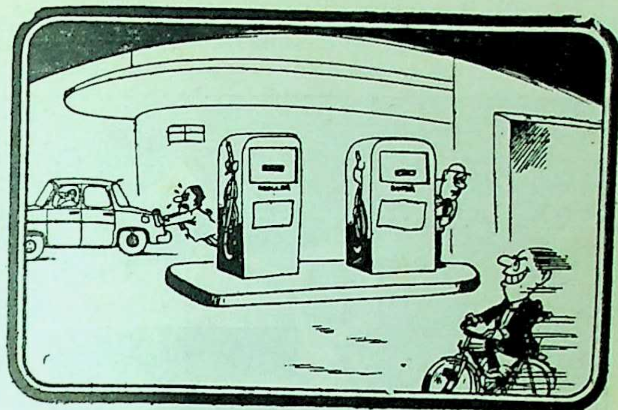


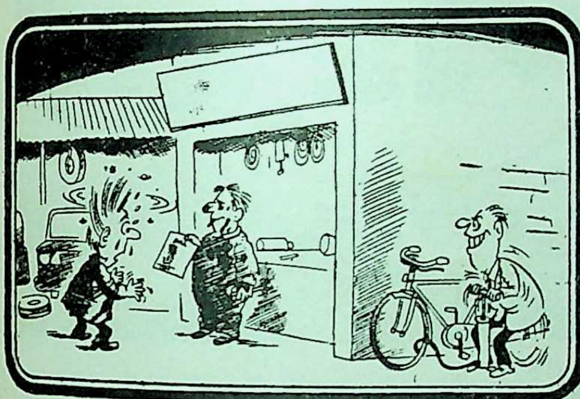
न चोरी का भय
न राहजनी
का खतरा

और न चालान
का डर



न पेट्रोल की
चखचख

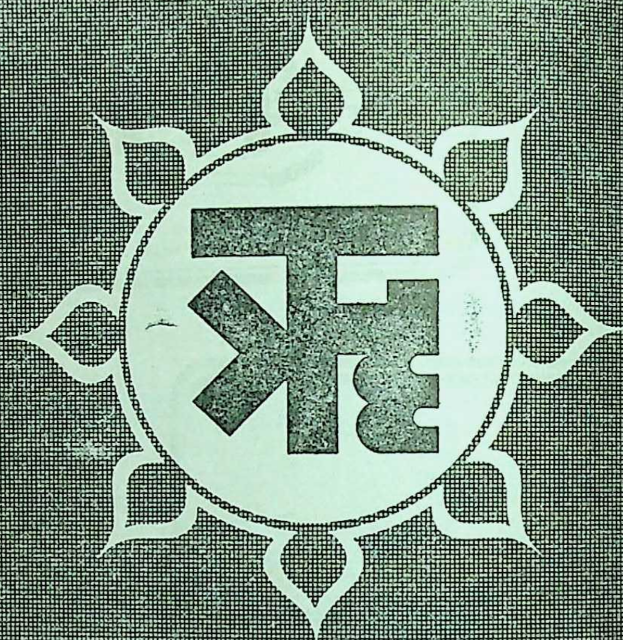




न मैकेनिक की
जी-हजूरी

कृपया बताइए, आप
बैंक में अकेले ही
चोरी करने आए
थे या . . .





'ऋ' का आधार है ऋत, अर्थात वह शाश्वत व्यवस्था जो अराजकता और उलझन को सतुलन और सुन्दरता में बदल देती है। इसी शाश्वत व्यवस्था ने वाक् को भी जन्म दिया। ज्ञान और सत्य को अपने में सहेज कर यह व्यवस्था मानवता की हर भोर को प्रकाश से भरती रहेगी।

अज्ञान को ज्ञान से ज्योतिमय करने का माध्यम है मुद्रित शब्द।

सत्य और सौंदर्य की खोज
पुस्तकों के मोहक संसार में करें



विश्व
पुस्तक मेला

29 फरवरी—9 मार्च, 1980

हाल ग्राफ नेशंस,
प्रगति मैदान, नई दिल्ली

समय : दोपहर 1.30 से रात 8.00 बजे
रविवार और छुट्टी के दिन :
प्रातः 10.30 से रात 8.00 बजे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा आयोजित

साहित्य के साथ जुड़ा दायित्व

● शीला संधु
(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

प्रकाशन एक व्यवसाय अवश्य है, लेकिन अपने दायित्वों को लेकर, अन्य व्यवसायों से एकदम भिन्न। इसके दायित्व साहित्य के साथ जुड़े हैं और साहित्य के दायित्त्व समाज के सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा मानवीय-विकास के साथ। इस नाते यह व्यवसाय, व्यवसाय होकर भी अपनी विकास-यात्रा में निर्मम और अमानवीय नहीं हो सकता। होगा, तो वह समाज के मानसिक स्वास्थ्य को चौपट करने का अपराधी होगा।

इन दायित्वों को स्वीकारते हुए, इन पर अमल के रास्ते में कई तरह की कठिनाइयां आती हैं। अच्छी कृतियों का चयन, लेखक-प्रकाशक के सौहार्द संबंध, लागत-खपत के बीच से आवश्यक लाभांश आदि। इनके बीच और भी कठिनाइयां हैं। पुस्तक को प्रेस से पाठक तक पहुंचाने का रास्ता बहुत जटिल है। इस जटिलता में प्रकाशन-साधनों की भारी महंगाई से और इजाफा हुआ है। कागज का अकाल, जो अकसर पैदा किया जाता है, सबसे ज्यादा अहम है। प्रकाशकों के गंभीर दायित्वों की पूर्ति में यह बाधा पहाड़-सी है। इसका बुरा असर खरीददार पर ही नहीं, लेखक और प्रकाशक पर भी पड़ता है; और अंततः समूचे राष्ट्र के मानसिक विकास पर भी।

दरअसल, प्रकाशन-जगत की समस्याएं व्यावसायिक ही नहीं, सामाजिक भी हैं; इसलिए सरकार को भी इनके प्रति ज्यादा सजग रहना चाहिए। ●

विचार-दीर्घा--४

'हमें कहां तक हंसना चाहिए'

अपने विचार तीन सौ शब्दों में लिखकर भेजिए।

पुरस्कार : पचास रुपये

अंतिम तिथि--५ मार्च, १९८०

संपादक
'कादम्बिनी'
विचार-दीर्घा-४
हिंदुस्तान टाइम्स लि. १८-२०.
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली

रंग बोलते हैं

रंग बोलते हैं
अजी हां, रंग बोलते हैं
रंग जाती गोरी, गोरी के अंग बोलते हैं
वह कुछ नहीं बोलती, उसके ढंग बोलते हैं

हल्ला, ऐसा हल्ला
दिल की मनहूसी हिल जाए
रूसी-रूसी फिरनेवाली
कलियों-सी खिल जाए
आओ खेलें—साली-जीजा संग बोलते हैं
खेल-खेल में रंग-व्यंग की जंग बोलते हैं

बम भोले जय-जय शिवशंकर
चकाचक्क बनती है
लाल-लाल छन्ने में भैया
हरी-हरी छनती है
वैसे नहीं बोलते, पीकर भंग बोलते हैं
गये दिनों के मीठे-मधुर प्रसंग बोलते हैं

रंग विहीन, हृदय सूने
और बड़े-बड़े बैरागी
हृदयहीन गमगीन
मीन या वीतरागिए त्यागी
घट में पड़ी कि साधू-भुक्खड़-नंग बोलते हैं
रंग जाती गोरी, गोरी के अंग बोलते हैं
अंग-अंग में तरल तरंग, अनंग बोलते हैं
रंग बोलते हैं
अजी हां, रंग बोलते हैं

—अशोक चक्रधर

८८ बी, सनलाइट कालोनी-२
आश्रम, नयी दिल्ली-११००१४

होली के दो रंग

होली की शर्त क्या है, अगर हो तुम्हें खुशी
जो रंग जब भी डाल दो, मुझ को कुबूल है
सिंदूर या अबीर हो, कीचड़ हो या गुलाल
जो भी तुम्हारे पास से आये, वो फूल है

रंग सब आ के मिले, जिसमें तेरी यादों के
जाने क्या रंग था वह, कोई न पहचान सका
कैसी होली थी, पड़े रंग मगर उड़ते गये
कैसा बैरंग था मौसम, न कोई जान सका

—सईद सोहरावर्दी

ऐवान-ए गालिब, नयी दिल्ली-११०००२

कुछ पठनीय उपन्यास

नयी कृतियां

अजन्मा वह

लेखक–शिवसागर मिश्र, प्रकाशक–प्रभात प्रकाशन, २०५–चावड़ी बाजार, दिल्ली-६, पृष्ठ-२८०, मूल्य––३० रुपये

सम-सामयिक लेखन की 'भोगे हुए यथार्थ' एवं 'आधुनिक जीवन की कुंठा और संत्रास' को मात्र यथावत प्रस्तुत करने की मौजूदा होड़ के बीच शिव-सागर मिश्र का नवीनतम उपन्यास **अजन्मा वह** पाठकों के लिए एक बिलकुल नये तरह का अनुभव प्रस्तुत करता है। **अजन्मा वह** का नायक सिद्धार्थ उस आदर्श की साक्षात प्रतिमूर्ति है, जो जिंदगी के किसी न किसी दौर में प्रत्येक सजग व्यक्ति को उद्वेलित और कुछ कर गुजरने की प्रेरणा देता है। यद्यपि अपने विचारों और कार्यों से सिद्धार्थ बिलकुल दूसरी दुनिया का व्यक्ति प्रतीत होता है, तथापि उसका मानवतावादी जीवन कहीं भी अस्वाभाविक नहीं लगता। एक तरह से सिद्धार्थ गांधी, विवेकानंद और चंद्रशेखर आजाद—जैसे क्रांतिकारी व्यक्तित्वों का सम्मिश्रण है।

एक सुसंपन्न परिवार का बेटा सिद्धार्थ समाज में व्याप्त प्रत्येक बुराई से सफलता-पूर्वक जूझता हुआ, अपने आदर्शों के लिए न केवल अपने परिवार के लोगों से संघर्ष करता है, वरन अपने जीवन-दर्शन और व्यवहार से ईर्ष्या, द्वेष और ऊंच-नीच की भावना से ग्रस्त साधारण लोगों को भी अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। सिद्धार्थ के माध्यम से लेखक ने एक ओर जहां आज समाज के लिए निहायत जरूरी एक आदर्शवादी चरित्र की सृष्टि की है, वहीं दूसरी ओर आज के राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त विभिन्न बुराइयों का भी पर्दाफाश किया है।

लेकिन लेखक के पहले उपन्यास **जनमेजय सुनो** की तरह वह पाठक को बांधे नहीं रख पाता। सिद्धार्थ के जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने के लिए लिखे गये चिंतनपूर्ण अंश उसे बोझिल बना देते हैं।

नयी दिशा

लेखक––धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक––राज-कमल प्रकाशन, ८–नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली, पृष्ठ–११२, मूल्य–९ पये

अजन्मा वह की तरह **नयी दिशा** भी एक आदर्शवादी नायक की जीवन-गाथा है। उपन्यास का नायक प्रशांत एक प्रतिभा-संपन्न आदर्शवादी युवक है, जो विद्याध्ययन के लिए लखनऊ पहुंचता है। प्रशांत की लखनऊ-यात्रा उसे आज के जीवन में सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार से साक्षात्कार कराती है। प्रशांत की कहानी

के माध्यम से लेखक ने हमारे विश्वविद्यालयों में चलनेवाली राजनीति, व्यक्तिगत सुखों की छोटी-छोटी महत्त्वाकांक्षाओं को लेकर जीनेवाले प्राध्यापकों के दांव-पेंचों और पश्चिमी-प्रभाव के 'पथभ्रष्ट' छात्रों की दिनचर्या का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है। लेखक स्वयं प्रोफेसर हैं, अतः उन्होंने छात्र-जगत की समस्याओं को निकट से देखा और समझा है।

होनी-अनहोनी

लेखक--बलवंतसिह, प्रकाशक---साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ--१८३, मूल्य--२० रुपये

रात, चोर और चांद तथा **दो अकालगढ़**—जैसे सशक्त उपन्यासों के लेखक बलवंतसिंह का यह उपन्यास प्रबुद्ध पाठक को बेहद निराश करता है। उपन्यास का समूचा तानाबाना, पात्रों का व्यवहार कहीं-कहीं बेहद बचकाना लगता है। हो सकता है, किशोर वय-बुद्धि के पाठकों को यह उपन्यास मनोरंजक लगे।

मानचित्र

लेखक—शंकर, अनुवादक—सुशील गुप्ता, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ–१८०, मूल्य–२२ रुपये

बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक शंकर ने अपने नये उपन्यास **मानचित्र** में मनुष्य के विचित्र स्वभाव, उसकी आशाओं-आकांक्षाओं और सुख-दुख के बीच गुजरती जिंदगी में आये विविध प्रसंगों का मर्म-स्पर्शी चित्रण किया है। प्राकृतिक, व्यावसायिक, वैदेशिक, वैवाहिक और नैतिक शीर्षकों में बंटे अध्यायों में लेखक ने जिन पात्रों की जिंदगी की कहानी कही है, वे किसी काल्पनिक जगत के नहीं, वरन इसी धरती, इसी देश के हैं। पीढ़ियों के जीवन-मूल्यों का संघर्ष, और इस संघर्ष में टूटते-बनते व्यक्तियों के अनुभव पाठक को कहीं-कहीं झकझोर जाते हैं।

नगर नन्दिनी

लेखक–शंकर, प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, नयी दिल्ली, पृष्ठ-१६२, मूल्य–१९ रुपये

अपने इस उपन्यास में शंकर ने कामकाजी महिलाओं की समस्या को एक व्यापक संदर्भ में देखने की कोशिश की है। शिक्षिका पारमिता मुकर्जी अपनी प्रतिभा के बल पर कड़ी प्रतिस्पर्धा में सफल हो एक ऐसी कंपनी के चेयरमैन की विशेष सहायिका नियुक्त होती है, जिसे भूतपूर्व चेयरमैन के भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए सरकार अपने प्रबंध में ले लेती है। पर जब परमिता अपने चेयरमैन के सहयोग से कंपनी को भ्रष्ट अधिकारियों के चंगुल से छुड़ाकर नये जीवन-दान का प्रयत्न कर रही होती है, तब राजनीतिक दबावों के कारण कंपनी, सरकार द्वारा पुनः उसी

भ्रष्ट चेयरमैन को सौंप दी जाती है।

इस मूल कथा के साथ-साथ लेखक ने उच्चाधिकारियों और उनकी प्रवृत्तियों की मानसिक बनावट, होस्टल में एकाकी जिंदगी जीनेवाली लड़कियों की निराशा-हताशा का भी सफल चित्रण किया है।

कथा-संग्रह

उपेक्षिता

लेखिका—प्रेम पाठक, प्रकाशक—सामयिक प्रकाशन, ३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ—१२८ मूल्य—१२ .५० पैसे

आधुनिक मध्यवित्त परिवार के अंतर्द्वंद्वों और मानसिक तनावों को आधार बनाकर अनेक नये-पुराने कथाकारों ने सशक्त रचनाएं लिखी हैं । **उपेक्षिता** में संकलित १८ कहानियों की भी भावभूमि लगभग यही है। ये कहानियां मुख्यतः मध्यवित्त वर्ग की नारी की विभिन्न मनोदशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति करती हैं।

—दुर्गाप्रसाद शुक्ल

विविध

फांसी के तख्ते से

लेखक—जुल्फिकार अली भुट्टो, अनुवादक—धर्मपाल पांडे, प्रकाशक—राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ—२६७, मूल्य—३५ रुपये

पाकिस्तान के दिवंगत नेता जुल्फिकार अली भुट्टो ने फांसी के तख्ते पर लटकाये जाने से पूर्व, देश की फौजी सरकार द्वारा प्रकाशित दो श्वेत-पत्रों में स्वयं पर लगाये गये आरोपों का विस्तृत उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने न केवल अपना पक्ष प्रस्तुत किया, वरन देश की राजनीति में फौजी अफसरों के सतत हस्तक्षेपों से उत्पन्न खतरों की ओर भी संकेत किया था। दिवंगत पाक नेता ने अपने इस उत्तर में विदेशी षड्यंत्रों से 'तीसरी दुनिया' को भी आगाह किया।

फांसी के तख्ते से एक रोमांचक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें भुट्टो ने अपनी नीतियों और कार्यों की सफाई देते हुए कहा है कि 'मैंने आज तक जनता के साथ विश्वासघात नहीं किया।' यह पुस्तक अनेक प्रश्नों को जन्म देती है, जिसमें से एक प्रश्न तो भूमिका में प्राण चोपड़ा ने भी उठाया है, और वह यह कि 'क्या कारण है कि गुट निरपेक्ष देशों के कई लोकतंत्रवादी नेताओं ने अपने जीवनकाल में ही संगठनों के निर्माण की संभावनाओं को हाथ से जाने दिया है और अपनी शक्ति की आग में उन्हें भस्म होने दिया है?' इस प्रश्न के संदर्भ में प्रस्तुत पुस्तक सभी स्वतंत्रत-चेता लोगों के लिए एक चेतावनी भी है।

जम्मू-कश्मीर मुक्ति अभियान

लेखक—ले. जनरल श्रीनिवासकुमार सिन्हा, प्रकाशक—विजन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, ३६-सी, कनाटप्लेस, नयी दिल्ली, पृष्ठ—१७४, मूल्य—३५ रुपये

यद्यपि भारतीय सेना द्वारा जम्मू-कश्मीर के पाकिस्तानी आक्रमण-कारियों की मुक्ति का प्रसंग तैंतीस वर्ष पुराना हो चुका है, तथापि उस संघर्ष की विस्तृत जानकारी आम जनता तक कम पहुंच पायी है। ले. जनरल सिन्हा की यह संस्मरणात्मक पुस्तक न केवल इस कमी को पूरा करती है, वरन सेना के विभिन्न वर्गों के लिए कुछ उपयोगी और लाभदायक निष्कर्ष भी प्रस्तुत करती है। आठ अध्यायों में बंटी इस पुस्तक में उस मुक्ति-युद्ध के अनेक प्रसंगों का रोमांच-कारी सजीव चित्रण भी है। हिंदी में इस तरह के साहित्य का भी प्रकाशन शुरू हो गया है, यह स्वागत-योग्य है।

अरविंद दर्शन की भूमिका

लेखक--एस. के. मैत्रा, प्रकाशक--विश्व-विद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, पृष्ठ--९६, मूल्य--१० रुपये

महर्षि अरविंद की मान्यता थी कि भूतत्त्व एवं परमात्म तत्त्व दोनों सत्य हैं, इसलिए दर्शन का कार्य भूतत्त्व की या आत्मा की उपेक्षा करने से नहीं होगा। उनकी यह भी मान्यता थी कि जगत का विवर्त्तन (विकास) अब तक केवल चार अवस्थाओं तक पहुंचा है, और वे हैं--जड़, जीवन, चैत्य-पुरुष अर्थात आत्मा और मन। विकास की पांचवी उच्चतर अवस्था है, 'अतिमानस।' प्रस्तुत पुस्तक में अरविंद के इसी जीवन-दर्शन को सरल-सुबोध भाषा शैली में समझाया गया है।

सूरदास : विभिन्न संदर्भों में

संपादक--जगन्नाथ सेठ, प्रकाशक--श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, १५६ महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता--७, पृष्ठ-३५४, मूल्य--२५ रुपये

सूर पंचशती के उपलक्ष्य में प्रकाशित इस ग्रंथ में महाकवि सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्त्व पर प्रकाश डालने वाले ५७ सारगर्भित लेख संकलित हैं। यह संकलन न केवल छात्रों वरन सूर-साहित्य में रुचि रखनेवाले सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

मीरा

लेखक--गुलजार, प्रकाशक--राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ--१६२, मूल्य--२५ रुपये

मीरा सुप्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक-गीतकार गुलजार की फिल्म **मीरा** के संबंध में कई बातों की जानकारी देती है। मोंताज, अनुसंधान और पटकथा शीर्षक खंडों में विभाजित इस पुस्तक से पता चलता है कि एक संवेदनशील रचना-कार इतिहास में सैकड़ों वर्ष पूर्व हुए अपने समानधर्मा एक व्यक्ति को किस आत्मी-यता और कोमलता के साथ प्रस्तुत करता है। भूषण वनमाली लिखित अनुसंधान में जहां फिल्म बनाने के सिलसिले में मीरा संबंधी किये गये अध्ययन का समा-वेश है, वहां गुलजार लिखित फिल्म की पटकथा एक नाटक-सा आनंद देती है।

--डॉ. जगदीश चंद्रिकेश

परीक्षण

• शाहे अवध नवाब वाजिद अली शाह



परीखाना वाजिदअली शाह की आत्मकथा है। इसमें उन्होंने बचपन से लेकर लखनऊ के तख्त पर बैठने तक की अपनी रंगीन जिंदगी की दास्तान लिखी है। यह पुस्तक जहां उनके अय्याश जीवन को उजागर करती है, वहीं सचाई के बयान में उनकी ईमानदारी भी साबित होती है। सार-संक्षेप में उनकी भाषा और बयान को यथावत प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है, जिससे पाठक उसका लुत्फ उठा सकें।

—प्रस्तोता : इकबाल बहादुर

मोहब्बत की अपनी यह कहानी जो **बचपन से** अब तक बीती है, मैं **बिल्कुल सही**-सही लिख रहा हूं। यह **इश्क का रोग** मुझे बचपन से ही मिला है। **इस समय मेरी** उम्र का अठ्ठाईसवां साल **शुरू हुआ है**। मैं दुनिया के इस हरे-भरे **जंगल की बहुत** कुछ सैर कर चुका हूं।

जब मेरी उम्र आठ साल की थी, **रहीमन नाम** की एक औरत मेरी सेवा **के लिए चुनी** गयी। रहीमन की उम्र कोई **चैंतालीस साल** की थी। वह हर समय मेरे **पास रहती थी**। एक दिन जब मैं सो रहा **था, तब उसने** मुझ पर अधिकार जमा **लिया और मुझे** छेड़ने लगी। मैं तो बच्चा **ही था, इसलिए** डरकर भागने लगा। **लेकिन रहीमन** ने मुझे रोक लिया। मुझे **यह कहकर** डराया कि वह मुझे उस्ताद **से सजा** दिलवाएगी। मैं परेशान था कि **किस मुसीबत में** फंस गया। उस दिन के **बाद वह बराबर** मेरे साथ छेड़-छाड़ किया **करतीथी। मैं** जब दस साल का हो गया, **तब भी उसकी** छेड़-छाड़ जारी रही। **उसके बाद** खुदा जाने वह कहां चली **गयी, मुझे कुछ** याद नहीं।

उसी जमाने में मेरी मां की सेवा में अमीरन नाम की एक औरत नौकर थी। उसकी उम्र पैंतीस-चालीस के लगभग थी। यह औरत चाल-चलन की अच्छी न थी। अकसर अपने जाल में मर्दों को फंसाकर रखती। कपड़े बहुत अच्छे और रंगीन पहना करती थी, ताकि देखनेवालों को वह खूबसूरत लगे। हमेशा वह चार रुपये माहवार तनख्वाह पाती थी। फिर भी बड़े चैन से जिंदगी गुजारती थी। दरअसल, वह बुरी कमाई से अपने आराम और बनाव सिंगार का खर्च पूरा करती थी।

एक दिन मेरे घर के सभी लोग बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के यहां मुन्नाजान के यहां खतना के जलसे में शरीक होने गये। उस औरत ने देखा कि घर खाली है। मैं गहरी नींद में सो रहा था। रात के वक्त मेरे पास आकर उसने मुझे हाथों में दबाया, मेरी तबीयत पहले कुछ उसकी तरफ झुकी थी, इसलिए उसकी इस बेझिझक हरकत पर मुझे गुस्सा नहीं आया, बल्कि मैंने अपने को गहरी नींद में मस्त जाहिर किया। इस तरह मन ही मन मैं उसके दिल में उम-

ड़ती उमंगों का मजा लेता रहा। ग्यारह वर्ष की उम्र तक वह मेरे ध्यान में जमी रही।

जब मेरी उम्र ग्यारह वर्ष की हुई, तब हर रूपवती स्त्री को मोहब्बत की निगाह से देखने लगा। मैं कोशिश करता कि वह मेरे मतलब को समझे। इसी जमाने में एक औरत जो बन्नो साहब कहलाती थी, मेरे पिता के यहां मुगलानी पद पर आयी। यह औरत व्याहता थी। मैं उसकी तरफ अकसर मोहब्बत की नजर से देखता, लेकिन वह आचरण की पवित्र थी। उसकी चार बहनों में एक का नाम हाजी खानम था। वह एक दिन बन्नो साहब के साथ, मां के महल में आयी हुई थी।

सावन का महीना था। मैं अपनी दादी मरियम मकानी के पास बैठा था। एक औरत जिसकी उम्र बाईस साल थी, सूरत से शोख और तर्रार मालूम होती थी, वह मेरी दादी के पास बड़े अदब से आकर बैठ गयी। मैंने पहली ही नजर में उसकी मोहब्बत का तीर दिल पर खाया। मेरी हालत अजीब हो गयी। यहां तक कि बन्नो साहब की याद भी दिल से दूर हो गयी। हकीकत ये कि मैं उस गुलबहार का दिल से आशिक बन गया। घर के सब लोग मेरे स्वभाव को जानने लगे थे। इसलिए मुझ पर कड़ी नजर रखते थे। बस इसी वजह से उस औरत पर मेरा कोई वश न चला। वह और कोई नहीं, हाजी खानम ही थी।

हाजी खानम चली गयी, पर मैं बेचैन हो गया। अपने दिल का यह दर्द, मैं किसी से कह भी नहीं सकता था। आखिर कुछ दिनों में हाजी खानम मेरी हालत को समझ गयी। उसके दिल में मेरी मोहब्बत ने जगह बना ली। हाजी खानम की एक शिक्षिका थी—अमानी खानम। वह बड़ी कुरूप थी। उम्र चालीस से ज्यादा ही थी। उसने मेरी बहन को भी पढ़ाया था। इसलिए हाजी खानम के मामले में मैंने उसे बीच में डाला। उससे ही मुझे हाजी खानम के बारे में सारी बातें मालूम हुई। लेकिन अमानी खानम भी बड़े हौसले रखती थी। वह इतनी बदसूरत थी कि गजब खुदा का। इस पर तुर्रा यह कि वह अपने को खूबसूरती में बेजोड़ समझती थी। वह मेरी दूती होने के कारण, मुझ पर ही अपने डोरे डालने लगी। लेकिन मैं उसकी चपेट में नहीं आया।

हाजी खानम के साथ जब मैं बैठता, तब आपस में बड़ी मजेदार बातें होतीं। प्यार-मोहब्बत से हम दोनों दिल बहलाया करते थे, लेकिन जिस तरह हाजी खानम की बातों में मिठास होती, उसी तरह वह कभी-कभी कड़वी बातें भी करने लगती, जिससे मेरे दिल को ठेस पहुंचती, खासकर जब वह अपने पति की चर्चा चलाती।

बन्नो साहब के पास एक नौकरानी इलाही खानम थी। इत्तफाक की बात है, उस जमाने में वह भी मुझ पर मरती थी। मतलब यह कि तेरह-चौदह साल की उम्र





स्पीडली इंगलिश स्पीकिंग कोर्स
नवीन संस्करण डिक्शनरी सहित



नये प्रकाशन!
अपना कद कैसे बढ़ायें?
जूडो कराटे और बाक्सिंग



हेयर स्टाइल
LATEST HAIR STYLES



वृहद हस्तरेखा विज्ञान

तक हाजी खानम से मैं मोहब्बत करता रहा। लेकिन वह ब्याहता औरत थी। इसलिए वह हमारे यहां ज्यादा दिन नहीं ठहर सकी।

जब मैं पंद्रह वर्ष का हुआ, तब मेरे माता-पिता को मेरी शादी की सूझी। कई जगह बात चली, पर रिश्ता न जमा। आखिर नवाबअली खां की लड़की से मेरी शादी तय हो गयी। पंद्रह शआबान अल मुअज्जम १२५३ हिजरी को मांझे की रस्म पूरी हुई। लेकिन ब्याह में दो महीने की देर हो गयी। आखिर ब्याह हुआ। मुझ में और ब्याहता बीवी में शुरू के पांच महीने तक वही मोहब्बत रही, जो पति-पत्नी में होती है।

चूंकि, अभी मेरी उठती जवानी का समय था, मुझमें जोश था और तबीयत उमंगों से भरी थी। इसलिए मुझे यह ख्वाहिश हुई कि यह वक्त क्यों न मैं रूपवती स्त्रियों के प्यार-मोहब्बत में बिताऊं? लेकिन कुछ ऐसी रुकावटें थीं कि मैं आजादी से अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर सकता था। तब मैंने तरकीब सोच निकाली कि खूबसूरत औरतों को अपनी सेविकाओं के रूप में रखूं और छिपकर उनसे प्यार किया करूं। इसी विचार से मैंने मोती खानम नाम की एक औरत को नौकरी पर रखा। यह कोई ढकी-छिपी बात न थी कि मैंने उसे क्यों रखा है। लेकिन मेरी बीवी को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने बड़ा उधम मचाया। इसका नतीजा यह हुआ कि मोती खानम नौकरी से हटा दी गयी। मैं अपने पिता की नाराजगी का कारण बना, और मुझे नजरबंद कर दिया गया।

यह घटना उस समय की है जब मैं अठारह साल का था। मुझे शायरी का शौक हुआ। मैंने मोती खानम की मोहब्बत में गजलों के दो संग्रह तैयार किये और तीन मसनवियां लिखीं। लेकिन अपने दिल की बेचैनी किसी पर जाहिर न होने दी। उधर मेरी बीवी भी परेशान थी। मैंने फिर कभी उनकी तरफ न देखा। इसलिए उन्होंने हथियार डाल दिये कि मैं जैसा चाहूं करूं।

उसी जमाने में एक औरत साहब खानम पर मेरी नजर पड़ी, जो हजरत वालिद साहब अमजदअली के यहां सेविका थी। उसकी उम्र कोई बत्तीस वर्ष की थी। साहब खानम से मुझे मोहब्बत हो गयी। हालत यहां तक पहुंची कि वह मेरी सूरत देखे बिना रात को सो न सकती थी। उससे मोहब्बत का सिलसिला एक साल तक चलता रहा। इसी बीच मेरी बीवी के यहां उमदा बेगम नौकरी पर आयी। उम्र कोई सत्ताईस साल थी। जब मैंने उमदा बेगम को देखा, तब वह मुझे पसंद आयी। धीरे-धीरे उसकी मोहब्बत ने मेरे दिल में जगह बना ली। साहब खानम और उमदा बेगम को जब एक दूसरे के बारे में मालूम हुआ, तब एक दूसरे से जलने लगीं। आखिर उनकी

दुश्मनी इतनी बढ़ी कि मुझे साहब खानम को छोड़ना पड़ा।

उस वक्त हजरत जन्नतमकां जनाब वालिद साहब (अमजदअली शाह) के यहां तीन बहनें नौकर थीं, बड़ी का नाम हैदरी बेगम, मंझली का नाम मोहम्मदी बेगम और छोटी का नाम नन्हीं बेगम था। नन्हीं बेगम की शक्ल एक वेश्या से मिलती थी, जो पारावाली सरफराजो के नाम से मशहूर थी। सरफराजो पारा की ठेकेदार थी और नाचती गाती भी थी। मैंने उसे फिरदौस मंजिल में, हजरत मोहम्मदअली शाह के शासनकाल में अपने छोटे भाई मिर्जा सिकदर हश्मत की शादी के जलसे में देखा था। उस वक्त उसकी उम्र अठारह के करीब रही होगी और इतनी ही मेरी थी। चूंकि उस जमाने में वह संगीतकला में बहुत मशहूर थी और मैं भी बचपन से नाच-गाने का शौकीन था, इसलिए उसे पसंद करने लगा। लेकिन न उसके दिल में चाह हुई और न मैं ही अपने बुजुर्गों के डर से उसके नाम कोई पैगाम भेज सका।

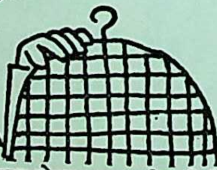
लेकिन जब मुझे नन्हीं बेगम सरफराजो की हमशक्ल मालूम हुई, तब मैंने उसे पैगाम भेजा। उसने मेरे पैगाम की कोई परवाह न की, बल्कि बच्चों का खेल समझा। साहब खानम से संबंध तोड़ने के बाद उमदा बेगम से मेरे संबंध ज्यादा गहरे हो गये थे, पर मैं चुपके-चुपके नन्हीं बेगम के तीर से भी घायल था। यह बात ज्यादा दिन छिप न सकी और उमदा बेगम ईर्ष्या से जलने लगीं, पर वह कुछ कर न सकीं।

इधर जब जनाब वालिद साहब अमजदअली शाह तख्त पर बैठे, तब मुझे (युवराज का पद) का दर्जा मिल गया। मेरी इच्छा हुई कि मैं उमदा बेगम को अपनी बीवी बना लूं। इस पर नन्हीं बेगम भी मेरे करीब आने की कोशिश करने लगी। वह लालची थी और चाहती थी कि उसे भी बीवी बना लूं। लेकिन उसका जादू न चल सका। हां, उमदा बेगम को बीवी बनाने की बात पर मेरी पहली बीवी को जरूर चिढ़ हुई। पर कुछ कर न सकी। आखिर उमदा बेगम मेरी बीवी बन गयी और उन्हें 'खुर्दमहल' का खिताब मिला। डेढ़ माह तक बेगम खुर्दमहल के भाग्य का सितारा बुलंद रहा। इधर नन्हीं बेगम का जादू भी चल रहा था, आखिर मैं उससे बच न सका। एक दिन छत्रवाले मकान (जो बाद में छत्रमंजिल कहलाया) के बुर्ज पर चढ़कर वह गोमती में कूदना चाहती थी, तभी मैंने लपककर उसका हाथ थाम लिया। आखिर उसे भी बीवी बनाना पड़ा और उसे 'निशातमहल' का खिताब दिया। लेकिन मुश्किल से पंद्रह दिन तक ही उनकी किस्मत का सितारा चमक सका।

बरसात का मौसम था। एक रोज आसमान पर बादल छाये थे। हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी। गाने-बजाने







की महफिल जमी हुई थी। मेरे पास जितनी औरतें थीं, वे सब घेरकर बैठी थीं। उसी समय अचानक मेरे भाई जनाब मिर्जा सिकंदर हश्मत आ गये। उन्होंने कहा, "मैं मुजरे के लिए एक औरत को लाया हूं। वह हद दर्जे की हसीन है और गाने में बेजोड़ है।"

मैंने बेचैनी से कहा, "अगर तुम उसको मेरे सामने लाते, तो बहुत अच्छा होता।"

वह बोले, "मेरे सामने वह बहुत देर तक नाचती गाती रही, इसलिए वह थककर चूर हो गयी है। आप इत्मीनान रखिए, किसी और मौके पर उसे हाजिर करूंगा।"

दूसरे दिन जब महफिल जमी, तब मिर्जा-सिकंदर हश्मत बहादुर भी आ गये। उनके साथ वजीरन नाम की वह नाचने-गानेवाली भी आयी थी। उसकी उम्र अठारह बरस के करीब थी। वह बीजान नामक तवायफ की बेटी थी। मैं मैं उस पर आशिक हो गया।

मेरे महल में नजमुलनिसा बेगम दारोगा के पद पर काम कर रही थीं। उनकी उम्र चालीस-पैंतालीस साल रही होगी। बहुत समझदार और ईमानदार थीं। वह मेरे मिजाज से इस कदर परिचित हो गयी थीं कि मैं मुंह से पूरी बात न निकाल पाता और वह उसे पूरा कर देतीं। इन्हीं दिनों दो गानेवाली औरतें भी मेरे महल में नौकरी करने आयी थीं।



अवध-नवाब वाजिद अली शाह

एक का नाम था अम्मन और दूसरी का इमामिन। ये दोनों मेरी बहनें बन गयीं। मैं वजीरन पर आशिक तो था ही, धीरे-धीरे यह बात इन तीनों को मालूम हो गयी। उन्होंने वजीरन से उसके दिल का राज जानने की कोशिश की। वह समझ तो गयीं कि वजीरन भी मुझे चाहती है, पर उसकी मां के डर से बातचीत न हो सकी। एक दिन फिर से नजमुलनिसा बेगम वजीरन के यहां गयीं। अचानक उसकी संगदिल मां शोर करने लगी, "दरोगा सरकारी का रंडियों के मकान पर क्या काम है? हम लोगों को तुमसे कोई मतलब नहीं है। हमारे यहां हरगिज न आया करो, वरना हम बादशाह हुजूर के यहां नालिश करेंगे।" नजमुलनिसा घबरायी हुई वहां से भाग खड़ी हुईं।

वजीरन को मेरी हालत का पता लग गया था और वह कभी-कभी मिलने भी लगी थी। लेकिन मैं जानता था कि उससे मेरे भाई सिकंदर हश्मत भी इश्क करते हैं। इसलिए एक दिन मैंने पूछा कि तुम हम दोनों में किसको पसंद करती हो, वह बोली, "मुझे तुम्हारे भाई से कोई मतलब नहीं है।" और आखिर एक दिन उसने यही बात मेरे भाई के सामने भरी महफिल में कह दी। फिर भी मैंने उससे दूरी रखी, क्योंकि उसके दिल में मोहब्बत की आग को ज्यादा भड़काना चाहता था।

इस अरसे में एक छोटा-सा मकान मैंने परियों के नाचने-गाने के लिए लिया। उसे खूब सजाया गया। वह 'परीखाना' के नाम से मशहूर हो गया। यह मकान परियों और गानेवालियों के कब्जे में था। मकान के आंगन में सफेद संगमरमर लगवाया गया। उस के फर्श पर चीनी के खूबसूरत गुलदस्ते सजाये गये। थोड़े-थोड़े फासले से लकड़ी की चौकियां और कीमती पलंग रखे गये। बाहर के दरवाजे पर तुर्की औरतों का पहरा कायम किया गया। कोई गैर आदमी अंदर नहीं आ सकता था। हां, दारोगा, नजमुलनिसा, अम्मन और इमामिन, परीखाने की परियां और गाने-बजानेवाले बे-रोकटोक आ-जा सकते थे। परीखाने में गुलाम रजा, घम्मन खां, झज्जू खां और साबित अली रोजाना दो-तीन पहर तक मौजूद रहते थे। ये लोग परियों को गाना-बजाना सिखाया करते थे। मैं भी वहां मौजूद रहता था।

एक रोज नजमुलनिसा, अम्मन और इमामिन ने कहा कि एक लड़की बेहद सुंदर और नाचने-गाने में बेजोड़ है। वह आपके परीखाने में आना चाहती है। उसका नाम मुन्ना है। वह वजीरन की भांजी है। अपनी खाला से छिपे तौर पर आना चाहती है। वजीरन को जब इसकी खबर लगी, तब वह चिढ़ गयी। मुझे मुन्ना की तरफ से डराने-धमकाने लगी। पर मुझ पर उसका कोई असर न हुआ। नतीजा यह हुआ कि नजमुलनिसा, अम्मन और इमामिन की कोशिश से एक दिन मुन्ना मेरे परीखाने में आ गयी। उसका नाम रखा गया—इम्तियाज परी। एक दिन उसने अपने घर जाने का इरादा जाहिर किया, लेकिन मैंने मना कर दिया। उसने कहा कि मैं ज्यादा से ज्यादा एक घंटे के लिए जाना चाहती हूं, आपको ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ेगा। मैंने उसकी बात मान ली। जब वह दो रोज तक वापस न आयी, तब मैंने नजमुलनिसा को उसके घर भेजा, उसने आने से साफ इंकार कर दिया, जब मैंने ये सुना, तब मुझे अफसोस हुआ।

इसके बाद परीखाने में सरफराज परी, हैदरी बेगम, सरदार परी, शहंशाह परी महकपरी, दिलदार परी, हुजूर परी और माशूक परी आयीं। अब एक अजीब दास्तान सुनिए—

मेरी एक बेगम का लड़का पैदा हुआ। उस सिलसिले में महफिल जमी। नाचने-गाने के लिए तवायफें बुलायी गयीं। इनमें ही एक तवायफ अच्छी नाम की थी। इसकी खूबसूरती का मैं क्या बयान करूं। बस, खुदा की कुदरत का एक करिश्मा था, जो निगाहों को दावते-नज्जारा दे रहा था। इस किस्से को तीन-चार महीने बीत गये। इस बीच में उससे कई बार मुलाकातें हुईं। मेरे मां-बाप ने मुझ पर कड़ी पाबंदियां लगा रखी थीं, इसलिए उसे अपने घर बिठाने का ख्याल भी न आया। लेकिन वह मेरी मोहब्बत का तीर खा चुकी थी। वह अपनी मां की वजह से मजबूर थी। मां के सामने अपनी मोहब्बत का इजहार न होने देती थी। दिल ही दिल में मेरी मोहब्बत को परवान चढ़ाती रही। धीरे-धीरे वह अपनी मां से लड़-झगड़ पड़ती। कभी रो पड़ती। कभी मीर अकबरअली के जरिए अपनी मोहब्बत का पैगाम भेजा करती। मैंने एक दिन उसे मुजरे के लिए बुलवाया, फिर जल्दी ही वापस भेज दिया। आखिर, मीर अकबरअली की कोशिश से एक दिन वह परीखाने में आ गयी। इसके लिए उसने छह हजार रुपये मुझसे लेकर अपनी मां को दिये।

इस बीच यास्मिन परी नाच-गाने की तालीम पाकर होशियार हो गयी थी। उसकी सुंदरता भी निखर आयी थी। यद्यपि मैं उसे बहुत पहले से पसंद करता था, लेकिन तब उसके मिजाज में बचपना था। अब वह सचमुच परी बन गयी थी।

इन्हीं दिनों दारोगा नजमुलनिसा खुदा को प्यारी हो गयीं। इसके बाद जो परियां आयीं उनमें उमराव उम्दा खानम का जिक्र करना चाहता हूं। एक रोज महफिल जमी थी। मैं भी खूब सजकर बैठा था। एक औरत आयी; उसका नाम उमराव उम्दा खानम था। वह बहुत खूबसूरत थी। जिस वक्त मैंने उसे और उसने मुझे देखा, उसी वक्त दोनों तीरे-इश्क से घायल हो गये। दूसरे दिन वह माशूका-आशिक मिजाज अपनी मोहब्बत में डूबकर मेरे पास आयी और बोली, "आपकी मोहब्बत ने मेरी हालत ही बदलकर रख दी है। अब आप कोई ऐसी तरकीब सोचिए कि मैं जिंदगीभर आपकी सेवा में रहूं।" मैंने जब उसकी ये हैरतअंगेज बात सुनी, तब उसे कुबूल करना ही पड़ा। चूंकि मुझे अपने पिता अमजदअली शाह का डर था, इसलिए अपने करीब के लोगों के सामने यह मामला रखा। सबकी राय हुई कि उसको परीखाना में रख लिया जाय।

उमराव परीखाना में जाना चाहती है; यह बात जब उसकी मां को मालूम हुई, तब वह बहुत परेशान हुई। उसने इब्राहीम नामक एक शरीफ इनसान से उमराव की शादी कर दी। निकाह के बाद जब उमराव को लेकर इब्राहीम घर आ रहे थे, तब रास्ते में ही उमराव ने

उनसे कह दिया कि मैं तो वलींअहद की हो चुकी हूं। मेरा दिल उन पर आ गया है। मैं तुम्हारे पास नहीं रहूंगी। इब्राहीम ने उसी दम डोला वापस लौटाया और उसे तलाक दिया। उमराव तलाक लेकर परीखाने में आ गयी। लेकिन उमराव की मां को चैन कहां था। वह मेरे पिता नवाब अमजद अलीशाह के पास फरियादी हुई। उसने शिकायत की कि मैंने उसकी बेटी को जबरदस्ती परीखाने में रख लिया है। अमजद अलीशाह इस पर बहुत नाराज हुए। उन्होंने पहले इब्राहीम को बुलाकर उसका बयान लिया। उसने सारी बातें साफ-साफ कह दीं। तब उमराव को बुलाया गया। उमराव ने कहा कि मेरी मां तवायफ है। मैं तवायफ नहीं बनना चाहती। इसलिए मैं वलीअहद के परीखाने में आ गयी हूं, क्योंकि मैं तो किसी एक की होकर रहना चाहती हूं। इस बयान पर मामला खत्म हो गया और उमराव परीखाने में रहने लगी।

एक औरत थी--गुन्ना वह शादी-शुदा थी, कहते हैं कि एक रात उसने मुझे ख्वाब में देख लिया और जागने पर उस पर मेरी मोहब्बत का पागलपन सवार हो गया। वह अपने पति को तलाक देकर परीखाना में आ गयी। मैंने उसे 'सरफराज

परी' का खिताब दिया। बाद में वह मुझे धोखा देकर गुलाम रजा तबलची के साथ कानपुर भाग गयी।

जब मैं तख्त पर बैठा, मेरी उम्र छब्बीस साल थी, अब तक मेरी बेगमों की वफाई और बेवफाई का भी मुझे पता चल चुका था। परीखाना की परियों को मैंने दौलत और खिताब देकर अपने जनानखाने में बुला लिया।

परीखाने की इन तमाम परियों का यह हाल मैंने खुद लिखा है। इस तरह यह इश्कनामा किताब खत्म हुई। ●

होली वाजिद अली शाह की

● डॉ. हरिकृष्ण देवसरे

लखनऊ के नवाब रंगीले वाजिदअली शाह को रंगभरा होली का त्योहार बहुत पसंद था। वह हिंदुओं के साथ इस त्योहार में शरीक होते थे।

नवाब को शराब से सख्त नफरत थी। होली के दिनों में लोग नशे में धुत होकर ऊधम-फसाद न करें, इसलिए उन्होंने एक बार शराब की दुकानें बंद करा दीं। लोगों को इस हुक्म से बड़ी परेशानी हुई। वे मुंशी शंकरदयाल 'फरहत' के पास पहुंचे। वह अच्छे शायर और बादशाह के रिश्तेदार थे। फरहत साहब ने सबकी बातें सुनकर एक कागज पर दो शेर लिखे। फिर उन्होंने लोगों से कहा, "आप लोग इस पर दस्तखत कर दीजिए।" सब ने दस्तखत कर दिये।

फरहत साहब उस कागज को लेकर नवाब की खिदमत में हाजिर हुए। कुछ अन्य कागजों पर दस्तखत कराने के बाद कागज उनके सामने रख दिया। वाजिदअली शाह ने उस पर लिखे शेर पढ़े—

'कुर्क मय अय्याम होली में कहो क्या कीजिए
जी में आता है कि इस सूरत में कंठी लीजिए
गर तमाशा कायस्थों का देखना मंजर है
शाह दो दिन के लिए मय की इजाजत दीजिए

नवाब वाजिदअली शाह भी अच्छे शायर थे। उन्होंने उसी कागज पर दो शेर लिखकर इजाजत दे दी—

गर इजाजत चाहते हैं, खौफ इतना कीजिए
साथ ही भर-भर किसी दबमस्त को मत दीजिए
नशे में आकर किसी के घर कहीं वह घुस पड़े
नालशी से मत खराबी सर पे अपने लीजिए

वाजिदअली शाह को होली का त्योहार इतना पसंद था कि उन्होंने इसके जैसा ही नवरोज का त्योहार मनाना शुरू कर दिया था। दरअसल, होली का त्योहार वह अपनी बेगमों के साथ अपने महल में नहीं मना सकते थे। इसलिए उन्होंने नवरोज का जश्न मनाने के लिए महल में सबको छूट दे रखी थी।

नवरोज के दिन शाही महल जगमगा उठता था। हर कमरा खास ढंग से सजाया जाता था। फर्श पर मखमली गद्दे, ईरानी कालीन बिछाये जाते, जरदोजी के काम-वाले मसनद लगाये जाते, गुलदानों में खुशबूदार फूलों के गुलदस्ते सजाये जाते। दरवाजे, खिड़कियों पर रेशमी परदे डाले जाते। कमरे की छत पर एक से एक खूबसूरत झाड़ फानूस लटकाये जाते। कमरों के बाहर बड़ी-बड़ी गंगामों में रंग भरकर रखा जाता था। यह रंग केसर और पारिजात के फूलों से बनाया जाता था।

बादशाह सलामत के महल में सुबह से ही चहल-पहल शुरू हो जाती। एक ओर नाच-गाने का आलम रहता। दूसरी ओर रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे शाही खानदान के लोग, दरबारी और मुसाहब वाजिदअली शाह को नवरोज की मुबारिकबाद देने और नजराने पेश करने आते। घुंघरुओं की झनकार और तबले की गमक से कमरा गूंजता रहता और इत्रों की सुंगध से महकता रहता। नवरोज के उत्सव के नियमानुसार, नवाब वाजिद-

अली शाह को, जो कोई नजर पेश करने आता, उस पर वह पिचकारी से रंग डाल देते थे।

इस कार्यक्रम के समाप्त होने पर नवाब शाही हरम की तरफ तशरीफ ले जाते, जहां बेगमें उनका बेसब्री से इंतजार किया करती थीं। नवरोज के दिन शाही हरम की सजावट भी लाजवाब हुआ करती थी। सभी बेगमें उस दिन बादशाह हुजूर को लुभाने की कोशिश में लग जातीं। इस उत्सव में वे आपस के सारे भेद-भाव भूल जातीं। नाच-गाने होते, स्वांग होते और बादशाह हुजूर को तरह-तरह की ठिठोलियों से हंसाया जाता।

इसके बाद नवाब अपनी मां मलिका किश्वर के महल में जाते। वे यों तो बड़ी सादी जिंदगी जीती थीं, किंतु नवरोज के जश्न में बड़े उल्लास से सबसे मिलती थी। जब उन्हें नवाब नवरोज की मुबारिकबाद देते, मलिका किश्वर उन्हें अपनी छाती से लगा लेतीं और दुआएं देतीं। इसके बाद हाथ में पिचकारी लेकर उन पर रंग डालतीं।

नवरोज के इस जश्न में वाजिदअली शाह ने वही भावना और रंग भरे थे, जो होली के त्योहार में हैं।

—एफ/बी-३०, टैगोर गार्डन,
नयी दिल्ली-११००२७

बुद्धि-विलास के उत्तर

१. क. ०, ख. तथा ग. ९८७६५४, २. ५मील, ३. क. १६०० किमी., ख. २०० मीटर, ४. क. लगभग ४०० वर्ष, ख. १८ दिसं. १९६१, ५. क. टिरोस-१ (अमरीकी), ख. अप्रैल, १९६०, ६. १११ किमी., ७. बच्चा-२७०, वयस्क-२०६ (बड़े होने पर कुछ हड्डियां आपस में जुड़ जाती हैं), ८. लेह के निकट, ११ हजार फुट की ऊंचाई पर, सिंधु नदी पर स्ताकना में, ९. नेशनल बिल्डिंग आर्गनाइजेशन (एन. बी. ओ.), सेंट्रल बिल्डिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट (सी. बी. आर. आई.), हार्उसिंग ऐंड अर्बन डेवलेपमेंट कॉरपोरेशन (हडको), १०. पांडिचेरी स्थित अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, जहां दुनिया के किसी भी भाग से लोग आकर सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए रह सकते हैं (इस फ्रेंच शब्द का अर्थ है—प्रातः नगर), ११. 'ग्लेलियो' नामक उपग्रह जरमन-अमरीकी योजना के सहयोग से १९८२ में छोड़ा जाएगा।

फार्म-IV

(नियम ८ देखिये)

कादम्बिनी

१. प्रकाशन स्थान	:	नई दिल्ली
२. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३. मुद्रक का नाम	:	गौरीशंकर राजहंस
क्या भारत का नागरिक हैं ?	:	हां
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	× × ×
पता	:	दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि.,
	:	नई दिल्ली-११०००१ ।
४. प्रकाशक का नाम	:	गौरीशंकर राजहंस
क्या भारत का नागरिक हैं ?	:	हां
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	× × ×
पता	:	दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि.,
	:	नई दिल्ली-११०००१ ।
५. सम्पादक का नाम	:	राजेन्द्र अवस्थी
क्या भारत का नागरिक हैं ?	:	हां
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	× × ×
पता	:	दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि.,
	:	नई दिल्ली-११०००१ ।
६. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों ।	:	दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि., नई दिल्ली-११०००१ ।

मैं, गौरीशंकर राजहंस, एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरे अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं ।

ह./-गौरीशंकर राजहंस
प्रकाशक ।

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गौरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित



छाया : विमल सक्सेना

द्वार खिली हरियाली

समस्या पूर्ति- ११

ऊपर प्रकाशित चित्र को ध्यान से देखिए और उसके नीचे बड़े अक्षरों में लिखी पंक्ति पढ़िए। इन्हें लेकर आपको एक कविता लिखनी है—गीत, गजल या छंद-हीन पंक्तियां भी। आपकी कविता छह पंक्तियों से किसी भी स्थिति में अधिक नहीं होनी चाहिए। रचना आपकी मौलिक हो। जो श्रेष्ठ रचना होगी, उसे पुरस्कृत किया जाएगा। अपनी रचना पोस्टकार्ड पर ही भेजिए।

प्रथम पुरस्कार—२५ रुपये
द्वितीय पुरस्कार—१५ रुपये
पहुंचने की अंतिम तिथि—५ मार्च १९८०


कादम्बिनी
मई, १९९०

THROW AWAY THE OLD AGE AND BRING BACK THE YOUNG LOOKS...



ALSO TRY SIMCO GEL DRIP PROOF HAIR DYE

WITH
SIMCO
HAIR DYE

PROUD PRODUCT OF
SIMCO HAIR FIXER

Simco is sure, simple and natural way to deal with grey hair in black or brown colours.

Simco gives your hair to enjoy life naturally.

Simco is harmless permanent & washable.

Available at leading stores & chemists.

निर्बल की रक्षा करें और सहारा दें

हरिजनों और दूसरे कमजोर वर्गों पर अत्याचार हमारे समाज पर कलंक है। इससे हमारी प्रगति भी रुकती है।



आइये भारतीय परम्परा को निभायें

हम एक हैं

davp 79/532

AND
OKS...
DYE
ple and
th grey
colours.
o enjoy
turally.
manent
shable.
stores
emists.

आस्था के आयाम

एक मूक साधक

सन १९२०-२१ का भारत। गांधीजी के नेतृत्व में छिड़ा स्वतंत्रता का संघर्ष। और इस संघर्ष में योगदान देनेवाले असंख्य लोग, जो सुविधापूर्ण जीवन को छोड़कर अंगरेज सरकार के हर जोर-जुल्म से टक्कर लेने आगे आये थे।

इनमें ही एक अमरावती का युवक था—सतीदास मूंदड़ा। सतीदास एक मालगुजार के बेटे थे, पर गांधीजी की प्रेरणा से कीमती विदेशी वस्त्र त्याग, मोटी खादी पहन, उन्होंने 'प्रणवीर' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्र का ध्येय वाक्य था—



स्व. सतीदास मूंदड़ा

चंद्र टरे सूरज टरे
टरे जगत-व्यवहार
पै न टरे 'प्रणवीर' को
प्रण ठान्यो एक बार

सतीदास देश प्रेमी थे, व्यवसायी नहीं, अतः निरंतर घाटे ने 'प्रणवीर' को अर्थ संकट में डाल दिया। इस बीच उनके पिता का निधन हो गया, तो उन्होंने उत्तराधिकार में मिली संपत्ति के सहारे पत्र का प्रकाशन जारी रखा। लेकिन कुछ वर्षों बाद धनाभाव के कारण उन्हें वह पत्र बंद करना पड़ा।

सतीदासजी के अंतिम दिन बड़ी विपन्नता में बीते। शायद हर मूक साधक की यही नियति होती है!

कीमती दवाएं—खरचीला भोजन

"देखिए, आप दिल के दौरे की मरीज हैं। आपको कुछ कीमती दवाएं लेनी होंगी और खरचीला भोजन ही करना पड़ेगा।"

"पर डॉक्टर, मैं न कीमती दवाएं ले सकती हूं और न खरचीला भोजन। मुझ पर आश्रित बच्चे मात्र दलिया खाएं और मैं कीमती भोजन करूं, ऐसा नहीं हो सकता।" यह उत्तर था मेरी मुडले का, जो अफरीका में गोरों के खिलाफ आजादी के लिए संघर्षरत काले लोगों में 'आंटी

मुडले' के नाम से ख्यात थीं।

आंटी मुडले अपनी दया और गोरों के खिलाफ आजीवन संघर्षरत रहने के संकल्प के कारण सबकी प्रेरणा का स्रोत बनी हुई थीं।

यों उनका अपना परिवार भी बहुत बड़ा था, पर एक दिन उन्होंने सड़क पर एक अंधे और पक्षाघातग्रस्त व्यक्ति को असहाय अवस्था में देखा, और उसे घर ले आयीं। उस बीमार व्यक्ति की उन्होंने मां की तरह सेवा-सुश्रुषा की। गत वर्ष आंटी मुडले का निधन हुआ था, तो समूचे अफरीकी जगत में शोक छा गया।

उसने पराजय नहीं मानी

पिछले दिनों हमने अखबारों की बड़ी-बड़ी सुरखियोंवाले समाचारों और विज्ञापनों की भीड़ में छपा एक छोटा-सा समाचार पढ़ा—समाचार, जिसे विस्तार से छपना था। समाचार यों है—

कानपुर, कुमारी चित्रा तिवारी के दोनों ही हाथ बचपन से बेकार थे, किंतु उसने अपने परिवारवालों से प्रोत्साहन पाकर हिम्मत के साथ पढ़ाई जारी रखी। उसने अपने पैरों से लिखने का अभ्यास किया तथा आज वह एम. ए. (इंगलिश) करने के बाद सुरक्षा प्रतिष्ठान में क्लर्क है।

माई साहब की प्रेरणा

गुड़ी पड़वा, महाराष्ट्र का प्रसिद्ध त्यौहार और भारतीय पंचांग-वर्ष का प्रथम दिन। सन १९३० की गुड़ी पड़वा को एक महिला ने अपने घर में लिफाफे, पारसलों के 'लेबल' ऑफिस की फाइलें और 'स्टेशनरी' का अन्य सामान बनाना शुरू किया। इस काम में उनका हाथ बंटाया, घर के छोटे बच्चों और कुछ कर्मचारियों ने। वे महिला अपने मातृवत-स्नेह के कारण 'माई साहेब' के नाम से जानी जाती थीं।

माई साहेब में गजब की शक्ति थी। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही यह घरेलू उद्योग चल निकला। यद्यपि सन १९३० का जमाना भयानक मंदी का था, फिर भी माई साहेब ने अपने गुणों से सबकी सद्-भावना अर्जित कर ली थी, और मंदी की काली छाया उनके उद्योग पर न पड़ पायी।

आज माईसाहेब द्वारा शुरू किया गया घरेलू उद्योग बड़ा आकार ग्रहण कर चुका है। उसके संचालकों के लिए माई साहेब की संकल्प-शक्ति आज भी प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है!

मैंने अपनी इच्छाओं का दमन करके सुख प्राप्त करना सीखा है, उनको पूर्ति करके नहीं।

—मिल

शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए

• ज्ञानेन्दु

निम्नलिखित शब्दों के जो सही उत्तर हों, उन पर चिह्न लगाइए और इसी पृष्ठ से आरंभ उत्तरों से मिलाइए।

१. **आर्त**—क. दयनीय, ख. निर्धन, ग. पीड़ित, घ. भीगा।

२. **नानाविध**—क. भिन्न-भिन्न, ख. पृथक, ग. विविध, घ अनेक प्रकार से।

३. **अधोगति**—क. हार, ख. दुर्दशा, ग. ढलाव, घ. मौत।

४. **निश्चिंत**—क. ठीक, ख. लापरवाह, ग. चिंतारहित, घ. संयत।

५. **अज्ञ**—क. अकुशल, ख. जिसे ज्ञान न हो, ग. कमजोर, घ. फिसड्डी।

६. **विज्ञ**—क. विद्वान, ख. कुशल, ग. श्रेष्ठ, घ. चतुर।

७. **ममत्व**—क. अहंकार, ख. अपनापन, ग. प्रेम, घ. बंधुत्व।

८. **शालीन**—क. भव्य, ख. विस्तृत ग. शिष्ट, घ. मौन।

९. **वीरगति**—क. बहादुरी, ख. बलिदान, ग. साहस, घ. युद्ध में लड़ते हुए मारे जाने पर मिलनेवाली गति।

१०. **पंडितम्मन्य**—क. बड़ा विद्वान, ख. अपने आपको पंडित माननेवाला, ग. उच्च-पदस्थ, घ. सर्वश्रेष्ठ।

११. **मेधा**—क. बुद्धि, ख. विद्वता, ग. परख, घ. चतुराई।

१२. **परोपजीवी**—क. दूसरे की भलाई करनेवाला, ख. दूसरों में भेद डालनेवाला, ग. दूसरों की जीविका पर रहनेवाला, घ. दूसरों से विमुख।

उत्तर

१. ग. पीड़ित, दुःखी। यह भिक्षुक कितना **आर्त** है।

२. घ. अनेक प्रकार से। **नानाविध** उपचार से भी वह स्वस्थ नहीं हो सका।

३. ख. दुर्दशा, अवनति, पतन। अपने कुकर्मों से ही व्यक्ति **अधोगति** को प्राप्त होता है।

४. ग. चिंतारहित, बेफिक्र। नौकरी मिलने से वह **निश्चिंत** हो गया। (संज्ञा-**निश्चितता**)

५. ख. जिसे ज्ञान न हो। **अज्ञ** बने रहने से जीवन निरर्थक हो जाता है। (संज्ञा-**अज्ञता, अज्ञान**)

६. क. विद्वान, पंडित। **विज्ञ** लोग ही समाज का मार्गदर्शन करते हैं। (संज्ञा—**विज्ञता**)

७. ख. अपनापन, ममता। अतिशय **ममत्व** क्लेशदायक होता है।

८. ग. शिष्ट, विनम्र। **शालीन** बन कर लोगों का हृदय जीतो। (संज्ञा—शालीनता)

९. घ. युद्ध में लड़ते हुए मारे जाने पर मिलनेवाली गति। **वीरगति** को प्राप्त व्यक्तियों से लोगों को सदैव प्रेरणा मिलती रहेगी।

१०. ख. अपने आपको पंड़ित माननेवाला। वह **पंडितम्मन्य** लोगों की आंखों में धूल झोंक रहा है।

(मन्य—समासांत में प्रयुक्त, अर्थ है 'अपने आपको माननेवाला', जैसे-लघुम्मन्य, अहम्मन्य)

११. क. बुद्धि, धारणाशक्ति। देश अपनी संचित **मेधा** के द्वारा ही अपना मार्ग खोजता है।

१२. ग. दूसरों की जीविका पर रहनेवाला, दूसरों के भोजनादि पर जीवित रहनेवाला। **परोपजीवी** लोग समाज के शत्रु हैं।

पारिभाषिक-शब्द

कारनिवोरस=मांसाहारी
हरबिवोरस=शाकाहारी
होम्योसेपियन=आदमी (प्राणिशास्त्री नाम)
नाजा-नाजा=कालानाग (कोबरा)
न्यूक्लियस=नाभि
नाटो=उत्तरी अतलांतिक सैनिक संगठन
सीटो=दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन

समस्या-पूर्ति—१२ परिणाम



मिथकों में जीते हैं हम

प्रथम पुरस्कार

क्या भीतर से क्या बाहर से
सच पूछो रीते हैं हम
वय की प्याली में दर्दों का
कालकूट पीते हैं हम
फिर भी क्षणिक सुखों के भ्रम में
मिथकों में जीते हैं हम ।

—कन्हैयालाल पाण्डेय
३२०६ खवासजी का चौक, जयपुर

द्वितीय पुरस्कार

कंचन रूप सलौनी काया
प्रीति जाल में मन भरमाया
महल कल्पनाओं के रच-रच
छला स्वयं को और छलाया
मिथकों में जीते हैं हम, वे
सच-सच दर्पण ने बतलाया ।

—दिनेशकुमार पाठक
—२६ एन. आई. टी. फरीदाबाद

प्रतिक्रियाएं

इस्माइल की कुरबानी

'कादम्बिनी' अप्रैल १९८० में प्रकाशित डॉ. निजामुद्दीन के लेख, 'पैगंबरों की परंपरा और मुहम्मद साहब' पढ़कर बेहद खुशी हुई। लेकिन चौथे पैराग्राफ में पैगंबरों के नाम गलत लिखे हैं।

'बाद में इस्माइल ने . . . कुरबानी की तभी से हज और कुरबानी की परंपरा इस्लाम धर्म में शुरू हुई।'

परंतु वास्तविकता यह है कि पैगंबर इब्राहीम ने अपने बेटे इस्माइल की कुरबानी की, न कि इस्माइल ने इसहाक की। इस्माइल तो इसहाक के वास्तव में भाई थे, पिता नहीं।

—मोहम्मद अमीन चिश्ती, जबलपुर

मैत्री द्वारा सेवा

मार्च मास की 'कादम्बिनी' में लायंस क्लब से संबंधित जानकारी अधूरी है।

वास्तव में इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑव लायंस क्लब की १५१ देशों में ३३,००० से अधिक शाखाएं फैली हुई हैं, जिनमें कुल सदस्यों की संख्या १३ लाख से भी अधिक है। भारत में १५०० से अधिक क्लब हैं, जिनमें ७५,००० से अधिक सदस्य हैं। भारत, सदस्यों की संख्या के हिसाब से तीसरे नंबर पर है। शिकागो में सन १९१७ में श्री मेलविन जांस ने मानवता की सेवा के लिए इस संस्था की स्थापना की। १९२० तक इसका अंतरराष्ट्रीय रूप सामने आ सका। भारत में पहला लायंस क्लब ३ फरवरी, सन १९५६ को बंबई में खुला। इसके युवा-वर्ग का प्रतिनिधित्व—'लियो क्लब' एवं महिला वर्ग का 'लायेनेस क्लब' के माध्यम से होता है। इसका उद्देश्य 'मैत्री द्वारा सेवा' (सरविस थ्रू फेलोशिप) है।

—एन. एम. दूगड़ एवं बी. के झंपुरी

राकेट का उपयोग हुआ

मेरी काफी समय से इच्छा थी कि 'महाभारत काल में राकेट का उपयोग हुआ है,' पर आपको कुछ लिखूं। इसी संदर्भ में इस पत्र का सार दे रहा हूं:

एक तो होती है स्मृति, दूसरी होती है श्रुति। जो कुछ भी पौराणिक स्मृति थी, वह आज हमारे सामने नगण्य है। क्योंकि इनको काफी तोड़-मरोड़कर हमारे सामने रखा गया है। अब हम इनके इतने आदी हो गये हैं कि उनको ही सत्य मानकर चलते हैं, अन्य कुछ सोचने की शक्ति हमारे पास नहीं है। यही कारण है कि हमने काफी विषयों, जो श्रुति के आधार पर महाभारत में लिखे हैं, को ज्यों का त्यों आत्मसात किया।

महाभारत में एक जगह लिखा है कि वायुयान, जिसका नाम त्रिशंकु था,

उसको अंतरिक्ष में धारा गया । वह अभी तक लटक रहा है। मगर मेरी मान्यता इसके विपरीत है। जिस वक्त आर्मस्ट्रांग अंतरिक्ष में गया और वापस पृथ्वी पर आया, तब उससे पूछा गया कि अंतरिक्ष में उसने क्या देखा ? उस समय जो कुछ देखा, उस पर इस तरह टिप्पणी की—'पृथ्वी भी चंद्रमा की तरह चमकती है, परंतु उस पर तीन काले-काले धब्बे भी हैं, जो उससे काफी दूर हैं, दूरबीन से भी साफ-साफ नजर नहीं आये और अंतरिक्ष में ही विलीन हो गये।'

मेरी मान्यता है । वे तीनों धब्बे महाभारत-काल के राकेट हैं, अगर इस पर कुछ शोध किया जाए, तो बहुत कुछ तथ्य सामने आयेंगे।

हमारा प्राचीन विज्ञान काफी बढ़ा-चढ़ा था। जब-जब बड़े युद्ध हुए, तब-तब विज्ञान को क्षति हुई। आंइस्टीन से जब पूछा गया कि तृतीय विश्व-युद्ध से क्या होगा, तब उन्होंने बताया, "तीसरे का तो वे नहीं जानते, पर चौथे विश्व-युद्ध के बाद बैल-गाड़ियों का सहारा लेंगे।"

यही हाल महाभारत-काल में भी हुआ। उस समय के साहित्य को बचाने के उपक्रम में, उन तीनों राकेटों में सब कुछ अंतरिक्ष में फेंक दिया गया। त्रिशंकु का मतलब है, तीन राकेट। यदि आज वैज्ञानिक उन तीन राकेटों का अध्ययन करें, तो महाभारत की सारी गुत्थी सुलझ सकती है।—सोहनलाल राठी, नाथद्वारा

विचार-दीर्घा--६

'क्या हमारी न्याय-व्यवस्था निष्पक्ष है?'
अपने विचार तीन सौ शब्दों में निम्न पते पर भेजें।
पुरस्कार: पचास रुपये
अंतिम तिथि--५ मई, १९८०

संपादक
'कादम्बिनी'
विचार-दीर्घा—६
हिंदुस्तान टाइम्स लि., १८-२०
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली

विचार के साथ वापसी के लिए लिफाफा संलग्न न करें।

दोनों प्रधानमंत्री रहे

अप्रैल अंक के पृष्ठ ५५ पर ह! हा!! स्तंभ में कृपया डिजरायली और ग्लेडस्टोन को ब्रिटिश सांसद पढ़ें। इन दोनों का समय १८६८ से १८९४ तक माना जाता है। वे दोनों अपने देश के प्रधानमंत्री भी रहे।

डिजरायली १८६८ तथा १८७४ से ८० तक। ग्लेडस्टोन ब्रिटेन के सांसद १८६८ से ७४, दूसरी बार १८८० से ८५, तीसरी बार १८८६ तथा चौथी बार १८९२ से ९४ तक बने।

—रमेशप्रसाद शर्मा, दिल्ली

वर्ष २० : अंक ७
मई, १९८०

कादम्बिनी

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

स्थायी स्तंभ

कहानियां एवं हास्य-व्यंग्य

सार-संक्षेप

इस अंक में विशेष

संपादक
राजेन्द्र अवस्थी

संपादकीय सहयोगी
संयुक्त-संपादक
शीला झुनझुनवाला

सह-संपादक : दुर्गाप्रसाद शुक्ल
उप-संपादक : प्रभा भारद्वाज, डॉ. जगदीश चंद्रिकेश, भगवतीप्रसाद डोभाल, सुरेश 'नीरव', कामोदप्रसाद,
प्रूफ-रीडर : स्वामी शरण
चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

काल-चिंतन

— एक पाठक : हमारे महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर आप दे सकेंगे ? अनेक गोष्ठियों, सभाओं और महासभाओं में कुछ दिनों से चर्चा हो रही है कि अश्लील क्या है ?

●●

— अश्लील व्यक्ति के संदर्भ में या समाज के संदर्भ में या साहित्य के संदर्भ में !

— संदर्भ कोई भी हो अंततः तीनों कहीं-न-कहीं जाकर एक इकाई बन जाते हैं, इसलिए एक समन्वित दृष्टि से चिंतन की अपेक्षा है।

— अश्लील की बात उठाने के पहले स्पष्ट समझना होगा—श्लील क्या है, क्योंकि जो-कुछ श्लील नहीं है, वही तो अश्लील है !

●●

—काल खंड का शिलालेख !

— वेद-पुराणों से लेकर महाभारत और रामायण-काल तक की विहंगम दृष्टि !

— फिर प्रलय ...! प्रलय एक बार नहीं हुआ, होता रहा है !

— हर प्रलय के बाद निर्वसन एकाकी व्यक्ति का भटकाव !

— वह नयी दुनिया का निर्माण करता है, नयी 'सभ्यता' को विकास देता है, लेकिन वही आगे चलकर सभ्यताओं में दरारों का प्रवेश कराता है, आदमी-आदमी के बीच विभाजन और फिर उद्घोषणा : हम विकसित हैं और नयी सभ्यता के प्रणेता हैं। विकासशील व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया सब हीन हैं !

— कैसे हुआ यह : एक विकसित है, दूसरा पिछड़ेपन की संज्ञा पाकर अपनी हीनता को सड़े-गंदे नाले में पड़े कीड़ों की नियति की तरह अपने भाग्य को जोड़ता है !

— विकसित दुनिया ने कपड़े उतार फेंके हैं, जहां से सभ्यता का विकास हुआ था, वह वहीं लौटकर नयी भूमि के निर्माण का अभियंता बन गयी है ! और...!

— सारा मध्य-वर्ग अधकचरेपन की जिंदगी जीता है !

●●

— क्या हो गया है हमें ! वास्तविक भेद उत्पन्न हुआ था आर्थिक-तंत्र से और अब भी सारी लड़ाई उसी के बीच है। सारे महायुद्धों की केंद्र-सत्ता भी वही है !

— तो क्या आर्थिक रूप से संपन्न देश या व्यक्ति ही श्लील है ?

— यदि यह सत्य है तो ... !

○ कालिदास, माघ और भवभूति व्यर्थ होंगे ?

- ग्रीक और सिंधु सभ्यता अर्थ-सत्ता में समाहित हो जाएगी !
- हमारा साहित्य पश्चिमी देशों के उद्धरणों और क्रिया-कलापों की चुनौती उसी तरह झुककर सुनता रहेगा, जैसे दास अपने स्वामी के पैरों के सिवाय और कुछ देख ही नहीं सकता। खजुराहो के प्रस्तर-आलेख कमरे में बंद होकर विकसित दुनिया की दीवारों पर सभ्यता के गीत गाते रहेंगे और हम ...!

— लीजिए, नये मूल्य अपने-आप बन गये : पेंदीवाला लोटा जिसका ठोस आधार था, जो अपने सुदृढ़ चरित्र से आसपास वही आभा फेंकता था, जो आभा किसी महापुरुष के चेहरे पर एक गोलार्ध-सी दिखायी देती थी, व्यर्थ हो गया !

— कीमती है अब बेपेंदी का लोटा : वह स्वच्छंद है, निर्भय है, क्रियाशीलता है उसमें और इन सबके ऊपर हमारे विशिष्ट कला-केंद्रों और संग्रहालयों में समानता के मानदंड के रूप में स्वीकृत होकर 'एंटीक' बन गया है !

— एंटीक ! ... यानी पुराना !

— कीमत हो गयी हर पुरानेपन की !

— हर ढुलमुल नीति को चाणक्य-नीति या राजनीति मान लिया गया !

— जो प्रश्न अर्थ-सत्ता से उठा था, 'राजनीति' की सत्ता में उतर आया। अब जो राजनीति कहेगी वही होगा, वही श्लील होगा ! राजनैतिकों के हर कारनामे समाचारों की दुनिया खड़ा करेंगे, हलचल पैदा करेंगे और हलचल ही तो जीवन है, वही गति है, वही चेतना है, वही क्रियाशीलता है !

— हमारी आंखों ने अपने आसपास ही देखना बंद कर दिया है। पाश्चात्य तुला का भारीपन हर क्षण हमें हलका बना रहा है :

- हमारे गांव !
- गांव का विस्तारमय उत्स
- खुले वदन
- धूलभरा भोलापन
- नंगी, अधनंगी देह
- निरभ्र खुले आसमान-सी सहज आंखें
- गांव की हिरनियां, सौंदर्य की स्वामिनी—नहीं परोसती क्या हवा उन्हें भोजन !

— स्मृति के पिजड़े में हमारी दिमागी नसें बंद हो गयी हैं !

— फूटते हुए अंकुर का दर्द वीभत्स लगता है !

— सब बेमानी हो गये हैं :

० झरते हुए शेफाली के फूल ० झूमता हुआ हरसिंगार ० बेला और चमेली

की सुगंध ० रजनीगंधा का बेलौस फैलाव ० गुलाब की स्मृति-दायिनी पंखुरियां

— नहीं... इनकी चर्चा करने से हमें छाया-लोक का विलासी व्यक्ति माना जाएगा!

— चर्चा करें हम भूखे पेटों की; पर भूखे पेटों का दर्द कितनों ने पहचाना है!

— वह दर्द क्या सारे आवरण नहीं उतार फेकता!

●●

— श्लील क्या है, यहीं खोजना होगा—एक दृष्टि के लिए श्लील है मात्र दर्द, प्रकृति में उगते हुए नागफनी के कांटे, उभरता हुआ अंकुर, मरता हुआ आदमी... और...!

— और बाकी सब तो अश्लील है! सुखभरे जीवन की कल्पना, सौंदर्य को समेटने की अभिलाषा, 'सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया' का उद्‌घोष!

— आखिर क्यों? इसलिए कि इससे आदमी और आदमी को आसानी से बांटा जा सकता है!

— आदमी की सहज अभिव्यक्ति में ताले लगाये जा सकते हैं और उसकी कुरसियों को निश्चित किया जा सकता है!

— संवेदनाओं की बातें हम आसानी से कर सकते हैं, पर उसका केंद्र ...!

— केंद्र-बिंदु है मस्तिष्क!

— पैर में कांटा चुभता है और दर्द का भान तत्काल पूरे शरीर को हो जाता है।

— मस्तिष्क की चेतना हमें भटकाती है। जब-जब वहां विकार उत्पन्न होते हैं, हमारे हाथ हमसे बाहर होकर स्वच्छंद हो जाते हैं। दोष दिया जाता है 'दिल' को, हृदय की धमनियों को और फिर हमारी हरकतों को!

— चेतना-शून्य, मस्तिष्कहीन पागल व्यक्ति कभी अश्लील घोषित नहीं किया जाता!

●●

— तब... श्लील एक सत्य है, वह अ-परिभाषेय है, काल और समय की सीमा के परे है! उसके मूल्य शाश्वत हैं, सीमाओं की कैद अस्वीकार्य है!

— मस्तिष्क के प्रवाह में हवा में भटकती हुई हवा की तरह एक नयी वायवीय दुनिया बनती है, बिगड़ती है, फिर बनती है और फिर बिगड़ती है। इन क्षणिक आवेगों में वह एक मूल्य का निर्धारण करती है और फिर उसे ही तोड़ती है किसी कुम्हार की तरह, जो माटी से मनमाना खेल करता है। वही भ्रम है और भ्रमित प्रश्नों को उठाकर हमें मूल चेतना से उसी तरह दूर ले जाता है, जैसे महासागर की लहरें बड़े से बड़े जहाज को कहां से कहां फेंक देती हैं।

— कलुष मस्तिष्क में है।

— भ्रम दिमागी ऐय्याशी की उपज है... और... और यही दिमागी भटकाव अश्लील है!

— भ्रम में पड़े इस 'अश्लील' को कब तक झेलते रहेंगे हम?

राजेन्द्र अवस्थी

समय के हस्ताक्षर

आज का लेखन : प्रश्नों के घेरे में

कई वर्षों के अंतराल के बाद अब फिर निरंतर गोष्ठियों और सभाओं में चर्चा होने लगी है, आज के लेखन की सार्थकता क्या है ? बरसों का मुख्य मुद्दा उभरकर सामने आता है कि आज का लेखन आम पाठकों से दूर है ! इस अभाव की पूर्ति सतही और हलके ढंग का लेखन कर रहा है, जिससे पाठकों की अभिरुचि उपन्यास केवल शहरी जीवन की उलझनों और व्यक्ति के निजी मानसिक क्लेश तथा संताप में आकर सिमट गये हैं। पारिवारिक समस्याएं, टूटते हुए संबंध, यौन-प्रसंगों के चित्रण ये सब शहरी समाज और मनुष्य के भीतर उठनेवाली समस्याओं के मात्र चित्रण हैं। प्रश्न यह उठता है कि भारत-जैसा विशाल देश क्या केवल कुछ चुने हुए शहरों तक आकर सिमट गया है। आश्चर्य तो तब होता है, जब आज के लेखन में कस्बाई आदमी और मशीनों के साथ पिसनेवाला मजदूर तथा

हिंदी फिल्मों की तरह बिगड़ती हुई नजर आती है। रेलवे-स्टेशन के बुक स्टालों से लेकर और जगह भी ऐसी सस्ती पॉकेट बुक्स बिक रही हैं, जिनका साहित्य से दूर का भी संबंध नहीं है। इसके विपरीत अच्छे से अच्छे लेखक की पुस्तकों के लिए बिक्री का माध्यम या तो पुस्तकालय हैं अथवा विभिन्न सरकारों द्वारा प्रतिवर्ष की जानेवाली खरीद। पाठक स्वयं अपनी जेब से पैसा खर्च कर ऐसी सार्थक पुस्तकें नहीं खरीदना चाहता। आखिर इसके कारण क्या हैं ?

ध्यान से देखने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आज की कहानी और सूखाग्रस्त किसान कहीं सामने नहीं आता। लेखक की अपनी निजी समस्याएं हो सकती हैं, लेकिन यदि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, तो उसे कहीं न कहीं आत्ममुखी न होकर परामुखी होना होगा और पूरे समाज को देखना पड़ेगा।

यह प्रश्न चर्चाओं में विशेष रूप से इसलिए भी उभर रहे हैं, क्योंकि प्रेमचंद-शताब्दी के अवसर पर बार-बार प्रश्न उठते हैं कि प्रेमचंद की प्रासंगिकता क्या है ? इस संबंध में हम विस्तार से जुलाई के अंक में लिखेंगे, जो प्रेमचंद-विशेषांक होगा। यहां इतना संकेत पर्याप्त है कि इस प्रश्न के पीछे समूचे आधुनिक

लेखन की सार्थकता जुड़ी हुई है। यदि आज भी प्रेमचंद और शरतचंद को उत्साह के साथ पढ़ा जाता है, तो बहुत से सवाल उठते हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें क्यों पढ़ा जाता है? बल्कि इसलिए कि समय और स्थितियों के बदल जाने के बावजूद उनमें ऐसा क्या सार्थक है, जो अब भी पाठकों को आकर्षित कर रहा है। इसके दो दृष्टिकोण हो सकते हैं, एक तो यह कि समय के अंतराल के बावजूद मानवीय संवेदनाओं के वे रिश्ते, अब भी उतने ही प्रभावशाली ढंग से कायम हैं। दूसरा दृष्टिकोण यह हो सकता है कि आज का वर्तमान लेखन शहरी हो गया है और उन समस्याओं को जन्म देता है, जो नितांत निजी हैं अथवा कुछ व्यक्तियों तक सीमित हैं।

कहा जा सकता है कि पाठक भी शहरों तक सीमित हैं, लेकिन सचाई यह है कि शहरों की भी बृहत्तर समस्याएं आज के लेखन से दूर हैं। फिर यह समझ लेना जरूरी है कि अब पाठक महानगरों के सिवाय नगरों, कस्बों और गांवों तक फैल गये हैं। इसकी अनुभूति तब होती है, जब छोटे शहरों में होनेवाली गोष्ठियों में आज के कथा-लेखन के सामने और भी बड़ा प्रश्न चिह्न लगाया जाता है।

आज की हिंदी कहानी के साथ दुर्भाग्य वैसे यह भी रहा है कि वह सर्जनात्मक स्तर से नीचे उतरकर आंदोलनों की भीड़ में पहुंच गयी। इससे लेखन की सार्थकता को परखा ही नहीं जा सकता। कुछ दिन पहले हमने पश्चिमी सर्जनात्मक साहित्य के संबंध में किये गये एक सर्वेक्षण को देखा था, उससे परिणाम यह निकला था कि वहां पाठक अब कहानियों की अपेक्षा सत्य-कथाओं, विचित्र घटनाओं, राजनीतिक और सामाजिक-षड्यंत्रों और उनसे संबंधित व्यक्तियों की निजी दास्तान को पढ़ने में ज्यादा रुचि लेने लगा है। निश्चय ही यह सर्वेक्षण चौंका देनेवाला है क्योंकि यदि हमारे यहां भी ऐसा ही सर्वेक्षण करा दिया जाए तो शायद परिणाम यही निकलेंगे। अर्थ यह हुआ कि आज का पाठक एक व्यक्ति की समस्या को अपने सर पर ढोने के लिए तैयार नहीं है, बल्कि वह अपनी कहानी भी पढ़ना चाहता है।

हर पाठक की कहानी अलग होगी। निष्कर्ष यह हुआ कि आज की कहानी को बहुमुखी आयाम की आवश्यकता है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर आज के लेखन को विचार करना जरूरी है। क्योंकि जितना वह असफल होगा; उतनी ही सफलता उस हलके-फुलके और कूड़ा-कचरा भरे हुए लेखन को मिलेगी जो साहित्य को कलंकित करता हुआ, धड़ल्ले के साथ बाजार में बिक रहा है। क्या यह अवसर नहीं है कि आज लेखक फिरकापरस्ती से दूर होकर अपने सही पाठकों की तलाश के लिए प्रयत्न करे?

विज्ञान न केवल भौतिक वरन बौद्धिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। खेद है कि विज्ञान के इस पक्ष की ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया है।

बौद्धिक क्षमताओं के लिए विज्ञान की उपयोगिता

● डॉ. नीलरत्न मजूमदार

इतिहास के आरंभ में ही विज्ञान मानव को उसके व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति में योग देता रहा है। यह भी कह सकते हैं कि मानव की व्यावहारिक आवश्यकताएं उसे नयी खोजों के लिए प्रोत्साहित करती रही हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में वैज्ञानिक खोज-कार्यों ने एक बहुत बड़े पैमाने पर प्रसार पाया। उस समय इन खोज-कार्यों का मुख्य उद्देश्य सैन्य-क्षमताओं को बढ़ाना मात्र था। जैसे, रडार में सुधार और अणु बम का निर्माण। इस युद्ध के बाद सन १९६० के मध्य तक सरकारों और जनता का ध्यान वैज्ञानिक खोजों द्वारा प्राप्त की जा सकनेवाली आर्थिक उपलब्धियों पर ही केंद्रित रहा।

उस समय आम धारणा यह थी कि इन खोज-कार्यों में लगाया गया धन, बहुत ही मुनाफा देनेवाला सिद्ध होता है। सन १९६० के अंत तक इस धारणा में बदलाव आया और अनेक देशों विशेषकर अमरीका में इसे लेकर आलोचना के स्वर सुनायी देने लगे, क्योंकि अब यह माना जाने लगा था कि वैज्ञानिक खोजों से मुनाफा प्राप्त नहीं हो रहा है। अतः इस समय वैज्ञानिक खोज-कार्यों पर आधारित तकनीकी विकास को लेकर दो मुख्य आपत्तियां उठायी गयीं

पहला—तकनीकी-विकास से जो राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई, वह कुछ बड़ी-बड़ी कंपनियों के हाथों में सिमटकर रह गयी है, जिससे समाज में आर्थिक संतुलन बिगड़ गया है। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के बावजूद अनेक देशों में गरीबी बढ़ी है।

दूसरा—औद्योगिक गतिविधियों से, जो नतीजे निकले हैं, वे प्रायः समाज के लिए ऋणात्मक रहे हैं; जिससे एक तो बेरोजगारी बढ़ी है और दूसरा वायु प्रदूषण सघन होता चला गया।

ये आपत्तियां निःसंदेह काफी हद तक

तर्कसंगत हैं। लेकिन इनके बावजूद वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को रोका नहीं जा सकता। अब केवल एक ही रास्ता है कि इन ऋणात्मक प्रभावों को प्रभावहीन बनाने की दिशा में और अधिक कार्य किये जाएं।

मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं

जब मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की बात की जाती है, तब उसका अर्थ है— (क). मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं– जैसे रोटी, कपड़ा और मकान तथा स्वस्थ वातावरण। (ख). मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाली व उनसे उत्पन्न भौतिक आवश्यकताएं। जैसे जल, ऊर्जा, कच्चा माल, यातायात तथा स्वास्थ्य सुविधाएं। (ग) सामान्य, लेकिन विशिष्ट आवश्यकताएं; जैसे संतोषजनक परिस्थितियों में कार्य करने का अधिकार।

चौथी आवश्यकता

इन तीनों आवश्यकताओं के अतिरिक्त एक चौथी आवश्यकता भी है। वह है हमारी बौद्धिक आवस्यकता, जो कि हमारी समूची सामाजिक आवश्यकताओं का एक आनिवार्य तत्व है। इस चौथी बौद्धिक आवश्यकता में विज्ञान की भूमिका अत्यंत जटिल है। इस आवश्यकता के लिए समाज में एक ऐसी समुचित परिस्थति का होनां जरूरी है, जिसमें व्यक्ति और पूरे समाज का बौद्धिक विकास हो सके। जिस समाज में उपयुक्त परिस्थितियां होती हैं, वहां सर्जनात्मक क्षमताओं तर्क-सम्मत विवेक तथा ज्ञान-प्राप्ति की वृद्धि में योग मिलता है।

बौद्धिक विकास : मूल आवश्यकता

बौद्धिक विकास एक अनिवार्य शर्त है। इसके द्वारा सभी क्षेत्रों में सृजनात्मक उत्प्रेरणा देनी चाहिए।

यह भी स्पष्ट है कि समाज में हरेक व्यक्ति के पास सृजनात्मक क्षमता नहीं होती, बल्कि समाज का एक भाग ही इस विकासशील प्रक्रिया में सक्रिय रूप से अपना योग देता है, लेकिन इसके बावजूद, यह भी महत्वपूर्ण है कि ऐसी स्थितियां सुलभ करायी जाएं, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रक्रिया में शामिल होने का अवसर मिल सके।

इसके लिए तीन बातों की बहुत आवश्यकता है—(क). बौद्धिक विकास के लिए मनोशारीरिक क्षमता पैदा करना (ख). ज्ञान की प्राप्ति के लिए संभावनाओं का विस्तार व पुनर्गठन, (ग). बौद्धिक विकास के लिए उत्प्रेरक व उपयुक्त सामाजिक परिस्थितियों की संरचना।

शिक्षा प्रणाली की भूमिका

बौद्धिक विकास हेतु मनोशारीरिक क्षमताओं के लिए केवल पैतृक परंपरा ही पर्याप्त नहीं होती, बल्कि उसके लिए नया वातावरण व जीवन पद्धति भी महत्वपूर्ण होती हैं; जिसका प्रभाव विशेष रूप से बचपन में पड़ता है। यह सर्वविदित है कि पहले अठारह माह के शिशु को यदि पर्याप्त पोषक आहार नहीं मिलते, तो उसका ऐसा अमिट प्रभाव उसके मस्तिष्क

पर पड़ता है, जो उम्रभर नहीं जाता। आज विकासशील देशों के सामने शिशुओं के लिए पर्याप्त पोषक आहार के अभाव की एक गंभीर और महत्त्वपूर्ण समस्या है। आज का यह अभाव एक पीढ़ी बाद समूचे समाज में विकृति दिखलायेगा।

किसी व्यक्ति की पैतृक-विशेषताएं बौद्धिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस क्षेत्र में भी हाल की जीन (जेनेटिक्स) संबंधी खोजों से नयी संभावनाओं के द्वार खुले हैं। इससे कम से कम पूर्वजों से प्राप्त मानसिक अक्षमता का उपचार किया जा सकता है। आवश्यकता यह है कि हरेक प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए उच्च-शिक्षा के द्वार खोले जाएं, जिससे वे अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकें।

बौद्धिक विकास में विज्ञान की भूमिका

अब प्रश्न यह है कि कौन से कदम उठाए जाने चाहिए, जिससे विज्ञान और वैज्ञानिक समुदाय, समाज के बौद्धिक विकास के लिए अपना योग दे सकें?

बौद्धिक विकास के मामले में विज्ञान की भूमिका को निश्चित किया जाए। समस्या केवल यह नहीं है कि वैज्ञानिक खोजों के परिणामों को कैसे उपयोग में लाया जाए, बल्कि यह भी है कि वैज्ञानिक प्रगति को किस तरह बुद्धिजीवियों के प्रयोग के अनुरूप बनाया जाए। बहुत सारी विधियों की शृंखला इस प्रकार है:

पहली: वैज्ञानिक शोधों के परिणामस्वरूप अवैज्ञानिक निर्णयों पर प्रहार। जैसे—मस्तिष्क और जेनेटिक्स पर हुई शोधों का उपयोग मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए। इसके द्वारा बौद्धिक प्रखरता प्राप्त होगी।

सार्त्र नहीं रहे



विश्व-विख्यात लेखक एवं चिंतक ज्यां पाल सार्त्र का लंबी बीमारी के बाद ७४ वर्ष की आयु में निधन हो गया। सार्त्र ने अपने लेखन से न केवल फ्रांस वरन विश्व के समूचे आधुनिक लेखन को प्रभावित किया। अगले अंक में पढ़िए ज्यां पाल सार्त्र पर विशेष संस्मरण।

मनोविज्ञान और तर्क-शास्त्र के अध्ययन और शोध से शिक्षा पद्धति को अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। समाज-शास्त्र में शोध, रचनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नये आयाम देगा।

दूसरी: वैज्ञानिक शोध के माध्यम से ही विवेक-शक्ति पुष्ट होती है। इन प्रक्रियाओं में जो मुख्य मोड़ आया—वह कंप्यूटर के आविष्कार से ही आया। इसके द्वारा लाखों की गणना एक व्यक्ति द्वारा बटन दबाकर क्षणभर में मिल सकती है। दूसरे देशों के साथ अंतरराष्ट्रीय सहयोग से ज्ञान-पुंज को मिनटभर में पूरी पृथ्वी पर बिखेर सकते हैं।

अंतरिक्ष यात्राओं ने विश्व के ही नहीं, बल्कि ब्रह्मांड के रहस्यों को भी नंगा कर दिया है। अब इसके द्वारा समाज का पुनर्निर्माण भी संभव है। ●

सावधान! अक्षर आपका सारा रहस्य खोलते हैं

• वीरेन्द्रकुमार मागो

आप शायद नहीं जानते, लेकिन आपकी हस्तलिपि और हस्ताक्षर न केवल आपके स्वभाव का राज खोलते हैं, वरन उनसे आपके भूत, भविष्य और वर्तमान का भी पता लगाया जा सकता है। पश्चिमी देशों में हस्तलिपि के अध्ययन को विज्ञान माना गया है तथा पुलिस, मनो-चिकित्सक, डॉक्टर और व्यावसायिक फर्में इस विज्ञान का निरंतर प्रयोग कर रही हैं। पश्चिम में इस विज्ञान को 'ग्राफोलॉजी' कहा जाता है।

इंगलैंड की एक प्रमुख हस्तलिपि-विशेषज्ञ पेट्रिशिया मारने का कहना है कि जिस तरह दो विभिन्न व्यक्तियों के हाथ के छापे एक समान नहीं होते, उसी तरह दो व्यक्तियों की हस्तलिपि और हस्ताक्षर भी एक-जैसे नहीं होते।

पेट्रिशिया मारने के अनुसार हस्तलिपि देखने में कैसी लगती है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है—अक्षरों का आकार, लेखन की लयबद्धता और कलम का दबाव। ये तीनों बातें किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सारा राज उजागर कर देती हैं। इनसे हमें पता लग जाता है कि व्यक्ति कैसा है—उदार या स्वार्थी, आशावान या निराश, आत्मकेंद्रित या महत्त्वाकांक्षी।

'ग्राफोलॉजी' के सिद्धांत

यहां हम हस्तलिपि विज्ञान या 'ग्राफोलॉजी' के मूलभूत सिद्धांतों से आपका परिचय करा रहे हैं। उनके आधार पर आप अपने ही नहीं, अपने संबंधियों और परिचितों के बारे में भी बहुत कुछ नयी जानकारी पा सकते हैं?

दिल की जगह दिमाग से काम

यदि आप किसी भी व्यक्ति की हस्तलिपि देखें, तो पायेंगे कि उसके अक्षर या तो बिलकुल सीधे हैं या फिर उनका

झुकाव बायीं ओर है या दायीं ओर।

जिन व्यक्तियों की हस्तलिपि में अक्षरों का झुकाव दायीं ओर होता है, वे भावुक, मिलनसार और सहृदय हैं। हमेशा दूसरों के काम आते हैं। दायीं ओर झुके अक्षर-वाले व्यक्ति परोपकारी, मैत्रीपूर्ण और त्यागी स्वभाव को दर्शाते हैं।

यदि इन अक्षरों का दायीं ओर बहुत अधिक झुकाव है, तो व्यक्ति अतिशय भावुक और दिमाग की जगह दिल से ही काम लेनेवाला होता है। (देखिए–चित्र १ में क)

अपने ही हितों पर ध्यान

इसके विपरीत जिन व्यक्तियों के अक्षर बायीं ओर झुके होते हैं, वे अपने बारे में ही अधिक चिंतित होते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी इच्छाओं, लक्ष्यों और हितों को सर्वोपरि मानते हैं।

(देखिए–चित्र १ में ख)

नाप-तौल का निर्णय

यदि किसी व्यक्ति के अक्षर बिलकुल सीधे होते हैं, दायीं या बायीं ओर झुके नहीं होते, तो ऐसे व्यक्ति जीवन में हर बात को नाप-तौलकर निर्णय करना पसंद करते हैं। ऐसे व्यक्ति किसी भी बात पर सहज विश्वास नहीं कर लेते। वे उसे आजमा-कर ही उस पर विश्वास करते हैं। (देखिए–चित्र १ में ग)

अक्षरों की दूरी क्या दर्शाती है ?

अक्षरों की परस्पर दूरी का भी अपना एक महत्त्व है। यदि अक्षरों के बीच अंतर अधिक है, तो व्यक्ति परोपकारी प्रवृत्ति का होता है। कम दूरी उसके स्वभाव की संकीर्णता दर्शाती है।

हस्तलिपि का अध्ययन कैसे करें ?

किसी भी हस्तलिपि का अध्ययन करने के पूर्व उसे तीन काल्पनिक क्षेत्रों में विभाजित कर लेना चाहिए। ऊपर का क्षेत्र, मध्य का क्षेत्र और नीचे का क्षेत्र। (देखिए–चित्र २)

ऊपर का क्षेत्र : हस्तलिपि में ऊपर के क्षेत्र से हमें व्यक्ति की कल्पना शक्ति, अध्यात्म के प्रति रुचि, उसके अंतर्मुखी या बहिर्मुखी स्वभाव और मस्तिष्क से संबंधित तमाम बातों का पता चलता है। देवनागरी लिपि में ऊपर के क्षेत्र से

चित्र–१

क सत्य की ही विजय होती है।

ख हमेशा मुसकराते रहिए।

ग राम नाम की महिमा अपार है।

कौन मुझे पुकारता है?

मात्राओं की गणना की जाती है। उदाहरण के लिए कुछ व्यक्ति 'इ', 'ई' या 'ओ', 'औ' की मात्रा को बहुत बड़ा बनाते हैं या रफार को बड़ा कर देते हैं। इस तरह की मात्रा बनानेवाले व्यक्ति कल्पनाशील और सौजन्यपूर्ण व्यवहारवाले होंगे। ऐसे व्यक्ति अपने मन में कोई बात नहीं रखते। हमेशा अपने आपको अभिव्यक्त करने के लिए उत्सुक होते हैं। वे उत्साही भी होंगे। (देखिए—चित्र ३ में क)

मात्राओं का अध्ययन करते हुए यह भी देखना चाहिए कि वे गोलाई लिये हुए हैं। अथवा तिकोनी (एंगुलर) हैं। (देखिए—चित्र ३ में ख)

जिन व्यक्तियों की मात्राएं गोलाई लिये होती हैं, वे आक्रामक स्वभाव के नहीं होते। जीवन को आनंद से जीना चाहते हैं। (देखिए—चित्र ३ में ग)

यदि मात्राएं तिकोनी होती हैं, तो व्यक्ति प्रतिस्पर्धा की भावनावाला होता है तथा आसानी से हार नहीं मानता। वह हर बात की समीक्षा कर तह तक पहुंचने की कोशिश किया करता है।

गोलाई, जिसे 'लूप' कहते हैं, ज्यादा बड़ी या लंबी होगी, तो व्यक्ति मजाकिया स्वभाव का होगा। भाषण करने में उसे ज्यादा आनंद आयेगा।

जिन व्यक्तियों का 'लूप' छोटा होता है, वे चतुर और येन-केन प्रकारेण अपना काम निकालनेवाले होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का दिमाग राजनीति की ओर ज्यादा भागता है।

मध्यक्षेत्र : हस्तलिपि के मध्य-क्षेत्र में वे अक्षर आते हैं, जो पंक्ति की बंधी-बंधायी सीमा में रहते हैं और उनकी रेखाएं नीचे की ओर नहीं जातीं। यदि हस्तलिपि में अक्षर समानुपाती ढंग से लिखे होते हैं, तो व्यक्ति जीवन में हर बात का विश्ले-

चित्र-३

(क) की की (ख)

(ग) की

(घ) g f f f f

2 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
20/8/92

हस्तलिपि–१

षणकर आगे बढ़ता है। यदि ये अक्षर छोटे-बड़े अर्थात समानुपाती नहीं होते, तो व्यक्ति सुविधापूर्ण जिंदगी जीना चाहता है। वह हर काम सुविधा से करता है।

नीचे का क्षेत्र : देवनागरी लिपि में नीचे के क्षेत्र में अधिकतर मात्राएं आती हैं। या फिर कुछ व्यक्ति कुछ अक्षरों की जैसे 'र' की रेखा को नीचे तक खींच देते हैं। ऐसे व्यक्ति हर बात में बहुत सावधान रहते हैं और कभी-कभी इतनी सावधानी बरतते हैं कि वह शंका में बदल जाती है। ऐसे व्यक्ति हर काम की नींव को पक्का बनाकर ही आगे बढ़ते हैं।

यदि नीचे आनेवाली रेखा सीधी होती है, तो व्यक्ति दो टूक बात करनेवाला होगा। वह फिज़ूल की बातों में न पड़कर जरूरी काम में ही अपना समय लगा-एगा।

रोमन लिपि में (अंगरेजी में) लिख-नेवाले लोगों की हस्तलिपि में 'जी', 'वाय', 'एफ' आदि शब्दों के 'लूप' को

हस्तलिपि–२

to a booklet, entitled 'Pushpanjali' cons
100 pages. It is a collection of English
by me in 1943, while I was in Nagpur
Now I wish to have them published. Th
publisher is my maternal uncle, Shri
"Yashashri", North Ambazari Road, Nag

अपने होने के लिए क्षमा की प्रार्थना।

हस्तलिपि—३

नीचे बेहद बड़ा बनानेवाले लोग अपने दृष्टिकोण और हितों को ही प्रमुखता देते हैं। वे व्यवहार-चतुर भी होते हैं। यदि ये 'लूप' लंबे हैं तो व्यक्ति रोमांस के साथ-साथ दार्शनिक प्रवृत्ति का होता है। (देखिए—चित्र ३ में घ)

कुछ लोग ये लूप छोटा बनाते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी भावनाओं को हमेशा नियंत्रण में रखते हैं। (देखिए—चित्र ३ में च)

यदि अक्षर के नीचे के लूप लंबे और गोल हों, तो व्यक्ति सांस्कृतिक विचारों का होता है। (देखिए—चित्र ३ में च)

अक्षरों के आकार: अक्षरों का आकार भी हमें बहुत कुछ बतलाता है।

कुछ व्यक्ति छोटे-छोटे मोती-जैसे अक्षर लिखते हैं। ऐसे व्यक्ति कला-प्रिय और साहित्यिक रुचि के होते हैं। वे हर चीज के विस्तार पर ज्यादा ध्यान देते हैं। ऐसे अक्षरोंवाले व्यक्ति साहित्यकार, 'स्कॉलर', दार्शनिक, राजनेता और सफल पर्यवेक्षक होते हैं तथा जीवन में निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं।

उदाहरण के लिए हस्तलिपि-१ को लें। इस हस्तलिपि में अक्षर छोटे हैं। अतः ये अक्षर किसी कला-प्रिय और साहित्यिक रुचिवाले व्यक्ति के होने चाहिए। इस हस्तलिपि से जो एक बात स्पष्ट होती है, वह यह कि इस व्यक्ति ने अपना जीवन स्वयं बनाया है। छत्तीस वर्ष की अवस्था के बाद इन्हें अपने जीवन में मान-सम्मान और मान्यता मिली होगी।

हस्तलिपि में अक्षरों का झुकाव बायीं ओर है, अतः स्वभाव से ये आत्मदर्शक होंगे।

(हस्तलिपि-१ स्वर्गीय सुमित्रानंदन पंत की है)

अब इनके हस्ताक्षर देखिए। हस्ताक्षर के नीचे खिंची पंक्ति में 'हुक'-से बने हुए हैं। यह इस बात का द्योतक है, मन-लायक काम न होने पर ये फौरन चिड़चिड़ा उठते होंगे।

अब अध्ययन के लिए एक दूसरी हस्तलिपि लें। इस हस्तलिपि में अक्षर समानुपाती ढंग से लिखे गये हैं। इनसे पता चलता है कि ये किसी भी बात का बड़ी गहराई से अवलोकन करते हैं। प्रत्येक बात के उचित-अनुचित पक्ष का विश्लेषण करने के बाद ही किसी निर्णय पर पहुंचते हैं। और जिस बात का संकल्प करते हैं, उसे पूरा किये बिना चैन से नहीं बैठते। इसका पता ';' अक्षर पर लगे

कादम्बिनी गीत गज़ल प्रतियोगिता निर्णय

'कादम्बिनी' के सितंबर १९७९ अंक में हमने पहली बार गीत-गजल प्रतियोगिता की घोषणा की थी। इस आयोजन के पीछे हमारा उद्देश्य था हिंदी में अच्छे गीतों की पुनः प्रतिष्ठा के साथ-साथ 'गजल' नाम से उर्दू से भिन्न शैली में हिंदी में जो नये प्रयोग हो रहे हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों पाठकों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। दुःख की बात है कि हमें एक भी गीत पुरस्कार-योग्य नहीं मिला, इसलिए गीतों पर घोषित पुरस्कार को हमें खेदपूर्वक रोकना पड़ रहा है।

गीत की तुलना में हमने गजल के प्रति ज्यादा उत्साह देखा है और इस प्रतियोगिता के माध्यम से कई अच्छी गजलें हमारे सामने आयी हैं। इन गजलों में से पुरस्कार-योग्य गजलों का चुनाव एक निर्णायक-मंडल ने किया। निर्णायक-मंडल के सभी सदस्य गजल विधा के विख्यात व्यक्ति हैं और उन्होंने निर्णय में पूरी निष्पक्षता बरती है। निर्णायक-मंडल के निर्णय के अनुसार निम्नलिखित तीन व्यक्तियों को पुरस्कार दिये जा रहे हैं:—

श्री योगेन्द्रदत्त शर्मा, ओंकार गुलशन, सुश्री राजकुमारी रश्मि

निर्णायक-मंडल का मत था कि इन पुरस्कृत गजलों को किसी श्रेणी में विभाजित न किया जाए और प्रत्येक गजल को एक-सी राशि दी जाए। प्रत्येक पुरस्कार-विजेता को सवा सौ रुपये की राशि रचना-प्रकाशन के बाद भेज दी जाएगी। पुरस्कृत रचनाएं इसी अंक में पृष्ठ ३२, ३३, ३४ पर प्रकाशित की जा रही हैं।

—संपादक

'डॉट' से लगता है। इनका ';' का डॉट एक छोटी-सी लाइन की तरह नजर आता है। इसी तरह इनका 'P' अक्षर भी एक विशेषता लिये हुए है। अर्थात वे 'P' को दायीं ओर काटते हैं। इससे इनकी साहित्यिक रुचि के साथ-साथ तीव्र बुद्धि का भी पता चलता है। यद्यपि पेशे से ये किसी अन्य क्षेत्र में हैं, पर वे साहित्य भी रचते हैं। ये जीवन में कोई ऐसा कार्य करना चाहते हैं, जिसके कारण उन्हें हमेशा याद रखा जाए। **(हस्तलिपि २ म. प्र. उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री पी. के. तारे की है)**

अब एक तीसरी हस्तलिपि को लें। इस हस्तलिपि में लेखक ने शिरोरेखा नहीं खींची है। अतः ये हमेशा स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहते हैं और अपने जीवन में किसी का दबाव पसंद नहीं करते। इनके आकारों में कहीं 'लूप' नहीं है, और जो हैं, वे गोल नहीं, तिकोनी आकृति लिये हुए हैं। इससे पता चलता है कि ये जीवन में कभी हार नहीं मानते। ये जीवनभर कुछ न कुछ करते रहना चाहते हैं।

ये दार्शनिक एवं अंतर्मुखी प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं तथा यदि साहित्य रचते हैं, तो इसमें पीड़ा और मन की छटपटाहट ही अभिव्यक्त होती है।

(हस्तलिपि ३ प्रख्यात कथाकार श्री जैनेंद्र कुमार की है।

द्वारा : कादम्बिनी

नहीं भूलता गुजरा जमाना

एक चेहरे के भीतर जैसे दूसरा चेहरा भी होता है। वैसे ही एक जिंदगी के भीतर भी दूसरी जिंदगी होती है। उस दूसरी जिंदगी में कभी कुछ ऐसा गुजर जाता है कि भुलाये नहीं भूलता। पढ़िए, यहां कुछ विख्यात व्यक्तियों की गुमनाम जिंदगी की वह छिपी हुई दास्तान--यहां वे बड़े मजे से उजागर कर रहे हैं।

खुफिया नजर के घेरे में

सन् १९२७ की बात है। मैं बेकार था और क्वांरा था। आये नागपुर से मेरे मामा महात्मा भगवान दीप। मैं उन्हें स्टेशन पर मिला। मालूम हुआ कि रावलपिंडी जा रहे हैं और वहां से इरादा है, सब छोड़कर पांव-पैदल जाने का कश्मीर। मुझे जाने क्या हुआ, कि मैं साथ हो लिया। महात्माजी के अलावा दो युवक थे, और चौथा मैं हो गया।

रावलपिंडी में कहा गया, "जो है सो यहीं छोड़ देना होगा, जो भी कपड़ा कंधे पर है उसे लाद कर अब कश्मीर तक का रास्ता नापना होगा। कश्मीर भी सीधे नहीं, पंजा साहब, हवेलियां और एबताबाद होकर!"

चलिए ज्यों-त्यों कश्मीर की घाटी में हम बारमूला पर उतरे। कस्बे में घुसने पे एक साधु ने, जो मौनी बाबा थे, मिले और हाथ से स्लेट पर पहले अंग्रेजी में लिखकर पूछा—"आप कहां जाएंगे?" फिर हिंदी में और फिर उर्दू में। आखिर स्लेट के मार्फत उन्होंने निमंत्रण दिया कि आप यहां कहां ठहरना पसंद करेंगे? बस्ती में या फिर बाहर बगीचे में!

उद्यान में खासा एक कॉटेज बना था। कंधे पर से बोझ उतार कर, हम वहां टिक गये। बराबर में उसी तरीके का एक और बंगला था, जहां कुछ संभ्रांत लोग ठहरे हुए थे। लेकिन उन मौनी बाबा की कथा यहां नहीं कहनी है। बाद में मालूम हुआ कि वे सरकारी खुफिया थे और तैनात थे इस निगहबानी के लिए कि कोई कश्मीर के रास्ते रूस की तरफ निकल जाने को तो नहीं आया है।

गली-मक्खनलाल, दरियागंज, दिल्ली-६
(प्रख्यात उपन्यासकार एवं चिंतक)
जैनेंद्रकुमार

जीवन का ऐतिहासिक निर्णय

नवंबर के पहले सप्ताह महात्मा (गांधीजी) अलीगढ़ दौरे पर गये और वहां से इलाहाबाद आये। यहां पहले उन्होंने एक सार्वजनिक सभा को संबोधित किया, फिर छात्रों से आनंद भवन में मिले। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय खिलाफत आंदोलन की चपेट में आ चुका था। पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय का सरकारी वातावरण था, अधिक संख्या में छात्र संयुक्त सरकार के प्रति अपनी निष्ठा जाहिर कर रहे थे। यद्पि उनमें कुछ ऐसे भी थे, जो टूटने की फिराक में थे। वे खुले रूप से असहयोग को अपनाने में हिचकिचा रहे थे, स्वीकार का मतलब था, छात्रों के माता-पिताओं का भी सरकार के साथ असहयोग। जॉर्ज जोसेफ की आंखें मुझ पर टिकी थीं, जैसे ही मैंने आनंद भवन छोड़ा, वैसे ही उन्होंने मुझे टोका। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं अपना वचन नहीं तोड़ूंगा।

उस रात तीन बजे तक मेरा और धीरेन्द्र वर्मा का काफी लंबा-चौड़ा वाद-विवाद चला। हालांकि वह भी अपनी ही तरह के मार्ग से देश-भक्ति पर निष्ठावान था; नहीं चाहता था कि 'क्रुद्ध भीड़ और नीच झगड़ों' में फंसे। सावधान करते हुए उसने मुझे सलाह दी कि यदि मैंने असहयोग किया, तो जीवन भर सुखी नहीं रहूंगा। लेकिन मुझे चैन कहां था। सोचता यदि मैंने असहयोग में भाग नहीं लिया, तो क्षण भर भी मस्तिष्क शांत नहीं रहेगा। हमारे लंबे और गरम वाद-विवाद ने उसकी दादी की नींद हराम कर दी थी, वे हमारे कमरे में आयीं, और इतनी देरी तक न सोने के बारे में पूछने लगीं। उन भली वृद्धा महिला को क्या मालूम था कि मैंने एक ऐसा निर्णय कर लिया है, जो मेरे पूरे जीवन की धारा को ही बदल देगा।

निर्णय तक पहुंचने पर मैं खुश था, और अपना थोड़ा महत्त्व समझने लगा। अंतिम बार कालेज गया। जब मैं इतिहास की कक्षा में गया, तब मैंने पाया कि शिक्षक अपने उन छात्रों को पहचानने की कोशिश कर रहे हैं, जो असहयोग की ओर झुक रहे थे। जैसे ही इस बात पर वे कुछ कहते, मैं तुरंत खड़ा हुआ और कहने लगा कि आपको धन्यवाद, मेरा आपको अंतिम नमस्कार और सभी साथी छात्र भाइयों को भी।

शिक्षक ने व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए 'शैली' की प्रख्यात बात दोहरायी, "इतिहास राजनीति की जड़ है," और मुझे बुलाकर इतिहास सीखने की शिक्षा देने लगे। मेरी अंतश्चेतना सचेत हुई, तो मैं सोचने लगा कि मैं एक ऐतिहासिक आंदोलन में भाग लेने जा रहा हूं। इतिहास का निर्माण होगा। बगैर यह समझे कि प्राध्यापक कुछ कहेंगे, कक्षा से शीघ्र ही बाहर निकल गया।

उत्तरायण, जबलपुर (म. प्र.)
(सुप्रसिद्ध विचारक एवं राजनितिज्ञ)

प्रेम ही दुनिया में सार

हमारे जीवन में कुछ ऐसे प्रसंग आ जाते हैं, जिनका भुलाना आसान नहीं होता। बड़ों के जीवन में बड़े-बड़े प्रसंग आते हैं और छोटों के जीवन में छोटे-छोटे, ऐसी बात नहीं है। कभी-कभी छोटों के जीवन में भी ऐसे कुछ प्रसंग आ जाते हैं, जो कि बड़े-बड़े कहे जा सकते हैं, दूसरों पर भले ही वे कोई बड़ा असर न डाल सकें। बहुत-से प्रसंगों को, सुख और दुःख के भी प्रसंगों को, किसी तरह फिर भी भुलाया जा सकता है। पर कुछ ऐसे भी प्रसंग हरेक व्यक्ति के जीवन में बुलाये या अनबुलाये आ जाते हैं, जो भुलाये नहीं जा सकते। ऐसे ही एक प्रसंग का स्मरण आज भी मेरे मन में वैसा ही ताजा बना हुआ है।

फरवरी, १९३५। दिल्ली से झांसी जा रहा था मैं, बंबई-एक्सप्रेस से। डिब्बे में कुल छह-सात मुसाफिर थे। गाड़ियों में उन दिनों, तीसरे दर्जे में भी, काफी जगह रहती थी।

ग्वालियर से गाड़ी छूट चुकी थी। समय कोई पांच का था। पौ फटती आ रही थी, फिर भी कुछ-कुछ अंधेरा था। जिस डब्बे में मैं बैठा था, उसी में, सामने की बेंच पर, दमे से पीड़ित एक अधेड़ मुसलमान ने चारखाने का अंगोछा बिछाकर नमाज पढ़ी, और उसके बाद वह करुणाभरी धुन में रामायण की चौपाइयां गाने लगा। अर्थ भी कहता जाता था। कभी या 'इलाही' और कभी 'अय राम' उसकी दर्दभरी आवाज से निकल रहा था। जब प्रभाती की धुन में 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई' मीरा का यह भजन उसने गाया, तब प्रेम से विह्वल हो गया। फिर पागल की तरह बक-झक करने लगा। हमारे साथ के मुसाफिर कुछ तो उसकी ओर अचरज से देख रहे थे और कुछ हंस रहे थे। मगर वह 'मस्त मौला,' बगैर किसी की परवाह किये, अपने कुमार्गी मन को गालियां सुना रहा था। —'बदमाश धोखेबाज कहीं का! जहर का घड़ा सर पर उठाये मिलने चला है गिरिधर गोपाल से। शरम भी नहीं आ रही शैतान के बच्चे को।'

मन हुआ कि क्यों न उसके पास बैठकर कुछ बात शुरू की जाए। टीन का टोंटीदार लोटा, रामायण का फटा-पुराना गुटका, एक लकड़ी और काली कंबली। बस, यही सारा सामान था उसका। पांच-सात मिनिट मुनौवरखां (यही उसका नाम था) से जो बात हुई, उसका सार था :

"मालिक का गुनहगार हूं जनम-जनम का। रामजी के रहम का ही आसरा है, अब तो भैया जी। बुंदेलखंड का एक मुसलमान हूं। एक रियासत से ६ रुपये माहवार मिलते हैं, उसी से आपकी गिरस्ती की गुजर होती है। घर में गऊमाता पाल रखी है। सेवा करता हूं उसकी, और आपके बालगोपाल उसका दूध पीते हैं। गोश्त से मुझे दिली नफरत है। सूखी-रूखी रोटी खाकर तो इस शैतान शोहदे मन का यह हाल है, पुलाव-कबाब इस हरामी को मिलने लग जाए, तो न जाने क्या-से-क्या गजब ढाये। चाकरी से जो वक्त मिलता है,

उसे मालिक की याद में लगाने का जतन करता रहता हूं। तिवारी बाबा से रामायण का अरथ पूछ लिया करता हूं। अपने बाप के मानिंद मानता हूं मैं उनको। भैयाजी, हिंदू और मुसलमान के दर्म्यान में भेद नहीं करता। समझता हूं, एक प्रेम ही दुनिया में सार है, और सब असार है।"

उस अज्ञात मस्त औलिये के इस पांच-सात मिनिट के सत्संग से सचमुच मैंने लाभ उठाया, और भाग्य सराहा। बरबस मनौवरखां से विदा लेनी पड़ी। झांसी का स्टेशन आ गया था।

एफ-१२ माडलटाउन नयी दिल्ली
प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक

शिष्टाचार की सीख

वो घटना है मेरे छात्र जीवन की। शिवपुरी के पास, एक ग्रामीण क्षेत्र में हम विद्यार्थियों का कैंप लगा हुआ था। शहरी वातावरण से अलग, अपने मित्रों के साथ प्रकृति की खुली हवा में गांव की हरियाली और नैर्सागिक सुंदरता में हंसते-गाते, दिन कब पंखेरू की तरह उड़ गये, पता ही नहीं चला। अंत में वह दिन भी आ गया, जब हम सभी को अपने-अपने घरों को लौटना था।

घर पहुंचकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। काफी दिन भी हो गये थे, घर से बाहर कैंप में रहते हुए। मन में एक अजीब-सा उत्साह था। पिताजी को सुनाने के लिए, मन में बहुत कुछ उमड़ रहा था। जब पिताजी आये तो मैंने तमाम बातें उन्हें सुनायीं, जिन सब का आशय इतना भर था कि मैं कैंप में काफी प्रसन्न रहा।

अभी मैं अपनी बातें पूरी तरह उन्हें सुना भी नहीं पाया था कि अचानक उन्होंने मुझ से पूछा, "तुम्हें जो इतनी खुशी कैंप में मिली, उसके लिए तुमने अपनी अध्यापिका को धन्यवाद दिया अथवा नहीं!"

मैंने झिझकते हुए कहा, "नहीं।"

बस, वे एकदम नाराज हो उठे। बोले, "तुरंत जाओ और अपनी टीचर को आभार व्यक्त करो।"

इतने दिनों बाद घर लौटा था। मगर अध्यापिका को आभार व्यक्त करने के बाद ही, घर में प्रवेश करने की मुझे इजाजत मिली। आज भी जब कभी मैं किसी विद्यालय के पास से निकल रहा होता हूं, अतीत की वह घटना याद हो आती है और बरबस ही हाथ अभिवादन के लिए जुड़ जाते हैं।

जय विलास, ग्वालियर
(संसद सदस्य)

गीत-गजल प्रतियोगिता

पुरस्कृत गजलें

नकाब का मौसम

नींद टूटी तो ख्वाब का मौसम,
उफ ये उतरी शराब का मौसम !
हर टिटहरी की प्यास दफ्न हुई,
खूब है यह सराब का मौसम !
ये उदासी, थकन, ये खामोशी,
है यही अब शबाब का मौसम !
बादलों को सलाम करता है,
आजकल आफताब का मौसम !
चाट कर ओस मस्त रहता है,
खुश्क-प्यासे गुलाब का मौसम !
कल का बिगड़ा नवाब लगता है,
गो है खाना-खराब-सा मौसम !
पर्त-दर-पर्त अक्स चेहरों के,
फितनागर है नकाब का मौसम !

—योगेन्द्र दत्त शर्मा

१६१, मुहल्ला कन्हैयालाल,
गाजियाबाद (उ. प्र.)





मुसकान का परदा

कितने जिस्मों पे नहीं आज भी कपड़ा कोई
इस समस्या पे तो आयोग न बैठा कोई।

बात कुर्सी की बहुत गरम है चौराहों पर
डूबते गांव की करता नहीं चर्चा कोई।

चोर बनता नहीं बच्चा तो भला क्या बनता
जब खिलौना नहीं बाजार में सस्ता कोई।

इस नये दौर के लोगों को दिखाने के लिए
दर्द पर डाल दो मुसकान का परदा कोई।

यूं भटकती हुई मिलती है गरीबी अकसर
जिस तरह भीड़ भरे शहर में अंधा कोई।

जब तलक भूख का उपचार न होगा गुलशन
पाठशाला में न पढ़ पाएगा बच्चा कोई।

—ओंकार गुलशन
आजाद बाल एकेडमी, हरिनगर, मेरठ



कहानी नहीं कहीं

सागर में, नदी, ताल में पानी नहीं कहीं
धरती की वसीयत की कहानी नहीं कहीं।

कमजोर पत्तियों से ये पीले पड़े चेहरे
हैं इस तरह टूटे कि रवानी नहीं कहीं।

बस गीली-लकड़ियों-सी सुलगती हैं हर नजर
सब इस तरह खामोश, जवानी नहीं कहीं।

देने को बढ़े हाथ तो घर तक लुटा दिया
जाहिर है इस मिसाल के दानी नहीं कहीं।

ये आग कलेजे की है चुपचाप पी रहे
इतने सहे हैं जुल्म कि सानी नहीं कहीं

जब भी हुआ है इनकलाब इस तरह हुआ
बाकी बची है आज निशानी नहीं कहीं।

—राजकुमारी 'रश्मि'
द्वारा सुरेश टेलर्स, चंपाबाग,
नयी सड़क ग्वालियर-1

कहानी

चीरघर

● प्रमोद सिन्हा

उसके शव को पोस्टमार्टम टेबुल पर लेटा देने के बाद सभी बाहर आ गये थे। ... क्योंकि, यह आत्महत्या का केस था और पोस्टमार्टम के बाद ही दाह-संस्कार के लिए लाश मिल सकती थी।

पोस्टमार्टम शुरू होने में काफी देर थी, क्योंकि डॉक्टर देर से आया था। अब तक वह कचहरी में किसी मुकदमे की गवाही में गया था जहां जिरह के वक्त उसकी काफी खिचाई हुई थी, इसीलिए वह कुछ उखड़े-उखड़े मूड में था।

हम सभी बाहर नीम के पेड़ की छाया में बैठे समय काट रहे थे।

हम लोगों के शव से पहले एक नंबर पर एक दूसरा शव था जो कि खेत के मामले में कत्ल का था। इसके साथ के सात-आठ पगड़ी बांधे हुए गांव-गवार के लोग थोड़ी दूरी पर पीपल की छांव में बैठे हुए थे। उनके चेहरे उदास थे और संभवतः वे लोग उसी व्यक्ति के विषय में बातें कर रहे थे, जो खेत की मेड़ पर लड़ता हुआ मारा गया था।

धूप तेज होती जा रही थी। गरमी की चढ़ती हुई दोपहर की हवा की सरसराहट में उड़ते हुए सूखे पत्ते और धूल के बवंडर समय और आदमी के कटाव से टकरा रहे थे। पूरे माहौल में उदासी की गहरी छाया थी, जो कुछ हद तक मनहूसियत की चुप्पी लिये हुए थी। नीम के पेड़ के पास बैठे कभी कोई एक दूसरे से बात कर लेता, अन्यथा सभी रह-रह के चीरघर के गेरूए रंगवाले उस मकान की ओर देख लेते थे, जो ब्रिटिश भवन-निर्माणकला की छाप लिये हुए था। उसके तिकोने कोणदार गुंवद 'स्लाटर हाउस' की छत की तरह लग रहे थे। पूरा चीरघर बड़े खपरैलों से छाया हुआ था और दीवारों के लिए बड़ी ईंटों का उपयोग किया गया था। उस पर गेरूए रंग की गाढ़ी पोताई की गयी थी, जिन्हें देखने से कोई सुकून नहीं मिलता था।

एक नंबर की लाश का पोस्टमार्टम खत्म होते ही डॉक्टर थोड़ी देर में बाहर आ गया और सामने अपने क्वार्टर की ओर चला गया था।

कंपाउंडर ने आकर गांववालों से

कुछ कहा और वह चीरघर के भीतर चला गया। वे लोग एक दूसरे का मुंह देखने लगे थे।

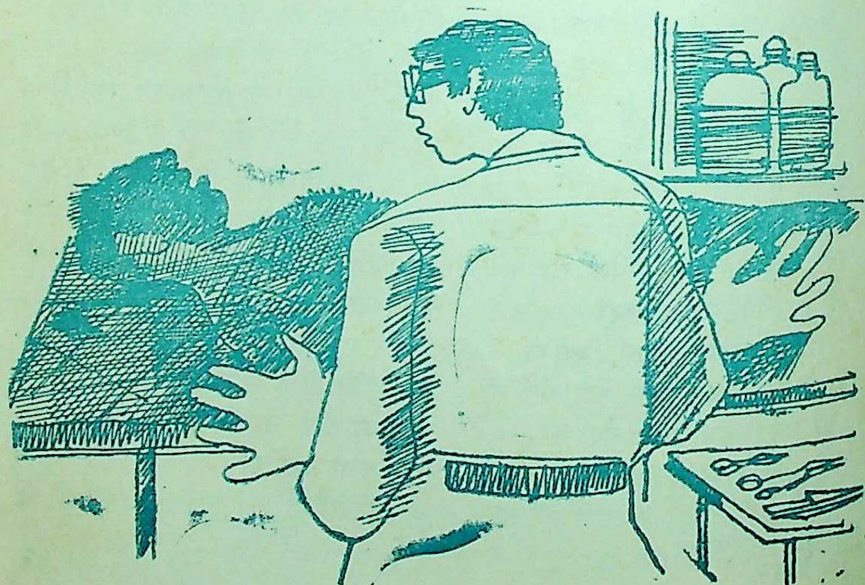
नीम की जड़ पर बैठे हुए नर्मदेश्वर चाचा उत्सुकतावश यहां से उठकर गांव-वालों के पास चले गये थे और कुछ कह-सुनकर बुझे हुए चेहरे के साथ वापस आ गये थे। उन्होंने बताया था कि पोस्टमार्टम के वक्त लाश का सिर और पेट खोला गया था, 'विसरा' निकालने के लिए। कंपाउंडर कहता है कि सिर पर रूई की पट्टी लगाकर बांध दी है। पर पैसा दोगे तभी पेट में टांका लगाया जाएगा, नहीं तो ऐसे ही पेट में रुई भरकर बिना टांका लगाये लाश दे दी जाएगी।

चीरघर से अभी भी खटर-पटर की आवाज आ रही थी।

एक बूढ़ा, जो किसान लगता था और दुःखी चेहरे से संभवतः मृतक का नजदीकी रिश्तेदार भी लगता था, उसने कहा—"पइसा खाती बबुआ के लाश के अहसन दुर्गत ना होई। दे द हो बुलाकी कतना मांगता। इ सखा लाशों प चढ़के पइसा मांगे लन स", कहकर वह आसमान की चिलचिलाती धूप की ओर शून्य नजरों से देखने लगा था और बुलाकी अपनी टेंट से मुड़े-तुड़े मुट्ठीभर रुपये निकालकर गिनते हुए चीरघर के दरवाजे पर चला गया था।

मुंशी ने दरवाजा खोलकर बूढ़े को भीतर बुला लिया था, और वह चीरघर के कमरे से दस मिनट बाद लौटा था।

चीरघर के बगल में कटरा राजापुर सड़क पर धूप की तेजी के बाद भी आने-



जानेवालों का तांता लगा हुआ था। इधर से गुजरनेवालों के लिए चीरघर की ओर उड़ती हुई नजरों से देख लेना एक आम बात हो गयी है। उन्हें इस मैदान में, नीम या पीपल के नीचे बैठे लोगों से ही इस बात का पता चल जाता था कि चीरघर आबाद है, और कहीं कत्ल, आत्महत्या या रहस्यमय मौत हुई है।

एक मरियल टट्टू एक्का खींचता अपनी तेज टापों की आवाज को दोपहर के सीने पर छोड़ते हुए आगे बढ़ता जा रहा था। उसके मुंह से फेन निकल रहा था।

तभी एक रिक्शा पर टिकटी को सीढ़ी की तरफ पकड़े कोई आया था। यह गांववालों की लाश का ही आदमी था, क्योंकि उसके आते ही तैयारियां तेजी से शुरू हो गयी थीं। गांववालों में से एक आदमी इधर आ गया था। वह नर्मदेश्वर चाचा को बता रहा था कि यह रामदीन था। छह फुट का गबरू जवान, दहाड़ता था तो लोगों की होश फाख्ता हो जाते थे। रात अकेला खेत पर सो रहा था, तो लोग पुश्तैनी दुश्मनी का बदला निकालने के लिए आ गये थे।

रामदीन अपने हक के लिए लड़ा था, और आखिरी दम तक लड़ता रहा था। इधर टिकटी तैयार हो रही थी और उधर लाश का पंचनामा हो रहा था। अब तक दो और पुलिसवाले आ गये थे। कार्यवाही पीपल के पेड़ के नीचे चल रही थी। तभी चीरघर का जालो-वाला दरवाजा खुला। कंपाउंडर काफी खुश-खुश बाहर निकला और उसके पीछे लाश को सिर व पैर की तरफ से पकड़े चार लोग बाहर आये थे।

वे लोग अपनी तैयारी तेजी से कर रहे थे, क्योंकि अंतिम-संस्कार करने से पहले ये लोग इसे गांव एक बार ले जाना चाहते थे। इसके पहले कि अर्थी उठती लाश वाले का मामा ट्रक लेकर आ गया था।

ये सभी अर्थी उठाने को तैयार थे। पर सभी एक दूसरे की ओर देख रहे थे कि देर क्या है, तभी पुलिस लाइंस की तरफ से दारोगाजी आये थे और पंचनामा की अंतिम कार्यवाही पर हस्ताक्षर होते ही ये लोग अर्थी उठाकर 'राम नाम सत्य है' कहते ट्रक की तरफ चले ... और पुराना ट्रक घर्र ... घर्र ... की बेजान आवाज के साथ चल पड़ा था।

एक-एक पोस्टमार्टम में ये लोग कितना समय लगा देते हैं? ये लोग थोड़ा काम और ज्यादा आराम के आदी हो गये हैं। लेकिन ऐसे समय इन लोगों से कुछ कहा भी नहीं जा सकता। गांववालों में से किसी ने कुछ कहा था तो कंपाउंडर ने टके-सा जबाव दे दिया था कि यहां ऐसे ही होता है।

अगर ऐसे ही चलता रहा तो लाश रात से पहले नहीं मिलेगी। रात में दाह-संस्कार कैसे होगा? ऐसी स्थिति में घर ले जाकर शव को उस पार खपरैल के बरामदेवाले कमरे में रख दिया जाएगा

और उसके चारों तरफ बर्फ की सिल्लियां इस तरह रख दी जाएंगी कि रातभर में लाश खराब न हो। तब तक शायद आरा से रंजीत मामा और गोरखपुर से जितेंदर चाचा भी आ जाएंगे।

यह वही शहर था, जहां कि हम दोनों भाइयों ने जिंदगी के वर्षों गुजारे थे। हम लोग साथ-साथ खेले थे, लड़े थे और बड़े हुए थे। पिताजी ने हम लोगों का नाम आनंद मंदिर स्कूल में लिखा दिया था...और तब मैं उसकी उंगली पकड़े इसी कटरा राजापुर सड़क से रोज गुजरा करता था।

पर दोनों चीरघर के मैदान में कभी नहीं उतरे थे। तब हम लोग इसे मुरदाघर के नाम से जानते थे और समझते थे कि ढेर सारे मुरदे इसमें हमेशा यों ही रखें रहते हैं, इसलिए इस इमारत को देखते हुए भी डरते थे। पर अब वहीं, भीतर सारी बातों से बेखबर, लाश की मुद्रा में था और हम बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

वह मुझसे छोटा तो था ही, खोटा भी था। उसका मन पढ़ने में नहीं लगता था, इसलिए तंग आकर आठवीं पास होते ही बाबूजी ने उसे आई. टी. आई. के 'वेल्डिग ट्रेड' में भर्ती करा दिया था। तब से वह आई. टी. आई. ट्रेनिग के लिए रोज सुबह ही-सुबह कटरा से नैनी तक साइकिल से आने-जाने लगा था। शाम को लौटने पर वह कभी-कभी पस्त हो जाता, पर उसके चेहरे पर शिकन तक नहीं आती थी।

भगवानदीन ने चीरघर के भीतर जाकर कुछ देखा और आकर बताया कि लाश का चेहरा ढका हुआ नहीं था, इसलिए मुंह पर मक्खियां बैठ रही थीं। ये लोग लाश का रख-रखाव भी ठीक से नहीं करते। लावारिस लाशों को जलाने के लिए भी इन्हें पैंतीस रुपये मिलते हैं। लाश को गंगाजी में प्रवाह करा देते हैं और उस पैसे को भी बांट लेते हैं। साले मुरदाखोर...। कहकर मुंह का कसेलापन दूर करने के लिए वह बीड़ी पीने लगा था।

चीरघर के भीतर सिवा कंपाउंडर, जमादार और सफाई कर्मचारी के और दूसरा कोई नहीं था। पूछने पर पता चला



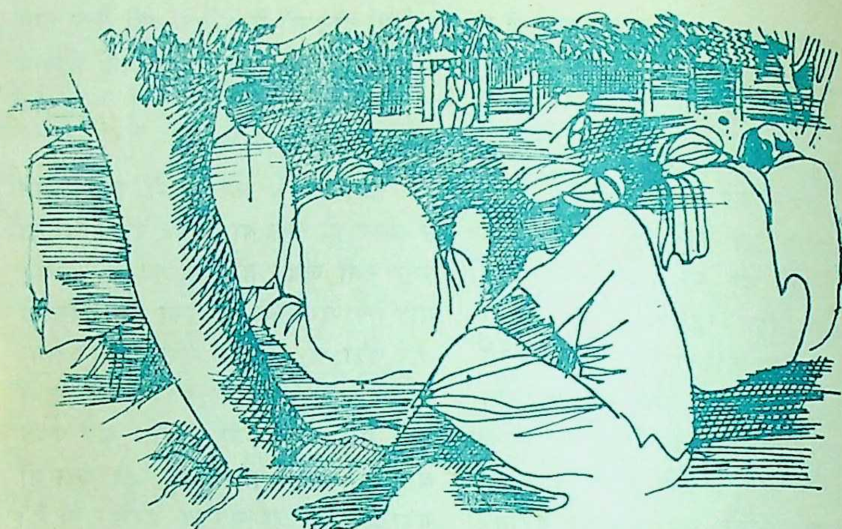
कि डॉक्टर खाना खाने चला गया है। लंच के बाद लौटेगा तो लाश नंबर दो की कार्यवाही शुरू की जाएगी।

वह फिर आहत हो गया था और जमीन पर तिनके से कुछ लिखने लगा था। मां ने जिस चेहरे पर कभी शिकन भी न पड़ने दी थी, उसी चेहरे पर मक्खियां भिनक रही थीं।

भाई ट्रेनिंग के दिनों में ही कसरत करने लगा था। वह अपने बाजू की मछलियां दिखाया करता था। उन दिनों वह अपनी शारीरिक गठन के प्रति काफी सजग हो गया था। लेकिन यह सजगता बराबर इस ओर ध्यान दिलाती रही थी कि वह कम पढ़-लिखकर भी जिंदगी में उन तमाम लोगों की तरह कुछ करना चाहता है, जो अपने पैरों पर खड़े हैं और अपनी जिम्मेदारियां निभाने से कतराते नहीं। उसने अपना नाम रोजगार दफ्तर में भी लिखवा लिया था और आये दिन उसका चक्कर लगाया करता था। पर पिछले तीन साल की बेरोजगारों की वरिष्ठता में भी उसे कहीं जगह नहीं मिल सकी थी, तो इसने कुंभ के लिए बनते पीपे की एक वेल्डिंग वर्कशाप में कम पैसे में ही काम शुरू कर दिया था। काम 'पीस' पर करना पड़ता था, इसलिए कभी-कभी घर खाना खाने भी नहीं आता और अकसर काम के कारण उसे रात में भी रुक जाना पड़ता था। पर इतनी मेहनत-मशक्कत के बावजूद कुल 'ओवरटाइम' मिलाकर दो ढाई सौ-तीन सौ से अधिक नहीं मिल पाते थे। कभी-कभी छुट्टियों में वह हिसाब लगाया करता था कि ठेकेदार ने हिसाब में इतने रुपये मार लिये।

तबादले के कारण मैं इन लोगों से अलग हो गया था। काम की अधिकता तथा नयी जगह होने के कारण मैं छह माह तक घर नहीं जा सका था। पिछली बार गया, तो वह कुछ गुमसुम रहने लगा था। वह मुझसे कतराता रहा था और मैं बड़ी मुश्किल से उससे बात कर पाया था। मैंने समझा था कि वह अब बड़ा हो गया है और कुछ संकोच करने लगा है। पर वह उसके भीतर की घुटन थी, जिससे, लगातार कोशिशों के बाद भी वह उबर नहीं सका था।

मां ने बताया कि वह काफी दौड़-धूप के बाद टेलीफोन के उपकरण बनाने के एक प्राइवेट फर्म में काम पा गया था, उसने 'क्वाइल' के तार 'वाइडिंग' करने में महारत हासिल की थी, पर साथियों के कहने में उसने हड़ताल में भाग लिया था और सिविल लाइंस और तेलियरगंज की यूनिट में एक साथ हड़ताल करवा दी थी। हड़ताल सफल रही थी। मालिक ने झुककर समझौता कर लिया था। पर मालिक के मन में इसके प्रति हमेशा के लिए एक गांठ बन गयी थी। वह इसे किसी मामले में फंसाने के चक्कर में था और अकसर जरा-जरा-सी बातों के लिए तंग करने लगा था। आखिरकार यह छंटनी



का शिकार हो गया था।

मुझे अफसोस था कि मैं उसकी आंखों के दर्द को नहीं पढ़ सका था। उसके मन की बातों के उमड़ते हुए सैलाब से नहीं परिचित हो सका था।

उसने अपने संघर्ष में मुझे भागीदार नहीं बनाना चाहा था, शायद वह समझता हो कि मैं इसमें उसकी कोई मदद नहीं कर पाऊंगा। मेरे वजूद और मेरी जिंदगी का यह तिरस्कार था। मैं जमीन पर लकीरें खींचते हुए अनजाने ही सही अपनी और उसकी गलतियों का हिसाब लगा रहा था। योग के अनुसार इस आत्महत्या के लिए हम दोनों ही बराबर-बराबर जिम्मेदार बन रहे थे।

हम लोग उसे अभी तक अविवाहित और गैर-जिम्मेदार समझ रहे थे, जबकि वह अपने अनुभवों में मुझसे कहीं अधिक संघर्ष की कटुता समेट चुका था।

उसने नौकरी से ऊबकर कुंभ में क्रॉकरीज की दूकान भी की थी। मां ने बताया कि वह बड़ी मेहनत से दूकान चलाता था। पर उसमें भी उसे घाटा ही आया था और वह दुःखी हो गया था।

उसने ईमानदारी और लगन का अंत इस तरह की असफलता देखकर नंबर दो का काम भी करना चाहा था। उसके दोस्त घनश्याम ने बताया था कि शुरू-शुरू में उसे सफलता भी मिली थी। पर वह जल्दी ही इस नागपाश से निकलना चाहता था, शायद इसीलिए वह एक लंबा काम करके इससे अलग होना चाहता था, पर वह दोस्तों की दगाबाजी का शिकार हो गया था। शायद, उन्हीं लोगों ने उसे धोखा

दिया था, जिनके लिए वह जिंदगी-मौत के फासले को कम करके लड़ा था और कई-कई बार अग्नि-परीक्षा से जिंदा निकल आया था। पर, यही बात कुछ लोगों को नागवार गुजरी और दोस्तों की धोखाधड़ी के कारण ही धंधा टूट गया था, तो उसने समझ लिया कि अब वह बूढ़े मां-बाप और जवान भाई-बहनों की आवश्यकता पूरी नहीं कर पायेगा। उसके सामने अपना हक वसूलती हुई लोगों की आंखें आयी होंगी, दोस्ती का फरेब आया होगा, अपनी असफलता आयी होगी और शुरू से ही लगातार असफल होती जिंदगी के संघर्ष से ऊबकर उसने आत्महत्या कर ली होगी।

यह आत्महत्या मेरे छोटे भाई की थी, मां के लिए बेटे की थी, शहर के लिए बेकार आदमी की थी और देश के लिए एक नागरिक की थी, जिसके रहने या न रहने से बहुत बड़े पैमाने पर कोई फर्क नहीं आनेवाला था। यह एक निजी क्षति थी, जो मेरे परिवार और उसके मित्रों तक ही सीमित थी।

नीम के पेड़ से एक कुत्ता जोरों से कांय-कांय करता चिल्लाता भाग खड़ा हुआ। गुंडा महाजन ने एक ढेला उठाकर सड़ियल कुत्ते को जोर से दे मारा था और वह तेजी से चिल्लाता दूर जाकर भी कांय-कांय कर रहा था। शायद इन लोगों का आभिजात्य अभी गया नहीं था।

तभी डॉक्टर उधर से आता दिखा। उसके साथ थानेदार भी था, जो बड़ी आत्मीयता से बातें करता जा रहा था।

डॉक्टर ने नीम के पेड़ के नीचे बैठे इतने आदमियों में से उपेक्षा भाव से भी किसी की ओर नहीं देखा। डॉक्टर को आता देख चीरघर के कर्मचारी सजग हो गये थे। जमादार आगे बढ़कर चीरघर का दरवाजा खोलकर अदब से खड़ा हो गया था।

वे दोनों ही भीतर चले गये, जमादार और कंपाउंडर भी भीतर चले गये और उनके जाते ही चीरघर का जालीवाला दरवाजा फिर बंद कर दिया गया था।

नीम के पेड़ के नीचे सभी लोगों में आशा का संचार हुआ कि पोस्टमार्टम अब होने ही जा रहा है, जल्दी खत्म हो जाएगा। पंडित टिकटी ले आये थे और नाई के पास लाश ले जाने से संबंधित जरूरी सामग्री थी। वह काफी देर पहले बाजार से आकर चुपचाप बैठा अपनी टूटी कमानी के चश्मे के मोटे शीशे साफ कर रहा था।

पंचनामा का दरोगा अपने दो सिपाहियों के साथ पोस्टमार्टम खत्म न होने के कारण दो बार चक्कर लगा गया था।

रमई काका बुढ़ापे में भी अस्पताल में रातभर जगने के कारण नीम की छांव में झपकी ले रहे थे। रमेसर बीड़ी पी रहा था। नर्मदेश्वर चाचा जल्दी लौटने की बात कहकर कहीं चले गये थे और पास-पड़ोस के दूसरे लोग जब से आये थे, यहां से हिले तक न थे। मैं सोच रहा था कि आत्महत्या

करते समय उसने यह नहीं सोचा होगा कि आखिर इस तरह मरने से दूसरों पर क्या बीतेगी। मां का बुढ़ापे की झुर्रियों से भरा चेहरा उसकी नजरों के सामने एक बार भी नहीं आया होगा या उसने बूढ़े बाप के विषय में नहीं सोचा होगा कि कचहरी की मुंशीगिरी से चार पैसा पानेवाले आदमी की झुकी कमर पर जिम्मेदारियों का बोझ किस तरह बढ़ाया जा रहा है। उसने मेरे बारे में भी नहीं सोचा कि मुझ पर क्या बीतेगी? जाने कितने सवाल, कितने जवाबों से मैं लगातार टकराता जा रहा था।

बाबूजी का बुढ़ापे का सफेद चेहरा भाई की लाश से अलग नहीं लग रहा था। कमर और झुक गयी थी। वे गुमसुम सिर झुकाये हुए थे। सारी रात वे अस्पताल में जागते रहे थे, डॉक्टर, नर्स और दवा की दूकानों के बीच दौड़ते रहे थे। वे बुरी तरह थके लग रहे थे, टूटे लग रहे थे और उनकी आंखें सूजी हुई थीं। बाबूजी सारा दर्द अकेले ही झेलते रहे थे, जबकि मैं तार मिलने के बाद पहुंचा था। मैं भाई की अंतिम क्षणों की जिंदगी का गवाह नहीं बन सका था, उसकी जिंदगी नहीं केवल लाश देखी थी, और चाहकर भी उसके लिए कुछ भी नहीं कर सका था। कबूतरों का एक पूरा झुंड कतार में उड़ता हुआ निकल गया था। नीम और पीपल के पेड़ पर चिड़ियों की चहचहाहट बढ़ गयी थी।

तभी चीरघर के दरवाजे से कंपाउंडर बाहर निकला था। वह सीधे नर्मदेश्वर चाचा के पास आया और इसके पहले कि वह कुछ कहे, चाचा ने अपनी जेब से कुछ नोट निर्लिप्त भाव से बढ़ा दिये थे। उन्होंने गिना तक न था।

जमादार ने आकर बताया कि पोस्टमार्टम हो गया है। सिर बांध दिया गया है और अब लाश का पेट सिला जा रहा है।

दिन की रोशनी खत्म होने को थी। काफी देर से आसमान में मंडरानेवाला गिद्ध शाम के धुंधलके में डूबते चीरघर के कंगूरे पर अपने पंखों को समेटकर बैठने लगा था।

अब वह दाहिने पंजे से अपना सिर खुजला रहा था। चीरघर के दरवाजे से लाश की ट्राली बाहर आ रही थी।

—१, स्टेट बैंक ऑफिसर्स कॉलोनी, लक्ष्मीपुर, बलदेवबाग, जबलपुर

अमरीका के फ्लोरिडा राज्य में पर्यटकों के आकर्षण का सबसे बड़ा केंद्र इन दिनों युद्धग्रस्त वियतनाम के एक गांव की झांकी बन गया है। तीन सौ एकड़ में बनाये गये इस गांव में कांटेदार तारों की बाड़ें हैं, खाइयां हैं, मशीनगन हैं, मारे गये लोगों के पुतले हैं, इस सारी नकल के बीच एक चीज असली भी है—वियतनाम के शरणार्थी।

'विचार-दीर्घा--४' में चर्चा का विषय था--'हमें कहां तक हंसना चाहिए?' इस चर्चा में भाग लेनेवाले अधिकांश पाठकों का मत है कि हंसने की एक सीमा अवश्य होनी चाहिए। --संपादक

विचार-दीर्घा --४

हमें कहां तक हंसना चाहिए ?

पुरस्कृत विचार

● गजानन सोनी

'विपिन में पावस के-से,
सहसा सौ-सौ सुंदर दीप जले...'

पंत ने अपनी प्रेयसी की हंसी को यही उपमा दी थी। हंसना स्वाभाविक मानवीय क्रिया है।

डेल कारनेगी ने एक चीनी कहावत उद्धृत की है– "जिस व्यक्ति को हंसना नहीं आता, उसे दुकान नहीं खोलनी चाहिए।"

अब प्रश्न उठता है--'हमें कितना हंसना चाहिए ?' तो, जब यही प्रश्न एक बार पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से किया गया तो उत्तर था--"जहां तक मुझे व आप को अच्छा लगे।"

क्या हमें सदैव हंसते ही रहना चाहिए ? इस बात से तो सभी सहमत होंगे कि व्यक्ति को सदैव ही हंसना नहीं चाहिए। और न ही ऐसी परिस्थितियों की उपलब्धि मनुष्य को हो पाती है कि वह सर्वदा हंसता रहे। अधिक हंसना दुष्परिणामों की उत्पत्ति करता है। यहां तक कि किसी के शोक के समय अधिक हंसना अस्वाभाविक एवं स्वच्छंद व्यवहार की उत्पत्ति करता है जो क्षणिक कालांतर में रोष, क्रोध व कलह में परिवर्तित होती है। विलियम जी. एलेन ने अपनी एक गद्य कविता में एक ऐसे व्यक्ति को नायक बनाया है, जो अधिकांशत: व्यर्थ ही हंसता रहता था और नगर के व्यक्तियों द्वारा सदैव उपेक्षित होता था।

हंसना तभी संभव हो पाता है जबकि मनुष्य की इच्छा हो। एक शोक-संतप्त मानव को हंसी दिलाइए; वह क्रुद्ध हो जाएगा। ऐसे समय में हंसना असभ्यता का परिसूचक होगा। साथ ही हंसने की मात्रा पर्यावरण पर भी निर्भर करती है। यदि वातावरण में उन्मुक्त ठहाके लगाये जा सकें, तो जी भरकर लगाइए। परंतु, वातावरण यदि मात्र एक मुसकान का चाहक है, तो होंठों को ही फैलने दीजिए। परिस्थिति जैसी हो, उतना ही हंसिए। हंसी को अशिष्टता से विमुक्त रखें।

--द्वारा, श्यामलाल सोनी, तीन खंभों के सामने, मकबरा बाजार, कोटा

मेरे चेहरे में देखने को क्या है?

डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन' का निवास-स्थान, बंबई में अमिताभ बच्चन का मकान। अब साहित्य से संन्यास। उनसे हमारी बातचीत।

प्रश्न—इस बार आपने अपना ७३वां जन्मदिन कैसे मनाया?

बच्चन—बहत्तर गीत बसंत दिखे
भाग्य में कितने और लिखे?

मेरे पोते-पोतियां यहां आ गये थे। मेरी पत्नी तो यहां आजकल है नहीं। घरवालों ने कुछ उपहार दिया। फिर हम लोगों ने बैठकर खाना-वाना खाया और इस तरह से जन्मदिन मन गया। और तो कोई खास नहीं। मैं जन्मदिन पर बहुत उत्सव वगैरा मनाने के पक्ष में नहीं हूं। निजी तरीके से मनाना चाहिए, यह ज्यादा अच्छा होता है, अपने परिवार के लोगों के साथ।

प्रश्न—आजकल आपकी दिनचर्या कैसी होती है?

बच्चन—दैनिक दिनचर्या अब क्या है! सिवाय इसके कि सुबह उठकर अपना घूम-घाम आये। अब कभी पांच बजे या कभी छह बजे जागता हूं। फिर उठकर घूमघाम आये। आकर नहाया-धोया। पूजापाठ किया, नाश्ता किया, फिर आप बैठे हैं, रिकार्ड करने के लिए। कोई नहीं होता, तो बैठकर अपना पढ़ते-लिखते हैं और फिर खाना-वाना खाकर सो जाते हैं। शाम को उठे, फिर थोड़ा घूमे-फिरे, किताबें आदि पढ़ीं। चिट्ठी-पत्री आती हैं, उसका जवाब वगैरा दिया।

**प्रश्न—'दुःख सुख बीती सो बीती
याद न कर बरबाद बही को'**
यह आपने, अपने पत्र में मुझे लिखा है। इसका सादर स्पष्टीकरण चाहूंगा।

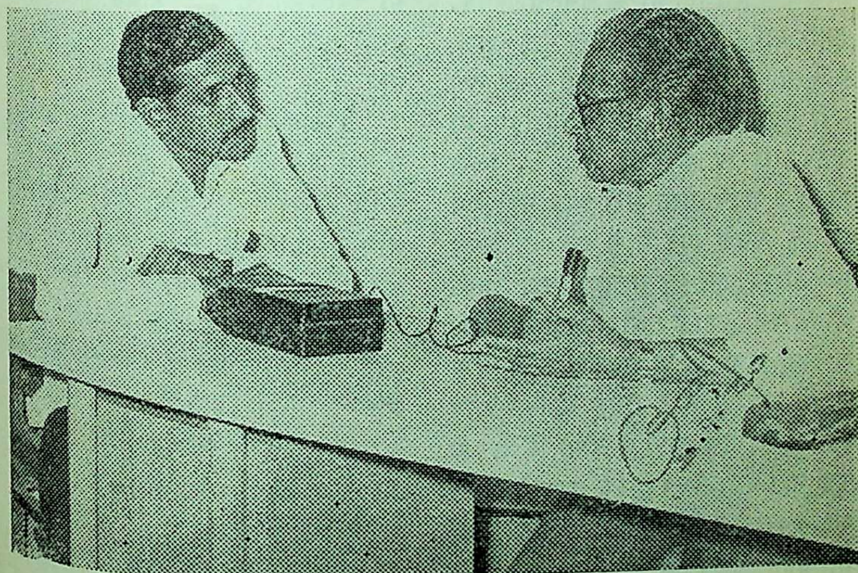
बच्चन—यह तो बहुत साधारण-सी बात है। जीवन में सुख-दुःख तो आते ही रहते हैं। उनकी स्मृति को, भार बनाना कोई बहुत अच्छी चीज नहीं है। उनको भूलते रहना चाहिए। विगत को बिसराइए। भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान में जीना चाहिए। वर्तमान को ठीक करेंगे, तो उससे भविष्य भी बन जाएगा, और भूत भी ठीक रहेगा। लड़कपन में मैंने यह पढ़ा था, जानकीदास एक संत हुए हैं, उन्हीं की एक पंक्ति मैंने लिख दी थी—

बार-बार समझाइ रही मैं
मान ले रे मन, मेरी कही को
दुःख-सुख सो बीती सो बीती
याद न कर बरबाद बही को
जानकीदास सुमिरि श्री रघुवर
गई सो गई अब राख रही को

प्रश्न—आप अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से विश्व के सम्मुख पूर्णरूपेण प्रस्तुत हो चुके हैं। इतने खुलकर पेश आने के बाद आपको किसी परेशानी का सामना तो नहीं करना पड़ा। यदि, हां तो कैसे ?

बच्चन—बात ये है कि जीवन कोई 'वेक्यूम' में तो होता नहीं। व्यक्तियों से संबंध तो होता ही है। और जिनसे संबंध आपके हो जाते हैं, उनके बारे में बिना कुछ कहे आप अपनी बात नहीं कह सकते। स्वाभाविक है कि हर एक आदमी ने, अपनी एक तसवीर बना रखी है। जब उस तसवीर के खिलाफ जरा भी बात होती है, जिनके बारे में आप लिखते हैं, तो उनको तकलीफ होती है। मेरी आत्मकथा में भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं। कुछ लोग तो मर-मरा गये। वे अब क्या शिकायत करने आयेंगे ? हालांकि, कोशिश मैंने यही की है कि जिनके बारे में भी कहूं, जो कुछ भी सच्ची बातें हैं, वे ही कहूं, और जो लोग जीवित हैं, उनके बारे में बहुत संतुलन से कहूं। कुछ लोगों को बुरा लगा जरूर और उन्होंने कुछ शिकायत भी की। आपने मेरी आत्मकथा देखी होगी। उसमें मैंने नामों को हटाने का पूरा प्रयास किया है। मैं नामों को नहीं दे रहा हूं। क्योंकि

भेंटकर्त्ता बच्चन जी के साथ





नाम आप दीजिए, तो वे समझते हैं कि, हमारे बारे में एक अलग ढंग से जैसे मुझको बदनाम करके, हमारी सूरत-शक्ल जो बनी हुई है, उसको गिराने के लिए या उसको खराब करने के लिए, ये लिख रहे हैं। मगर, ऐसा मेरा ध्येय नहीं है। क्योंकि, उनके बारे में न कहूं, तो अपने बारे में भी नहीं कह सकता। मेरा उनका जीवन बंधा हुआ है। और मैंने उन्हीं लोगों के लिए कहा भी है, जिनके साथ मेरा जीवन बंधा हुआ है। ऐसे बहुत-से लोग आये-गये। उन बातों से लोगों के बारे में कुछ नहीं कहा मैंने। बल्कि बहुत से लोगों को शिकायत है, कि हम तो आपके जीवन में, इतने समय में ऐसे-ऐसे आये और आपने मेरे बारे में कुछ भी नहीं लिखा। मैंने कहा—भाई! सबके बारे में कहां तक लिखूंगा। फिर तो दुनियाभर का इतिहास हो जाएगा। मैं तो लाखों लोगों के संपर्क में आया हूं। यह लिखने के बाद, मैंने इस बात का अनुभव किया है कि आत्म-कथा लिखना बहुत ही कठिन काम है। क्योंकि जिनके बारे में आप जो लिखते हैं, वे लोग अपनी जो शक्ल बनाये हुए हैं, उससे अलग शक्ल नहीं चाहते हैं। और बिना दूसरों के बारे में कहे हुए, अपने बारे में आप कह भी नहीं सकते। अपने बारे में आप कितनी बातें कहेंगे। जीवन तो संपर्क से चलता है ना!

प्रश्न—आप अपने समय के लेखकों तथा नये हिंदी लेखकों में आज क्या अंतर या बदलाव पाते हैं? राजनैतिक उथल-पुथल का क्या उन पर कोई प्रभाव पड़ा है?

बच्चन—हर एक लेखक अपने युग से प्रभावित तो होता ही है। क्योंकि समय से प्रभावित होना ही चाहिए। और होना उसके लिए अच्छा भी है। युग के प्रति सचेत होना ही चाहिए। अब जो सामयिक लेखक होते हैं, उनमें तरह-तरह की बातें होती हैं। कुछ में प्रेम हो जाता है। कुछ में प्रतिस्पर्धा हो जाती है। और कुछ में ईर्ष्या-द्वेष भी हो जाता है। तो ये तीनों तरह के संबंध होते हैं। जितने भी साहित्यकार हैं, वे ये जानते हैं। कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं, जो

उनके मित्र बन जाते हैं। उनको आपकी उन्नति-प्रगति में खुशी होती है। कुछ को स्पर्धा है कि आप ऐसा लिख रहे हैं। मैं आपसे बढ़कर लिखूंगा। ये भी एक अच्छी चीज है। मगर नीचे स्तर पर ईर्ष्या-द्वेष भी हो जाता है, एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न। ऐसा हमेशा से चलता रहा है। हमारे देश में ही नहीं, संसार के सभी देशों में ऐसा होता रहा है। मैं तो संसार के बहुत से देशों के साहित्य के इतिहास से परिचित हूं। ये, मैं जानता हूं कि दुनिया के सभी साहित्कारों का, ऐसे लोगों से संपर्क होता है।

हर कोई लेखक जो बड़ा होगा, उसकी अपनी एक विशिष्ट शैली तो होगी ही। और इसके कारण ही अलग से जाना जाता है। भाई ! इतना न हो तो, उसके लिए लेखक होना ही बेकार है। अगर सभी की तरह सभी लोग लिखने लगें तो फिर यह एक बहती हुई धारा है। उसमें पता भी नहीं लगेगा, कि कौन क्या लिख रहा है। बच्चनजी अलग लिख रहे हैं। पंतजी अलग लिख रहे हैं । निरालाजी अलग लिख रहे हैं। ये सब लोग अलग-अलग तरीके से लिख रहे हैं। उनकी अपनी अलग-अलग विशिष्टता होती है, लिखने की। उनका व्यक्तित्व उनमें झलकता है।

लेखकों पर राजनैतिक उथल-पुथल का प्रभाव जरूर पड़ता है। मगर कुछ लेखक हैं, वे इसके प्रभाव को अपने सृजन में अधिक लाते हैं। कुछ इसको दबाकर रखते हैं और कुछ इसकी उपेक्षा भी कर सकते हैं। बहुत-से ऐसे लेखक हुए हैं। यह हिंदुस्तान में ही नहीं है। और देशों के इतिहास को भी मैं जानता हूं। उन्होंने अपने समय की किसी घटना का जिक्र नहीं किया। कीट्स के बारे में कहा जा सकता है। मगर उनको, राष्ट्रीय कवि नहीं कह सकते। हांलाकि वे अपने समय की बहुत-सी उथल-पुथल से गुजरे। मगर वे राजनैतिक कवि नहीं हैं। अपने देश की हवा, पानी, चिड़िया, फल-फूल के प्रति ही ये सचेत रहे हैं। इनको आप कह सकते हैं कि ये आइरिश पोयट यानी आयरलैंड के कवि हैं। मगर ये राजनैतिक घटनाओं का भी जिक्र करते चलें, ऐसा उनका कोई आग्रह नहीं है। और आप मेरे लेखों में भी ऐसा ही देखेंगे। हर एक राजनैतिक घटना को, प्रतिबिंबित करना मेरा ध्येय नहीं रहा है। राजनैतिक घटनाओं के बीच में एक मेरा भी अपना जीवन चल रहा है। उसके भाव, उसके अनुभव, उसके विचार, समय की जो धारा है, इन सबका उस पर (लेखक पर) एक प्रभाव आता है। और उसकी प्रतिच्छाया पड़ती रहती है।

प्रश्न—आज हम अपने बीच तेजी से गिरते जीवन-मूल्यों की नब्ज को कहां टटोलें ? क्या सुधार संभव है ?

बच्चन—सुधार बहुत-से संभव हैं। सुधार करनेवाले लोग भी होते हैं। लेकिन

लेखक से मैं ये प्रत्याशा नहीं करता कि वह कुछ ऐसा काम करेगा, ऐसा कुछ लिख देगा; जिससे संसार कुछ बदल जाए। लेखक को अपनी सीमायें भी समझनी चाहिए। कवि को अपनी सीमायें समझनी चाहिए। प्रत्याशा तो उससे बहुत कुछ की जाती है, जैसे-युग को बदल देगा। ऐसा कम से कम मैं तो नहीं समझता। क्योंकि, कवि का प्रभाव किनके ऊपर पड़ता है ? केवल उन पर, जो पढ़े-लिखे हैं। अपने देश में पढ़े-लिखे लोग कितने हैं ? पढ़े-लिखे लोगों में हिंदी पढ़े-लिखे लोग कितने हैं ? हिंदी पढ़े-लिखे लोगों में कितने ऐसे लोग हैं, जिनको साहित्य से प्रेम है ? कितने ऐसे लोग हैं जो किताबें लेकर (खरीदकर या जुगाड़ करके) पढ़ते हैं ? तो लेखक का क्या असर हो सकता है ? हिंदी की किताबें कितनी छपती हैं ? मुश्किल से दो हजार छपती हैं। यहां साठ करोड़ की जनता में दो हजार किताबें पढ़ी भी गयीं, तो उससे क्या प्रभाव पड़ता है ? उससे कोई क्रांति हो सकती है ?

हां, राजनैतिक नेता हैं, सुधारक हैं, धर्मप्रचारक हैं, जो घूम-घूमकर अपना प्रचार करते हैं, अपनी वाणी के द्वारा अपने संदेश पहुंचाते हैं। उनके अपने प्रचार-के तंत्र हैं। उनके जरिये कोई क्रांति वे ला सकते हैं। हां, इससे हम लोग भी प्रभावित होते हैं। हम ये कहें कि हम अपनी कविता से इस देश को बदल देंगे, गलत बात है। कवियों ने कभी देश को नहीं बदला। हां, संस्कृति के ऊपर कुछ उसका प्रभाव पड़ता है। अगर कवि में कुछ स्थायी भाव हैं, स्थायी गुण हैं तो वे संस्कार को बदलते हैं। उस संस्कार का प्रभाव राजनीति पर भी होता है। मगर तुलसीदास ने अकबर का राज तो नहीं उलट दिया।

प्रश्न—आज राजनैतिक पैंतरेबाजी के रुख के अनुसार लिखी जा रही पुस्तकें क्या पाठकों को दिग्भ्रमित नहीं कर रहीं ? क्या ऐसी पुस्तकों को, आप साहित्यिक उपलब्धि की संज्ञा देंगे ?

बच्चन— देखिए, यह कहना बहुत मुश्किल है, कि कौन-सी किताबें आगे के समय में ठहरेंगी। बात ये है कि आजकल लिखना और छपाना, ये बहुत आसान हो गया है। पहले जमाने में ऐसा होता था कि हमें कुछ देना है, वह बहुत श्रम के साथ लिखता था। लिखना एक श्रमसाध्य कार्य है। मगर, आजकल छपना बहुत आसान है। संसार क्या करेगा? धरती क्या करेगी? वह कितना भार अपने ऊपर उठायेगी। तो यह सब नष्ट होता रहता है। और, ये नष्ट होना जरूरी है। बहुत जो कुछ लिखा जाता है, अखबार में रोज लिखा जाता है, 'मैगजींस' छपती हैं, किताबें छपती हैं। अगर ये सब 'प्रिजर्व' रहे, तो मेरा ख्याल है, धरती इन्हों के भार से दब जाएगी। धरती बहुत होशियार है। ये मारती रहती है। कागज को कूड़ा बनाती रहती है, अगर ऐसा कोई लेख है, जो कूड़ा होने के लिए आया है, रोज का अखबार होता है, सुबह

पढ़ते हैं, शाम को कूड़ेदान में फेंक देते हैं। अखबार को छापने के लिए कितने लोग होते हैं। रात भर मेहनत होती है। सुबह दो घंटे का मनोविनोद, उसके बाद उसे लोग फेंक देते हैं। इसी तरह जिस तरह अखबार है, उसी तरह अखबार की कोटि की बहुत-सी पुस्तकें लिखी जाती हैं, उनको आपने देखा और देखकर फेंक दिया। बहुत-सी किताबें हैं। उनका क्या साहित्यिक महत्त्व है। जीवन के तत्व, जीवन के अनुभव, जीवन के मूल्य जिनके लिए जरूरी हैं, वे तो फिर से छपती रहेंगी। उनमें जो मुख्य होगा वह बचा रहेगा।

प्रश्न––आज आप अपने जीवन की उपलब्धियां तथा साहित्य-सृजन से कहां तक संतुष्ट हैं ? अगली कौन-सी ऊंचाई छूने की कामना है, आप में ?

बच्चन––देखिए, बात ये है कि संतोष जो है, वह मनुष्य को दिया ही नहीं गया। और असंतोष में ही उसकी सारी प्रगति मौजूद है। जब जिन चीजों से असंतोष होता है तभी आप कुछ लिखते हैं। कुछ बनना चाहते हैं। आपके चारों तरफ परिस्थितियां हैं। उससे आप असंतुष्ट हैं। इस असंतोष से आप आगे बढ़ते हैं। अब मैं तिहत्तर वर्ष में पहुंच गया हूं। मैंने जो कुछ भी किया है, उससे संतोष ही हो जाना चाहिए। क्योंकि, मैं जानता हूं, मैं बहुत दिनों तक काम नहीं कर सकता। काम करने की क्षमता; मुझ में खत्म हो गयी है। अब संतोष कर लेना चाहिए कि, मुझ में जो योग्यता, क्षमता थी, उसका मैं पूरा उपयोग कर चुका हूं, और मुझे उससे संतोष होना ही चाहिए।

प्रश्न––'अब तो दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने का समय बीत चुका', यह उक्ति, जिसे आपने मुझे अपने पत्र में लिखा है, यह किस मनोभाव में आपने लिखी ?

बच्चन––इसके मायने ये हैं कि पहले शुरू-शुरू में आदमी जब जीवन में आता है, तब वह जानना चाहता है कि दूसरे लोग क्या राय रखते हैं। अगर हमने कोई कविता लिखी तो जानना चाहते हैं कि आपकी राय क्या है ? आप इसकी प्रसंशा करते हैं कि नहीं। और आपकी प्रशंसा से हमको संतोष होता है। जो नये लोग आते हैं, तो दूसरों को अपनी कविताएं दिखाते हैं। अखबार में उनकी तारीफ छप गयी, तो उनको बड़ी खुशी होती है। लेकिन, एक समय ऐसा आता है जबकि आदमी इसके ऊपर निर्भर नहीं रहता। दूसरों की राय से हम कहां तक प्रसन्न होंगे ? अपना भी कोई मूल्य होता है। कोई चीज अगर मैं लिखता भी हूं; तो ऐसी अंधी दृष्टि मेरी नहीं है कि जो मैं समझूं कि ये कालिदास के साथ का लिखा हुआ है या कालिदास की टक्कर का है। अब मैं उसका मूल्यांकन खुद कर लेता हूं। यही मेरा मतलब था। अब दूसरे मेरा मूल्यांकन करें, तब मैं अपना मूल्य समझूं, ऐसा नहीं है। अपना मूल्यांकन मैं स्वयं कर लेता हूं। मैं समझता हूं कि

मेरी 'वर्थ' क्या है ? मेरी योग्यता क्या है ? मेरी कीमत क्या है। इसे मैं जानता हूं। आप बहुत कहें कि आप बहुत बड़े कवि हैं, तो मैं कहूंगा कि यह आपका अज्ञान है। मुझे खुशी नहीं हो सकती। क्योंकि मैं अपना मूल्य जानता हूं। न अपना मूल्य घटाना है, न अपना मूल्य बढ़ाना है। अगर आकर कोई मेरी बुराई भी करे तो मैं जानता हूं कि मेरे अंदर ये बुराई है नहीं तो मैं क्यों बुरा मानू। यही मेरा मतलब है।

प्रश्न--आपको बंबई का प्रवास सुहाना, रुचिकर लगा कि दिल्ली का। आखिर किन कारणों से ?

बच्चन--बात ये है कि ये जीवन का चौथा भाग है, अंतिम भाग है। लड़के आकर यहां व्यवस्थित हो गये हैं। उन्हीं के साथ अब रहना है और अब कितने दिन रहना है।

जहां तक हो सके उनके साथ अब रहना चाहिए। इस दृष्टि से मैं यहां आ गया हूं। अच्छा लगता है। अपने बेटे-बहू, पोते-पोतियों के साथ रहता हूं। ये भी एक सुख है।

प्रश्न--एक बहुत ही व्यक्तिगत प्रश्न।

बच्चन--हां, बोलिए-बोलिए, मैं गोल कर जाऊंगा। हंसी के साथ।

प्रश्न--मधुशाला के मराठी अनुवाद के विमोचन हेतु आपका तथा जया का पूना आगमन हुआ था। आपको, एक ताक में रखकर भीड़ जयाजी की तरफ टूटी पड़ रही थी। फिल्म प्रीमियर हो तो ठीक है। लेकिन ऐसे साहित्यिक समारोहों में एक वरिष्ठ हिंदी के दिग्गज की उपेक्षा क्या शोभनीय थी ? यह सब देखकर आपको कैसा लगता है ?

बच्चन--मैं इसको उपेक्षा नहीं समझता। भाई, आजकल जो हवा चल रही है, उसमें सिनेमावालों के लिए अधिक आकर्षण हैं। क्योंकि जो सिनेमा का एक्टर है, उसका अपना चेहरा है। और, कुछ तो है नहीं। जब चेहरा निकल गया तब और कुछ नहीं है पाने को। और कवि के पास तो बहुत कुछ है। यानी मैं चला भी जाऊंगा, तो लोग मेरी कविताएं पढ़ेंगे। जया को तो उसी वक्त लोग देख लेंगे।

उसके बाद, वे जब चली जाएंगी तो उसके पास कुछ नहीं है। सिवाय इसके कि लोग उन्हें पर्दे पर देखें। लेकिन जब मैं हूं, तो इस बात को तो लोग समझते हैं, कि इनकी तो कविताएं हैं। इनको तो बाद में भी पढ़ सकते हैं। मेरे चेहरे में देखने को क्या है। चेहरा तो बहुत अच्छा नहीं है। मगर कविताएं ज्यादा अच्छी हैं, तो वे कविताएं पढ़ते हैं। जिनके पास सिर्फ चेहरा है, वे चेहरा ही दिखाएंगे। आप मुझे देख लेंगे तो क्या पाएंगे। मगर कविता पढ़ेंगे, तो शायद ज्यादा पायेंगे। मगर अभिनेता का तो, सिर्फ चेहरा है।

--प्रस्तोता : हरेन्द्रसिंह भदौरिया

दो लघु कथाएं



दो पिंजरे

मेरे पिता के उद्यान में दो पिंजरे हैं।

एक में वह सिंह बंद है, जिसे मेरे पिता के दास वनों से पकड़ लाये थे और दूसरे में एक चिड़िया है, जिसे बुलबुल कहा जाता है।

चिड़िया हर सुबह शेर से कहती है—'नमस्कार मेरे बंदी साथी !'

पवित्र मंदिर की सीढ़ियों पर

कल सायंकाल महामंदिर की संगमरमर की सीढ़ियों पर मैंने एक महिला को दो पुरुषों के मध्य बैठे देखा।

उसका एक गाल पीला था और दूसरा संकोचवश लाल।

—खलील जिब्रान

(अनु. जगदीश कश्यप)



आश्वासन

जंगल का राजा शेर एक दिन एक बकरी को पकड़कर खाने लगा। बकरी अपनी मौत सामने देख, अपने सींगों को शेर के पेट में गड़ाते हुए बोली, "ओ झूठे शेर, तुझे हमने इस शर्त पर राजा बनाया था कि तू हमारी रक्षा करेगा। इसलिए नहीं कि हमें ही खा जाए।"

बकरी की बात सुनकर शेर दिल खोलकर हंसा फिर बोला, "मूर्ख बकरी, आश्वासन तो सत्ता पाने के लिए दिये जाते हैं, जरूरी नहीं कि उन्हें पूरा किया ही जाए।" —और वह उसे खा गया।

—ब्रजेश परसाई

कहानी

अकड़न

● यादवेंद्रचंद्र शर्मा 'चंद्र'

वह बंगले की चारदीवारी के लॉन में मेहंदी और गुलाब के छोटे पौधों को पानी सींच रही थी। उसका चेहरा मखमली उदासी की परत से ढंका था और वह बार-बार लंबे सांस ले रही थी। अचानक उसने पानी सींचना बंद कर दिया और वह धुले-धुले आकाश की ओर अपलक निहारने लगी। आकाश में बड़ी ऊंचाई पर दो गिद्ध उड़ रहे थे। अत्यंत ही शांत और नीरव गति, जैसे वे धरती के आकर्षण से कट-से गये हों।

उसने बाहर दरवाजों के सींकचों-सी लंबी सड़क पर देखा। सिर्फ वाहन थे, आदमी नहीं। ये अफसरों, डॉक्टरों, इंजीनियरों और धनाढ्य लोगों की कालोनी थी। यहां बिना वाहन रहना, हतक-इज्जती समझी जाती थी। यहां तक कि कई लोगों के नौकर भी स्कूटरों पर बाजार से सामान लाया करते थे। उनकी देखा-देखी. उसे भी अपने नौकर को नयी साइकिल दिलानी पड़ी। अभी नौकर भी बाहर गया हुआ था। दोनों बच्चे स्कूल गये हुए थे। उसका पति डॉ. आमोद किसी मरीज को देख-कर फिर अस्पताल अपनी ड्यूटी पर चला जाएगा। यानी वह इस पल घर में अकेली थी। नितांत अकेली।

तब उसे अकेलापन काटता था। वह दुश्चिंताओं से घिर जाती थी। उसमें अजीब-सी कुलबुलाती निराशा घुस जाती थी। तनाव और एक विचित्र-सी ऊब उसे बेचैन करने लगती थी। यह उसकी एक अजीब-सी मानसिकता थी। वह समझ ही नहीं पाती थी कि ये सब बगावत-भरी स्थितियां उसके अपने आपके प्रति हैं या दूसरों के प्रति! यहीं आकर वह पराजित हो जाती थी। उसका विवेक जवाब दे देता था और वह सदा की तरह इसका निर्णय करने में असफल हो जाती थी।

पर उस दिन उसे कुछ नया ही एहसास हुआ कि यह सब उसके अपने पति के कारण है? घटना बहुत ही मामूली थी। नितांत सामान्य।

उसका पति डॉक्टर आमोद एम. डी.,



जीनियस' और लोकप्रिय। वह अपने पेशे में जितना गंभीर था, जीवन में उतना ही चंचल। उसके व्यवहार में बला का खुलापन था। उसकी साफ और खुली बातें तथा व्यवहार कभी-कभी विमला के चारों ओर पीड़ादायक व अपमान-जनक स्थितियां पैदा कर देता था। वैसे आमोद व्यवहार में विमला को इतना प्यार करता था कि वह अपने भाग्य को सराहती थी। फिर भी, उसे यदा-कदा यह लगता था कि कहीं इन संबंधों में कुछ बनावटीपन है।

उस दिन डॉ. पुरोहित के घर में पार्टी थी। कई प्रतिष्ठित महानुभाव और डॉक्टर आये हुए थे। प्रायः हर एक के साथ अपनी बीवियां थीं।

आमोद तो डॉक्टर के साथ-साथ हरफन मौला भी था। चुटकलों से लेकर शायरी तक सुना देता था। उस पार्टी में भी उसने किसी के अनुरोध पर नहीं, स्वतः ही शेर सुनाने शुरू कर दिये। सुनाते-सुनाते डॉक्टर ने उसे तपाक से बांहों में भर चूम लिया, 'ये सब इस डार्लिंग की ही प्रेरणा है कि आज हम शेरो-शायरी में शौक रखते हैं।'

इस हरकत से वह स्तब्ध रह गयी। उसका चेहरा कांतिहीन हो गया। औरतें उसे अजीब हिकारत से देखने लगी थीं। वह हतप्रभ हो गयी। उदास और अपराध-भावना से ग्रस्त।

और उसे पहली बार महसूस हुआ कि वह कोई प्रतिष्ठित नारी नहीं, पत्नी नहीं, वह एक प्रदर्शन की वस्तु है। यदि वह वास्तव में उसे एक पत्नी का सम्मान देता, तो इस तरह वह उसे खुलेपन में चूमता नहीं, पकड़ता नहीं।



उस दिन वह सारी पार्टी में रोनी-रोनी-सी बैठी रही।

उसका पति बोलता ही जा रहा था, "मेरी पत्नी एक शानदार संगिनी है। मैं उसे बहुत चाहता हूं और यह . . . बोलो न डार्लिंग . . . प्लीज सपोर्ट मी . . .?"

वह नहीं बोली। आखिर उसे जबरदस्ती एक अर्थहीन मुसकान अपने होंठों पर लानी ही पड़ी।

तब उसने अपने और अपने पति के संबंधों पर पुनर्विचार किया।

कई बार ऐसे अवसर भी आये, जब उसके पति ने उसे शर्मिंदगी के सागर में डुबाया था। उसके थोथे, बनावटी, मर्यादाहीन फैशनी प्यार के तहत उसे केवल पुरुष की एकाधिकार की भावना लगी थी! उसने पति को साफ-साफ कह भी दिया कि उसे आत्मीयता भरे व्यवहार का खुला प्रदर्शन पसंद नहीं है। उसके पति ने नाराजगी से जवाब दिया, "तुम क्या पागल हो? मेरे खुलेपन को तुम बेहूदगी समझती हो। माई स्वीट हार्ट, दूसरों की बातों पर यदि आज का आदमी सोचता है, तो वह अपना सारा सुख छोड़ता है।"

फिर एक दिन 'लेडीज क्लब' की बैठक के बाद उसे रंग-बिरंगी, चुभनभरी चर्चाओं ने घेर लिया। किसी ने कहा मिसेज आमोद अपनी कालेज लाइफ में जरूर 'फ्लर्ट' रही होगी! इतना खुलापन और नंगापन सहसा नहीं आ सकता।"

"अरे भाई! वह कांवेंट में पढ़ी है। सुनते हैं—तब भी वह यूनियन की सेक्रेटरी थी और प्रेसीडेंट रवींद्र से इश्क करती थी।" . . और मिसेज चावला ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को सूइयों की तरह चुभो-कर पूछा था, "क्या तुमने कभी कालेज में इश्क किया था?"

वह लगभग चीख-सी पड़ी, "क्या बकवास करती हो? इन फालतू औरतों को फालतू बातें करने के सिवाय कोई काम ही नहीं है?"

उस दिन वह आमोद से झगड़ पड़ी। आमोद ने उसे डांटते हुए कहा, "तुम पढ़ी-लिखी आधुनिक महिला होकर इतना बोदा कैसे सोचती हो? मैं क्या तुम्हारे लिए अपनी आदतों को मार डालूं। देखो डार्लिंग, तुम इन चर्चाओं में अपना दिमाग मत खपाओ।"

"मैं चाहूंगी कि आप मुझे ऐसा प्यार न करें," उसने आदेश भरे शब्दों में कहा। पर आमोद ने अपनी आदत नहीं बदली।

दोपहर ढलने लगी थी। परछाइयां लंबी हो गयी थीं। वह अशक्त-सी पड़ी थी। तभी उसके दोनों बच्चे आ गये। उसने अपने भावों को रोका और दोनों बच्चों को निहायत ठंडेपन से प्यार किया। वह उन्हें भीतर ले गयी। बच्चों ने अपने बस्ते बड़ी बेरुखी से फेंक-से दिये। उनके चेहरे थके हुए थे। वे कुछ नाराज-से थे।

बच्चों के नाराज चेहरों ने उसे पूछने के लिए बाध्य किया, "क्या बात है ?"

"बात क्या है ?" पिंकी बोली, "कल से हम बस में नहीं जाएंगे।"

"क्यूं ?"

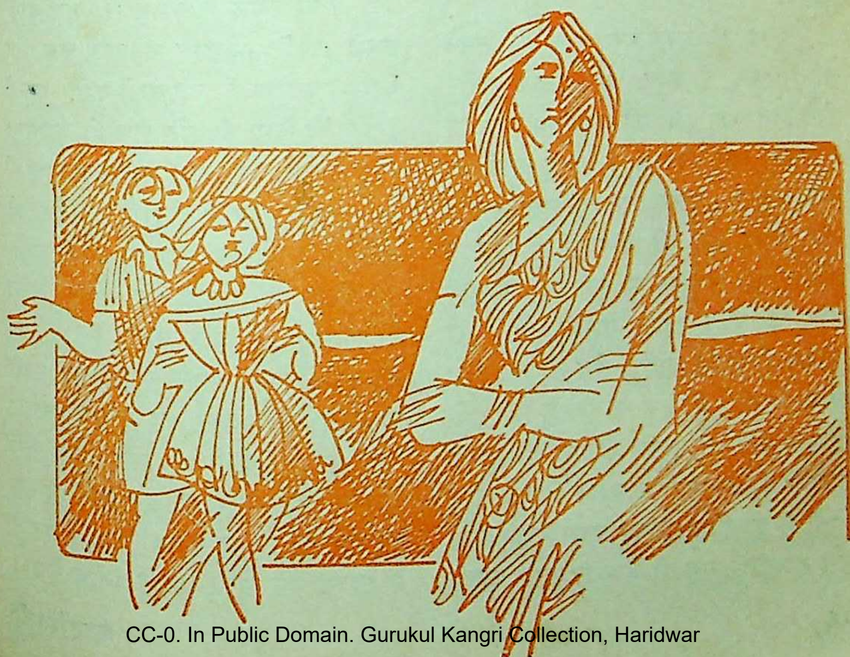
बंटू पांव पटककर बोला, "बन्नी कह रही थी कि तुम्हारे मां-बाप तुम लोगों को प्यार नहीं करते हैं क्या ? कार होते हुए तुम दोनों को इस खचड़ा बस में भेजते हैं। कल से हम कार में जाएंगे। यहां के सारे बच्चे जिनके घर में कार है, वे कार पर जाते हैं।"

"तुम्हारे पापा इसे नहीं मानेंगे ?" उसने शांत स्वर में कहा।

"क्यों नहीं मानेंगे ?" पिंकी क्रोध में झल्लायी, "नहीं मानेंगे तो हम पापा को कह देंगे कि आप हमें प्यार ही नहीं करते ? आप हमारे अच्छे पापा भी नहीं हैं।" वह अपने को दुःख से बचाने के लिए नौकर से बोली "रामदीन ! बच्चों को चाय-नाश्ता दे दो।"

बच्चे चले गये। वह फिर लॉन में अकेली बैठ गयी। खामोशी मेंढ़क की तरह उचक-उचककर उसके चारों ओर बैठ गयी थी।

गांव से दो मरीज आ गये थे। एक मरीज के साथ उसका बूढ़ा बाप था। दूसरे मरीज के साथ उसका देहाती पति था। पुरुष अपनी बीमार पत्नी के पास बैठा-बैठा कभी उसे पानी दे रहा था और



कभी उसके प्रति सांत्वना भरे शब्द उछाल रहा था, "बस, अभी डागदर साब आते हैं। वे तुझे ऐसी दवा देंगे कि तेरी पीड़ा गायब हो जाएगी। अब तू जब तक ठीक नहीं होगी, तब तक मैं तेरी खाट नहीं छोड़ने वाला।"

मरीज-स्त्री ने कोई जवाब नहीं दिया। उसका घूंघट पूर्ववत था। वह पति की ओर पीठ किये हुए बैठी थी। उसका पति चिंतित लग रहा था।

वह फिर उठकर विमला के पास आया। उसने आकर पूछा, "बहनजी! डागदर साब कब तक आएंगे ? मेरी घरवाली को चैन नहीं पड़ रहा है।"

"बस आते ही होंगे," उसने जवाब दिया, "क्या बीमारी हैं ?" विमला ने पूछा।

"यह तो परमात्मा जाने।" उसने सहज स्वर में कहा, "पर इसका शरीर तीन दिन से तवे की तरह तप रहा हैं। आपको क्या बताऊं! खेती-बाड़ी का काम ठहरा। इधर धान की कटाई और और इधर इस की बीमारी ? खेत न संभालूं तो पशु-पखेरू नुकसान पहुचावै और घरवाली को न संभालूं तो सारा जीवन ही उजड़ जावै। खेत तो हर साल जन्मते-मरते है पर घरवाली . . . ? इसके बिना तो सारी खेतियां ही उजड़ जाएंगी! बस यही सोचकर पिछले तीन दिनों से इसकी खाट का पाया पकड़े बैठा हूं। हालांकि, यह तो बेचारी बहुत कहती रही कि 'मैं ठीक हूं। आप खेत और ढोर संभालें।' पर मेरा मन ही नहीं माना। . . . . घर का इलाज भी किया। जब वह बेअसर हो गया, तब गांव से शहर चला आया। रुपया-पैसा लग जाए, कोई फिकर नहीं, पर यह बापड़ी ठीक हो जाएं, बस।"

वह बुर्जुगाना अंदाज में बोली, "भगवान सब ठीक करेगा। . . तुम बैठो डॉक्टर साहब आते ही होंगे!"

वह देहाती चला गया। उसे फिर एक ऊब ने घेर लिया। न चाहते हुए भी उसको किसी प्रेत के खूंखार पंजों की तरह अतीत के एक टुकड़े ने आ दबोचा।

वह भी एक बार बीमार पड़ी थी। फ्लू हो गया था उसे।

बच्चे स्कूल चले गये थे, 'बाई-बाई' करके। पति इंजेक्शन लगाकर चल पड़ा था—"डार्लिंग! घबराओ नहीं। फ्लू है टाइम तो लेगा ही, पर ठीक हो जाएगा। . . . मैं जरा अस्पताल जाकर आता हूं।"

उसके पति ने दोबारा उसे देखा ही नहीं। यदि वह देख लेता तो उसकी आंखों की पीड़ा के सैलाब से जरूर तरल हो जाता। . . . और नौकर! . . . वह भी कंबख्त मना करने के बावजूद सब्जी व डबल रोटी लाने का बहाना बनाकर भाग गया। कोई भी बोर होना नहीं चाहता। सब भारी-भरकम शब्दों से उसे बहलाते रहें। वह खीज उठी। एकांत में सहसा उसे मृत्यु-भय ने दबोच लिया।

वह संत्रस्त हो उठी। कहीं उसे 'ब्रेन हेमरेज' हो जाए तो ? वह दुष्कल्पनाओं में डूबती-सी गयी।

लगभग रात के दस बजे आमोद आया। उसने शराब पी रखी थी। आते ही कुछ मचलते हुए-से उसके गाल को थपथपाकर कहा, "हलो डार्लिंग ! कैसी हो? फीवर कुछ कम हुआ ? कंपाउंडर इंजेक्शन लगा गया न ? मैंने उसे हास्पिटल में कहा था। . . . देखो डार्लिंग, हिम्मत रखो।" फिर दरवाजे की ओर देखकर बोला, "रामदीन खाना लगा दो।"

उसने बुझे हुए स्वर में कहा, "आज दिल बड़ा ही घबराया। अकेले में डर भी लगता है और बोर भी होती हूं। क्या आप दो-तीन दिन की छुट्टी नहीं ले सकते ? दोपहर को सिर में भयानक दर्द हुआ था, फिर जी मितलाने लगा था ?"

उसने सोचा था कि उसका पति उसके पास बैठेगा। उसे सांत्वनाओं से लाद देगा ? उसके दुःखते हुए सिर को दाबेगा ? उसके शरीर को अपने आत्मीय स्पर्श से सहलाएगा। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उसके पति ने भावहीन मुसकान के साथ कहा, "डार्लिंग ! डोंट बी नर्वस . . . आखिर तुम एक डॉक्टर की पत्नी हो! थोड़ा-सा मेडीसन के बारे में 'कॉमनसेंस' रखना ही चाहिए। यदि मैं तुम्हारे पास बैठ जाऊंगा तो क्या तुम्हारा दर्द कम हो जाएगा ? फालतू बातें सोच-सोचकर 'टेंशन' पैदा मत करो।"



"लेकिन आपके रहने से कम से कम मैं बोर तो नहीं होऊंगी," उसने सुझाव-सा दिया।

"हां, यह बिलकुल सही है कि तुम बोर नहीं होओगी। बोर तो मरीज के पास बैठनेवाला होता है," उसने साफ-साफ कहा, "यदि अभी भी जी घबराता है, नींद नहीं आती है तो एक कांपोज ले लो," वह पंखे की ओर देखकर अपने आप से बोला, "बड़ी भूख लगी है!"

और वह डाइनिंग-रूम की ओर चला गया !

विमला को लगा कि कोई अज्ञात निर्मम उसके गले को तलवार से काट-

रहा है। वह पीड़ा से तिलमिला उठी। उसने आर्त्त स्वर में कुछ कहना चाहा, पर शब्द केवल उसके गले में तिलमिलाकर रह गये।

उस प्रेत ने स्मृति का चुभता हुआ पंजा हटा लिया। वह वस्तु जगत में आ गयी।

छाया गहरी हो गयी थी। धूप का अंतिम चमकदार व झिलमिलाता स्पर्श पेड़ों पर चिड़िया की तरह फुदक रहा था। हवा का झोंका उसे और चंचल बना देता था। जिस तरह धूप पश्चिमी दिशा आंचल में सिमट रही थी, उसी तरह वह अपनी पीड़ा में सिमट-सिमटकर वास्तविकताओं का एहसास कर रही थी। ये वास्तविकताएं उसे अपनों में अजनबी का भान करा रही थीं। एक उत्तेजित और आहत मानसिकता को जन्म दे रही थीं। उसके चारों ओर तनावों की जकड़न पैदा कर रही थीं! वह सोच रही थी कि शाब्दिक आत्मीयता व गर्मजोशी में डूबे ये कौन-से नाते-रिश्ते हैं?

तभी कार का हार्न बजा। रामदीन ने भागकर दरवाजा खोला। कार भीतर आयी। उसका पति कार से उतरकर उसके नजदीक आया। उसे अपनी बांहों में भरकर बोला, "डार्लिंग . . . डार्लिंग ...तुम ... ?"

वह पूरा बोल भी नहीं पाया था कि वह आर्त स्वर में चीख-सी पड़ी, "मुझे डार्लिंग मत कहो, मैं तुम्हारी दासी हूं, मात्र गुलाम।"

वह गंभीर हो गया। अर्थभरी दृष्टि से उसे घूरकर पूछा, "क्या तुम दिवास्वप्न देख रही थीं। ये बहुत खतरनाक होते हैं। मानसिक संतुलन बिगाड़ देते हैं? अपने पर काबू रखो डार्लिंग।"

और नितांत अजनबी-सा वह भीतर चला गया। उसका तेज स्वर सुनकर उसके दोनों बच्चे आ गये थे। दोनों ने उसे जकड़-सा लिया था। वे डरे-डरे व सहमे-सहमे थे। गूंगे-से टुकर-टुकर देख रहे थे।

वह उन्हें देखते-देखते पिघल गयी, आत्म-करुणा से भर आयी, कोमल अवसाद से घिर आयी। . . . फिर उसने नितांत आम गृहस्थ औरत की तरह अपने दोनों बच्चों को छाती में भींच लिया।

बच्चों के हाथ उसकी कमर के दोनों ओर लिपट गये। उसे जकड़न का अहसास हुआ और वह फिर काठ-सी हो गयी।

—साले की होली, बीकानेर-३३४००१

वकील: आपका कहना है कि जब दुर्घटना हुई आप दुर्घटना-स्थल से कोई सौ फुट दूरी पर थे। क्या आप यह बताएंगे कि आप कितनी दूरी तक साफ-साफ देख सकते हैं?

अभियुक्त: जी, मैं सूर्य को बिलकुल साफ देख सकता हूं और लोगों का कहना है कि सूर्य यहां से लाखों मील दूर है।

सही कहानियां
पाठकों की : लेखकों की नहीं

हमारे इस नय स्तंभ का पाठकों ने बेहद स्वागत किया है। प्रकाशन के लिए प्राप्त सैकड़ों कहानियों में से हम यहां दो चुनी हुई कहानियां प्रकाशित कर रहे हैं। यही क्रम आगे भी रहेगा।

हद है चमचागीरी की!

बात सन १९३२ की है। उन दिनों बड़वानी रियासत की राजधानी 'बड़वानी' निमाड़ का पेरिस कहलाती थी। रियासत के राणा देवीसिंह के नाबालिग होने के कारण अंगरेजों के कृपा-पात्र हरिलाल गोसालिया रियासत के प्रशासक व वहां के रियासत के सर्वेसर्वा थे। अपने तानाशाह स्वभाव के कारण सन १९४१ तक वह 'हिटलर' के नाम से जाने जाते रहे।

प्रतिवर्ष अंगरेज रेसीडेंट का इंदौर से बड़वानी का दौरा हुआ करता था। दौरे के समय बड़वानी को नयी दुल्हन की तरह सजाया जाता था। बड़ी जोर-शोर से आतिशबाजी हुआ करती।

एक बार यह तय हुआ कि रेसीडेंट साहब सायं ठीक छह बजे अपने निवास-स्थान से दरबार-हाल पधारेंगे और उनके दरबार-हाल आते ही आतिशबाजी शुरू हो जाएगी, जिससे स्वागत द्वार पर बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में बना 'वेलकम' भी बहुरंगों में दीप्तिमान हो उठने की व्यवस्था थी। दुर्भाग्यवश, फूलों से सजी जिस गाड़ी में रेसीडेंट साहब को आना था, उसी में बैठकर हरिलाल गोसालिया १५ मिनट पहले सारी व्यवस्था को देखने के उद्देश्य से चले आये। ड्यूटी पर तैनात अधिकारी ने समझा कि रेसीडेंट साहब आ गये हैं अतः उसने आतिशबाजी चालू करा दी। फिर क्या था, 'गॉड सेव दी किंग' की बैंडबाजे की धुन के साथ ही 'वेलकम' भी जलकर पांच मिनट में खाक हो गया। और रेसीडेंट साहब के पधारने पर सब शांत। नतीजा यह हुआ कि संबंधित अधिकारी का अपने मातहत के पद पर उसी दिन तबादला कर दिया गया।

● महेन्द्रनाथ नागर

—१, आदर्शनगर, माणकबाग रोड, इंदौर

हम आपकी भी कहानी छापेंगे : २

अगली प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि : ५ मई, ८०

प्रतिमास प्राप्त कहानियों में से दो श्रेष्ठ कहानियां प्रकाशित की जाएंगी।
इस स्तंभ के लिए रचनाएं भेजते समय ध्यान रखिए :
० कोई भी रचना वापस नहीं की जाएगी। इसीलिए उसकी प्रतिलिपि अपने पास रख लें।
० साथ में टिकट लगा लिफाफा न भेजें।
० इस स्तंभ में किसी तरह का पत्र-व्यवहार नहीं किया जाएगा।

क्या वह प्रेत थी!

● कृष्णकुमार दुबे

मैं उस समय १०वीं कक्षा का छात्र था। गरमी की छुट्टियां बिताने अपने घर कांकेर (बस्तर) आया था। हमारे यहां शादी का एक निमंत्रण आया था। मैं शादी में पहुंचा। शाम के समय हम वहां भोजन करने बैठे थे, कि मेरी नजर एक चौदह वर्षीय बालिका पर पड़ी जो हमें भोजन परोस रही थी। अब तक वैसी सुंदर लड़की मैंने कभी नहीं देखी थी। शादी के कार्यक्रमों के चलने तक चार-पांच रोज में, मैं उसके प्रति आसक्त हो गया।

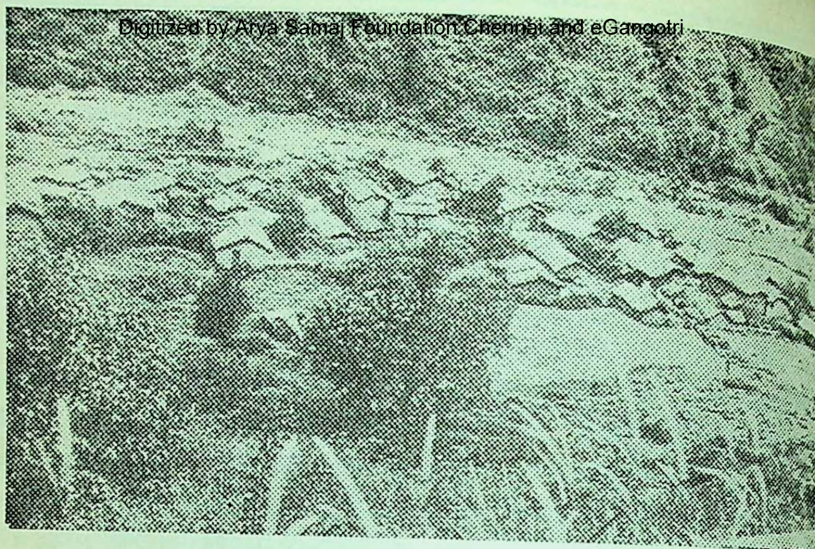
शादी के बाद वहां जाना बंद हो गया, पर घूमने के बहाने उस महल्ले में जाकर मैंने उसे एक-दो बार और देखा। फिर गरमी की छुट्टियां खत्म होते ही मुझे कांकेर छोड़ना पड़ा।

दूसरे वर्ष जब मैं फिर गरमी की छुट्टियों में कांकेर गया तो पता चला कि उस लड़की की मृत्यु दो माह पूर्व हो गयी है।

एक दिन दोपहर के समय मैं आम के बगीचे की ओर निकल गया। बगीचे के पास ही श्मशान घाट है। वहीं पर एक तालाब भी है। मैं बगीचे में आम गिरा-गिराकर खाता रहा। हाथ-मुंह धोने के लिए मैं जैसे ही तालाब के पार चढ़ा, तो मैंने देखा कि एक सुंदर लड़की तालाब में स्नान कर रही है। मेरी ओर उसकी पीठ थी। अतः मैं उसे पहचान नहीं सका। पर ज्यों ही मैं पार से नीचे उतरा, वह लड़की पलटी तो मैं उसे देखकर अवाक् रह गया। यह तो वही लड़की थी, जिसकी दो महीने पहले मौत हो चुकी थी। पर मैं उसके रूप की सुधा में सब कुछ भूलकर उसे देखता ही रहा। वह भी मुझे देखकर हंसी और फिर पानी में छलांग लगा गयी।

जब वह दस मिनट तक पानी के बाहर न निकली तब मुझे ख्याल आया कि यह लड़की तो मर चुकी है। और फिर मैं घबराकर वहां से भागा, ऐसा भागा कि घर आने तक पीछे मुड़ कर नहीं देखा।

—डोंगरगांव (बस्तर) म. प्र.



एक वैज्ञानिक विश्लेषण

हमें पाल रही है घास !

● भगवतीप्रसाद डोभाल

गांवों की देहरी में प्रवेश करते ही, गोबर से लिपे-पुते आंगन आमंत्रण देते हैं—एक घड़ी विश्राम को। यदि आंगन तक आपके क़दम बढ़ गये, तब दीखती है —मोटी-मोटी कालीनों-जैसी उगी हुई हरी-हरी दूब (घास), बटोही न चाहते हुए भी बगैर लेटे वापस नहीं मुड़ सकता। कितना आकर्षण है—उस प्राकृतिक छटा में।

प्रकृति की इन कोमल भावनाओं को क्या हम समझ पाये ? शायद वर्षों उधेड़-बुन में समय बिताकर कुछ सीख सकें। इसीलिए दूब को पूजा के स्थान पर बिठाने के पीछे पूर्वजों का दृष्टिकोण था, इस घास (दूब) से अलग रहकर हमारा जीवन नहीं है। हरियालीमय जीवन की यह प्रेरणा कितनी महान थी—'गोबर-गणेश' द्वारा उसकी पुष्टता का दर्शन, वास्तव में हरित क्रांति की शाश्वतता का प्रतीक ही है। यह गंगा की धारा की तरह हम में

आशा का संचार कर रही है। यदि इस द्रुत-गति से भागते हुए आणविक संसार में थोड़ा रुककर सोचें, तो हमें पूर्वजों की उन तमाम परंपराओं का आदर करना ही होगा, जो हमें मानवता की ओर मोड़ती हैं। दूब-घास का रूप चाहे खेतों में उगाने-वाला खाद्य पदार्थ हो, या जंगली घास; इन सबकी वंश परंपरा को बनाये रखना आवश्यक है। आज हमारा जीवन सुरक्षित तब ही है, जब घास की महत्ता को समझते हुए, उनकी जातियों की विदाई को इस संसार से रोकें। यदि एक-एककर ये जातियां विदा होती गयीं, तो निश्चित ही हम (मनष्य, पशु-पक्षी) भी धीरे-धीरे लुप्तप्राय होते जाएंगे।

घास की जातियां

पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग घास से ढका हुआ है। वैसे भी १५ मुख्य फसलों में १० फसलें घास परिवार (ग्रेमनी) की हैं। यानी इस 'ग्लोब' के एक तिहाई भाग में घास है, तो दो तिहाई में पानी। इस परिवार की सबसे ज्यादा प्रजातियां हैं। प्रायः घास भूमि की सबसे ऊपरी सतह पर ही अपना जीवन-यापन करती है। इसके साथ सह-योगी वर्ग हैं—लाइकेन और ऐल्गी। ऐल्गी अपना जीवन-चक्र, पानी में या उसके आस-पास ही पूरा करती है, पर 'लाइकेन' अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। यह बड़ी-बड़ी चट्टानों पर भी अपना अड्डा जमाता है। अड्डा ही नहीं, बल्कि जिस चट्टान पर उगता है, उसको मिट्टी में परिवर्तित कर देता है। फिर इस मिट्टी में घास सहभागी बनकर शुष्क चट्टानों को हरा कर देती है। इसके साथ-साथ

घास में सारी थकान गायब



यही ग्रमनी (घास) परिवार अपने बीजों से हमारी भूख को भी शांत करता है। सिर्फ भूख को ही नहीं, जीवन को भी गति देता है। इनके बीज कार्बोहाइड्रेट्स प्रोटीन व खनिजों के मुख्य स्रोत हैं।

अन्न देनेवाली घास

जिस अन्न की पूर्ति घास से होती है, वह है—गेहूं, मक्का, धान, जौ, बाजरा आदि। कुछ घासें हमारी पाचन-शक्ति से बाहर की हैं, जिन्हें सिर्फ पशु ही पचा सकते हैं, आप चीनी ले रहे हैं, तो परोक्ष रूप में आप गन्ने (घास) का ही सेवन कर रहे हैं। यानी हमारा जीवन-चक्र घासों से ही संचालित है। चाहे वह आवास ही क्यों न हो—वहां भी बांस के रूप में हाजिर है।

बार-बार एक प्रश्न मन को कचोटता है कि कैसे घास परिवार ने पृथ्वी के इतने बड़े-हिस्से को ढका। किसी अवरोध की परवाह किये बगैर आराम से खेत, जंगल और चट्टानों पर आधिपत्य जमाती हुई निरंतर बाधाओं को झेल रही है।

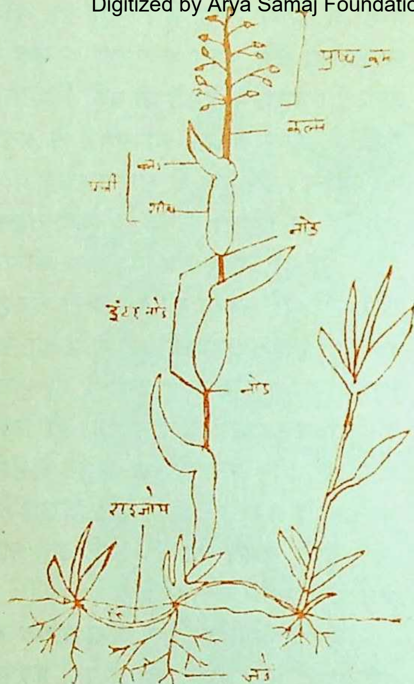
जमीन के भीतर एक जाल

अधिकांश पौधों में ऊतक ही वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं। ऊतक कितनी ही कोशिकाओं का समूह है। इस प्रकार कोशिका-विभाजन पत्तियों के ऊपरी भाग या तने में चलता ही रहता है। ऐसी स्थिति में यदि पत्ती व शाखा तोड़ भी दी जाए, तो वह पीछे के हिस्से से अपनी वृद्धि करता है। यह ऊपरवाली स्थिति पौधों में है, परंतु घासों में इससे भिन्न है। यहां पर वृद्धि करनेवाला क्षेत्र पत्ती व शाखा के मूल में होता है। घासों में, इससे भी बड़ी विशेषता होती है ठीक जमीन की सतह से बढ़ने की प्रवृत्ति। इस गुण के कारण चाहे घास जलकर या पशुओं द्वारा चरकर तहस-नहस भी हो जाए, तब भी उस बीरान और रौंदी हुई जमीन को हरा-भरा कर ही देती है। इस तरह घासों की वृद्धि का यह असाधारण गुण उसकी जड़ों में ही होता है। अधिकतर शाखा और पत्ती ही ऊपर दीखते हैं, और सारा हिस्सा जमीन के साथ सटकर या अंदर ही अंदर वृद्धि करता है। कभी-कभी घासों का ९० प्रतिशत भाग जड़ के रूप में होता है।

जमीन के भीतर जड़ों द्वारा संचित की हुई स्टार्च और ऊर्जा, घासों पर भयंकर आग लगने व पशुओं के चरने पर भी जिंदा रखने का सामर्थ्य देती है। मुख्य रूप से घासों के मैदान शुष्क जलवायु में मिलते हैं।

यदि पौधों के अधिकांश हिस्से जमीन से बाहर हों, तो उस अवस्था में अधिक पानी की आवश्यकता होती है, पर घास इस स्थिति से बचने के लिए अपने को जमीन के अंदर सुरक्षित किये हुए हैं।

घासों की जड़ें प्रायः जमीन के अंदर शाखाएं फोड़ती ही जाती हैं, इस प्रक्रिया में जहां घास पैदा हो जाती है, वहां अन्य वनस्पतियों को उगने का मौका कम ही मिल पाता है।



भूमि के अंदर पसरना

बिन पानी उगे घास

पेड़ों को मुख्य तीन कारणों से अधिक पानी की आवश्यकता होती है—पहला, बहुत ऊंचे उगने के कारण। दूसरा, पौधे का अधिक हिस्सा भूमि से ऊपर होता है, इसके कारण पानी का अधिक वाष्पीकरण होता है। और तीसरा, पेड़ों को अधिक ऊंचा उठने के लिए पानी की आवश्यकता। यदि पानी न मिले, तो फूल और पत्तियां उग ही नहीं पायेंगी। जबकि घासें इन कारणों से स्वतंत्र हैं। उनमें फूल भी कुछ समय के लिए आते हैं।

घास और आर्थिक संपन्नता

घास प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संपूर्ण जीव-जगत को पाल रही है। अपने अस्तित्व पर कितने ही प्रहारों को सहते हुए मां-जैसी ममता बांट रही है और निश्चल भाव से हमारा पोषण कर रही है। कितनी बड़ी सहन-शीलता है इस परिवार में। घास पर प्राकृतिक विपदाएं आते हुए भी, यह हरियाली के रूप में आशा का संदेश दे रही है।

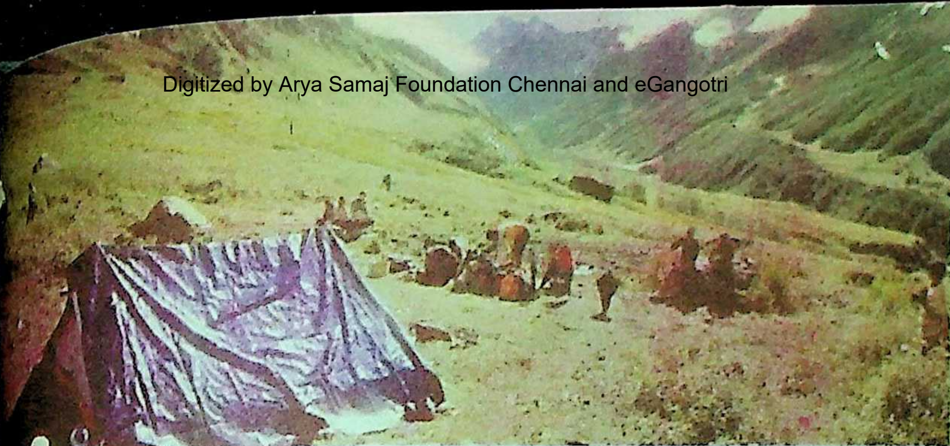
घास : एक औषधि

रोग-मुक्ति में घास का अनुपम महत्त्व है। है। प्रातः घास पर मोतियों की माला पिरोती हुई ओस की बूंदें, उस पर नंगे पांव चलनेवालों की नेत्र-ज्योति बढ़ाती हैं। इतना ही नहीं, अशांत मन और मस्तिष्क को राहत भी देती हैं। इसके साथ ही यह वातावरण में प्राणवायु (ऑक्सीजन) के संतुलन को वायु-प्रदूषण से मुक्त रखती है।

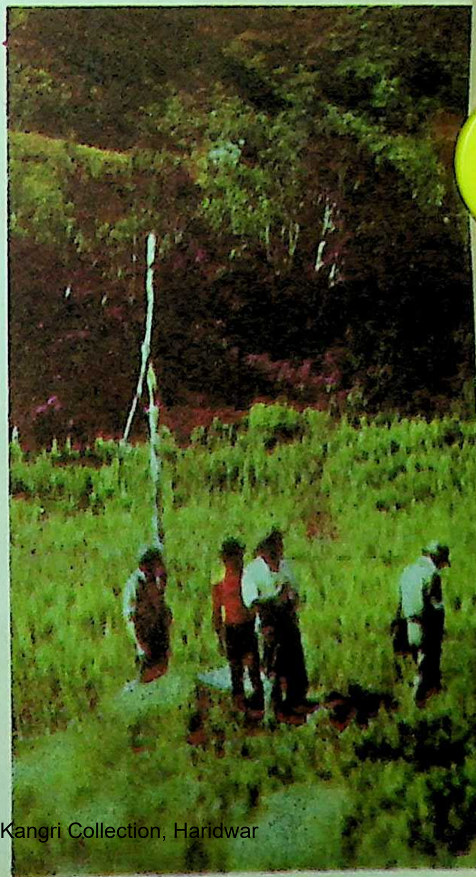
घासों से प्राप्त 'रस' (औषधि), संपूर्ण चिकित्सा-पद्धतियों का मार्ग प्रशस्त करती है; चाहे वह एलोपैथी हो, या होम्योपैथी।

आज हमारी नीयत, सिर्फ घास के योगदान की ही है, पर उसके प्रति हमारा जो कर्तव्य है, उससे हम मीलों दूर हैं। बजाय उसे जीवित रखने के सहयोग के—उसके साथ चरम अत्याचार कर रहे हैं—जिसकी अंतिम परिणिति है रेगिस्तानों का विस्तार।

—६/६८८ लोदी कालोनी, नयी दिल्ली



मैदानों में ही नहीं, पहाड़ों के शिलाखंडों में भी सुबह की धूप-सी विहंसती हरी घास न केवल आंखों को लुभाती है, उन्हें ठंडक पहुंचाती है, वरन मन को भी प्रफुल्लित कर जाती है। मनुष्य की जिंदगी में घास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह दूब के रूप में पूजा का अनिवार्य अंग है तो दुधारू पशुओं का एक आवश्यक चारा। घास हमारी जिंदगी के बहुत पास है, फिर भी हममें से कितने जानते हैं कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति से लेकर आज तक के विकास-क्रम में घास को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए मनुष्य से कहीं अधिक, लगभग दूना संघर्ष करना पड़ा है।



छाया : तूलिका


लीये: चितवत माणु चतुरई किये: दोहा: गोंउ कांमणि कोम
वि: पतिसो अति अनकुल: पाय आगम जियजानि कै: तापे
नकुफूल:॥२७॥

रागों को रूप कैसे मिला?

● डॉ. जयसिंह नीरज

भारतीय संगीत का आधार राग है। शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' में 'ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को, जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौंदर्य प्राप्त हुआ हो और जो श्रोताओं के चित्त को प्रसन्न कर सके', राग माना है। भारतीय धारणा के अनुसार राग भगवान शंकर की देन है। शिव और शक्ति के योग से राग की उत्पत्ति हुई। पंचानन महादेव के पांच मुखों से पांच राग यथा —श्रीराग, बंसत, भैरव, पंचम, मेघराग तथा पार्वती के मुख से नट-नारायण राग उत्पन्न हुए। पर इस तरह की धारणा को भारतीय 'मिथक' की ही उपज कहा जा सकता है।

वैदिक संस्कृति में सामवेद की ऋचाएं गायी जाती थीं, पर उनमें कहीं राग का संकेत नहीं मिलता। भारतीय संगीत का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ भरत का 'नाट्य-शास्त्र' है, जिसमें विस्तार से श्रुति, षडज, ग्राम, मध्यग्राम तथा अठारह जातियों का वर्णन तो है, पर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं है। १२वीं शती से पूर्व राग-रागिनियों की चर्चा नहीं मिलती। इससे पूर्व संगीत का जो रूप-स्वरूप रहा है, वह संगीत के विद्वानों के लिए विचारणीय है।

१३वीं शती में शारंगदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' की रचना की, जिसमें रागों की विस्तृत चर्चा है, पर इससे पता चलता है कि शारंगदेव ने जिस प्रकार प्रस्तुतीकरण किया है, उसकी पूर्व परंपरा अवश्य रही होगी। १४वीं शती में संगीत के क्षेत्र में महान क्रांति हुई, जिससे राग-रागिनियों के वर्गीकरण की परंपरा ही चल पड़ी।

राग-रागिनी का स्वरूप

राग-रागिनियों के स्वरूप के बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। जिस प्रकार ८४ योग और ८४ भोगों का समावेश हमारे यहां मान्य है, उसी प्रकार ८४ राग-रागिनियों की कल्पना भी की गयी है। १५वीं शती से तो उत्तरी भारत में राग-रागिनियों के स्वरूप तथा वर्गीकरण की प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। समय की गति के साथ-साथ राग-परिवार में वृद्धि होती रही है और प्रत्येक राग के साथ उसकी भार्याओं, पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं का भी उल्लेख होने लगा। अनेक ग्रंथ संगीत-शास्त्र पर लिखे गये, जिनमें से शारंगदेव का 'संगीत-रत्नाकर', महाराणा कुंभा का 'संगीत-दर्पण' और सोमनाथ का 'राग-विबोध' विशेष उल्लेखनीय

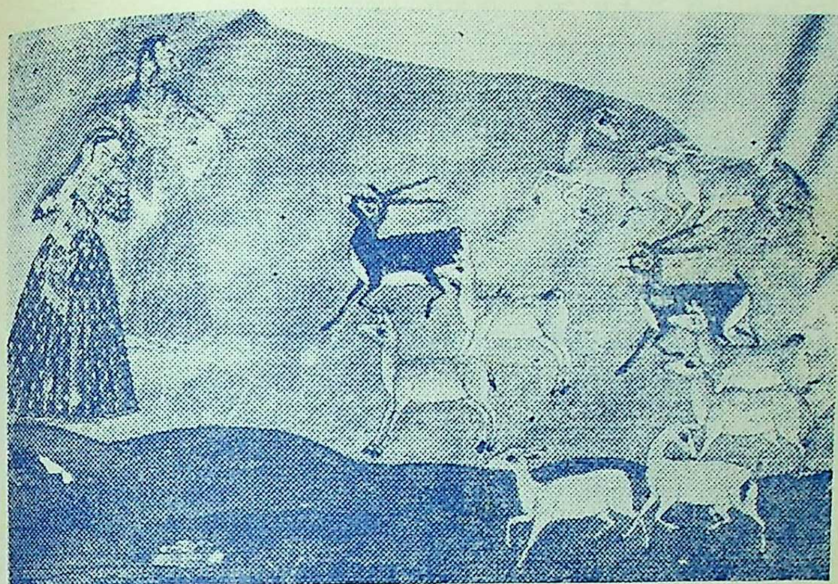
(कुंवर संग्राम सिंह के सौजन्य से)

हैं, किंतु राग-रागिनियों की पद्धति को माननेवाले संगीताचार्यों में भी मतैक्य नहीं है। अधिकतर संगीत संबंधी ग्रंथों और कृष्ण भक्ति काव्यों में छह राग और छत्तीस रागिनियों का विशेष उल्लेख मिलता है। इसीलिए महाकवि सूरदास ने स्पष्ट कहा है कि **'छहों राग छतीसों रागिनी, इक-इक नीके गावैं री'** और इसीलिए छत्तीस राग-रागिनियों की चर्चा हिंदी साहित्य में, संगीत में और चित्रकला में विशेष होती रही है।

राग-रागिनी के चित्रण में अनेक अभिप्रायों का सहयोग रहा है। प्रथम तो संगीत-शास्त्रियों ने ही अपने ग्रंथों में राग का ध्यान और स्वर निश्चित कर दिया है। दूसरे, राग किसी न किसी देवता या महापुरुष से संबंधित रहा है, इसलिए उस देवता या महापुरुष के गुणों, उसके दैवी कर्त्तव्यों का समावेश उस राग में हुआ है। उदाहरण के लिए, भैरवी रागिनी में महादेव की पूजा, नट-नारायणी में विष्णु का नर्त्तन, कान्हड़ा में हाथी को वश में करते हुए कृष्ण का चित्रण, मारू में ढोला-मरवण की कथा आदि का चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। नायक-नायिकाओं तथा राधाकृष्ण से संबंधित काव्य की चित्रोपयोगिता तथा अष्टनायिकाओं के विविध रूपों ने भी रागिनी के स्वरूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। देशकाल के अनुरूप अभिप्राय भी रागिनी के स्वरूप-निर्धारण में सहयोगी रहे हैं। उदाहरण के लिए सिंधवी रागिनी सिंध के संसार प्रसिद्ध घोड़ों की प्रतीक और सोरठी सौराष्ट्र का राग होने के कारण बीजा सोरठ के प्रेमाख्यान का प्रतीक है।

प्रकृति का संबंध मानव के दुःख सुख, राग-विराग से रहा है। अतः उसकी सांस्कृतिक चेतना में प्रकृति का योगदान अक्षुण्य है। बहुत-सी राग-रागिनियों का संबंध एवं नामकरण प्रकृति के उपकरणों के आधार पर ही हुआ है। अतः उन राग-रागनियों में उस ऋतु की आत्मा और प्राकृतिक परिवेश की सौंधी गंध बसी हुई है। हिंडोल का संबंध श्रावण मास के हरे-भरे वातावरण में, राधा-कृष्ण का झूला झूलने का प्रतीकार्थ है। अष्टछापीय एवं अन्य भक्त कवियों के 'झूलना' संबंधी पद इस राग पर आधारित हैं।

मेघ मल्हार आदि राग-रागिनियों का स्वरूप बरसात के उद्दाम वातावरण से संबंधित है, इसलिए ऐसे वातावरण में कृष्ण गोपियों के साथ मयूर की भांति नाच उठते हैं। काले-काले बादलों का घुमड़-घुमड़-कर बरसना, बृज के सतरंगे प्रकृति परिवेश में कृष्ण के वंशीवादन, नर्त्तन आदि का चित्रण जिस काव्य में हुआ है, प्रायः वही मेघ मल्हार या मल्हार में गाया जाता रहा है। मेघ मल्हार का चित्रण भी सर्वत्र कृष्ण का गोपियों के साथ श्रावण-भादों के बरसाती वातावरण में नृत्य करते हुए उपलब्ध होता है। कृष्ण-भक्त कवियों विशेष-रूप से सूरदासजी ने संपूर्ण पावस



प्रात:कालीन राग टोडी का एक भावप्रधान चित्र

प्रसंग में मेघ मल्हार एवं उससे संबंधित रागिनियों, जैसे मियां की मल्हार, गौड़ मल्हार आदि का प्रयोग किया है। बंसत-राग का संवंध भी इसी प्रकार ऋतुराज वंसत और शृंगार के प्रतीक श्रीकृष्ण की रसिक प्रवृत्तियों से जोड़ा गया है।

कवियों, संगीतकारों, चित्रकारों और मूर्तिकारों की मिली-जुली कल्पना ने राग-रागिनियों के न जाने कितने रूप-स्वरूप और नामकरण किये हैं। उनमें से बहुत-सी रागिनियों के नाम ही अनजाने हो गये हैं। इसका एक उदाहरण रागिनी गुमारू का है। दकन शैली का रागिनी गुमारू का चित्र कुंवर संग्रामसिंह के यहां उपलब्ध है।

कुछेक रागिनियों के अभिप्राय भारतीय पशु-पक्षियों से संबंधित हैं। जैसे ककुम रागिनी का संवंध नाचते हुए और कूकते हुए मोरों से है तथा टोड़ी रागिनी संगीत लहरी में मदमस्त हरिणों से संबंधित है। कान्हड़ा हाथी के मदहरण, सैंधवी सिंधी घोड़ों और मारू रागिनी ढोला मारू के ऊंट पर सवार होने के अभिप्राय से संबंध रखती है।

राग-रागिनी चित्रण

संसार का कोई ऐसा प्रमुख कला-

संग्रहालय नहीं, जिसमें राग-रागिनियों पर आधारित भारतीय चित्रकला की अमर धरोहर उपलब्ध न हो। १५वीं शती से लेकर १९वीं शती तक भारतीय चित्रकला में राग-रागिनी चित्रण एक प्रमुखतम विषय रहा, अतः समय-समय पर हजारों चित्रों का निर्माण हुआ है। ३६ राग-रागिनी का सैट बनाने की रूढ़ि ही चल पड़ी थी, इसलिए मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी आदि चित्रशैलियों में राग-रागिनियों का चित्रण बहुलता से हुआ।

राग-रागिनी के सबसे पुराने चित्रों में राजस्थानी शैली में महाराणा प्रताप की राजधानी चांवड़ में नसीरुद्दीन द्वारा सन १६०५ में चित्रित रागमाला चित्र जो श्री गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह में तथा बूंदी शैली का राग दीपक और रागिनी भैरवी के चित्र क्रमशः भारतकला भवन, बनारस और नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद में द्रष्टव्य हैं। मेवाड़ शैली के २१७ चित्र सरस्वती भंडार, उदयपुर और १८वीं शती अंत के ३६ चित्र विक्टोरिया हाल म्यूजियम, उदयपुर में उल्लेखनीय हैं। मुगल शैली के, अलवर शैली के अनेक चित्र अलवर संग्रहालय में देखने योग्य हैं। सिटी पैलेस म्यूजियम में राग-रागिनी सैट के ४५ चित्र उच्च कोटि के बताये जाते हैं। भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना में विभिन्न शैलियों के ८० चित्र, कला के अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी है। राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, पिक्चर एंड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा, एन. सी. मेहता आर्ट गैलेरी, अहमदाबाद तथा विदेशी संग्रहालय भारतीय चित्रकला की अमर धरोहर रागमाला के चित्रों से सुसज्जित हैं। निजी संग्राहकों के पास भी राग-रागिनी के उत्कृष्ट चित्र उपलब्ध है। कुंवर संग्रामसिंह के पास आंबेर शैली के पंचम राग, दीपक राग, मारू राग के उत्कृष्ट चित्र उपलब्ध हैं, जो कला के अध्ययन के नये आयाम प्रदान करते हैं।

संसारभर में फैले हुए रागमाला के ये चित्र लघुचित्रों के रूप में उपलब्ध हैं, पर आश्चर्य ही है कि सर्वाधिक प्रसिद्ध किशनगढ़ शैली में रागमाला का एक भी चित्र उपलब्ध नहीं होता। काश, एक भी चित्र हो, तो आज उसकी कीमत लाख रुपये से कम नहीं हो।

—७ढ़ २६, जवाहर नगर, जयपुर

कक्षा में एक बच्चा बोलता चला जा रहा था। तंग आकर आध्यापिका ने उससे पूछा, "अच्छा बताओ, जो आदमी हमेशा बोलता ही रहे, बोलता ही रहे। चाहे उसे कोई सुने या न सुने, उसे क्या कहेंगे ?"

बच्चे ने तपाक से उत्तर दिया, "जी, टीचर।"

★

"शराब को स्लो पॉयजन कहा जाता है ?" एक आदमी ने कहा।

"जी, हमें भी कोई जल्दी नहीं है।" दूसरे ने जवाब दिया।

कहानी

बाकी सब झूठ है

• माया मिश्रा

"छोड़िए आंटी, क्या करना है लॉ वॉ पढ़कर।" दिलीप ने मेरी बात को बीच में ही काटकर कहा। देखो तो अभी, उससे मेरी मुलाकात हुए दिन ही कितने हुए हैं, जो इतने अधिकार से मेरे निजी मामले में, वह अपना मत दे रहा है। इससे पहले भी कह चुका है, "क्यों करती हैं इतना काम, जो थक जाती है ! अब आपको आराम ज्यादा करना चाहिए।"

लो, भला आराम ही जिंदगी में होता, तो क्या सुबह होने से पहले ही जीवन रात की कालिमा से ढक जाता। भोला है बेचारा—जिंदगी की विभीषिकाओं को, जिंदगी के असली नाटक को, देखा ही कहां है? कैंपस में उसका एक मित्र है, सो उसी के साथ कुछ दिनों से रह रहा है। 'सोशियोलॉजी' में कुछ 'इंफार्मेशन' लेनी थी, मेरा सुना, तो मिलने आया।

ऐसा लगा, कोई बहुत करीब के, बहुत-बहुत स्नेहिल कदम, घर में आये हों।

और फिर हर कमरे में उसका चहकना, हंसना एक 'रूटीन' बन गया, इतनी जल्दी। मेरी लाइब्रेरी की तो हर किताब पर उसकी उंगलियां थिरकती रही हैं।

"क्या 'टेस्ट' है आंटी ! क्या 'सेलेक्शन' है आपका !" अपनी धीमी-सी आवाज में कहता है। मुझ तक आवाज हौले से पहुंचती है। कोई पराया-जैसा तो वह 'बिहेव' करता नहीं, जो ड्राइंग रूम में बैठा, उससे औपचारिक बातें करूं। सो अपने मन से जहां अच्छा लगे, बैठता है। दिनभर के काम को बताता है, जैसे स्कूल से आते ही बच्चा बस्ता फेंक मां को एक-एक बात बताये !

कुछ भी पकाऊं, ऐसा मन होता है, कहूं, "चलो खा लो, थोड़ा-सा।"

अरे ! आज अभी तक क्यों नहीं आया ? सालों-साल के अकेले जीवन में लोग आते ही रहे हैं—मिलते ही रहे हैं, पर इसके कदम में कोई पहचान है। इसकी मुसकराहट में पहचान है ! ! इसके चेहरे में कोई सामंजस्य है ! !

"और थोड़ा बैठो, क्या जल्दी है", मैंने कहा।

घड़ी देखकर एकदम खड़ा हो गया। "नहीं आंटी, सात बजे का 'टाइम' दिया है —मिस्टर वैष्णव आ जाएंगे।"

"अरे, वैष्णव है गपोड़ी। वह नहीं आता आठ बजे तक।" मैंने कहा, पर वह अपना चश्मा व बैग उठाकर चल ही दिया। मैं बांह उठाकर रोकती भी तो कैसे?

हां, याद आ गया। . . . भूली नहीं हूं, ...वह याद धूमिल भी नहीं हुई है। मैं यों ही रोकती रही थी और ऐसे ही घड़ी देख वक्त की दुहाई देते अमिताभ चले गये थे—फिर कभी उन्हें नहीं देखा। सुना था कि 'एक्सीडेंट' हुआ, मोटर साइकिल से। केलिफोर्निया में हम दोनों साथ पढ़ते थे। डॉक्टर एलेक्स ने कहा था, "तुम वहां नहीं जाओगी।" और मुझे आखिरी बार उन्हें देखने भी नहीं दिया गया था। डॉक्टर एलेक्स जानते थे कि हम दोनों भारत वापस जाकर शादी कर लेंगे। इससे उन्होंने हमारे मिलने-जुलने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं जाहिर की। वैसे भी पश्चिम में प्रणय, विवाह, संबंध-विच्छेद सब कुछ इतना सहज है कि उसे विशेष अर्थ कोई भी नहीं देता।

महीनों हम साथ-साथ घूमते रहे, किसी सहपाठी ने भी कभी यह कोशिश नहीं की कि कोई ताना दे या अंगुली उठाये। 'परमिसिव' समाज में कोई कहीं कब क्या करता है, इसे देखने का रिवाज नहीं है। इसी से मैं व अमित बे-रोकटोक मिलते रहे। वहां तो होस्टल भी अलग-अलग नहीं थे। देर रात तक मौका निकाल, बैठ लेते।

पर जब नियम-बंधन तोड़ दिये जाते हैं, और यह आशंका नहीं रहती कि हमें कोई क्या कहेगा, तब सब कुछ अनायास ही निर्बाध बन जाता है। वही हाल हम दोनों का हुआ।

डॉक्टर एलेक्स हमारे वॉर्डन थे। एक-दो बार उन्होंने मुझसे तो नहीं, हां अमित से जरूर कहा कि जब उसे विश्वास है कि अपने देश वापस जाकर विवाह कर सकेगा, तब पढ़ाई पर ध्यान दे और कुछ दिनों तक संयम से रहे।

अमित के पिता बड़े ही कठोर-हृदय रहे होंगे। बेटे की मौत का सुनकर, आये भी नहीं। पहले हम लोगों ने सोचा कि इतना खर्चा शायद वह उठा न सकते हों, पर पता चला—बड़े रईस आदमी हैं। मृत्यु की खबर सुनकर बोले, "उसका हंसता-चहकता चेहरा ही जिंदगी भर याद रखना चाहता हूं। मैं क्यों सोचूं कि अमिताभ मुझे छोड़कर कहीं चला गया है!"

डॉक्टर एलेक्स ने मुझे बाद में बताया कि अमित का शरीर इतना क्षत-विक्षत हो गया था कि उसे विमान द्वारा भेजकर भी क्या होता!

अमित के कमरे की हर चीज को, 'वार्डरोब' के हर कपड़े को देखकर, छूकर, मैंने उसे महसूस किया। उसी कमरे के

धुंधलके में उसने मुझे प्यार का अधिकार दिया। उसने कहा था, "क्या करना है किसी बात का इंतजार करके, यहीं से शादी करके चलेंगे।"

कौन जानता था कि धर्म-अधर्म की व्याख्या कर अमित मुझे बांहों में समेट लेंगे और जब तक मैं सब कुछ समझ पाऊं, उससे पहले ही चले जाएंगे। मेरे मन में कोई ग्रंथि नहीं थी, पर न जाने क्यों दूसरी सुबह ही एक अजीब प्रायश्चित-बोध लेकर वे मेरे कमरे में सुबह-सुबह ही आ गये। बोले—

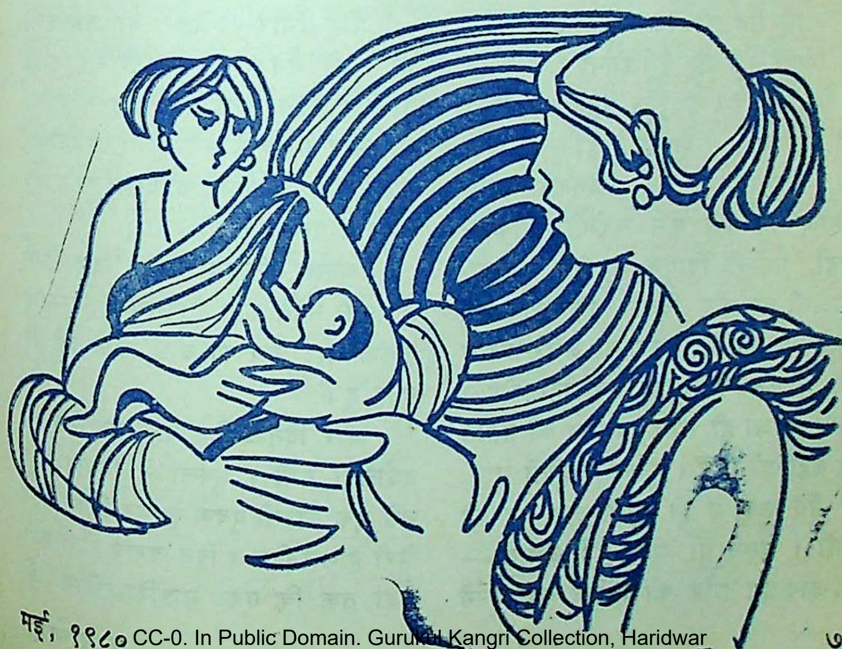
"पिछली रात की बातों के लिए मैं बहुत शर्मिंदा हूं। तुम मेरी बेसब्री के लिए मुझे माफ कर दो। दो-चार दिन में ही मैं यहां मंदिर के प्रमुख से शादी का 'प्रोग्राम' तय करूंगा।"

कोई ग्लानि या पाप-बोध एकबारगी तो नहीं हुआ, पर कुछ गंभीर सोच में पड़ गयी। पता नहीं, क्यों संयम तोड़ा?

शुक्ला मेरी 'रूम-मेट' थी। अमित को मेरे पास अकेले समय मिल जाए, इससे बाथरूम में चली गयी। बाहर आयी, तो अमित का आखिरी वाक्य सुनकर बोली, "चलो इसी बात पर मुंह मीठा तो करो।"

खड़े-खड़े ही एक चॉकलेट मुंह में डाल, घड़ी देखकर अमित एकदम से चल दिये।

सामंजस्य दिलीप का इसी ढंग से था। ज्यों ही उठकर गया, मन बेहद घबरा गया।





'एक मिनट तो बैठो बेटा !' कहते-कहते रुक गयी। इतने वर्षों बाद कहां मन भटक गया।

पर मन की व्यथा को इसी तरह वर्षों-वर्षों तक सहा है। इतना दुःख भोगा है कि क्षण भर का सुख सहने की शक्ति भी कहां बची ? शुक्ला ने ही तो बताया था, 'अविवाहित मां बनकर अपने समाज को कैसे 'फेस' करोगी ?' कितने दिनों, महीनों दिमाग ने जैसे सोचना-समझना बंद कर दिया। फिर बार-बार अपने मन की कशमकश को अंधेरे-उजाले की भटकन से बाहर कर यही फैसला किया कि जो हो, सो हो, अमित की संतान को नहीं खोना है। शुक्ला न होती साथ, तो मैंने सच में ही आत्महत्या कर ली होती। उसने ही मुझे धैर्य बंधाया—'मां-बाप इस 'शॉक' को बर्दाश्त नहीं करेंगे तो क्या, तुम खबर ही मत करो।'

जाने किस उद्वेग में जो कुछ वह कहती गयी, मैं करती गयी।

धीर गंभीर-सा चेहरा था, उस बच्चे का, जिसे मैंने परायी धरती पर पराये लोगों के बीच जन्म दिया। इतने कशमकश और तनाव से भरे दिनों को पारकर जब उस मासूम चेहरे को देखा, तब शायद खुशी से पागल ही हो गयी।

'शुक्ला, कितना साहस दिखा गयी हूं। पता नहीं, कहीं जीवनभर असम्मान, कलंक और पाप का बोझ अपने बेटे को न दे दूं।'

और दिन-ब-दिन यह बात मन को दबोचती गयी। शुक्ला ने विवाह वहीं बसे एक पारसी युवक से कर लिया था। मेरी हालत दिन-ब-दिन खराब होती गयी यहां तक कि एक 'साइकियटरिस्ट' के

पास मुझे वह ले गयी।

'बेटा इन्हें बेहद प्यारा है, पर उसके सुख के रास्ते में कहीं कांटे न बिछ जाएं, इसी चिंता, भय व आशंका से ये परेशान रहती हैं। इन्हें बेटे से दूर कर दीजिए। या तो ये मानसिक संतुलन खो बैठगी या कहीं बच्चे को ही नुकसान न पहुंचा दें।'

शुक्ला ने मुझे बड़े प्यार से समझाया, 'देखो उर्मि, तुम मां हो, इस तरह दिन-ब-दिन अपने को घुलाते रहने में क्या? तुम क्या यह चाहोगी कि तुम्हारा बेटा जिंदगी में जरा भी दुःख पाये? अमित के सुनहरे सपने, जिनकी बेबस यादों के सहारे ही तुमने इसे जन्म दिया, क्या तुम चाहोगी कि उसे उन बातों का उत्तर देना पड़े, जिन्हें वह तुमसे पूछ भी नहीं सके? क्या तुम उसे कभी विश्वास दिला सकोगी कि वह अमित का ही बेटा है।'

इस आखिरी वाक्य ने मुझे बेहद विचलित कर दिया। यों भी मन कब क्या सोचता था, उसका हिसाब रखने की सामर्थ्य ही क्या रही थी! मैंने शुक्ला को झकझोरकर बहुत झगड़ा किया।

'आखिर तुमने इतनी गंदी बात कही तो कैसे? जिंदगी में मैं अकेले सब-कुछ सह लूंगी। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।'

इतना क्या, इससे भी ज्यादा जाने क्या-क्या बुरा-भला उसे मैंने कहा होगा। पर वह धीर-गंभीर सहेली यही समझाती रही, 'देखो उर्मि, तुम भूल कर रही हो। तुम शादी भी कहीं और करोगी, तो यही ज्वलंत प्रश्न तुम्हें चैन नहीं लेने देगा। एक-न-एक दिन भावी पति तुम्हें जरूर ताना देगा, चाहे कितना भी समर्पित प्यार तुम उसे दोगी।'

'तुम ही कौन-सा चैन से बैठने दे रही हो। यह बात और किसी ने तो मुझसे नहीं कही।'

'पर उर्मि, कोई तुमसे कहने क्यों आएगा? ऐसी बात लोग पीछे कहते हैं—तुम्हारी बदनामी, तुम्हारा कलंक, तुम्हारे साथ-साथ, बल्कि तुम्हारे आगे जाएगा। इतनी काबिल, इतनी होनहार, इतनी विद्वान—तुम्हें जीवन भर इतनी भटकन होगी कि इस बच्चे से ही तुम्हें नफरत हो जाएगी। तुम कुछ न कर सकोगी।'

पता नहीं, कहां होगी वह आज? कितना लड़ी थी, कितना रोयी थी और कितना निहोरा किया था, उसने मेरा। मिस पर्किंस भी उस दिन आ गयी थीं। न जाने क्यों, उनके सामने मैं भयभीत हो जाती। मैंने शुक्ला से लड़ना बंद कर चुपचाप दवा खा ली। फिर हफ्तों शुक्ला ने मेरी व प्रतीक की सेवा की।

'तुम प्रतीक को 'फीड' नहीं करोगी।' उसका आदेश था। मिस पर्किंस की सलाह पर वह मुझे मानसिक तनाव व दुविधा से परे करना चाहती थी।

फिर अचानक एक दिन उसने मुझे बताया कि मिस पर्किंस ने कह दिया है कि दवा से कुछ न होगा, मुझे अपने बेटे से अलग होना ही होगा।



"नहीं, नहीं मैं उसे किसी अनाथालय में नहीं दूंगी।"

"पर यह कब कहा मैंने? वह मेरा बेटा बनकर इस दुनिया में रहेगा। मैंने 'इनसे' बात कर ली है। तुम जानती हो, मैं तो मां कभी बन नहीं सकती। ये कहते हैं, प्रतीक हमारा बेटा है।" शुक्ला ने कहा, "उर्मि, पर तुम यह कसम खाओ कि तुम कभी वापस मुड़कर नहीं देखोगी—कभी मुझसे नहीं मिलोगी—कभी यह नहीं सोचोगी कि तुम कभी मां थीं।"

और वह प्रतीक को ले गयी। उससे क्या हुआ कि मैं दो-चार वर्ष मानसिक रूप से बहुत बीमार रही। भारत आकर भी बहुत दिन तक इलाज कराना पड़ा। पर मुझे अच्छी तरह याद है कि जब यूनिवर्सिटी में 'जॉब' के लिए आयी थी, तब केवल मेरी बीमारी को ही लेकर 'सलेक्शन-बोर्ड' थोड़ा 'नर्वस' था। वर्षों से मैं यहां काम कर रही हूं। यौवन को इन्हीं सड़कों, कमरों में पार किया। किसी ने मेरा अतीत कुरेदा ही नहीं। इतना संयमित जीवन व इतनी गंभीर-प्रकृति से रही कि कोमल भावनाओं को उभारने, जागृत करने की किसी ने कोशिश ही नहीं की।

अब तो धूमिल याद से भी डर लगता। कितनी बार मन ने मुझे समझाया, शायद वह दिन जरूर आएगा, जब मेरी सूनी-शुष्क निगाहें अपने आप मुसकरा सकेंगी।

...आया ही नहीं, कई दिन हो गये... मन बार-बार भटकता है। ऐसा मन होता है, जाऊं उसके घर देख आऊं। क्या हुआ, कहीं बीमार तो नहीं हो गया। वरना, चाहे खड़े-खड़े ही, दो मिनट के लिए आता जरूर। जान जो गया है कि गंभीर उदास-उदास-सी मैं उसके आने पर कितनी देर अपलक स्नेहिल भाव में डूब मुसकराती हूं। यों अपने रूप पर गर्व तो नहीं किया, पर अमित जब भी कहते, "तुम यों मुस्कराया न करो। ये 'हाईचीक्स', क्या शबाब बरसता है।" मैं बेहद पुलकित हो जाती थी।

...पर आया क्यों नहीं? उसे पता तो नहीं चल गया कि मैं कौन हूं—कहीं वह यह तो नहीं सोचने लगा कि जब मैं इतनी नीरस व संयमित जीवन बिताती रही हूं, तब उसी से इतना नैकट्य क्यों? कहीं

ऐसा तो नहीं कि उसके बार-बार मेरे घर आने पर किसी ने थोड़ा-सा भी मजाक कर दिया हो ।

बरबस ही उसके घर की तरफ चल दी। रास्ते में उसका नौकर मणि मिला। "साहब घर पर हैं',' जानकर कदम और तेज हो गये। दरवाजे पर ही खड़ा था--

"अरे आंटी, मैं तो आपके पास ही आ रहा था। दो-तीन दिन को बाहर जाना पड़ा। आपसे कह भी न पाया। मुझे बड़ी चिंता हो रही थी कि आप अकेली होंगी। आइए न अंदर।"

"अकेली तो बेटा उम्र बीत गयी।" सोचा, पर कहा नहीं, वरना कहीं प्यार-भरी बातें करना वह बंद न कर दे।

"आप बिलकुल मां-जैसी लगती हैं। ऐसे ही वे मेरे लिए व्याकुल हो जाती थीं (मैंने कब कहा कि मैं व्याकुल हूं) कभी चिट्ठी देर से पहुंचे, तो मेरे होस्टल पहुंच जातीं, बीमारी की हालत में भी। कहती थीं, औरों के बेटों में और तुझमें फर्क है —मैंने कितनी मुश्किल से तुझे पाया है।'

आंखें उसकी भीग आयीं—"मां मुझे संसार में अकेले छोड़ गयीं। उनकी तसवीर आंखों में बसी रहती है। काश। उस दिन क्रिकेट मैच देखने न जाता। अचानक 'कार्डिक अरेस्ट' हो गया। फिर मां ने कुछ भी बात नहीं की मुझसे। आंटी, मैं तुम्हें मां की तसवीर दिखाऊंगा। बहुत प्यार करती थी मुझे।"

"नहीं-नहीं, मैं नहीं देखूंगी तसवीर।" ... फिर कभी नहीं आऊंगी इसके घर। ... कहीं ऐसा तो नहीं कि यह शुक्ला का बेटा हो--नहीं, मुझे नहीं जानना--मुझे नहीं देखनी शुक्ला की तसवीर। कोई और हुआ तो खैर, पर कहीं सच में शुक्ला ही हुई, तो फिर क्या करूंगी। मुझे और नहीं टूटना है अब। मुझे नहीं जाना यथार्थ में--मुझे नहीं बनाना शुष्क अपनी प्यार से आर्द्र आंखों को।

पराया जानकर ही मैंने उसे प्यार किया, पराया ही रहने दूंगी। और करीब लाकर अपने सुख की हलकी-सी छांह पर धूप नहीं होने दूंगी। सच की क्या परिभाषा होगी, मुझे नहीं मालूम। पर मुझे यह मालूम है कि मुझे उससे बेहद स्नेह है, लगाव है--बाकी सब झूठ है।

"फिर कभी देखूंगी बेटा, अभी 'डिपार्टमेंट' पहुंचना है—जल्दी।"

और बरसती आंखों को आंचल के कोर से पोंछ, घर से बाहर आ गयी।

--द्वारा रमेशप्रसाद मिश्र, आई. पी. एस.
पुलिस महानिरीक्षक (सशस्त्र बल),
भोपाल (मध्यप्रदेश)

शादी से पहले लड़के ने लड़की को सब कुछ साफ-साफ बताते हुए कहा, "मेरा वेतन सात सौ नहीं, सिर्फ पांच सौ रुपये है।"

लड़की बोली, "कोई बात नहीं, मैं तो पांच सौ रुपये में ही गुजारा कर लूंगी, आप अपनी जेब खर्च के लिए 'ओवरटाइम वगैरह से गुजारा चला लीजिएगा।"

वह विद्रोही 'भगवान' की तरह पूजा गया

बिहार का छोटा नागपुर डिवीजन पठार पर बसा हुआ है। यह पर्वतीय भू-भाग अत्यंत मनोरम और रमणीय है। चारों तरफ बड़े-बड़े शाल, पलाश, शीशम आदि वृक्षों और हंसपदी लताओं से ढका हुआ है। कल-कल करते चंचल झरने व भोले मृग-शावक प्राकृतिक छटा बढ़ाते हैं। किंतु इससे भी मधुर हैं—यहां के बसनेवाले भोले-भाले, जंगल को मां की तरह पूजनेवाले निष्पाप, निष्कपट आदिवासी लोग जिनकी हंसी दूर मंदिर में बजती घंटियों-सी पवित्र होती है।

यहीं पैदा हुआ वह . . .

इन्हीं रमणीक स्थानों के बीच १९वीं शती के अंत में हुआ सशस्त्र क्रांति का योग्य योद्धा--२५ वर्षीय युवक बीरसा। बीरसा आदिम जातियों को उनकी प्राचीन जड़ता और अंधे संस्कारों से मुक्त कर आधुनिक युग में लाना चाहता था, जिससे मुंडा आदिवासी सरलता, न्यायबोध और एकता अटूट रख सकें। उसने ही इन अभागे, दीन-दरिद्र जंगली मुंडाओं में सहज स्वाभाविक गर्व का बीज रोपा था।

बीरसा के जन्म के बहुत पहले से ही आदिवासियों के शोषण का दुष्चक्र आरंभ हो गया था।

● मृदुला बिहारी

बीरसा का जन्म रांची जिले के तमाड़ थाना, चालकाड़ ग्राम में सन १८७५ के एक वृहस्पतिवार को हुआ था। इस दिन जन्म लेने के कारण इनका नाम बीरसा पड़ा। मुंडाओं की लोक धारणा है —यदि आकाश में तीन तारे किसी खास स्थिति में दिखायी देते हैं, तो देवता का आविर्भाव होता है। बीरसा के जन्म के समय भी ऐसा ही हुआ, और मुंडाओं ने कहा, 'करमी के घर भगवान आया है।'

कभी इसी बीरसा के पूर्वजों ने छोटा नागपुर बसाया था, उन दिनों उसका पिता भिखारी की तरह दर-दर भटक रहा था। ऐसी स्थिति देखकर बीरसा का बाल-मन असह्य वेदना में डूब जाता। यही वेदना उसके अंतश्चेतना में रमती गयी।

जब मुल्की लड़ाई छिड़ी

उन दिनों आदिवासी सरदारों के बीच रोष छाया हुआ था। उन्होंने मुल्की लड़ाई छेड़ी थी। एक दिन जरमन मिशन में, जो मुंडा किरिस्तान बने थे, वे मिशन के डॉ. नट्रट के पास गये। और वहां उन्होंने कहा, "छोटा नागपुर के कास्तकारी कानून के अनुसार, जिसकी जितनी जमीन है, उसे वापस किया जाए। तुम साहब

हो, गोरे हो, सरकार भी साहब है, तुम उनसे हमारी फरियाद करो।"

डॉ. नट्टट ने साफ इनकार कर दिया। ऐसा करने से मुंडा नाराज हो गये और तोरपा जाकर कैथोलिक हो गये। वहां थियवेंस साहब ने कहा, "जो अत्याचारी हैं, उनसे लड़ो, सत्य की विजय होगी।" सरकार थियवेंस पर बिगड़ गयी और तत्काल उनकी बदली कर दी गयी।

सरकार ने जंगल के सभी आदिम-जातियों को खदेड़ने का हुक्म दे दिया। अब वे जंगल से लकड़ी, पत्ता, मधु, फल-फूल कुछ भी नहीं ले सकते थे। धानी सरदार भागा-भागा बीरसा के पास पहुंचा और बोला, "अब तो कुछ कर मेरे भगवान ! हमारी मां को सरकार ने छीन लिया, हम पहले ही बेघर, बेजमीन हो चुके हैं।"

बीरसा फरियाद लेकर गया चाईंबासा के जंगल-आफिस। किंतु उसे वहां मिला, उपहास और अट्टहास—'इन अर्ध-नग्न असभ्यों का भी कोई अधिकार होता हैं !' बीरसा का क्रोध फुफकार उठा। वह गांव लौटकर आया, तब आनंद पांडे ने भी शांत स्वर में कहा, "तुम मुल्की लड़ाई में जाते हो, इसलिए तुम्हारा यहां रहना जमींदारों व महाजनों को पसंद नहीं।"

मुंडा चारों तरफ से मर रहे थे, शोषित हो रहे थे, गुलामी के पट्टों पर अंगूठा लगा रहे थे।



बीरसा भगवान

लौटकर बीरसा चालकाड़ पहुंचा। देखा—आयो आवा उपवास से हड्डी का ढांचा मात्र रह गये थे। बीरसा से यह सब सहा नहीं गया। वह भाग-भागकर जंगल चला जाता। वहां उसके मन से शांति मिलती। और एक दिन ऐसे ही वह जंगल के फैलाव में विलीन हो गया।

वहीं उस भारी भीगे दु:ख से कातर मन को कोई दिव्य ज्योति दिखायी दी। उसकी सात्विक भावनाएं जानी-अनजानी दिशाओं में प्रवाहित होने लगीं। जब वह जंगल से लौट रहा था, तब मूसलाधार वर्षा हो रही थी; बीरसा हाथ उठाये चला आ रहा था, मानो स्वप्नलोक की सहज शांति और आकाशी सौंदर्य के साथ वह

एकाकार हो गया। चालकाड़ में सब जगह शोर मच गया कि बीरसा में भगवान उतर आया। बीरसा भगवान बन गया।

किंतु बीरसा ने इसे स्वीकारा था चिंतन, मनन और व्यवहार में। मुंडाओं के आदिदेव अब उनके दुःख दूर करने में असमर्थ थे। भूखे पेट 'किंगडम ऑव हेवन' की बात बेमानी लगती। सबको विश्वास हो गया कि यही देवता उनका उद्धार करेगा।

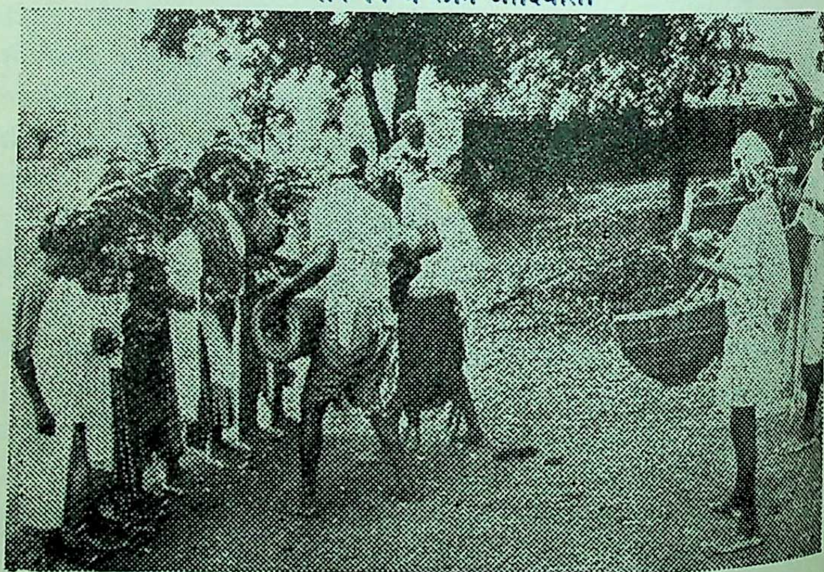
जब घर तीर्थ हुआ

कुछ ही दिनों में बीरसा का घर तीर्थ बन गया। बीरसा को ईश मानकर लोक-गीत रचे जाने लगे। रोगी, लूले-लंगड़े और भारी जनसमूह अपने भगवान के दर्शन के लिए उमड़ पड़ता।

बीरसा के पास अपनी शक्तियों के अतिरिक्त था--मिशन की जीवन शिक्षा, वैष्णव धर्म की शिक्षा और अपने विगत की यातनाओं और यंत्रणाओं से भरा अनुभव। गांव में हैजा फैला, चेचक फैली; भगवान ने सबका उपाय बताया--सफाई से रहने की आवश्यकता। महामारी समाप्त हो गयी। यह तब पहला अवसर था, जब गांव में महामारी आयी और सौ-पचास की जान लिये बिना चली गयी।

बीरसा की इस अलौकिक शक्ति की कहानियां दूर-दूर तक फैलने लगीं। बीरसा के अनुयायी बीरसाइत कहलाये।

राग-रंग में लीन आदिवासी

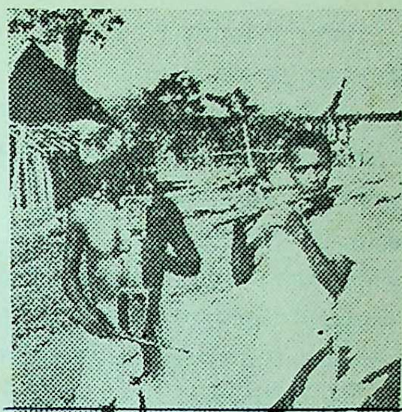


बीरसा ने भविष्यवाणी की कि १८९५-९६ में भीषण अकाल आयेगा, कोई खेती नहीं करेगा, लगान नहीं देगा, बिकने नहीं जाएगा, बेगार नहीं करेगा और किरिस्तान नहीं बनेगा। महाजन सूदखोरों को ये आसार अच्छे नहीं दिखायी दिये। यह बात सरकार के कानों में भी पहुंचायी गयी। बीरसा के नाम से दिकू (साहूकारों को आदिवासी यही संबोधन देते हैं) डरने लगे। बीरसा मुंडाओं को भड़का रहा है, विद्रोह की तैयारी कर रहा है। और इस तरह बीरसा के नाम पर सरकारी रिपोर्टें भरी जाने लगीं। दिकू इस बात से डर गये कि जिन्हें खाने को दो जून नहीं जुड़ता, उनमें यह कैसी हिम्मत और साहस भरता जा रहा है। बीरसा का कातर विवेकी मन दृढ़ होता गया, और वह संगठित विरोध की तैयारी में जुट गया।

बीरसा को यंत्रणा शुरू

बीरसा को अगस्त १८९५ में गिरफ्तार कर लिया गया। जिला प्रशासन ने पहले यह निर्णय लिया कि बीरसा एक पागल है जिसे भोले आदिवासी अपना भगवान मानते हैं। वह महज एक पगलाया हुआ युवक है। और इसी उद्देश्य से बुलाये गये-- डॉ. रॉजर्स। पूरे परीक्षण के बाद उसने बताया कि बीरसा एक स्वस्थ, निर्भीक लड़का है। इसमें पागलपन के कोई लक्षण नहीं हैं। उन्होंने पालगपन का सर्टीफिकेट देने से साफ इनकार कर दिया।

इस पर जिला प्रशासन बहुत झल्लाया।



आदिवासियों को संगीत बहुत प्रिय है

फिर मीटिंग हुई। कमिश्नर ने कहा कि बीरसा पर मुकदमा रांची में न चलाकर खूंटी में चलाया जाए, और सरकारी वकील अपनी जिरह से यह साबित कर दे कि बीरसा एक साधारण युवक है— अलौकिक शक्ति से युक्त कोई भगवान नहीं। किंतु हुआ उनकी आशा के विपरीत। खूंटी में भगवान आयेगा—सुनकर, गांव के गांव खूंटी में उमड़ने लगे। (अदालत के आगे बीरसाइतों की ऐसी धक्का-मुक्की मची कि पुलिस का आंतक कुछ नहीं कर सका।) बीरसा के लिए कहे गये अपशब्दों ने उस जन-समूह को देखते ही देखते उग्र बना दिया। पुलिस ऐसी घबड़ायी कि बीरसा को लेकर किसी तरह रांची भाग आयी। रांची में बीरसा को सजा मिली —दो वर्ष का कठोर कारावास और ५० रुपये जुर्माना। जुर्माना न देने पर छह महीने की सजा।

क्वीन विक्टोरिया की हीरक जयंती के अवसर पर जनवरी १८९८ में बीरसा हजारीबाग जेल से रिहा हुआ। और बीरसा का विद्रोह दूने उमंग के साथ हिलोरे लेने लगा।

दीक्षा-मंत्र रंग लाया

उन्होंने अपनी लड़ाई का नाम रखा 'उलगुलान'। यही उलगुलान उनका दीक्षा-मंत्र बना। बीरसा लकड़ी के मचान पर खड़े होकर कहता—

"हम अपनी मल्कियत जमायेंगे। दुश्मनों को भगायेंगे।"

बीरसा के उलगुलान का दिन निश्चित हुआ—२५ दिम्बर। क्रिसमस ईव। रांची के यूरोपियन क्लब में साहब लोग जुटते थे, उस दिन भी समां वैसा ही था। अचानक भगदड़ मच गयी। बीरसाइतों ने हमला कर दिया। इस हमले में छेदी मिस्त्री मारा गया, और कई सिपाही जख्मी हुए।

तुरंत फौज बुलायी गयी

बीरसा का आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था। इससे कमिश्नर बुरी तरह घबड़ा गया। तुरंत फौज बुलायी गयी। लगभग ४०० बीरसाइतों ने कुर्बानी दी। बीरसा किसी तरह बच निकला।

उलगुलान को सुलगाये रखना

जंगल परमी और साकी बीरसा की देखभाल करती थीं। उन्होंने कहीं से कुछ रुपया जुटाया और उसी से चावल खरीद लायीं। उन अभागिनों को ये क्या मालूम था कि यही चावल बीरसा की जान ले लेंगे। महीनों जंगली स्वाद-हीन फल-पत्तों को खाते-चबाते उनका मन भात खाने को ललक उठा और वे भात पकाने का लोभ संवरण न कर सकीं। जंगल में कच्ची लकड़ी के काले धुएं ने जैसे बीरसा को पकड़ने का आमंत्रण दे दिया। क्षण-क्षण, चप्पे-चप्पे नजर रखने-वाले पहुंच गये। शशिभूषण के साथ तमरिया माझी भी उस वृहत राशि का पुरस्कार पाने का भागीदार बना। पकड़े जाते समय कई दिनों तक न सो पाने के कारण थका, क्लांत बीरसा सो रहा था। गांव था सेंत्रा। परमी की चीत्कार से बीरसा जाग उठा और शांत स्वर में बोला, 'अब मेरा मरण है, पर उलगुलान को मत मरने देना।' वह दिन ३ फरवरी, १९०० का था।

बीरसा को जेल की कोठरी में अकेला रखा गया। अन्य मुंडाओं को उनसे मिलने की सख्त मनाही थी। हाथ-पांव में जंजीर डालनेवाले, काल-कोठरी में बंद करने-वाले धीमे स्वर में कहते, "हमें क्षमा करना भगवान! हम हुक्म के गुलाम हैं।"

सबूत इकट्ठा करने के बहाने बीरसा को लंबी अवधि तक यंत्रणा में रखा गया। जेल की यातनाओं से बंदी मुंडा मर रहे थे। किंतु बीरसा की भारी लोहे की हथकड़ियों की खनखनाहट ही उन्हें इतनी यातनाओं के बाद भी मुरझाने नहीं देती थी। उनका भगवान उनके साथ

है। बंदी बीरसा प्रायः सोचता रहता—उसे जिन लोगों को विस्तृत वन और असीम पर्वत भूमि देनी चाहिए थी, उन्हें उसने दी—कारागृह की काल-कोठरियां।

३० मई, १९०० को बीरसा की तबियत खराब हो गयी, और २ जून १९०० को विचाराधीन बंदी सुगाना मुंडा का बेटा—मुंडाओं का योद्धा इस संसार को छोड़ गया। मुंडा लाश को जलाते नहीं, गाड़ते हैं। बीरसा को जला दिया गया—डर था कहीं लोग गड़े मुरदे को उखाड़ने न लगें। सरकारी रिपोर्ट में लिख दिया गया, 'हैजा से बीरसा मर गया।' बीरसा को हैजा क्यों हुआ, कैसे हुआ? इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

रांची में जे. जे. पटेल और सिंहभूम में कलक्टर थॉमसन नियुक्त हुए थे—सिर्फ इनकी जांच के लिए, गया मुंडा सुखराम और सनेर को फांसी की सजा हुई थी। ४० को कालापानी, २४ को ५ वर्ष का कारावास और ३९ मुंडाओं को ३ साल की कैद।

फांसी पर चढ़ने से पहले शहीदों ने अपनी अंतिम इच्छा में मांगा था—नहाने के लिए स्वच्छ पानी, और पहनने के लिए पूरा कपड़ा। उनको भगवान ने बोला था, "साफ मन के लिए साफ तन जरूरी है।"

—४१२-एशिया हाऊस,
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली-१

ज्ञान-गंगा

प्रविचात्तरं देयं, सहसा न वदेत् क्वचित।
शत्रोरपि गुणा ग्राह्वा, गुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणाः॥

—झट-पट नहीं बोल पड़ना चाहिए, बल्कि सोच-विचार कर उत्तर देना चाहिए। शत्रु के गुणों को भी ग्रहण कर लेना चाहिए, परंतु इसके विपरीत गुरु के दुर्गुणों का भी परित्याग करना आवश्यक है।

यदि सन्ति गुणाः प्रंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्।
न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते॥

—मनुष्यों में यदि गुण होते हैं तो उनका प्रकाश स्वयं हो जाता है। कस्तूरी की सुगंध को शपथ से सिद्ध नहीं किया जाता है।

कस्यापि कोऽप्यति शयोऽस्ति स तेन लोके
ख्यातिं प्रयाति न हि सर्वविदस्तु सर्वे।
किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः
किं नागवल्ल्यपि च पुष्पफलैरुपेता॥

—किसी की कोई विशेषता होती है, उसी से उसकी ख्याति लोक में फैल जाती है। कोई भी सर्वज्ञ अथवा सर्वगुण-संपन्न नहीं होता। क्या केवड़े पर फल लगता है? क्या कटहल पर फूल आते हैं? क्या पान की बेल पर फूल और फल लगते हैं?

—प्रस्तोता: महर्षिकुमार पांडेय

तनाव से मुक्ति



● डॉ. सतीश मलिक

शरीर सूख रहा है

अशोक कुमार, पटना : मैं २२ वर्षीय द्वितीय वर्ष का छात्र हूं। मेरे पेशाब में लस-लसा-सा चिकना पदार्थ बराबर निकलता रहता है। इससे मैं बहुत परेशान हूं। दिन पर दिन शरीर सूखता ही चला जा रहा है। आनेवाले कुछ ही दिनों में शादी भी हो जाएगी। इससे मेरी चिंता दूनी हो गयी है। कभी-कभी आत्महत्या तक की सोच लेता हूं। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं ?

आप २२ वर्षीय अविवाहित युवक हैं। सेक्स-भावना को यदि बहुत हद तक दबाया जाए, तो वह चेतन-मन को नहीं, वरन अचेतन-मन को बहुत परेशान करती है। उत्तेजना पुरुषों और स्त्रियों दोनों को होती है, यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। दूसरी भावना यद्यपि, आपके चेतन-मन में नहीं आती, परंतु इंद्रियों पर प्रभाव तो पड़ता ही है; तब इसका परिणाम होता है—प्रोस्टेट-ग्रंथि द्वारा स्रवण (सिक्रीशन)। यह स्रवण वास्तव में वीर्य नहीं है। चूंकि आप इस बात को नहीं जानते इसलिए आपके मन में भय व्याप्त है। अपने मन से सर्वप्रथम इस भय को निकालिए। भोजन की ओर भी विशेष ध्यान दीजिए। उत्तेजक पदार्थों का सेवन बहुत कम कीजिए।

अंदर ही अंदर घुटन

अ. ब. स., बिजनौर : मैं बी. एड. की छात्रा हूं, हिंदी साहित्य में एम. ए. कर चुकी हूं। पिछले दो वर्षों से लगातार सिर-दर्द से परेशान हूं। कितने ही नेत्र विशेषज्ञों एवं अन्य चिकित्सकों को दिखाया, पर निदान नहीं मिल पा रहा है। इससे लगता है कि कहीं मैं मानसिक रोग की चपेट में तो नहीं आ गयी हूं। हर वक्त सोचती रहती हूं। काल्पनिक-संसार से चाहते हुए भी मुक्ति नहीं मिल पाती; वही काल्पनिक बातें जब वास्तविक-जीवन में घटित होते नहीं दीखतीं, तब कुंठा, हीनता से अपने को ग्रसित पाती हूं। किसी अन्य की छल-कपट और स्वार्थ-मिश्रित बातें मेरे सिर-दर्द का कारण भी

इस स्तंभ के अंतर्गत अपनी समस्याएं भेजते समय अपने व्यक्तिगत जीवन का पूरा परिचय, आयु, पद, आय एवं पते का उल्लेख कृपया अवश्य करें।

लगती हूं। स्पष्ट शब्दों में उनकी आलोचना न कर पाने की स्थिति में अंदर ही अंदर घुटती रहती हूं। समझ नहीं पा रही, क्या करूं ? कैसे छुटकारा पाऊं ?

सिर-दर्द के कई कारण हो सकते हैं, इसलिए नेत्र, कान, नाक और गला-विशेषज्ञ व शरीर-विशेषज्ञों से पूरी जांच करवा लेना उचित रहेगा।

अत्याधिक तनाव व सोच से भी सिर-दर्द बना रहता है। कल्पना की उड़ान इतनी दूर नहीं होनी चाहिए, जहां वास्तविकता की सीमा ही न रहे। अत्याधिक कल्पना भी हानिकारक है। कल्पना व गति (एक्शन) का अनुपात संतुलित होना चाहिए।

जहां एक ओर संसार में छल-कपट व स्वार्थ है, वहां दूसरी ओर निश्छल प्रकृति के व्यक्ति भी हैं—उन्हें भी खोजिए, अवश्य मिलेंगे। चिकित्सक के तौर पर मेरी आपको राय है कि जो लोग आपके संपर्क से दूर हैं, उन पर सर खपाना उचित नहीं है। जब किसी व्यक्ति से आप उसकी सीमाओं से ज्यादा अपेक्षा करेंगी, तब अपेक्षानूकुल न होने पर दुःख तो होगा ही।

यदि आपकी समस्या सिर्फ एक व्यक्ति को लेकर है, जिसने आपको स्वार्थ व छल-कपट से छला है, तो उसका विस्तृत उल्लेख हमें अगले पत्र में अवश्य करें।

पिचके गाल

आनन्द राही, कानपुर : २४ वर्षीय व्यक्ति हूं। एक जनरल इंश्योरेंस कंपनी के साथ जीवन बीमा एजेंसी चलाता हूं। किसी तरह अर्थ-व्यवस्था संतुलित किये हूं, लेकिन पिछले चार वर्षों से अपने पिचके गालों से बेहद परेशान हूं। इस कमजोरी को छिपाने के लिए प्रायः गालों के अंदर रूई के गुच्छे भर देता हूं। बगैर रूई लोगों के समक्ष खड़े होने की हिम्मत नहीं होती। मन में एक ही भाव रहता है कि दूसरों को कुरूप दीखना हिंसा है।

गालों में रूई भरने से गाल की खाल झिल्लीनुमा हो गयी है। साथ ही खाने-पीने में विभिन्न तरह की परेशानी झेल रहा हूं। सुबह उठते ही रूई रखना मजबूरी हो चुकी है। नित्य सोकर उठने पर यह करना, सिर्फ पत्नी को ज्ञात है।

कृपया रोग-मुक्ति के लिए कोई उपाय सुझायें, नहीं तो जीवन दिन पर दिन बोझिल लग रहा है।

पिचके गालों में रूई रखकर फुलाने से आपकी समस्या बढ़ी ही है, न कि घटी है। आप शायद दुबले हैं; कमजोरी के निवारण के लिए आपको ऊंची केलोरी का भोजन लेना चाहिए, जैसे—दूध, घी व मक्खन; तभी जाकर आपकी शारीरिक दुर्बलता के साथ-साथ पिचके गालों की समस्या सुलझ सकती है। हमारी आपको राय है कि आप प्रतिदिन कुछ

बीमारी : कुछ घरेलू उपचार

विभिन्न रोगों के इलाज के लिए प्रतिमास कुछ घरेलू अनुभूत नुस्खों की जानकारी, जिनसे सहज ही इलाज हो सकता है। लिख रहे हैं—राजधानी के प्रसिद्ध और अनुभवी वैद्य कविराज वेदव्रत शर्मा।

—संपादक

युवा अवस्था में चेहरे पर विभिन्न प्रकार की फुंसियां हो जाती हैं, जिससे मुखमंडल ठीक नहीं लगता। निम्न विभिन्न उपायों में से किसी एक का प्रयोग कर इनसे बचा जा सकता है—

१. गरम दूध की मलाई में नीबू का रस मिलाकर मुखमंडल पर हलकी मालिश करें।

२. सफेद चने व काली मिर्च पानी में एक साथ पीसकर, मुखमंडल पर लेपें।

३. अजवायन का चूर्ण तथा दही, बराबर वजन में लेकर रात्रि में मुखमंडल पर लगायें। सुबह गरम पानी से साफ कर लें।

४. 'लोध्र-धनिया-बच' बराबर वजन में लेकर पानी में मिलाकर लेपें।

५. संतरे के छिलके मुखमंडल पर मलें।

३. सूखे आंवले का बारीक चूर्ण बनाकर पानी के साथ मुखमंडल पर लेप करें।

७. नीम की छाल को पानी में पीसकर मलें। —कविराज वेदव्रत शर्मा

गुब्बारे फुलायें, इससे गालों की मांस-पेशियां सक्रिय हो जाएंगी।

आप एक परिपक्व बुद्धिमान व्यक्ति हैं; आपको शक्ल-सूरत की ओर अधिक ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए। इसकी जगह पर आपको अपने कार्य एवं गुणों को निखारना चाहिए।

यह गैस या ...

राकेश कुमार द्विवेदी, शहजहांपुर : मैं करीब ७-८ वर्षों से पेट के रोग से पीड़ित हूं। ऐसा लगता है कि हृदय की धड़कन बढ़ गयी हैं, दिमाग में चिनगारियां-सी झड़ती हैं। उपचार भी करवाया, पर सब असफल ही रहा।

पुरानी पेचिश कई बार, फिर पेचिश की शक्ल में परेशान करती है। दिल धड़कना, नींद न आना, बार-बार जुकाम इत्यादि होना या बोझिल रहना, मानसिक तनाव द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं।

कई बार मानसिक तनाव के लक्षण शरीर के उन अंगों या शारीरिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो पहले से ही कुछ खराब हों-जैसी आपके केस में पेट की स्थिति है। बार-बार दवाई खाना उचित नहीं, और बिना अच्छे चिकित्सक की सलाह के तो कदापि न खायें।

मानसिक-रोग का इलाज मात्र ई. सी. टी. नहीं। लंबे समय के लिए दवाई का प्रयोग तथा पारस्परिक संबंधों में मधुरता ही समाधान का रास्ता हो सकता है। ●

उन्हें अमृत की तलाश है!

• राजेन्द्रप्रसाद तिवारी

इन दिनों उज्जैन में जैसे अतीत वर्तमान हो रहा है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए श्रद्धालुजन क्षिप्रा में स्नान कर महाकाल की पूजा-आराधना कर जीवन को धन्य समझ रहे हैं।

असंख्य ग्रामीण और शहरी जन-समुदाय द्वारा पूजा, मानता-मनौती, मंदिरों के दर्शन, बाजार में लेन-देन आदि का दृश्य इन दिनों आम है।

उज्जैन की सांस्कृतिक ऐतिहासिक परंपरा अत्यंत पुरानी है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में उसकी गौरव-गाथा है। अपनी विशिष्ट अवस्थिति के कारण समस्त ज्योति-विज्ञान की यह नगरी आधार-भूमि रही है। इसीलिए इसे भारत का 'ग्रीनविच' भी कहा गया है। इस नगरी का काल-मान चूंकि सारे भारत वर्ष में प्रचलित रहा है, इसलिए यहां के प्रमुख आराध्यदेव महाकालेश्वर हैं, जो समस्त मृत्युलोक के स्वामी हैं। मूर्तियों और मंदिरों के इस नगर में ८४ महादेव, ६४ योगिनियों और अष्ट भैरव सहित गणेश विराजमान हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में उज्जयिनी की चर्चा करते हुए लिखा है—

> वक्रः पंथा यदपि भवतः
> प्रस्थिताचोत्तराशाम्
> सौधोत्संग प्रणयोविमखोमा
> स्म भूरुज्जयिन्याः ।
> विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्त्र
> पौराङ्गनानाम्
> लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे
> लोचनैर्वञ्चितोऽञ्सि ॥

—उत्तर दिशा के यात्री, उज्जयिनी का मार्ग तुम्हारे लिए टेढ़ा तो पड़ेगा, तब भी तुम उसकी अटारियों की गोद में स्नेह से विमुख न होना, बिजली की चमक से आंखों में चकाचौंध होने के कारण वहां की रमणियों की चंचल चितवनों का आनंद यदि तुम न ले सके, तो समझना कि तुम्हारे नेत्र व्यर्थ ही रहे।

सिंहस्थ पर्व की परंपरा

भारतीय पौराणिक ग्रंथों में कुंभ महापर्व के संबंध में अनेक कथाएं वर्णित हैं। एक कथा के अनुसार जब देवताओं और दानवों

उज्जयिनी दर्शन

उज्जैन में आयोजित सिंहस्थ कुंभ के अवसर पर मध्यप्रदेश सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय ने एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है--'**उज्जयिनी दर्शन**।'

पुस्तक में संकलित ३२ लेख एवं महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक, धार्मिक स्थलों के चित्र हमें इस नगर के अतीत एवं वर्तमान से परिचित कराते हैं। कुछ लेख शोधपूर्ण हैं एवं उनसे अनेक नये तथ्यों का ज्ञान होता है। जैसे 'उज्जैन के अतीत पर विहंगम दृष्टि' शीर्षक लेख में डॉ. वि. श्री वाकणकर बतलाते हैं कि उज्जयिनी के आसपास ५ लाख वर्ष पूर्व आद्य-मानव का वास था। ताम्राश्मीय युग में इस क्षेत्र में कर्कोटक नाग नामक वन्य-जाति रहती थी, जिनसे हैहयों को संघर्ष करना पड़ा था। पुराणकाल में उज्जयिनी सांदीपनी आश्रम का सहयोगी महाग्राम था। इसी क्षेत्र में सन १९५४-५६ के मध्य किये गये उत्खनन में विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गिट्टी का बना मार्ग मिला। मराठाकाल में निर्मित सुंदर बाड़ों की चर्चा करते हुए डॉ. वाकणकर ने ठीक ही लिखा है कि 'यूरोप में ऐसे प्राचीन महल्लों व स्थापत्यों को बनाये रखने के अथक प्रयत्न होते रहे हैं और हमारी घोर उपेक्षा के कारण हम इन्हें खोते जा रहे हैं।'

उज्जयिनी-दर्शन, संपादक—अनंत मराल शास्त्री, प्रकाशक—मध्यप्रदेश सूचना एवं प्रकाशन संचालनालय, भोपाल, पृष्ठ--२२८, मूल्य—उल्लेख नहीं

ने समुद्र-मंथन किया, तब समुद्र से जो रत्न निकले, उनमें अमृत-कलश भी था। इस अमृत-कलश को दैत्यों के अधिकार से बचाने के लिए देवताओं ने उसकी सुरक्षा का दायित्व वृहस्पति, चंद्रमा, सूर्य और शनि को सौंप दिया। पर देवताओं की कूटनीति दैत्यों की समझ में आ गयी। और वे उसे प्राप्त करने के लिए देवताओं के पीछे भागे। निरंतर बारह दिन और बारह रात तक देवों-दैत्यों की दौड़ होती रही। इस प्रकार देवों को पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करनी पड़ी।

इस परिक्रमा में अमृत-कलश हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में रखा गया। इन चारों स्थानों में रखे गये अमृत-कलश की स्मृति को चिरजीवी बनाये रखने के लिए धर्माचार्यों ने चारों तीर्थों में क्रमशः बारहवें वर्ष कुंभ महापर्व के आयोजन का विधान बनाया है। स्कंदपुराण के अनुसार इंद्र का पुत्र जयंत अमृत-कलश लेकर भागा था। उसे प्राप्त करने के लिए दैत्यों ने उससे संघर्ष किया और परिणामस्वरूप कुंभ में से अमृत की बूंद प्रयाग, हरिद्वार, नासिक, और उज्जैन में गिरी। यथा—

पृथिव्यां कुंभपर्वस्य चतुर्थो भेद उज्जयेत
चतुस्थले नियतानात सुधा कुंभस्य भूतले

जिन ग्रह-नक्षत्रों की युक्ति से अमृत की बूंदें इन स्थानों में धरती पर गिरीं, उन्हीं, ग्रह, नक्षत्रों की युति में इन तीर्थों में कुंभ आयोजित होता है।

उत्तर प्रदेश में गंगा-तट पर स्थित हरिद्वार और प्रयाग, महाराष्ट्र में गोदावरी-तट पर नासिक और मध्यप्रदेश में क्षिप्रा-तट पर उज्जैन में कुंभ महापर्व का आयोजन किया जाता है। उज्जैन के कुंभ का चारों स्थानों और महापर्वों में विशिष्ट स्थान है, क्योंकि इसमें सिंहस्थ पर्व होता है। प्रयाग, हरिद्वार तथा नासिक की तरह उज्जैन में भी कुंभ मेले का आयोजन बारह वर्ष के अंतर से सिंहस्थ पर्व पर आयोजित किया जाता है।

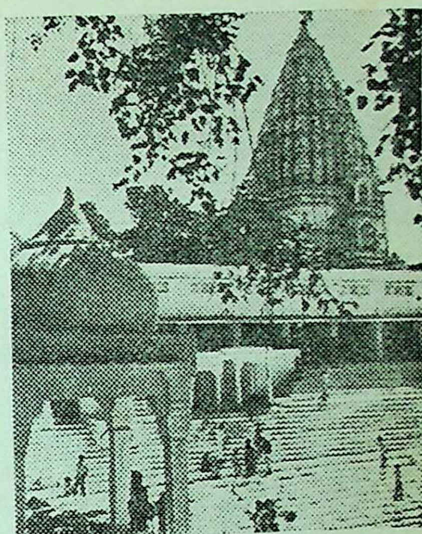
मेले की व्यवस्था और शासन

सिंहस्थ मेले की व्यवस्था में शासन की भूमिका बहुत पुरानी है। सिंहस्थ कुंभ मेले की राजकीय व्यवस्था का विधिवत संदर्भ मराठाकाल से मिलता है। महाराजा राणोजी शिन्दे के राज्यकाल में सिंहस्थ मेले की प्रतिष्ठा और राजकीय व्यवस्था की शुरूआत हुई।

स्वतंत्रता के बाद प्रदेश की सरकार ने इस दायित्व को संभाला है और मेले की व्यवस्था पहले से और अधिक चुस्त-दुरुस्त हो गयी है।

इस वर्ष एक माह तक चलनेवाले सिंहस्थ मेले की अवधि में महत्वपूर्ण स्नान ३१ मार्च, चैत्र पूर्णिमा, १५ अप्रैल, वैशाख अमावस्या तथा ३० अप्रैल, वैशाख पूर्णिमा के दिन संपन्न होंगे।

एक माह के समागम में क्षिप्रा-स्नान का पुण्य प्रत्येक नागरिक अर्जित करता है और जाने-अनजाने पापों से सदैव मुक्त

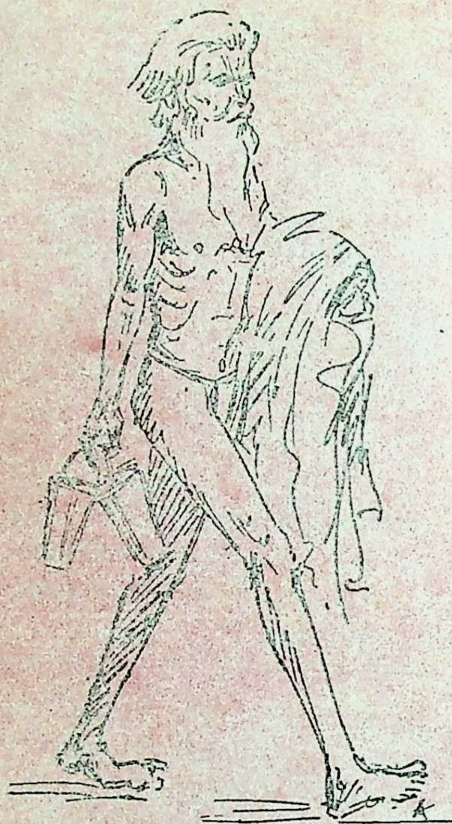


महाकालेश्वर का वह प्रसिद्ध मंदिर, जहां सिंहस्थ पर्व पर जनमानस उमड़ पड़ता है

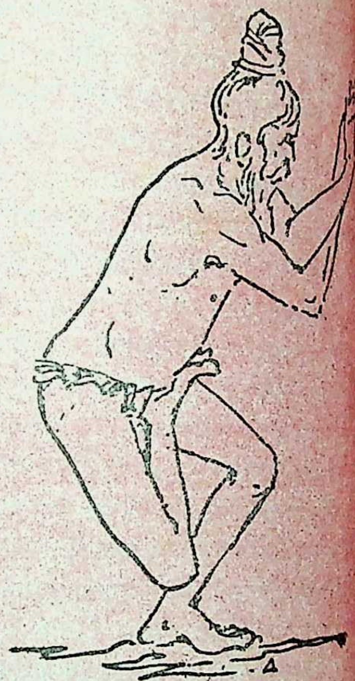
हो जाता है। दशनामी साधु, उदासीन साधु, निर्मल संत, दादू-पंथी, कबीर-पंथी, अद्वैतवादी शैव, वैष्णव आदि प्रमुख साधु समूह इस अवसर पर यहां अपने अखाड़े जमाते हैं।

उज्जैन मूलतः धर्म-प्रधान नगरी के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यहां का कण-कण पवित्र माना जाता है। शिव को वैदिक रुद्र के रूप में प्रतिष्ठित कर वैदिक धर्म का नया स्वरूप यहां पल्लवित होता रहा है।

—जनसंपर्क अधिकारी
सूचना एवं प्रकाशन, प्रकाशन शाखा
गोलघर, भोपाल



क्षिप्रा में स्नान के लिए अग्रसर साधु



तपस्यारत हठ-योगी साधु



मेले में सत्संगरत साधु

सिंहस्थ में घूमते हुए

महाकालेश्वर का मंदिर



पूजा की थाली लिये हठ-योगी साधु



कबीरपंथी साधु



चुटकियां

एक सबसे छोटी फिल्म को पुरस्कृत किया गया, पुरस्कार देते हुए नेता ने कहा, "हम निर्देशक महोदय से जानना चाहेंगे कि अच्छी छोटी फिल्म कैसे बनती है ?"

निर्देशक ने जवाब में कहा, "प्रोजेक्टर खराब होने की वजह से फिल्म आगे नहीं दिखायी जा सकी और हमें रील काटनी पड़ी।"



"...बिजली नहीं है, तो मैं क्या करूं, मैं सब समझती हूं कि तुम्हारे मन में क्या है, ... पर मुझसे न होगा ...."

एक विज्ञापनकर्ता ने कहा, "देखिए बहनजी, यह पाक कला की पुस्तक—यह सूप बनाने की विधि, यह मटर का कीमा और यह...।"

अभी वह बात पूरी भी न कर पाया था कि महिला तपाक से बोली, "देखिए, मेरे पति बाहर गये हुए हैं, उन्हें ही यह सब समझाइए, मैं इस बारे में कुछ भी नहीं जानना चाहती।"

★

एक प्रसिद्ध चित्रकार को सर्वश्रेष्ठ चित्रकार का पुरस्कार देते हुए महिलानेत्री ने कहा, "मैं चित्रकार से जानना चाहूंगी कि इस चित्र में बने फर्श पर उन्होंने कौन-सा तैल प्रयोग किया है, क्योंकि मेरे घर के फर्श बहुत खराब हो गये हैं....।"

★

"तुम्हारे पिताजी ने मरते समय कुछ कहा था ?"

"जी नहीं, मां जो उनके सिर पर खड़ी रही थी, इसलिए वह मुंह से एक शब्द भी न निकाल सके।" बेटे ने कहा।

★

"बच्चों के जन्मदिन पर बड़ों को क्यों बुलाते हैं ?"

"जी, क्योंकि बड़े लोग ही मंहगे तोहफे दे सकते हैं।" बच्चे ने जवाब में कहा।

किस्से खोजा फकीर के

(१३)

चमत्कार से फायदा !

उन दिनों तेहरान में एक सिद्ध फकीर की बड़ी धूम थी। वह तरह-तरह के चमत्कार दिखलाता, नदी के पानी पर नंगे पांव चलने का दावा करता। एक दिन वह अपने कुछ प्रशंसकों के साथ खोजा फकीर से मिलने आया। उसने फकीर से कहा, "मैंने आपकी बड़ी शोहरत सुनी है। खुदा के फजल से मैं बिना नाव के पैदल नदी पार कर सकता हूं। आप क्या कर सकते हैं?"

खोजा फकीर हंस पड़ा। बोला, "मैं ? मैं तो किस्से सुनाया करता हूं। किस्सा सुनें। पर चलिए, हम आसमान में पंछियों की तरह उड़ते हुए बातचीत करें।"

वह व्यक्ति बोला, "मेरे पास आसमान में तो उड़ने की ताकत नहीं है।"

फकीर ने हंसकर कहा, "अच्छा ! फिर आपकी ताकत का क्या फायदा ! पानी में मछली भी तैर लेती है, और आसमान में पंछी उड़ लेते हैं। पर ये योग्यताएं असली सचाई से बहुत दूर हैं। विनम्रता से, आध्यात्मिकता से उनका दूर का भी संबंध नहीं है।"

पानी पर चलने का चमत्कार दिखलाने का दावा करनेवाले व्यक्ति का चेहरा शर्म से झुका हुआ था। ●

हा!हा!!

टिकट चेकर : आपका टिकट ?

यात्री : शायद खो गया है।

टिकट चेकर : साहब, बहाना भी बनाइए तो उसमें कोई दम तो हो।

यात्री : आप ही बता दीजिए न ! मैं बहानों के मामले में बिलकुल अनाड़ी हूं।

★

पत्नी : जरा सामने देखो तो सही, वह उस लड़की को कितना प्यार कर रहा है। तुम क्यों नहीं करते ?

पति : मैं. . .मैं. . . तो उस लड़की को जानता भी नहीं। तुम परिचय करा दो न!

—स. प्री.

फिल्म समीक्षक : आपकी नयी फिल्म के प्रेम-दृश्य पिछली फिल्म की तरह स्वाभाविक क्यों नहीं लगते, जबकि हीरो-हीरोइन वही हैं?

फिल्म निर्माता : हीरो ने हीरोइन से शादी कर ली है न ! —कमल सौगानी

नये अभिनेता के मरने के दृश्य पर निर्देशक को संतोष नहीं हो रहा था। दो-तीन दफे सीन कट हो चुका था। निर्देशक ने अभिनेता को समझाते हुए कहा, "आप अपने मरने में जरा और 'जान' डालिए . . .।"

महल में भटकते हुए प्रेत

● आचार्य कालीचरण मिश्र

जब भी कभी भूत-प्रेतों के बारे में कुछ पढ़ता या सुनता हूं, तब एक दृश्य अचानक याद आकर रोम-रोम सिहरा देता है।

एक बहुत पुराना तालाब। तालाब के किनारे, सड़क के उस पार खपरैलों-वाला एक मंदिर। मंदिर के गर्भ-गृह में भगवान दत्तात्रेय की छोटी-सी प्रतिमा। मंदिर के फर्श के बीचों-बीच बना छोटा-सा हवन-कुंड और उस हवन-कुंड के चारों ओर चक्कर काटती एक अठारह-उन्नीस वर्षीया युवती। बिखरे बाल, अस्त-व्यस्त वस्त्र, आंखों में एक अजीब-सा आतंक। बांहें उठाये उसकी करुण पुकार—"मुझे माफ कर दो ! 'दत्त भगवान, मुझे माफ कर दो ! 'मैं अब इसे कभी नहीं सताऊंगा !"

आज से करीब बीस-बाईस वर्ष पहले देखा गया यह दृश्य, आज भी जब याद आता है, तो सिहरा देता है। ऐसी ही सिहरन मैंने उस दिन भी अनुभव की थी।

भूत-प्रेतों पर मेरा विश्वास नहीं है ! और इसी विश्वास को तोड़ने के लिए मेरे एक मित्र मुझे उस दत्त मंदिर में ले गये थे। नागपुर का जुम्मा तालाब, जो अब 'गांधी-सागर' के नाम से जाना जाता है, के किनारे बना यह छोटा-सा मंदिर, न केवल नागपुर, वरन नागपुर जिले से लगे मध्यप्रदेश के अन्य जिलों में भी बहुत प्रसिद्ध है, और लोगों का यह विश्वास है कि चाहे कैसा ही भूत-प्रेत क्यों न हो, दत्त मंदिर में जाते ही वह अपने 'शिकार' को फौरन अपनी प्रेत-बाधा से मुक्त कर देता है।

वह युवती भी किसी प्रेत के पाश में बंधी थी। उसकी करुण चीत्कार, आतंक-भरी आंखें देखकर मैं सहम गया था कि कहीं प्रेत उसे छोड़कर मुझे न लपक ले ! मैंने मित्र से भी इस भय की चर्चा की। उन्होंने मेरा भय दूर करने के ख्याल से कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा।"

उस दिन हम दोनों मित्र काफी देर तक दत्त मंदिर में प्रेत-मुक्ति के प्रसंग देखते रहे।

मुझे अच्छी तरह याद है, तीस-चालीस मिनट बाद वह युवती पूरी तरह होश में आ गयी थी, और होश में आते ही उसने अपने 'रूप' पर नजर डाली, तो मुंह

ढांपकर रो उठी थी। तब पुजारी ने उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा था, "बेटी, अब क्यों रोती है ? दत्त भगवान ने तेरी प्रेत-बाधा दूर कर दी है।"

उस दिन अपनी आंखों के सामने 'प्रेत-लीला' देखकर भी मैं भूत-प्रेतों के अस्तित्व को मन से स्वीकार न पाया।

क्या सचमुच भूत-प्रेत होते हैं ?

क्या वाकई भूत-प्रेत होते हैं ? प्रश्न बेहद पेचीदा है। आम तौर पर उन पर विश्वास रखनेवाले 'पिछड़े' मान लिये जाते हैं, और पश्चिमी देशों में हुई वैज्ञानिक प्रगति का हवाला देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की जाती है कि भूत-प्रेत केवल कमजोर दिल-दिमाग की उपज है। लेकिन हाल ही में मेरे एक परिचित इंगलैंड से आये थे। भूत-प्रेतों के बारे में चर्चा चलने पर उन्होंने बताया कि पश्चिमी देशों में भूत-प्रेतों के अस्तित्व को अब पहले-जैसी शक की निगाह से नहीं देखा जाता।

उन्होंने मुझे स्काट-लैंड के एक ऐसे दुर्ग के बारे में बताया, जिसमें कई बार प्रेत देखे गये हैं। इनमें से एक प्रेत तो इंगलैंड की राज-माता ने स्वयं देखा है।

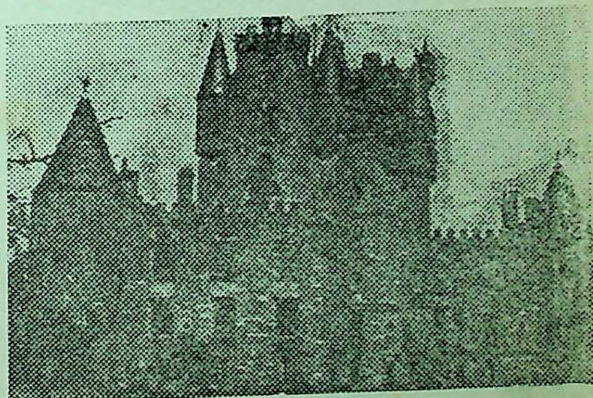


इंगलैंड की राजमाता

अभिशप्त दुर्ग-महल

इस दुर्ग का नाम है—'ग्लेमिस कैसल।' इंगलैंड की राजमाता का बचपन इसी दुर्ग में बीता है।

पत्थरों से बने इस दुर्ग में एक विशालकाय महल है, जिसकी दीवारें पिछले हजार वर्षों से जाने कितने राज छिपाये हैं। कहते हैं, अपने बचपन में राज-माता ने इसी महल में एक नीग्रो कर्मचारी के प्रेत को देखा था। इस दुर्ग-महल में एक कक्ष था, जिसे 'ब्लू रूम' नाम से पुकारा जाता था। जब रात होती और चारों ओर अंधकार में लिपटा सन्नाटा छा जाता, तब कोई आकर इस 'ब्लू रूम' के द्वारों को थपथपाता। शोर सुनकर लोग वहां पहुंचते और किसी को न पाकर सहमते



'ग्लेमिस दुर्ग' जहां बहुत रहते हैं प्रेत

हुए अपने कक्षों में लौट जाते।

दुर्ग-महल के बारे में यह भी एक किवंदती है कि लोगों ने एक गौर-वर्ण युवती को अंधेरी रातों में भटकते हुए देखा, जो लोगों के देखते-देखते हवा में गायब हो जाया करती थी।

इतिहास जो खून से लिखा है !

ग्लेमिस-दुर्ग का इतिहास हत्या और दुखांत घटनाओं से भरा हुआ है। यों तो इस दुर्ग के बारे में अनेक कहानियां प्रचलित हैं, पर एक कहानी रोम-रोम सिहरा देनेवाली है।

आज से ११५ वर्षों पूर्व की रात !

दुर्ग-महल में किसी काम से आया एक व्यक्ति महल की भूल-भुलैयों से गलियारों में खो गया। गलियारे सुनसान और वह किसी से राह भी न पूछ पा रहा था। सहसा उसकी नजर एक विशाल द्वार पर पड़ी। उसने सहमते हुए द्वार पर थपकी दी। जब कोई उत्तर न मिला, तब उसने द्वार को ठेलकर खोलना चाहा। चरमराहट की आवाज के साथ द्वार खुल गया। उक्त व्यक्ति ने कक्ष के भीतर प्रवेश किया। पर सामने नजर पड़ते ही वह भय से चीख उठा और बेहोश हो गया।

उसकी चीख दुर्ग-महल के सन्नाटे में दूर-दूर तक गूंज गयी और किसी अज्ञात आशंका से कांपते हुए लोग चीख की दिशा में दौड़ पड़े। उनमें दुर्ग के स्वामी लार्ड स्ट्रेकमोर का एक विश्वस्त कर्मचारी भी था। उसने तुरंत उस व्यक्ति को एक कमरे में पहुंचाया और लोगों से कहा, "वे चले जाएं। बेहोश व्यक्ति को अपने-आप होश आ जाएगा।" साथ ही उसने लार्ड स्ट्रेकमोर को इस घटना की सूचना भिजवायी।

सूचना पाते ही लार्ड स्ट्रेकमोर तुरंत ग्लेमिस दुर्ग पहुंचे और उन्होंने रातों-रात उस व्यक्ति को किसी अन्य देश में जीवन विताने के लिए भिजवा दिया।

कारण ? लार्ड स्ट्रेकमोर एक पारिवारिक रहस्य को अपने देशवासियों के सामने नहीं प्रकट करना चाहते थे। उन्हें आशंका थी कि यदि वह कर्मचारी इंगलैंड में रहा तो भूत-प्रेतों के लिए बदनाम उनका दुर्ग-महल और बदनाम हो जाएगा।

लेकिन इतनी सावधानी के बावजूद लॉर्ड स्ट्रेकमोर ग्लेमिस-दुर्ग के बारे में व्याप्त किवंदंतियों को कम कर न पाये। लोगों के मन में यह भय पैठ गया कि ग्लेमिस-दुर्ग में प्रेतों का वास है।

प्रेत की खोज

इस घटना के चालीस वर्ष बाद दुर्ग-महल के एक कक्ष में लोग आमोद-प्रमोद में व्यस्त हैं। जाने कैसे, भूत-प्रेतों की बात चल पड़ती है और उपस्थित लोग दो दलों में बंट जाते हैं। एक दल का ख्याल है कि भूत-प्रेत नहीं होते और दूसरे दल का विश्वास है कि वे होते हैं।

आखिर तय किया जाता है कि आज ग्लेमिस-दुर्ग में भटकते प्रेतों की खोज की

ही जाए। प्रेतों की खोज का वे एक आसान तरीका भी ढूंढ़ निकालते हैं। वे दुर्ग-महल की प्रत्येक खिड़की पर तौलिये लटका देते हैं और फिर बाहर खड़े होकर उन तौलियों पर नजर रखते हैं। कुछ देर तक तो तौलिये लटके रहते हैं, फिर एक खिड़की पर लगा तौलिया सबके देखते-देखते गायब हो जाता है।

दुर्ग-महल के सामने खड़े लोगों में आतंक फैल जाता है। यह प्रश्न सभी को आतंकित करता है कि, आखिर वह तौलिया गया कहां ?

अभागे शिशु का जन्म

ग्लेमिस-दुर्ग की इस प्रेत-कथा के पीछे एक दर्दनाक घटना भी छिपी हुई है।

सन १८२० की बात है। तत्कालीन लेडी स्ट्रेकमोर ने एक शिशु को जन्म दिया, तो सारे दुर्ग में खुशी की लहर दौड़ पड़ी। लेकिन जब मां ने अपने नवजात शिशु पर नजर डाली, तब वह भय और आतंक से चिल्ला उठी।

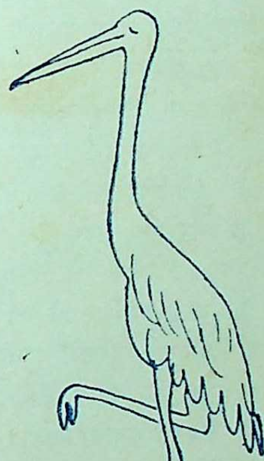
नवजात शिशु का अंग-अंग विकृत था और वह किसी दैत्य का शिशु प्रतीत हो रहा था।

लेडी स्ट्रेकमोर नहीं चाहती थीं कि लोग उन्हें एक भयानक, अर्ध-मानव-अर्ध पशु-सा प्रतीत होनेवाले लड़के की मां के रूप में जानें। उन्होंने उसे एक कक्ष में आजीवन बंद रखा। शायद उसकी मृत्यु भी उसी कक्ष में हुई।

तो क्या ग्लेमिस-दुर्ग को इसी विकृत बालक के प्रेत ने अभिशप्त कर रखा है ?

रहस्य की खोज

सन १९६४ में एक जीव-विशेषज्ञ पॉल ब्यूम फील्ड ने इस कथा की सत्यता की जांच की। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि उसकी निगाह सन १८२० के दो स्काटिश रजिस्टरों पर पड़ गयी। इनमें से एक रजिस्टर से पता चला कि लेडी स्ट्रेकमोर ने २१ अक्तूबर १८२१ को एक शिशु को जन्म दिया था। एक रजिस्टर में अंकित





था कि वह नवजात शिशु उसी दिन मर गया, जबकि दूसरे रजिस्टर में जन्म के तीन दिनों बाद उसकी मृत्यु का उल्लेख था। पाल ब्लूम फील्ड का कहना है कि यदि उस शिशु की तुरंत मृत्यु नहीं हुई होगी तो फिर वही शिशु बाद में मृत्यु के पश्चात प्रेत बन गया।

वह शिशु विकृत क्यों पैदा हुआ था? हुआ यह था कि उसके माता-पिता सगे चचेरे बहन-भाई थे, पर इसका उन्हें ज्ञान नहीं था। विश्वास किया जाता है कि इसी घनिष्ट रक्त-संबंध के कारण लेडी स्ट्रेकमोर ने एक विकृत बच्चे को जन्म दिया था। चूंकि यह बच्चा उनकी प्रथम संतान था, अतः परंपरा के अनुसार वयस्क होने पर वही 'अर्ल ऑव स्ट्रेकमोर' की उपाधि का हकदार बनता, लेकिन उसके भाग्य में तो कुछ और बदा था।

इक्कीसवीं वर्षगांठ और एक शपथ

कहा जाता है कि इस घटना के बाद इस उपाधि के प्रत्येक उत्तराधिकारी को उसकी इक्कीसवीं वर्षगांठ पर उस गुप्त कक्ष में ले जाया जाता और शपथ दिलाकर सारे रहस्य से अवगत कराया जाता। लेकिन परिवार की स्त्रियों को इस रहस्य की भनक भी नहीं पड़ने दी जाती।

कहते हैं, कई वर्षों बाद एक बार एक अन्य लेडी स्ट्रेकमोर ने इस रहस्य के जानने की उत्सुकता व्यक्त की तो उसे उत्तर मिला, "यह अपना सौभाग्य ही समझो कि तुम्हें इस रहस्य के बारे में कुछ पता नहीं है। यदि तुम्हें यह रहस्य मालूम पड़ जाएगा तो आजीवन वेदना से छटपटाती रहोगी।"

पाल ब्लूम फील्ड का अनुमान है कि वह विकृत बालक सन १८६९ तक, अर्थात अड़तालिस वर्षों तक जीवित रहा। हो सकता है कि उस दिन उस कर्मचारी ने उसी अभागे जीवित बालक को देखा होगा और उसकी भयावह आकृति देखकर डर से उसके होश उड़ गये होंगे।

गुप्त-कथा विस्मृति के गर्भ में

आज ग्लेमिस-दुर्ग के उस गुप्त कक्ष का, जो एक जीवित व्यक्ति का मकबरा बन गया, किसी को पता नहीं है। यहां तक कि स्ट्रेकमोर-परिवार भी उसके बारे में नहीं जानता। इसका भी एक कारण है।

सन १९६२ में जनरल सर बियान हारक्स ने बी. बी. सी. टेलीविजन पर एक भेंट के दौरान बताया था कि दो-तीन पीढ़ियों पूर्व 'अर्ल ऑव स्ट्रेकमोर' की उपाधि के एक उत्तराधिकारी को उसकी इक्कीसवीं वर्षगांठ पर उसी गुप्त कक्ष में ले जाया गया तो उसने अपने पिता से प्रार्थना की, "ईश्वर के लिए इस दर्दनाक रहस्य को मुझे न बतायें।"

पिता ने उसकी बात मान ली और तब से वह परंपरा भी खत्म हो गयी।

आज भी जब कभी इंगलैंड की राजमाता से इस संबंध में कुछ पूछा जाता है, तब वे इस विषय को टाल जाती हैं। उस पर चर्चा ही नहीं करना चाहतीं। ●

कहानी



सांस लेती लाशें

• जयदत्त गौऊत

मेज की बहुत सारी चीजें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। ठीक इन्हीं बिखरी चीजों की तरह मेरे विचार भी बिखरे हुए हैं।

इस समय मेरे मस्तिष्क को सबसे अधिक कुरेदनेवाली बात है सुरेखा और उसके सीने से लिपटी हुई वह लाश।...!

हां लाश ही तो है, अन्यथा जीवन तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित क्यों रहती? जब से सुरेखा के यहां से लौटा हूं, तब से न चाहते हुए भी मेरा विचार बेबसी की उस जीती-जागती मूरत की ओर स्वतः खिंच जाता है। अभी

कल की ही बात है। हमारे द्वीप की रमणीयता की बात हांकते हुए किसी प्रतिष्ठित लेखक का विचार व्यक्त करते हुए किशन ने उस गोष्ठी में कहा था, "सर्वप्रथम हमारा देश बना, तत्पश्चात स्वर्ग, और स्वर्ग का निर्माण इसी देश की प्राकृतिक सुषमाओं और विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है।" उस समय एकाएक बच्चे की याद आ गयी थी मुझे।

मैं ऐसा सोचने पर बाध्य हो गया था कि मेरे देश में रहनेवाले किसी शिशु की दशा इस कदर विगड़ी हुई है, तो शायद स्वर्ग की स्थिति कुछ ऐसी ही नहीं; इससे भी बदत्तर अवश्य होगी।

उस दिन घर लौटते समय एक बार सुरेखा से मिल आने की इच्छा हुई थी ... निरुद्देश्य ही, जैसा कि कई बार हो चुका है।

सुरेखा के यहां पहुंचा, तो उसे खुले बरामदे में उदास खड़ी... दूर तक फैले हुए ईख के लहलहाते खेत देखते पाया था।

मैं सुरेखा के स्वभाव और आदतों से भली-भांति परिचित हूं। वह जितनी हंसती है, उससे कहीं अधिक हंसाने की कला में सिद्धहस्त है।

लेकिन उस दिन ऐसा प्रतीत हुआ था, जैसे हंसी-कहकहों का व्यापार करते-करते वह स्वयं उसकी मोहताज हो गयी थी। वह मेरे सामने गुमसुम खड़ी थी, और उसका बदला हुआ चेहरा मेरे सामने एक साथ कई प्रश्नचिह्न प्रस्तुत कर रहा था। मुझे ऐसा लगा, जैसे कुछ समय पहले उसके जीवन में कोई असाधारण-सी घटना घटी हो, जिसने उसके जीवन की सारी चहक को सोख लिया हो।

जब मैं घर लौटने के लिए उठा था, तब सुरेखा ने चाय ला दी थी। मैंने कई बार ऐसा कहकर, "मैं तुम्हारा मेहमान थोड़े ही हूं," उसे चाय पिलाने से रोका, परंतु हर बार वह इस तर्क से मुझे निरुत्तर कर देती कि "केवल मेहमानों को थोड़े ही चाय पिलायी जाती है।" एक ही सांस में पूरी चाय गटककर गिलास थमाते हुए, जब मैं आने को हुआ, तब सुरेखा ने मुझे रोक दिया था। उस समय सुरेखा पर मुझे बहुत झुंझलाहट हुई थी। एक तो खामोश बुत बनी बैठी है, न बोलती है, न चालती है, पर जब घर लौटता हूं, तब रोकती है ... व्यर्थ ही।

जब सुरेखा दूसरे कमरे में जूठा गिलास रखने गयी, तब सोचा था, अब मैं उससे अपना पीछा छुड़ाऊंगा। पर यह क्या ? उसकी गोद में यह बच्चा कैसा !

"अनुमान लगाइए तो इस बच्चे को कितने महीने हुए होंगे ?"

उसने बच्चे की ओर देखते हुए स्वाभाविक ढंग से पूछा था। बच्चे को देखकर मुझे बेइंतहा हैरत हुई थी। इस बात को मैं नकार नहीं सकता। चूंकि घर लौटने में

विलंब हो रहा था, इसीलिए अपने आश्चर्य पर अधिकार पाते हुए, बच्चे की शारीरिक बनावट तथा गठन को ध्यान में रखकर मैंने कहा था—"यही कोई चार महीने के लगभग ।"

सुरेखा जरा-सी हंसी थी..., एक बुझी-बुझी हंसी थी वह ।

"इसे चौदह महीने हुए हैं ।"

'एक वर्ष और दो महीने।' मैंने उसके कहे हुए शब्दों को अपने शब्दों में कहा था। वह इसलिए कि कहीं उसे उम्र बताने में गलती तो नहीं हुई पर ऐसा कुछ नहीं था।

बच्चा सुरेखा की गोद में गठरी बना सो रहा था। कुछ अधिक पास आकर मैंने बच्चे को देखा था। चीथड़ों में लिपटा हुआ अस्थि-चर्म का एक टुकड़ा सांस लेता-सा लग रहा था।

"इस बच्चे की कहानी भी अजीब है, जयदेव।" सुरेखा के स्वर से वेदना और गंभीरता एक साथ टपक रही थी। उसकी खिन्नता का कारण धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगा था।

"बच्चे का क्या नाम है ?" मैंने पूछा था।

"नाम... ? नाम हो तो बताऊं। इसका नाम अभी तक लिखवाया नहीं गया है।" उसके चेहरे पर पुनः एक सूखी हंसी आयी थी, जो सहसा लुप्त हो गयी थी।

"नाम अभी तक नहीं लिखवाया गया है ! ऐसा क्यों ?" मेरे शब्दों में प्रश्न



कम और विस्मय अधिक था।

"तुम्हारे इस 'क्यों' का जवाब रुपयों के चंद सिक्के तथा इस बच्चे के बाप की लापरवाही कहूं, तो शायद तुम विश्वास नहीं करोगे, लेकिन यह सच है जयदेव, यह बच्चा मेरे मौसा का है, जिसे मैं संसार का सबसे गया-गुजरा नर-पशु मानती हूं। उसके हाथों उसकी घरवाली बच्चा पैदा करने की मशीन तथा इंद्रिय सुख का यंत्र बनकर रह गयी है। जो शख्स अपनी ही संतान का चौदह महीने तक नाम लिखवाने में असमर्थ रहे, वह किसी भी हालत में बाप कहलाने का अधिकारी नहीं।"

सुरेखा के स्वर का गांभीर्य ज्यों का त्यों बना रहा, और वेदना धीरे-धीरे विलीन होती गयी थी। एक लंबी सांस लेकर सुरेखा ने अपनी बात जारी रखी थी—"मां ने मौसी को कई दफे गांव के

फेमली-प्लानिंग सेंटर में काम करनेवाले कर्मचारियों से मिलने और उनसे अपनी समस्या सुलझाने की सलाह दी थी, पर बेचारी का कुछ बस चले, तब तो ! अभी मौसी अस्पताल में है। उसके फिर बच्चा पैदा हुआ है...., अबकी बार दो-दो। जब कभी मौसी अपने पति से इस बच्चे का नाम लिखवाने का जिक्र करती है, तब वह हर बार एक ही स्वर में कहता है, "तुम क्यों इसके पीछे अपनी जान खपाती हो। अब की बार बच्चा पैदा होगा तो ऐसा कहकर कि दोनों बच्चे जुड़वां पैदा हुए हैं, दोनों के नाम एक साथ लिखवा दूंगा; पर इस बार तो मौसी ने दो-दो बच्चों को जन्म देकर साबित कर दिया है कि इसका नाम कभी नहीं लिखवाया जाएगा।"

मैंने पूछा, "इतने लंबे अरसे तक नाम न लिखवाने का परिणाम मालूम है न ?"

"इसका उत्तर तो आनेवाला कल ही दे पायेगा। कौन जाने इसके मां-बाप को नाम न लिखवाने के जुर्म में हिरासत में ले लिया जाए...., पर जब मैं इस बच्चे के भाग्य के बारे में सोचती हूं, तब मेरा दिल दहल जाता है। इसे तो न जीने का हक है, न मरने का। मुझे तो लगता है कि मैं एक दम तोड़ रहे शव को जीवित रखने का असफल प्रयत्न कर रही हूं। यदि यह नन्हीं-सी जान किसी तरह जी जाएगी, तो यह मां और मेरी सेवा-टहल का फल होगा, बदकिस्मती से यह भगवान को प्यारा हो गया, तो पता नहीं इसके साथ-साथ और कौन-कौन डूबेंगे। इसकी मृत्यु के पश्चात इसका डेथ-सर्टीफिकेट तो निकालना होगा, परंतु जिसका 'बर्थ-सर्टीफिकेट नहीं, उसका डेथ-सर्टीफिकेट भला कहां से आयेगा ?" सुरेखा ने कहा।

बच्चा अब तक सुरेखा की गोद में ही पड़ा सो रहा था। वह उसके सीने से इस तरह चिपटा हुआ था, गोया वह उसकी मां हो। कुछ देर तक बालक अपनी पूरी ताकत से छटपटाया था, जैसे वह इस सांसारिक बंधन को तोड़कर हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त हो जाना चाहता हो। बच्चे की छटपटाहट का कारण तब जाना था, जब सुरेखा बगल के कमरे में बच्चा लिए उसके द्वारा गंदा किया हुआ चियड़ा बदलने चली गयी थी।

बच्चे को पुनः गोद में लिए सुरेखा धीमी चाल से आयी थी। मैंने बच्चे के चेहरे पर नजर डाली थी। वह जाग चुका था। मेरी आंखें बच्चे की आंखों से आ उलझी थीं। बालक की आंखों में लाचारी, निरीहता और खिन्नता का एक विचित्र मिश्रण था। उसके सपाट चेहरे की मुखर आंखें जैसे-अपने छोटे से जीवन की अपार दीनता को अभिव्यक्ति दे रही थीं। उस बेजान बच्चे को देखकर लगा था, मानो ईश्वर ने संसार के समस्त विषादों, वेदनाओं, पीड़ाओं और निराशाओं को किसी विशेष कारणवश समेटा हो, और बाद में उसके विचारों ने अपनी उक्त संचित



वस्तुओं को बच्चे की शक्ल में जन्म दे दिया हो ।

"बच्चा गोद में पड़ा-पड़ा अलसा गया सुरेखा ! इसे सुला क्यों नहीं देतीं ?" मैंने सलाह दी थी ।

"नहीं जयदेव । जिस बच्चे ने कभी गोद न जानी हो, वह इतनी जल्दी गोद में अलसानेवाला नहीं । फिर इन चंद दिनों में बच्चे से मुझे इतना अधिक मोह हो गया है कि इससे पलभर की दूरी गवारा नहीं होती ।" ऐसा कहते हुए उसने बच्चे को कुछ और मजबूती से भींच लिया था, जैसे उससे बिछुड़ जाने का डर था । बच्चे की रुलाई बंद हो चली थी ।

"इसका बाप क्या करता है ?"

सुरेखा का मुखड़ा कुछ तन गया था । उसने बच्चे की ओर देखते हुए कहा था— "तुमने गलत प्रश्न किया है जयदेव ! तुम शायद यह पूछना चाह रहे हो कि वह शैतान क्या करता है । उसे तो शैतान भी कहना शैतान के नाम को बदनाम करना है, क्योंकि शैतान का भी अपने ढंग का कोई धर्म होता होगा, पर उसका कोई धर्म नहीं ।" सुरेखा अपने हृदय की सारी कटुता और तीखेपन से बोल रही थी—"वैसे वह सप्ताह में दो-एक दिन किसी के खेत में काम कर लेता है, और जब कुछ पैसा हाथ में आ जाता है, तब रंगीन पानी की बोतल में वह अपने को डुबो डालता है । जब कुछ अधिक पैसे उसके हाथ पड़ जाते हैं, तब वह अपने इने-गिने मित्रों को अपनी सेहत का जाम पिलाता फिरता है । घर पर कौन दाने-दाने को मोहताज है, किसे कपड़े-लत्ते के लाले पड़े हैं, कौन हर रोज एक नयी मौत मर रहा है, इसकी खबर लेने की उसे न चिंता है, न अवकाश । नशे में धुत्त वह, अपनी पत्नी के लाख सम-झाने के बावजूद उसे अपनी कामुकता का शिकार बनाता है । फिर क्या है ? एक लाश से दूसरी लाश का जन्म होता है । अभी एक लाश मृत्यु के दिन गिन रही होती है कि दूसरी मृत्यु के भंवर में जाने के लिए तैयार हो जाती है . . . और यह सिलसिला अब तक जारी है । मौसी के अब तक छः बच्चे पैदा हुए हैं । बेचारगी से चिपचिपे वे बालक, जीवन की हर एक जरूरत से वंचित हैं । और-तो-और मां का दूध, जो प्रत्येक शिशु का जन्म-सिद्ध अधिकार है, उन्हें नसीब नहीं होता । वे

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.



आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ





सुपर रिन से धोया हुआ

सुपर रिन—अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरा.

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

लिंटास-RIN.

ऐसे बच्चे हैं, जिन्हें इसलिए जीवित कहा जा सकता है कि वे सांस ले रहे हैं, अन्यथा उनमें जीवित होने का और कोई लक्षण नहीं।

मौसी में और एक लाश में केवल यही अंतर है कि लाश को फूंक दिया जाता है, पर मौसी अपनी लाश को अपनी कंधों पर आप ढोये जा रही है . . . , अपनी पल-पल डूबती-उतराती जीवन-नौका को मृत्यु के भंवर तक आप खेती जा रही है. . ।"

पल भर के लिए मैं विरक्ति की उस सीमा तक पहुंच गया था, जब मनुष्य को मंगलामंगल, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर भी संदेह होने लगता है।

"क्यों जयदेव ! तुम सुन तो रहे हो न ?" सुरेखा को जानते देर नहीं लगी थी कि मैं अपने में नहीं था, परंतु अपने मुख पर तत्काल एक बनावटी मुसकान लाते हुए मैंने कहा था, "हां सुरेखा ! सुन रहा हूं, सुन रहा हूं कि किस प्रकार एक बाप स्वयं अपनी संतान का हत्यारा बनता है. . . , बाप के नाम पर आप अपने बच्चे का प्राणघातक शत्रु बनता है।" मैं बहुत कुछ कहना चाहता था पर भावातिरेक के कारण शब्द गले में अटके हुए-से लग रहे थे ।

कुछेक क्षण पश्चात मैंने सुरेखा से पूछा था, "बच्चा लड़का है या लड़की ?"

जानी-पहचानी हुई एक और सूखी हंसी सुरेखा के चेहरे को संवार गयी थी ।

"लड़की ।"

"फिर तो वह और भी बदनसीब है।" मेरे मुंह से एकदम निकल पड़ा था।

साढ़े दस बजे के करीब मैं सुरेखा के यहां से विदा हुआ था, तो मेरा सर बोझिल था और मेरा चेहरा दया तथा रोष के मिले-जुले भावों से विकृत था।

लगातार बजती हुई साइकिल की घंटी की टन-टन, मेरे खयालों को तोड़ती है। जल्दी मचाता हुआ मैं घर से निकलता हूं। बाहर जिस व्यक्ति पर मेरी नजर पड़ती है, वही एक सांस में उगल देता है-- "सुरेखा के यहां, बच्चे की मृत्यु हो गयी।"

प्रश्न ! प्रश्न !! प्रश्न !!!

कितना विचित्र है यह संसार, और इससे भी कहीं अधिक विचित्र हैं, इसमें रहनेवाले ?

--४, रामजस कॉलेज हॉस्टल, दिल्ली, विश्वविद्यालय, दिल्ली-११०७७७

रिश्ते का खेल

दक्षिण अमरीका के उराग्वे देश की एक बड़ी फर्म के फुटबाल क्लब की टीम एक मैच १२-० से हार गयी। अधिकारियों ने निर्णायक से धांधली का कारण पूछा तो उसने बताया कि इसके सिवा चारा नहीं था। दूसरी टीम के कप्तान से उसने कुछ पैसा कर्ज ले रखा है और उसी टीम के गोलकीपर से उसकी अपनी लड़की की शादी अगले माह हो रही है।

शहर में घूमते हुए

फिजी धर्मों से परे हैं

नीले मखमल पर जैसे रंग-बिरंगी-मणियां बिखरा दी गयी हों—ऐसा है प्रशांत महासागर के नीले जल पर छोटे-छोटे जलपोतों-सा खड़ा फिजी द्वीप समूह ! 'एटलस' में विश्व का मान चित्र देखें, तो भारत और फिजी द्वीप समूह की लंबी दूरी मन में अचरज भर देती है।

हाल ही में 'कादम्बिनी' कार्यालय में इसी फिजी द्वीप-समूह के कुछ लोग हमसे मिलने आये। रहन-सहन, आचार-व्यवहार, बोलचाल में विशुद्ध भारतीय। यदि वे यह न बताते कि वे फिजी से आये हैं, तो हम यही समझते कि कश्मीर, केरल, गुजरात और उत्तर प्रदेश के शिक्षकों का दल सौजन्यवश हमसे भेंट करने आया है ! उनके भारत-प्रेम, उनकी आत्मीयता-पूर्ण बातचीत ने हमें बेहद प्रभावित किया।

कैसा देश है फिजी !

हमने उनसे उनके देश–फिजी द्वीप-समूह के बारे में पूछा। भारत के प्रति इतनी गहरी आत्मीयता का कारण जानना चाहा। उन्होंने जो कुछ कहा, वह रोचक होने के साथ-साथ नयी जानकारी देनेवाला भी था।

फिजी की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया, भारतवर्ष की तरह फिजी भी एक कृषि-प्रधान देश है। फिजी के ५२ प्रतिशत नागरिक भारतीय मूल के हैं, एवं शेष फिजी-आदिवासी। फिजी आदिवासी भी वहां के मूल वासी नहीं हैं, बल्कि चीनी, जापानी व आस्ट्रेलियाई मूल के हैं।

फिजी में विविध भाषाएं बोली जाती हैं। यद्यपि अंगरेजी को राष्ट्रीय-भाषा का स्तर प्राप्त है, लेकिन मुख्य भाषाएं हैं, फिजीयन फिजी-हिंदी एवं कैभीती। कैभीती आदिवासियों द्वारा ही प्रयोग की जाती है। विद्यालयों में हिंदी पढ़ायी जाती है।

वे गिरमिटिया मजदूर कहलाते थे

सौ डेढ़ सौ वर्षों पूर्व, फिजी में गन्ने की खेती करवाने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों से हृष्ट-पुष्ट लोग मारीशस की भांति फिजी भी ले जाये गये। ये मजदूर गिरमिटिया मजदूर कहलाते थे। उनकी जन्म-भूमि और कर्म-भूमि के बीच फैला महासागर उनके लिए अलंघ्य बन गया और वे समुद्र से घिरे फिजी के होकर ही रह गये।

लेकिन स्थान और काल की दूरी अपनी जन्म-भूमि के प्रति उनके प्रेम को

रंचमात्र भी कम नहीं कर पायी और वे उसे अपने धार्मिक विश्वास की तरह पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों सौंपते चले गये, भारत के प्रति उनका प्रेम आज भी ज्यों का त्यों है।

प्रेरणा का स्रोत---भारत

हमसे मिलने आये लोगों में से एक श्री आनंदी लाल अमीन कहते हैं, "भारत, फिजी के लिए हमेशा से प्रेरणा का स्रोत रहा है। भारत से हम लोग न अब तक जुदा हुए हैं, न हो पाएंगे।"

श्री अमीन का विवाह गुजरात में हुआ है। वे हिंदी भाषा रत्न हैं। श्री अमीन फिजी कला परिषद के सदस्य होने के साथ-साथ सांस्कृतिक समाज तथा फिजी हिंदी शिक्षक संघ के अध्यक्ष हैं। श्री अमीन हमें फिजी हिंदी के, जो उनके अनुसार 'बहुत मीठी' और आसानी से सबकी समझ में आ जानेवाली भाषा है, कुछ वाक्य और फिर उनका हिंदी अनुवाद सुनाते हैं।

फिजी हिंदी : **"आज हमारा गन्ना के कंटाप कटी।"**

हिंदी : "आज हमारे गन्ने का 'कंटाप' कटेगा।"

'कंटाप' शब्द की व्युत्पत्ति की भी एक कहानी है। यह शब्द अंगरेजी के 'केन टॉप' (CANE TOP) का फिजी रूपांतर है।

फिजी हिंदी : **"तम पकलो"**

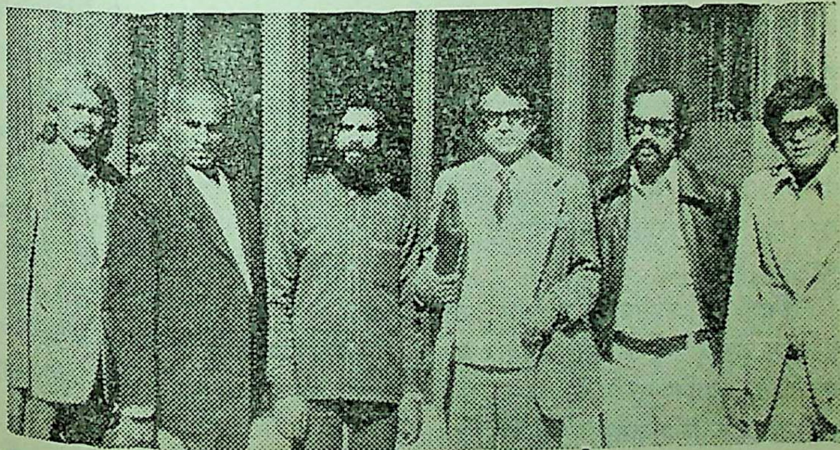
हिंदी : "आप पकड़िए"

फिजी हिंदी : **"चली साकिस"**

हिंदी : "फिलम चलो।"

यहां 'साकिस' शब्द 'सरकस' का रूपांतर है।

बायें से दायें---वासुदेव महाराज, महावीर मित्र, ललित कुमार श्रीवास्तव, आनंदीलाल अमीन, रहमतअली एवं एक अन्य फिजी नागरिक



फिजी में हिंदी

फिजी में हिंदी अध्ययन और अध्यापन की दिशा में काफी कार्य हुआ है।

आर्य-प्रतिनिधि-सभा तथा सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित सभी पाठशालाओं में हिंदी के विकास के लिए अनेक योजनाएं लागू की गयी हैं।

फिजी की माध्यमिक शालाओं में हिंदी को प्रोत्साहन देने के लिए 'बॉ सांस्कृतिक समाज' राष्ट्रीय हिंदी भाषण प्रति-प्रतियोगिता का आयोजन करता है।

उर्दू के उत्थान के लिए फिजी मुसलिम लीग भी वार्षिक प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

रेडियो फिजी ने भी अपने कार्यक्रमों में हिंदी को पर्याप्त समय देना शुरू किया है।

भंगोना-प्रिय कैवती

श्री अमीन हमें फिजी के आदिवासियों के बारे में, जो 'कैवती' कहलाते हैं, कई दिलचस्प बातें बतलाते हैं। कैवती लोगों का प्रिय पेय है—भंगोना। इसे वे बहुत पवित्र मानते हैं और उसे पीकर अपनी समस्याएं, झगड़े आपसी बातचीत से तय कर लेते हैं।

फिजी में रहनेवाले भारतीय मूल के लोग कैवती स्त्री के साथ विवाह कर सकते हैं, क्योंकि पत्नी के कारण उन्हें खेती-बाड़ी के लिए जमीन मिल जाती है। पर कैवती के साथ कभी किसी भारतीय मूल की लड़की ने विवाह नहीं किया है।

श्री अमीन का कहना है कि फिजी के ग्रामीण-जीवन पर फिल्मों का, विशेषकर मारधाड़पूर्ण हिंदी फिल्मों का, काफी गलत असर पड़ रहा है। यों, फिजी में अपराध बहुत कम होते हैं, पर जब कोई ग्रामीण युवक शहर के आकर्षण में गांव छोड़कर शहर आता है, और उसे काम नहीं मिलता, तब वह अपराधों की ओर प्रवृत्त हो जाता है, क्योंकि जिंदा तो रहता है ?

श्री अमीन के साथ हमसे बातें कर रहे सर्वश्री शांतिलाल, वासुदेव महाराज और रहमतीअली ने भी यही बताया।

सर्व धर्म समभाव

श्री रहमतअली फिजी हिंदी शिक्षक संघ के महामंत्री हैं। एक प्रश्न के उत्तर में श्री रहमतअली बताते हैं कि फिजी में विभिन्न धर्मावलंबियों में आपसी सद्भाव बहुत अधिक है। यदि एक हिंदू के घर में रामायण-पाठ या सत्यनारायण की पूजा का कार्यक्रम है, तो उसके मुस्लिम या दूसरे धर्मावलंबी मित्र भी पूरी निष्ठा से शामिल होंगे। प्रसाद ग्रहण करेंगे। इसी तरह हिंदू भी अन्य धर्मावलंबियों के त्यौहारों में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। यद्यपि धर्म-संगठन अपना प्रभाव फैला रहे हैं, पर वे फिजी के भारत-मूलवंशियों को संकीर्ण नहीं बना पाये हैं।

वे कहते हैं, फिजी में उच्चायुक्त पद पर एक महिला अधिकारी श्रीमती सोनू कोचर की नियुक्ति से फिजी के नारी-जगत में एक चेतना-सी फैल गयी है।

दिल्ली का गुप्त बाजार

इन्हीं लोगों के साथ फिजी से आये ६७ वर्षीय श्री महावीर मित्र काफी देर से कुछ कहना चाहते हैं।

—श्री मित्र उत्तरप्रदेश के रहनेवाले हैं। उनके मन में बचपन से ही भारत को देखने की, गंगा मैया, जमुना मैया के दर्शन करने की तीव्र इच्छा थी।

हम पूछते हैं, "भारत ने आपको निराश तो नहीं किया ?"

वे कहते हैं, "नहीं, नहीं, भारत को जैसा सुना था, वैसा पाया। पर हमें गुप्त बाजार बहुत भाया।"

"गुप्त बाजार !" हम चौंककर पूछते हैं। उत्तर देते हैं, उनके सामने बैठे छब्बीस वर्षीय पत्रकार ललित कुमार श्रीवास्तव !

"मित्रजी का आशय है, नयी दिल्ली नगरपालिका के कनाटप्लेस में बने भूमिगत बाजार से !"

हम सब हंस पड़ते हैं।

फिर श्री मित्र हमें भारत-प्रवास में लिखी एक कविता सुनाते हैं।

बातचीत अपने अंतिम छोर पर पहुंचती है। हम अपने अन्य सहयोगियों से सबका परिचय कराते हैं। हमारी लाइब्रेरियन का नंबर आता है तो हम

फिजी-हिंदी की एक कविता

भारत-दर्शन

देखन आये हु भारत देश (टेक)
फीजी द्वीप के रहनेवाला
मन बाढ़ेहु यह लवलेस (१)
मानव विषय छवि अति यह देखा
उनका नाना रकम औ भेस (२)
बहु गलियन में चल फिर देखा
कहिं तनक न लागी ठेस (३)
देखा भाव प्रेम सबहि में
चाहे ज्ञानी, दीन नरेश (४)
देखा कवि-सम्मेलन राग प्रिये
नयी दिल्ली के मध्य्पेश (५)
महावीर मन चाहत है यहि
छवि देखहु आप हमेश (६)

——महावीर मित्र (फिजी)

कहते हैं, "ये भी श्रीवास्तव हैं।"

श्री ललित कुमार श्रीवास्तव के मन में जैसे आनंद और स्नेह का ज्वार उमड़ पड़ता है। वे बेझिझक मिस श्रीवास्तव का स्नेह से हाथ पकड़कर कहते हैं, "सचमुच आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई। मेरी दूर के रिश्ते की बहनें दिल्ली से काफी दूर हैं। आपसे मिलकर लग रहा है, जैसे मैं अपनी उन्हीं में से एक बहन से मिल रहा हूं।" ●

विधि-विधान

क्या हिस्सा मिलेगा ?

जोगेन्द्र कुमार, देहरादून : मेरी एक रिश्तेदार व उसके देवर का दुकान में हिस्सा है। हिस्से के अंतर्गत वह कुछ रकम प्रतिमाह उसको देता है। दुकान वह अकेला चलाता है। सेल्स-टैक्स इत्यादि पर मेरी रिश्तेदार के हस्ताक्षर भी वह करवाता है। जबकि रिश्तेदार के पास हिस्से के कागजात नहीं हैं। अब वह दुकान को पगड़ी पर उठाकर बंद करना चाहता है। दुकान पर फर्म का बोर्ड लगा है। क्या उसको अपना हिस्सा मिल सकता है ?

दुकान की किरायेदारी किसके नाम है, इसका उल्लेख आपने नहीं किया। दुकान बंद करने का निर्णय तो दोनों की इच्छा से होना चाहिए। यदि एक पक्ष काम बंद करना चाहे, तो भी दुकान का पूरा हिसाब बनाकर नफा-नुकसान आपस में बांटने तथा देनदारी का भुगतान करने के बाद शेष रकम या माल को साझियों में बांटा जाता है। इस प्रकार बंटवारे के लिए तैयार न होने पर, आपकी रिश्तेदार (Rendition of Account) हिसाब की मांग का दावा कर सकती हैं, और इस दावे में अपने अधिकार के प्रमाण के रूप में (सेल्स-टैक्स) बिक्री-कर कार्यालय का रिकार्ड तथा फर्म के वही-खाते प्रस्तुत करवा सकती हैं। आयकर विभाग दुकान व संस्थान अधिनियम (Shops and Establishment Act) के अंतर्गत दुकान पंजीकरण का रिकार्ड व फर्म पंजीयक के कार्यालय का रिकार्ड भी उपयोगी रहेगा। पगड़ी लेना या देना, तो गैर कानूनी है। परंतु यदि रकम दुकान की (Goodwill) साख के रूप में ली जाए, तो दोनों पक्षों का उस पर अधिकार रहेगा।

रकम कैसे पाऊं

हरिकृष्ण दासानी, इंदौर : मैंने एक व्यक्ति को काफी बड़ी रकम गवाह के समक्ष कर्ज के रूप में दी थी, जिसमें उसके साथ डेढ़ रुपया प्रति सैकड़ा ब्याज के साथ वसूली का वायदा था। काफी समय हो गया है, उसे टाल-मटोल करते हुए। कृपया मुझे योग्य सलाह दें, जिससे मैं अपनी रकम वापस पा सकूं।

आप अपनी रकम वसूल करने के लिए दीवानी न्यायालय में दावा कर सकते हैं। दीवानी प्रक्रिया संहिता के आर्डर ३७ रूल २ (आदेश ३७ नियम २) के द्वारा वचन-पत्र आदि पर दी गयी रकम वसूल करने के लिए विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था की गयी है। इस प्रक्रिया से वाद



का निर्णय शीघ्र होता है। आप यदि चाहें, तो इस प्रक्रिया का लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार के दावे के साथ असल वचन-पत्र व रसीद न्यायालय में दी जानी चाहिए। प्रतिवादी को भेजे जानेवाले समन के साथ भी वचन-पत्र तथा रसीद की प्रति प्रतिवादी को भेजी जानी आवश्यक है।

क्या वसीयत बदल सकते हैं ?

सुरेशचंद्र शर्मा, मेरठ : क्या एक निःसंतान विधवा अपने मृतक पति की वसीयत बदल सकती है ? मृतक ने अपनी संपत्ति अपने भतीजे के नाम की है।

नहीं, विधवा महिला अपने मृतक पति की वसीयत नहीं बदल सकती। संतान होने या न होने से विधवा के अधिकार पर कोई अंतर नहीं पड़ता।

कागजातों के बिना क्या ?

रामप्रसाद, वाराणसी : मेरे मकान के रजिस्ट्री (बयनामा) के कागजात खो गये हैं। क्या इन खोये हुए कागजों का कोई दुरुपयोग कर सकता है ? ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना होगा ?

आपको मकान का बयनामा खो जाने की रिपोर्ट निकट के थाने में दर्ज करवा देनी चाहिए। साथ ही यह सूचना अपने क्षेत्र के दैनिक समाचार-पत्र में भी छपवा दें।

केवल बयनामा दिखाकर मकान नहीं बेचा जा सकता। मकान बेचते समय नया बयनामा लिखकर पंजीकृत करवाया जाता है, जिस पर विक्रेता के हस्ताक्षर रजिस्ट्रार के समक्ष होने आवश्यक हैं। विक्रेता की पहचान भी नूंदाधिकारी (रजिस्ट्रार) के सामने करवायी जाती है। मकान बेचने का अधिकार बयनामा धारक को नहीं, बल्कि मकान के स्वामी को ही होता है।

मध्यस्थता समय-सीमा

क. ख. ग., कानपुर : हमारा कारोबार अगस्त १९७७ में समाप्त हो गया था। तभी मैंने अपने दूसरे साझी से व्यवसाय की गुडविल (Goodwill) का हिस्सा मांगा। हिस्सा न मिलने पर उनको वकील से नोटिस दिसंबर १९७७ में दिलवाया। साझीदार की शर्तों के अनुसार आपस के सभी झगड़ों का निर्णय मध्यस्थता द्वारा पंच से करवाया जाना है। मैं वह झगड़ा पंच फैसले को सौंपने का आवेदन देना चाहता हूं। कृपया बतायें कि यह

आवेदन कब तक दिया जा सकता है।

पंच फैसले के लिए मध्यस्थता अधिनियम १९४० की धारा २० के अंतर्गत आवेदन किया जाता है। आपका कारोबार अगस्त १९७७ में समाप्त हुआ, इसलिए गुडविल में हिस्सा प्राप्त करने का आपका अधिकार भी अगस्त १९७७ में बना। गुडविल मांगने के लिए नोटिस देना कानूनन आवश्यक नहीं होता। इसलिए नोटिस की तिथि से आपके अधिकार पर कोई अंतर नहीं पड़ता। आपको कारोबार समाप्त होने के तीन वर्ष के अंदर (अर्थात अगस्त १९८० तक) विवाद को पंच फैसले को सौपने-हेतु आवेदन न्यायालय में करना चाहिए।

कहां से शुरू करूं ?

रामसरूप, जबलपुर : मेरे एक मित्र को गैर कानूनी तरीके से उसके मालिकों ने नौकरी से निकाल दिया है। अब मेरा मित्र अपने मालिकों के विरुद्ध क्षत्ति-पूर्ति का दावा करना चाहता है। क्या यह दावा दीवानी न्यायालय सुन सकते हैं, या लेबर कोर्ट में दावा करना पड़ेगा ?

यह ठीक है कि क्षति-पूर्ति के दावे में सफलता, न्यायालय द्वारा नौकरी से निकाले जाने को गैरकानूनी मानने पर निर्भर करती है, फिर भी क्षति-पूर्ति का दावा दीवानी न्यायालय में किया जा सकता है। इसी प्रकार का एक मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कुछ समय पूर्व



आपके कानूनी सलाहकार
रामप्रकाश गुप्त

आया था, जिसमें मान्य न्यायाधीशों (न्याय मूर्ति एन. एल. ऊंटवालिया व न्याय मूर्ति ए. पी. सेन) ने इस प्रकार के झगड़े में दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को स्वीकार किया था।

विजेन्द्र सिंह, शिवपुरी : एक पुरुष (हिंदू), एक पत्नी के होते हुए दूसरी शादी कर लेता है, और उसकी उस नयी पत्नी को भी उसके विवाहित होने का पता होता है! पहली पत्नी के मुकदमा दायर करने से अगर उन्हें (दोनों को) सजा हो जाती है तो, क्या सजा काटने के बाद वह पुरुष अपनी नयी पत्नी के साथ रह सकता है? अगर 'हां' तो उस पहलीवाली पत्नी का और अगर 'नहीं', तो उस दूसरी पत्नी का क्या होगा ?

सजा भुगत लेने से अवैध कार्य वैध नहीं हो जाता। पहली पत्नी के रहते दूसरा विवाह अवैध है और दूसरी महिला को पत्नी के अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। कानून पहली पत्नी को ही उस व्यक्ति की पत्नी के रूप में मान्यता देता है, अन्य किसी को नहीं। ●

दिल्ली के मुजरे और मुजरेवालियां

• महेश्वर दयाल

मुजरा अरबी का शब्द है और उसका अर्थ है सलाम। बंदगी और दंडवत को भी मुजरा कहते हैं। शाही दौर में नाच-गाना मुजरे से शुरू होता था, लेकिन बाद में नाच की महफिल मुजरा कहलाने लगी। जब बादशाहों, नवाबों, राजाओं, अमीरों और रईसों से लेकर अन्य सब लोग राग-रंग में डूब गये, करोड़ों रुपया मुजरे और मुजरेवालियों पर बहाया जाने लगा, तब मुजरा समाज के लिए आवश्यक हो गया। बच्चे का जन्म होता या नामकरण, छठी होती या दसोठन, मंगनी होती या शादी, मुजरे के बिना सब काम अधूरे समझे जाते।

जब मुजरों की मांग बढ़ी तब बदमाश, लुच्चे शहर-शहर, गांव-गांव सुंदर बच्चियों की खोज में घूमते-फिरते, लड़कियों को भगा लाते या किसी दुखी गरीब परिवार से बच्चियों को खरीदकर वेश्याओं के अड्डों या कोठों पर बेच जाया करते थे। यों किसी के यहां लड़की पैदा होती तो उदासी-सी छा जाती। लड़की युवा होने लगती तो ब्याह और दहेज की फिक्र सवार हो जाती। मां-बाप, सारा परिवार परेशान हो जाता, लेकिन तवायफ के घर लड़की पैदा होती तो शहनाइयां बजने लगतीं, दावतें होतीं, तवायफों की बिरादरी में खुशियां मनायी जातीं। इन वेश्याओं में सबसे निचले दरजेवाली 'टकेहाईया' और सबसे ऊंची 'डेरेदारनियां' कहलाती थीं।

अदब-आदाब की जानकारी

डेरेदारनियां जाति-गोत्र को मानती थीं। उनमें कनचनियां, सावंतें, रामजनियां और पात्रें शामिल थीं। ये बड़ी-बड़ी हवेलियों में रहती थीं और नाच-गाने में माहिर होती थीं। उर्दू-फारसी भी पढ़ लेती थीं। उन्हें शेरो-शायरी का भी शौक होता था। वे हाजिर-जवाबी में भी कमाल रखती थीं। उन्हें बादशाहों, अमीरों, नवाबों की महफिलों और मजलिसों के अदब-आदाब की पूरे तौर पर जानकारी होती थी। वे बड़े ठस्सेवाली होती थीं।

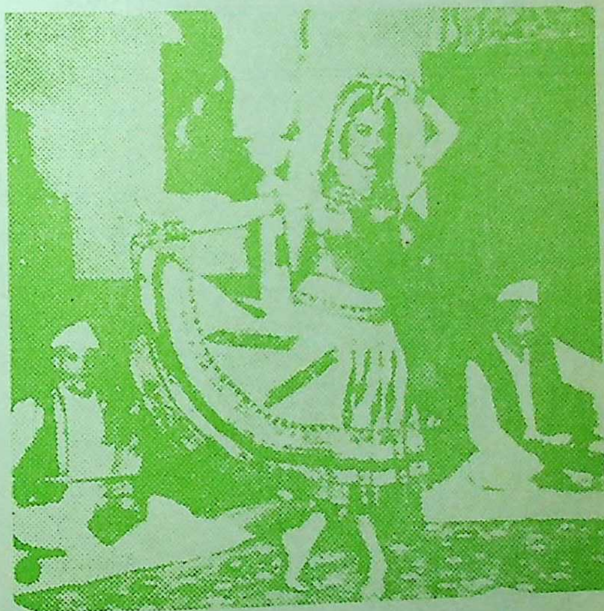
इनकी अदाएं, लोगों को दीवाना बना देतीं, पर जब उन्हें पता चल जाता था कि फलां नवाब या राजा उन पर जान

न्यौछावर किये है, उन पर अपनी जान-माल लुटाने को तैयार है, और वह हर तरह की कसौटी पर पूरा उतरता है, तब वे उसी की पाबंद हो जाती थीं। लेकिन वे उससे निकाह नहीं करती थीं। वे इतनी होशियार और चतुर होती थीं कि यदि किसी के जी से उतर जातीं, या उनके चाव-चोंचलों में कमी होने लगती तो सब कुछ छोड़-छाड़कर अपना काम पूरा कर, फिर अपनी हवेली, कोठे या अड्डे पर चली आती थीं।

किस्सा नूरबाई का

आज से दो सौ पचास वर्ष पहले मुहम्मद शाह रंगीले के दौर में दरगाह कुली बहादुर सालारे जंग हैदराबाद से दिल्ली आये थे। उन्होंने अपनी फारसी की पुस्तक में दिल्ली की नामी वेश्याओं के बारे में निहायत अनोखे और निराले अंदाज में लिखा है।

वे नूरबाई के बारे में लिखते हैं कि 'दिल्ली की नामी नाचने-गानेवाली है। बड़े-बड़े अमीर उसकी एक झलक देखने के लिए मरते हैं। नूरबाई का मकान एक आलीशान दरबार की तरह सजा रहता है। रंगारंग के सजावटी सामान हर तरफ दिखायी देते हैं और उसकी सवारी बड़े ठाठ-बाट से निकलती है। हाथी पर सवार होकर शाही महलों में जाती है और आगे-पीछे नौकरों, चोबदारों और सिपाहियों का दस्ता होता है। जहां जाती है, हीरे-जवाहरात से उसकी खातिर की जाती



कोई भी हिंदी फिल्म मुजरे के बिना अधूरी समझी जाती है। कभी-कभी तो मुजरे द्वि-अर्थी गीतों और नर्तकी की उत्तेजक भाव-भंगिमाओं के कारण अश्लीलता की सीमा को भी पार कर जाते हैं। पर 'देवदास', 'पाकीजा' जैसी फिल्मों में मुजरे को सही रूप में प्रस्तुत किया गया।

है और अनगिनत दौलत साथ लाती है। महफिलों में आने से पहले और जाने के बाद उसे अनमोल चीजें मिल जाती हैं। अब तक यह देखा गया है कि जिसने नूरबाई से जान-पहचान और आश्नाई की, वह तबाह और बरबाद हो गया। हजारों की जायदाद लूट ली। यह कमबख्त आदमी से नहीं, रुपये से प्रेम करती है। जो बेचारा गरीब है, उसकी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखती। बात यह है कि जालिम बला की हसीन और शोख है। उसकी बातों में जादू है, अच्छे-अच्छे साहित्यकार और पढ़े-लिखों की बराबरी करती है। जाहिल और अनपढ़ भी उसके पास बैठ जाए, तो बहुत कुछ सीख जाए।'



फिल्मी मुजरे का एक दृश्य

नादिरशाह और नूरबाई

जब नादिरशाह ने दिल्ली को लूटा और लाल किले में जश्न मनाये गये, तब उसके दिल में भी नूरबाई का नाच-रंग देखने की उमंग पैदा हुई। नादिरशाह नूरबाई को देखकर लट्टू हो गया। कहने लगा, "नूरबाई, हिंदुस्तान का मुंह काला करो। हमारे साथ ईरान चलो।"

नूरबाई यह सुनकर घबरा गयी लेकिन होश-हवास नहीं खोये और फारसी में एक गजल गायी, जिसके दो मतलब थे। नादिरशाह ने गजल सुनी तो हैरान रह गया और नूरबाई-जैसी सयानी औरत को साथ न ले जा सका। यों तो एक इतिहासकार ने लिखा है कि नादिरशाह नूरबाई और दिल्ली के एक नामी हकीम को अपने साथ ईरान ले गया था, लेकिन यह बात सच नहीं है।

एक अजीबोगरीब 'चीज'

सालारजंग ने नूरबाई के अलावा बहुत-सी नाच-गानेवालियों के बारे में लिखा है लेकिन यहां आपको केवल अमीर बेगम का हाल सुना दें—

'अमीर बेगम दिल्ली की नामी-गरामी और हिंदुस्तान की मशहूर तवायफ है। उसका कमाल यह है कि सुंदर होने के अलावा मजलिसों में कपड़े बिना पहने जाती है। लेकिन उसने अपने शरीर के निचले हिस्से पर इस कमाल से चित्रकारी करा रखी है कि कोई नहीं कह सकता कि वह पेशवाज (वस्त्र) पहने बिना ही

आयी है। बदन के ऊपरी हिस्से को बारीक दुपट्टे से ढक लेती है। इस काफिर का क्या कहना ! अजीबो-गरीब चीज है।'

एक नया परिस्तान

मुगलिया सल्तनत का चिराग बुझ गया। अवध के ताजदार वाजिद अलीशाह गद्दी से उतार दिये गये, लेकिन हिंदुस्तान के लोग पुरानी डगर पर चलते रहे।

दिल्ली में मुजरे होते रहे। किला खाली हो गया। चावड़ी बाजार 'परिस्तान' बन गया। यहां दूर-दूर से तवायफें आकर बस गयीं। मुश्तरी और जोहरा, दोअन्नी जान और चवन्नी जान ने नाच-गाने में बहुत नाम पैदा किया।

एक बार किसी रईस के यहां महफिल सजी थी। मुश्तरी और जोहरा बुलायी गयीं।

उन दोनों ने नवाब साहब की हवेली में कदम रखा। वे पैर से जूती निकाल रही थीं कि किसी मनचले ने फबती कसी, "क्या उम्दा जोड़ी है !" उन दिनों जोड़ी का अर्थ 'घोड़ियों की जोड़ी' भी होता था)।

मुश्तरी ने तड़ से जवाब दिया, "हो भी तो साईस के बच्चे। खूब पहचाना !"

वह साहब चोट खाकर बिलबिला उठे और सोच में पड़ गये। कुछ देर बाद मुश्तरी और जोहरा जमकर बैठ गयीं। जब मुश्तरी पान खाये, मुंह-रचाये उन साहब को मुसकरा-मुसकराकर देख रही थी, तब साहब फिर बोले, "क्यों बी साहिबा ! क्या निगल जाने का इरादा है ?"

मुश्तरी कब मात खानेवाली थी। धीरे से बोली, "तौबा-तौबा, हमारे मजहब में सूअर खाना हराम है।"

मैं उसकी मां के बराबर हूं

मुगल बादशाहों और अवध के नवाबों के यहां मुजरे व मुजरेवालियों की भरमार रही। उनके परीखानों में दूर-दूर से हसीन औरतें आती रहीं। उनके राज्यों में सब लोग रंगरेलियों और मस्तियों में डूब गये। अच्छी-अच्छी तवायफों की हवेलियां और कोठे सभ्यता के केंद्र बन गये। अच्छे-अच्छे रईस अपने लड़कों को अदब-आदाब (शिष्टाचार) सिखाने के लिए उनके यहां भेजते थे। कहा जाता है कि एक बार किसी रईस ने अपने लड़के को किसी डेरेदारनी के पास शिक्षा के लिए भेजा। नौजवान लड़के ने डेरेदारनी को देखा तो देखता रह गया।

दूसरे दिन डेरेदारनी ने नौजवान के पिता को चिट्ठी भेजी और लिखा, "कल आपके साहबजादे बंदी के मकान पर तशरीफ लाये थे। माशाअल्लाह ! कितनी प्यारी छब है। क्या नाक-नक्शा पाया है लेकिन मैंने उनकी आंखों में शरारत की झलक पायी। मेहरबानी करके कल से उन्हें मेरे पास न भेजिए। करम होगा। मैं उस लड़के की मां बराबर हूं।"

आजादी के बाद

आजादी के बाद मुजरे और मुजरेवालियों का नाम मिट-सा गया। समाज ने इन मुजरेवालियों को 'बदचलन' और 'आवारा' कहकर ठुकरा दिया। बहुत-सी तवायफें और वेश्याएं मर-खप गयीं। जो परिवार बच रहे थे, उन्होंने नये रास्ते निकाल लिये। कुछ ने फिल्मी-जगत में जाकर और कुछ ने रेडियो पर जाकर बड़ा नाम पैदा किया। समाज ने उनका आदर-सम्मान किया। संगीत और नृत्य-विद्या भारत की प्राचीन कलाएं मानी जाती रही हैं और हमारी सभ्यता का एक अंग भी हैं लेकिन वेश्याओं और मुजरेवालियों ने उन्हें बदनाम कर दिया था। कुछ परिवारों की बहू-बेटियां छुप-छुपकर घर की चहार-दीवारी में गा-बजा लेती थीं। इन कलाओं में रुचि लेना अच्छा नहीं माना जाता था लेकिन अब तो हर छोटे-बड़े परिवार में नाचने-गाने में रुचि ली जा रही है। सैकड़ों संगीत और नृत्य विद्यालय खुल गये हैं। पढ़ाई-लिखाई के साथ नाच-गाने की शिक्षा दी जाती है। पुरुष कलाकारों के साथ-साथ बहुत-सी लड़कियों और महिलाओं ने नाच व गाने और बजाने में सारे संसार में भारत का नाम ऊंचा किया है।

अब थोड़े दिनों से कुछ लोगों ने या यह कहिए कि मुजरे और मुजरेवालियों के ठेकेदारों ने कमाई का एक नया धंधा शुरू कर दिया है। वे चाहते हैं कि शाही दौर की बातें फिर से लौट आयें।

> **बड़े को विनम्र बनकर रहना चाहिए; क्योंकि जो स्वयं को बड़ा मानता है, वह छोटा बनाया जाता है और जो छोटा बनता है, वह बड़ा पद प्राप्त करता है।** —महात्मा ईसा

दिल्ली के एक क्लब में मुजरा हो रहा था। मुजरेवाली मंच पर आकर बैठी। अभी एक-दो गजलें गायी होंगी कि गाते-गाते रुक गयी और 'माइक' अपनी तरफ सरकाकर बोली, "देखिए साहबान, इधर सामने के सोफे पर एक साहब बैठे हैं। कुछ सुन-सुना तो रहे नहीं। मंच के इतने करीब बैठे हुए दूरबीन से देख रहे हैं।"

लोग अपनी-अपनी कुरसियों पर खड़े हो गये और जिन साहब की ओर इशारा किया गया था, उन्हें देखने लगे और हंसने लगे।

दूरबीनवाले साहब उठकर खड़े हुए और फरमाने लगे, "बाई साहिबा, आपका गाना सुनकर मजा नहीं आ रहा था। हां, शक्ल-सूरत खासी है। जब दूरबीन से देखा, तब ऐसा लगा कि आप मेरे पहलू में बैठी हैं।"

तमाशाई खिलखिलाकर हंस पड़े। 'बाई साहिबा' झेंपकर रह गयीं और कुछ न बोल पायीं। अपना-सा मुंह लेकर रह गयीं। थोड़ी देर में मंच से उतरकर वह चली गयीं।

—९६, बाबर रोड, नयी दिल्ली

बुद्धि-विलास

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें, तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए। आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प। सं०

१. **यदि** हम किसी भी संख्या में से उसके अंकों के जोड़ को घटा दें, तो जो फल प्राप्त होगा, वह निम्नलिखित संख्याओं में से किससे भाज्य होगा ?——

क–५, ख–७, ग–९, घ–११

२. घड़ी में साढ़े चार बजने पर यदि उसकी मिनट की सुई पूर्व दिशा की ओर कर दी जाए, तो घंटे की सुई किस दिशा में होगी?

३. **स्तनपायी** जीव की उत्पत्ति पहले कहां हुई—जल में या थल पर ?

४. **सुप्रसिद्ध** अन्वेषक डैविड लिविंग्सटन द्वारा अफरीका महाद्वीप का पता लगाये जाने के बाद अफरीका में ही उसका कौन-सा विशिष्ट खोज-अभियान उसकी मृत्यु के कारण अधूरा रह गया था ?

५. क. **कुष्ट** रोग के विषाणु का नाम क्या है ? ख. उसका पता किसने लगाया था ?

६. क. **इंगलैंड** में बने सबसे पहले भाप के इंजन का क्या नाम रखा गया था ?

ख. उसका कहां प्रयोग किया गया था ?

ग. उसकी रफ्तार कितनी थी ?

७. **हमारे** देश में क. हीरा तथा ख. तांबा कहां पाया जाता है ?

८. क. **भोजन** में कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट्स) का मुख्यतया क्या कार्य होता है ?

ख. इसमें कौन-से तत्त्व होते हैं ?

९. क. **भारत** में आगामी जनगणना किस वर्ष होनेवाली है ? उसके लिए कार्य कब से आरंभ हो जाएगा ?

ख. पिछली जनगणना कब हुई थी और तब देश की कितनी आबादी थी ?

१०. **हमारे** देश में सबसे ऊंचा जलप्रपात कौन-सा तथा कहां है ?

११. **अंगरेजी** के किस सुप्रसिद्ध साहित्यकार के ये शब्द हैं— 'कयामत आनेवाली है, सब मरो, खुशी-खुशी मरो।' (डूम्सडे इज नियर; डाई ऑल, डाई मेरिली)

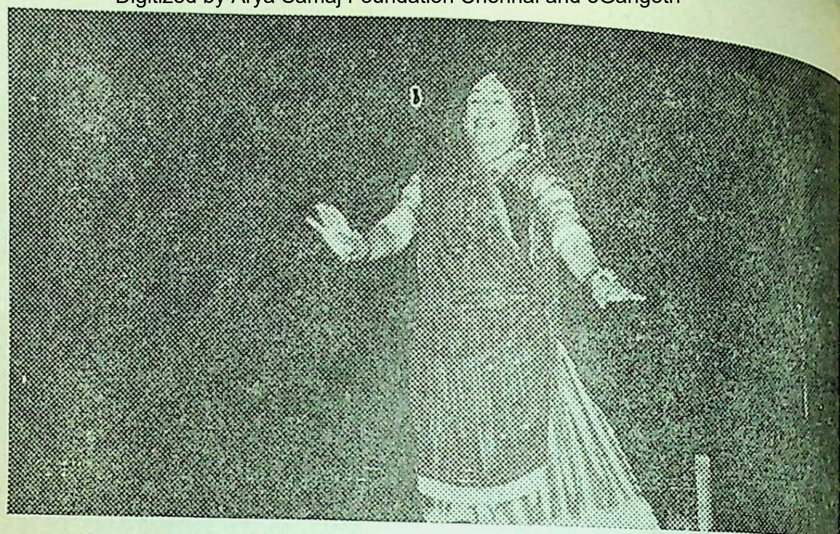
१२. क. **'फोटोग्राफी'** शब्द मूलतया किस भाषा का है ?

ख. इसका शाब्दिक अर्थ बताइए ?

१३. **राष्ट्रपति** द्वारा लोकसभा में कितने सदस्य मनोनीत किये जाते हैं ? तथा किस समुदाय के ?

१४. **नीचे** दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है—





ब्राह्मण के त्याग से एक नृत्य का उद्भव

● नलिनी उपाध्याय

ता थैया थैया थै तत् . . . ! झांझ और झंगल की मधुर आवाजों के बीच गूंजते स्वर समूचे वातावरण को मुखरित किये दे रहे थे। रात के दो बज चुके थे और कमरे में बैठी अकेली मैं, चाय की राह देख रही थी। तभी भीखू आया और मुझे जीभ चिढ़ाकर बाहर चला गया। कुछ ही मिनटों बाद वह फिर कमरे में आया। इस समय वह स्त्री-वेश में था। यद्यपि वह चुनरी नहीं पहने था, फिर भी उसने लज्जित होने का जो नारी-सुलभ अभिनय किया, उसे देखकर मैं भी शरमा गयी !

भीखू 'भवैया' था, अर्थात सौराष्ट्र के लोकप्रिय नृत्य 'भवाई' में स्त्री का अभिनय करनेवाला नर्तक ! और, मैं 'भवाई' देखने ही उस छोटे-से गांव में गयी थी।

भवानी का प्रसाद और 'भवाई'

'भवाई' को, जो एक लोक नाट्य-कला है, 'संपूर्ण नाट्य-मंच' अथवा 'टोटल थियेटर' भी कहा जाता है। सुना जाता है कि लगभग ६२५ वर्ष पूर्व सन १३५१ से सन १३६१ के मध्य इस नृत्य की उत्पत्ति हुई थी। इस नृत्य की उत्पत्ति के साथ एक मर्मस्पर्शी घटना भी जुड़ी हुई है।

कहते हैं, मुगल-शासन के दिनों में उंझा गांव के पटेल हेमा की बेटी गंगा को

ऊपर : नर्तकी की भूमिका में एक भवैया

जबरन राजधानी ले जाया गया। गांव के पुजारी से यह अन्याय सहन न हुआ। उसने गंगा को गांव वापस लौटा लाने का संकल्प किया। वह शीघ्र राजधानी गया। वहां उसने बादशाह से भेंट की और उसे सारी घटना की सूचना देकर कहा, "गंगा मेरी बेटी है। उसे वापस किया जाए।" बादशाह ने तुरंत गंगा को मान-सहित वापस लौटाने का निर्देश दिया, पर विदा करने से पूर्व यह जानने के लिए कि गंगा पुजारी की ही बेटी है, बादशाह ने पुजारी और गंगा को एक थाल में भोजन करने के लिए कहा।

पुजारी क्षणभर के लिए सोच में पड़ गया, पर उसने तत्काल निर्णय कर लिया कि गंगा को बचाने के लिए वह उसके साथ भोजन करेगा। और उसने गंगा के साथ एक थाल में भोजन किया।

गंगा को लेकर पुजारी गांव लौटा, तो उसकी गंगा के साथ भोजन करने की सूचना पाकर, गांव के ब्राह्मण-वर्ग ने उसका बहिष्कार कर दिया।

अंततः गांव के अब्राह्मण किसान-परिवारों ने पुजारी और उसके परिवार को आश्रय दिया।

पुजारी भवानी का भक्त था। उसने भवानी की प्रतिमा के आगे भक्ति-भाव से अपनी अंतर्व्यथा कही। भवानी पुजारी पर प्रसन्न हुई, तब उसने उसे अपनी चुनरी, चोली और चूड़ियां देकर कहा, "भक्ति भाव से मेरी उपासना करनेवाला न कभी भूखा मरेगा, और न कभी कष्ट ही पाएगा।" फिर आगे कहा, "मेरी दी हुई वस्तुओं को अपनाकर संसार में विचरो।"

तीन सौ साठ वेश नाटक

कहते हैं, पुजारी ने तीन सौ साठ वेशों के

भवाई में हास-परिहास के क्षण





जीवंत अभिनय के साथ चुटीले संवाद—भवाई की एक विशेषता

एक-अंकीय नाटक लिखे। इन नाटकों की यह खूबी थी कि हर नाटक अपने आप में पूर्ण लगता था।

'भवाई' नृत्य-नाटक की एक विशेषता यह है कि उसमें आज भी महिलाओं को भ.ग लेना निषिद्ध है।

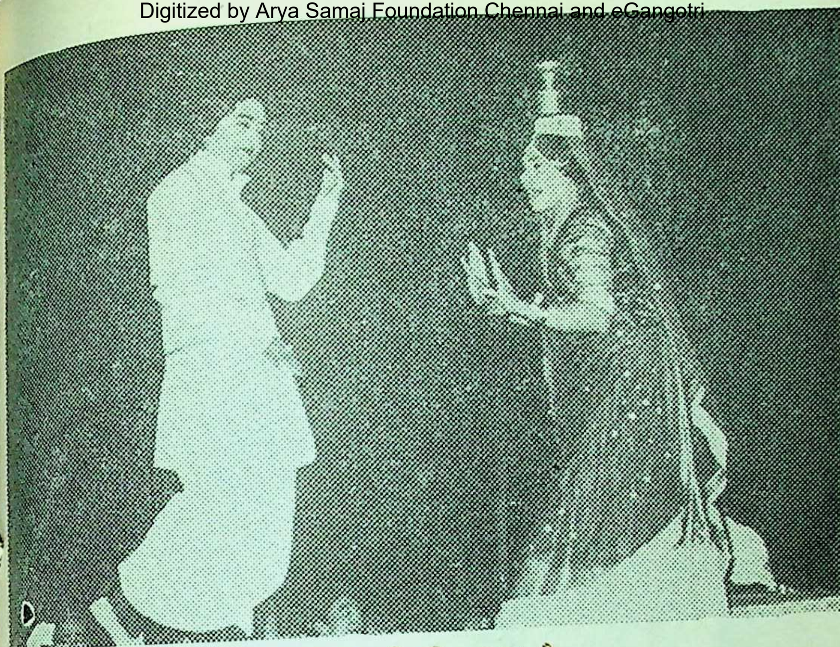
'भवाई' लोक-नृत्य आज एक परंपरागत पारिवारिक व्यवसाय बन गया है। 'भवाई' प्रस्तुत करनेवाला 'भवैया' कहलाता है और एक 'भवाई-दल' में एक ही परिवार के सदस्य होते हैं। एक दल में दस से तीस तक सदस्य होते हैं। पूरा दल छह-सात महीने अपने 'यजमान-गांवों' में घूम-घूमकर नृत्य दिखाकर जीवन-यापन करता है।

लोक-नाट्य के वाद्य

भवाई नृत्य के साथ बजनेवाले वाद्यों में भूंगल, झांझ, हारमोनियम और तबला प्रमुख हैं। इनमें भूंगल अनिवार्य है। कभी-कभी ढोलक का प्रयोग भी होता है। 'भवाई' लोक-नृत्य की एक अपनी शब्दावली है, जैसे गावणु, भवाई वेश, और आपणु।

गावणु : किसी भी गांव में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने के पूर्व 'भवाई-दल' आमंत्रितों के समक्ष गणेश और भवानी की स्तुति करते हैं और अपने नृत्य का नमूना पेश कर सभा-प्रमुख से पूछते हैं कि वह कौन-सा नृत्य देखना चाहेगा।

भवाई वेश : 'भवाई' लोक-नृत्य में सर्वप्रथम गणेश का वेश धरे 'भवैया' आता है और फिर ब्राह्मण-महाराज। गणेश के बाद श्याम-रूपा 'काली' आती है। काली उपस्थित समूह को आशीर्वाद देती है।



नृत्य भवाई की आत्मा है

इस संबंध में 'भवाई' की एक विशेषता उल्लेखनीय है। 'गणेश' का अभिनय करनेवाला 'भवैया' अधिक 'मेक अप' नहीं करता, केवल पूजा का थाल लिये सामने आता है और दर्शक समझ लेते हैं कि वह गणेश है। प्रेक्षक के साथ कलाकार का सहज तादात्म्य 'भवाई' की सबसे बड़ी सफलता है।

आपणुं : अर्थ है, प्रवेश ! 'भवाई' में पात्रों का प्रवेश बिना संगीत-नृत्य के नहीं होता। झांझ-तबले की ध्वनि के साथ कलाकार का प्रवेश अजीब समां बांधता है।

'भवाई' लोक-नृत्य का एक आवश्यक पात्र है, डागला--अर्थात विदूषक, जिसका काम ही है हंसना और हंसाना !

'भवाई' और शास्त्रीय नृत्य एवं राग

भवाई लोक-नृत्य एवं संगीत में शास्त्रीय नृत्यों एवं संगीत का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। नृत्य में कथकली का प्रभाव है, तो संगीत पर देस, विहाग, मारू, मांड-जैसे रागों का।

'भवाई' को सौराष्ट्र का आदि लोक-नाट्य भी कहा जाता है। गांवों में सिनेमा व सस्ते मनोरंजनों की सहज उपलब्धि ने इस लोक-नाट्य के लिए एक खतरा उत्पन्न कर दिया है। यह एक चिंता का विषय है।

--लालजीकृपा, १६, प्रहलाद प्लाट्स, राजकोट, गुजरात

स्वर्ग का घोड़ा धरती से अलग है

● नवीन खन्ना

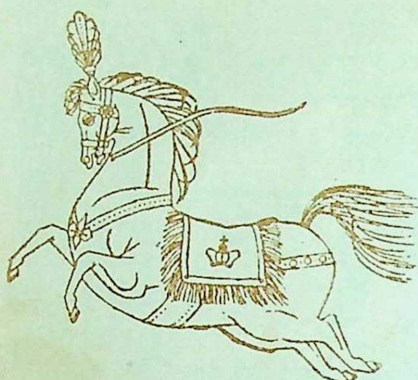
कला जैसे-कोमल तत्त्व में, आधुनिक सरकारी-तंत्र का हस्तक्षेप बहुत अजीब लगता है। लेकिन, अब इसे एक आवश्यकता माना जाने लगा है! दूसरे विश्व-युद्ध के बाद से; यह महसूस किया जाने लगा था, कि सरकार और कला एक-दूसरे से काफी दूर हट चुके हैं। जन-कल्याण का बहाना लेकर सरकारी इमारतें मात्र उपयोगिता की वस्तुएं बनकर रह गयी हैं।

प्रत्येक जन-निर्माण कार्य में तीन आवश्यक तत्त्वों का उचित सम्मिश्रण होना चाहिए—'उपयोगिता', 'निर्मिति' और 'प्रतीति'। यानी जो उपयोगी हो; निर्माण में प्रयुक्त आवश्यक उपकरण उचित मात्रा में, उचित स्थान पर लगे हों, और जो देखने में भी सुंदर प्रतीत हों। किंतु आधुनिक यंत्र-युग में प्रवेश करते ही, केवल उपयोगिता और निर्मिति पर ही जोर दिया जाने लगा तथा आवश्यक तत्त्व के रूप में 'प्रतीति' को बिलकुल नजरअंदाज कर दिया गया। बाद में यह महसूस किया जाने लगा कि वर्तमान सरकारी इमारतों से लेकर बड़े-बड़े बांध अथवा ताप-बिजलीघर, इन सबमें मानवीय-आत्मा का सर्वथा लोप हो गया है। ऐसी स्थिति में, यदि प्रकृति की भांति मशीन का भी मानवीकरण किया जाने लगा, तो मानव-समाज कई प्रकार की विसंगतियों और मनोविकारों से ग्रसित हो जाएगा।

मशीन का मानवीकरण होने से 'मानव', मशीन के साथ अपने संबंध जोड़ने लगता है। धीरे-धीरे मशीन की प्रकृति उस पर हावी होने लगती है। मानव नितांत एकाकी बन जाता है। एक-दूसरे से निर्लिप्त पुर्जे की तरह, एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए मानव, मशीन का ही एक अंग बन जाता है। यही एक प्रमुख अंतर है—किसान और कारखाना-मजदूर में!

म्यूरल-कला की शुरूआत

'म्यूरल आर्ट', यानी—आधुनिक युग में सरकारी इमारतों की दीवारों पर कला-प्रदर्शित करने की प्रक्रिया इसी बात को ध्यान में रखकर प्रारंभ हुई। प्रयोगा-



कलाकार द्वारा निर्मित घोड़े का चित्र

त्मक शुरुआत के रूप में संयुक्तराष्ट्र संघ का कार्यालय एक उचित चयन था। विश्व-संस्था का भवन होने के कारण इस पर किसी विशिष्ट शैली अथवा वास्तुविद का बंधन नहीं था, वल्कि इसमें प्रयोग की भी काफी गुंजायश थी। म्यूरल-कला के रूप में, इस भवन की सामने की दीवार पर सिरेमिक, यानी चीनीमिट्टी के रंगीन टुकड़ों द्वारा 'चंद्र' शीर्षक से चित्र-कला प्रदर्शित की गयी, जिसे जुआन मिरो और लारेंस आर्टिगस-जैसे उच्च कोटि के कलाकारों ने संवारा।

इसके बाद तो विश्व की सभी राजधानियों में 'म्यूरल-कला' अधिकांश सरकारी भवनों में नजर आने लगी।

नेहरू का दिशा-निर्देश

भारत में सर्वप्रथम, श्री नेहरू ने सन १९५३ में सरकारी भवनों में कला की आवश्यकता पर जोर दिया। उनका कहना था, कि इतिहास में हमारी इमारतें कला की दृष्टि से शून्य और नगण्य मानी जाएगीं। क्यों न हम इनका निर्माण इस दृष्टि से करें, जिससे ये उपयोगिता के अतिरिक्त, कला का भी प्रदर्शन कर सकें। साथ ही आम आदमी, जिसका दैनिक जीवन में कला से कोई विशेष संबंध नहीं होता, वह भी कला के संपर्क में आकर इनके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर सके।

उसी समय यह निर्णय भी लिया गया कि प्रत्येक सरकारी इमारत में खर्च का दो प्रतिशत, इमारत में कला के समावेश पर रखा जाए। इसलिए सरकार द्वारा एक 'अलंकरण-समिति' की स्थापना भी की गयी। केंद्रीय सार्वजनिक निर्माण कार्य के प्रमुख अभियंता के सभापतित्व में गठित इस समिति के अन्य सदस्य, इसी संस्था के मुख्य-आर्किटेक्ट, निर्माण से संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधि, ललित-कला अकादमी का सचिव तथा कला के क्षेत्र में प्रतिष्ठित (दो से तीन) अन्य व्यक्ति थे।

समिति ने गठित होते ही द्रुतगति से कार्य करना प्रारंभ कर दिया। सज्जा-कार्य के लिए सर्वप्रथम, नयी दिल्ली के विज्ञान भवन को चुना। इसके प्रवेश-कक्ष की चारों दीवारों के लिए, अलग-अलग शीर्षक चुने गये। प्रत्येक दीवार का सज्जा-कार्य अलग-अलग कलाकार को सौंपा गया। ये कलाकार थे—सतीश गुजराल,

श्यावक्स चावड़ा, के. के. हेब्बर और ज्योति भट्ट। दीवारों पर बनाये जानेवाले, विषय थे—'अकबर का दीन-ए-इलाही', 'ह्वेनसांग की भारत-यात्रा', फूलवालों की सैर' और 'होली'।

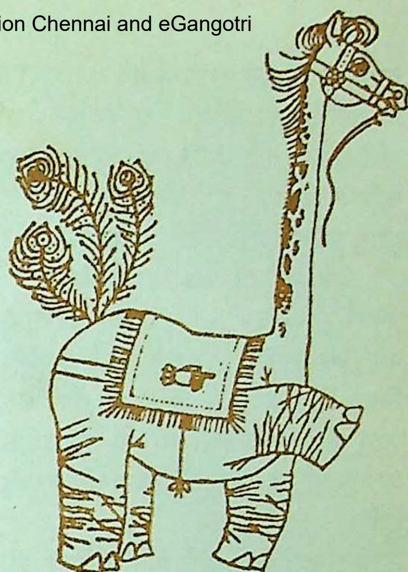
अलंकरण-समिति का रवैया

अलंकरण-समिति के कार्य का तरीका बड़ा अजीब था। वह इतने उच्च-कोटि के कलाकारों को भी मात्र पेंटर ही माने हुए थी। इन कलाकारों को अपनी कला का शीर्षक तक स्वयं चुनने का अवसर नहीं दिया गया। इसके बाद समिति को यह गलतफहमी हो गयी कि उपरोक्त कलाकारों को भारतीय इतिहास का प्रारंभिक ज्ञान भी नहीं है। कलाकारों के 'ज्ञान-वर्धन' के लिए समिति ने एक पुरातत्ववेत्ता तथा एक आर्किटेक्ट की नियुक्ति की सिफारिश कर दी। इसके अतिरिक्त कलाकारों को निर्देश दिया गया कि वे अपनी 'म्यूरल पेंटिंग' का रंग भरा नमूना, पहले समिति को दिखाकर अनुमोदित करायें।

जब कलाकार और सरकारी अफसरशाही, आमने-सामने बैठे हों, और अफसर की कुरसी ऊंची हो, तो उसका रुख कैसा होता है, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

घोड़े का नाम जिराफ

इस विषय में जोर्न पेटर्सन की एक कथा बहुत प्रासांगिक है—लाखों वर्ष पहले की बात है—सृष्टि की रचना नयी-



अफसर के निर्देश पर बना चित्र

नयी हुई थी। उस समय सरकारी कार्यालय में कार्यरत एक कलाकार को निर्देश मिला कि एक ऐसे जीव की रचना की जाए, जो स्फूर्ति, गर्व, आवेग और गौरव का प्रतीक हो। महीनों, दिन-रात जागकर, कलाकार ने एक नये जीव-'घोड़े' की रचना की। उसकी आंखों से स्फूर्ति, गर्दन से गर्व, टांगों से गति और पूंछ से गौरव प्रदर्शित हो रहा था।

वह अपनी रचना अपने अफसर को दिखाने ले गया। अफसर बोला, "इसकी टांगें शरीर के हिसाब से बहुत पतली हैं।" उसके बाद उस जीव के नीचे, हाथी की टांगे लगा दी गयीं। इससे औरों ने एतराज किया, "यह दूर तक नहीं देख सकता।" इस आपत्ति पर विचार किया

गया। फलस्वरूप जिराफ की गरदन लगा दी गयी। मंत्री महोदय ने स्वयं इसे देखा और बोले, "यह लोगों पर अपना प्रभाव नहीं छोड़ता।" हर कोई इससे सहमत हुआ, उस पर मोर की पूंछ लगा दी गयी।

अंत में जब इस विचित्र जीव का नमूना विशेषज्ञ समिति को दिखाया गया, तो उसने इसे यह कहकर रद्द कर दिया कि यह जीव किसी भी निर्देशित भाव को, व्यक्त नहीं कर पा रहा। इस आधार पर कलाकार की पदावनति कर दी गयी।

शायद ऐसी ही परिस्थितियों में, सतीश गुजराल और ज्योति भट्ट को विज्ञान-भवन के सज्जाकार्य से हटा लिया गया। सतीश गुजराल को होटल जनपथ के स्वागत-विश्राम कक्ष को सजाने का निर्देश दिया गया। इसके पश्चात सतीश गुजराल को चंडीगढ़ हवाई अड्डे के यात्री-कक्ष को सजाने का कार्य सौंपा गया।

होटल जनपथ की सज्जा के विषय में सतीश गुजराल ने पहले तो यह कहा कि ऐसा कार्य मेरे विषयों के अनुरूप नहीं है। लेकिन बाद में जब वह सहमत हो गये, तब उनकी कला के नमूने अलंकरण-समिति के गले में नहीं उतरे। बाद में यही कार्य अमीना अहमद और हुसैन को सौंपा गया। लेकिन दोनों के नमूने समिति ने रद्द कर दिये।

इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न होने के कारण कई सवाल उठते हैं। इमारतों में 'म्यूरल-आर्ट' जैसी कला की क्या सचमुच में आवश्यकता है, या इसका केवल दार्शनिक पक्ष ही है? क्या आधुनिक कला और आर्किटक्चर का संपूर्ण भवन में ही समन्वय नहीं किया जा सकता? एक विचार यह भी है कि बाहरी आवरण के रूप में म्यूरल-पेंटिंग या कला, इमारत के भाव को एकात्म नहीं कर पाती। इसमें आरोपित भाव और परायापन स्पष्ट झलकता है। इसके स्थान पर कलाकारों और वास्तुशिल्पियों द्वारा भवन का खाका ही इस प्रकार बनाना चाहिए, जिससे इमारत के मूल में ही कला और शिल्प दोनों तत्वों में समन्वय प्रतीत हो। इसी उद्देश्य से अमरीका-जैसे कई विकसित देशों में इमारतें बनायी गयी हैं, लेकिन उनमें भी एक अधूरेपन का आभास होता है। उसी आत्मिक-भाव का अभाव...।

इमारतों में दोनों ही तत्वों का सम्मिश्रण हो, तो भवन स्वयं में कलाकृति होने के अतिरिक्त कला से भी युक्त हो जाएगा। इससे भवन के भीतर की कला तथा आरोपित कला, दोनों में समन्वय रहेगा। ऐसी इमारतें आनेवाले काल में उपयोगिता के अतिरिक्त कला के नमूने के रूप में गिनी जाएगी।

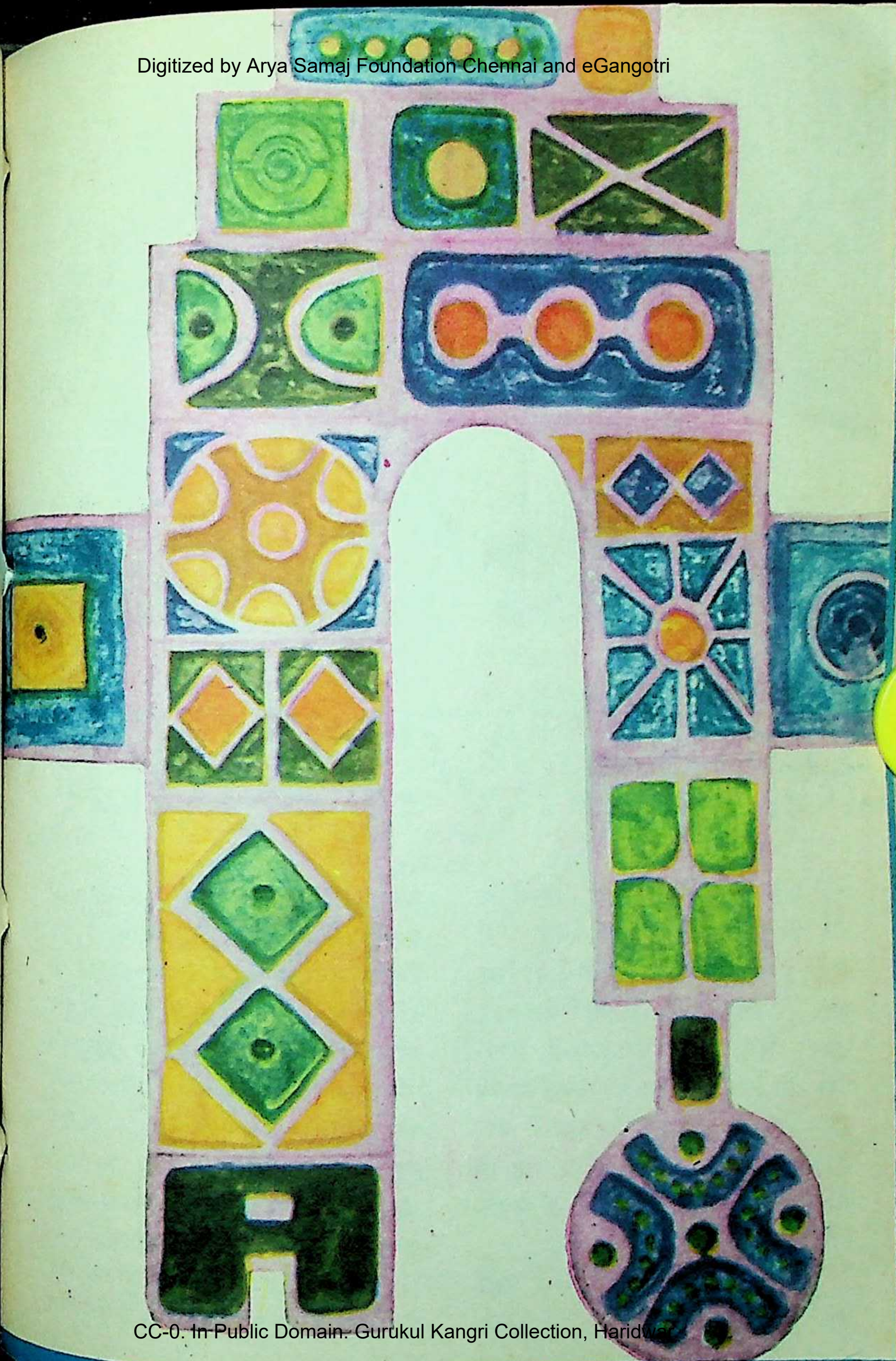
—ई-१२८ कालकाजी,
नयी दिल्ली-११००१९

सामने के पृष्ठ पर दिल्ली में म्यूरल-कला का दृश्य

ी कला की क्या
है, या इसका
है ? क्या आधु-
क्चर का संपूर्ण
किया जा सकता ?
बाहरी आवरण
ा कला, इमारत
र पाती। इसमें
रायापन स्पष्ट
ा पर कलाकारों
रा भवन का
नाना चाहिए,
ही कला और
वय प्रतीत हो।
से कई विकसित
यी हैं, लेकिन
आभास होता
अभाव...।
ही तत्वों का
ं में कलाकृति
भी युक्त हो
तर की कला
ों में समन्वय
वाले काल में
ला के नमूने

कालकाजी,
ी-११००१९

पर दिल्ली
ा का दृश्य





क्या 'डेटिंग' एक अपराध है?

वे कहीं भी दिख जाएंगे ! पार्क के किसी एकांत कोने में, रेस्तरां में अंधेरे से घिरी टेबल के इर्द-गिर्द या फिर भीड़ भरे बस-स्टाप पर दुनिया से बेखबर ! उनकी आंखें, जैसे 'कोलाज' हैं, तरह-तरह की भावनाओं के ! उनमें विश्वास की दृढ़ता है, प्रेम की मादकता है और तलाश है, अपने सुंदर और सुहावने भविष्य की ! ये 'डेट्स' हैं। 'डेट्स' अर्थात डेटिंग करनेवाले !

भारत में आजकल पश्चिमी लहर चल रही है। इस लहर के कारण भारतीय युवा पीढ़ी के रहन-सहन में क्रांतिकारी परिवर्तन, तौर तरीकों में एक विशेष बदलाव और सोचने-समझने के दृष्टिकोण में आधुनिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है । इन आधुनिक परिवर्तनों से अच्छे व बुरे, दोनों प्रकार के परिणाम सामने आ रहे हैं। हमारा एक बड़ा युवा वर्ग पश्चिम के अनुकरण को ही जीवन की सफलता समझने लगा है। इन्हीं अनुकरणों में से एक है—'डेटिंग।'

'डेटिंग' शब्द का वास्तविक अर्थ है, किसी निश्चित स्थान, व तिथि पर

मुलाकात, परंतु आजकल इस शब्द का अभिप्राय दो विरोधी सेक्सवाले व्यक्तियों की मुलाकात से समझा जाता है।

अब विचारणीय तथ्य यह है कि 'डेटिंग' का प्रचलन इतनी तेजी से क्यों बढ़ रहा है? क्या भारत में प्रचलित मान्यताओं को देखते हुए यह उचित है? क्या इसे भारतीय रूढ़िवादिता का उन्मूलन करनेवाला तत्त्व समझकर ग्रहण कर लेना चाहिए?

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर हमने एक प्रश्न-पत्र तैयार किया। इस प्रश्न-पत्र के आधार पर हमने दिल्ली विश्वविद्यालय व वाई. एम. सी. ए. क्षेत्रों में सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान जिन युवक व युवतियों के विचार लिये गये, उनकी आयु १७ से २५ वर्ष के मध्य थी।

चक्कर 'डेटिंग' का

सर्वेक्षण से पता चला कि ७८ प्रतिशत युवतियां व युवक विद्यार्थी 'डेटिंग' को आवश्यक मानते हैं। इनमें से कई विद्यार्थी ऐसे भी थे, जिन्हें 'डेटिंग' का अभी तक प्रयोगात्मक अनुभव नहीं था। हमने जिन विद्यार्थियों से भेंट की, उनमें से ७० प्रतिशत मध्यम आय वर्ग-समूह, व ३० प्रतिशत उच्च आय वर्ग-समूह से संबंधित थे। उच्च आय वर्ग से संबंधित सभी युवक व युवतियां 'डेटिंग' के पक्ष में थे। इसके विपरीत मध्यम आय-वर्ग की कुछ युवतियां ऐसी भी मिलीं, जिन्हें इन 'चक्करों' में पड़ने का समय ही नहीं मिल पाता।

• अंशुमाली

हमारा एक प्रश्न था—"'डेटिंग' क्यों आवश्यक है?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए एक छात्रा ने कहा, "इससे दो विपरीत सेक्सों को, जो कि भारतीय मान्यताओं के कारण दूर बने रहते हैं, करीब से जानने का अवसर मिलता है। विपरीत सेक्सों की आपसी झिझक मिटती है और आत्म-विश्वास बढ़ता है।"

इसी प्रश्न के उत्तर में एक अन्य छात्र ने कहा, "समाज ने दोनों पक्षों के मन में एक दूसरे के प्रति गलत धारणा पैदा कर रखी हैं। 'डेटिंग' को यदि हम पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेंगे तो एक दिन ऐसा आएगा, जब डी. टी. सी. की बसों में 'ईव टीजिंग इज ऐन आफेंस' का नोटिस नहीं लगाना पड़ेगा।"

पूछे गये प्रश्न

(१) 'डेटिंग' से आप क्या समझते हैं?

(२) क्या 'डेटिंग' आवश्यक है? यदि है तो क्यों?

(३) आप किस उद्देश्य से 'डेटिंग' करेंगे?

(४) आप किस स्थान को मिलने के लिए प्राथमिकता देंगे?

(५) 'डेटिंग' में होनेवाले खर्च को वहन करने के लिए आपके पास कौन-कौन से साधन हैं?

(६) आप किस स्तर व व्यक्तित्ववाले व्यक्ति के साथ 'डेटिंग' करेंगे?

कुछ लोगों का विचार था कि 'डेटिंग' यौन-संबंधी पूर्व-अनुभव पाने का एक अच्छा साधन बन सकता है। कुछ लोगों का दावा था कि 'डेटिंग' को प्रश्रय देकर हम दहेज-प्रथा को मिटा सकते हैं।

जब हमने 'सर्वेक्षण' के दौरान प्राप्त विचारों का विश्लेषण किया तब पाया कि 'डेटिंग' के चार मुख्य उद्देश्य ये हो सकते हैं—समय व्यतीत करना अर्थात मित्रता के लिए 'डेटिंग' करना, भावी जीवन-साथी का चुनाव, आर्थिक स्थिति सुधारने व शारीरिक तुष्टि के लिए !

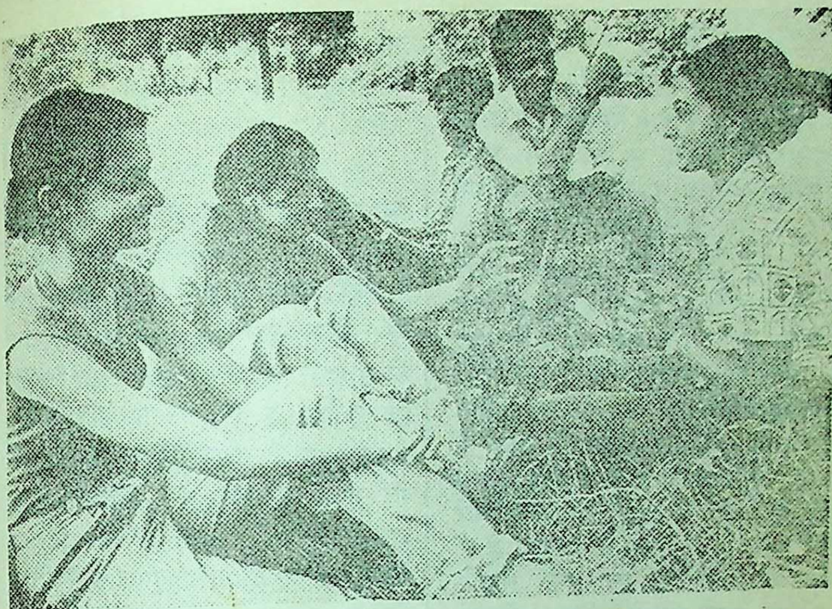
समय बिताने का साधन

केवल समय बिताने के लिए 'डेटिंग' करनेवालों में युवकों की संख्या ६८ प्रतिशत थी तो युवतियों की ३५ प्रतिशत। भावी जीवन-साथी के चुनाव के लिए २२ प्रतिशत युवक व ६२ प्रतिशत युवतियां 'डेटिंग' करते हैं। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए 'डेटिंग' करनेवालों की संख्या शून्य थी। यौन-अनुभव के उद्देश्य से 'डेटिंग' करनेवालों के संबंध में हमें महिला-वर्ग से ठीक-ठीक आंकड़े नहीं प्राप्त हो पाये। इसका कारण यह हो सकता है कि लड़कियां इस संबंध में खुले रूप से चर्चा नहीं करतीं। लड़कों में १० प्रतिशत व लड़कियों में केवल ३ प्रतिशत ने यह स्वीकार किया कि वे उपरोक्त बातों के लिए 'डेटिंग' करते हैं।

स्थान का चुनाव

'डेटिंग' के लिए स्थान का चुनाव भी एक महत्त्व रखता है। सामान्यतः 'डेटिंग' में मुलाकात के लिए एकांत स्थान चुना जाता है, पर एकांत का अर्थ यह नहीं कि जंगल में मिला जाए। इसका अर्थ यही है कि परिचितों से दूर एक ऐसा स्थान, जहां बातचीत की जा सके। 'डेटिंग' करनेवालों के लिए एक शब्द है—'डेट्स'। आमतौर पर ये 'डेट्स' सिनेमा हाल, रेस्तरां, पार्क आदि स्थानों पर बातें करते हुए दिखायी दे जाते हैं। कुछ लोगों को छोड़कर लगभग सभी लोगों ने रेस्तरां को मुलाकात के लिए प्राथमिकता दी। सिनेमा हाल को लड़कों द्वारा दूसरा और लड़कियों द्वारा तीसरा स्थान दिया गया। पार्क को अधिकतर लड़कियों ने दूसरा व अधिकतर लड़कों ने तीसरा स्थान दिया। मिलने के लिए अन्य स्थानों को प्राथमिकता देनेवालों में से कुछ ने दिलचस्प उत्तर दिये। जैसे एक छात्रा ने, जो जीवन-साथी चुनने के उद्देश्य से 'डेटिंग' करती है, लाइब्रेरी को मिलने के लिए उपयुक्त स्थान बताया। उसके अनुसार, "किताबों की 'रैक्स' के पीछे खड़े होकर घंटों बातें कीजिए, कोई टोकनेवाला नहीं है।"

'मॉड' दिखनेवाले एक युवक का विचार था,—"प्रत्येक युवक कम-से-कम एक ऐसी युवती अवश्य चाहता है, जिसे उसकी 'गर्ल फ्रेंड' कहा जा सके, और फिर विपरीत सेक्स से मित्रता करना तो हमारे 'मॉड' होने का परिचायक है। फिर



परस्पर विश्वास का सूत्रपात--सह-शिक्षा ने छात्र-छात्राओं के मध्य खड़ी पुरानी दीवार प्रायः तोड़-सी दी है। उपरोक्त चित्र में मनाली में आयोजित एक शिविर में भाग लेकर लौटे दिल्ली के छात्र-छात्राएं

क्यों न ऐसी जगह पर मिला जाए, जहां अन्य लोग देखकर ईर्ष्या करें। ऐसी कई जगहें हैं। मसलन–बस-स्टाप।"

मौज मस्ती बनाम 'डेटिंग'

'डेटिंग' के साथ एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न जुड़ा हुआ है—खर्च का! 'मौज-मस्ती' यदि करनी है तो खर्च भी उठाना पड़ेगा। 'डेटिंग' के लिए पैसा जुटाने का एक मुख्य स्रोत है—जेब-खर्च, अर्थात छात्र-छात्राओं को अभिभावकों द्वारा दिया जानेवाला खर्च। अधिकांश छात्र 'जेब-खर्च' से ही 'डेटिंग' का खर्च पूरा करते हैं। कुछ छात्रों ने दावा किया कि वे अपने 'पार्टनर' को कुछ भी खर्च करने का अवसर नहीं देते! कुछ छात्र-छात्राएं बोझ को बराबर-बराबर बांटने में विश्वास रखते हैं। हमने मध्यम आय-वर्ग से आनेवाले छात्रों से सवाल किया, "क्या उन्हें इतना जेब-खर्च मिल जाता है कि उससे मौज-मस्ती की जा सके?"

एक उत्तर मिला, "क्या जरूरी है कि 'फाईव स्टार' होटलों में मिला जाए और टैक्सियों में घूमा जाए? हम मध्यम-वर्गीय लोगों के लिए बसें व सस्ते रेस्तरां भी तो बने हैं।"

कुछ छात्र 'पार्ट टाइम' काम या

डेटिंग : सुखद या दुखद

सर्वेक्षण के दौरान हमने अनेक छात्र-छात्राओं से 'डेटिंग' के संबंध में उनके व्यक्तिगत अनुभव जानने चाहे, तो कई सुखद व कटु तथ्य सामने आये।

दक्षिण दिल्ली-विश्वविद्यालय परिसर के एक महिला महाविद्यालय की एक छात्रा के अनुसार, 'डेटिंग' करने से पहले वह लड़कों को 'हौवा' समझती थी। किसी लड़के के समीप आ जाने पर उसे पसीने छूटने लगते थे पर 'डेटिंग' के संबंध में उसका अनुभव काफी सुखद रहा। इसी छात्रा के शब्दों में, "सही मायनो में मुझे अपने अस्तित्व का पता अब चला है।" 'डेटिंग' को मनोरंजन का साधन माननेवाली यह छात्रा एक से अधिक व्यक्तियों से मित्रता करना पसंद करती है।

शक्की-मिजाज साथी

इसके विपरीत, उत्तर दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर के हॉस्टल में रहनेवाली एक शोध-छात्रा का अनुभव बहुत कटु रहा। उसकी मित्रता एक मध्यमवर्गीय युवक से हो गयी। युवक कुछ शक्की-मिजाजवाला व्यक्ति था। उसे इस छात्रा का किसी अन्य व्यक्ति से मिलना-जुलना कतई पसंद न था। अतः रुष्ट होकर उसने उसे पत्रों के माध्यम से संबंधों का प्रचार करने की धमकी देकर डराया।

यह छात्रा युवकों के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण रखने लगी है। हमारे यह पूछने पर कि यदि अब कोई युवक सच्ची मित्रता के साथ अपना हाथ बढ़ाये तो क्या आप उसे स्वीकार कर लेंगी? उत्तर था, "क्यों नहीं...पांचों उगलियां एक-सी नहीं होतीं।"

'मॉडलिंग' कर अच्छी आय प्राप्त कर लेते हैं और इस आय का एक बड़ा भाग 'डेटिंग' पर खर्च करते हैं।

खोपड़ी में अक्ल भी होनी चाहिए

क्या प्रेम की भांति 'डेटिंग' भी जाति, धर्म या स्तर एवं व्यक्तित्व की सीमा में नहीं बंधती? सर्वेक्षण से पता चला कि 'डेटिंग' के लिए स्तर व व्यक्तित्व की उतनी ही अहमियत है, जितनी कि विवाह के लिए। स्तर को विशेष रूप से ध्यान में रखकर 'डेटिंग' करनेवालों की संख्या लगभग ८५ प्रतिशत थी। बराबर स्तर के व्यक्तियों से मित्रता करने के लिए तो सभी युवक व युवतियां तैयार थे, फिर भी कुछ युवकों के अनुसार, 'फीचर्स', व 'स्ट्रक्चर' होना चाहिए, वह चाहे किसी भी स्तर में मिले। इसके विपरीत कुछ युवतियों का कहना था, 'पर्सनैलिटी' को लेकर क्या चाटना है? खोपड़ी में अक्ल भी होनी चाहिए।"

अपने वर्तमान स्तर से उच्च स्तर-वाले व्यक्तियों के साथ 'डेटिंग' करने-वालों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की संख्या अधिक थी।

सर्वेक्षण में भाग लेनेवाले लोगों ने व्यक्तित्व के संबंध में विचारों की समानता पर विशेष रूप से जोर दिया। एक ओर जहां युवकों में शिक्षित, आधुनिक विचारोंवाली, मध्यम कद, स्वयं से कम आयु व गौर-वर्ण युवतियों की मांग थी, वहां दूसरी ओर युवतियों ने उच्च शिक्षित,

स्वस्थ,लंबे, आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ व मधुर व्यवहारवाले युवकों को प्राथमिकता दी।

भावना दूषित नहीं

हमारे उस सर्वेक्षण का निष्कर्ष यह निकला कि 'डेटिंग' का उद्देश्य, उसकी भावना इतनी दूषित नहीं है, जितना समझा जाता है। इसे दूषित समझने का एक कारण यह है कि 'डेटिंग' का दुरुपयोग किया जाता है। देखा गया है कि एक पक्ष, दूसरे पक्ष की कमजोरियों का फायदा उठाता है और इसका शिकार मुख्यतः महिला-पक्ष ही होता है।

हमारा शिक्षित व उच्च वर्ग 'डेटिंग' को उचित व ठीक समझता है। चाहे हमारे रीति-रिवाज बदल गये हों लेकिन हम अभी तक कुछ मान्यताओं, परंपराओं, आदर्शों, सत्यों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों व कुछ सीमाओं में बंधे हैं। इनमें एकदम से परिवर्तन करना या अलग हटकर कार्य करना काफी मुश्किल है।

यदि सेक्स की भावना को लेकर 'डेटिंग' की जाती है तो हमारे विचार में 'डेटिंग' अपना वास्तविक अर्थ व महत्त्व खो देगी। अपने सर्वेक्षण के दौरान हमने यह भी अनुभव किया कि कुछ लोग आधुनिकता का मुखौटा-भर लगाये फिरते हैं। वास्तव में अंदर से वे खोखले व आधार-रहित होते हैं। उनके पास अपने लिए एक पैमाना होता है, और दूसरों के लिए दूसरा!

—सै. ८, फ्लैट नं. १२०६, रामाकृष्णापुरम, नयी दिल्ली-११००२२

वचन-वीथी

जो दीपक को अपने पीछे रखते हैं, वे अपने मार्ग में अपनी ही छाया डालते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

निर्धनता धीरज से, कुरूपता शील से, बुरा आहार भी गरम रहने से और पुराना वस्त्र भी स्वच्छ होने से शोभा पाता है।

—आचार्य चाणक्य

सावधानी, बुद्धिमानी की सबसे बड़ी संतान है।

—विक्टर ह्यूगो

साहस गया कि मनुष्य की आधी समझदारी उसके साथ गयी।

—एमर्सन

साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतक है।

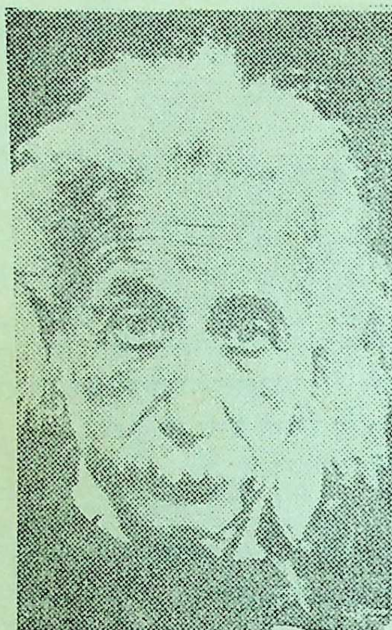
—गेटे

दुःख-दग्ध जगत और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।

—जयशंकर प्रसाद

एक महान उद्देश्य के लिए प्रयत्न में स्वतः ही आनंद है, सुख है और किसी अंश तक प्राप्ति की मात्रा भी है।

—जवाहरलाल नेहरू



बच्चा घृणा से चीखता हुआ घर के अंदर की ओर लपका --"सिपाही भी कोई आदमी होते हैं। ये तो मशीन हैं, मशीन, मुझे यहां से दूर ले चलो। मैं ऐसी जगह जाना चाहता हूं जहां एक भी सिपाही न हो।" और वह बालक अपने वायलिन और गानों की मधुर धुनों में डूब गया।

कैसा रसिया

सुस्त अलबर्ट एक ओर गुमसुम संगीत प्रेमी था, तो दूसरी ओर गणित-जैसे नीरस विषय का पक्का रसिया। भाषा और जीव-विज्ञान उसकी पढ़ाई में रोड़े बनकर अटक गये। वह लगातार दो बार फेल हुआ।

यही बालक एक दिन महान दार्शनिक के रूप में लोगों के सामने आया। आइंसटीन

आखिर आइंस्टीन के दिमाग में क्या था?

● नीरा गर्ग

सैनिकों की टुकड़ी अस्त्र-शस्त्र के साथ शहर से गुजर रही थी। क्या बच्चा क्या बूढ़ा, वीरता से ओत-प्रोत हो गर्व अनुभव कर रहा था। अपने देश की सैन्य-शक्ति पर बच्चे उल्लासित स्वरों में अपनी आकांक्षाएं प्रकट करते हुए कह रहे थे--'बड़े होकर हम भी सैनिक बनेंगे।' वहीं दस-बारह बरस का एक बच्चा मां के साथ घर के ऊपर खड़ा गुमसुम सुस्त-सा ये सब देख रहा था। मां ने पूछा, "बेटा तुम ...।" बात पूरी भी न हुई थी कि

के 'सापेक्षवाद' (थ्योरी ऑव रिलेटी-विटी) ने पहले दर्शन की भूमि पर ज्यादा ख्याति अर्जित की, बाद में वैज्ञानिक के रूप में। आइंसटीन ने पहली बार कहा कि निरपेक्ष कुछ नहीं होता। विभिन्न अवयवों के, परिस्थितियों के आधार या सापेक्ष ही समय, मात्रा और गति की स्थिति होती है। यथा--दो जहाज एक ही गति से अगर समान दिशा में जाएं, तो हमें उनकी गति धीमी महसूस होगी, परंतु वे विपरीत दिशा में जाते हुए तेज गतिवाले

महसूस होंगे। आइंसटीन ने सिर्फ सिद्धांत ही दिये थे। प्रयोगात्मक आधार नहीं, पर यह सब बाद में प्रयोगों द्वारा खरा उतरता गया।

सीमित से असीमित

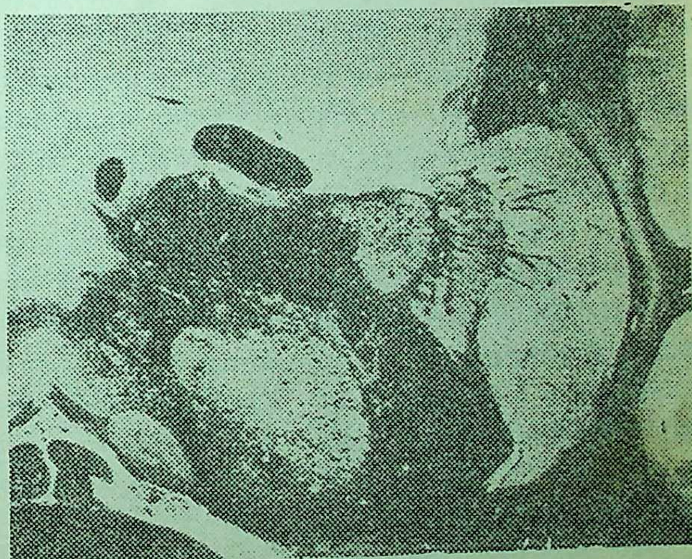
फोटो इलैक्ट्रिक इफैक्ट पर आइंसटीन को नोबल पुरस्कार मिला। इसमें बताया गया कि रेडियो-धर्मी तत्त्वों पर प्रकाश वेग से इलैक्ट्रान द्वारा प्रहार किया जाए, तो वह स्थायी तत्त्व बनने तक बराबर टूटता रहेगा, और इस विखंडन से अथाह शक्ति मिलेगी। सीमित आकृति में असीमित खुशहाली मिल सकेगी। मानव की विध्वंसक बुद्धि ने इस सिद्धांत का भी दुरुपयोग किया, हिरोशिमा—नागासाकी पर कहर ढाया। आज भी उस क्षेत्र के आस-पास के लोग रेडियो-धर्मी प्रभावों से मुक्त नहीं हुए हैं और अपाहिज होकर मानवीय क्रूरता की कहानी कह रहे हैं।

आइंसटीन का रोंआ-रोंआ इस विभीषिका से कांप उठा। उन्होंने सर्वप्रथम नाभिकीय निरस्त्रीकरण की गुहार लगायी।

केवल सिद्धांतों के, वह भी अकाट्य सिद्धांतों के बल पर दार्शनिक की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर किसको आश्चर्य न होगा। एक कौतूहल, एक जिज्ञासा सहज आइंसटीन के प्रेमियों में उभरी। आइंसटीन के दिमाग की उस विशेषता को चीन्हा जाए, जो आइंसटीन के माध्यम से संसार को हकबकाहट में डाल रही है।

आखिर दिमाग निकाला गया

आखिर आइंसटीन की मृत्यु के बाद



आइंसटीन के मस्तिष्क के एक भाग की कोशिका

उनका दिमाग निकाल लिया गया, अन्वेषण के लिए। लेकिन जैसा आइंसटीन का दिमाग रहस्यपूर्ण था, उसी प्रकार उस दिमाग से जुड़ी कथा भी कम रहस्य पूर्ण नहीं है। एक ओर यह सब ड्रामा लगता है, तो दूसरी ओर गहरी जिज्ञासा भी। आइए, देखें कब तक आइंसटीन के दिमाग को लेकर रहस्यपूर्ण नाटक खेला जाता रहेगा।

क्या महान मस्तिष्क के रहस्य उघड़ पायेंगे? मस्तिष्क की असाधारणता से चकित मनुष्य के आगे एक प्रश्न रह-रहकर उभरता है। क्या असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति और साधारण मनुष्य के दिमाग की बनावट में ही कुछ अंतर है? क्या विशिष्टता का सारा राज बनावट में है। या सब एक जैसे हैं? फिर कौन-सी चीज एक मनुष्य को महान विचारक वैज्ञानिक, दार्शनिक बना देती है, और एक आइंसटीन संसार को देती है।

दूसरा रहस्य शुरू होता है इस प्रश्न से--उस मनुष्य के मस्तिष्क के अध्ययन से संबंधित जो दुनिया का महानतम वैज्ञानिक और विचारक था--अल्बर्ट आइंसटीन

प्रिस्टन एन. जे. के. अस्पताल के पैथोलोजिस्ट डॉ. थामस एम. हार्वे ने २५ वर्ष पूर्व आइंसटीन के दिमाग

आइंसटीन का

आज आइंसटीन की ख्याति उनके विचित्र सापेक्षतावाद के कारण है। किंतु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनको नोबल पुरस्कार सापेक्षतावाद के बजाय 'प्रकाश-विद्युत प्रभाव' पर मिला। पुरस्कार देते समय उनके जिस कार्य को इस उपलब्धि के अनुरूप माना गया, वह इन शब्दों में लिखा गया—**'फॉर हिज कंट्रिब्यूशंस टु मैथेमेटिकल फिजिक्स एंड स्पेशली फॉर हिज डिस्कवरी ऑव द लॉ ऑव द फोटो इलक्ट्रिक एफेक्ट।'**

नोबल पुरस्कार के लिए शर्त है कि यह किसी ऐसे कार्य के लिए दिया जाए, जिससे जनता का विशेष हित हुआ हो। आइंस्टीन गणितज्ञ थे, गणित भी उस कोटि की, जिसके मूल्यांकन की क्षमता वैज्ञानिक जगत में उस समय प्रायः असंभव ही थी।

इसलिए १९०५ में प्रकाश विद्युत-प्रभाव संबंधी नियम को ही अधिक महत्ता दी गयी। यह १९०५ में प्रकाशित हुआ, इसी वर्ष दूसरा निबंध भी प्रकाश में आया, जो 'ब्राउनियन गति' के संबंध में था। इसी पर गहन अध्ययन के लिए फ्रांस के भौतिकवेत्ता जां पैरों को १९२६में नोबल पुरस्कार मिला। १९०५ के जून महीने में आइंस्टीन ने सापेक्षतावाद को जन्म देकर वैज्ञानिक जगत में न्यूटन की कमी को पूरा किया।

साधारण वेगों के लिए न्यूटन का

को तथा दूसरे सक्रिय अवयवों को उसकी मृत्यु के बाद वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निकाल लिया था। डॉ. हार्वे उस मस्तिष्क के वैज्ञानिक अध्ययन को लेकर अभी तक मौन साधे हुए हैं, और भी उनके साथी अध्ययन में लगे थे, सब इस बारे में कोई चर्चा नहीं करना चाहते।

'सापेक्ष सिद्धांत' प्रतिपादक के असाधारण मस्तिष्क रहस्य की ही भांति, उसके अध्ययन के परिणाम भी एक रहस्य बने हुए हैं। जैसा कि डॉ. हार्वे का कथन है कि आइंसटीन ने स्वयं इच्छा प्रकट की थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया जाए। डॉ. हार्वे कहते हैं कि वह अपने कार्य से संबंधित कुछ भी चर्चा नहीं कर सकते, क्योंकि उनके परिवारवालों ने ऐसी चर्चा करने को मना किया है।

डॉ. आरो न्यूयार्क विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्री हैं, साथ ही आइंसटीन के संपति के प्रबंधक भी हैं। वे डॉ. हार्वे की इस कहानी से जरा भी सहमत नहीं। उनके अनुसार डॉ. हार्वे ने परिवार की जानकारी के बिना ही आइंसटीन का दिमाग निकाल लिया था। और बाद में उनके परिवार से आज्ञा ले ली। उस समय तक आइंसटीन का शव संस्कार हो चुका था। परिवार के सदस्य

सापेक्षवाद

गतिज सिद्धांत काफी था, पर रेडियो एक्टिव कणों, जिनकी गति प्रकाश के वेग के सामने नगण्य नहीं है, के लिए पर्याप्त नहीं था। इसी कमी को पूरा करने के लिए आइंस्टीन का सिद्धांत बराबर उपयोग में लाया जाता है। यह विश्व-प्रसिद्ध नियम है— इ=एम सी २

इसमें इ का संकेत ऊर्जा, एम का मात्रा व सी का प्रकाश के वेग के लिए किया गया है। इन्हीं दिनों भारत के प्रसिद्ध भौतिक-वेत्ता डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस ने अपना एक निबंध आइंस्टीन के साथ प्रकाशित किया था। इससे एक और नये समीकरण का जन्म हुआ। जिसे 'बोस–आइंस्टीन स्टैटिक्स' से जाना जाने लगा। इस समीकरण को जहां-जहां प्रयोग में लाते हैं' उसे बोसॉन से इंगित करते हैं।

किसी व्यक्ति ने आइंस्टीन से सापेक्षता के बारे में सरल शब्दों में बताने की इच्छा प्रकट की। तब आइंस्टीन ने सापेक्षता की व्याख्या दी, "यदि आपको कड़ी धूप में खड़ा रहने को कहा जाए, तो पांच मिनट में ही आपको ऐसा लगेगा कि ५ घंटे खराब हो गये हैं। और यदि मुझे अपनी प्रेमिका से बातें करने का मौका मिले, तो ५ घंटे तक बात करने पर भी ऐसा लगेगा कि जैसे अभी हमें मिले सिर्फ ५ मिनट ही हुए हों।"

—भगवती

"मेमसाहब का मूड बहुत खराब है, पांच बजे से तैयार होकर बैठी हैं और आप अब छह बजे आ रहे हैं।"



"अरे, अभी तो पांच बजा है, मेम साहब ठीक समय पर तैयार हो जाएं, इसीलिए मैंने घड़ी को एक घंटे आगे बढ़ा दिया था।"

अब यह सोचकर चुप्पी साध गये कि आइंसटीन को भी इससे उज्र न होगा। यही चुप्पी लगाना मौन-स्वीकृति कहा गया।

इसी बीच डॉ. हार्वे जो कि न्यू जर्सी कंसास में रहते थे, वहां से मिसूरी चले गये और साथ में आइंसटीन के दिमाग को भी ले गये।

आइंसटीन की मृत्यु

डॉ. हार्वे ने १९५२ में न्यू जर्सी के प्रिंसटन अस्पताल में कार्य संभाला था।

१८ अप्रैल १९५५ के दिन एल्बर्ट आइंसटीन अस्पताल में पित्ताशय रोग से पीड़ित होकर दाखिल हुए। रात के सवा बजे १९ अप्रैल को महाधमनी के फट जाने से नींद में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

सुबह डॉ. हार्वे जो कि स्टाफ पैथोलॉजिस्ट इंचार्ज थे, ने शव परीक्षा की। उसी दोपहर को आइंसटीन के शव का संस्कार ट्रेंटन में कर दिया गया।

उसके पुत्र हैंस अल्बर्ट और सौतेली पुत्री मार्गेट, डॉ. नाथन के साथ प्रिंस्टन लौटे। डॉ. नाथन आइंसटीन के घनिष्ठ मित्र थे और उसकी जायदाद के प्रबंधक व न्यासी भी। वह अब डॉ. हार्वे के मामले से पूरी तरह जुड़ गये।

डॉ. हार्वे उसी दिन १९ अप्रैल को आइंसटीन के परिवार से मिलने और शोक प्रकट करने आये। डॉ. नाथन कहते हैं कि उसी समय डॉ. हार्वे ने आइंसटीन के मस्तिष्क के अध्ययन की आज्ञा चाही। लेकिन परिवार के सदस्यों ने कहा, "शव का तो संस्कार हो चुका है।"

डॉ. नाथन कहते हैं, "ना तो हमने, ना ही आइंसटीन ने इस प्रकार का कोई सुझाव दिया था। हां, मौन स्वीकृति देनी पड़ी थी।"

डॉ. हार्वे ने घोषित किया कि "अध्ययन शुरू हो गया है और इसी समय यह भी

कहा कि यह अध्ययन अल्बर्ट आइंसटीन की इच्छा पर ही आयोजित किया गया है, जो कि अब मर चुके हैं।" डॉ. नाथन यह स्वीकार करते हैं कि इस तरह की घोषणा का परिवार के किसी सदस्य ने प्रतिवाद भी नहीं किया था। न ही इस बात का प्रतिवाद किया कि डॉ. हार्वे के इस विवाद में परिवारवालों की इच्छा थी।

यह क्यों नहीं !

लेकिन फिर इन २५ वर्षों में कोई भी घोषणा आइंसटीन के दिमाग को लेकर क्यों नहीं हुई ?

पिछले दिनों एक रिपोर्टर ने 'आइंसटीन के दिमाग' पर लेख लिखा। इससे एक बार फिर डॉ. हार्वे रहस्य के लबादे से ढके प्रसिद्धि पा गये। इनका बार-बार कहना है कि आइंसटीन का परिवार ही इस बात को गुप्त रखना चाहता है।

इधर डॉ. नाथन कहते हैं, "हमने बरसों से अनुनय की है कि वह अपने सफल परिणाम या असफल परिणाम प्रकाशित करें। मैं नहीं समझता कि उन्हें इस अध्ययन से कुछ भी मिला है। जैसा कि अब तक मैं जानता हूं, डॉ. हार्वे पूरी तरह असफल रहे हैं। लेकिन फिर भी यह बात महत्वपूर्ण है। मेरा आशय है, उन्होंने अगर कुछ भी नहीं पाया, तो असाधारण प्रतिभाशाली व साधारण दिमाग की बनावट में कोई अंतर नहीं ? जिससे असाधारण बुद्धि पर प्रकाश पड़ सके।"

सदस्य चुप हैं

डॉ० हार्वे के साथ इस शोध में और कौन से साथी लगे हुए थे; यह भी एक रहस्य ही है। कुछ नाम प्रकट हुए हैं, लेकिन डॉ० हार्वे उन नामों को अपने सहयोगियों की लिस्ट में रखने से साफ मुकरते हैं।

कुछ नाम, जो डॉ. हार्वे के सहयोगियों को ज्ञात हैं, वह भी इस विषय में डॉ० हार्वे की तरह मौन साधे हुए हैं। वे सभी दूसरे नामों के बारे में अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। वे डॉ० हर्टविग कुलेन्बैक (फिलाडल्फिया), डॉ० राबर्ट जिमरमैन (न्यूयार्क) और डॉ० सिडनी (शिकागो) का ही नाम सम्मिलित करते हैं। लगता है, डॉ. हार्वे अकेले ही अब इस कार्य में लगे हैं, अगर वास्तव में लगे हों, तो उसने १९६१ में प्रिंस्टन हॉस्पिटल छोड़ दिया था। मच्छेन एन.जे. के प्रयोगशाला केंद्र के स्टाफ में वह शामिल हो गया था।

रहस्य जुड़ा हुआ

डॉ० हार्वे ने स्टेट लैब पिछले साल छोड़ दिया और वेस्टन के मिसूरी शहर में प्राइवेट प्रैक्टिस करने लगे। उनके पास आज भी आइंसटीन का दिमाग है। वह अपने शोध--परिणामों को घोषित करने की योजना भी बनाते हैं। लेकिन घोषणा करते हैं कि अभी उपयुक्त समय नहीं है। और इस तरह 'आइंसटीन-प्रबुद्धता का रहस्य' डॉ० हार्वे से जुड़ा है।

१/६ शांति निकेतन, मोती बाग—१
दिल्ली—१२

पाकिस्तानी कहानी

बाबा नूर

● अहमद नदीम कासमी

बाबा नूर की सारी वेशभूषा धुले हुए सफेद खद्दर की थी, सिर पर खद्दर की टोपी, जो बालों की सफेदी के कारण गरदन तक खिंची हुई दिखायी देती थी ! सफेद दाढ़ी के बाल विशेष रूप से उसके सीने पर फैले हुए थे, गोरे रूप में मानों जर्दी मिली हुई लग रही थी। बाबा नूर की आंखों की पुतलियां काले भंवरे-सी थीं; लगता था, गुड़िया की भांति नकली हैं। उसके वस्त्रों, बालों तथा उसकी त्वचा में भी काफी सफेदी थी। उसकी छोटी-छोटी आंखें बहुत अपरिचित-सी दिखायी पड़ती थीं।

लेकिन यही अनजानापन बाबा नूर के मुखौटे पर बचपने के भाव बनकर जगमगाता था। उसके कंधे पर सफेद खद्दर का एक अंगोछा भी पड़ा रहता था। जब वह बच्चों के समूह में घिरा रहकर मस्जिद की ओर जाता, तब खद्दर का यही अंगोछा, उसके कंधे पर इधर से उधर स्थान बदलता रहता था।

दूर-दूर से दौड़-दौड़कर आते हुए बच्चों का समूह उसके पीछे हंसते हुए चलने लगता था। लगता था, बाबा नूर के पीछे एक विशाल जुलूस इकट्ठा होने लगा हो, मगर वहीं आसपास के कुछ नौजवान भी निकल आये थे और बाबा नूर के रोकने के बावजूद, ये युवक बच्चों को गलियों में खदेड़ने लगे थे।

बाबा नूर अब गांव से निकलकर खेतों में पहुंच गया था। पगडंडी मेड़-मेड़ जाती हुई, यकायक हरे-भरे खेतों में उतरती दिखायी दे रही थी। बाबा नूर की गति-सीमा इसीलिए धीमी पड़ जाती, क्योंकि वह गेहूं के कोमल पौधों से अपने पांव, हाथ तथा चोले को भी बचाता हुआ चलने लगता था। यदि किसी राही की असावधानी के कारण कोई पौधा पगडंडी के आसपास कुचला हुआ उसे दिखायी पड़ जाता, तो बाबा नूर उस पौधे को उठाकर झाड़-पोंछकर दूसरे पौधों के साथ में जुटा देता। गेहूं के ये छोटे-छोटे पौधे, पैरों से तुड़े-मुड़े दिखायी पड़ते, तो बाबा नूर उसे यूं छूने लग जाता,

मानो जख्म सहला रहा है।

फिर वह खेत की मेंड़ पर पहुंचकर पिछली कमी को पूरा करने के लिए और भी तेज गति से चलने लगता। हवा में उसकी दाढ़ी के बाल बिखर-बिखरकर लहराने लगते और कभी संवरने लगते। अंगोछा कंधे पर से उड़-उड़ जाता, मगर बाबा नूर की चाल में कमी नहीं आती। उसकी चाल उसी समय धीमी पड़ती, जब वह पगडंडी फिर से किसी खेत में उतर जाती थी।

एक कृषक बालिका गेहूं के पौधों के बीच में से बहुत सावधानी से दरांती द्वारा घास काटती फिर रही थी। लगता था, उसकी तनिक-सी चूक से पौधों पर घाव पड़ जाने का उसे भी भय हो। बाबा नूर जरा देर ठहरकर उसको देखने लगा।

'भाई कमाल है।' बाबा नूर ने खुश होकर सोचा। 'ये लड़की तो बिलकुल मदारी है, इतनी बड़ी दरांती उठा रखी है, चप्पे-चप्पे पर गेहूं के पौधे उग रहे हैं, पर दरांती घास काट लेती है और गेहूं को छूती तक भी नहीं ...।'

गांव से निकलने के बाद पहली बार बाबा नूर मुसकराया, और बोला, "पानी पिलायेगी बेटा!" फिर जरा-सा ठहरकर कहा, "प्यास तो नहीं, पर तू मुसाफिर को लस्सी-पानी पिलाकर पुण्य कमा ले। पर जरा जल्दी से ला दे, डाक का मुंशी हवा के घोड़े पर सवार रहता है, चला न जाए।"

लड़की ने घास की गठरी कंधे से उतारकर वहीं खेत में रखी। फिर वह दौड़कर मेंड़ पर उगी हुई एक बेरी के पेड़ के पास आयी। तने की ओट में पड़े हुए बरतन के पानी को छलकाया, एल्युमीनियम का कटोरा भरा और लपककर बाबा नूर के निकट जा पहुंची। बाबा नूर ने एक ही क्षण में सारा कटोरा पीकर, मुंह अंगोछे से साफ किया और कहा, "तेरा नसीब इस लक्ष्मी-जैसा साफ-सुथरा हो बेटी।"

पाठशाला के बरामदे में डाक का मुंशी बहुत से लोगों के बीच घिरा बैठा



हुआ, अपने रोजाना के फार्म आदि भर रहा था, साथ ही ग्रामीणों को नयी-नयी खबरें सुना रहा था।

लोग कहते हैं कि अब कराची पहले नंबर पर है, पर मैं कहता हूं कि लाहौर सिमटकर चाहे गांव बन जाए, पर लाहौर आखिर लाहौर ही रहेगा।

"वो तो ठीक है।" एक गांव-निवासी बोला। "पर खुदा कराची का भी बुरा न कराये। मेरा साला वहां कराची में चपरासी का काम करता था। जब वह मरा, तब मुझे अफसोस के लिए कराची जाना पड़ा। बात यह है मुंशीजी कि एक बार कराची जरूर देखिए। चाहे वहां गधा गाड़ी में क्यों न जुता हो। वहां जितनी मोटरें हैं, उतनी हमारे गांव में पक्षी तक नहीं हैं। एक-एक मोटर में दो-दो औरत जात कि अल्लाह ही दे, अल्लाह ही ले। वहां बंदा न लेने में है, न देने में। अल्लाह की कुदरत याद आती है, तो नमाज पढ़ने को जी चाहने लग जाता है। एक सेठ कह रहा था कि बस एक और बड़ी लाम लग जाए, तो कराची विलायत ही बन जाएगी।"

मुंशीजी ने एक गाली दी... "बात तो सुनो मुंशीजी," उसने बात काटी। "सच ही तो उसने मुझे बताया है कि कितनी बार लाम लगते-लगते रह गयी। कोई न कोई यह कहकर बीच में टांग अड़ा देता है कि लाम में लोग मरेंगे, कोई पूछे कि लाम न लगे, तो तब भी तो लोग मरेंगे? लाम में गोले से मरेंगे वैसे फाके से मर जाएंगे। लाम लगे तो नौकरियां भी तो लगती हैं।"

"ऐसी नौकरी को मारो गोली।" मुंशीजी ने कहा। "तुमने तो यहीं लाम लगा दी मुंशीजी।" वह बोला और सब लोग हंसने लगे। परंतु मुंशी नहीं हंसा। क्योंकि वह सामने देख रहा था, और कुछ यूं टकटकी बांधे देख रहा था, मानो उसकी दृष्टि एक बिंदु पर जमी हुई हो। उसका रंग फीका पड़ गया था और होंठों



की सारी तरी एक ही पल में सूखकर लकड़ियां बन गयी थीं।

मुंशी बुझी आवाज में धीरे-से बोला, "बाबा नूर आ रहा है।" मुंशीजी के पास बैठे सभी लोगों के सिर सहसा एक साथ झटके-से मुड़ गये और वे सभी उदास नजरों से बाबा नूर को ताकने लगे। बाबा नूर एकदम सीधा चलकर पाठशाला के अंदर आ गया था। लोग सहमे जा रहे थे। एक-दो तो जैसे घबराकर उठ भी खड़े हुए। बाबा नूर उनसे अभी दूर ही था। मुंशी बोल उठा, "आओ बाबा नूर।"

बरामदे के पास पहुंचकर बाबा नूर ने पूछा, "डाक आ गयी मुंशीजी ?"

"आ गयी," मुंशीजी ने जवाब दिया। "मेरे बेटे की चिट्ठी तो नहीं आयी !" बाबा नूर ने पूछा।

"नहीं बाबा," मुंशीजी ने उत्तर दिया।

"बड़ी खिलंडरी तबियत का है।" बाबा नूर बोला, "चिट्ठी नहीं लिखता मुझे।" फिर बाबा नूर ने अपने अंगोछे को एक कंधे से उतारकर झटका और उसे दूसरे कंधे पर रखकर चुपचाप वापस पलट गया।

काफी दूर पगडंडी पर वह रुई का एक गोला-सा बनकर रह गया; तब मुंशी बोला, "यारो ! कोई बताओ मैं क्या करूं ? आज दस बरस से बाबा नूर इसी तरह आ रहा है और यही सवाल पूछता है और दस बरस से मैं यही जवाब दे रहा हूं। बेचारे को यह भी याद नहीं रहा कि सरकार की वह चिट्ठी मैंने ही उसे पढ़कर सुनायी थी जिसमें लिखा था कि तेरा बेटा, बरमा में बम के गोले का शिकार होकर मारा गया।"

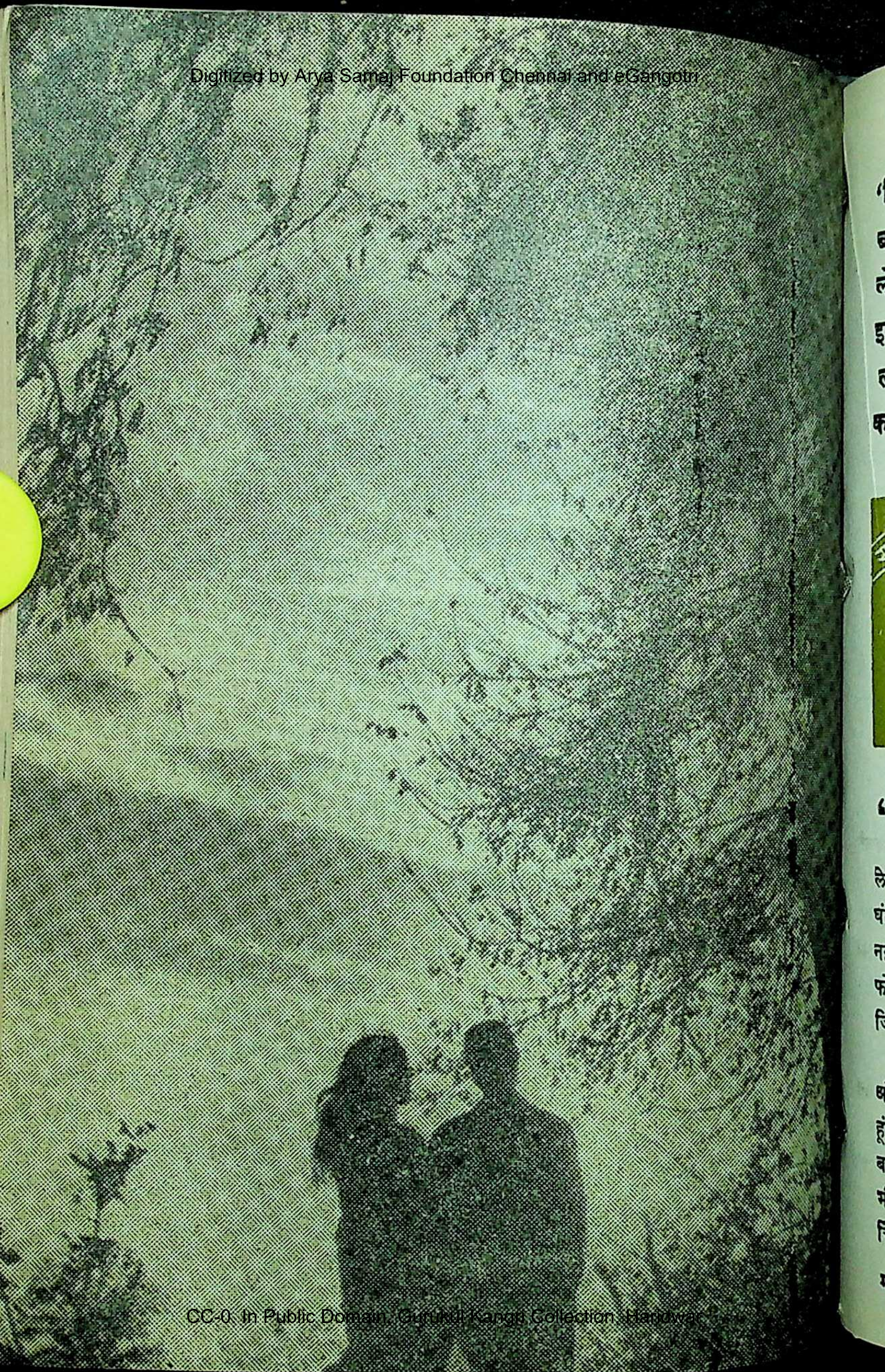
"तबसे ही बाबा नूर पागल हो गया है और हर दसवें-बीसवें दिन, अपने बेटे की चिट्ठी लेने आ निकलता है। पर मुझे खुदा की कसम है दोस्तों, यदि आज के बाद वह फिर भी मेरे पास यही पूछने आया, तो मुझे भी बाबा नूर अपने ही जैसा पागल कर जाएगा।"

—अनु. : जहीर कैफी अमरोहल्वी,

डेनमार्क में सेलसी का किला डेढ़ सौ साल से भी ज्यादा समय से वीरान पड़ा है। वहां कोई नहीं रहता, लेकिन पिछले दिनों पास की बस्ती में रहनेवालों को जब किले में दावत और नाच के कार्यक्रम में शामिल होने के निमंत्रण मिले तो लोग अपने को रोक नहीं पाये। बेवकूफ बनकर लौटे चार सौ लोगों को अभी तक पता नहीं चला, उन्हें किस भूत ने बुलाया था।

★

दक्षिण अमरीका में कोलंबिया की राजधानी बगोटा पूरी दुनिया में अकेली ऐसी जगह है जहां बच्चों के लिए भी अलग पुलिस है। इस पुलिस दल के सदस्यों का काम है, उद्यानों और मैदानों में बच्चों का ध्यान रखना, उन्हें गाने और खेल सिखाना, सफाई की शिक्षा देना तथा बसों में लटकने से रोकना। समझा जाता है कि इस तरह की पुलिस से बाल अपराधों की बाढ़ रुक जायेगी।



'विज्ञान ने जीन-संश्लेषण द्वारा एक जीवित व्यक्ति का प्रतिरूप बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है।' यह दावा है, प्रख्यात विज्ञान-लेखक डविड रोरविक का। अपनी बहुचर्चित पुस्तक, 'इन हिज इमेज, क्लोनिंग ऑव ए मैन' में रोरविक ने इस प्रयोग से संबद्ध लोगों के प्रयत्नों की चर्चा की है। प्रस्तुत है, इसी रोमांचक कृति का सार।

—प्रस्तोता : योगेन्द्रदत्त शर्मा

सार-संक्षेप

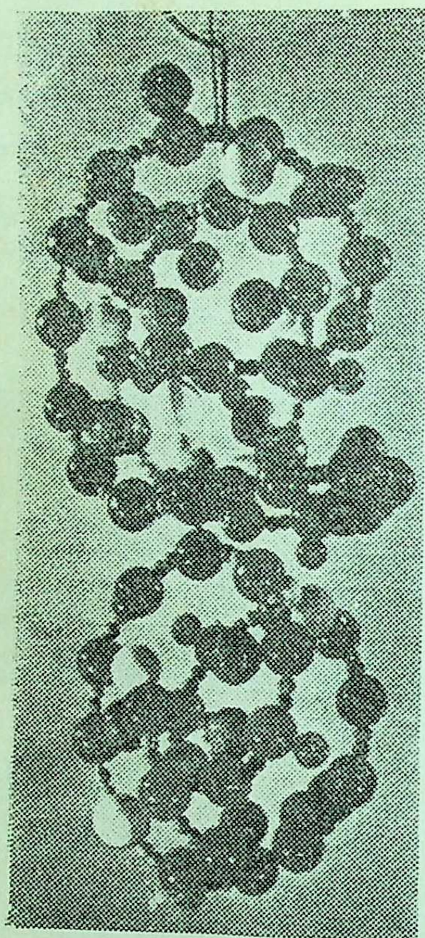
आप फिर उसी शक्ल में पैदा हो सकते हैं!

● डेविड रोरविक

"सन १९७३ की बात है। पश्चिमी ओंटेना की पहाड़ियों में फ्लैटहैड लैक में स्थित मेरी केबिन में टेलीफोन की घंटी बजी। उस व्यक्ति ने, अपना नाम नहीं बताया और कहा कि उसे मेरा टेलीफोन नंबर एक पत्रिका से प्राप्त हुआ है, जिसमें मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था।"

उसने कहा, "मेरी उम्र ढल रही है, और अभी तक अविवाहित व निःसंतान हूं।" मैंने उससे उसकी उम्र पूछी। उसने बताया कि सड़सठ साल का हूं, लेकिन अब भी स्वस्थ हूं। मैंने उससे कहा, "आपको चिंता नहीं करनी चाहिए। आपकी उम्र के; बल्कि उससे भी बड़ी उम्र के लोगों की संतानें हुई हैं।"

फिर भी वह संतुष्ट नहीं था। उसने कहा, "मैं इसके लिए हर उपाय करने को तैयार हूं और 'जीन इंजीनियरिंग' से बहुत ज्यादा प्रभावित हूं।" उसने बताया कि उसके विशाल अध्ययन के दौरान सिर्फ मैं ही ऐसा व्यक्ति मिला हूं, जिसकी रुचियां उससे इतनी अधिक मेल खाती हैं। इन समान रुचियों पर मिल-बैठकर विचार करने का प्रस्ताव भी



ऊपर डी. एन. ए. अणुओं का गुच्छा जो हमारी शरीर कोशिकाओं के भीतर है। इन्हीं के द्वारा पैतृक गुण इधर-उधर जाते हैं। ये कलम द्वारा तैयार किये गये हैं।

उसने रखा।

टेलीफोन पर उसने अपनी बात कुछ इस तरह समाप्त की कि मुझे एक ओर तो बड़ा अटपटा-सा लगा कि वह मेरी बहुत तारीफ कर रहा है, दूसरी ओर लगा कि वह मुझे चेतावनी भी दे रहा है। उसने कहा, "तुम संसार के अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो; पर सावधान हो जाओ!"

इससे मैं थोड़ा व्यग्र और अधीर हुआ। फिर भी जिस बात ने मुझे प्रभावित किया, वह था उस व्यक्ति का आत्म-विश्वास और बहुत-से वैज्ञानिक विषयों पर उसका साधिकार बोलना।

अगले हफ्ते, जिस दिन उसे मुझे मोंटेना में मिलना था, फिर टेलीफोन किया। मैंने उससे विस्तार में जानना चाहा कि वह क्या चाहता है। उससे अपना नाम बताने का भी आग्रह किया, पर वह टाल गया।

उसी दौरान मैंने उसे बताया कि 'कलम लगाने' के विषय में मैंने बहुत कुछ लिखा है—यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा आप नर और मादा जनन कोशिकाओं के मिलन के बिना ही पौधा या जंतु का प्रजनन कर सकते हैं। ऐसा करके जो संतति प्राप्त होगी, वह कलम से प्राप्त जीन-युग्म जीवधारी होगा।

क्या दोषी बनूं?

अंतरंग बातचीत करने के उद्देश्य से मैंने अनुमान लगाया कि टेलीफोन करनेवाला व्यक्ति उत्सुक है। उसके प्रस्ताव का आरंभिक झटका दूर हुआ, तो दो सवाल मेरे सामने उपस्थित हुए! पहला सवाल

यह कि क्या इस काम को किया जा सकता है, और दूसरा अधिक महत्त्वपूर्ण सवाल यह कि क्या इसे किया जाए ?

मैं 'मानव-कलम' की संभावनाओं का पता लगाने की ओर थोड़ा-बहुत प्रवृत्त था, बशर्ते इसके लिए समुचित सावधानियां बरती जाएं। लेकिन यह सब केवल सिद्धांत रूप में तथा कागज पर ही था।

वह आदमी मुझे लाखों डॉलर की ऐसी योजना में हरकारा बनने की पेशकश कर रहा था, जिसकी पराकाष्ठा, नोबल पुरस्कार प्राप्त जीन-वैज्ञानिक जोशुआ लेडरबर्ग के अनुसार, 'एक बड़ी व्यग्रता' थी। क्या मैं ऐसी व्यग्रता उत्पन्न करने का दोषी बनूं ?

उस व्यक्ति ने मुझे बातचीत के लिए अपने घर बुलाया, तो मैंने यह पाया कि उसके प्रस्ताव की संभावनाओं का पता लगाना चाहिए। उसने सुझाव दिया कि मैं उसके खर्च पर सेन फ्रांसिस्को जाऊं। मैं वहां से चला, और काउंटी स्थित मैक्स के घर पहुंचा।

मैक्स से बातचीत के दौरान, उसने बताया कि वह इसलिए अविवाहित और निःसंतान रहा, क्योंकि जीन के महासागर में दो उत्तराधिकारी गुणकों के संयोग से पुनरुत्पादन की प्रक्रिया उसकी समझ से बाहर की बात थी।

उसकी स्पष्ट मान्यता थी कि 'उसके शांतिपूर्वक मरने का एक ही तरीका है कि वह दोबारा जन्म ले और उस इच्छित तथा निश्चित मूल को प्राप्त कर सके, जिसकी उसमें कमी थी।'

मैक्स हैरान था कि 'जीव-कलम' की प्रक्रिया प्राकृतिक घटनाओं को कैसे ढक सकती है। मैंने कहा कि यदि वह अपने काम में सफल हो भी गया, तो भी वह बुरी तरह निराश होगा, क्योंकि इसका कोई पता नहीं है कि बच्चा कैसे प्राप्त होगा ?

मैक्स सारी बातें उसी समय तय कर लेना चाहता था। मैंने इसके लिए यह कहकर मना कर दिया कि मुझे इस पर विचार करने के लिए समय चाहिए। उसने मुझे 'एटलांटिक मंथली' पत्रिका में, डी. एन. ए. की संरचना की व्याख्या करने के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक जेम्स वाटसन का एक लेख दिखाया। वाटसन ने उस लेख में बताया था कि 'जीव-कलम' की प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करने के लिए बहुत-से विकास तेजी से हो रहे हैं।

वाटसन ने 'जीव-कलम' का विरोध करते हुए चिंता प्रकट की थी, "बहुत सारे जीव-वैज्ञानिक और डॉक्टर इससे उत्साहित होकर इस विज्ञान-क्षेत्र में आ जाएंगे।"

मैं इस बात से स मत था कि प्रबुद्ध वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अधिक कोशिश करने से 'जीव-कलम' की खोज जल्दी ही हो सकती है, लेकिन फिर भी बहुत समस्याएं हैं। जैसा कि वाटसन

के लेख से भी ध्वनित होता था, जो भी डॉक्टर इस दिशा में काम करेगा, वह रातों-रात हीरो नहीं बन सकता। अपनी प्रतिष्ठा को दाव पर लगानेवाला मुश्किल से ही मिलेगा।

मैंने मैक्स को बताया कि मैं खाड़ी के क्षेत्र में या किसी होटल में अथवा किसी दोस्त के पास ठहरूंगा और एक-दो दिन में वापस तुम्हारे पास पहुंचूंगा। दरअसल मैं चाहता था कि पहले पुराने परिचित से मिल लूं, जिसे मैं तब से जानता हूं, जब मैं कोलंबिया यूनिवर्सिटी में विज्ञान का स्नातक था।

वह अनोखे ज्ञान का धनी

उसको औषधि, कानून और अध्याय का अनोखा ज्ञान था और नये उभरते 'जीव-नीतिशास्त्री' के रूप में उसकी अच्छी ख्याति थी।

उसने टेलीफोन पर मेरी बात बड़े धैर्य से सुनी। फिर तुरंत ही स्पष्ट कह दिया, 'मैं आपसे बातचीत करूंगा, लेकिन अंततः आपको ही फैसला करना है।' उसने कहा कि 'जीव-कलम' को गर्भपात से संबद्ध करके कुछ उपयोगी काम किया जा सकता है।

मेरी सर्वाधिक चिंता का विषय था— प्रयोगशाला में प्रयोग के तौर पर भ्रूणों की शृंखला (निषेचित कोशिकाएं), जिसे अनुसंधान की प्रक्रिया में नष्ट कर दिया जाता है।

परखनली में गर्भाधान की खबरें तो थीं। यह भी खबर थी कि सारे विश्व के अनुसंधानकर्त्ता इस प्रयत्न में लगे हैं कि मानव-अंडों को प्रयोगशाला में सुरक्षित शुक्राणु के साथ मिलाकर, प्राप्त भ्रूण को स्त्री के गर्भाशय में आरोपित कर दें।

इसमें भी कोई संदेह नहीं हो सकता था कि पहला कलमज-मनुष्य प्राप्त करने के लिए भ्रूण-शृंखला की प्रक्रिया चल रही हो। जानवरों पर किये गये काम से पता चला था कि इस प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि पूर्ण क्रोमोसोम-युक्त शरीर-कोशिका नाभिक को ऐसे अंडाशय में आरोपित किया जाए, जिसका नाभिक नष्ट हो गया हो, और इस तरह से प्राप्त भ्रूण को स्त्री के गर्भाशय में आरोपित किया जाए।

एक ऐसा भ्रूण प्राप्त करने के लिए जो बाहरी नाभिक को स्वीकार कर सके, विभक्त होता रह सके और कलमज भ्रूण का प्रतिरूप उत्पन्न कर सके। इसके लिए प्रयोगशाला में पोषित दर्जनों बल्कि सैकड़ों भ्रूण उत्पन्न करने होंगे। निष्क्रिय भ्रूणों को नष्ट करना होगा।

मेरे पास यह तर्क था कि अशोभनीय तथा अमानुषिक साधनों को भी अकसर परिणाम उचित ठहरा देते हैं। उस जीव-नीतिशास्त्री ने मुझे 'परिस्थितिजन्य परिणाम वादी' बताया! उसने यह भी कहा कि ऊंच-नीच सोच लेना कोई गलत बात नहीं, मैं स्वयं को भी आप जैसा मानता हूं।

बातचीत के दौरान वह बहुत सतर्क

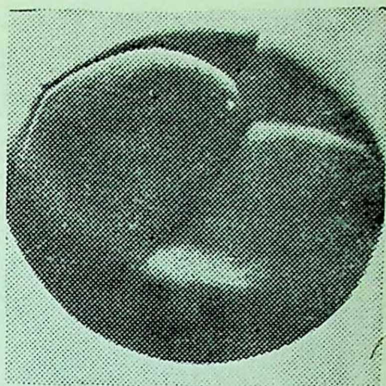
रहा और अंत में अपनी राय व्यक्त करते हुए बोला कि मैं उन लोगों से सहमत नहीं, जो निषेचन की अवस्था न आने के कारणों पर काबू पाने के लिए परखनली निषेचन तकनीक को उचित मानने के विरुद्ध हैं, और इस सिलसिले में मानवीय इच्छाओं को महत्त्वहीन या कम से कम अनावश्यक मानते हैं।

उसने मुझे शुभकामना दी ! मैं जानता था कि वह हृदय से शुभकामना दे रहा है।

जब मैंने मैक्स से दोबारा बात की, तब मैंने उसे चेतावनी दे दी कि मैंने अभी तक कोई इरादा नहीं बनाया है। मैक्स अधीर दिखायी पड़ा। उसने आग्रह किया कि हम इस विषय पर कुछ तर्क-शास्त्रियों से विचार-विमर्श कर लें।

मैंने फिर कहा कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे बच्चे का भेद खुले लेकिन साथ ही मैं ऐसी कोई योजना भी शुरू नहीं करूंगा, जिससे यह प्रयास पूरी तरह गुप्त रहे। उत्तर में उसने कहा, "जैसा आपकी आत्मा कहे वैसा करें।"

इस सब पर केवल सिद्धांत रूप से ही विचार किया गया, लेकिन इस पर अमल न होने का कोई कारण नहीं था। जनन कोशिकाओं—स्त्री का अंडाशय तथा पुरुष का शुक्राणु—के अलावा, लगभग हर कोशिका क्रोमोसोम पूरकों से पूर्ण होती है, उसमें अंडाशय तथा शुक्राणु एक-दूसरे के पूरक के साथ होते हैं; जो



मेढक का ताजा निषेचित भ्रूण। लेखक का कहना है कि पांच दिन की वृद्धि के बाद मानव-भ्रूण गर्भाशय में रखा जा सकता है।

मिलकर शरीर की रचना करते हैं।

शरीर की लगभग प्रत्येक कोशिका में ऐसे सूक्ष्म संकेत होते हैं, जिनकी संपूर्ण शरीर की पुनर्रचना के लिए आवश्यकता होती है। ये कोशिकाएं शरीर की अन्य लाखों कोशिकाओं में विभक्त नहीं होती; इसका मुख्य कारण यह है कि ये कोशिकाएं जैविक-रसायन क्रिया द्वारा संगुंफित होती हैं। उदाहरणार्थ, पूरी संरचना का ऐसा अंश, जो त्वचा-कोशिका में समाहित नहीं होता, वह एक सूक्ष्म अंश है, जिसमें त्वचा-रचना के निर्देश निहित हैं। इसी क्रम में हड्डी, बाल, दय-तंतु तथा धमनी-तंतु आदि भी आते हैं।

यह परिकल्पना की गयी कि यदि अत्यंत कुशल और चतुर सूक्ष्म शल्य-चिकित्सक वास्तव में किसी शरीर कोशिका

के नाभिक को अनाहृत निकालकर ऐसी अनाहत अंडकोशिका में डाल सके, जिसका नाभिक निकाल दिया गया है अथवा निष्क्रिय बना दिया गया है, तो शरीर-कोशिका का प्रतिरूप प्राप्त किया जा सकता है, और इस तरह उस व्यक्ति को विभक्त तथा पुनर्सर्जित किया जा सकता है, जिसमें से इसे निकाला गया हो। यह उसका प्रतिरूप अंकुर होगा।

'मानव-कलम' को गंभीरता से लेने वालों की सूची लंबी थी। इसमें शताब्दी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली माने जानेवाले वैज्ञानिक जे. बी. एस. हैल्डने जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी शामिल थे। उन्हीं का यह विचार था कि 'मानव-कलम' को इस कुशल तरीके से तैयार किया जाए, जिससे रतौंधी, पीड़ा को महसूस करने की कमी, निकट भविष्य में आनेवाले संभ्रांत शस्त्रास्त्र युग में पराश्रव्य ध्वनियों को सुनने की अयोग्यता तथा ग्रहों—जहां संभवतः हम अपने उपनिवेश स्थापित करें—के उच्च गुरुत्वाकर्षक क्षेत्रों में होनेवाले बौनेपन की संभावनाओं को खत्म कर सकें।

दूसरे थे फ्रांसीसी जीव-वैज्ञानिक जीन रोसें, जिनका विचार था कि 'मानव-कलम' का उपयोग व्यक्ति के खंडित स्वरूप को नये स्वरूप में बदलकर, उसे अमरत्व प्रदान करने के लिए किया जा सकता है।

सूची में नये शामिल लोगों में पहले थे—नोबल पुरस्कार प्राप्त डॉ. जोशुआ लेडरबर्ग, जिनका सुझाव था कि शरीर-कोशिका दान देनेवाले मनुष्य तथा उसके कलमज अंकुर में नाड़ियों की समानता पीढ़ियों के अंतराल को पाट सकती हैं (शरीर-कोशिका दान करनेवालों का उपयोग उनके युवा अंकुरों को बढ़ाने के लिए किया जाएगा)। दूसरे थे—यू. सी. एल. ए. के. डॉ. एलोफ एक्सेल कार्लसन। उनका प्रस्ताव था कि 'समान जीनवाले (ऐतिहासिक) व्यक्तियों को पुनर्जीवित करने के लिए' मृतकों की भी मानव-कलम लगायी जाए (उनका दृढ़ मत था कि 'मिस्र में सुरक्षित मृत शरीरों में से राजा तूतनखामन की पुनर्रचना के लिए भी) पर्याप्त डी. एन. ए. होंगे।

गाजर की कलम

इस रसायन में एक उल्लेखनीय घटना घटी। कुछ कोशिकाएं विभक्त होनी शुरू हो गयीं, मानो उन पर पराग-कण छिटक दिये गये हों, जब कि ऐसा किया नहीं गया। इनमें से कुछ शरीर-कोशिकाएं केवल विभक्त ही नहीं हो गयीं, बल्कि उनमें से अंकुर और गुच्छे और अंत में जड़ें भी निकलीं, जो हर तरह से सामान्य थे।

इसे 'कलम' कहा गया और इस प्रक्रिया को 'कलम लगाना' कहा गया। इस शब्द का मूल ग्रीक भाषा में 'क्लोन' है, जिसका अर्थ है—शाखा, फिसलन, कतरन या समूह। आजकल कलम से तात्पर्य

है—समान कोशिकाओं या तत्वों का गुच्छा—या गुच्छे अथवा समूह का एक सदस्य—जो एक ही शरीर कोशिका से निकले हों।

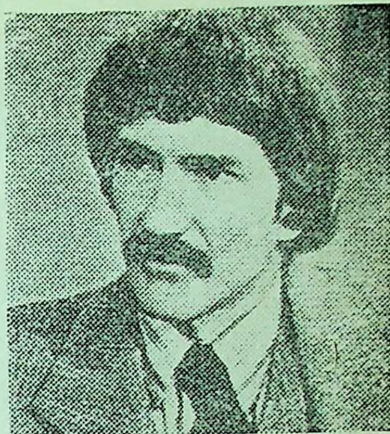
कुछ ही पहले 'कलम' में जीव-जंतु तथा सृष्टि के सभी जीवधारियों को भी शामिल किया गया। १९६० के अंत में दो अमरीकी वैज्ञानिकों (डॉ. आर. ब्रिग्स तथा डॉ. टी. जे. किंग) के कार्य के आधार पर ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के डॉ. जे. बी. गर्डन ने पंजेदार मेढ़कों की लगातार कलमें लगायीं।

गर्डन ने सर्वप्रथम परावैंगनी किरणों द्वारा मेढ़क के निषेचित न हो पाये अंडों के नाभिक को नष्ट किया। फिर उसने मेढ़क की आंत्र-नलिकाओं से प्राप्त शरीर कोशिकाओं के नाभिक को सूक्ष्म शल्य-चिकित्सा द्वारा उनमें प्रविष्ट कराया।

इन आरंभिक परीक्षणों के आधार पर प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक डॉ. रॉबर्ट एल. सिंशमीर ने १९६८ में भविष्यवाणी की कि दस साल के अंदर 'मानव-कलम' संभव हो जाएगी।

प्रमुख व्यक्तियों की कलम

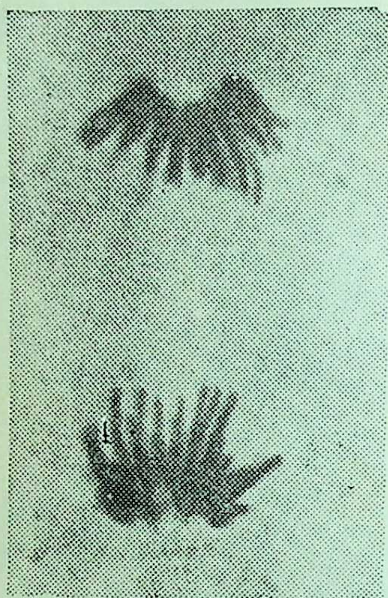
न्यूयार्क की स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रमुख प्रोफेसर डॉ. बेंटले ग्लास 'लोकप्रिय व्यक्तियों' की प्रतिकृति बनाने के प्रलोभन से चिंतित थे। उनके मतानुसार जॉन कैनेडी या डस्टिन हॉफमैन या एल्विस प्रेस्ले-जैसे महान व्यक्तियों की भी कलम लगायी जा सकती है, बशर्ते किसी ने उनकी शरीर कोशिकाओं को सुरक्षित रखा हो—जो ज्यादा कठिन काम नहीं है। उन्हें यह भी अंदेशा था कि त्वचा का टुकड़ा कलम की कालाबाजारी को पनपा



चिकित्सा

चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे नये प्रयोगों से सर्व-साधारण लोगों को परिचित कराने में विज्ञान-लेखक डेविड-रोरविक की एक विशेष भूमिका है। उनकी लिखी मुख्य पुस्तकें हैं—'ब्रेव न्यू बेबी', प्रॉमिस एंड पर्ल ऑव द बायोलॉजिकल रेवोल्यूशन'।

डेविड रोरविक—'टाइम, 'सेटर्ड रिव्यू', 'अतलांतिक मंथली' और अन्य प्रमुख पत्रिकाओं में विज्ञान और आयुर्विज्ञान पर बराबर लिखते आ रहे हैं। सन १९६७ में पहला पुलितजर-भ्रमण फेलोशिप डेविड रोरविक प्राप्त कर चुके हैं। १९७६ में उन्हें 'कैंसर अनुसंधान राजनीति' की खोज-बीन पर अलिके पैटर्सन फाउंडेशन फेलोशिप भी दी गयी।



कोशिका-विभाजन में इस तरह से क्रोमोजोम टूट कर दो कोशाओं को जन्म देते हैं।

सकता है। इस झक्की संभावना से दिमाग चौंक गया। डॉ. ग्लास ने चेतावनी दी कि क्रूर शासकों द्वारा कलम का गलत उपयोग होगा। उन्होंने कहा कि ऐसे शासक 'मानव-कलम' का अनुचित लाभ उठाएंगे।

हालांकि ऐसी आशंकाओं और चिंताओं को ध्यान में रखना था, फिर भी ये मुझे अति काल्पनिक और अनुचित रूप से निराशावादी लगीं। 'कलम का काम कराने के लिए उपलब्ध प्रतिमाओं को धन इत्यादि से प्रोत्साहित करने की आवश्यकता थी।'

मुझे खतरा था।

मूझे एक खतरा यह था कि लोगों की राय में, मैं इसके द्वारा मानवता को हानि पहुंचा सकता हूं। मैं यह जानता था, लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं था कि यह काम करूं ही नहीं। हर कदम पर जोखिम तो था ही। जोखिम का हिसाब लगाकर सावधानियाँ बरतनी थीं।

मैक्स इस बात से प्रसन्न हो उठा कि मैं काम करने को तैयार हो गया हूं। मैं इस होनेवाले व्यय को उससे लेने के लिए तो तैयार हो गया, लेकिन मैं अपना मेहनताना न स्वीकारने का भी निश्चय कर गया।

अब शुरू हुआ मेरा काम—प्रतिमाओं की तलाश करना। मैं कई दिनों तक 'बायोलॉजिकल एब्सट्रैक्ट्स' तथा 'इंडेक्स मैडिक्स' देखता रहा और इसके भी बहुत दिन बाद तक मैं ऐसे लेख पढ़ता रहा, जिनसे ऐसे अनुसंधानकर्ताओं का पता चल सके जो न केवल समर्थ और सक्षम हों, बल्कि 'मानव-कलम' पर काम करने में गहरी इच्छा रखते हों। यह 'इच्छा' हमारे काम में सबसे बड़ा अवरोध बन रही थी।

मिलने पर डार्विन

मिलने से पहले ही मैक्स ने उस व्यक्ति को 'डार्विन' कहना शुरू कर दिया था। हम दोनों को ही आशा थी कि वह मानव-कलम का काम करेगा।

यह नहीं था, पर मैं सोचता हूं इस अणु-परिवार के बारे में, लेकिन यह फिरकने वाली स्थिति थी। इस बूढ़े आदमी, इस जवान लड़की और इस आश्चर्यजनक शिशु के बारे में

डार्विन और मैक्स अनौपचारिक रूप से मिले, फिर हम तीनों मैक्स के मैनहटन स्थित आफिस में मिले। मैक्स और डार्विन ने अनुसंधान का काम संयुक्त राज्य से बाहर किसी देश में करने का निश्चय किया, क्योंकि इस संदर्भ में दूसरे देशों के नियम इतने कड़े नहीं हैं।

अप्रैल १९७४ के अंत में डार्विन की प्रयोगशाला के लिए जगह चुन ली गयी तथा प्रयोगशाला के लिए उपकरण भी उपलब्ध हो गये। अनुसंधान में कुछ सहायक भी नियुक्त कर लिये गये।

बेविस-विवाद

हुआ यह कि इंगलैंड की लीड्स यूनिवर्सिटी के डॉ. डगलस बेविस ने ब्रिटिश मेडीकल एसोसिएशन की मीटिंग में एकत्रित अनुसंधानकर्ताओं और संवाददाताओं के बीच यह प्रेस नोट बांटा कि परखनली में निषेचित अंडों (तीन मानव-भ्रूणों) को स्त्रियों के गर्भाशयों में अरोपित करने में सफलता मिल गयी है और तीनों स्त्रियों ने स्वस्थ शिशुओं को जन्म दिया है।

ये तीनों महिलाएं फैलोपियन ट्यूबों के विनष्ट अथवा अनुपस्थित होने के कारण, बांझ मान ली गयी थीं। अनुसंधानकर्ताओं ने शल्य-चिकित्सा द्वारा इन तीनों महिलाओं के अंडाशय निकालकर, उन्हें उनके पतियों के शुक्राणुओं के साथ परखनलियों में संषेचित किया, और पुनः उन महिलाओं में आरोपित कर दिया। डॉ. बेविस ने बताया कि तीन प्रयासों में से तीन सफल रहे, और शिशुओं की आयु इस समय १२ से १८ महीने के बीच है। तीनों ही शिशु सामान्य रूप से विकसित हो रहे हैं।

इस घोषणा से डार्विन बहुत आतंकित हुआ। क्योंकि डॉ. बेविस ने गुप्त रूप से काम किया था और बिना किसी लिखित परिणाम के ही वह दावा कर रहा था; भद्र व कुलीन वैज्ञानिक तथा डॉ. बेविस के प्रतिस्पर्धी उसकी बुरी तरह आलोचना कर रहे थे। डार्विन को यह सोचकर बड़ी घबराहट हुई कि 'मानव-कलम' के काम को लोगों के सामने कभी लाया जाए या नहीं।

कुछ ही समय बाद वह गुप्त रूप से मैक्स से न्यूयार्क में मिला और उसे 'मानव-कलम' के कार्य को जारी रखने के लिए दोबारा राजी करा लिया। मैक्स ने मुझे बाद में बताया कि डॉ. बेविस के बच जाने

की वजह से ही डार्विन शांत हो सका।

मैक्स से अगस्त में हुई मेरी मुलाकात स्मरणीय रही। बात डॉ. बेविस से शुरू हुई और मेरी नवप्रकाशित पुस्तक की तरफ मुड़ गयी, जो मैंने दक्षिणी अफरीका के एक डॉक्टर के सहयोग से लिखी थी।

क्या मनुष्य का प्रतिरूप बनाना

'मानव-कलम' वैज्ञानिक कथा है, अथवा सत्य––इस विषय पर कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों के विचार जानने के लिए एक पत्रिका ने उनसे कुछ प्रश्न किये। यहां प्रस्तुत है प्रश्न व उनके उत्तर।

मिनेसोटा यूनिवर्सिटी में जीन तथा कोशिका जीव-विज्ञान के प्रोफेसर रॉबर्ट मैकिनेल के विचार––

प्रश्न : क्या निम्न जाति के जीवों पर कलम लगाने का काम सफलतापूर्वक किया गया है?

उत्तर : हां, रॉबर्ट ब्रिग्स तथा थामस किंग ने फिलाडैलफिया के कैंसर अनुसंधान संस्थान में और जॉन गर्डन ने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में जल-थलवासी जीवों में कलम लगायी।

प्रश्न : अगले दौर में किन उच्च जाति के जीवों पर कलम लगाने की संभावना है?

उत्तर : चूहों और खरगोशों की नाभिकीय प्रतिरोपण प्रक्रिया जल्दी ही हो जाएगी। डॉ. जे. डी. ब्रोम्हल ने १९७५ में खरगोश के अंडों पर काम किया। हालांकि उन्हें सफलता नहीं मिली, फिर भी वह खरगोश की कलम लगाने की दिशा में अच्छा काम कर रहे हैं।

प्रश्न : क्या मानव-कलम व्यावहारिक दृष्टि से संभव है?

उत्तर : इसमें दो बाधाएं हैं। पहली है विभाजन की स्थिति। मनुष्य में परिपक्व कोशिकाएं बहुत सुदृढ़ होती हैं, इसलिए मानव-कलम के लिए विभाजन की स्थिति पर काबू पाना जरूरी है। दूसरी बाधा है आणविक प्रतिरोपण तकनीक का अभी अपूर्ण विकास।

सेन डियागो की कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी में जीव-विज्ञान तथा जन-नीति के प्रोफेसर क्लिफर्ड ग्रोब्सटीन के विचार

प्रश्न : अगले दौर में किन उच्च जाति के जीवों पर कलम लगायी जा सकती हैं?

उत्तर : यह असंभव नहीं रहेगा, और कृषि के काम आने वाले स्तनधारी जीवों पर कलम लगायी जा सकेगी।

प्रश्न : क्या मानव-कलम सिद्धांततः संभव है?

उत्तर : हां, संभव है! लेकिन इससे कोई सामाजिक लाभ नहीं है, और इसीलिए इस दिशा में ज्यादा लोग सक्रिय नहीं हैं।

और गर्भ विसंपीड़िन से संबंधित थी।

बुद्धि तीव्र कैसे ?

मैक्स की एक विचारणीय बात में रुचि थी कि इस तकनीक को बुद्धि तीव्र के लिए विकसित किया जाए। उसने याद दिलाया कि 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में हक्सले ने भविष्यवाणी की थी कि परखनली शिशु में बुद्धि भरने के लिए, पोषक कुंड में बुलबुले पैदा करने के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन भरी जा सकती है। मैक्स ने इच्छा व्यक्त की कि उसके कलमज उत्तराधिकारी को इस नयी तकनीक का लाभ दिया जाए।

मैक्स मैरीन से दक्षिण कैलिफोर्निया स्थित अपनी प्रयोगशाला में पहुंचा। हमारी प्रयोगशाला यात्रा के दौरान डार्विन अनुसंधान की प्रगति बताने में उदासीन रही। उसका कहना था कि प्रगति के लिए अब तक का समय पर्याप्त नहीं है।

उसके अनुसंधान का उद्देश्य फिलहाल अंडे के उत्तम विकास की जानकारी प्राप्त करना था। वह शरीर-कोशिका तैयार करने के लिए अंडों के नाभिक निकालने के प्रयोग में भी व्यस्त था।

दिसंबर १९७४ में पहली बार मैंने प्रयोगशाला का दौरा किया। प्रयोगशाला बहुत भव्य थी। जब मैंने डार्विन से प्रयोगशाला में दी गयी सुविधाओं का जिक्र किया, तब डार्विन ने कहा कि किसी चीज की कमी नहीं है। उसने बताया कि बराबर के ही अस्पताल में जीन-शल्य चिकित्सा की सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं।

उसने एक बटन दबाया। एक छोटे-से टेलिविजन के पर्दे पर शुक्र-कोशिकाएं बड़े आकार में दिखायी देने लगीं। डार्विन

उचित है ?

हालांकि कुछ और चीज सिद्ध करते समय यह काम अनायास हो सकता है।

प्रश्न : क्या मानव-कलम व्यावहारिक दृष्टि से संभव है ?

उत्तर : यदि भविष्य में हम इस पर काम करें तो यह संभव है।

जैकसन लेबोरेटरी, बार हार्बर, मैने; के जीव-पुनरुत्पादन विभाग के वैज्ञानिक पीटर होप के विचार––

प्रश्न : क्या मानव-कलम सिद्धांततः संभव है ?

उत्तर : यदि सही मात्रा में प्रयास किये जाएं, तो यह स्तनधारी जीवों पर संभव है। मुझे शंका है कि भविष्य में अधिक प्रयास होंगे, हालांकि इससे साइटोप्लाज्म प्रतिक्रिया के अनुसंधान में मदद मिल सकती है।

प्रश्न : क्या मानव-कलम व्यावहारिक दृष्टि से संभव है ?

उत्तर : मैं मानव-कलम नहीं लगाऊंगा, यह निरुद्देश्य है। हम प्रयोगशाला जीवों पर अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से काम कर सकते हैं। ऐसे अहंकारी व्यक्ति ही मानव-कलम को प्रोत्साहित करेंगे, जो स्वयं को पुनरुत्पादित करना चाहते हैं।

ने बताया कि यह एक जीवंत क्रिया है।

मैंने पूछा," अब और क्या समस्या रह गयी है?"

डार्विन ने उत्तेजित नजरों से मुझे देखा।

"समान वृद्धि की।" उसने रुक्षता से कहा।

मुझे अपने भोलेपन पर तरस आया। वे लोग मानव पर ही काम कर रहे थे।

मैंने पूछा, "क्या आपने सहयोगियों को भी इस कार्य का उद्देश्य बता दिया है?"

उसने बताया, "उन्हें मालूम है कि मैं उनके अंडाशय तथा गर्भाशय का उपयोग करना चाहता हूं। किसी को ऐतराज नहीं है।"

मैंने इस बात की भी पुष्टि कर ली कि डार्विन के अध्ययन में सहयोगी स्त्रियों को उचित धन भी दिया जा रहा है। मैंने यह भी पाया कि वे स्त्रियां जवान और सुंदर थीं।

डार्विन ने यह भी सूचना दी कि एक दर्जन से भी अधिक भ्रूण-श्रृंखलाओं पर काम हो रहा है।

उसके सहयोगियों में मेरी एम.डी. थी और पॉल पी-एच.डी.। पॉल के लिए डार्विन के उस गुप्त मित्र ने जोरदार सिफारिश की थी। मेरी एक शल्य-चिकित्सक थी, जो जीव-विज्ञान में अनुसंधान कर रही थी। पॉल कोशिका जीव-विज्ञान तथा जीव-रसायन-शास्त्र में विशेषज्ञ था। डार्विन ने मुझे विश्वास दिलाया कि नर्स और अन्य तकनीकी कर्मचारी इस कार्य से बिलकुल अनभिज्ञ हैं।

कोई मां बन सकती है

ड्राइवर रोबर्टो के बारे में भी मुझे जानकारी दी गयी कि वह फैक्टरियों तथा फार्मों में जाकर लड़कियों को प्रयोगशाला में अध्ययन के लिए लाता है; उन्हें ग्राहक बनाता है। लड़कियां क्लिनिक में आकर अपने शरीर की जांच कराती हैं, स्वास्थ्य के संबंध में जानकारी लिखवाती हैं और अपने फोटो खिंचवाती हैं। मैक्स उनकी परीक्षा करके उनमें से कुछ को रख लेता था। डार्विन ने बताया कि चुनी हुई लड़कियों में से कोई मैक्स की पत्नी, उसके बच्चे की मां बन सकती है या कम से कम 'कलम प्रक्रिया' में उसके बच्चे को अपना मातृत्व प्रदान कर सकती है।

अगले दिन मैंने देखा कि डार्विन मेरी और पॉल के साथ एक युवती के अंडाशय निकालने की तैयारी कर रहा था।

अपनी दो सप्ताह की यात्रा में मैंने अंडे और भ्रूण के अनेक प्रयोग देखे। यदि डार्विन और उसके सहयोगी शरीर-कोशिका नाभिक को भ्रूण में बदलने में सफल भी हो जाते हैं, तो भी उनके सामने उस भ्रूण को अंड कोशिका में आरोपित करने के लिए पर्याप्त रूप से विकसित करने की कठिनाई आयेगी।

मानव-भ्रूण को 'ब्लास्टोसिस्ट' की स्थिति तक आने में पांच दिन का समय लगता है। इसके बाद उसमें 'ट्रोफोब्लास्ट' कोशिकाएं विकसित होती हैं, जो अंड-कोशिका में प्रवेश के लिए सहायक होती हैं।

मैंने गौर किया कि एक युवती के अंडाशय में से तीन अंडे निकालकर उन्हें प्राकृतिक तथा कृत्रिम अंगों के विलयन से भरी तश्तरी में डाल दिया गया। इन अंडों को पक्वन माध्यम से संषेचित किया गया। पांच घंटे बाद डार्विन ने शुक्राणु तैयार किये।

मैंने संकोचपूर्वक पूछा कि यह शुक्राणु कहां से प्राप्त हुए। उसने बताया कि प्रारंभ में मैंने अपने ही शुक्राणुओं का इस्तेमाल किया, फिर पॉल के।

उत्पत्ति के लिए पूर्ण शक्ति प्राप्त भ्रूण का 'मोरुला' (३२-कोशिका) या और बेहतर 'ब्लास्टुला' (६४-कोशिका) की स्थिति तक आना आवश्यक है।

डार्विन ने बताया कि उसने कुछ परखनली भ्रूणों को आरोपित करना भी शुरू कर दिया है। इससे मैं कुछ चौकन्ना हुआ।

अभी तक कोई ऐसी घटना नहीं हुई थी, जिससे गर्भावस्था का संकेत मिले। मुझे इनमें से एक आरोपण आपरेशन देखने दिया गया।

उत्पत्ति माध्यम से ब्लास्टोसिस्ट एक सिरिंज में खींचा गया। यह सिरिंज

इनके भी क्यां हैं जुदा-जुदा

बहुत अजीब हैं ये दर्दोगम के रिश्ते भी
कि जिसको देखिए अपना दिखायी देता है
—खुर्शीद अहमद 'जामी'

मुझको खुद मुझसे भी मिलने नहीं देती दुनिया
छिपके मिलता हूं कभी जब नहीं होता कोई,
—सुलेमान अरेब

भला हुआ कि कोई और मिल गया तुम-सा
वगरना हम भी किसी दिन तुम्हें भुला देते
खलीलुर रहमान आजमी

ठहरी है तो इक चेहरे पे ठहरी रही बरसों
भटकी है तो फिर आंख भटकती ही रही है
—वहीद अखतर

उससे बिछड़ते वक्त मैं रोया था, खूब-सा
ये बात याद आई तो पहरों हंसा किया
—मुहम्मद अलवी

भीड़ से कटके न बैठा करो तनहाई में
बेखयाली में कई शहर उजड़ जाते हैं
—निदा फाजिली

गले-गले है पानी लेकिन
धान की सूरत लहराता हूं
—हुरमतुल-इकराम

हर तरफ से है मुकाबिल कोई जलता सूरज
धूप की जद से यहां साया बचेगा कितना
—फिजा इब्ने फैज

जख्म लगाकर उसका भी कुछ हाथ खुला
मैं भी धोखा खाकर कुछ चालाक हुआ
—जेब गौरी

रबर की ट्यूब से जुड़ी थी। इस ट्यूब को मेरी ने एक स्त्री के गर्भाशय से जोड़ दिया। तब डार्विन ने गुरुत्वाकर्षण के जरिये भ्रूण को सिरिंज से निकालकर स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट कराया। स्त्री को उसके बाद बहुत देर स्थिर रहने के लिए कहा गया।

वास्तविक प्रगति भ्रूण उत्पत्ति और आरोपण द्वारा ही हो रही थी।

मुझे मालूम था कि मैक्स को त्वचा का कैंसर था, जिसका इलाज चल रहा था और इसके ठीक हो जाने की शत-प्रतिशत संभावना थी। भ्रूण कोशिकाओं तथा कैंसर कोशिकाओं में अकसर समानता पायी गयी थी। क्या यह संभव है कि तेजी से चक्कर काटती कैंसर कोशिकाओं में से एक इस कार्य के लिए उपयुक्त रहे? या इससे दूषित हो जाने का खतरा हो। मेरे प्रश्नों का जवाब देते हुए डार्विन ने बताया कि ऐसी कोई संभावना नहीं है, एडेनोकारसिनोमा कोशिकाओं तथा गुर्दे के फोड़े की कलम सफलतापूर्वक लगायी जा चुकी है।

डार्विन ने कहा, "कोशिकाओं की यंत्र-रचना को नियंत्रित करनेवाले अनुसंधान-कर्ता के लिए नोबल पुरस्कार इंतजार कर रहा है।" उसका विचार था कि कोई ऐसा अणु खोजेगा, जो किसी भी कोशिका से जुड़कर आंख के तारे अथवा हृदय की कोशिका का निर्माण करेगा। तब वह एक संपेचित अंड कोशिका की तरह व्यवहार करेगा, और विकसित होकर एक संपूर्ण आकार बनाएगा। ऐसा हो जाने पर नाभिक स्थानांतरण की कठिन प्रक्रिया से गुजरना आवश्यक नहीं होगा।

कोई कुंआरी ही होगी

एक दिन मेरी से ज्ञात हुआ कि कलम लगाने की तरफ कोई प्रयास नहीं हुआ है और आरोपण प्रयासों के लिए उपयोग में आये सभी अंडों को शुक्राणु द्वारा निषेचित किया गया है। मैंने उस स्त्री के विषय में पूछा, जिसमें मैक्स की कलम-कोशिका लगायी जाएगी और उसका चुनाव कैसे होगा उसने बताया कि सफल उम्मीदवार कोई कुंआरी लड़की ही होगी। इसके लिए कोई चालाकी ही करनी पड़ेगी। उसे तरह-तरह से फुसलाना और बहकाना होगा।

सोलह-सत्रह वर्ष की ऐसी लड़की को ढूंढ़ना मुश्किल था, जो इस प्रक्रिया को सहन कर सके, खास तौर से मैक्स को देखते हुए। मुश्किल यह भी थी कि मैक्स बहुत सुंदर स्त्री चाहता था। केवल दो लड़कियां ऐसी मिलीं, जो आकर्षक भी थीं और इस आयु-सीमा की भी थीं।

पॉल का काम शरीर-कोशिका-नाभिक का अंड-कोशिका में अखंड रूप में प्रविष्ट कराने, क्रियाशील बनाने आदि से संबंधित था। वह सूक्ष्मदर्शी तथा कोशिका-उत्पत्ति का विशेषज्ञ था।

मैक्स ने बताया कि एक लड़की मिली है, जो सत्रहवें वर्ष में है। वह दस वर्ष की आयु में ही अनाथ हो गयी थी। उसका

दायां हाथ एक दुर्घटना में खराब हो गया था उससे छोटा-मोटा ही काम लिया जा सकता था। वह बहुत सुंदर थी। उसका नाम स्पैरो था। मैक्स ने बताया कि स्पैरो आयु को देखते हुए काफी परिपक्व है। स्पैरो क्लिनिक में १९७५ में आयी थी। कुछ दिन बाद उसके साथ अन्नावैले भी आ गयी थी, जो स्पैरो की समवयस्क और सुंदर भी थी। लेकिन मेरी ने स्पैरो को ही चुना।

स्पैरो को बताया गया था कि इसमें एक ऐसे दंपति का अध्ययन किया जा रहा है, जो दूसरे की सहायता से संतान प्राप्त करना चाहते हैं। उसने सब बातों को जल्दी ही समझ लिया। वह बिलकुल विचलित नहीं हुई। उसकी भूमिका बिलकुल नहीं बदली। उसने बाइबिल का हवाला देते हुए कुंआरी मरियम तथा उसके निर्दोष गर्भाधान की भी चर्चा की।

नाभिकीय स्थानांतरण में प्रगति

१९७५ की गर्मियों में मैं और मैक्स साथ-साथ उस प्रयोगशाला में गये। डार्विन ने हमें बताया कि नाभिकीय स्थानांतरण के मामले में अच्छी प्रगति हुई है। उसने कहा कि पहली मानव-कलम लगाने के प्रयास में अब ज्यादा देर नहीं है। यह सुनकर हम बहुत उत्तेजित हुए।

पहला गर्भाधान अक्तूबर १९७५ में हुआ। लगभग तीन महीने तक डार्विन १६ तथा ३२ कोशिकाओं वाले भ्रूण आरोपित करता रहा, लेकिन गर्भाधान ३२ और ६४ कोशिकाओं के बीच आने वाले किसी भ्रूण से हुआ।

दुर्भाग्यवश, मासिक धर्म के कारण अन्नावैले और स्पैरो में से कोई भी भ्रूण आरोपण के योग्य नहीं थी।

नवंबर १९७५ से फरवरी १९७६ तक डार्विन और पॉल ने मिलकर लगभग सौ परीक्षण किये।

मैक्स से टेलिफोन पर मिली सूचना के अनुसार मार्च के मध्य में ऐसा आभास हुआ कि स्पैरो गर्भवती हो गयी है। एक सप्ताह बाद निश्चित तौर पर उसके गर्भवती होने की पुष्टि हुई।

शिशु के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए एक ही अच्छी तकनीक थी। डार्विन ने कहा कि इसका इस्तेमाल गर्भाधान के पंद्रह सप्ताह बाद किया जाएगा। उस भ्रूण के चारों तरफ बहुत सारा द्रव इकट्ठा होगा। इसमें से कुछ द्रव सिरिंज द्वारा निकालकर उसमें तैरती हुई कोशिकाओं का विश्लेषण संभव हो सकता है।

यह सोचा गया कि क्रोमोसोम संबंधी या अन्य जीव-रासायनिक असामान्यताओं पर गौर किया जाए, जिससे कुछ नुकसान न हो। यह पहले ही तय हो चुका था कि विकृति अथवा मानसिक-दोष पाये जाने पर गर्भपात करा दिया जाएगा।

दो सप्ताह बाद डार्विन ने जांच की और सब कुछ ठीक-ठाक पाया।

मैक्स अधिकतर समय स्पैरो के साथ

ही बिताता था ।

मैक्स चाहता था कि स्पैरो तथा शिशु के बीच आजीवन सुदृढ़ संबंध रहें । यदि स्पैरो मैक्स से प्रेम करने लगे । —जैसी कि संभावना थी, तो वह मक्स के बाद, उसकी प्रतिकृति को भी उसी तरह प्यार करने लगेगी ।

गर्भ तेजी से विकसित होने लगा । हम सबने सोच रखा था कि शिशु का जन्म अस्पताल में होगा । लेकिन जन्म से ठीक पहले मैक्स ने निश्चय किया कि शिशु का जन्म संयुक्त राज्य में होना चाहिए ।

डार्विन इस योजना से चिंतित हुआ । लेकिन मैक्स का निर्णय अटल था ।

स्पैरो को आशा से पूर्व ही पीड़ा होनी शुरू हो गयी और अस्पताल में ले जाने के दो घंटे चालीस मिनट बाद ही वह प्रसव के लिए तैयार थी ।

स्पैरो चाहती थी कि शिशु का जन्म दो सप्ताह बाद क्रिसमस के दिन हो । मैक्स प्रफुल्लित था । डार्विन मुसकरा रहा था । मेरी भी आनंदित दिखायी दे रही थी । मैक्स स्पैरो की शैया के किनारे बैठा था । स्पैरो ने बच्चे को एक छोटे-से कंबल में लपेटकर अपने छाती से लगाया हुआ था ।

मैंने सोचा, यह आणविक परिवार नहीं है, बल्कि यह एक रोमांचक दृश्य है —यह बूढ़ा आदमी, यह युवती, यह अजनबी शिशु । मैं सोच रहा था, यह झुर्रियों-दार बच्चा क्या देख रहा होगा, क्या जान सकता है । मैं सोच रहा था, क्या वह साहसी बनेगा ?

मैक्स गोपनीय परिवार से चिंतित

जन्म के एक साल बाद मैक्स अपने तथा अपने इस नये 'परिवार' की गोपनीयता को लेकर चिंतित हुआ । मैक्स, स्पैरो और बच्चा—तीनों साथ थे । रक्त-विश्लेषण द्वारा मैक्स को विश्वास दिला दिया गया था कि बच्चा वास्तव में उसी का कलमज अंकुर है ।

मैक्स को मालूम है कि मैं यह पुस्तक लिख रहा हूं । वह इसका लगातार विरोध भी कर रहा है । हालांकि मैं समझता हूं, वह अब भी उतनी ही तीव्रता से विरोध नहीं कर रहा है । मुझे विश्वास है कि मैक्स इसके प्रकाशन से अप्रसन्न नहीं होगा ।

इस पुस्तक की प्रतिक्रिया मैक्स और डार्विन के लिए लाभप्रद होगी और उनके भविष्य के कार्यकलाप को प्रभावित कर सकती है । मुझे पूरा यकीन है कि समय के साथ-साथ यह काम लोगों के सामने दस्तावेज होगा । आने वाले वर्षों में और भी बहुत सारी बातें सामने आ सकती हैं ।

मैं आशा करता हूं कि पुस्तक में वर्णित संभावनाओं के लिए बहुत सारे पाठक सहमत हो सकेंगे और इस आश्चर्यजनक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न भावनात्मक और नीतिपरक मामलों में कुछ पा सकेंगे ।

यदि पुस्तक जनता में रुचि जगाती है, तो मैं अपने को धन्य समझूंगा । ●

प्रवेश

'प्रवेश' स्तंभ का उद्देश्य ऐसे उदीयमान एवं सृजनशील रचनाधर्मियों को प्रोत्साहन देना है, जिनमें सचमुच में मौलिक काव्य-प्रतिभा और सूझबूझ है तथा जो आगे चलकर अच्छे कवि सिद्ध हो सकते हैं।

यदि आप 'प्रवेश' के अंतर्गत अपनी कविता प्रकाशित करवाना चाहते हैं, तो इन नियमों का पालन करते हुए रचना भेजें।

१. 'प्रवेश' के लिए कम से कम पांच कविताओं को भेजना जरूरी है। उनमें से किसी उपयुक्त रचना का चुनाव कर हम उसे छापेंगे। पांच से कम कविताएं भेजने पर उन पर विचार नहीं किया जाएगा।

२. ये कविताएं २५ पंक्तियों से बड़ी न हों। आप गीत, नयी कविता या हिंदी गजल भी भेज सकते हैं।

३. 'प्रवेश' के लिए भेजी जानेवाली कविताएं मौलिक एवं सर्वथा अप्रकाशित तथा अप्रसारित हों।

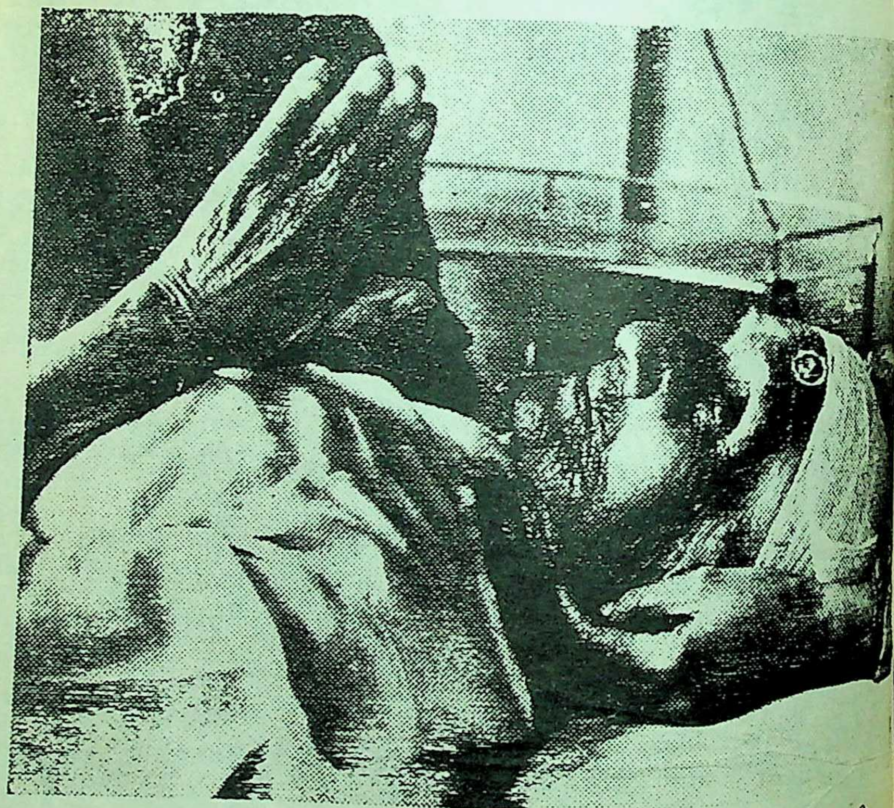
४. 'प्रवेश' में कविता प्रकाशित कराने की उत्सुकता में अक्सर लोग या तो किसी और की कविता भेज देते हैं या फिर उनके भावों और शिल्प के आधार पर एक दूसरी कविता बना देते हैं। अतः किसी भी कवि के भावों, शिल्प या छंद की नकलकर भेजी गयी कविताओं पर विचार नहीं किया जाएगा।

५. रचनाओं के साथ अपना ताजा चित्र, जन्म-तिथि, शिक्षा एवं आजकल क्या कर रहे हैं, इस संबंध में पूर्ण विवरण भेजिए।

६. रचनाओं की वापसी के लिए उपयुक्त डाक-टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजिए। रचनाएं भेजते समय लिफाफे पर बायीं ओर 'प्रवेश' स्तंभ के लिए अवश्य लिखें। पता है—

संपादक,
'कादम्बिनी'
हिंदुस्तान टाइम्स लि, १८-२०, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली-११०००१

'यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी' लेखमाला के अंतर्गत आपने भारत सरकार के उप-महानिदेशक डॉ. देशबंधु बिष्ट, सुप्रसिद्ध हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉ. रामकुमार करौली, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली में शल्य-चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डॉ. आत्मप्रकाश, हृदय रोग-विशेषज्ञ डॉ. प्रभुदयाल निगम, सफदरजंग अस्पताल, नयी दिल्ली में 'इंस्टीट्यूट ऑव ऑरथोपीडिक्स' के निदेशक डॉ. विश्वकर्मा एवं अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान नयी दिल्ली के मुख्य प्रशासन अधीक्षक प्रो. राजेन्द्रप्रसाद सिन्हा के विचार पढ़े। इस अंक में प्रस्तुत हैं--डॉ. राममनोहर लोहिया अस्पताल में गायनोकालॉजी विभाग की अध्यक्षा डॉ. गौरी सेन के अनुभव और विचार।



ने भारत सरकार
डॉ. रामकुमार
चिकित्सा विभाग
गम, सफदरजंग
क डॉ. विश्वकर्मा
न अधीक्षक प्रो.
मनोहर लोहिया
के अनुभव और

यह उनके जीवन की अंतिम शाम थी —१३

गौरी सेन

उस रात हम सब एक रोगिणी के कारण बेहद परेशान थे। उसे अचानक रक्त-स्राव होने लगा था और उसके साथ 'ब्लड-क्लॉटिंग' होना भी बंद हो गया था। उस रोगिणी के मुंह से, नाक से और अन्य स्थानों से बराबर रक्त-स्राव हो रहा था, और हम सब प्राणपण से उस रोगिणी को बचाने में जुटे थे। इधर उसे खून चढ़ाया जा रहा था, उधर रक्त-स्राव जारी था। भाग्य की बात, उस रात हमें 'ब्लड-बैंक' से आवश्यकतानुसार खून मिलता रहा।

'ब्लड-बैंक' के इनचार्ज ने हमें बार-बार आश्वस्त किया, आप जितनी बोतल खून चाहेंगे, मिलेगा। इस विषय में चिंता न करें। उस सारी रात मैं अस्पताल में रोगिणी को बचाने में जुटी रही।

सुबह करीब चार बजे हमें उस रोगिणी के रक्त में एक 'क्लॉट' दिखायी दिया। हमें कुछ आशा बंधी। चार घंटे बाद उसकी स्थिति में काफी सुधार हुआ और वह खतरे से पूरी तरह बाहर हो गयी। उसे पुनः ठीक होते देखकर, मुझे बेहद संतोष हुआ। ऐसा संतोष, जो डॉक्टरी पेशे के तमाम तनावों और परेशानियों को क्षणभर में दूर कर देता है।

डॉक्टर नहीं बनना

जिंदगी का दिलचस्प तथ्य यह है कि इन्हीं सब परेशानियों और तनावों का अनुमान कर मैं पहले डॉक्टर नहीं बनना चाहती थी। मेरी इच्छा केमिस्ट्री की लेक्चरार बनने की थी, इसकी प्रेरणा अपने कॉलेज की केमिस्ट्री-लेक्चरार से मिली थी। तब मैं रंगून में जेंसटन मिशनरी कॉलेज की छात्रा थी। वे लेक्चरार अमरीकी महिला थीं और उनसे मैं बेहद प्रभावित थी। पर मेरे पिता चाहते थे कि मैं डॉक्टर बनूं। उनके निरंतर दबाव ने ही मुझे डॉक्टरी पढ़ने के लिए विवश किया, और आज जब मैं डॉक्टर बन गयी हूं, तब ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद देती हूं कि मैंने अपने पिताजी की बात मानकर ठीक ही किया था। करण, इस 'पेशे' में, यदि इसे 'पेशा' ही माना जाए, तो काम का संतोष, अर्थात 'जॉब सेटिस्फेक्शन' बहुत ज्यादा है।

हमारा ज्ञान कितना अल्प है !

खासकर मुझे अपने काम में बेहद संतोष है, क्योंकि एक 'गायनोकालॉजिस्ट' पर दो व्यक्तियों के जीवन की जिम्मेदारी होती है। एक मां की और दूसरी उसके नवजात शिशु की। प्रसूति करानेवाली डॉक्टर की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। उसे केवल यही नहीं देखना होता कि बच्चा शारीरिक रूप से स्वस्थ पैदा हो जाए। उसे बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य का भी पूरा ध्यान रखना होता है, मसलन यदि बच्चे को जन्म के बाद पर्याप्त ओषजन (ऑक्सीजन) न मिले, तो उसके मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ सकता है। यह बात मैंने तब अनुभव की, जब मुझे 'पेडियाट्रिक' विभाग में कुछ समय काम करना पड़ा। वहां मैंने मानसिक रूप से अस्वस्थ, अविकसित, लकवे से ग्रस्त बच्चे को देखा, तो क्षणभर के लिए मन ही मन सिहर उठी, तब उन दिनों मुझे प्रसूति के काम की एक नयी जिम्मेदारी का ज्ञान हुआ। साथ ही इस बात का भी भान हुआ कि तमाम वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिकतम चिकित्सा-व्यवस्था में, हमारा ज्ञान कितना अल्प है। ईश्वर ने साढ़े-पांच फुट का जो यह शरीर बनाया है, उसके बारे में बहुत कुछ जानने का दावा करने के बाद भी हमारा ज्ञान कितना थोड़ा है।

यह विचार अकसर मेरे मन में आता है। खासकर उस समय, जब तमाम प्रयत्नों के बावजूद हमें किसी 'केस' में सफलता नहीं मिलती। ऐसा अकसर कैंसर के मरीजों के साथ होता है। आज से कुछ वर्ष पहले ही कैंसर के बारे में न इतनी ज्यादा जानकारी थी, और न उसके इलाज की आज-जैसी चिकित्सा-सुविधाएं ही थीं। तब मरीज की, ऑपरेशन या 'रेडियेशन' के बाद होनेवाली तकलीफों को देखकर मन पीड़ा से भर जाता था।

'मुसकराते रहो'

पर आज स्थिति बदल गयी है। कैंसर के उपचार की दिशा में काफी तरक्की भी हुई है। मुझे सहारनपुर से आयी एक रोगिणी की यदा-कदा याद आती है। उसे स्तन-कैंसर हो गया था। यह दस बरस पहले की बात है। अपनी बीमारी से वह बेहद दुःखी थी। उसके संबंधी भी निराश और हताश-से थे। मैंने उन्हें ढाढ़स बंधाया और रोगिणी से भी कहा कि घबराने से तो ठीक नहीं हो जाओगी ! हम तुम्हें ठीक करने की पूरी कोशिश करेंगे, और ईश्वर चाहेगा, तो तुम शीघ्र ही स्वस्थ भी हो जाओगी।

मैंने उस निराश रोगिणी की आंखों में हलकी-सी चमक देखी। वह धीरे-से मुसकरा उठी। मैंने कहा, "बस, इसी तरह सदा मुसकराती रहो।"

मैंने एक तिथि निश्चित कर उस महिला का ऑपरेशन किया। ऑपरेशन शत-प्रतिशत सफल रहा और न केवल वह रोगिणी, बल्कि उसके निकट के संबंधी भी बेहद संतुष्ट होकर अस्पताल से विदा

डॉ. गौरी सेन, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस., नयी दिल्ली के डॉ. राम-मनोहर लोहिया (विलिंगडन) अस्पताल में गायनोकालॉजी एवं ऑबस्टीट्रिस विभाग की अध्यक्षा, कुशल सर्जन भी हैं। बर्मा में जन्मी डॉ. सेन ने १९५० में रंगून मेडिकल कालेज से शिक्षा ग्रहण की, फिर स्नातकोत्तर-अध्ययन के लिए भारत आयीं। मद्रास के एग्मोर अस्पताल में शिक्षा प्राप्त कर, वे पुनः रंगून लौट गयीं। सन १९५६ में वे भारत आयीं, नयी दिल्ली के लेडी हार्डिग्ज अस्पताल में कुछ समय कार्य करने के बाद वे विलिंगडन अस्पताल में नियुक्त हुईं।



हुए। उन्हें संतुष्ट जाता देखकर, मुझे जितना संतोष और आत्मिक आनंद हुआ, उसे लिखना कठिन है।

इच्छा-शक्ति जरूरी

मैंने अनुभव किया है कि किसी भी रोगी में इच्छा-शक्ति, बीमारी से अंत तक लड़ने का संकल्प अवश्य होना चाहिए। इससे उसका इलाज करनेवाले डॉक्टरों को बड़ी सहायता मिलती है।

तीन-चार वर्ष पूर्व की बात है, मेरे पास एक पंद्रह-सोलह वर्षीय लड़की आयी। उसके फेफड़ों और पेट में पानी भर गया था। दुबली इतनी थी कि हड्डियों का ढांचा लग रही थी। हमने उसके पिता से कहा कि ऑपरेशन करके देखते हैं, वैसे इसके ठीक होने की ज्यादा आशा नहीं दिखायी देती। लड़की का पिता क्षणभर सोचता रहा, फिर उसने कहा, "डॉक्टर, ऑपरेशन कर दीजिए। हो सकता है, यह ठीक ही हो जाए।"

हमने उस लड़की का ऑपरेशन किया, तो उसकी छाती में ट्यूमर निकला, जो 'मेलिगनेंट' (विषैला) था। उसके बाद हमने उस लड़की को बंबई के टाटा मेमोरियल कैंसर अस्पताल में भेजा। अब वह लड़की स्वस्थ है तथा पढ़ रही है, और उसके माता-पिता उसके विवाह की योजना भी बना रहे हैं। जब उसके पिता ने मुझसे उस लड़की के विवाह के बारे में सलाह ली, तब मैंने कहा, "आप उसके भावी पति को सारी स्थिति से अवगत करा दीजिएगा।" यह मैंने इसलिए कहा कि कुछ मामलों में कैंसर पैतृक रोग भी सिद्ध हो सकता है। ऐसे मामले देखने में आये हैं कि दादी को कैंसर था, तो उसकी पोती में भी इसी रोग के लक्षण पाये गये।

अपने लंबे डॉक्टरी-जीवन से मैं कुछ निष्कर्षों पर पहुंची हूं और चाहती हूं कि पाठक, विशेषकर पाठिकाएं, उनका लाभ उठायें। पहली बात तो यह कि जो युवतियां विवाह के बाद कई कारणों से प्रथम संतान को जन्म देने में विलंब करना चाहती हैं, वे अपनी इस प्रवृत्ति को छोड़ें।

देखा गया है कि आजकल विवाह ही देर से होते हैं। फिर नव विवाहिताएं कई कारणों से पहला बच्चा तुरंत नहीं चाहतीं। गर्भ-निरोधक के लिए वे विभिन्न उपाय करती हैं और यदि गर्भ रह जाता है तो गर्भपात के लिए दौड़ती हैं। यों, आजकल गर्भपात आसान और निरापद हो गया है, फिर भी उसमें खतरे तो बने ही रहते हैं। यदि पहला बच्चा ही गर्भपात के हवाले करा दिया जाए, तो कभी-कभी आगे के लिए कठिनाई भी पैदा हो सकती है। अतः मेरी सलाह है कि प्रथम बच्चे का जन्म जितनी जल्दी हो, उतना अच्छा है। हां, दूसरे बच्चे के लिए इच्छानुसार समय लिया जा सकता है। उसके लिए स्थान-स्थान पर स्वास्थ्य केंद्रों और अस्पतालों में परामर्श की व्यवस्था है।

एक बात और है, छोटी उम्र में प्रसूति ज्यादा आसान है, बनिस्बत बड़ी उम्र के। अधिक उम्र होने पर प्रसूति की दिक्कतें बढ़ती जाती हैं।

बीमारी की उपेक्षा न करें

अकसर गर्भवती स्त्रियों के पैरों में सूजन आदि होने पर घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां उसे स्वाभाविक मानकर किसी प्रकार की चिंता न करने की सलाह देती हैं। यह गलत रवैया है। पैरों में सूजन होते ही डॉक्टर से परामर्श करना जरूरी है। कारण, किसी भी रोग को यदि प्रारंभ में ही पकड़ लिया जाए, तो उससे जल्दी छुटकारा पाया जा सकता है।

इसी तरह प्रसव-वेदना के होने पर ही डॉक्टर के पास जाने की प्रवृत्ति भी गलत है। गर्भवती स्त्री को प्रतिमास अपना 'चेकअप' कराते रहना चाहिए। गर्भावस्था के दौरान कभी-कभी स्त्री को 'फिट' आने लगते हैं। अकसर इनकी उपेक्षा कर दी जाती है। ऐसी अवस्था में भी डॉक्टर से तुरंत मिलना चाहिए, क्योंकि ऐसी हालत में बच्चे पर बुरा असर पड़ सकता है।

शहरों में तो आजकल स्वास्थ्य-केंद्रों, अस्पतालों या निजी प्रसूति-गृहों में जाने का रिवाज बन गया है। पर गांवों में अभी भी परंपरागत तरीके से प्रसूति करायी जाती है। इसलिए ग्रामीण स्त्रियों व परिवारवालों के लिए इन सब बातों की ओर ध्यान देना जरूरी है।

धनुषटंकार का बचाव

इसी तरह विश्व-स्वास्थ्य-संगठन के परामर्श पर हमने गर्भवती-स्त्रियों को 'एंटी टिटेनस इंजेक्शन' लगाना शुरू किया



कतार में बैठी महिलाएं अपनी पारी की प्रतीक्षा में

है। इससे स्त्री और उसके गर्भस्थ शिशु, दोनों को लाभ होता है और 'टिटेनस' या 'धनुषटंकार' बीमारी होने की आशंका नहीं रहती।

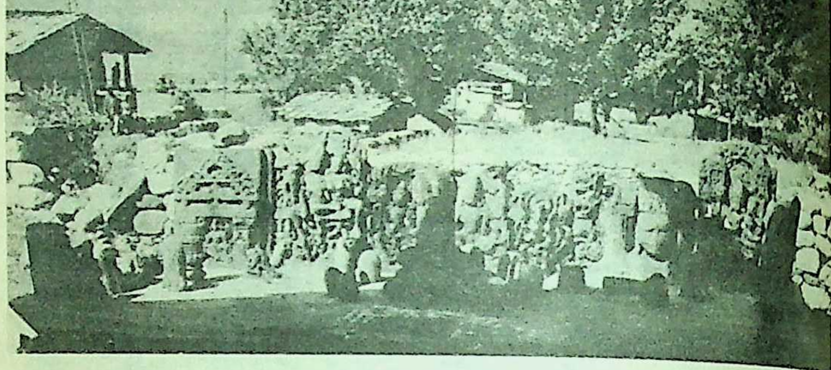
अनियमित मासिक-धर्म उपेक्षा न करें

चालीस वर्ष की अवस्था के बाद स्त्रियां अपने अनियमित मासिक-धर्म के प्रति बेहद उपेक्षा बरतने लगती हैं। वे सोचती हैं कि अब तो इस झंझट से मुक्ति मिलनेवाली है। इस उम्र में कभी-कभी मासिक-धर्म नियमित नहीं होता। अर्थात कभी वह निश्चित तिथि से पहले हो जाएगा या कभी बहुत बाद में। कभी बहुत अधिक होगा तो कभी बहुत कम। इन बातों की उपेक्षा न कर डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए। डॉक्टर ही भली-भांति जांचकर इन बातों का सही कारण बता सकती हैं। मैं यह इसलिए लिख रही हूं कि कभी-कभी ये बातें शरीर में पलने-वाले किसी रोग का भी लक्षण हो सकती हैं जैसे भीतर रसौली हो सकती है या फिर कोई जख्म ही हो सकता है।

इस लेखमाला में अनेक डॉक्टरों ने मृत्यु के पूर्वाभास, टेलीपैथी, ईश्वर के अस्तित्व आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त किये हैं। मृत्यु का पूर्वाभास या टेलीपैथी के बारे में तो मेरा कोई अनुभव नहीं, हां, ईश्वर की सत्ता पर अटूट विश्वास करती हूं।

अस्पताल आने के पूर्व मैं नियमित रूप से काली और दुर्गा की पूजा करती हूं। इस पूजा से मुझे आत्मविश्वास और संतोष प्राप्त होता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे मस्तिष्क में प्रत्येक विचार ईश्वर की प्रेरणा से ही आता है।

—ई-४२६ ग्रेटर कैलाश, नयी दिल्ली



वे पांच हजार वर्ष का इतिहास ढो रहे हैं

● तरुण विजय

हिमालय के सांस्कृतिक पुत्रों में जौनसार बावर के निवासियों का स्थान विशिष्ट है। उनकी विलक्षण मान्यताएं, जीवन-मूल्य व परिपाटियां शेष भारत से भिन्न, एक अलग सांस्कृतिक विरासत की द्योतक हैं। स्वयं को पांडवों की संतान बतानेवाले यहां के निवासियों में बहुपति, बहुपत्नी दोनों प्रथाएं प्रचलित हैं। यद्यपि यह प्रथा धीरे-धीरे कम हो रही है, फिर भी पांच-पांच पतिदेवों के संग निर्वाह करती आधुनिक द्रौपदियां यहां परिवार चलाती हुई देखी जा सकती हैं। यहां ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे।

यमुना के पार स्थित इस विलक्षण पर्वत प्रदेश में पुरातत्त्व विभाग द्वारा की गयी खुदाई में अभी हाल ही में काले पत्थर से निर्मित विशालकाय शिवलिंग प्राप्त हुआ है। इतना सुंदर तथा भव्य शिवलिंग मैंने पहले कहीं नहीं देखा।

एक अलग दुनिया के वासी

विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि महाभारतकालीन सभ्यता से यह प्रदेश काफी प्रभावित है, तथा उस काल में यह काफी संपन्न संस्कृति का केंद्र रहा होगा। यहां काफी संख्या में मिली यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियों से यह भी सूत्र निकाला गया

ऊपर : मृणमूर्तियां, जिनमें मुखरित है इतिहास

है कि जौनसार यवनसार का ही अपभ्रंश है और यहां कुषाण व हूण साम्राज्य रहा होगा। कुछ इतिहासकार इस मत के हैं कि यहां के राजा भोगदत्त ने महाभारत युद्ध में कौरवों का साथ दिया था। उल्लेखनीय है कि इसी क्षेत्र के निकट 'हर की दून' नामक स्थान में दुर्योधन का प्राचीन मंदिर है, जहां के निवासी दुर्योधन की पूजा करते हैं। वस्तुस्थिति कुछ भी हो अनेक दंतकथाओं और ऐतिहासिक तथ्यों के ताने-बाने में उलझा यह प्रदेश अभी तक सत्ता से नितांत उपेक्षित व स्वयं में ही मग्न रहा है।

वेश्यालयों में निर्यात

संगीत की धुन पर चावल की 'छान' पीकर मदमत्त हो नृत्य करना यहां के जीवन का अनिवार्य अंग है। चूंकि यहां स्वच्छंद यौन-संबंधों को मान्यता है, इस कारण शासकीय अधिकारियों व शहर के 'सफेदपोश' लोगों ने इनका बहुत शारीरिक शोषण किया है। यहां तक कि इस क्षेत्र की भोली-भाली कन्याओं को शादी के बहाने बहला-फुसलाकर दिल्ली व मेरठ के वेश्यालयों में बेचे जाने का नियमित व्यापार प्रारंभ हो गया। अब तो स्थिति यह है कि भारत के लगभग सभी प्रमुख वेश्यालयों में इस क्षेत्र की कोई न कोई हतभाग्य महिला मिल ही जाएगी। हालांकि पिछले तीन-चार वर्षों से इस कलंक को दूर करने के लिए सरकार ने

नृत्य-संगीत में मग्न जौनसार



कई अभियान छेड़े, देहरादून के नेहरू-युवक केंद्र के कार्यकर्ताओं की सहायता से वेश्यालयों में बेची गयीं यहां की महिलाओं को 'मुक्त' कराया गया व उन्हें पुनः बसाने की योजना भी चलायी गयी। लेकिन आधे मन के कार्य का जो परिणाम होता है, वही ऐसे अभियानों का भी हुआ।

वर्जनाहीन दृष्टिकोण

दिल्ली के बदनाम जी. बी. रोड के चकलों से 'मुक्त' करायी गयीं कुछ जौनसारी महिलाओं से जब मैंने बात की, तब उन्होंने बताया कि दलालों ने उन्हें पहले किसी सेठ से शादी कराने का आश्वासन दिया और दिल्ली लाकर एक व्यक्ति से झूठ-मूठ का ब्याह रचा दिया। बाद में, जब पिता 'संतुष्ट' होकर घर लौट गया, तो, दूसरे शहरों में ले जाकर जबरदस्ती 'पेशा' करवाया गया। वैसे इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। चूंकि, यहां यौन-संबंधों के संबंध में प्रायः वर्जनाहीन दृष्टिकोण है, इसलिए गरीबी से संत्रस्त तथा शहरी चमक-दमक से आकर्षित होकर यहां की कुछ महिलाएं अपनी इच्छा से भी वेश्यालयों में जाती हैं। लेकिन इन्हें अपवाद ही मानना चाहिए। वैसे, एक स्वागत-योग्य तथ्य यह है कि वेश्यालय से मुक्त कराकर गांव वापिस लायी गयी महिला के प्रति यहां के निवासी भेदभाव नहीं बरतते। उन्हें स्वीकार कर लेते हैं।

अंधविश्वासों की जकड़

जादू-टोनों व ग्राम-देवता के पूजन का व्यापक चलन है। हर कार्य को आरंभ करने से पूर्व देवता को प्रसन्न करना पड़ता है। किंवदंती के अनुसार सहस्राब्दियों पूर्व यहां के एक किसान को खेत में हल चलाते समय एक विकराल सर्प के दर्शन हुए, जिसने मनुष्यवाणी में कहा, 'मैं तुम्हारे क्षेत्र का देवता हूं। मेरी मूर्ति की स्थापनाकर तुम लोग पूजन-अर्चन किया करो। मैं तुम्हें सुखी जीवन के तरीके बताऊंगा और तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी करूंगा।' उस देवता का नाम महासू देव है, जो संभवतः महाशिव का अपभ्रंश है। तब से इस देवता की पूजा चली आ रही है। हर गांव का एक सयाणा (मुख्य पुरोहित) होता है। यही व्यावहारिक तौर पर गांव का शासक माना जाता है, तथा किसी भी प्रकार के झगड़े या परंपरा-भंग करने के मामले ऐसे ही तीन या चार सयाणे मिलकर निबटाते हैं। यह एक प्रकार से पंचायत ही होती है, जिसे इनकी अपनी भाषा में 'खुमड़ी' कहा जाता है। इस स्याणाचारी (सयाणों का शासन) को १८२२ में यहां के अंगरेज प्रशासक मेजर यंग से बहुत बढ़ावा मिला था, जिससे सयाणों के मनमाने अत्याचार व अन्यायपूर्ण कृत्य निरंतर बढ़ते गये। अभी तक यह स्थिति कहीं-कहीं विद्यमान है कि यदि कोई अपने आपसी झगड़े शहर की अदालत में ले जाता है, तो उसे जाति-द्रोही करार कर दिया जाता है। सयाणों की 'खुमड़ी' में मामला तय करवाने का

कोई टूटा हुआ रिश्ता
न दामन से उलझ जाए
तुम्हारे साथ पहली बार
बाजारों में निकला हूं
—जुबैर रिजवी

सीधा अर्थ है—जिसका पैसा ज्यादा बहेगा, निर्णय उसी के पक्ष में होगा। इस विकृति का एक मुख्य कारण रेवेन्यू पुलिस का प्रचलन है। यहां गांव-प्रधान या तहसीलदार को पुलिस के अधिकार हैं। नियमित पुलिस व्यवस्था नहीं है—इसलिए हर तरह का शोषण सहना पड़ता है।

खूनी परंपरा का अंत

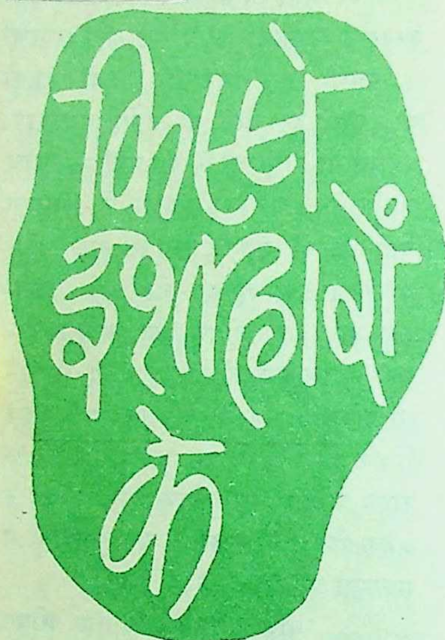
जौनसार बावर में सदियों से एक अत्यंत क्रूर व वीभत्स परंपरा चली आ रही थी—भैंसा वध की। दुर्गानवमी के अवसर पर देवी के मंदिर के सम्मुख दस-बारह भैंसों को इकट्ठाकर पहले सुरा के नशे में खूब नृत्य किया जाता था और फिर उन्हें घायलकर तड़पाते हुए मार डालते थे। तरीका यह होता था कि पुजारी तलवार का पहला प्रहार एक भैंसे पर करता था। घायल होते ही भैंसा तड़पकर भागता था, जिसके पीछे सैकड़ों ग्रामीण हर तरह का हथियार, प्रायः खुंडी घार-वाले, लेकर भैंसे का पीछा करते थे और उस पर वार करते थे। ये खेल तब तक चलता था, जब तक भैंसा गिरकर तड़पने न लगे। उसे एकदम न मारकर तड़पने के लिए छोड़ देते थे। शेष १४-१५ भैंसों के साथ यही खेल दोहराया जाता था। इस क्रूर परंपरा के दो उद्देश्य थे। एक तो १५–१६ भैंसों को मारकर गांव की अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ा जाती थी और सयाणों व सवर्णों की मनमानी चलती रहती थी। दूसरे इन भैंसों के निरीह वध द्वारा यह बताया जाता था कि जो कोई भी 'नीच जाति' का व्यक्ति सवर्णों के खिलाफ विद्रोह करेगा, उसका ऐसा ही हाल किया जाएगा। इसलिए इन भैंसों को 'बागी' कहा जाता था। शोषण, अन्याय व अत्याचार के खिलाफ जो बोले वह भी 'बागी'-सा परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहे। पिछले दो वर्षों से इस क्रूर प्रथा को देहरादून के युवा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने अनेक विपत्तियां सहकर, बंद करवाने में सफलता प्राप्त की है।

भविष्य के गर्भ में नया जीवन

सामाजिक गतिविधियों की सघनता, सरकार द्वारा इन पर अंधाधुंध पैसा खर्च करना और शहर की चमक की पहुंच से इस अज्ञातवासी पांडवों के क्षेत्र में बहुत तब्दीलियां आ रही हैं। कुछ अच्छी बातें भी उभर रही हैं। यथा हरिजनों, दलितों द्वारा सयाणों के खिलाफ संगठित विद्रोह। कई गांवों में तो हरिजन ही ग्राम प्रधान बने हैं। यद्यपि विभागीय लाल-फीताशाही व भ्रष्टाचार के कारण इतना नहीं हो पाता, जितना अपेक्षित होता है। परंतु इतना जरूर है कि एक नयी जिंदगी की चेतना का उदय होता जा रहा है।

—७६बी./सी-२, लारेंस रोड, नयी दिल्ली

हास्य-व्यंग्य



● डॉ. संसारचंद्र

आप मियां खलील खां को तो जानते ही होंगे। बिलकुल वही, जो कल तक फाख्ता उड़ाया करते थे। मगर जमाना लद गया और साथ ही फाख्ता भी। बेचारे खलील खां खाली हाथ पटकते रह गये। अब वे इतने हकीर तो न थे, कि फाख्ता उड़ाना छोड़, मक्खियां मारना शुरू कर देते। गो जमाने ने उनको छोड़ दिया था, मगर वे जमाने को छोड़नेवाले न थे। उन्होंने फैसला कर लिया कि अब वे तोते उड़ायेंगे—तोते होश के, होश आप का, मेरा, कुल जमाने का। सो जनाब खलील खां निठल्ले नहीं बैठे, और लगे हाथों इश्तहारों के हुनर में महारत हासिल कर ली। आज फिर जमाना उनका है, वे जमाने के हैं। कोई चीज गिरे तो इश्तहार, कोई चीज उठे तो इश्तहार। हर शै इश्तहार के पंखों पर ही उड़ रही है। उसे नीचे पटकने के लिए भी आसमान पर इश्तहारों के बाज छोड़ने पड़ते हैं। जहर का इलाज जहर है और लोहा, लोहे को काटता है। इश्तहार का जवाब इश्तहार है। एक इश्तहार से दूसरे इश्तहार को ललकारा जाता है। छोटे-मोटे इश्तहारों की खाना-जंगी से लेकर बड़े-बड़े इश्तहारों के महाभारत छिड़ते हैं। इश्तहारी युद्ध क्या अजब तरह का युद्ध है। गली-गली, घर-घर इसकी चौकी है। हर कस्बे में इसकी हल्दीघाटी है। हर शहर में इसके पानीपत हैं। हर महानगर इसका कुरुक्षेत्र है—'वाटरलू' है। यह इश्तहारी जंग सुबह-शाम बदस्तूर जारी है। कहीं कोई सीजफायर नहीं कोई ताशकंद मुजाहिदा नहीं, कोई शिमला-समझौता नहीं। सो जनाब! आज का जमाना इश्तहारों का है और है पोस्टर-वार का।

दो-चार रोज पहले एक साहिब तशरीफ लाये। कुछ जरूरत से ज्यादा परेशान नजर आते थे। एम. ए. पास करने के बाद रिसर्च करने का भूत सर पर सवार हो गया था। उनके हाथ में एक इश्तहार भी था, जो वे चोटी के अदीबों को भेज रहे थे, ताकि उनके नेक मशविरों

से रिसर्च के लिए कोई नायाब 'टॉपिक' इनके हाथ लग सके। मेरे पास वह इश्तहार देर से लाये थे। शायद इस ख्याल से कि मैं विद्वान तो जरूर हूं मगर अंगरेजी तहजीब का शिकार होकर मैंने अपनी चोटी को कब का खैरबाद कह दिया है। उन्हें ऐसे विद्वान की तलाश थी, जो चोटी पर हाथ फेरते-फेरते छूमंतर कहते हुए कोई अच्छा-खासा मजमून गढ़कर उन्हें थमा देता और कहता —"जाओ बेटा मौज करो।" जब उन हजरत ने मुझसे बात चलायी, तो मैंने उनकी ही चोटी खींचते हुए धमकाया—"अरे नाला-यक, तहकीक के लिए बेहतरीन मजमून तो तेरे हाथ में है।" वह चौंका, तो मैंने बताया— 'यह इश्तहार अपने में ही खोज का एक अहम मसला है। यह जखीरा है, जिसमें खीर भी है और खीरा भी। दोनों का मजा लो। खीर में खांड डालकर और खीरे पर नमक लगाकर। खांड और नमक का ऐसा बेहतरीन इत्तहाद सिवाय इश्त-हार के और कहां मयस्सर होगा।" तो फैसला हुआ कि वे इश्तहारों पर ही रिसर्च करेंगे।

इश्तहारों की सवाने उमरी, उनकी मुख्तलिफ किस्में, उनका शानदार किर-दार, करिश्मे, उनका जादू, उनकी तोड़-फोड़ की पॉलिसी वगैरा-वगैरा।

आज तो इश्तहारों का सितारा सातवें आसमान पर है, मगर अफसोस कि हम अपने अतीत से इस कदर कटे हुए हैं कि अपने सबसे पहले इश्तहार के बारे में भी बिलकुल कोरे हैं। पहली नज्म, पहली नसर, पहला इंसान, पहला शायर, पहली किताब वगैरा के मुकाबिले में पहले इश्तहार की अहमीयत को कौन नजर-अंदाज कर सकता है ? न जाने कब हमारे तारीख दान—हमारी ताजीबोतम्मदन और फलसफे का हिसाब-किताब रखने-वाले—इश्तहारों की सेवाओं का एहत-राम करेंगे। चाहे हिमालय खोदना पड़े, या समुंदर सुखाना पड़े या दोनों का पर-स्पर तबादला करना पड़े, कौमी खिदमत का यह दिलचस्प काम जल्द-अज-जल्द होना चाहिए। हमारा पहला इश्तहार कौन-सा था ? कब, क्यों और किन हालात में उसका जन्म हुआ ? आखिर इन सवालों



के जवाब हमारे लिये अशद जरूरी हैं। अगर इस काम के लिए कोई इश्तहार भी निकालना पड़ जाए, तो पीछे नहीं हटना चाहिए।

कल सुबह जब मैं चाय की चुस्की के साथ अखबार के वरक पलट रहा था, तब यकायक रंग-बिरंगे हैंडबिल अपने पंख फड़फड़ाने लगे। रंग-बिरंगे कागजों पर रंग-बिरंगी खुशखबरियों के एलान थे। मौसम की गरमी का मजा लीजिए, घर बैठे कश्मीर की ठंडी हवाओं का लुत्फ उठाइए। यह पंखों और कूलरों का इश्तहार था। मैं आपको हर चीज ताजा और जायकेदार दूंगा—भरोसा कीजिए और एक बार मेरी दोस्ती को आजमाइए—यह फ्रिजवालों का एलान था। बिना मैट्रिक पास किये बी. ए. की डिग्री हासिल कीजिए—यह किसी लोकल अकेडमी का इश्तहार था।

मैं इन अखबारी इश्तहारों में अकसर खो जाता हूं। यह भोला सा मासूम चेहरा ऊपर लिखा है "गुम-शुदा की तलाश"। प्यारे रमेश! जल्द आ जाओ— ... यह बीमार है, वह परेशान है, वगैरा-वगैरा। आखिर में मोटे अल्फाज में लिखा है—और लड़कीवाले भी मान गये हैं। नया जाल फेंका गया है। साथ ही काले हाशिये में हंसता हुआ बुजुर्गनुमा चेहरा। लगता है कोई चल बसा है। पगड़ी या उठाले की सूचना है। महादानी पंडित मनसारामजी राह मुल्के-अदम हो गये हैं—ऐसी दो-तीन लाइनें, मगर नीचे एक तवील फहरिस्त है, खानदान के गमजदा लोगों के नामों की। अगला वरक पलटता हूं। यह मुकम्मल तौर पर इश्तहारों के लिए मकसूस है—नौकरी, कारोबार, अदालती नोटिस, सरकारी टैंडर, शादी-खाना आबादी। शादी के इश्तहारों का अपना तिलिस्म है। देश में इतनी कुलवंती बेटियां और इतने कुलभूषण बेटे हैं। हमारी नयी पीढ़ी तरक्की की मंजिल की ओर भाग रही है। महाराजा जनक मुझे आज मिलते तो पूछता—"क्यों महाराज! दिल पर हाथ रखकर कहिए क्या यह दुनिया नेक और खूबसूरत वरों से खाली है?"

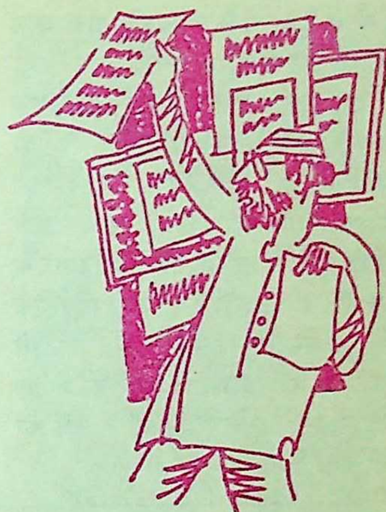
ब्याह-शादी के इश्तहार बड़े ही चटखारेदार होते हैं। चटोरे मियां इन्हें हसरतभरी निगाहों से पढ़ते हैं और गहरी सांस लेते हुए छाती तक पीट लेते हैं—"काश! हम क्वारे होते। एक कोने में पड़ी बीवी भी सुबकियां लेती है। मेरे वक्त में ऐसे सुंदर वर कहां मर गये थे। मेरे अब्बा मियां ने आंखों पर पट्टी बांध ली थी। घर में इतनी अखबारें आती थीं; मगर मेरी जन्मपत्री में लिखा था—यही मरदूद।"

साहिब मैं सच कहता हूं, इन इश्तहारों की माया बड़ी अजीबो-गरीब है। हर जगह इनका बोलबाला है। चारों ओर इनका गल्बा है। ये हमेशा आपके हमसफर हैं, आपके आगे-पीछे हैं। आपका घेराव करने की ताक में हैं। आप घर से

निकलते हैं। सामने की दीवार पर इश्त-हारों की होली मची है। एक बहुत बड़ी खुशखबरी का एलान है—'मायूस न हों, दौरे जदीद के लुकमान आपके शहर में वारिद हो रहे हैं। जवानी का मजा लें। पहली गोली पहले दिन अपना असर दिखाती है। आप खुश, आप की बीवी भी खुश! आपकी खतोखिताबत खुफिया रखी जाएगी।'

आप मार्केट से गुजर रहे हैं। चौराहे पर खड़ा, यह नौजवान हर राहगीर के हाथ में ख्वाहमख्वाह एक-एक पर्चा ठोंसता चला जा रहा है। शहर में साड़ियों का कोई नया शो-रूम खुला है। खास रियायती दरों पर और फेस्टीवल डिसकाउंट पर, बेमिसाल साड़ियां लुटायी जा रही हैं। आप यह क्या कर रहे हैं। अजी जनाब, इस बिल को मसलकर चुपके से गटर में फेंक दीजिए। घर पहुंचकर, यह बीवी की आंख चढ़ गया, तो आपकी जेब की खैर नहीं, बजट तहस-नहस हो जाएगा। आप जल्दी अपना रास्ता नापिए। ये इश्तहार नहीं, जेबतराश हैं। खुले आम गिरहकट, पाकेटमार!

आप बस में बैठे नहीं कि एक मुसीबत-जदा बच्ची सभी मुसाफिरों के हाथ में एक-एक बिल थमा देती है। यह बेचारी गूंगी है। वह इन बिलों की मदद से अपनी अपील आप तक पहुंचाने लगती है कि एक जोर की आवाज आपके कानों में पड़ती है। साहिबान! मेहरबान! और



खड़कता है आपके कानों के पास कोई दानपात्र। आप दें तो भी भला, न दें तो भी भला! मेरी बात मानें, तो इक्की-दुक्की डाल उसे चलता करें, वरना डिब्बे की झनक-झनक आपके कानों की मैल निकाल-कर ही दम लेगी।

आजकल शहर में चुनावों की सर-गरमियों से इश्तहारी-जंग पूरे यौवन पर है। प्रेसवालों की चांदी बन रही है। शायद इसीलिए चांदी का भाव आसमान छू रहा है। सुबह एक बड़ा इश्तहार नमूदार होता है। हलका 'एक' के उम्मीदवार के काले कारनामों का पर्दाफाश किया जाता है। शाम को इस इश्तहार के जवाब में उससे भी बढ़-चढ़कर एक नया इश्तहार

प्रगट हो जाता है। हलका दो के उम्मीदवार के स्कैंडलों की सनसनीखेज तस्वीर पेश होती है। यानी अब तो खुले आम इश्तहारों की घुड़दौड़ चलती है।

एक बार किसी मनचले ने एक चलते-फिरते गधे की पीठ पर विरोधी उम्मीदवार का नाम लिख दिया। फिर क्या था, आन की आन में गली-महल्ले के सारे कुत्तों के गले में उस उम्मीदवार के नाम की तख्तियां लटका दी गयीं। एक बार एक उम्मीदवार दर्दी साहिब ने अपने वोटरों के नाम दीवारों पर एक अपील लिखवा दी। मसखरे हमदर्दों ने दर्दी का दर्जी बना दिया।

किस्सा कोताह यह है कि आज हम इश्तहारी तहजीब में जिंदगी बसर कर रहे हैं। हमारा अदब, सयासत और समाजी निजाम, गर्ज सभी कुछ इश्तहारों के पहियों पर दौड़ रहा है। तमाम दुनिया इनकी टांगों पर सवार है। दरअसल हम इश्तहारों के गुलाम हैं। मेरे एक रिसर्च-स्कॉलर ने हाल में इश्तहारों पर ही अपना थीसिस लिखा है। अब वह इसे छपवाने के लिए इश्तहार निकालने की फिक्र में है। अगर आपके हाथ में इत्तफाक से कोई ऐसा इश्तहार लगे, तो उसे जवाब देना न भूलिएगा।

—अध्यक्ष हिंदी-विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

वे नयी और पुरानी पीढ़ी के सेतु थे

• बिन्दु अग्रवाल



हजारीप्रसादजी को जब अत्याधिक बीमारी और फिर देहावसान का दुःखद समाचार मिला, तब एक मुसकरता खिलखिलाता चेहरा, साथ ही पांडित्य-पूर्ण व्यक्तित्व आंखों के सामने उभर आया। क्या सचमुच ही वह थिरकता, पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व फिर देखने को कभी नहीं मिलेगा। यह जैसे विश्वास ही नहीं हुआ। सबको ही लगा कि एक संगीतमय, महान व्यक्तित्व इस संसार से उठ गया।

द्विवेदीजी को देखकर मुझे सदैव रवीन्द्रनाथ टैगोर का स्मरण आता रहा है। हालांकि दोनों के व्यक्तित्व और कार्य क्षेत्रों में काफ़ी असमानताएं हैं। लेकिन उन दोनों में दो बातें समान थीं—एक प्रभाव-शाली व्यक्तित्व, दूसरी मानवता के प्रति अटूट विश्वास की भावना। जैसा कि कहते हैं, कि टैगोर को एक बार देख लेने पर उनको भूलना असंभव था, उसी प्रकार द्विवेदीजी के व्यक्तित्व में भी कुछ ऐसा जादू था कि उनसे एक बार मिलने पर लोग उनकी ओर स्वतः खिंचे चले जाते थे। इस समानता का कारण शायद यह भी रहा हो कि द्विवेदीजी को शांतिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर का सानिध्य कई वर्षों तक प्राप्त था।

जब मैं सोचती हूं कि द्विवेदीजी को मैं कब से जानती हूं,तो सैंतीस वर्ष पहले के दिन स्मरण हो आते हैं। सन तेतालीस, की बात है, शादी के बाद हम लोग कल-

कत्ता गये थे। कलकत्ता से शांतिनिकेतन बहुत पास है। यद्यपि उस समय टैगोर का देहावसान हो चुका था, पर हजारी-प्रसादजी अभी भी वहां हिंदी के प्राध्यापक थे। द्विवेदीजी के वहां होने के ही कारण हम लोग वहां बड़े उत्साह से गये। वही एक मुस्कराता, खिलखिलाता चेहरा। द्विवेदीजी से मिलकर बहुत ही अपनापन लगा। उन दिनों की कुछ बातें—जैसे अपने घर बुलाना, उनके घर के बरामदे में मूढ़ों पर बैठकर शर्बत पीना, घुमा-घुमाकर हमें टैगोर से संबंधित चीजें दिखाना, गप्पें लगाना, बीच-बीच में बंगला में बात करना (क्योंकि भारतजी बंगला बहुत अच्छी तरह जानते थे)। और ठहाका लगाकर हंसना, मुझे आज भी याद है।

मेरी अधिकांश शिक्षा बनारस विश्व-विद्यालय में हुई है। द्विवेदीजी का बनारस विश्वविद्यालय से बहुत संबंध रहा है। वे रेक्टर के अतिरिक्त हिंदी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष भी रह चुके हैं। कभी-कभी मैं उनके घर भी चली जाती थी। उनके घर में बड़ा ही आत्मीय वाता-वरण था, जो मुझे बहुत ही अच्छा लगता था। द्विवेदीजी की पत्नी सभी से बड़े दुलार से मिलती थीं। यह सोचकर मुझे सुखद अनुभूति होती है कि मेरे कैरियर निर्माण में कहीं न कहीं द्विवेदीजी का भी हाथ है।

इसके बाद का एक दिन मैं नहीं भूल सकी। वह दिन आज भी मेरी आंखों में उल्लास और चमक पैदा करता है। शायद सन पचास की बात है। जीजी (रेखा जैन) और जीजाजी (नेमिचन्द्र जैन) इलाहाबाद में एलेनगंज में रहते थे। उन दिनों हम दोनों भी वहीं थे। हजारीप्रसादजी इलाहाबाद आये हुए थे। उन्हीं दिनों हम लोगों ने उन्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया। उस दिन मिठाई की जगह 'श्रीखंड' बनाया गया था। बस, फिर क्या था! 'श्रीखंड' को ही लेकर उस दिन उनके पांडित्य का पिटारा खुल पड़ा। कहां-कहां, किस-किस रूप में, किस-किस पुस्तक और साहित्य में 'श्रीखंड' का जिक्र हुआ है वे बताते ही चले गये। बड़े ही रिलैक्सड मूड में थे, वे उस दिन। उतने रिलैक्सड मूड में तो मैंने फिर उन्हें कभी नहीं देखा। भोजन कर लेने के बाद भी करीब घंटे भर तक वहीं खाने की मेज पर ही गप्पें चलती रहीं। मैं तो उसी दिन समझ पायी कि ये कितने बड़े विद्वान हैं। छोटी से छोटी बात में भी बड़ी से बड़ी और खोजपूर्ण बात कह डालना उनकी निजी विशेषता थी। अनेक बातें बताएंगे, पर मजाल कि सुननेवाला एक क्षण को भी ऊब जाए।

उनका खिलखिलाना और हंसी का फव्वारा ऐसा था, कि हम सभी लोग उसमें डूबने-उतराने लगे। टैगोर के बारे में भी ऐसी ही बात सुनी है। लेकिन, इस विद्वता के साथ उनके चरित्र

में जो एक और विशेषता थी, वह थी उनकी विनम्रता। विद्या और विनय के मेल ने उनके व्यक्तित्व को एक नयी आभा प्रदान की थी। घमंड तो उन्हें छू भी नहीं गया था। बड़ी से बड़ी विद्व-तापूर्ण और खोजपूर्ण बात कहेंगे, पर बड़े ही विनम्र भाव से। कथन या व्यक्तित्व से यह कभी नहीं झलकाएंगे कि मैं ही सबसे बड़ा पंडित हूं, और जो मैं कह रहा हूं, वही अंतिम सत्य है। उनकी विनम्रता का ही यह प्रतीक है कि वे कभी-कभी बातचीत में, अपने उपन्यासों को केवल 'गप' कह दिया करते थे।

अनेक बार उनके भाषण सुनने का अवसर मिला है। असल बात तो यह है कि जब भी मुझे द्विवेदीजी के भाषण की सूचना मिलती, मैं किसी अदृश्य शक्ति से खिंची चली जाती। चाहे वह भाषण किसी गोष्ठी में हो, चाहे दिल्ली विश्व-विद्यालय में, और चाहे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में। डॉ. निर्मला जैन की कोशिश से द्विवेदीजी एक बार लेडी श्रीराम कालेज भी आये थे। उनके भाषण का प्रबंध असेंबली हॉल में सभी छात्राओं और प्राध्यापिकाओं के सम्मुख दिया गया था। धोती-कुर्ता पहने और कंधे पर दुपट्टा डाले, जब द्विवेदीजी ने हिंदी में भाषण शुरू किया, तो प्रारंभ में श्रोताओं की निगाह में कुछ उपेक्षा और कुछ आश्चर्य का-सा भाव था। पर द्विवेदीजी के पांडित्य-पूर्ण भाषण, उनके कहने के ढंग और व्यक्तित्व के जादू से सभी लोग अभिभूत हो गये थे। वे अपने भाषण के बीच-बीच में फुलझरियां छोड़ते रहते थे। ये फुल-झरियां ही उनके पांडित्यपूर्ण भाषण को सरस बनाती थीं। उस दिन भी सभी की आँखों में चमक थी कि हां, आज एक महान भारतीय व्यक्तित्व को आंखों से देखा और मन की गहराइयों में उतरने-वाला भाषण सुना।

एक-डेढ़ वर्ष पहले की बात है। द्विवेदी-जी का जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में, सूरदास पर दो दिन का भाषण था। आज द्विवेदीजी कौन-सी नयी दृष्टि देंगे, इसी को जानने की उत्सुकता सभी के मन में थी। उन्होंने अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध किया था कि सूरदास जन्म से अंधे नहीं थे। उनका बचपन तुलसीदास के विपरीत बहुत अच्छी तरह बीता था और उन्हें राजसी ठाट-बाट का बहुत गहरा अनुभव था। इसीलिए वे कृष्ण के प्रसंग में विविध राजसी ठाट-बाट का इतने विस्तार से यथार्थ चित्रण कर सके हैं। द्विवेदीजी समालोचक नहीं थे, वे खोजी और अन्वेषक थे। 'कबीर', 'नाथ संप्रदाय', हिंदी साहित्य', हिंदी साहित्य की भूमिका' तथा 'सूर साहित्य' आदि पुस्तकें उनकी अन्वेषक और मौलिक दृष्टि की प्रमाण हैं।

भाषण के बाद, उस दिन अन्य लोगों के साथ, मैंने भी द्विवेदीजी के साथ चाय पी थी। उस दिन मुझे क्या मालूम था कि भाषण सुनने और उनके साथ चाय पीने

का यह आखिरी अवसर है। रह-रहकर वही दिन याद आता है।

वे जब भी मिलते, कुशलक्षेम पूछते। भारतजी के जाने के बाद तो जब भी वे मुझसे मिलते, लगता उनका मन भी भर आया है। क्योंकि साहित्य अकादमी के कारण उन दोनों का और भी अधिक संपर्क रहता था। द्विवेदीजी कई वर्षों तक साहित्य अकादमी की काउंसिल और एग्जीक्यूटिव बोर्ड के सदस्य की हैसियत से हिंदी के स्थायी मुख्य सलाहकार थे।

द्विवेदीजी हिंदी, बंगला और संस्कृत के महापंडित थे। संस्कृत और बंगला का माधुर्य उनके व्यक्तित्व का अंग बन गया था। उनके व्यक्तित्व और साहित्य में कोई अंतर नहीं था। 'अशोक के फूल', 'विचार प्रवाह', 'कुटज', 'कल्पलता' आदि ललित निबंधों के संग्रह हिंदी साहित्य में बेजोड़ हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्रलेख', 'पुनर्नवा' और अनामदास का पोथा'-जैसे सांस्कृतिक उपन्यास हिंदी-उपन्यास साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाते हैं। 'मृत्युंजय रवीन्द्र' में कवि गुरु के व्यक्तित्व की अंतरंग झांकी प्रस्तुत की है। 'आलोक पर्व', 'कालिदास की लालित्य योजना', 'नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक,' 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद', तथा 'मेघदूत : एक पुरानी कहानी' आदि पुस्तकें उनके संस्कृत-ज्ञान और उससे उनके गहरे लगाव को व्यक्त करती हैं।

द्विवेदीजी, आधुनिकता के फेर में कभी नहीं पड़े; पर फिर भी उनकी दृष्टि सदैव आधुनिक रही है। वे एक असाधारण खुले दिल और दिमागवाले व्यक्ति थे। मणि के समान उनका व्यक्तित्व स्वतः प्रकाशित था। उनका मन अत्यंत कोमल था। वे नहीं चाहते थे कि उनके कारण किसी को दुःख या परेशानी हो। अपने चरित्र की इन्हीं विशेषताओं के कारण कभी-कभी वे दूसरे के लिहाज में आकर ऐसा काम भी कर डालते थे जिसको वे स्वयं पूरी तरह उचित नहीं समझते थे।

उनके पास चाहे लंबी-चौड़ी डिग्रियां न हों, पर उनकी विद्वता के सभी कायल थे। यही कारण है कि सन '४६ में ही लखनऊ विश्वविद्यालय ने द्विवेदीजी को डी. लिट. की सम्मानार्थ उपाधि देकर गौरव का अनुभव किया था। यही नहीं, सन '३७ में हिंदी-साहित्य सम्मेलन से 'साहित्य वाचस्पति' और सन '५७ में भारत सरकार की ओर से 'पद्मभूषण'-जैसी उपाधियां तथा 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' और 'साहित्य अकादमी पुरस्कार'-जैसे सम्मानित पुरस्कार भी उनको प्रदान किये गये। सभी लोग उनका आदर करते थे। नयी और पुरानी दोनों पीढ़ी का ही आदर किसी एक व्यक्ति को मिले, ऐसा विरले ही होते हैं। पर द्विवेदीजी ऐसे ही सौभाग्यशाली थे।

—द्वारा-फ्लैट नं. १७, लेडी श्रीराम कॉलेज
लाजपतनगर, नयी दिल्ली-२६

नयी कृतियां

गीत, गजल संकलन

आईना

लेखक—सुरेश प्रसाद 'सरोश', प्रकाशन परमाणु प्रकाशन, गली टुबेको, ग्वालियर, पृष्ठ—१०१, मूल्य (पुस्तकालय संस्करण) —१० रुपये

गहरी पीड़ा की अनुभूतियों में डूबकर लिखी गयी इन गजलों में कवि का जनवादी व्यक्तित्व स्वच्छ आईने की तरह उभरकर सामने आता है। शायर ने जीवन के उन मूल-बिंदुओं को पकड़े रहने और उनमें से सत्य के संभाव्य को उजागर करने की साहित्यिक जिम्मेदारी बखूबी निभायी है।

कवि के शब्दों में :

मांओं की बेबसी न पूछ
ममता की बेकसी न पूछ
बच्चों को दूध ख्वाब में
परियां पिला के रह गयीं

कविता सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनकर जब इस प्रक्रिया में हिस्सा लेती है,तब वह सार्थक हो जाती है। और कवि में एक आत्मविश्वास भी पैदा करती है। इसीलिए कवि लिखता है,

यूं छेड़ता हूं गर्दिशे
शामो-शहर को मैं
चलता है आफताब,
चला हूं जिधर को मैं

'आईना' का शायर आम आदमी की लड़ाई में अहसास और अभिव्यक्ति के स्तर पर शरीक हुआ है। स्वस्थ परंपराओं के निर्माण और प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के लिए उसकी ये गजलें एक लगातार संघर्ष की घोषणा करती हैं। उनमें अपने युग का यथार्थ प्रतिबिंबित हुआ है।

इन गजलों में 'इमेजरी' और 'अल्फाज' के खूबसूरत इस्तेमाल, खयालात की बुलंदी और जीवन की कड़वी सच्चाइयों की सही बुनावट सर्वत्र देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए—

पैरा करो खुदी में कुछ
इतनी हसीन बात
बनकर चिराग दिल में
जले सारी कायनात

*

दरअसल इतना ही है
अफसाना मेरे दोस्तो,
पास से गुजरी थी एक दिन
सनसनाती जिंदगी ।

—भगवानस्वरूप 'चैतन्य'

गुलजार के गीत

संकलन—भूषण वनमाली, प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, २, अंसारीरोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ—१४३, मूल्य—२४ रुपये

स्वर्गीय शैलेन्द्र के बाद जिन गीतकारों ने हिंदी फिल्मी गीतों को साहित्य के सौंदर्य से समृद्ध किया है, इनमें गुलजार अग्रणी हैं। हिंदी फिल्मी गीतों की कई शर्तें हैं, मसलन निर्देशक, निर्माता की पसंद, दृश्य की आवश्यकता और संगीत की पूर्व-निर्मित धुनें। इन सीमाओं में रहकर शैलेन्द्र ने भी कई बहुत अच्छे गीत लिखे और खुशी की बात है कि गुलजार इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। गुलजार के गीतों में मानव-मन की विभिन्न मनःस्थितियों की एक अपनी मौलिक एवं कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति है।

आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान

संपादक — घनश्यामदास रस्तोगी, प्रकाशक—टाटा मैक्ग्रॉ हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, १२/४, आसफअली रोड, नयी दिल्ली, पृष्ठ—५७२, मूल्य—२७ रुपये

पिछले दो दशकों में मनोविज्ञान के विविध क्षेत्रों में होनेवाले परिवर्तनों का दिग्दर्शन करानेवाली यह पुस्तक विश्वविद्यालयीन छात्रों के लिए ही नहीं, प्रबुद्ध पाठकों के लिए भी उपयोगी है। तीन खंडों में बंटे सत्रह अध्यायों में सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियों से लेकर भारत में सामाजिक परिवर्तनों की समस्याओं तक पर प्रकाश डाला गया है।

खंड 'अ' में समाज द्वारा निर्धारित वैयक्तिक प्रकमों, खंड 'ब' में सामाजिक प्रकमों एवं खंड 'स' में समूह में व्यक्ति और भीड़ के व्यवहार की विवेचना की गयी है। भारतीय नेतृत्व की चर्चा करते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि वह प्रायः परंपरावादी है, पर वह आधुनिकता के विरोध में भी नहीं जा सकता, अतः दुविधा में पड़ा रहता है। और, दुविधायुक्त मन समझौता करता है, महत्त्वाकांक्षी नेतृत्व नहीं कर सकता।

अधिगम का मनोविज्ञान

लेखक—स्टिवार्ट एल हल्स, जेम्स डीज एवं हावर्ड ईगेथ, अनुवादक—ला. ब. त्रिपाठी, प्रकाशक—उपर्युक्त, पृष्ठ—४६४, मूल्य—२७ रुपये

प्रस्तुत पुस्तक मूल लेखकों की 'दि सायकॉलॉजी ऑव लर्निंग' का हिंदी अनुवाद है। चौदह अध्यायों में बंटी इस पुस्तक में अधिगम मनोविज्ञान के सभी पक्षों का सम्यक विवेचन किया गया है तथा मनोविज्ञान में रुचि रखनेवाले छात्रों एवं पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

दोनों पुस्तकों की भाषा-शैली परिपक्व एवं विषयानुरूप है तथा स्थान-स्थान पर दिये गये मानचित्रों से यह बोध-गम्य भी हो गयी हैं।

—डी. प्रसाद

सूर साहित्य संदर्भ

संपादक-डॉ. रामस्वरूप आर्य, डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, प्रकाशन-सूर पंचशती समारोह समिति, बिजनौर, पृष्ठ-६२८, मूल्य-६० रुपये।

भक्ति काल के स्वीकार्य कवि सूरदास की पंचशती के अवसर पर प्रकाशित 'सूर-साहित्य संदर्भ' उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का एक समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत करती है। पुस्तक तीन खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड, उनके जीवन और कृतियों तथा उनके विविध पक्षों पर प्रकाश डालता है जबकि दूसरा खंड अन्य भाषाओं में लिखे कृष्ण-काव्य से सूर-काव्य की तुलना करता है। तीसरा खंड सबसे संक्षिप्त और महत्व-पूर्ण है। उसमें सूर साहित्य के पुनर्मूल्यांकन के रूप में जहां एक ओर आधुनिक संदर्भों को सूर-साहित्य में तलाशने का उपक्रम है, वहां दूसरी ओर अन्योक्ति के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों में कृष्ण की रास-लीलाएं आदि विवादास्पद प्रसंगों की उपादेयता और समीचीनता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, कि किस प्रकार से पूरी जनता कृष्ण-रास के रूप में विदेशी शासन से मुक्ति के लिए, एक लोकनायक की खोज कर रही थी। राजनीतिक सामाजिक-धरातल पर सूर का योगदान अपने समसामयिक कवियों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक था।

'सूर सागर में नवजागरण के स्वर' नामक लेख में 'इंद्र पूजा' के विरोध को लेखक ने पूंजीपति वर्ग का विरोध बताकर सर्वहारा वर्ग के उत्थान की बात कही है। इसी प्रकार 'सूरदास का पुनर्मूल्यांकन' के लेखक ने एक प्रयोग में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भ्रमर-गीत के पदों में सूरदास ने कृष्ण को खुदा, उद्धव को मुहम्मद साहब, गुंजन करते भ्रमर को अबू और गोप-गोपियों को हिंदू-समाज की प्रतीकात्मक भूमिका में उतारने का प्रयास किया है और उनके पारस्परिक संबंधों का दिग्दर्शन अन्योक्ति जैसी विधा से कराया है। तीसरे खंड में इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिलते है, जिनकी लेखकों ने पुनर्व्याख्याएं की हैं। यद्यपि हिंदी में सूर पर जो भी लिखा गया है, यह पुस्तक उससे बहुत हटकर नहीं है तथापि एक स्थान पर उस सबका संकलन इस पुस्तक की विशेषता कही जा सकती है। सूर पर विहंगम दृष्टिपात के लिए यह पुस्तक एक सीमा तक पर्याप्त है!

यथार्थवाद

लेखक—शिवकुमार मिश्र, प्रकाशन—दि मैकमिलन कंपनी ऑव इंडिया लिमिटेड, पृ.-२४३, मूल्य ४० रुपये।

यथार्थवाद के नाम पर हिंदी में यह पहली गंभीर पुस्तक है, जो यथार्थवाद को विदेशी चिंतक और साहित्यकारों के मतों के परिप्रेक्ष्य में उसकी पूरी उपलब्धि और संभावनाओं के साथ प्रस्तुत करती है। पूरी पुस्तक में सभी विचारों के सार रूप में, युग-संदर्भता और मानवीय

धरातल पर वस्तुवादी दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि यथार्थवाद डार्विन न्यूटन, दे कार्त, फायरबास, मार्क्स, एंजेल्स आदि की प्रतिक्रियात्मक स्थापनाओं के रूप में, औद्योगीकरण के साथ व्यवस्था में उभरते अंतर्विरोधों की पृष्ठभमि में पनपा है। यथार्थवादी साहित्य के चिंतन को लेखक ने मार्क्सवादी और गैरमार्क्सवादी दो भागों में विभक्त कर दिया है। यह विभाजन मुख्य रूप से यथार्थवादी-आंदोलन के दो आयामों—आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद में से दूसरे आयाम पर आधारित है। पूरी पुस्तक में यथार्थवाद के सृजनात्मक पक्ष की अपेक्षा वैचारिक या सैद्धांतिक-पक्ष ही प्रमुख रहा है। हिंदी साहित्य पर भी इस दृष्टि से संक्षेप में विचार किया गया है। कुल मिलाकर यह पुस्तक सचेष्ट साहित्य जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी है!

आधे सफर की पूरी कहानी

लेखक—कृश्न चन्दर, प्रकाशन—राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ—१६२, मूल्य—१८ रुपये।

प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय कृश्न चन्दर की अधूरी आत्मकथा है। अब तक प्रकाशित आत्मकथाओं में वंश परंपरा दैनिक दिन-चर्चा से लेकर जीवन में आये प्रत्येक संबंध और व्यक्तित्व का ईमानदारी से उपयोग की घोषणाएं हुई हैं। कहीं-कहीं तो इस ईमानदारी के नाम पर बहुत कुछ ऐसा दिया गया है, जिससे लेखक की बहादुरी तो स्पष्ट होती है किंतु दूसरों की छिछालेदारी के मूल्य पर! कृश्न चन्दर ने इस परंपरा से हटकर पुस्तक में प्रायः उन्हीं प्रसंगों और व्यक्तियों को छुआ है, जो उनके लेखन और व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते रहे हैं। पारस्परिक संबंधों की शालीनता का निर्वाह पूरी ईमानदारी से लेखक ने निभाहा है। उसने कहीं कुछ ऐसा नहीं लिखा, जिससे पात्रों की वर्तमान स्थिति पर कोई आंच आये।

यदि लेखक कुछ समय और जीवित रहता तो निश्चय ही जीवन की और अनखुली परतें खुल पातीं। उनकी पत्नी और प्रसिद्ध लेखिका सलमा सिद्दीकी ने उस अधूरे सफर की अधूरी कहानी को पूरा किया है। लेखक का बहुचर्चित प्रस्तुति कौशल इस पुस्तक में पाठकों को पूरी तरह बांधे रखता है!

कुछ और पुस्तकें

आजमगढ़ की बोली
—डा. महेन्द्रनाथ दुबे

भोजपुरी की एक जनपदीय उपबोली के रूप में लिखा यह एक शोध-ग्रंथ है। प्रमुख रूप से विश्लेषण एवं विश्लेष्य नामक दो विभागों में विभक्त यह शोध, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इस बोली का सांगोपांग विवेचन करता है। प्रकाशक : शक्ति प्रकाशन, वाराणसी, मूल्य : इक्यावन रुपये।

महात्मा गांधी जीवन और चिन्तन
—जीवन राम भगवान दास कृपलानी

वर्तमान एवं आनेवाली पीढ़ी को, युग-प्रवर्तकों के विषय में प्रामाणिक जानकारी देने की दिशा में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस शृंखला में प्रकाशित यह पुस्तक महात्मा गांधी के राजनीतिक, सामाजिक, चिंतक, समन्वयकारी एवं विविध रूपों से पाठकों को अवगत कराती है। प्रस्तुति में रोचकता एवं प्रवाह का सर्वत्र निर्वाह हुआ है। प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली मूल्य बारह रुपये।

राजेन्द्र प्रसाद

—कालो किंकर दत्त

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के जीवन पर लिखी इस पुस्तक में अन्य प्राप्य सामग्री के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के रेकार्ड में से कुछ गोपनीय तथ्य एवं पत्रों का उपयोग किया गया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सहयोगियों के वक्तव्यों से पुस्तक की प्रामाणिकता बढ़ जाती है। नयी पीढ़ी के लिए यह पुस्तक आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में डॉ राजेन्द्रप्रसाद को प्रस्तुत करती है। प्रकाशक : प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नयी दिल्ली मूल्य : नौ रुपये।

माता जी और श्री अरविन्द —रवीन्द्र

अरविन्द और माता जी, अध्यात्म और चिंतन के क्षेत्र में दो महान विभूतियों के बहुआयामी जीवन के विषय में यह पुस्तक बहुत कुछ ज्ञानवर्धन कराती है। फ्रांस में जन्मी माताजी अपनी जिज्ञासाओं का समाधान किस प्रकार से भारत में खोज सकीं इन सबका वर्णन इस पुस्तक में अत्यंत रोचक रूप में किया गया है।

प्रकाशक : प्रचारक संस्थान

मूल्य : पचीस रुपये।

—डॉ. शशि शर्मा

बुद्धि-विलास के उत्तर

१. ग. ९, २. उत्तर-पूर्व, ३. थल पर (जीव-उत्पति में वैज्ञानिकों का कहना है कि जल से ही जीवों के विकास का क्रम बना, जो अंत में थल तक पहुंचा। जीवों में पूर्ण विकसित जीव मनुष्य ही है), ४. नील नदी के उद्गम की खोज का अभियान, ५. क. मायकोबैक्टीरियम लेपरी, ख. नारवे के डॉ. आर्मेनर हैनसन, १८७३ ई., ६. क. राकेट, ख. स्टाकटन से डार्लिगटन (३७ मील), ग. १६ मील प्रति घंटा, ७. क. पन्ना (मध्यप्रदेश), ख. खेतड़ी (राजस्थान), ८. क. शरीर में ऊर्जा (शक्ति) उत्पन्न करना, ख. कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, ९. क. १९८१ में, वर्तमान वर्ष के सितंबर मास में मकानों की गिनती से कार्य आरंभ, ख. १९७१ में लगभग ५४ करोड़ ७० लाख, १०. जोग, शरवती नदी पर, कर्नाटक में, २८८ मीटर ऊंचा, ११. शेक्सपियर, हेनरी चतुर्थ' में, १२. क. ग्रीक, ख. प्रकाश द्वारा लेखन, १३. दो सदस्य, एंग्लो-इंडियन, १४. कृत्रिम उप-ग्रह

गोष्ठी

विजय कुमार गुरु, उदयपुर : 'सुश्रुत-संहिता क्या है ?'

सुश्रुत-संहिता भारतीय शल्य-चिकित्सा का सबसे पुराना एवं प्रमुख ग्रंथ है। यह ग्रंथ प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है। प्रश्न करनेवाले हैं सुश्रुत और उनको उत्तर तथा उपदेश देनेवाले हैं धन्वंतरि। इसमें बताया गया है कि धन्वंतरि काशी के राजा थे, जिनका नाम दिवोदास भी था, परंतु अनेक विद्वानों का विचार है कि प्राचीन भारत में शल्य-चिकित्सकों को धन्वंतरि कहा जाता था। यह भी हो सकता है कि शल्य-चिकित्सकों का कोई संप्रदाय धन्वंतरि के नाम से प्रसिद्ध रहा हो। सुश्रुत कौन थे, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती, पर इसमें संदेह नहीं कि इस संहिता के लेखक वे ही हैं। यह मुख्यतः शल्य-चिकित्सा का ग्रंथ है। इसमें १२० अध्याय हैं, जो शल्य-चिकिसा से संबंधित हैं, लेकिन परिशिष्ट में काय-चिकित्सा से संबंधित जानकारियां भी दी गयी हैं। इस ग्रंथ में बौद्ध-धर्म के शब्द मिलते हैं, अतः यह बुद्ध के बाद ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में लिखा गया माना जाता है। यह ग्रंथ इतना महत्त्वपूर्ण था कि इसकी ख्याति भारत भर में ही नहीं, विदेशों में भी फैली। नौवीं-दसवीं शताब्दी तक यह ग्रंथ एक ओर अरब देशों में और दूसरी ओर दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में प्रसिद्ध हो चुका था। आठवीं शताब्दी में इसका अनुवाद अरबी भाषा में 'किताब-ए-सुश्रुत' के नाम से हुआ। ईरान के महान चिकित्सक एर-राजी (८५०-९३२ ई०) ने सुश्रुत को महान चिकित्सक मानते हुए, उनके ग्रंथ का अनेक बार उल्लेख किया है।

शोभानाथ यादव, मुगलसराय : अंतरिक्ष-यानों की 'इर्नाशियल गाइडेंस' तथा 'रडार गाइडेंस' पद्धतियां क्या हैं ?

अंतरिक्ष यानों के लिए यह आवश्यक है कि वे धरती से छूटने के बाद अपने निर्धारित मार्ग पर ठीक-ठीक चलते जाएं और उसमें कोई पथ-विचलन न हो। इसके लिए उनमें दो प्रकार की व्यवस्थाएं की जाती हैं। एक व्यवस्था तो यह है कि यान में इसके लिए विशेष रूप से लगाये गये यंत्र उसका पथ-निर्देश करते रहें। ये यंत्र यान की गति को निरंतर मापते रहते हैं और यह निश्चित करते हैं कि उसे किस समय कहां जाना चाहिए। यदि यान अपने सही मार्ग पर नहीं चलता, तो ये नियंत्रक-यंत्र यान में लगे जेटों के जरिए उसे सही मार्ग पर ले आते हैं। यह निर्देशन-पद्धति 'इर्नाशियल गाइडेंस' कहलाती है। इसके आलावा अंतरिक्ष यानों में एक दूसरी व्यवस्था भी की जाती है, जिससे

पृथ्वी पर बैठकर यान का निर्देशन किया जा सकता है। इसके लिए यान में एक रडार संकेतक लगा दिया जाता है, जो यान की स्थिति के बारे में पृथ्वी पर निरंतर संकेत भेजता रहता है। पृथ्वी पर संबंधित निर्देशक-यंत्र यान की वास्तविक स्थिति की तुलना पूर्व-निर्धारित स्थिति से करते रहते हैं और यदि यान मार्ग से विचलित होता है, तो उसे ठीक करने के लिए रेडियो-तरंगें भेजकर यान में लगे राकेटों को उचित कार्रवाई का निर्देश दे देते हैं। यह पद्धति 'राडार गाइडेंस' कहलाती है।

समरचंद्र खत्री, तारापुर (मुंगेर) : मैंने एक स्थान पर पढ़ा कि सेकरीन जैसे अत्यधिक मधुर पदार्थ और टी. एन. टी. (ट्राई-नाइट्रोटोल्यून) जैसे अत्यधिक विस्फोटक पदार्थ का स्रोत एक ही है। क्या यह सच है? यदि हां, तो वह स्रोत क्या है?

जी हां, यह सच है और वह स्रोत है टोल्युन नामक द्रव जिसे रसायन विज्ञान में हाइड्रोकार्बन का एक सुगंधित यौगिक कहा जाता है। इसे मीथिलबेंजीन या फिनायलमीथिन भी कहते हैं। बेंजीन की भांति ही यह भी पत्थर के कोयले के आसवन से प्राप्त किया जाता है या कृत्रिम रूप से पेट्रोलियम के वसीय (चर्बीवाले) तत्वों से बनाया जाता है।

शम्शुलमुल्क, औरंगाबाद : सुना है कि कुछ पौधे मांसाहारी होते हैं। वे मांस क्यों खाते हैं ?

आपने ठीक सुना है, कुछ पौधे मांसाहारी होते हैं। वे रस पीने के लालच में आये हुए कीड़ों, तितलियों आदि को पकड़ लेते हैं और अपने अंदर पचा जाते हैं। असल में ये पौधे इस तरह अपनी नाइट्रोजन की जरूरत को पूरा करते हैं। एक भारतीय वैज्ञानिक डॉ. एच. वाई. मोहनराम ने, जो आजकल दिल्ली विश्व विद्यालय के वनस्पति-विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं, एक मांसाहारी पौधे यूट्रीकुलेरिया पर प्रयोग किये और देखा कि बाहर से नाइट्रोजन मिल जाए, तो ये पौधे मांसाहार के बिना भी अच्छी तरह फलते-फूलते हैं।

अंजेश कुमार मुन्नू, बख्तियारपुर (पटना) : 'बॉक्स आफिस' क्या है, जहां फिल्में 'हिट' या 'फ्लाप' होती हैं ?

'बाक्स आफिस' का अर्थ है टिकटघर, लेकिन बाक्स आफिस पर हिट या फ्लाप होना एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है व्यावसायिक सफलता या असफलता। कहते हैं किसी फिल्म के 'फ्लाप' हो जाने का अर्थ है व्यावसायिक दृष्टि से उसका असफल हो जाना।

चलते चलते एक प्रश्न और

कृष्ण कुमार गुप्त, सरगुजा (म. प्र.) : नारी के बिना जीवन अधूरा है या शिक्षा के बिना ?

शिक्षा प्राप्त करने के बाद नारी के बिना और नारी को प्राप्त करने के बाद शिक्षा के बिना।

—बिंदु भास्कर

पामऑलिव शॅम्पू. कितने अच्छे. कितने किफ़ायती.

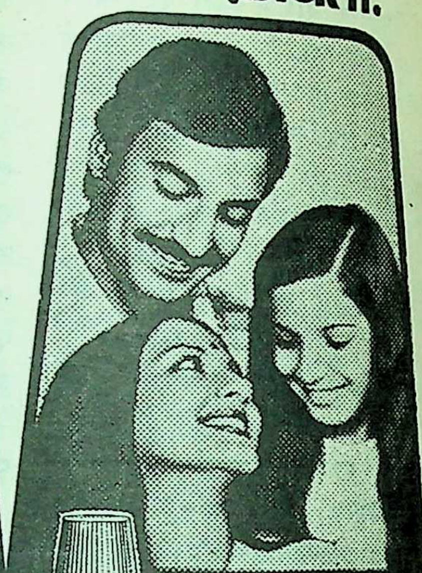




बढ़िया और आधुनिक पामऑलिव फॅमिली शॅम्पू

आपके परिवार का हर सदस्य पामऑलिव फॅमिली शॅम्पू इस्तेमाल कर सकता है. यह बच्चों के बालों के लिए कोमल है. आपके बालों को रेशमी—मुलायम और चमकदार बनाता है. बालों को बिना रूखापन दिये साफ़ रखता है. और हाँ, यह आपके घरवाले के लिए भी उपयुक्त है.

पामऑलिव फॅमिली शॅम्पू: आपके परिवार के लिए एक उत्तम शॅम्पू का आनन्द.





प्रोटीन से भरपूर पामऑलिव एग शॅम्पू

अब आपके परिवार में सभी के बालों की देखभाल के लिए एग-प्रोटीन से भरपूर पामऑलिव एग शॅम्पू. नये पामऑलिव एग शॅम्पू का एग-प्रोटीन, बालों की जड़ों का पोषण करता है, उन्हें सँवारने में आसान बनाता है. आपके बाल स्वस्थ और सजीले नज़र आते हैं.

पामऑलिव एग शॅम्पू: परिवार में सबके बालों की देखभाल और पोषण के लिए एग-प्रोटीनयुक्त किफ़ायती शॅम्पू.

पामऑलिव शॅम्पू: परिवार में सबके बालों की कोमल देखभाल के लिए

PRS.G.A.HN

लघु कथाएं

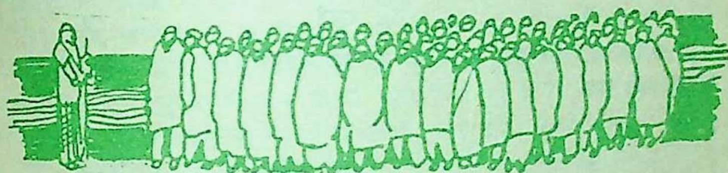


फर्क

एक हड्डी के टुकड़े को लेकर कुछ कुत्ते आपस में इतना लड़े कि मर गये। ब्रह्मा का हृदय इन कुत्तों की असामयिक मौत को देख द्रवित हो उठा। उन्होंने सोचा कि लड़ना तो कुत्तों का काम ही है, क्यों न मैं इन्हें इनसान बनाऊं, ताकि ये शांतिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

और ब्रह्मा ने इन कुत्तों को इनसान बना दिया। किंतु उन्हें तब अपने किये पर घोर पश्चाताप हुआ, जब उन्होंने मनुष्य-योनि में भी इन कुत्तों को उसी प्रकार लड़ते देखा। फर्क केवल इतना हुआ था कि अब वे हड्डी के टुकड़ों की जगह 'पद' और 'कुर्सी' के नाम पर लड़ने लगे थे।

—ब्रजेश



शर्त

सूफियों का कारवां चला जा रहा था। राह में एक श्रद्धा-विगलित राहगीर ने एक सूफी से कहा, "मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूं। सचाई के रास्ते पर चलने की मेरी दिली ख्वाहिश है। आपके साथ चलूं?"

सूफी ने कहा, "तुम हमारे साथ जरूर चलो। पर एक शर्त है। तुम्हें वह सारे काम करने पड़ेंगे, जिन्हें तुम नहीं करना चाहते। साथ ही तुम्हें वे सब नहीं करने पड़ेंगे, जिन्हें तुम करना चाहते हो।"

"ऐसा क्यों?" राहगीर ने पूछा।

"इसलिए कि सचाई के रास्ते में मनुष्य की इच्छाएं और लालसाएं ही बाधा बनती हैं।"

—मृत्युंजय

उत्तर रेलवे

समय सारणी सूचना

१ अप्रैल, १९८० से लागू होने वाली उत्तर रेलवे समय सारणी की मुख्य-मुख्य विशेषताएं निम्नानुसार हैं :

नई गाड़ियां

१) नई दिल्ली और पुरी के बीच वरास्ता इलाहाबाद, वाराणसी, गया तथा गोमो नीलांचल एक्सप्रेस तेज गाड़ी नं. १७५ अप/१७६ डाउन सप्ताह में तीन दिन चलेगी। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के डिब्बों वाली यह गाड़ी नई दिल्ली से प्रत्येक रविवार, मंगलवार तथा बृहस्पतिवार और पुरी से प्रत्येक रविवार, मंगलवार तथा शुक्रवार को चलेगी।

१७५ अप				१७६ डाउन
२१.३५	प.	नई दिल्ली	छू.	७.०५
१२.४५	छू.	इलाहाबाद	प.	१५.३५
१२.२५	प.		छू.	१५.५५
९.३५	छू.	वाराणसी	प.	११.००
९.२०	प.		छू.	११.२०
११.५५	छू.	पुरी	प.	१७.१५

२) मेरठ शहर और खुर्जा के बीच यात्री गाड़ी नं १ के एम./६ के. एम. चालू की गई है।

६ के. एम.				१ के. एम.
१८.१५	छू.	मेरठ शहर	छू.	८.२०
१९.१०	प.	हापुड़	छू.	७.२०
१९.३५	छू.		प.	६.५०
२१.३०	प.	खुर्जा	छू.	५.०५

गाड़ियों का विस्तार

१) हाथरस जंक्शन - हाथरस किला के बीच चलने वाली १ एच एच/४ एचएच यात्री गाड़ियां अलीगढ़ जंक. तक और से बढ़ा दी गई हैं और उनका नया नम्बर १ ए एच एच/२ ए एच एच रखा गया है।

१ ए एच एच				२ ए एच एच
५.४५	छू.	हाथरस किला	प.	९.४०
६.०५	प.	हाथरस जंक.	छू.	९.१०
६.३०	छू.		प.	८.५०
७.१५	प.	अलीगढ़ जंक.	छू.	८.०५

२) सूरतगढ़ और बीकानेर के बीच चलने वाली ३ बी बी एस/४ बी बी

एस यात्री गाड़ियां रतनगढ़ तक और से बढ़ा दी गई हैं और इनका नया नम्बर १ एसबीआर/२ एसबीआर रखा गया है :

२ एस बी आर			१ एस बी आर	
१५.३०	प.	सूरतगढ़	छ.	११.१५
१०.५०	छ.	बीकानेर	प.	१६.३०
१०.२०	प.		छ.	१६.४५
६.४०	छ.	रतनगढ़	प.	२०.३०

रद्द की गई गाड़ियां

गाड़ी नं.	खण्ड
१ एफ बी/२ एफ बी	भटिण्डा - फिरोजपुर
२ जे एन एफ	जालन्धर शहर - नकोदर/फिरोजपुर
६ जे एफ	फिरोजपुर - जालन्धर शहर.
१ एच डी	हापुड़ - दिल्ली
२ जी एच	गाजियाबाद-हापुड़
१ एम जी/२ एम जी	मुरादाबाद - गजरौला

गाड़ियों के चालनक्षेत्र में कटौती

१) अमृतसर और पठाधकोट के बीच चलने वाली ३५ अप/३६ डाउन शिमला मेल गाड़ी के चालनक्षेत्र में कटौती कर दी गई हैं और इस खण्ड पर अन्य गाड़ियों के समय में भी परिवर्तन किया गया है ।

२) हापुड़ और खुर्जा के बीच चलने वाली १ एन एच के/२ एन एच के गाड़ियों के चालनक्षेत्र में कटौती कर दी गई हैं और ये नई दिल्ली और हापुड़ के बीच १ एन डी एच /२ एन डी एच के रूप में चलेंगी ।

३) अमृतसर और लुधियाना के बीच चलने वाली १ ए एल एफ/२ ए एल एफ गाड़ियों के चालनक्षेत्र में कटौती कर दी गई है और अब ये गाड़ियां लुधियाना और फिरोजपुर के बीच ५ एल एफ/८ एल एफ के रूप में चलेंगी ।

गाड़ियों के दिनों में परिवर्तन

१६१ अप./१६२ डाउन टाटा नगर एक्सप्रेस टाटा नगर से प्रत्येक सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार तथा शनिवार और अमृतसर से प्रत्येक सोमवार, बुधवार, शुक्रवार तथा शनिवार को चलेगी ।

सीधे होकर जाने वाले और खण्डीय सवारी डिब्बों के चलने में परिवर्तन

१) वाराणसी और सूरत के बीच २८/११४ डाउन/११३/२७ डाउन गाड़ियों में वर्तमान खण्डीय शयनयान के स्थान पर एक ३-टियर शयनयान (३-टियर) लगाया गया है ।

२) बीकानेर और जयपुर के बीच २३७/२३८ गाड़ियों में एक अतिरिक्त शयनयान (३-टियर) लगाया गया है ।

३) सहारनपुर, मुजफ्फरनगर तथा देवबन्द के यात्रियों के लिए आबंटित स्थान सहित इलाहाबाद और मेरठ शहर के बीच १६३ अप/१६४ डाउन संगम एक्सप्रेस गाड़ियों में एक अतिरिक्त शयनयान (३-

टियर) की व्यवस्था की गई हैं।

गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन

१७३ अप वाराणसी स्टेशन पर १६.४५/१६.५० पहुंचने व छूटने वाली गाड़ी अब १६.२२/१६.३४ बजे पहुंचा और छूटा करेगी। यह गाड़ी जम्मू तवी १०.३० बजे पहुंचने की बजाय १०.४५ बजे पहुंचेगी। १७१ अप बम्बई - जम्मू तवी एक्सप्रेस भी जम्मू तवी पर १०.३० बजे की बजाय १०.४५ बजे पहुंचेगी।

जम्मू तवी पर १७४ डाउन गाड़ी १८.०५ बजे की बजाय १७.५० बजे छूटेगी और वाराणसी ११.५६ बजे पहुंचेगी और १२.०८ बजे छूटेगी, इसका पहले पहुंचने/छूटने का समय ११.४०/११.४५ बजे था। १७२ डाउन गाड़ी जम्मू तवी से १८.०५ बजे के बजाय १७.५० बजे छूटेगी।

२०८ आईपी (पुराना नम्बर १७६) अटारी से १७.५० बजे की बजाय १८.२५ बजे छूटेगी और अमृतसर १८.२५ बजे की बजाय १९.०० बजे पहुंचेगी।

४६ डाउन अमृतसर से १७.०५ बजे की बजाय १६.२५ बजे छूटेगी और दिल्ली ५.५५ की बजाय ५.४० बजे पहुंचेगी।

१७ अप जम्मू तवी १३.१५ बजे की बजाय १३.०० बजे पहुंचेगी।

१६२ डाउन नई दिल्ली से ५.४० बजे की बजाय ५.२० बजे छूटेगी।

८४/११४ डाउन लखनऊ से ८.२० बजे की बजाय ८.४० बजे छूटेगी और वाराणसी क्रमशः १५.१५ बजे तथा १४.०० बजे की बजाय १५.२० बजे और १४.१५ बजे पहुंचेगी।

१३ अप मुगलसराय से १७.४२ बजे की बजाय १७.५५ बजे चलेगी और दिल्ली १०.१५ बजे की बजाय १०.४० बजे पहुंचेगी।

१६४ डाउन मेरठ शहर से १८.१५ बजे की बजाय १९.४५ बजे छूटेगी और इलाहाबाद ९.१५ बजे की बजाय ९.०५ बजे पहुंचेगी।

१६३ अप मेरठ शहर ८.०५ बजे की बजाय ७.०५ बजे पहुंचेगी।

२ के ए कानपुर से १५.०५ बजे की बजाय १४.५० बजे छूटेगी और इलाहाबाद २१.१० बजे की बजाय २०.५५ बजे पहुंचेगी।

६५८ डाउन लखनऊ से २१.५० बजे की बजाय २२.०० बजे छूटेगी और मुगलसराय ११.५५ बजे की बजाय १२.५० बजे पहुंचेगी।

३५४ डाउन दिल्ली १५.२५ बजे की बजाय १५.१० बजे पहुंचेगी।

३३८ डाउन दिल्ली १९.३५ बजे की बजाय १९.२० बजे पहुंचेगी।

३८ डाउन फिरोजपुर छावनी से २१.२५ बजे की बजाय २१.३५ बजे छूटेगी।

५८ डाउन अमृतसर से ९.४५ बजे की बजाय ९.१५ बजे छूटेगी। २३ अप भटिण्डा २०.३० बजे के स्थान पर २०.५० बजे छूटेगी और फिरोजपुर छावनी २२.१५ बजे के बजाए २२.५५ बजे पहुंचेगी।

२४ डाउन फिरोजपुर छावनी से ४.४५ बजे की बजाय ४.०० बजे छूटेगी।

विस्तृत जानकारी के लिए कृपया उत्तर रेलवे समय सारणी १ अप्रैल, १९८० को देखें जो समस्त प्रमुख रेलवे स्टेशनों पर बिक्री के लिए उपलब्ध हैं।

मुख्य परिचालन अधीक्षक

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गोरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित



समस्या-पूर्ति-१३

इस लाम पर...

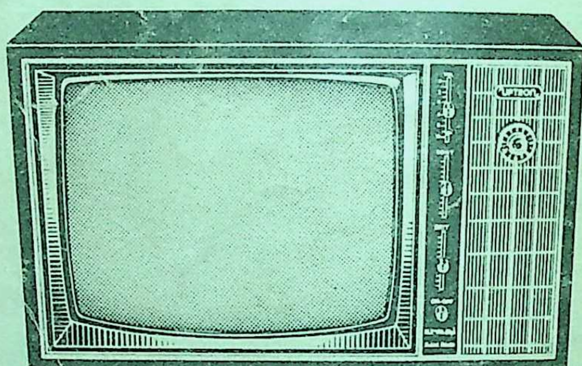
ऊपर प्रकाशित चित्र को ध्यान से देखिए और उसके नीचे बड़े अक्षरों में लिखी पंक्ति पढ़िए। इन्हें लेकर आपको एक कविता लिखनी है--गीत, गजल या छंदहीन पंक्तियां भी। आपकी रचना मौलिक तथा छह पंक्तियों की ही हो। प्रविष्टि पोस्ट-कार्ड पर ही भेजें। जो श्रेष्ठ रचना होगी, उसे पुरस्कृत किया जाएगा।

प्रथम पुरस्कार--२५ रुपये

द्वितीय पुरस्कार--१५ रुपये

अंतिम तिथि--५ मई, १९८०

छाया: सुधीर कासलीवाल


UPTRON



आस्था के आयाम

खलीफा की मजदूरी

खलीफा का वजीफा तय करना, निहायत मुश्किल काम था। लोग सोच न पाये कि उन्हें कितना वजीफा दिया जाए। जब कोई हल न सूझा, तो उन्होंने निर्णय किया कि खलीफा से ही कहा जाए कि वे अपना वजीफा बांध ले।

वे सब मिलकर खलीफा के पास पहुंचे। उन्हें परेशान देखकर खलीफा ने पूछा, "आप सब किस बात से परेशान हैं ?" लोगों ने अपनी परेशानी बतायी, तो वे हंस पड़े, "इतनी-सी बात। अच्छा यह बताइए, मदीना में किसी मजदूर को आप रोजाना कितनी मजदूरी देते हैं ?"

"मजदूर की रोजाना मजदूरी तो बहुत कम है। न तो उससे आपका गुजारा होगा और न वह आपके रुतबे के लायक होगी।" रुतबे से मजदूरी का क्या-ताल्लुक। फिर एक बात और है। मजदूर जितनी मजदूरी लूंगा, तो मुझे यह भी मालूम होगा कि एक मजदूर उतने में किस तरह गुजारा करता है। यदि मुझे लगेगा कि वह कम है, तो मैं मजदूरों की तनख्वाह बढ़ाने की कोशिश करूंगा। इससे मेरा वजीफा भी बढ़ जाएगा।"

ये खलीफा और कोई नहीं, हजरत अबबूकर थे।

हिंदू-अर्थी—मुस्लिम कंधे

अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध श्रीनगर में एक महल्ला है—जैनदार। पिछले दिनों इसी महल्ले में एक मर्मस्पर्शी घटना घटी।

महल्ले में एक हिंदू वृद्धा असहाय अवस्था में रहती थी, क्योंकि उसका सगा बेटा, उसे उसके हाल पर छोड़कर किसी और जगह बस गया था। अब महल्लेवाले ही वृद्धा की खोज-खबर लेते थे।

एक दिन वृद्धा चल बसी। महल्ले के लोगों की, जो मुस्लिम थे, आंखें भर आयीं। उन्होंने वृद्धा के दाह-संस्कार का दायित्व उठाया। आखिर वह उनकी अपनी दादी-नानी की उम्र की थी। उन्होंने वृद्धा की अर्थी सजायी, उसे कंधा देकर शमशान-भूमि तक पहुंचाया और चिता में अग्नि देने के अवसर पर उन्होंने एक हिंदू पुरोहित को बुलाकर हिंदू-धर्म के अनुसार सारी रीतियां पूरी करायीं।

खेल के मैदान में

हॉकी प्रतियोगिता का फाइनल-मैच चल रहा था। दर्शक तालियां बजा-बजाकर, नारों से अपने-अपने पक्ष की टीम का उत्साहवर्धन कर रहे थे। इन्हीं दर्शकों में एक ऐसे बुजुर्ग थे, जो अपनी आंखों का ऑपरेशन होने के बावजूद मैच 'देखने' आये थे।

लोगों ने उन्हें देखा, तो श्रद्धा से नमस्कार कर पूछ बैठे, "दादा, आप अस्पताल से क्यों चले आये? डॉक्टरों ने तो आपको मना किया था।"

बुजुर्ग हंस पड़े। बोले, "हाकी का प्रेम यहां खींच लाया।"

लोगों ने फिर कहा, "दादा, मगर आपको तो देखने में कष्ट होता होगा?"

बुजुर्ग ने फिर हंसकर कहा, "हां, मुझे दस गज से ज्यादा दूर की कोई चीज नहीं दिखायी देती, लेकिन मैदान में मौजूद खेल-प्रेमियों की आवाजों और तालियों से मुझे खिलाड़ियों और गेंद की गति और दिशा का तुरंत पता चल जाता है।"

लोग उनकी बातों से अभिभूत हो गये। ये बुजुर्ग और कोई नहीं, 'हाकी के जादूगर' ध्यानचंद थे।

या रब

पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' हिंदी 'थियेटर-युग' के एक प्रसिद्ध नाटककार थे। वे अल्फ्रेड कंपनी के एक प्रमुख स्तंभ भी थे। इनके लिखे नाटक बेहद सराहे गये।

पं. 'बेताब' के शुरू के दिन बेहद संघर्ष के थे। उन्हें कभी किसी से कोई सहायता नहीं मिली। जिंदगी के अपने तिक्त अनुभवों को लेकर पं. 'बेताब' ने फारसी में एक प्रार्थना लिखी, जो वे प्रतिदिन सपरिवार गाते थे—प्रार्थना यों थी—

"या रब तू चुनां परेशां न शबम
मोहताजे बिरादरान व खीशान न शबम
बे मिन्नते मखलूक मरा रोंजी देह
चूं मूरो मगस बदररे दो दीगरी न खम"

अर्थात—

'हे ईश्वर तू मुझे परेशान मत होने दे। मैं अपने भाइयों तथा रिश्तेदारों का मोहताज न बनूं। लोगों की खुशामद के बिना रोजी दे। मैं मक्खी और चींटी की तरह दूसरे के दरवाजे पर न जाऊं।' ●

जीवन में आगे बढ़ने के दो रास्ते हैं—खुद कुछ करके दिखाना, या दूसरों के किये का श्रेय हड़पना। पहला रास्ता उत्तम है। उसमें अवसर अधिक है और प्रतिस्पर्धा भी कम है। —जेम्स एस. केम्पर

शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए

• ज्ञानेन्द्

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों, उन पर चिह्न लगाइए और इसी पृष्ठ से आरंभ उत्तरों से मिलाइए।

१. **कुक्ष**--क. कुछ, ख. पेट, ग. गड्ढा, घ. कोमल ।

२. **वर्ज्य**--क. प्रताड़ित, ख. संकुचित, ग. निषिद्ध, घ. अलग ।

३. **वर्धिष्णु**--क. विस्तृत, ख. फूला हुआ, ग. बढ़नेवाला, घ. अधिक ।

४. **बलाबल**--क. अत्यधिक जोर, ख. बड़बड़ाना, ग. कुश्ती, घ. बल तथा बल-हीनता ।

५. **एकात्म**--क. अकेला, ख. निश्चित, ग. जिनकी आत्मा एक हो गयी हो, घ. संचित ।

६. **मिताहार**--क. पथ्य, ख. संयत भोजन, ग. अनशन, घ. पोषण की कमी ।

७. **अंतर्वेग**--क. उत्साह, ख. क्रोध, ग. मन में तीव्रता से उठनेवाला भाव, घ. मन का विकार ।

८. **द्वंद्वातीत**--क. लड़ाई से विमुख, ख. चिंतारहित, ग. सुख-दु:ख से परे, ग. धीरजवाला, घ. विरक्त ।

९. **चित्तवृत्ति**--क. स्वभाव, ख. मन की अवस्था, ग. चंचलता, घ. स्थिर मन।

१०. **सहोदर**--क. साथी, ख. बड़ा भाई, ग. छोटा भाई, घ. सगा भाई।

११. **निठल्ला**--क. आलसी, ख. बेईमान, ग. बेकार, घ. लालची ।

१२. **बतियाना**--क. बकवास करना, ख. गाली देना, ग. बात करना, घ. गप्प हांकना ।

१३. **सरंजाम**--क. सामग्री, ख. सजावट, ग. नतीजा, घ. मूल ।

उत्तर

१. ख. पेट, उदर, कोख। धन्य है वह **कुक्ष** जिसने सुसंतान को जन्म दिया है।

२. ग. निषिद्ध, त्याज्य, वर्जनीय । **वर्ज्य** क्षेत्र में पदार्पण मत करो ।

३. ग. बढ़नेवाला, वृद्धिशील । **वर्धिष्णु** शरीर के लिए पोषक भोजन आवश्यक है ।

४. घ. बल तथा बल-हीनता (तुलनात्मक दृष्टि से) । महत्त्व तथा महत्त्वहीनता शत्रु के **बलाबल** को आंके बिना उससे भिड़ना अनुचित है । (बल+अबल)

५. ग. जिनकी आत्मा एक हो गयी हो, जिनमें कोई अंतर न रह गया हो। समाज के साथ **एकात्म** होने से ही सच्ची

सेवा की जा सकती है। (एक+आत्म)

६. ख. संयत भोजन, कम खाना। मिताहार से स्वास्थ्य ठीक रहता है। (मित+आहार)

७. ग. मन में तीव्रता से उठने-वाला भाव। **अंतर्वेगों** पर सदैव नियमन करना चाहिए।

८. ग. सुख-दुःख से परे (द्वंद्व=दो परस्पर विरोधी चीजों या भावों का जोड़ा; जैसे—सुख-दुःख, गरमी-सर्दी, आदि)। द्वंद्वातीत जीवन बिरले ही बिता सकते हैं।

९. ख. मन की अवस्था। **चित्तवृत्ति** शांत होने पर जीवन में सच्चा सुख मिलता है।

१०. घ. सगा भाई। वह तो यम का सहोदर ही प्रतीत होता है।

११. ग. बेकार, खाली। **निठल्ला** व्यक्ति जीवन में दुःख ही भोगता है। (निठल्लू)

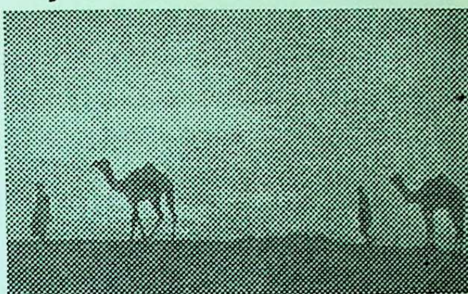
१२. ग. बात करना। उसने कितना समय **बतियाने** में ही लगा दिया।

१३. क. सामग्री, सामान। इस काम के लिए सारा **सरंजाम** तुम्हें ही जुटाना है। (फारसी)

पारिभाषिक शब्द

स्टे आर्डर=स्थगनादेश
प्रॉहिबिटरी आर्डर=निषेधाज्ञा
प्राविडेंट फंड=भविष्य निधि
ट्रिब्यूनल=न्यायाधिकरण
अवार्ड=पंचाट
ब्लॉकेड=नाकेबंदी
लेबर=श्रम
फाउंडेशन-स्टोन=आधारशिला
क्रिडेंशल्स=परिचय-पत्र

समस्यापूर्ति--१३ (परिणाम)



इस लाम पर . . .

प्रथम पुरस्कार

आइए गजल लिखें इस सुहानी शाम पर
कल कोई गीत गायेगा हमारे काम पर
चरित्र को मेरे कभी मिले न बैसाखियां
कल कोई उंगली न उठा पाये मेरे नाम पर
खुद को प्यासा रख दे दूसरों को तृप्त
गर्व है हमको हमारे देश के इस लाम पर

--रतन श्रीवास्तव

४।६।१२२ नेत्र चिकित्सालय के सामने,
फैजाबाद (उ. प्र.)

द्वितीय पुरस्कार

कट जायेगी दोपहरी किसी छांव के नीचे
जलते हुए सिकते हैं सूखे पांव के नीचे
इस लाम पर निकला हूं इस्लाम के खातिर
ए सलाम कबूल करना मेरे नाम के पीछे

--ब्रजेश चन्द्र पाण्डेय

ना. प्र. सभा, वाराणसी (उ. प्र.)

प्रतिक्रियाएं

हृदय भर आया

'कादम्बिनी' के मई अंक में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रथम पुण्य-तिथि पर बिंदु अग्रवाल का लेख 'वे नयी और पुरानी पीढ़ी के सेतु थे' पढ़ा। उनकी छवि उभर आयी। हृदय भर आया।

द्विवेदीजी कथाकार, व्याकरण-शास्त्री और कवि-हृदय होकर भी विनोदी थे। हंसी उन्हें विरासत में मिली थी। वे अकसर ठहाका लगाते, और कहा करते, 'जो हंस नहीं सकता वह मनुष्य नहीं है।'

आपसे अनुरोध है कि इसी तरह हर अंक में किसी न किसी साहित्यकार के बारे में दें, क्योंकि साहित्यकार को हम स्नेह और श्रद्धा के सिवा दे ही क्या सकते हैं?

—चन्द्रभूषण प्र. सिंह 'चन्द्र', मुजफ्फरपुर

डेटिंग एक अपराध है

'डेटिंग' आज की युवा पीढ़ी के लिए एक विचारणीय प्रश्न है। वह इसका उतना ही दुरुपयोग करती है, जितना कि सुंदर 'डेटिंग' शब्द है। वह सही अर्थों में उसका उपयोग न करके अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए करती है। 'डेटिंग' से किसी परिवार की स्थिति सुधरी नहीं है, बिगड़ी ही है, इसलिए यह कहा जाए कि डेटिंग अपनी स्थिति सुधारने के लिए करते हैं, मूर्खतापूर्ण होगा। इसमें कोई शक नहीं कि शारीरिक तुष्टि के लिए करते हैं, उससे एक पक्ष को हानि उठानी ही पड़ती है, और वह है—स्त्री पक्ष।

—गंगाराम, नैनीताल

वह विद्रोही

मई अंक का लेख 'वह विद्रोही भगवान की तरह पूजा गया' अनापेक्षित क्षेत्र में सराहनीय कदम है। परंतु इस लेख की कुछ बातें भ्रामक हैं, जैसे पृष्ठ ८० पर प्रकाशित ये पक्तियां 'आदिम जातियों को . . . स्वाभाविक गर्व का बीज रोपा था।' जबकि तथ्य यह है कि बिरसा स्वयं ईसाई धर्म में दीक्षित होने के कारण ईसा मसीह को प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न में था, कुछ मुंडा सरदारों (गोडियन लुथेरन विद्यालय का अध्यापक, जोन मुंडा चंप-इडीह, जोन मुंडा कसमार, प्रभुदयाल मुंडा आदि) ने बिरसा को ईसाई धर्म के प्रसार में ढाल के रूप में प्रयुक्त किया, जिसके कारण ईसाई धर्म एक राजनैतिक आंदोलन के रूप में परिणत हो सका, (देखिए, बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन: लेखक : कुमार सुरेशसिंह, पृष्ठ ५६-५७)।

बिरसा का जन्म चलकद (जिसे लेख में चालकाड लिखा गया है) में नहीं वरन बंबा में हुआ था।

मुंडाओं में अवतारवाद नहीं है। डंबुल मुंडाओं में अंदर (परछाया प्रविष्टि) के बाद मृतक की आत्मा को पूर्वजों के साथ प्रतिष्ठित कर दिया जाता है।

थियवस, करमी (उनकी मां) और आनंद पांडे भी संभवतः लेखन की अशुद्धि है। उनके समकालीन फादर लीवन्स (तोरपा) थे, मां कदमी थी और आनंद पांडे आदिवासी जुलाहा जाति के थे।

—एल. एस. हेम्बरोम, रांची

विनम्र आग्रह

सातवें दशक में महाविद्यालय में प्रवेश के साथ 'कादम्बिनी' से परिचय हुआ। विगत दस वर्षों में इसके साथ आत्मीय संपर्क दृढ़ आधार प्राप्त कर चुके हैं। 'सार-संक्षेप' से बहु-आयामी जानकारी मिली है। अभावों के बीच विकसित होते हुए व्यक्तित्व में 'कालचिंतन' पढ़कर विभिन्न सार्थक भावों का समावेश हुआ हैं! क्रीड़ा और मनोरंजन-मानवीय मूलप्रवृत्ति के रूप में जीवन का एक आवश्यक भाग है, खेल-जगत और सिने-जगत से न केवल पाठक वरन् एक सामान्यजन भी 'तादात्मीकरण' करने लगा है। एक विनम्र आग्रह है—अपने स्थायी स्तंभों के अंतर्गत जीवन के यह दो प्रश्न और सम्मिलित कर लें। यद्यपि आप समय-समय पर संबंधित लेख प्रकाशित करते रहते हैं।

—काजी एस. रहमान, शुजालपुर (म. प्र.)

क्या राकेट सही थे ?

मई, अंक की 'कादम्बिनी' में श्री सोहनलाल राही का पत्र 'राकेट का उपयोग हुआ' शीर्षक पढ़ा, जिसमें त्रिशंकु को महाभारत कालीन युद्ध में नष्ट हो जाने के भय से तत्कालीन संपूर्ण साहित्यिक निधि को स्वयं में समेटे हुए तीन राकेट कहा गया है। वस्तुतः यह एक हास्यास्पद कपोल-कल्पना ही है, ठीक वैसी ही जैसी लगभग दो वर्ष पूर्व सुग्रीव के दक्षिणी अमरीका जाने के विषय में की गयी थी।

वस्तुतः त्रिशंकु एक पौराणिक व्यक्तित्व है। वह अयोध्या का राजा था और निबंधन का ज्येष्ठ पुत्र। पद्म, हरिवंश, ब्रह्म और देवीभागवत पुराणों में इसके पिता का नाम त्रय्यारुण या अरुण भी मिलता है। इसका वास्तविक नाम सत्यव्रत था, और वशिष्ठ की गाय के मार देने के कारण उसके द्वारा इसे शाप दिया गया था कि 'गोवध, ब्राह्मणी-हरण तथा पितृक्रोध रूप इन तीन अपराधों के कारण तू पिशाच बनेगा और तेरे सिर पर तीन शंकुओं का निर्माण होगा तथा इसी कारण लोग तुझे 'त्रिशंकु' नाम से जानेंगे।'

त्रिशंकु की कथा से संबंधित दो और व्यक्तित्व भी हैं—एक विश्वामित्र और दूसरा वशिष्ठ। यह दोनों ही रामकथा से संबंधित हैं, बल्कि इनकी प्राचीनता वैदिक साहित्य तक जाती है, क्योंकि ऋग्वेद में इन दोनों के द्वारा रचे गये अनेक सूक्त प्राप्त होते हैं, और यदि त्रिशंकु की कथा का संबंध इन्हीं से है, तब तो इनके और महाभारत के युद्ध के मध्य सैकड़ों वर्षों का दीर्घ अंतराल है। अतः युद्ध से कई सौ वर्ष पूर्व संपूर्ण साहित्य को तीन

राकेटों में रखकर उसे अंतरिक्ष में सुरक्षित कर देने की बात समझ में नहीं आती।

--काजी अंजुम सैफी, गाजियाबाद

जीवन की अंतिम शाम

कादम्बिनी के मई अंक में आपने मेरा लेख प्रकाशित किया, इसके लिए धन्यवाद। इस लेख में एक जगह पर मेलिगनेंट ट्यूमर का जिक्र आया है। मैंने जिस ट्यूमर का जिक्र किया है, उसका संबंध अंडाशय (ओवरी) और गर्भाशय (यूटेरस) से है न कि फेफड़े से जैसा कि लेख में प्रकाशित हुआ है।

--डॉ. गौरी सैन, नयी दिल्ली

पाल रही है घास

'कादम्बिनी', मई अंक में भगवतीप्रसाद डोभाल का लेख 'हमें पाल रही है घास' पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। ऐसा लगा कि मैं किसी उपवन में पहुंच गया हूं।

--शंकर मिश्र, दरभंगा

अंकुरित है

अप्रैल अंक, 'जब विद्यापति ने साक्षात शिव के दर्शन किये' लेख में लेखक से एक भूल हो गयी है। उन्होंने भवानीपुर (उगना हाल्ट) स्थित उगना काम-लिंग को विद्यापति द्वारा स्थापित बताया, जबकि किंवदंति यह है कि यह लिंग अंकुरित है। प्रमाण के लिए यह शिवलिंग लगभग सात-आठ फुट गहराई में है, तथा शुक्ल यजुर्वेद अध्याय–सोलह, कंडिका-चौबीस और मंत्र-आठ में भी उगना का नाम उद्धृत है।

--रत्नकुमार 'सुधाकर', मधुबनी

विचार-दीर्घा--७

'क्रिकेट जैसे-खेल की सार्थकता' पर अपने विचार तीन सौ शब्दों में निम्न पते पर भेजें।

पुरस्कार : पचास रुपये

अंतिम तिथि--५ जून, १९८०

पता--संपादक 'कादम्बिनी'

विचार-दीर्घा--७

हिंदुस्तान टाइम्स लि., १८-२० कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली-११०००१

विचार के साथ वापसी के लिए लिफाफा संलग्न न करें।

हिंदी की विशिष्ट पत्रिका

हम 'कादम्बिनी' को बड़ी रुचि के साथ पढ़ते हैं। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि हिंदी में यह विशिष्ट पत्रिका अच्छी अभिव्यक्ति करती है। यह सुंदर एवं पठनीय है। आपका सार्वजनिक जीवन होने पर भी आश्चर्य होता है! कि इतनी अच्छी पत्रिका कैसे निकाल देते हैं।

--पी. के. तारे (अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश, म. प्र. हाईकोर्ट), जबलपुर

जीवन की अंतिम शाम

यह लेखमाला इस अंक में प्रकाशित नहीं हो सकी है। इसे अगले अंक में पढ़िए।

--संपादक

आगामी अंक के आकर्षण

प्रेमचंद-शताब्दी के अवसर पर अनेक शोधपूर्ण लेख, संस्मरण, पत्र एवं महान कथाकार की हिंदी में अब तक सर्वथा अप्रकाशित कहानी

- प्रेमचंद की जीवनी का पुनर्लेखन होना चाहिए
- प्रेमचंद पर मानहानि का मुकदमा
- प्रेमचंद को भूत-प्रेत पर विश्वास था
- प्रेमचंद की डायरी—उनकी पांडुलिपि के अंश आदि

अन्य विशिष्ट आकर्षण

- प्रजातंत्र : कितनी कीमत चुका रहे हैं हम
- समुद्र पर शहर बसेंगे
- कश्मीर : जब महाराजा नेहरू को बंदी बनाना चाहते थे
- वे सब प्रेत थे : भरी गरमी में आग सेक रहे थे
- लूट : एक कला—संग्रहालय की
- जेल में हत्याएं और अपराध
- गुल से गुलिस्तां बनाइए घर को

●

साथ ही मर्मस्पर्शी कहानियां, भावभीनी कविताएं, ज्ञानवर्धक स्तंभ

●

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए

●

हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन

वर्ष २० : अंक ८
जून, १९८०

कादम्बिनी

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

स्थायी स्तंभ

मुखपृष्ठ : प्रेम कपूर

कहानियां एवं हास्य-व्यंग्य

कविताएं

सार-संक्षेप

संपादक
राजेन्द्र अवस्थी

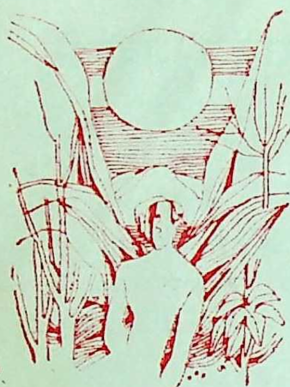
संपादकीय सहयोगी
संयुक्त-संपादक
शीला झुनझुनवाला

सह-संपादक
दुर्गाप्रसाद शुक्ल

उप-संपादक
प्रभा भारद्वाज, डॉ. जगदीश चंद्रिकेश,
भगवतीप्रसाद डोभाल, सुरेश नीरव,
कामोद प्रसाद

प्रूफ रीडर: स्वामी शरण

चित्रकार: सुकुमार चटर्जी



काल-चिंतन

○ कथा दो यात्रियों की है। एक सुरक्षित स्थान तक दोनों साथ चलते हैं। उसके बाद:
——एक नीचे ढलान बनाती हुई पगडंडी को पकड़ लेता है और आगे बढ़ जाता है।
——दूसरा मौन खड़ा है; फिर पगडंडी की ओर पीठ कर असीम आयामों के घेरे देखने लगता है। अचानक उसके मन में कुछ आता है और वह बीहड़ झाड़ियों में उतर जाता है, जहां न कोई पगडंडी है, न मार्ग-दर्शक चिन्ह और न प्रतीक-स्तंभ!

○ दोनों यात्रियों की यात्राएं दो स्थितियों का चित्रण हैं: एक निरापद अवलंबन के व्यक्तित्व की गाथा है, दूसरा खोजी व्यक्ति है, जो दूसरों के बताये रास्तों की उपेक्षा कर अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करता है।

○ पगडंडी पर चलनेवाला पथिक निश्चित है; निश्चित है भविष्य से और वर्तमान से भी। पग-चिन्ह वह छोड़ नहीं सकता, क्योंकि न जाने कितने पैरों के सैलाब उस धूल ने आत्मसात किये हैं। जैसे धरती सारा पानी सोखने की क्षमता रखती है, पगडंडी हर पड़कर उठनेवाले पैर को तत्काल मिटाने में दक्ष है।
——दूसरा व्यक्ति परेशानियों से घिरा है। उसके पास न दिशा-बोध यंत्र है, न मार्ग-दर्शकों के प्रतीक। वह अनासक्त भी नहीं है। उसकी शक्तियां कंकड़ों की तरह फैली नहीं हैं, वे एकजुट हैं। वह हर पैर के निशान छोड़ता जाता है। कभी-कभी मुड़कर भी देखता है——अपने ही पथ-चिन्हों से कटा नहीं है वह, उन्हीं के सहारे आगे का रास्ता उसे खोजना है।

●●

——जिंदगी में दोनों स्थितियां हैं, दोनों समानांतर हैं: आसान रास्तों का अवलंबन

कर गंतव्य तक पहुंचना और ... नहीं, सोच का दरवाजा खुलता है—जितने यहां से गये हैं कौन जानता है उन्हें। किसी ने तो कभी इसे बनाया होगा—वह एक 'मैं' क्यों नहीं हो सकता!

—निश्चय कठिन-साध्य है : अतल महासागर के गर्भ में उन सीपियों की खोज है, जिनमें मोती हों, विषैले सर्पों के बीच जाकर मणिधारी सर्प को पकड़ना है, वायु के दिक्प्रभी आक्रोश को अपनी चादर में समेटकर उसे गठरी में बंद करना-जैसा है, दलदलों में दीवार बनाना है या कांटों को अपने पैरों में शरण देकर उन्हें उनके स्थान से उखाड़ फेंकना है, फूलों को सहलाना है, तो कुचलना भी है—वह सब है, जो और किसी ने नहीं किया था!

—परिणाम ?

—क्या सचमुच सारे परिणाम वही होते हैं, जो हम चाहते हैं?—दिन-रात अध्ययन कर भी क्या हम सब उत्तीर्ण हो जाते हैं? अनथक प्रयत्नों के बावजूद हम टूटकर क्या फिर इस तरह नहीं गिरते कि फिर उठ पाना कठिन होता है। ऐसी स्थितियां नहीं आती कि न हम रो सकते हैं, और न हंस सकते? अपने दर्द की दास्तान सुनाकर नहीं लगता कि हम अपने ही गालों पर थप्पड़ें मार रहे हैं?

--हर लक्ष्य साध्य होगा, एक गलत अवधारणा है। लेकिन उतना ही गलत यह सोचना है कि हमारा हर काम व्यर्थ है—महासागर की उत्ताल लहरें पत्थरों से सिर पीटती हैं; कितना व्यर्थ-सा लगता यह ... परंतु एक दिन उन्हीं पत्थरों में छेद दिखायी देते हैं, फिर वे रेत में बदल जाते हैं। शायद वे लहरें उस दूसरे पथिक की प्रतीक हैं, जिसने दृढ़-संकल्प और प्रबल इच्छा-शक्ति के बल पर अपने को बीहड़ धरती के हवाले कर दिया है!

••

—मनुष्य की जीवन-प्रक्रिया विशाल है। एक लंबी यात्रा है वह—बीज से वृक्ष-तक बनने की। इस परिसीमा के छोर तक पहुंचते हुए कितने साध्य-असाध्य आयामों से गुजरना पड़ता है। यह भी सत्य और सहज है कि बहुत से बीच में ही नष्ट हो जाते हैं।

—हर वृक्ष बट-वृक्ष नहीं होता और न हर फूल कमल ही हो सकता!

—कीचड़ की वेदना तो वे मछलियां भी नहीं सह पातीं, जल जिनका जीवन-प्राण है!

—मोह भंग यहीं आकर होता है!

—सहज पहुंचनेवाला पहुंचकर थका-हारा किसी खाट पर सीधा लेटा खर्राटे भरता

हुआ नजर आएगा ।

—पग-चिन्ह छोड़नेवाला पथिक अब भी चल रहा होगा, क्योंकि उसका गंतव्य अंततः काल और सीमा के परे है !

—वह विकसित चेतना का प्रतीक बनता जा रहा है ।

—वह अपने को लोटे की तरह पिघला रहा है और हथौड़े की हर चोट को झेल रहा है, यही चोटें उसे आकार देंगी ।

—इनसे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होगा : कुछ नहीं से वह 'बहुत-कुछ' बनने की दिशा में अग्रसर है !

—अनेक परिदृष्यों से होकर जाना पड़ता है उसे । वह देख रहा है : अंधा सूई खोज रहा है !

- वेदना-मुक्ति के लिए दर्द-भरी सुइयां झेलता है ।
- स्वर्ण-मुद्राओं की लालच में रक्त-पान एक सहज प्रक्रिया है !
- ऊपर उठने के लिए दूसरों के कंधों पर पैर रखना जरूरी है ।
- ऊपर पहुंचकर सीढ़ी को लात मारकर गिराना इसलिए आवश्यक है ताकि उसका उपयोग कोई दूसरा न कर सके !
- ईश्वर के नाम पर छल-प्रपंच एक सहज प्रक्रिया बन गयी है !
- केंचुए की तरह स्वयं सृष्टिकर अर्थहीन मिट्टी में पड़े रहना और पवित्र मिट्टी के खोजियों को रोग का शिकार बनाना अपनी व्यर्थ अक्षम प्रजनन क्रिया का प्रमाण प्रकटित करना है !

—क्या कुछ नहीं देखना पड़ता उसे : अपने आपसे निरंतर युद्ध करना होता है। स्थापित प्रतीकों और प्रतिमानों पर अपने महाबलशाली पैर रखने पड़ते हैं ।

—धीरे-धीरे वह कष्टों को आत्मसात करता हुआ एक आभा-मंडल को जन्म देता है।

—तब जो तथ्य उसके सामने आते हैं, चौंकानेवाले होते हैं ।

—एक स्थापित मूल्य टूटता है ।

—मन चंचल है यह एक मिथ्या धारणा है, ठीक उसी तरह जैसे चंचल पृथ्वी सूर्य के सामने स्थिर प्रतीत होती है ।

—स्थिर सूर्य है, इसीलिए वह ऊर्जा का स्रोत है !

—मन स्थिर है इसीलिए वह मिटता नहीं : अस्थिर है चिंतन, अस्थिर हैं स्मृतियां, और उतनी ही अस्थिर हैं कल्पनाएं !

—चिंतन, स्मृतियां और कल्पनाएं, ये तीनों मन के प्रभा-मंडल के प्रतिगामी हैं। परिवर्तन इन्हीं में होता है और हम कह देते हैं कि मन चंचल है । उसे स्थिर करते

के लिए योग और प्राणायाम के दरवाजे हम खटखटाते हैं।

—योग और प्राणायाम से वास्तव में चिंतन का दमन करना है। स्मृति पर परदा लटकाना है। और कल्पना को तीव्रगामी अश्व की गति से मुक्ति देना है।

—यही होता कुंडलिनी जागृति करने से !

—मन हमेशा अप्रभावित होता है। मन एक परछाई है। जिसे छूना असंभव है। मन अक्षर है और अक्षर अक्षय है, यह अमिट सत्य है।

- अक्षर बीज शक्ति है।
- अक्षर से शब्द बनता है।
- शब्द से वाक्य
- वाक्य से अर्थ
- अर्थ से भाषा
- भाषा से व्याकरण

—यही गति मन की है। वह अक्षर-जैसे मूल बीज की अवधारणा है।

●●

—इतना सब किसे पता चला ? उसी खोजी यात्री को जिसने पगडंडी की ओर अपनी पीठ कर ली थी !

—आसान प्रसंगों, आसान सुविधाओं और आसान सफलताओं की ओर पीठ कर लेना हर किसी के वश की बात नहीं है।

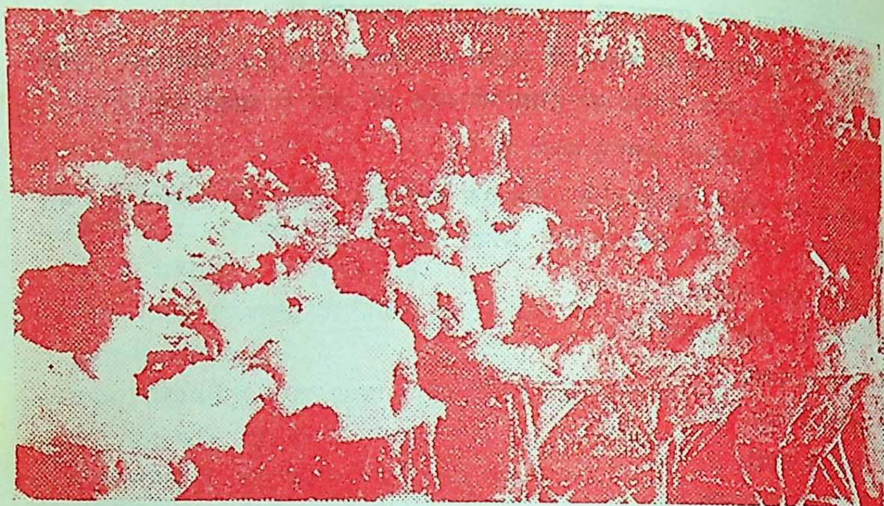
—यह काम वही कर सकता है, जिसका व्यक्तित्व विभाजित नहीं है ! ऐसे ही व्यक्तित्व अमरता के स्तर तक पहुंचते हैं।

—विभाजित व्यक्तित्व सृजनशीलता नहीं हैं। वह केवल अमरता के स्रोतों पर शोध कर सकता है, अमरत्व को नहीं पा सकता !

●●

—आइए, हम स्वागत करें उस महापथिक का, जो बीहड़ रास्ते पर उतरा था और जो अब भी अपने अविभाजित व्यक्तित्व के कारण अशरीरी होते हुए भी अमर है। अमरत्व की आकांक्षा जिसमें नहीं है, उसे वास्तव में मनुष्य नहीं केंचुआ बनना था !

राजेन्द्र अवस्थी



मेला टिकटार्थियों का

• सेवकराम ओखाड़ू

संपादक जी !

बिल्ली के भाग छींका टूटा और राजधानी में जो नजारे हमने देखे, इनका जितना बयान हम करें कम ही होगा ! दिल्ली भले ही खंडहरों की वीरान नगरी रही हो, पर अब तो इसकी हर सड़क पर ऐसा लगता है, जैसे चुंबक लग गये हैं। देशभर की सड़कें पागलों की तरह दिल्ली की तरफ भागी आती हैं।

कुषाणकालीन बेंच

यह अजीब है न, कभी लोग दिल्ली को लूटकर भाग जाया करते थे, अब जो यहां आता है, लुटे बगैर नहीं जाता।

अब हम आपको ले चलते हैं केंद्रीय सचिवालय के बस अड्डे पर। अड्डे से पहले एक गोल चक्कर है। गोल चक्कर के बाद लाइट लगी है। कभी खतरे का निशान बताती है और कभी कहती है —प्यारे भाई 'रास्ता खुला है—चले जाओ।' लाल और हरी, आंख-मिचौनी

का तमाशा अपने-आप में कई लोगों के लिए नया है! बहरहाल इसी लाइट के पास नुक्कड़ पर एक छोटी-सी दूकान है। सुना है, यह दूकान आठ-दस वर्षों से वहां है, लेकिन आप सच मानिए, हमने तो उसे पहली बार देखा है। अब सुन लीजिए कि दूकान भी क्या है—एक खोखानुमा टपरा। उसके पीछे जलता हुआ स्टोव; एक किनारे पर पान की दूकान, दूसरे किनारे पर फलों का रस और बीच में ... पहले क्या रहा होगा, हमें नहीं मालूम। अब तो एक बड़े हाल में बड़े मोटे-मोटे सिके हुए ब्रेड-पकोड़े रखे हुए हैं और उसी के एक कोने में छोले-भटूरे! इस खोखे-नुमा दूकान के सामने तीन-चार बेंच पड़ी हैं। इन बैंचों को देखकर हमारा तो मन हुआ कि इन्हें उटाकर हम किसी संग्रहालय में ले जाएं और यह कहकर बेचें कि यह कुषाणकालीन बेंचे धोखे से हमारे हाथ लग गयीं।

हैं ... हैं ... सेठजी कब से

इस खोखेनुमा दूकान का मालिक एक निहायत दयनीय व्यक्तित्व है। लेकिन पहली बार हमने यह भी जाना कि इस तरह किसी व्यक्तित्व को हमें नहीं पर-खना चाहिए।

"सेठजी, कितने पैसे हुए?" मैंने चौंककर देखा! यह आदमी सेठजी कब से हो गया! सफेद पाजामा-कुर्त्ता पहने तीन आदमी सामने खड़े हैं।

"दो रुपये चालीस पैसे।" —सेठजी ने नितांत उपेक्षा के भाव से उत्तर दिया?

हमने देखा, तीनों आदमियों के हाथ उनकी कमर की ओर बढ़े हैं। वहां जैसे कोई अंटी बंधी हो! तीनों ने पैसे निकाले, फिर आपस में हिसाब किया, दो रुपये चालीस पैसे। यदि तीन भागों में बांटा जाए, तो प्रत्येक के हिस्से में कितना पड़ेगा! शायद हिसाब आसान था, इसलिए हमने देखा कि कोई झंझट नहीं हुई, और एक आदमी ने ढेर-सारी 'चेंज' इकट्ठी कर सेठजी के हवाले कर दी।

सेठजी ने नितांत उपेक्षा के साथ पैसे लिये और अपनी एंटीकनुमा पेटी में बेपर-वाह ढंग से डाल दिये। उनमें से एक आदमी ने कहा, "अरे सेठजी! पानी तो पिलवा दो।"

सेठ ने वैसे ही शून्य की ओर देखते हुए आवाज लगायी, "अरे बहादुर! पानी ला।"

तीन गिलास पानी आ गया। तीनों ने पानी पिया और फिर अपने पाजामे, कुरते से ही हाथ पोंछते हुए लाल बत्ती की ओर चले गये।

संपादकजी, हम कोई कहानी आपको नहीं सुना रहे। यह किस्सा अभी महीने पहले का है। जब देशभर के टिकटार्थी दिल्ली में जमा थे। अजीब माहौल था, हर मंत्री की कोठी का! लॉन इस तरह भरा हुआ था, जैसे किसी बाड़े में बकरे-बकरियां बंद करके रखे जाते हैं।

उस दूकानदार से हमने पूछा, "प्यारे भाई, आजकल कितना कमा लेते हो?"

इज्जतें, दौलतें, करामातें
उड़ न जाएं ये, तितलियां हैं सब
--नूरतकी नूर

"कुछ न पूछिए साहब! "सात-आठ दिन का सपना है, लेकिन हजार पांच सौ रुपये दिन तो पीट ही लेता हूं।" आप सोचिए कि वे 'सेठजी' सिर्फ ब्रेड-पकौड़े और छोले-भठूरों के बल पर हजार-पांच सौ रुपये तक पीट लेते हैं, जब तीन आदमियों का बिल दो रुपये चालीस पैसे आता है? हमें पता लगा कि बस यही इनका खाना है। इससे ज्यादा पैसा वे खर्च नही कर सकते! वही कुरता-पाजामा पहने हुए वे खुली घास में थके-हारे सो जाते हैं और जैसे ही किसी मंत्री की कार आती है, सब एक साथ उठकर उस ओर यूं भागते हैं-जैसे सबको बिजली का तार छू गया हो।

संपादकजी, इन्हीं टिकटार्थियों में से हमारे भाग्यनिर्माता तैयार होंगे। चुनाव सिर पर सवार हैं। जो चुने जाएंगे, वे दूसरों से अपनी जय-जयकार उसी तरह बुलवाएंगे -जैसे दूसरों की जय-जयकार की थी। तब इन्हें वह खोखेवाला 'सेठ' याद नही रहेगा।

अपने-अपने गांव, कस्बों, शहरों और शहरनुमा राजधानियों में कुछ सीना तानकर चलते हुए नजर आयेंगे, और कुछ तो एक ही रात में अमीरी का वह लिहाफ ओढ़ लेंगे कि जैसे कभी गरीबी इन्होंने देखी ही नहीं थी! जो इनमें हार जाएंगे, तकलीफ उन्हें भी नहीं होगी, क्योंकि इन सबके पास 'दिल्ली—रिटर्न' होने का खिताब होगा और दूसरे इस बात का गर्व होगा कि यदि दिल्ली का संसद-भवन देख लिया, तो राज्यों की असेंबलियां क्या चीज हैं!

सचमुच, संपादकजी! जय हो इस प्रजातंत्र की। उन दिनों दिल्ली की सड़कों, सरकारी बंगलों और दिल्ली के रेलवे स्टेशनों, बस-अड्डों को देखकर लगता था कि जैसे सारा देश यहीं आकर टूट पड़ा है। सच्चा समाजवाद भी तब हमें देखने को मिला—न पैंट थी न बुशर्ट। था तो केवल कुरता-पाजामा, वह भी सफेद रंग का। महात्मा गांधी की आत्मा को इसी क्षण सच्ची शांति मिली होगी। टिकटार्थियों का ऐसा मेला हमने तो पहली बार देखा है। चुनाव तो हमने पहले भी देखे हैं, पर लगता है, ऐसा चुनाव-'न भूतो न भविष्यति।' लेकिन हमें सचमुच निहायत खुशी है कि दिल्ली के खोखेवाले छोटे से दूकानदार को 'सेठजी' की उपाधि मिल गयी! देखिए न हर आदमी के दिन लौटते हैं। कभी नादिरशाह ने दिल्ली लूटी थी, आज समय ने दिल्ली को भी मौका दिया कि वह टिकटार्थियों को लूटे, और फिर गर्व से कह सके कि फलां राज्य का मंत्री भी इस रेल-पेल में भीख मांगता हुआ नजर आया और दिल्ली से बिना लुटे नहीं गया।

--द्वारा 'कादम्बिनी', हिंदुस्तान टाइम्स, नयी दिल्ली

तीन वर्ष पहले की दोपहर पेरिस में घूमते हुए मेरा मन निरंतर एक व्यक्ति की तलाश में था और वह व्यक्ति था सार्त्र।

फ्रांस की समाजवादी पार्टी के एक सदस्य, जिनसे दो दिन पहले मेरी भेंट हुई थी, उनसे मैंने कहा कि यदि फ्रांस आकर मैं सार्त्र से नहीं मिल सका, तो मेरा आना व्यर्थ है, और वास्तव में सार्त्र से मिलना आसान नहीं था, क्योंकि उन्होंने जनरल दिगाल से भी मिलने को इनकार कर दिया था। वे राष्ट्रपति पोंपेंदु की कई प्रार्थनाओं को भी ठुकरा चुके थे।



सार्त्र : कुछ यादें
राजनीतिक दल लक्ष्य विहीन हो गये हैं

• **राजेन्द्र अवस्थी**

ठीक दोपहर जब हम ऐलिसी पैलेस पहुंचे, तब वहां भेंट हुई सिमन दा बुआ से। उनसे पता लगा कि सार्त्र एक जहाज में छुट्टियां बिता रहे हैं।

उस जहाज तक पहुंचने की लंबी कहानी कहना व्यर्थ है। किसी तरह मैं सार्त्र तक पहुंच गया। तब सार्त्र बिलकुल अंधे नहीं हुए थे। उन्होंने बताया था, "मुझे अक्षर, पंक्तियों और पंक्तियों के बीच की जगह तो दिखायी देती है, लेकिन दो शब्दों के बीच का अंतर मैं नहीं देख पाता। अब तो मेरे लिए लिखना और पढ़ना दोनों कठिन हो गये हैं।"

उनके साथ थी कुमारी विभापर एक नाजुक-सी खूबसूरत लड़की, जो सार्त्र को सभी तरह से मदद कर रही थी। सार्त्र प्रायः रोज डायरी लिखते थे और यह काम भी उसी का था। उसी समय मुझे पता लगा था कि १९वीं सदी के फ्रांसीसी लेखक बुस्तफा फ्लेर्वट के जीवन-

चरित्र का चौथा खंड सार्त्र ने शुरू किया था। लेकिन वे कुछ निराश से हो गये थे कि वो वहीं छूट गया। उसी समय यह भी पता लगा कि उन्होंने उसे पूरा करने का इरादा ही छोड़ दिया।

काम चलाऊ अंगरेजी

लगभग एक-डेढ़ घंटे मैंने सार्त्र के साथ बिताये। आश्चर्य तो इस बात से था कि इस शती के महान दार्शनिक विचारक को केवल काम-चलाऊ अंगरेजी आती थी। कई बार मेरी कुछ बातों का उन्होंने सीधा उत्तर दिया था, तो कई बार कुमारी विभाचर को दुभाषिए का काम करना पड़ा था।

मैंने पहला प्रश्न पूछा था—"आपने अपने देश के इतने बड़े राजनीतिज्ञों से मिलने से इनकार कर दिया है, फिर आप मुझसे क्यों मिल रहे हैं?"

मेरे इस प्रश्न की पृष्ठ-भूमि यह थी कि जहाज पर पहुंचने से पहले टेलीफोन पर मेरे समाजवादी मित्र ने सार्त्र से समय ले लिया था। सार्त्र ने उत्तर दिया था, "आप लेखक हैं और हर लेखक मेरा सहयोगी है। उनसे मिलने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती।"

कोई बड़ा नहीं

मैंने कहा था—"मैं आपको इस सदी का महानतम विचारक मानता हूं, जबकि मैं बहुत अदना-सा लेखक हूं ... सार्त्र ने मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही कहा, "कोई लेखक छोटा-बड़ा नहीं होता।"

आज जबकि सार्त्र नहीं रहे, मैं उनके साथ बिताये हुए घंटे-डेढ़ घंटे की यादों को निरंतर समेटने की कोशिश कर रहा हूं। वे फ्रांस के राजनेताओं से इसलिए नहीं मिल रहे थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि राजनीति की गंदी दुनिया को कोई भी विचारक सुधार नहीं सकता। उनके शब्द थे—"यदि मैं अपनी जनता की आवाज वहां तक पहुंचाकर, उन्हें बदल नहीं सकता, तो मिलने से क्या फायदा? सारे राजनीतिक दल लक्ष्यविहीन हो गये हैं?"

सार्त्र की इस निर्भीकता से मैं प्रभावित हुआ था। वैसे भी सार्त्र अपने निर्भय व्यक्तित्व के लिए सदियों तक याद किये जाएंगे। उनकी जिंदगी सफलता और असफलता का अजीब-समिश्रण है। उन्होंने स्वयं एक राजनीतिक दल की स्थापना की थी, लेकिन वहां वे टिक नहीं सके और अपने विचारों की दुनिया में लौट आये।

वह प्रणेता

अस्तित्ववाद के प्रवर्तक ज्यां पाल सार्त्र मनुष्य की स्वाधीनता के सबसे बड़े प्रणेता थे। मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए वे निरंतर लड़ाई लड़ते रहे। इसकी उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी। तब भी वे पीछे नहीं हटे, और न उन्होंने समझौता किया। यह बात हर कोई जानता है कि सन १९५० में उन्होंने अलजीरिया-युद्ध की भर्त्सना की थी। अमरीका ने जब विएतनाम पर हमला किया, तब उन्होंने बुद्धिजीवियों

की एक अदालत गठित की थी, उसमें अमरीकी राष्ट्रपति को भी अपनी सफाई देनी पड़ी थी। सार्त्र को १९६४ में साहित्य का नोबल पुरस्कार देने की घोषणा की गयी, लेकिन उन्होंने पुरस्कार की इतनी राशि भी ठुकरा दी। स्पष्ट है--उस महान विचारक और दार्शनिक की कीमत को गलत ढंग से आंका गया था।

अस्तित्व समझा

सार्त्र के सिद्धांतों की मैं यहां विस्तृत व्याख्या नहीं करूंगा, मुझे उनकी एक धारणा बरबस याद आती है--'मनुष्य अपने आप में कुछ नहीं है--वह मात्र एक जानवर है, जो उसी तरह निरर्थक है, और जिसकी कोई आत्मा नहीं। वह वास्तव में तब आदमी बनता है, जब किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कृतसंकल्प हो जाता है। वह उसमें पूरी ईमानदारी से डूब जाता है, ऐसे मनुष्य को यदि कुछ चाहिए, तो वह है केवल उसकी स्वतंत्रता का अधिकार। स्वतंत्रता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुसार काम करने के अवसर मिलते रहें। यदि नहीं मिलते, तो उसे लड़ाई लड़नी चाहिए। हर व्यक्ति अपने भाग्य का स्वयं नियंता है, इसलिए सार्थक तत्त्व आस्तिक या नास्तिक होना नहीं है, तत्व है अपने अस्तित्व को समझ कर उसकी रक्षा करना?

बृहत्तर रूप में सार्त्र ने अपने अस्तित्ववाद के सिद्धांत को इसी नींव पर रखा था।

सार्त्र शाही ढंग से रहते थे। लेकिन यह उनके रहने का सहज ढंग था। चरित्र के लिए जरूरी है--सहजता, क्योंकि सहजता अचानक नहीं आ जाती, वह सारे व्यतीत के संघर्ष और उसके बाद ठहरे हुए परिवेश की सार्थकता है। मैं शरीर से कृश और कांपते हुए उस महान व्यक्तित्व को आज भी अपनी आंखों के सामने देख रहा हूं, जो मानसिक रूप से बेहद जागरूक है, और किसी भी राजनीतिक सत्ता को पानी के बुलबुले से अधिक नहीं मानता।

सार्त्र की मृत्यु का समाचार जब अखबारों में मैंने पढ़ा, तब तीन वर्ष पहले के उस व्यतीत ने मुझे झकझोर दिया। सार्त्र से मिलकर लौटते वक्त अपने सहयोगी से मैंने एक ही बात कही थी कि यदि आइंसटीन के मस्तिष्क की उर्वरता को देखने के प्रयत्न किए जा रहे हैं, तो इस बात के प्रयत्न भी होने चाहिए कि आखिर इस सदी के महान दार्शनिक के मस्तिष्क में ऐसा क्या कुछ है, जो आइंसटीन से कम नहीं है। शायद अगले कई दशकों तक इतना बड़ा व्यक्तित्व फिर नहीं उभर पाएगा। ●

लेखक और पाठक के बीच जो मधुर संबंध हैं, वह तभी बिगड़ते हैं, जब लेखक अपने भीतर छिपाव रखता है। अभिव्यक्ति में कृत्रिमता ओढ़ लेता है।

--जॉ पाल सार्त्र

समय की कसौटी पर खरे उतरे निष्कर्ष

अस्तित्ववादी दर्शन के प्रणेता जां-पाल सार्त्र ने मृत्यु के दो दिन पूर्व अपने निकट सहयोगी दर्शन-शास्त्र के अध्यापक बेनी लेवी से अनेक विषयों पर बातचीत की थी। फ्रांस के प्रसिद्ध पत्र 'ला मांदे' में प्रकाशित सार्त्र का यह इंटरव्यू 'कादम्बिनी' के पाठकों के लिए मूल फ्रेंच से अनुवादित कर प्रकाशित किया जा रहा है। —संपादक

बेनी लेवी : अपने जीवन की उपलब्धियों के बारे में आपका क्या विचार है ?

सार्त्र : मैंने अकसर कहा है कि दार्शनिक धरातल पर मैं असफल रहा हूं। तात्पर्य यह रहा है कि मैं कोई ऐसी सनसनीखेज कृति नहीं दे सका, जिसकी तुलना शेक्सपियर या हीगल से की जा सके। मैं जो प्रस्तुत करना चाहता था, उसके परिप्रेक्ष्य में देखें, तो यह असफलता ही रही। किंतु मुझे अपना ही उत्तर यहां झूठा ठहराता है। निश्चय ही, मैं न तो शेक्सपियर हूं, और न हीगल। लेकिन मैंने ऐसी कृतियां दी हैं, जिन्हें इतने अच्छे ढंग से संवारा है, जितना मैं संवार सकता था।

मैं सोचता हूं कि मैं जो कुछ करने के लायक था, वह मैंने किया, और यह सार्थक रहा, फिर इसका मूल्यांकन चाहे जिस तरह किया जाए। भविष्य मुझे कई मुद्दों पर गलत साबित कर सकता है, लेकिन मुझे उम्मीद है कि मेरे कई निष्कर्ष समय की कसौटी पर खरे उतरेंगे। चाहे जैसे देखें, इतिहास दर्शाता है कि किसी भी व्यक्ति को अपने साथियों से मान्यता मिलने की रफ्तार धीमी रहती है। जब यह हो जाता है, तब अतीत में किये गये हर काम का अपना स्थान बन जाता है और उसकी असली कीमत स्पष्ट हो जाती है।

बेनो लेवी : लक्ष्यों की बात करते हुए आपने क्रांतिकारियों के बारे में क्या सोचा ? आपका ख्याल है कि वे अपने लक्ष्यों तक नहीं पहुंचेंगे। इस बात से क्या आप दोहरे चिंतन में नहीं पड़ गये ?

सार्त्र : बात ऐसी नहीं है। यह दोहरा चिंतन नहीं है। बात कुल इतनी है कि मुझे हर राजनीतिक दल, अनिवार्य रूप से बेवकूफी का पुलिंदा लगता है, ऊपर से विचार आता है और नीचे हो रहे चिंतन को अपने सांचे में ढाल लेता है, लेकिन निचले वर्गों में विचार का निर्माण तली से होना चाहिए। यही वजह है कि अपने वय के बीसवें साल से ही मैं दल के विचार के प्रति विद्रोही रहा हूं।

प्रस्तोता : शारदा पाठक

साहित्य के नोबल-पुरस्कार विजेता

साहित्य में नोबल पुरस्कार प्राप्त व्यक्तियों की सूची। यह पुरस्कार सन १९०१ से शुरू हुआ था——

लेखक	देश	वर्ष
सुली प्रुधोम	फ्रांस	१९०१
थियोडर मॉमसेन	जरमनी	०२
जांरस्तजेर्न जॉरंसन	नारवे	०३
फ्रेदेरी मिस्त्रल	फ्रांस	०४
जोसे इकेगेरे	स्पेन	०४
हेनरिक साइंकिविक्ज	पोलैंड	०५
जिओस्यू कारदुकि	इटली	०६
रुडयार्ड किपलिंग	ब्रिटेन	०७
रुडॉल्फ युकेन	जरमनी	०८
सेल्मा लेगरलॉफ	स्वीडन	०९
पौल हेसे	जरमनी	१०
मौरिसि मेटरलिंक	बेलिजियम	११
जरहार्ट हौप्टमन	जरमनी	१२
रवीन्द्रनाथ टैगोर	भारत	१३
किसी को नहीं मिला		१४
रोमैन रोलेंड	फ्रांस	१५
वरनर वी. हिडेंस्टम	स्वीडन	१६
कार्ल जेलेरप और		
हेनरिक पोंटापिडन	डेनमार्क	१७
किसी को नहीं मिला		१८
कार्ल स्पिटलर	स्विटजरलैंड	१९
नुट हमसन	नारवे	२०
अनातोली फ्रांसी	फ्रांस	२१
जांकितो बोनाभेंट	स्पेन	१९२२
डब्लू. बी. टोरस	आयरलैंड	२३
लेडिसलॉ रेमांटे	पोलैंड	२४
जी. बी. शाह	ब्रिटेन	२५
ग्रेजिया डिलिड्डा	इटली	२६
हेनरि बर्गसन	फ्रांस	२७
सिगरिड अंद्स्यट	नारवे	२८
थॉमस मान	जरमनी	२९
सिनक्लियर ल्यूविस	अमरीका	३०
इरिक एक्सल कार्लफ्यल्डर	स्वीडन	३१
जॉन गालसवर्दी	ब्रिटेन	३२
इवान बनिन	(किसी देश का नहीं)	३३
ल्यूगि पिरानडेलो	इटली	३४
नहीं दिया गया		३५
यूजेन ओनेल	अमरीका	३६
रोजर मार्टिन द् गार्द	फ्रांस	३७
पर्ल बक	अमरीका	३८
एफ. ई. सिलिएनपा	फिनलैंड	३९
किसी को नहीं दिया गया		४०
किसी को नहीं दिया गया		४१
किसी को नहीं मिला		४२
किसी को नहीं मिला		४३
जोहंस वी. जेनसेन	डेनमार्क	४४
गेबरेला मिस्ट्रल	चिली	४५

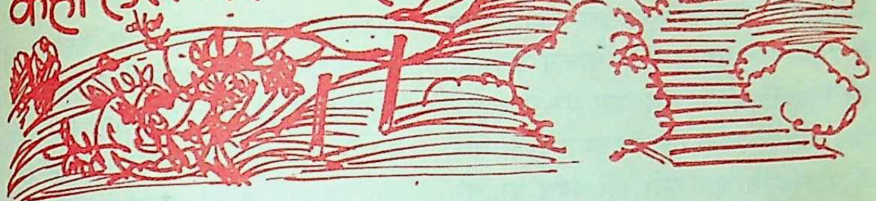
फ्रेम की विडंबना

झंडा फहराती हुई मोटर को देखकर
भोले गांववालों की भीड़ जुट आती है
जुड़े हुए हाथों में स्वार्थ ललक उठता है
मान-पत्र देते हुए आंखों में आशा की फसल
लहराती है

भीड़ खड़ी रहती है
देश खड़ा रहता है
पीछे धुआं-धूल छोड़
मोटर भर नेता की
आगे बढ़ जाती है
जनतंत्री फ्रेम में मैली-सी पड़ती हुई
सामंती रंगों की
फोटो मढ़ जाती है
चित्रकार, जल्दी करो !
नये चटक रंग भरो !
फ्रेम की विडंबना अब नहीं सही जाती है !

राजेन्द्र अनुरागी
भारत पर्यटन विकास निगम,
हिमालय हाउस, कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नयी दिल्ली-११०००१

हरमन हेस्स	स्विटजरलैंड	४६
अंद्रे गाइड	फ्रांस	४७
टी. एस. इलियट	ब्रिटेन	४८
विलियम फॉकनर	अमरीका	४९
बर्टनर्ड रसल	ब्रिटेन	५०
पॉर लेगरविस्ट	स्वीडन	५१
फ्रेंकोस मोरेस	फ्रांस	५२
विंसटन चर्चिल	ब्रिटेन	५३
अर्नस्ट हेमिंगवे	अमरीका	५४
हल्डर लेक्सन्यस	आयरलैंड	५५
जे. आर. जिमेंज	स्पेन	५६
अल्बर्ट फेम्स	फ्रांस	५७
बोरिस पास्तनक	रूस (नहीं लिया)	५८
साल्वेतोरे क्वासिमोदो	इटली	५९
सेंट-जॉन पर्स	फ्रांस	६०
इवो अंद्रिक	युगोस्लाविया	६१
जे. स्टेनबक	अमरीका	६२
जी. सिफरिस	ग्रीक	६३
जे. पी. सार्त्रे	फ्रांस (लेने से मना)	६४
एम. जोलोकोव	रूस	६५
एस. वाई. एग्नोन	इस्राइल	६६
एन. सेक्स	जरमनी	६६
एम. ए. अस्टरिस	ग्वाटिमाला	६७
वाय. क्वाबटा	जापान	६८
एस. ब्यकेट्ट	आयरलैंड	६९
ए. सोल्जेनित्सन	रूस	७०
पी. नरूदा	चिली	७१
एच. बॉल	जरमनी	७२
पी. व्हाइट	आस्ट्रेलिया	७३
ई. जॉनसन और एच. मार्टिनसन	स्वीडन	७४
ई. मॉतेल	इटली	७५
सौल बेलो	अमरीका	७६
वीसेंते आलेइक्सांद्रे	स्पेन	७७
आइजक बाशिविस सिंगर	अमरीका	७८
आँदिस्यूतइलित्स	ग्रीक	७९



● शारदा

नर्मदा के किनारे बना वह राजमहल, सचमुच कभी बेहद भव्य और आकर्षक रहा होगा, पर आज तो उसकी दीवारें ढह गयी हैं। संगमरमर का फर्श लोग उखाड़कर ले गये हैं और उसकी जगह उग आयी है जंगली घास। अब तो उस खंडहर-खंडहर हो गये राजमहल में कोई भूला-भटका पथिक भी विश्राम करने नहीं रुकता, क्योंकि आसपास के गांवों में यह खबर फैल गयी है कि उन खंडहरों में एक प्रेतात्मा वास करती है, जो वहां जानेवाले व्यक्ति को पागल बना देती है और अंततः एक दिन वह तड़प-तड़पकर मर जाता है।

कहा जाता है कि इस विशाल राजमहल को खंडहर बनाने में उस अदृश्य प्रेतात्मा का बड़ा हाथ है। यद्यपि आज तक किसी ने उस प्रेतात्मा को देखा नहीं, फिर भी उससे जुड़ी अनेक किंवदंतियां न जाने कब से लोगों को आतंकित करती आ रही हैं। ये किंवदंतियां रहस्य-रोमांच से भरी, किसी फिल्म की पटकथा-जैसी लगती हैं।

कहते हैं, एक बार एक युवक शिकार की तलाश में इधर आया। तब यह राजमहल इतनी गिरी और जर्जर अवस्था में न था। युवक कुछ बेहद साहसी था, क्योंकि जब उसे बताया गया कि उस उजाड़ राजमहल में प्रेतात्मा का वास है, तब वह हंस पड़ा, बोला, "तब तो आज की रात मैं उस प्रेतात्मा से जरूर मिलूंगा।"

दोपहर ढल चुकी थी। कुछ देर बाद सांझ घिर आयी और धीरे-धीरे पक्षियों के शोर से सारा वातावरण गुंजरित हो उठा। उस शिकारी युवक ने एक साफ-से कक्ष में अपना डेरा लगाया। बंदूक टांगी और थैले को सिरहाना बनाकर लेट गया। पक्षियों का शोर सारे वातावरण को सप्राण बनाये हुए था। धीरे-धीरे यह शोर भी समाप्त हो गया और उसका स्थान एक भयावह सन्नाटे ने ले लिया।

युवक ने अपनी घड़ी पर नजर डाली।

केवल सात बजे थे। युवक ने लंबी सांस ली। उसे अभी पूरी रात गुजारनी थी। क्षणभर के लिए युवक ने सोचा, 'किस बेवकूफी में पड़ गया हूं। इस उजाड़ महल से निकल चला जाए।' लेकिन प्रेतात्मा की किंवदंतियों ने जैसे उस पर जादू कर दिया था। युवक ने प्रेतात्माओं के बारे में पढ़ा बहुत था, सुना भी बहुत था, पर आज तक उसकी लाख कोशिशों के बावजूद किसी प्रेतात्मा से मुलाकात नहीं हो पायी थी ! 'सब पागलपन है !' युवक ने सोचा और हंस पड़ा।

सहसा उसे लगा, कमरे में कोई खिलखिलाया है ! एक अनजाने भय ने उसका रोम-रोम कंपा दिया। चीते की फुरती से वह खड़ा हुआ और बोल उठा, "कौन है ?"

उत्तर में उसे फिर 'खिलखिल' की ध्वनि सुनायी दी।

युवक को लगा, जैसे कोई युवती परिहास से हंस रही हो। वह एक बार फिर कांप उठा। उसने घड़ी पर नजर डाली। वह सवा सात बजा रही थी। केवल पंद्रह मिनट बीते थे, पर उसे लग रहा था, जैसे इस उजाड़ महल में रहते हुए उसे जाने कितने घंटे बीत गये हैं !

कुछ सोचकर उसने टार्च जलायी और मटमैली दीवारों पर उसका प्रकाश डालते हुए कमरे का चक्कर लगाने लगा। वर्षा के पानी के कारण दीवारें बदरंग हो उठी थीं, पर टार्च के प्रकाश में उसे साफ नजर आ रहा था कि कभी इन दीवारों पर सुंदर चित्रकारी की गयी होगी।

सहसा एक अस्पष्ट से चित्र पर उसकी नजर ठहर गयी। वह चित्र किसी युवती का प्रतीत होता था। यद्यपि धूप और वर्षा ने चित्र के मूल रंगों को धो दिया था, युवती की आकृति साफ नजर आ रही थी।

युवक ने सोचा, शायद यह राजमहल के अज्ञात स्वामी का विलास-कक्ष रहा होगा। वह इस तरह की बातें सोच ही रहा था कि उसे एक बार फिर खिलखिलाहट की आवाज सुनायी दी। आवाज पीठ के पीछे से आयी थी। अतः वह फौरन घूम गया।

टार्च की रोशनी में उसने जो देखा, उससे उसका हाथ कांप उठा। टार्च की रोशनी क्षणभर के लिए सिहर उठी।

कक्ष के द्वार पर एक सुंदर युवती खड़ी थी। गोल मुख, बड़ी-बड़ी आंखें, और होंठों पर हलकी-सी मुसकराहट ! युवक ने लड़खड़ाते स्वरों में पूछा, "तु... तु . . . तुम कौन हो ?"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया और पीछे मुड़कर बाहर की ओर निकल गयी। युवक ने कमरे में टंगी बंदूक उतारी और युवती के पीछे दौड़ पड़ा।

उसे रुकता देखकर वह युवती भी रुक गयी थी। जब टार्च के प्रकाश में उसने युवक के एक हाथ में बंदूक देखी, तब व्यंग्य से मुसकरा उठी। फिर आगे बढ़ गयी। युवक भी उसके पीछे-पीछे

चल पड़ा।

युवती महल के एक उजाड़ कक्ष के भीतर चली गयी। भीतर जाते वक्त उसने युवक को मुड़कर देखा। लगा, जैसे वह उसे निमंत्रित कर रही है।

युवक क्षणभर के लिए ठिठका। उसने लौटने की ठानी, पर युवती का निमंत्रण जैसे उस पर सम्मोहन कर गया था। वह भी उसके पीछे-पीछे कमरे में प्रविष्ट हो गया।

कमरे में पहुंचते ही वह युवती जाने कहां गायब हो गयी। युवक ने टार्च के प्रकाश में साफ-साफ देखा था कि युवती दीवार से जाकर सट गयी है और अगले पल जैसे वह दीवार में समा गयी थी।

युवक आतंक से पसीने-पसीने हो उठा। चूंकि उसके पास बंदूक थी, अतः साहस ने अभी तक उसका साथ न छोड़ा था। युवक हिम्मतकर दीवार के पास तक गया। वह दीवार को टटोल रहा था कि उसका पैर किसी चीज से टकराया। उसने टार्च की रोशनी नीचे की, तो पहली बार भय से वह चीख उठा। उसके पैरों के पास एक नर-कंकाल पड़ा था। कंकाल, जिसकी हड्डियां इधर-उधर बिखरी हुई थीं। सहसा युवक के कानों में किसी के सिसकने की आवाज आयी। उसे लगा, जैसे वही युवती सिसक रही है।

युवक असमंजस में पड़ गया। फिर उसने घड़ी पर नजर डाली। साढ़े सात बज रहे थे। पांच-दस मिनट उस कमरे में ठहरने के बाद, युवक फिर उसी कक्ष में लौट आया, जहां उसका थैला था।

जाने क्यों, युवक को अब बिलकुल भी भय नहीं लग रहा था। उसने सिगरेट निकाली और उसे जलाया, थैला उठाकर



उस उजाड़ महल के बाहर आ गया।

खुली जगह में पहुंचने पर उसका रहा-सहा भय भी जाता रहा। वह सोचता रहा, सोचता रहा। युवती, उसकी खिल-खिलाहट, कंकाल और फिर रोने की आवाज। आखिर यह सब क्या था!

अचानक उसे एक विचार सूझा। उसने थैला बाहर रखा और एक बार फिर कंकालवाले कमरे की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचकर उसने टार्च की रोशनी में कंकाल की तितर-बितर बिखरी अस्थियां समेटी और उन्हें लेकर बाहर आ गया। बाहर आकर उसने इधर-उधर पड़ी सूखी लकड़ियां इकट्ठी की। उन पर सूखी घास डाली। और फिर उन अस्थियों को उस पर रखकर आग लगा दी। पलभर में आग भभक उठी। आग के प्रकाश में युवक आसपास बिखरी लकड़ियां ढूंढ़ता रहा और उस 'चिता' में डालता रहा।

सुबह का झुटपुटा हुआ, तो उसने ठंडी चिता से अस्थियां चुनी और पास बहती नर्मदा में उन्हें प्रवाहितकर उस अनजान आत्मा को प्रणाम किया। उसे विश्वास हो गया था कि अब कभी किसी को उस उजाड़ महल में न तो खिल-खिलाहट सुनायी देगी और न किसी की सिसकियों की आवाज! युवक का विश्वास सही था। उसके बाद किसी ने उस उजाड़ महल में खिलखिलाहट नहीं सुनी।

हाल ही में हिमाचल के चैल राज-प्रासाद, अब एक सरकारी होटल, में रहते हुए मुझे अपने दिवंगत चाचा द्वारा सुनायी गयी यह घटना याद हो आयी। मेरे चाचा फॉरेस्ट अफसर थे और वे काफी दिनों तक सतपुड़ा के घने जंगलों में तैनात थे।

चैल के पास एक अन्य पर्वत शिखर पर बने बाबा बालकनाथ के मंदिर के सामने एक अधबने राजमहल को देख-कर, नर्मदा के किनारे बने उसे प्रेत-महल की याद ताजा हो गयी थी।

बाबा बालकनाथ के मंदिर के पुजारी ने बताया था कि पहले पटियाला-नरेश भूपेन्द्रसिंह इसी शिखर पर अपना राज-महल बनाना चाहते थे, पर होता यह कि दिन में मजदूर दीवारें बनाते और रात को कोई अदृश्य शक्ति उन दीवारों को ढ़हा जाती।

पटियाला-नरेश परेशान हो उठे। एक रात उन्हें बाबा बालकनाथ ने स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि वे उस शिखर पर महल बनाने का विचार त्याग दें। इस शिखर पर उनका वास है। उन्होंने वैसा ही किया।

भारत में रियासतों के खत्म होने के बाद राजमहल भी तेजी से उजड़ते जा रहे हैं। कुछ राजमहल अब होटल बन गये हैं—जैसे चैल का राजप्रासाद, या राजस्थान के कुछ राजमहल। ये राजमहल आज भी हलचलों के केंद्र बने हुए हैं, पर देश में अनेक राजमहल ऐसे हैं, जो या तो उजाड़ हो चुके हैं या फिर उजाड़ होने की प्रक्रिया में हैं। ●

१३ नवंबर, २०२६। जी हां, यही वह निर्णायक दिन होगा, जब मानव सभ्यता की यह धरोहर ताश के महल की तरह भहराकर ढह जाएगी और फिर से एक नया पाषाण-युग प्रारंभ होगा। मानव जीवन के आधार—समस्त प्राकृतिक स्रोत इस तिथि तक समाप्त हो चुके होंगे। इनके अभावों के बाद साक्षात कयामत आ खड़ी होगी। दुनिया में ऐसे निराशा-वादी भविष्य-विज्ञानियों की कमी नहीं ३० साल तक ही चल पाएंगे। हां, अलबत्ता कोयले के भंडार १५० साल तक काम आते रहेंगे। पानी की किल्लत अभी भी है, आगे और भी अधिक हो जाएगी।

मानव सभ्यता के बचे-खुचे ४८ वर्ष भी चैन से नहीं बीतेंगे। यदि परमाणु-युद्ध न भी हुआ, तब भी दुनिया में एकत्र नाभि-कीय ईंधन के भंडार मानव-अस्तित्व पर काली छाया की तरह मंडराते रहेंगे। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि आगामी

एक दृष्टि यह भी

४६ वर्ष बाद दुनिया नष्ट हो जाएगी!

• सुशील शुक्ल

है, जो सन २००० के उस पार मानव-सभ्यता का कोई भविष्य नहीं देखते। लेकिन इन सबसे एक हाथ आगे बढ़कर कयामत का दिन निश्चित किया है, अम-रीका के भौतिकीविद बी. वी. फास्टर ने।

इन निराशावादी भविष्य-विज्ञानियों का अनुमान है कि १३ नवंबर, २०२६ को दुनिया की आबादी दुगनी हो जाएगी। और खनिज स्रोत, जिनकी हमें आज जान-कारी है, उनकी हालत यह है कि सोने के स्रोत ११ साल, तांबा के २६ साल, चांदी के १६ साल और पेट्रोलियम के स्रोत

२५ वर्षों में ही पर्यावरण इस कदर प्रदू-षित हो जाएगा कि सांस लेने के लिए शुद्ध प्राणवायु तक नहीं मिल पाएगी, तब क्या सचमुच ही पृथ्वी की यह विकसित सभ्यता हमारे देखते-देखते मिट्टी में मिल जाएगी ?

मानव जाति के सर्वनाश की भविष्यवाणी करनेवालों के खिलाफ सबसे ज्यादा मुखर होकर सामने आनेवाले आशावादियों में अमरीकी समाज-शास्त्री

हरमन कान्ह का नाम प्रमुख है। दिलचस्प बात यह है कि कान्ह अभी कल तक मानव-जाति के सर्वनाश की निराशावादी भविष्यवाणी करनेवालों में अग्रणी थे, और अब आशावादियों में। उनका कहना है कि अगली शताब्दी में तमाम दुनिया से गरीबी का नामोंनिशान मिट जाएगा। आगामी २०० सालों में सूखा और प्रदूषण पर नियंत्रण पा लिया जाएगा। तमाम दुनिया में लोगों का जीवन-स्तर निरंतर ऊंचा उठेगा और न केवल आर्थिक प्रगति ही संभव होगी, बल्कि उसमें इच्छित सफलता भी प्राप्त होगी। हां, कुछ स्रोतों का स्खलन रोकना हमारे बस में नहीं होगा, फिर भी ज्ञान के विकास और समृद्ध तकनीक के बल पर हम उनकी कमी नहीं रहने देंगे। यों, कान्ह का कहना है, इसके लिए दो सौ साल तक इंतजार करने की जरूरत नहीं, बल्कि हमारी अपनी जिंदगी में ही दुनिया बदलने लगेगी।

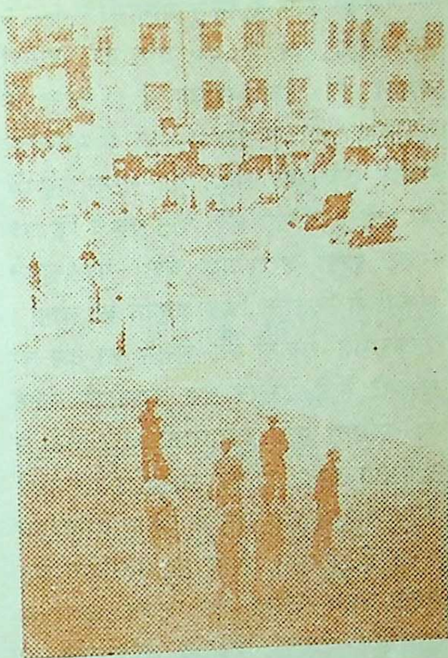
हरमन कान्ह के अनुसार यदि निराशावादियों का यह दावा सही मान लिया जाए कि २००साल बाद दुनिया की आबादी ३०अरब हो जाएगी, तब भी आबादी की समस्या कोई समस्या नहीं होगी, क्योंकि तब तक प्रति व्यक्ति औसत आय २० हजार डालर तक पहुंच चुकी होगी और प्रचुर परिमाण में ऊर्जा, कच्चा माल और खाद्य-सामग्री उपलब्ध होगी। हां, पारा तथा क्रोमियमयुक्त कतिपय लवणों की आपूर्ति की समस्या अवश्य खड़ी हो सकती है, किंतु यह समस्या बहुत मामूली समस्या होगी। जब मनुष्य को शुद्ध वायु, शुद्ध जल, भोजन, ऊर्जा और कच्चा माल-पर्याप्त मात्रा में मिलते रहेंगे तो छोटी मोटी समस्याएं बेमानी हो जाएगी। अगर तकनीकी विकास जारी रहा तो रास्ता और आसान हो जाएगा। वैसे, इस शती के अंत तक जितने तकनीकी विकास के होने की आशा है, उससे ही आगामी दो शताब्दियों की जरूरतें पूरी की जा सकेंगी।

वैसे कान्ह का निजी विचार यह है कि २०० साल बाद दुनिया की आबादी ज्यादा से ज्यादा १५ अरब होगी। इतना ही नहीं, सन २१७५–८० तक जन्म-दर स्वत: बहुत कम हो जाएगी। हो सकता है, शून्य भी हो जाए। इस बारे में कान्ह का तर्क यह है कि बच्चा १४ वर्ष की आयु तक जिस गति से बढ़ता है, उसी गति से आजीवन नहीं बढ़ता।

चलिए, यह मान लिया जाए कि २२वीं शती तक दुनिया की आबादी १५ अरब से ज्यादा न होगी, लेकिन इन १५ अरब आदमियों के लिए भी भोजन कहां से जुटाया जाएगा? कान्ह के पास इस प्रश्न का उत्तर है। वे कहते हैं कि वर्तमान परंपरागत साधनों से ही इतना भोजन पैदा किया जा सकता है कि ३० अरब लोगों को भरपेट खाना मिल जाए। आखिर अभी तक हम विश्व की उपजाऊ भूमि के एक चौथायी हिस्से का उपयोग ही खाद्यान्न पैदा करने के लिए कर रहे हैं।

मसलन चिलियन, पेरूवियन तटवर्ती मैदान को अपक्षारीकरण (डिसैलिनाइजेशन) द्वारा कृषि योग्य बनाया जा सकता है। तकनीकी प्रयास से सहारा के नीचे के क्षेत्र को भी उपजाऊ बनाया जा सकता है। और तो और तीन अरब हैक्टेयर भूमि के तुल्य भूमि तो हमें केवल बहुफसल प्रथा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, जो १९७६ में बोयी गयी कुल भूमि के चार गुने के बराबर है। अगर लोग परंपरागत भोजन से अलग हटकर कुछ खाने को तैयार हो जाएं—मसलन तेल से बनायी गयी एक कोशीय प्रोटीन–तब तो अन्न उपजाने के लिए ये प्रयास भी कम ही करने पड़ेंगे।

सन १९९० तक हमारे लिए आवश्यक ऊर्जा का ५० प्रतिशत वैसे भी शिलीभूत ईंधन अर्थात फासिल से प्राप्त होने लगेगा। शेष ५० प्रतिशत ऊर्जा नाभिकीय स्रोतों से प्राप्त की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त आनेवाला युग सौर-ऊर्जा युग होगा और आगामी शताब्दियों में ऊर्जा ही हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। हमारे पास ऊर्जा के लिए सौर, भूतापीय आदि स्रोत तो हैं ही, द्रवण और विखंडन द्वारा भी ऊर्जा उत्पन्न की जा सकेगी। इस तरह आगामी दो सौ वर्षों तक ऊर्जा संबंधी कोई संकट आसन्न नहीं है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि यदि सहारा के रेगिस्तान पर काली सतह बिछा दी जाए और उस पर धूप



पड़ने दी जाए तो इस प्रक्रिया में इतनी उष्मा उत्पन्न होगी, जो सन २१७५–८० की ऊर्जा संबंधी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर देगी। इतने पर भी यदि कोई मानवता के भविष्य के प्रति निराश है, तो उसका मर्ज लाइलाज है।

इसी तरह निकट भविष्य में अलूमीनियम अयस्कों के चुकने की भी कोई आशंका नहीं है। हां, यह हो सकता है कि मानव के लिए आवश्यक इन धातु तत्वों के बहुत उम्दा किस्म के अयस्क न मिलें लेकिन निम्न कोटि के अयस्क पर्याप्त मात्रा में हमारे हाथ में रहेंगे। इसलिए भविष्य से आतंकित होने का कोई कारण नहीं।

यद्यपि दो शताब्दियों तक मानवता

का रास्ता साफ है, किंतु आगामी २०–२२ वर्ष यानी सन २००० तक का रास्ता अवश्य ही ऊबड़-खाबड़ है। कान्ह के कथनानुसार सन १९८५–८६ में मानवता गंभीर तकनीकी संकट का सामना करने जा रही है। चिंता की बात यह है कि यह संकट सूखा और युद्ध जैसे परंपरागत संकटों से नितांत्त भिन्न प्रकृति का होगा। परंपरागत संकटों को झेलने का दम तो आदमी में है, लेकिन इस तकनीकी संकट का सामना यदि बुद्धिमानी और धैर्य से न किया गया, तो हम सांस्कृतिक तबाही के दुष्चक्र में फंस जाएंगे। कैसा होगा यह संकट ? हरमन कान्ह के मुताबिक यह संकट जनन-विज्ञान जैसे नाजुक क्षेत्रों में आधुनिक टेकनालाजी के अतिक्रमण के परणामस्वरूप उत्पन्न होगा। जरा कल्पना कीजिए कि मनुष्य को मनचाहा बच्चा पैदा करने की सुविधा सुलभ हो जाए तो दुनिया के क्या रंग-ढंग होंगे ! कौन नहीं चाहेगा कि उसका बच्चा तीसमारखां ही हो ! जरा सोचिए कि दुनिया में अगर सब बुद्धिजीवी ही पैदा होने लगे तो हथोड़ा कौन चलायेगा ? मुश्किल यह है कि दुनिया सिर्फ बुद्धिजीवियों के बल पर ही नहीं चल सकती। दुनिया को चलाने के लिए हथोड़ा चलाना भी जरूरी है। बुद्धि और श्रम के समुचित सहकार से ही दुनिया का कामकाज चलता आया है और चलेगा।

इस आसन्न सांस्कृतिक संकट को टालना बहुत जरूरी है। हरमन कान्ह के मुताबिक इससे बचने का यही एक रास्ता है कि तकनीशियन कम से कम जनन-विज्ञान जैसे नाजुक क्षेत्रों को बख्शे रहें। मानवता के हित में यही होगा कि आदमी को अपनी पसंद का बच्चा पैदा करने की सुविधा सुलभ न करायी जाए।

अगर हम इस सांस्कृतिक संकट से बच निकले तो सचमुच हम एक नयी दुनिया में रह रहे होंगे। इस नयी दुनिया के लोग एक औद्योगिकोत्तर समाज में रह रहे होंगे, इस समाज की रुचि नवीनतर अनुभवों, यात्रा, कला, संस्कृति और साहित्य में होगी। लोग भौतिक सुविधाओं के पीछे पागल नहीं होंगे। औद्योगिक तंत्र से समाज की मांगें बहुत कम हो जाएंगी। वह समाज शांत, संतुष्ट और सुंदर होगा। हमारे मशीनीकरण से आक्रांत, बेचैन और कुरूप समाज से सर्वथा भिन्न-एक नवीन समाज।

—१०५/४१८ चमनगंज, पहला प्लाट,
कानपुर-१

वकील : आइए, आइए, मुझे पता था आप जरूर मेरे पास ही अपना केस लेकर आएंगे। और वह जो वकील शामतलाल का बड़ा-सा बोर्ड लटका है, उसकी ओर देखेंगे भी नहीं।

व्यक्ति : जी, पहले तो मैं उन्हीं के पास गया था। उन्होंने कहा तुम्हारा मुकद्दमा तो कोई मूर्ख ही ले सकता है, इसीलिए मैं आपके पास आ गया हूं।

लियाराम

• कुलदीप बग्गा

जैसे ही प्रांतीय सरकार उलटी हमारे शहर की नगर-कमेटी में भी भूचाल-सा आ गया। कमेटी की सरकार केवल तीन सदस्यों के बहुमत से टिकी हुई थी। अभी चुनाव हुए दो ही वर्ष हुए थे।

श्री लियाराम विद्युत-कमेटी के अध्यक्ष थे। जब प्रांतीय सरकार बदली, तब उनके दिमाग ने काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने विपक्ष के नेता से, जिनकी पार्टी अब प्रांतीय सरकार बना चुकी थी, और जो स्वयं नये अध्यक्ष बन गये थे, चुपके से बात की। कुछ बातें तय हो गयीं।

अचानक खबर उड़ी कि लियाराम अपने कुछ साथियों के साथ अपनी पार्टी छोड़कर शासक पार्टी में शामिल हो गये हैं।

प्रांतीय सरकार बदलते ही कमेटियों के टूटने या नये चुनाव होने की खबरें



छपने लगी थीं। परंतु नगर कमेटी भंग होने से बच गयी।

नये नेता ने विभागों का बंटवारा किया। श्री लियाराम को पागल तथा आवारा कुत्ते पकड़ने की कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस नियुक्ति से उन्हें बहुत आत्मग्लानि हुई। मित्रों ने भी उनका खूब मजाक उड़ाया। जब शपथ-ग्रहण की रस्म हुई, तब नयी पार्टी के सदस्यों ने उन्हें फूलमालाओं से लाद दिया जिससे उनकी शर्म फूलों के हारों में दुबक गयी।

मन ही मन वह काफी क्षुब्ध थे, लेकिन अब इतनी जल्दी क्या हो सकता था? पत्रकारों के सामने मुसकराते हुए उन्होंने बयान दिया कि, "उन्होंने यह दल-बदल देश की बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के संदर्भ तथा कमेटी के हित को देखते हुए किया। उन्हें जनता की सेवा करनी है, चाहे विद्युत कमेटी के अध्यक्ष बनकर करें या पागल व आवारा कुत्ते पकड़नेवाली कमेटी के अध्यक्ष बनकर।"

एक पत्रकार ने पूछ ही लिया, "आपने पुरानी पार्टी क्यों छोड़ी? वहां तो आप विद्युत-कमेटी के अध्यक्ष पद पर थे?"

"पार्टी मैंने पद के लिए नहीं, देश तथा कमेटी के बड़े हित को देखते हुए छोड़ी। कमेटी में यह 'पागल तथा आवारा कुत्तें पकड़ने' का महकमा भी है, मैं स्वयं भी यह नहीं जानता था।"

यह सुनकर खूब कहकहे उठे।

मन में लियाराम बहुत दुःखी हुए। उनके साथ धोखा हुआ था। उन्हें विश्वास था कि लाइसेंस कमेटी का अध्यक्ष पद तो उन्हें अवश्य मिलेगा। जितने मुंह उतनी बातें शहर में फैलीं कि—

'लियाराम ने नगद एक लाख रुपया लेकर पार्टी छोड़ी है।'

'यहां भी कुछ बना लेंगे।'

'दलबदलुओं के साथ यही होना चाहिए।'

बाबू रामलाल पिछले दस वर्षों से पागल तथा आवारा कुत्ते पकड़ने के महकमे में हेडक्लर्क थे। वह बड़ी ईमान-दारी और निष्ठा से काम करते थे। समय से कमेटी के ऑफिस में आते थे। किस दिन किस रंग और नसल का पागल तथा आवारा कुत्ता पकड़ा गया, इसका पूरा ब्यौरा वह अपने रोजनामचे में दर्ज करते थे। अपने तबादले की उन्होंने कई बार कोशिश की थी। वह चाहते थे कि वह भी किसी ऐसे विभाग में जाएं जहां कुछ ऊपर की कमाई हो सके। उनके साथ जो भरती हुए, उन्होंने अपने मकान बनवा लिये थे। उन्हें स्वयं यह रहस्य समझ में नहीं आता था कि उनकी किस्मत को पागल कुत्ते ने काटा था, या उन्होंने किसी पागल कुत्ते को काटा था। कभी-कभी वह जमाने को कोसते कि आज के आदमी से तो कुत्ता ही अच्छा है। एक बार जब मालिक को पहचान लेता है, फिर चाहे जान चली जाए, पर मालिक पर नहीं झपटता। लेकिन आदमी, सबसे पहले

मालिक पर ही झपटता है, दुश्मन पर बाद में। पागल होने से पहले कुत्ते में पागलपन के लक्षण दिखायी दे जाते हैं; पर आदमी. .। आवारा कुत्तों की गिनती तो कम होती जा रही है, पर आवारा आदमियों की गिनती दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

बाबू रामलाल पान चबाते हुए अपनी कुर्सी पर बैठे अपने मित्रों से बातें कर ही रहे थे कि नव-नियुक्त अध्यक्ष लियाराम कमरे में आ धमके। बाबू रामलाल तथा उनके अन्य साथियों ने उठकर उनका अभिवादन किया।

"आप मेरे कमरे में आइए। आपके साथ विभाग के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करनी है," यह कहकर श्री लियाराम अपने कक्ष में चले गये।

बाबू रामलाल ने पागल कुत्तों के तीन-चार वर्षों के रोजनामचे तथा उनको मारनेवाली दवाइयों तथा उन्हें पकड़ने के काम आनेवाली गाड़ियों की फाइलों का एक गठ्ठर बंधवाया और अध्यक्ष के सामने उपस्थित हो गये।

श्री लियाराम इतना बड़ा गठ्ठर देखकर चौंके। मन ही मन बोले, 'हे भगवान, किस पागल महकमे का अध्यक्ष बना दिया। ऊपर से यह हेडक्लर्क ! कुछ समझता ही नहीं कि आज का आदमी क्या चाहता है। इस बेचारे का भी क्या दोष ! इसका वास्ता भी तो कुत्तों से ही पड़ता है।' यह सब सोचकर वह मसकराये।



"आप यह क्या उठा लाये हैं ?"

"सर, फाइल लाया हूं। पागल कुत्ते तो नहीं लाया !"

अध्यक्ष श्री लियाराम अपनी हंसी नहीं रोक सके।

श्री लियाराम पांच दिनों से दुःखी थे। राजनीति एक जुआ है, यह बात वह नहीं मानते थे। न ही वह किसी शुभ मुहूर्त का वहम करते थे। अब उन्हें दोनों बातों पर यकीन होने लगा था। वह गंभीर होकर बोले, "बाबू रामलालजी, आपके महकमे का बजट कितना है ?"

"कई वर्षों से इस विभाग के लिए बहुत थोड़ा-सा बजट दिया जा रहा है। तीन साल पहले आठ गाड़ियां खरीदने

के लिए एक लाख का बजट मिला था। आठ गाड़ियां तो उस समय की कमेटी के अध्यक्ष के साले ने सप्लाई की थीं।"

"उन गाड़ियों का क्या हाल है ?"

"सर, वे तो दूसरे ही वर्ष टूट-फूटकर अंजर-पंजर हो गयीं।"

"नयी गाड़ियां खरीदने के लिए आपने बजट मांगा ?"

"सर, ऑडिटवाले पांच वर्ष के पहले नयी गाड़ी खरीदने की आज्ञा नहीं देते। सर, मैंने तो उस समय भी फाइल में लिखा था कि अभी आठ गाड़ियों की पागल व आवारा कुत्तों को पकड़ने के लिए जरूरत नहीं है।"

लियाराम कुछ और ही विचार कर रहे थे। यह बात सुनकर झुंझलाये, "आप मुजे पागल बना देंगे। आपको क्या पता गाड़ियाँ क्यों खरीदी जाती हैं ?"

"पागल तथा आवारा कुत्तों को पकड़ने के लिए," बाबू रामलाल ने तुरंत जवाब दिया।

लियाराम गुस्से में चिल्ला उठे, "आप पागल हैं और मुझे भी पागल बना देंगे। पार्टी ने पहले ही मेरे साथ ज्यादती की है कि मुझे इस कमेटी का अध्यक्ष बना दिया। जिस महकमे में बजट ही न हो, वहां जन-सेवा क्या खाक होगी ? अब मैंने भी इस पार्टी को पागल कुत्ते की तरह न काटा, तो मेरा नाम भी लियाराम नहीं। मैं तो अब उचित मौके की फिराक में हूं।"

"सर, आप ठीक कहते हैं," बाबू रामलाल बोल उठे।

वह बाबू रामलाल की उपस्थिति को भूल गये थे। अपनी झेंप मिटाने के लिए फिर बोले "क्या ठीक कहता हूं ?"

बाबू रामलाल यह प्रश्न सुनकर कुछ हतप्रभ हुए, कुछ झेंपे। आखिर अनुभवी आदमी थे, बोले, "आप-जैसे पुराने और मंजे हुए जन-नेता के लिए यह पद उपयुक्त नहीं है। आपने ही तो उन्हें सत्ता में बैठाया। मुझे देखिए न ! मैं दस वर्षों से इस महकमे में हेडक्लर्क हूं। कमेटी में रोज तबादले होते रहते हैं, पर मेरे केस की कहीं सुन-वायी नहीं होती। पिछली कमेटी के अध्यक्ष बहुत भले आदमी थे। उन्होंने मेरी सारी बात सुनी और बोले, 'बाबू रामलालजी, आप किसी भी आदमी को अपनी सीट पर काम करने के लिए राजी कर लीजिए, मैं उसे यहां लगा दूंगा। आप चाहे किसी पागल आदमी को ही ले आइए, मैं उसे लगा दूंगा।' खुदा उनका भला करे। उन्होंने मेरी बात तो पूरी तरह सुनी। कुछ नेता तो बात तक करने को राजी नहीं होते।"

लियाराम को बाबू रामलाल की इन बातों से चिढ़ हो रही थी। उन्हें लगा, यह आदमी सनकी है। वह चाहते थे कि विभाग की सनसनीखेज बातों का उन्हें पता चले, ताकि अगली बैठक में वह कुछ शोर मचा सकें, अपनी घटी हुई प्रतिष्ठा को बढ़ा सकें। पचास हजार रुपया खर्च

करके तो नगर कमेटी के सदस्य बने थे। पहले विद्युत-कमेटी के अध्यक्ष हुए तो बिजली गुल हो गयी और अब बने हैं पागल तथा आवारा कुत्तों को पकड़नेवाली 'कमेटी' के अध्यक्ष।

कुछ गंभीर मुद्रा में वह बोले, "इस शहर में पागल कितने हैं ?"

"सर, यह मेरे महकमे का सवाल नहीं है," बाबू रामलाल ने जवाब दिया।

लियाराम झुंझलाते हुए बोले, "मेरा मतलब पागल कुत्तों से था।"

"सर, इसका भी एक खास मौसम होता है। जब चार बार वर्षा पड़ जाए, तो कुत्ते पागल होने लगते हैं।"

"बाबू रामलालजी आप बुरा न मानें, तो आप यह कुत्तों का ज्ञान मुझे न सुनाएं, नहीं तो आप मुझे भी पागल बना देंगे।"

"जी हुजूर, आप ठीक कहते हैं।"

यह सुनकर श्री लियाराम सकपका गये।

बाबू रामलाल उठकर अपने कमरे में आ गये।

लियाराम वह दुकानदार थे, जो हमेशा लाभ का धंधा करते थे। इस बार ही उनकी किस्मत को बावले कुत्ते ने काट खाया था। बिजली के खंभे से गिरे और पागल तथा आवारा कुत्तों में फंस गये थे। दुकान से घर आते-जाते आवारा तथा पागल कुत्तों की गिनती करते रहते थे, ताकि किसी तरह बजट बढ़ाया जा सके। लेकिन उन्हें कोई हल दिखायी नहीं दिया।

उन्होंने अपने मित्रों से सलाह की। कई दिन मनन करते रहे। अंत में उन्होंने नयी पार्टी के नेता को अपने घर डिनर पर बुलाया। पार्टी के नेता पहले तो व्यस्तता का बहाना बनाकर दावत टालने की कोशिश करते रहे, परंतु जब वह जिद पर अड़ गये, तब उन्हें डिनर का न्यौता मानना पड़ा।

नेताजी अब घबराये। कोई राजनीतिक संकट खड़ा हो सकता है। श्री लियाराम के साथ किये गये व्यवहार पर उन्हें स्वयं दुःख हुआ। नेता पद ही कांटों का मुकुट है। उसी समय उन्होंने प्रांत के राज्यमंत्री से फोन पर बात की, अपने सहयोगियों से भी मंत्रणा की कि क्या



लेना है और क्या देना है।

डिनर चलता रहा। पार्टी की बातें होती रहीं। श्री लियाराम की राजनीतिक परिपक्वता की तारीफें होती रहीं। खूब कहकहे उठते रहे। लियाराम के अपने चार सदस्य साथ थे। श्री लियाराम मौका देखकर बोले, "मैं क्या चीज हूं। आपने जो मुझे मात दी है, पागल तथा आवारा कुत्तों की कमेटी का अध्यक्ष बनाकर, उसने मेरी छवि धूमिल कर दी है।"

नेताजी कुछ झेंपे और बोले, "लियारामजी, मैंने तो बहुत कोशिश की थी कि आपको उचित पद मिले। हाई कमान पुराने सदस्यों के हक के बारे में जोर देता रहा। वह तो कमेटी भंग करने की सोच रहा था।"

"लियारामजी, आप अपना त्याग-पत्र दे दें, हम आपके साथ हैं। नये चुनाव होने दीजिए," लियारामजी के एक समर्थक बोले।

"आप भी क्या बात करते हैं। हमारी पार्टी तो बहुत बड़ी पार्टी है। आपका भी हमें ध्यान है। आपने आज का अखबार देखा?"

"नहीं तो।"

"हमारे देश में करोड़ों मन अनाज चूहे बरबाद कर जाते हैं। देश का कितना नुकसान होता है।"

"हमारा शहर तो देश की सबसे बड़ी अनाज मंडी है।"

"आप ठीक कहते हैं।"

"हमें कुछ करना चाहिए। हमें भी चूहे मारने का महकमा खोलना है। पचास हजार चूहेदानियां और दो लाख की दवाइयां खरीदनी हैं। यह बात मैंने मंत्रीजी से कर ली है।"

"हां, यह ठीक बात है।" सभी ने हामी भरी।

"पांच लाख की पूरक मांग का बजट तैयार करके अगले सप्ताह हम दोनों प्रांत की राजधानी जाएंगे। यह सारा कार्य आपके महकमे से ही होगा।"

डिनर चलता रहा। इधर-उधर की बातें होती रहीं। नेताजी बोले, "अब आपके महकमे का नाम होगा, 'पागल तथा आवारा कुत्ते एवं चूहे पकड़ने का महकमा'।"

"हां, महकमे का नाम कुछ अटपटा है", एक सदस्य बोले।

"जन-सेवा करनी है। महकमे के नाम से क्या है?" लियाराम ने खुशी में झूमते हुए कहा।

लियारामजी अब बहुत खुश थे। अब कुछ बजट उनके हाथ में था, जिससे वह जन-सेवा कर सकते थे। अब उन्हें महकमे के नाम से चिढ़ खत्म हो गयी थी।

हेडक्लर्क बाबू रामलाल भी खुश थे। क्योंकि अब वह पागल तथा आवारा कुत्ते एवं चूहे पकड़ने के हेडक्लर्क बन गये थे। अब वह कुत्तों के साथ चूहों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। ज्ञान ही आदमी को सुख देता है। यही सच्चा धन है। यही सोचकर वह खुश थे।

—एच-३३५, डी. डी. ए. फ्लेट्स, नारायणा, नयी दिल्ली-११००२८

'विचार-वीथी-५' में चर्चा का विषय था—'क्या महत्त्वकांक्षाओं की भी सीमा होनी चाहिए।' इस चर्चा में भाग लेनेवाले अधिकांश पाठक महत्त्वाकांक्षा को सीमित रखने के पक्ष में थे।

विचार-वीथी

—५

क्या महत्त्वाकांक्षाओं की भी सीमा होनी चाहिए?

पुरस्कृत विचार

• सुधीर निगम

प्रत्येक व्यक्ति में प्रायः महत्त्वाकांक्षा का बीज सुप्तावस्था में पड़ा ही होता है। महत्त्वाकांक्षी की दृष्टि सदैव अपने से ऊपर होती है। यानी वह अपनी दृष्टि में स्वयं छोटा होता है। उसमें आकांक्षाएं हिलोरें लेती हैं और उसका लघुता-बोध उसे गुरुता की ओर प्रेरित करता है। यह स्थिति यद्यपि स्वस्थ मनोवृत्ति की परिचायक है, तथापि प्रतियोगी संघर्ष अहम् को कुरेदकर बाहर ला देते हैं।

व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा स्वार्थपूर्ति और जातिगत महत्त्वाकांक्षा आदर्श-प्राप्ति के दो विभिन्न पहलू हैं। आदर्श की एक विश्राम सीमा निश्चित होती है, परंतु व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा का विस्तार, पंतजी के शब्दों में, 'पृथ्वी की महत्त्वाकांक्षा से, स्वर्ग क्षितिज से ऊपर उठकर होता है।'

हमारे सामाजिक और राजनीतिक आदर्शों के अवमूल्यन का प्रमुख कारण व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएं ही रही हैं। इतिहास साक्षी है, घोर अमानुषिक लड़ाइयां, केवल महत्त्वाकांक्षाओं की परितुष्टि के लिए लड़ी गयीं। आज का राजनीतिक जीवन तो महत्त्वाकांक्षाओं का अखाड़ा बन गया है। दल-बदल की राजनीति बेलगाम महत्त्वाकांक्षाओं का निकृष्ट उदाहरण है। महत्त्वाकांक्षाएं ही सत्ता की राजनीति को जन्म देती हैं। कहना न होगा कि निरंकुश महत्त्वाकांक्षा ने कितने ही तानाशाहों को जन्म दिया है।

जातिगत महत्त्वाकांक्षा की भावना हम पवित्र रूप से गांधी में पाते हैं। वस्तुतः उस पीढ़ी के सभी राजनेता एक दूसरे के पूरक थे, प्रतिद्वंद्वी नहीं। उनकी महत्त्वाकांक्षा का आदर्श-बिंदु था—भारत की स्वतंत्रता।

अतः व्यक्तिगत स्तर पर महत्त्वाकांक्षा की सीमा अवश्य होनी चाहिए। शैक्षणिक और मानसिक स्तर पर महत्त्वाकांक्षा को संतुलित रखने का मापदंड भले ही विवाद का विषय हो सकता है, किंतु महत्त्वाकांक्षा को मानवीय गुणों से संलग्न कर एक स्वस्थ आधार निर्मित किया जा सकता है।

—जीवन बीमा कार्यालय, बुलंदशहर

नहीं भूलता गुजरा जमाना

एक चेहरे के भीतर जैसे दूसरा चेहरा भी होता है, वैसे ही एक जिंदगी के भीतर भी दूसरी जिंदगी होती है। उस दूसरी जिंदगी में कभी कुछ ऐसा गुजर जाता है कि भुलाये नहीं भूलता। पढ़िए, यहां कुछ विख्यात व्यक्तियों की गुमनाम जिंदगी की वह छिपी हुई दास्तान--जिसे यहां वे बड़े मजे से उजागर कर रहे हैं।

ऐसे भी मनोरंजन होता था

कुछ लोग भुलाये नहीं भूलते। इनमें से एक पहलवान कमरदीं इलाही था, जो रोज एक हजार डंड पेलता था। खूब दूध पीता था और अच्छे पहलवानों में था। दूसरा गीगलिया एक नायक जाति का जवान था, जो ऊंट लादकर पेट पालता था। किसी ने मजाक में गीगलिया से कहा, "कमरदीं से कुश्ती लड़ोगे?"

गीगलिया ने 'हां' भर ली। गीगलिया ने न कभी कुश्ती लड़ी थी, न उसे दांव-पेंच आते थे। अखाड़ा खोदा गया और गांव के सारे लोग एकत्र हो गये।

कमरदीं ने लंगोट खींचकर कच्छा चढ़ाया, उस्ताद की वंदना की और अखाड़े को नमस्कार करके ताल ठोकी।

गीगलिया के पास न लंगोट था, न कच्छा और न कोई उसका उस्ताद था। उसने महज धोती के पांयचे कसकर अखाड़े में प्रवेश किया।

कुश्ती शुरू हुई। कमरदीं ने पैंतरे बदले, पर पहली ही झपट में गीगलिया ने कमरदीं को सिर पर उठा लिया और लोगों से पूछा, "इसे कहां पटकूं?" लोग हंसी के मारे लोट-पोट हो गये। कमरदीं ने फिर कभी कुश्ती का नाम न लिया।

सुना था, गीगलिया अपने कंधे पर ऊंट को उठा लेता था। गीगलिया बंदूक रखता और अचूक निशानेबाज माना जाता था। एक रोज निशाना मार रहा था, तब बंदूक से गोली छूटकर निशाने से बीस गज बायें खड़ी उसकी मां के पैरों में लगी। मां गिर गयी, मरी नहीं। गीगलिया ने कहा, "अत्त तेरी, मां रांड दिल्लगी करते ही लोट गयी।"

यह कहानी कई वर्षों तक गांव में प्रचलित रही, जिसे लोगों ने पचासों बार दोहराया और दोहरा-दोहराकर अपने दिल को बहलाया। आज के गूढ़ मजाकियों को ये सब बातें कंटाले से भरी लगेंगी, पर ऐसे-ऐसे मनोरंजनों से ही जनता उस नीरस समय में रस डालकर काल-यापन करती थी।

घनश्यामदास

—इंडस्ट्री हाउस, चर्चगेट, बंबई

(घनश्याम दास बिरला)
सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं विचारक

हार और मनुष्य की महिमा

सन १९७७ में जब लोकसभा का चुनाव जीता, तब इतने सारे बधाई के पत्र आये कि एक कार्ड छपवाकर सबको उत्तर देना पड़ा, जिसमें मैंने विनम्रता से लिखा—

व्यक्ति वंश या दल विशेष का देश गुलाम नहीं है
उसकी ही इच्छा जनता की सुबहो-शाम नहीं है
सत्ता एक धरोहर जनता जब चाहे तब ले ले
अपने पावन बहुमत से जिसको चाहे वह दे दे

सन १९८० के चुनाव में हार के बाद अनेक पत्र आये। सांत्वना के इन पत्रों में दर्शन के सिद्धांतों का भरपूर निर्देशन था। ज्यादातर पत्रों में मुझे गीता के 'स्थित प्रज्ञ-लक्षण' की ओर ध्यान दिलाया।

कुछ पत्रों के अंश इस प्रकार हैं—'आप इस हार को भी ईश्वर इच्छा और जीवन के लिए शिक्षाप्रद समझकर धर्मपरायण रहेंगे।' . . . 'हार-जीत परिणाम हैं जो कई रास्तों से मिलते हैं। देवासुर-संग्राम में पुरातन गाथाओं में देवताओं की हार ही हार सुनायी देती है। आप हारे नहीं, आपकी जमात का पाप हारा है।' . . . 'चुनाव में जीत और हार का उतना महत्व नहीं है, जितना जनता की सेवा में जुटे रहने का। आप अतीत में भी जन-सेवा में लगे रहते थे और मुझे विश्वास है कि संसद–सदस्य नहीं रहने पर भी आपकी वही वृत्ति होगी।'

सुदूर बंगाल में मेरे एक छात्र ने चुनाव का पूरा विश्लेषण कर अंत में उसने बड़े ही भाव से जे. पी. की ये पंक्तियां लिखकर अपना लंबा पत्र समाप्त किया——

'जीवन विफलताओं से भरा है। सफलताएं जब कभी आयीं निकट, दूर ठेला है उन्हें निज मार्ग से . . . पथ त्याग के, पथ सेवा के, पथ संपूर्ण क्रांति के।' . . . उसने आखिर सांत्वना दे ही डाली, 'विश्वास रखें, असफलता सफलता की मंजिल की

प्रथम सीढ़ी है।"

इन सबके बावजूद मेरा अपना मानस ही मेरा साथी बना। चुनाव-परिणाम के दिन से ही अपने मित्र और साथियों को मैं ही सांत्वना देता था। दर्जनों पत्र लिखे कि हार से क्या लेना देना। इससे कुछ लेना हो तो हम सबक लें।

हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव की जीत से

—अखिल भारतीय दर्शन परिषद, भागलपुर

(डॉ. रामजीसिंह)
भूतपूर्व संसत्सदस्य

नयी कविता क्या होती है ?

दादा (पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र) की बातें निराली ही नहीं, अनूठी होती हैं। दस मिनट यदि राजनीति की बातें करेंगे तो तीस मिनट साहित्य की। यही अनुपात है उनके जीवन में साहित्य और राजनीति का।

एक मुलाकात में दादा बोले, "नयी कविता क्या होती है, आप समझते हैं?" उत्तर देने की अपेक्षा मैंने उनसे सुनना ज्यादा अनुकूल समझा। वे बोले, "मेरे पास कुछ दिनों पहले हिंदी के कई नये कवि आये और यही चर्चा छिड़ गयी, तो मैंने उनसे कहा कि न छंद, न ताल, न लय, न तुक—यही तो है नयी कविता की परिभाषा, तो ऐसी कविता तो मैं बैठे-बैठे दर्जनों बना सकता हूं। और उसी समय मैंने कागज का एक टुकड़ा लिया जिस पर कुछ पंक्तियां लिख दीं—

'उसने मुझको काटा/मैंने उसको मारा
लाल था/मेरा हाथ/मेरे ही रक्त से।

"इस पर वहां बहस छिड़ गयी, किसी ने कहा कि 'इसमें गूढ़ दर्शन है', कोई बोला 'इसमें द्वैत-अद्वैत की मुझे भनक आती है', तब मैं हंस पड़ा और कहा, 'क्यों इतना दिमाग लगाते हैं, सीधा अर्थ मुझसे ही सुन लें—एक मच्छर ने मुझको काटा, मैंने उसे मारा और उसका खून जो मेरे हाथ में लगा, उससे मेरा हाथ लाल हो गया,"

कहते हुए दादा हंस पड़े।

—कामता सदन, बोरिंग रोड़, पटना-१

(शंकरदयालसिंह)
भूतपूर्व संसत्सदस्य

भारतीय दर्शन के मूल सिद्धांत

विश्व के नाम भारत का संदेश

● डॉ. कर्णसिंह

हजारों साल पहले का इतिहास यह बताता है कि भारत कभी एक महाद्वीप नहीं रहा। यहां तक कि सभ्यता के विकास से ही यही स्थिति रही। बहुत प्राचीन समय से लेकर न जाने कितने तरह के विचार और सिद्धांत, हवा के प्रवाह के साथ विभिन्न देशों से यहां आये हैं। यह इस देश की महानता है कि उसने इन सारे प्रवाहों को, इस तरह ग्रहण किया है कि वे यहां की धरती के साथ आत्मसात हो गये और इस देश के एक अंग बन गये हैं। विचारों को लेने में इस देश ने हमेशा से अपनी खिड़कियां खुली रखी हैं। ऋग्वेद में लिखा है कि —**"आनो भद्रा क्रतो यंतो विश्वतः"** (सभी दिशाओं से पवित्र विचारों को भीतर आने दो)। यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि सृजनात्मकता को कितने खुले ढंग से स्वीकार किया गया है। लगभग यही विचार महात्मा गांधी ने भी व्यक्त किये हैं। उनका कहना है, 'मैं नहीं चाहता कि हमारे मकानों के चारों तरफ दीवारें हों और हमारी खिड़कियां बंद कर दी जाएं। मैं चाहता हूं कि सारे देशों की सभ्यताएं मेरे घर के भीतर, जितने आसान ढंग से संभव हो सके, प्रवेश करें। लेकिन मैं उन हवाओं के साथ किसी भी तरह बह जाना स्वीकार नहीं करूंगा।'

यह सत्य है कि इतिहास में भारत उन इने-गिने देशों में से एक है, जिसके सिद्धांतों से अनेक देश प्रभावित हुए हैं।

डॉ. कर्णसिंह में अनेक विशेषताएं हैं—सामंती राज-परिवार के व्यक्ति होते हुए भी उन्होंने भारतीय जन-जीवन को निकट से देखा है। उनकी न केवल सक्रिय राजनीति में रुचि है, वरन उन्होंने संस्कृत-साहित्य, विशेषकर उपनिषदों एवं पुराणों का भी अध्ययन किया है। प्रस्तुत लेख में उन्होंने भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का विश्लेषण किया है।

—संपादक



भारत का यह प्रभाव केवल पड़ोसी देशों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों (जिनमें चीन और जापान शामिल हैं) तक को शताब्दियों पहले से भारतीय विचारों ने प्रभावित किया है। अब कुछ समय से, पश्चिमी जगत में भी भारतीय दर्शन एवं विचारों का प्रभाव फैलता जा रहा है। यहां तक कि पिछले दशक में भारतीय चीजों के प्रति बेहद रुचि जागृत हुई है और यह रुचि केवल पूर्वी सभ्यता के प्रति रुचि रखनेवाले विद्वानों तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने एक बड़े जन-समूह को, विशेषकर युवा-पीढ़ी को प्रभावित किया है।

अनेक चेहरेवाली सभ्यता

भारत की सभ्यता के बहुत से चेहरे हैं और वह बहुत पुरानी भी है, इसलिए विश्व को उसने न जाने कितने तरह से प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए मैथमैटिक्स, (अंकशास्त्र) को लिया जा सकता है। 'जीरो' या शून्य का उद्भव भारत से ही हुआ है, जिसके बिना किसी भी तरह का विज्ञान विकसित नहीं हो सकता था। औषधि के क्षेत्र में आयुर्वेद है, जो सबसे प्राचीन विद्या है और औषधि-विज्ञान के क्षेत्र में सर्वोत्तम पद्धति है। वास्तुकला को ही लीजिए, इस दृष्टि से एलोरा की वे प्रस्तर गुफाएं हैं, जो और कहीं नहीं मिल सकतीं। दक्षिण-भारत के मंदिर हैं, जिनकी कहीं बराबरी नहीं है। इन सबमें एक असाधारण अद्भुत कला-कौशल का प्रतीक है—ताजमहल। नृत्य की दृष्टि से भरत-नाट्यम और दूसरे शास्त्रीय नृत्यों का उल्लेख जरूरी है, जिनका उद्भव और विकास भरत के नाट्य-शास्त्र से हुआ है। संगीत में चाहे वह कर्नाटक पद्धति का संगीत हो अथवा हिंदुस्तानी–दोनों ने पश्चिमी जगत पर बहुत प्रभाव डाला है। मनोविज्ञान में 'योग' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके द्वारा मनुष्य मानव-मस्तिष्क के गूढ़तम रहस्यों को सुलझा सकता है। और फिर है मनोविश्लेषण, जिसे अभी तक मनुष्य विकसित नहीं कर सका। भाषा-शास्त्र और साहित्य की दृष्टि से संस्कृत–जैसी समृद्ध दूसरी भाषा दुनियाभर में नहीं है। फिर दर्शन की बात आती है, तो हमारे सामने हैं उपनिषदों के मार्गदर्शक प्रतीक, जो समय के प्रवाह में अडिग खड़े रहे। और इनके अतिरिक्त हैं स्वामी विवेकानन्द तथा श्री अरविंद।

इस बात का पता लगाना भी लगभग असंभव है कि भारत ने विश्व को अपनी संस्कृति के कौन-कौन-से महान तत्व सौंपे हैं। तब भी पांच ऐसे मूलभूत विचार हैं, जिन्हें भारतीय संदेश की मूल-आत्मा कहा जा सकता है। इन विचारों के विकास में भारत के प्रत्येक धर्म, जाति, भाषाई-समुदाय और वृत्तियों ने योगदान दिया है। ये संदेश किसी एक समूह की उपलब्धि नहीं हैं, बल्कि यह एक ऐसे राष्ट्र की बहुमुखी अभिव्यक्ति

हैं, जिसने हजारों वर्षों से अपनी सांस्कृतिक जड़ों को सुरक्षित रखा है।

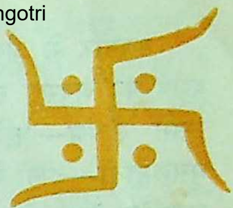
मानव समाज की एकता

भारतीय संस्कृति के पांच मूलभूत सिद्धांतों में से पहला सिद्धांत है—मानव समाज की एकता। बहुत कम देश राष्ट्रीयता की प्रबल भावना से ऊपर उठकर समूची मानव जाति की एकता का स्वप्न देख सके हैं। केवल भारत ही ऐसा देश है, जिसने १९वीं शती के महान पुनर्जागरण के बाद, आधुनिक अर्थों में राष्ट्रवाद को स्वीकार करने के बावजूद समूचे मानव समुदाय को एक परिवार समझा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सिद्धांत में भारत की यही भावना निहित है।

विज्ञान और टेक्नालॉजी ने हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा देखे गये स्वप्नों को साकार कर दिया है। हमारी आंखों के सामने ही समय और अंतरिक्ष सिकुड़कर छोटे होते जा रहे हैं। चंद्रमा से लिये गये पृथ्वी के असाधारण चित्र हमें बताते हैं कि हमारा यह ग्रह कितना सुंदर है। पर कितना कमजोर और नश्वर भी! जैसे-जैसे बीसवीं शताब्दी खत्म हो रही है, वैसे-वैसे इस पृथ्वी पर रहनेवाले मानव-समाज की बुनियादी एकता की धारणा बलवती होती जा रही है।

सर्वधर्म समभाव

भारत ने सदियों के दौरान जिस दूसरे सिद्धांत को विकसित किया है, वह है—सर्वधर्म समभाव का सिद्धांत। मनुष्य सदैव से



निरंतर प्रगति का प्रतीक स्वस्तिक-भारत की विश्व को देन

ही ईश्वर को पाने का आकांक्षी रहा है। तमाम धार्मिक खोजों के मूल में मनुष्य की यही भावना काम करती रही है। फिर भी ईश्वर को पाने की यह भावना व्यवहार में विभिन्न धर्म के माननेवालों के बीच दंगा-फसाद का कारण बनी, क्योंकि इनमें से प्रत्येक यही समझता रहा कि उसका ही लक्ष्य सही है। विभिन्न धर्मों को माननेवाले लोगों ने स्वयं अपने समान-धर्मावलंबियों पर भी क्रूर अत्याचार किये हैं। ईश्वर के नाम पर दूसरों का कितना खून बहाया गया है और उन्हें कितनी पीड़ा पहुंचायी गयी है, कितना विनाश किया गया, इस बात का पता तो आज के आधुनिकतम कंप्यूटर भी नहीं लगा सकते। भारत में भी धर्म के नाम पर झगड़े होते रहे हैं, फिर भी भारतीय संस्कृति ने ईश्वर-प्राप्ति के विभिन्न मार्गों को न केवल मान्यता दी है, उन्हें स्वीकार भी किया है। ऋग्वेद में भी कहा है—'सत्य एक है। विद्वान कई नामों से उसी को पुकारते हैं।' भारत में हिंदू धर्म को माननेवाले बहुसंख्यक समुदायों के अलावा लाखों मुसलमान, बौद्ध, जैन, ईसाई और यहूदी हैं।

कश्मीर में शैव-परंपरा और सूफी-दर्शन का अद्‌भुत समन्वय हुआ है, और उससे उत्पन्न—ऋषि-संप्रदाय, हिंदुओं-मुसलमानों—दोनों के लिए पवित्र हैं। आधुनिक काल में श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू ने भी सभी धर्मों को समान रूप से स्वीकार करने के इस दृष्टिकोण को दोहराया। उन्होंने यह बात भी दोहरायी कि यद्यपि मार्ग अलग-अलग हैं, पर उनका लक्ष्य एक है। 'भारत की एकता' के प्रश्न पर जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, 'धार्मिक मामलों में यूरोप में व्याप्त असहिष्णुता की भारत के संपूर्ण इतिहास में मौजूद सहिष्णुता की भावना से तुलना करना एक दिलचस्प बात है। ईसा के बाद पहली शताब्दी में ही ईसाई धर्म भारत में पहुंच गया। वह यहां फैला और पनपा। उस समय यूरोप को इस धर्म का ज्ञान ही नहीं था। भारत में ईसाई धर्म का कोई विरोध नहीं किया गया, बल्कि उसका स्वागत ही हुआ। आज भी भारत में ऐसे अनेक प्रारंभिक ईसाई संप्रदाय फल-फूल रहे हैं, जिनका यूरोप में दमन कर अस्तित्व समाप्त कर दिया गया है। यहां नेस्टोरियन और विभिन्न सीरियाई ईसाई संप्रदाय हैं। १८०० वर्ष से भी पहले यहूदी भारत आये। उनका भी स्वागत किया गया। आज भी वे एक प्राचीन नगर के विभिन्न भागों में अपना सामुदायिक जीवन बिता रहे हैं, जो पुराने यरुशलम के जीवन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। फारस से निकाले जाने के बाद पारसी भारत आये और तब से वे यहां फल-फूल रहे हैं। इस्लाम के उदय के तत्काल बाद मुसलमान भारत आये और उनका भी स्वागत किया गया। उन्हें भी अपने धर्म का प्रचार करने के पूरे अवसर मिले। केवल सीमाओं को छोड़कर सदियों तक कोई संघर्ष नहीं हुआ। यह संघर्ष तभी हुआ, जब मुसलमान हमलावर और विजेता के रूप में आये।'

किसी भी धर्म के प्रति सहिष्णुता बरतना, अधिक से अधिक एक नकारात्मक दृष्टिकोण ही कहा जाएगा, किंतु सभी धर्मों को हर्षपूर्वक स्वीकार करना भारत की ही एक विलक्षण देन है।

स्व की दिव्यता

व्यक्ति के स्व की प्रतिष्ठा एवं दिव्यता का सिद्धांत भारतीय संस्कृति के मानव-एकता एवं सर्वधर्म समभाव के सिद्धांतों से ही उपजा है। बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समाज विभिन्न श्रेणियों, आचार-संहिताओं, सामाजिक कर्त्तव्यों और स्तर के बंधनों में इस तरह जकड़ा हुआ है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है; पर हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इन सामाजिक आचार-संहिताओं के समानांतर एक और मूलभूत धारणा का भी अस्तित्व है।

यह मूलभूत धारणा है मनुष्य की दिव्यता की। किसी भी धर्म, जाति, रंग,

भाषा या देश का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, ईश्वरीय सत्ता का ही एक अंश है। भारतीय दर्शन का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक विकास और पुनर्जन्म की क्षमता के बीज निहित होते हैं। इसीलिए उपनिषदों में मनुष्यों को 'अमृतस्य पुत्र' अर्थात 'अमरत्व के पुत्र' कहा गया है। चाहे कितनी ही विपरीत और विरोधभरी स्थितियां क्यों न हों, मनुष्य के भीतर दिव्यता की एक ऐसी चिनगारी होती है, जो आध्यात्मिक-ज्ञान की ज्वाला का रूप धर सकती है।

यही विश्वास प्रत्येक व्यक्ति को तमाम सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं से श्रेष्ठ स्थान प्रदान करता है। आज जब मनुष्य की प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ है और विभिन्न समूह सैकड़ों तरीकों से मनुष्य के व्यक्तित्व पर अपने प्रभाव का बोझ डाल रहे हैं, तब भारतीय संदेश का यह पक्ष कोई कम महत्त्व नहीं रखता।

सृजनात्मक समन्वय का गुण

भारत द्वारा विश्व को दिया गया चौथा संदेश—समन्वय एवं संहतिवाद की अनोखी धारणा से प्रस्फुटित हुआ है। विश्व में एक ओर है कर्म का संसार, तो दूसरी ओर है ध्यान की वह स्थिति, जिसमें व्यक्ति स्वयं को बाहरी संसार से पृथक कर भीतर समेट लेता है। इनके बीच भारत गीता के उस महान आदर्श को मानता है, जिसमें कर्म और ज्ञान को ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर, एक ही माना गया है। पदार्थ और ऊर्जा के क्रूर संघर्ष के विरुद्ध भारतीय दर्शन तमाम अस्तित्वधारी प्राणियों के बीच एक मूलभूत एकता पर जोर देता है।

ईशोपनिषद में भी कहा गया है—'जो ऊर्जा एक अणु में है, वही संपूर्ण ब्रह्मांड में भी है।' आज विश्व में विज्ञान एवं धर्म के बीच संघर्ष छिड़ा हुआ है, लेकिन भारतीय दर्शन यह मानता है कि ये दोनों बातें एक ही सत्य की ओर पहुंचनेवाले, दो भिन्न मार्ग हैं।

मनुष्य ने इस धरती की सीमाओं को तोड़कर अंतरिक्ष में पहुंचने की नयी क्षमता प्राप्त कर ली है। इस संदर्भ में भारत ने ब्रह्मांड संबंधी जो ज्ञान दिया है, उसका विशेष महत्त्व है। हमारे यहां चार युगों की कल्पना की गयी है। ये युग ब्रह्मा का एक दिन माने गये हैं। इन चारों युगों की समयावधि है ४.३२ खरब वर्ष। यह संख्या किसी भी अन्य गणना से अधिक वास्तविक है।

हम अतीत और भविष्य की, धरती और स्वर्ग की, प्रकाश और अंधकार की संतानें हैं। हम नश्वर हैं, साथ ही अमर भी। समय को सीमा में बंधे रहने के बावजूद हम सनातन हैं। हममें, अपनी सांसारिक सीमाओं से ऊपर उठकर अंतरिक्ष में ही नहीं, बल्कि समय की गहराइयों तक में पहुंचने की क्षमता है।

—३, न्यायमार्ग, चाणक्यपुरी,
नयी दिल्ली-११००२१

युद्ध प्रारंभ होते हैं, खत्म हो जाते हैं। समय का मरहम लोगों के घाव धीरे-धीरे भर देता है। लोग युद्ध की विभीषिका भूलने लगते हैं। युद्ध दुनिया की संस्कृति, आर्थिक, स्थापत्य तथा मनुष्यों का जिस प्रकार अनिष्ट करता है, उसे आम आदमी नहीं जान पाता। कोई नहीं जान पाता कि युद्धों का किस राष्ट्र पर कितना खर्च पड़ता है।

भारतीय युद्धों का इतिहास

भारतीय युद्धों के इतिहास में सबसे भयंकर युद्ध महाभारत का दिखता है, जिसमें करीब २५ अक्षोहिणी सेना खत्म हो गयी थी। एक अक्षोहिणी सेना में २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, ६५,३१० घोड़े तथा १,०९,३०५ पैदल सैनिक होते थे। इस युगांतकारी युद्ध में कितना धन खत्म हुआ, इसकी कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। इसी प्रकार यूनानी इतिहास के अनुसार सिकंदर और पुरु की लड़ाई में ३४,००० भारतीय सैनिकों में से २१,००० खेत रहे, जबकि सिकंदर के मात्र १,००० सैनिक मरे। कलिंग के इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध में सम्राट अशोक ने कलिंग के १,००,००० सैनिकों को मार दिया था और १,५०,००० सैनिकों को बंदी बना लिया था। पानीपत के प्रथम युद्ध में (जिसने भारत का दरवाजा मुगलों के लिए खोला था) बाबर के २२,००० हजार तथा इब्राहिम लोदी के १,५०,००० सैनिक मारे गये थे। युद्ध की भयंकरता का अंदाजा, इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि आधे दिन की लड़ाई में १५,००० सैनिक मारे गये थे। पानीपत का द्वितीय युद्ध बाबर और राणा सांगा के मध्य हुआ था। इसमें दोनों पक्षों के करीब ३,५०,००० सिपाही मरे थे। पानीपत का तीसरे युद्ध सदाशिवराव भाऊ तथा अहमदशाह अब्दाली के बीच हुआ था। इसमें दोनों पक्षों से करीब ५ लाख सैनिक मरे थे।

कितने मंहगे होते हैं युद्ध

यदि तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो कितना विनाश होगा

● मनोज कुमार

यूरोपीय युद्ध

यूरोपीय युद्धों का इतिहास भी कम भयंकर नहीं है। सम्राट नेपोलियन के

शासन-काल में २०,००,००० फ्रांसीसी सिपाही मरे व २,२०,००,००० घायल हुए थे। इसके शासन-काल में इंगलैंड व फ्रांस के मध्य हुई सामुद्रिक लड़ाइयों में ५०,००० अंगरेज मरे व १,००,००० घायल हुए। जबकि फ्रांस के २,५०,००० लोग मरे व ४,००,००० लोग घायल हुए। यूरोपियन इतिहास में विख्यात क्रिमियन युद्धों में इंग्लैंड-फ्रांस-रूस के करीब ४,८०,००० लोग मरे थे। इसी प्रकार अमरीकी स्वतंत्रता-संग्राम में ६,००,००० अमरीकी मारे गये थे।

जाता है। इस महायुद्ध ने अनगिनत छोटे-बड़े घावों के साथ हीरोशिमा-नागासाकी का अमिट दाग मानव सभ्यता के शरीर में बना दिया है। युद्ध की भीषणता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जब विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद सन १९४५ में तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति आइजन हावर रूस यात्रा पर गये तब उन्होंने लिखा—'जब हम हवाई जहाज से रूस गये, तब रूसी पश्चिमी सीमा से मास्को तक के विशाल प्रदेश में एक भी मकान हमने खड़ा नहीं देखा।'

युद्ध तीन चीजें चाहता है—सोना ! सोना ! ! सोना ! ! ! और एक युद्धक विमान की कीमत में नौ स्कूल खोले जा सकते हैं। एक पनडुब्बी के निर्माण में से एक करोड़ आठ लाख बच्चों की पढ़ाई का खर्च निकल सकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध

प्रथम विश्व-युद्ध की भीषणता का अनुमान निम्न तथ्यों से हो जाता है—इस विश्वयुद्ध के प्रारंभ के २ माह में ही करीब १६,१६,००० सिपाही मरे थे। इसमें फ्रांस के ८,५४,०००, जरमनी के ६,७७,०००, ब्रिटेन के ८५,००० सैनिक थे। इस विश्व-युद्ध में मरनेवालों की कुल संख्या ८०,५३,८४८ तथा १,८५,६७,३८९ लोग घायल थे। मगर द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकरता के समक्ष सभी युद्धों का रंग फीका पड़

इस महायुद्ध में दुनिया के ६१ देशों ने जिनकी आबादी १७० करोड़ थी (विश्व की कुल आबादी का ८०%) भाग लिया। युद्धस्थल का क्षेत्रफल २,२०,००,०,०० वर्ग कि. मी. तक ४० देशों में फैला था। ११ करोड़ लोगों ने सशस्त्र सेना में भाग लिया। ५ करोड़ लोग घायल हुए तथा २ करोड़, ७० लाख लोग मारे गये। सोवियत रूस की ६०७ डिवीजन फौज में करीब २,००,००,००० लोग मरे। नाजियों ने रूस में १,७१० शहर व ७०,

००० गांव उजाड़, जिसमें करीब २ करोड़ ५० लाख लोग रहते थे। ३२,०० उद्योग, ६५,००० कि. मी. रेल लाइन, २.५ करोड़ लोग गृह विहीन हो गये। इसी प्रकार हॉलैंड के ६०,००,००० लोग, यूगोस्लाविया के १,७००,००० लोग, फ्रांस के ६,००,००० लोग, ब्रिटेन के ३,७५,००० लोग, तथा अमरीका के ४,०५,००० लोग व द्वितीय विश्व-युद्ध के जन्मदाता जरमनी के ६,५००,००० लोग, जापान के १,८०,००० लोग मौत के घाट उतार दिये गये।

आज स्थिति यह है कि मानव जीवन के प्रत्येक १५ वर्षों में मात्र एक वर्ष शांति का होता है। इतिहासविदों के अनुसार पिछले ५,००० सालों में १४,५०० युद्ध हुए हैं। इनमें ४०० करोड़ लोगों ने अपना जीवन खोया है। सन १९४५ से आज तक करीब १६० युद्ध हो चुके हैं। करीब ३०॥ लाख लोग यूरोपियन युद्धों (१७वीं शती में) करीब ५०॥ लाख लोग १९वीं शती के युद्धों में तथा प्रथम विश्व-युद्ध में करीब ९० लाख लोग मरे। जबकि द्वितीय विश्व-युद्ध में करीब ५ करोड़ लोग मरे। जिसमें सोवियत रूस के प्रति मिनट ९ सैनिक, प्रति घंटा ५४० तथा प्रतिदिन १२,९६० लोग मारे गये थे। हालत यह थी कि प्रत्येक ५ रूसी सैनिकों में से २ लोग मरे थे।

फ्रांस के सम्राट लुइस बारहवें के एक सलाहकार ने एक बार कहा था—"युद्ध तीन वस्तुएं चाहता है—सोना-सोना-सोना" और वास्तव में आज भी इस बात में कोई अंतर नहीं आया है।

२ हजार वर्ष पूर्व जूलियस सीजर के समय शत्रु पक्ष के एक सैनिक को मारने में ०.७५ डालर खर्च होता था। नेपोलियन के समय यह खर्च ३,००० डालर हो गया। नेपोलियन के समय ब्रिटेन व फ्रांस के मध्य हुई सामुद्रिक लड़ाइयों में ब्रिटेन का २५,५०,००,००० पौंड तथा फ्रांस का ८३,१०००,००० पौंड खर्च हुआ था। इसी प्रकार क्रिमियन युद्ध जिसमें रूस-ब्रिटेन व फ्रांस की सेनाएं लड़ी थीं में तीनों का कुल खर्च ३१,३०,००,००० पौंड था। यानी औसतन प्रति हफ्ता १६,००,००० पौंड का खर्च।

द्वितीय विश्वयुद्ध

प्रथम विश्व-युद्ध में प्रति शत्रु सैनिक को मारने का खर्च २१,००० डालर तक पहुंच गया था। इस विश्व-युद्ध में अनुमानतः २६० से ३६० खरब डालर खर्च हुआ था।

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति तक युद्धों पर खर्च कल्पना की सीमाओं को पार कर गया। इस युद्ध में शत्रु के १ सैनिक को मारने में २,००००० डॉलर खर्च होता था। इस विश्व-युद्ध में कुल खर्च करीबन ३,३०० से ४,००० खरब डालर तक है।

अमरीकन राष्ट्रपति आइजनहावर ने एक बार कहा था—'प्रत्येक बंदूक जब बनती है, प्रत्येक युद्धक जहाज जब गति-

शील होता है, प्रत्येक राकेट जब प्रक्षेपित किया जाता है—तब सही अर्थों में वे भूखे से भोजन, ठंड से ठिठुरते बच्चों से कपड़े चुराते हैं।' वास्तव में आज असलियत भी यही है।

'स्टाकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट' के अनुसार सन १९०० में सैन्य हथियारों पर खर्च १०० खरब डालर था। १९३० में २५० खरब डालर, १९६० में यह १,३०० खरब डालर तथा सन १९७८ में ४,००० खरब डालर और सन २,००० में इस खर्च का ८,२०० खरब डालर हो जाने का अनुमान है।

रूमानिया सरकार द्वारा प्रसारित आंकड़ों के अनुसार प्रति १ मिनट में हथियारों के निर्माण पर जितना खर्च होता है, उससे २ हजार टन गेहूं खरीदा जा सकता है। यदि हथियार बनाने के समस्त कारखाने १० मिनट के लिए बंद कर दिये जाएं तो उससे बची रकम से सभी साधनों से सज्जित एक आधुनिकतम अस्पताल का निर्माण किया जा सकता है।

इसी प्रकार यदि सभी देश अपने सैन्य बजट में उचित कटौती करें, तो प्रतिवर्ष ११२ बिलियन डालर की बचत होगी। इस ११२ बिलियन डालर में से १२ बिलियन डालर में समस्त विकासशील देशों की शिक्षा, चिकित्सा, भोजन, स्वास्थ्य व निवास की समस्या हल हो जाएगी। और बचे १०० बिलियन डालर से १२०,००० किलोवाट के ३०० थर्मल पावर स्टेशन, २ बिलियन टन वार्षिक क्षमतावाले ३०० तेल-शोधक कारखाने, २५,००० टन क्षमतावाले २०० सिंथेटिक रबर कारखाने, १,००० रासायनिक खाद की फैक्टरी, १,६०० शक्कर साफ करने के कारखाने निर्मित किये जा सकते हैं।

युद्ध में प्रयोग आनेवाले एक एफ-१४ युद्धक विमान की कीमत में ९ स्कूल खुल सकते हैं। एक एयरक्राफ्ट की कीमत में १ जल विद्युत-केंद्र खोला जा सकता है। एक लियोपोर्ड टैंक की कीमत में तीन कमरोंवाले ४६ फ्लेट निर्मित किये जा सकते हैं। टैंक युद्धों के एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के खर्च में ७८ किंडर गार्टन चलाये जा सकते हैं। १ पनडुब्बी के निर्माण खर्च से १ करोड़ ६० लाख बच्चों की पढ़ाई का खर्च निकल सकता है। इसी प्रकार १ अंतर्महाद्विपीय प्रक्षेपास्त्र के खर्च से २ सुसज्जित अस्पताल बनाये जा सकते हैं।

कितने खेद की बात है कि युद्ध और शस्त्र-निर्माण पर यह अंधाधुंध खर्च तब हो रहा है, जब कि—

'पृथ्वी का प्रत्येक तीसरा व्यक्ति प्राथमिक चिकित्सा नहीं पाता। प्रति पांचवां व्यक्ति अशिक्षित है और प्रत्येक सातवें व्यक्ति के लिए पेट भर भोजन की व्यवस्था नहीं है।'

यदि विश्व में अब तीसरा विश्वयुद्ध हुआ, तो वह परंपरागत अस्त्र-शस्त्रों द्वारा नहीं लड़ा जाएगा। इस युद्ध में परमाणु तथा न्यूट्रान बमों का तथा आण्विक प्रक्षेपास्त्रों का प्रयोग निश्चित ही होगा। दुनिया का तब कितना विनाश होगा, इसकी सही कल्पना करना कठिन है।

—२३/२ पटेल मार्ग, मूंगेली,
बिलासपुर (म. प्र.)

सही कहानियां

पाठकों की लेखकों की नहीं

इस स्तंभ के लिए रचनाएं भेजते समय ध्यान रखिए :

- कोई भी रचना वापस नहीं की जाएगी। इसलिए एक प्रतिलिपि अपने पास रख लें।

मृतात्मा से साक्षात्कार

—डॉ. भव्य प्रकाश

३०या ३१ मार्च, १९४९ की अर्द्ध-रात्रि, समय १२ व १ के मध्य। घर के बाहरी भाग में स्थित कमरे में मैं अकेला सोया हुआ था। कमरे की लाइट बंद थी, लेकिन कमरे के बाहर स्ट्रीट-लाइट जल रही थी, जिसका प्रकाश थोड़ा-बहुत कमरे में आ रहा था। अचानक मेरे चाचाजी की आवाज पर मेरी आंखें खुल गयीं। वे सड़क की तरफवाले द्वार से आवाज दे रहे थे, "लल्ला! किवाड़ खोल।" इस कमरे के दो द्वार थे—एक सड़क की ओर तथा दूसरा अंदर गैलरी में खुलनेवाला। दोनों ही ओर के द्वारों की अंदर से सांकल चढ़ी हुई थी, क्योंकि चाचाजी सड़क की ओर से आवाज दे रहे थे, अतः मैंने उधर का द्वार खोल दिया। वे अंदर आये, "भुवनेश्वर के पेपर कहां रखे हैं?" उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने मेज की ओर संकेत करते हुए प्रश्न-पत्र बता दिये।

उस वर्ष मेरे चचेरे भाई भुवनेश्वर शर्मा (वर्तमान में आडीटर एवं कथाकार) ने हाईस्कूल की परीक्षा दी थी। चाचाजी कुछ क्षण प्रश्न-पत्रों को देखते रहे, फिर बोले, "अच्छा किवाड़ बंद कर ले, मैं जा रहा हूं।" मैं किवाड़ बंद कर रहा था तथा स्ट्रीट-लाइट में चाचाजी को चबूतरे से उतरते व सड़क पर जाते देख रहा था। तभी मुझे ध्यान आया कि चाचाजी को मरे हुए, तो दो महीने हो गये, ये कहां से आ गये। मेरे चाचाजी की मृत्यु ३० जनवरी, १९४९ को हुई थी।

उस रात मैं ढंग से सो नहीं सका।

—शिवपुरी, छर्रा, अलीगढ़ (उ. प्र.)

सेर को सवा सेर!

—सुभाष लखेड़ा

दिल्ली आना था! मैंने बंबई से ही 'देहरा एक्सप्रेस' के तृतीय श्रेणी के डिब्बे की एक 'ऊपरी बर्थ' पर कब्जा कर लिया था।

आधी रात के वक्त कुछ व्यक्तियों ने मुझसे जगह मांगी। न जाने क्या सूझी कि मैंने लेटे-लेटे रौब से कहा, "जानते हो! मैं सी. आई. डी. अफसर हूं। दिल्ली तक सीट सुरक्षित है।"

॰ साथ में टिकट लगा लिफाफा न भेजें।
॰ इस स्तंभ में किसी तरह का पत्र-व्यवहार नहीं किया जाएगा।
अगली प्रविष्टि भेजने की अंतिम-तिथि : ५ जून, १९८०

हम आप की भी कहानी छापेंगे--३

वे बेचारे सकपका गये। साहस बटोरकर उन्होंने सामने की बर्थ पर लेटे व्यक्ति से उठने को कहा, किंतु जो जवाब मिला, उसे सुनकर मैं भी चौंक गया।

जवाब था, "मैं साहब का असिस्टैंट हूं।"

वे लोग हमारी झूठी बातों में आ गये और फर्श पर ही बैठ गये।

हम दोनों के बीच चूंकि 'अनजाने-अनचाहे' एक रिश्ता कायम हो गया था, अतः मित्रता होने में देर न लगी। हम दोनों एक दूसरे की चालाकी पर खूब हंसे।

कोई स्टेशन था। मैं सिगरेट लेने को उतरा। वापस आया तो पाया--न मित्रवर हैं न उनका कंबल !

गाड़ी चल पड़ी तो ज्ञात हुआ कि मेरा सूटकेस भी गायब था !

--डीपास, दिल्ली कैंट-११००१०

अतीत की कड़ियां

--अमिता अम्बस्ट

आज एक बार फिर कुछ लिखने के क्रम में विस्मृत अतीत की तमाम बिखरी कड़ियां स्वतः जुड़ती जा रही हैं, जिन्हें भूलने का उपक्रम मैं पिछले चार वर्षों से लगातार कर रही हूं। जेहन में एक छवि उभर रही है--जावेद की।

जावेद, जिसने बड़े औदार्य से मुहब्बत के हसीन चार वर्ष मुझे दिये थे। गांव की उस अल्हड़ किशोरी को कहां पता था कि पल-भर में ही समाज के ये सभ्य ठेकेदार उसके सुदर्शन सहचर को छीन लेंगे, जिसे उसने अपना अर्घ्य मान लिया था। कारण था--मजहब। मैं ठहरी हिंदू-धर्म की अनुगामिनी और वह इस्लाम का पाबंद। भला यह समन्वय दुनिया को कैसे बर्दाश्त होता? जावेद मुझसे दूर चला गया। उसके साथ थी उसकी दुल्हन--नाज, प्रेयसी को भूलने की रामबाण की तरह अचूक दवा। तब से आज तक जिस कुंठा ने मेरे हृदय में जन्म लिया, उससे उबरने की सामर्थ्य नहीं जुटा पायी मैं।

प्रणय की यह गाथा, यद्यपि नयी नहीं, हरेक मानसिकता के संग किसी न किसी रूप में जुड़ी ही है। तब से लगातार यह प्रश्न 'कोबरे' के दंश-सा ही घातक प्रभाव मुझपर छोड़ता रहा है--एक ही शक्ति की निर्मिति के मध्य मजहब की यह दीवार क्यों? इसके समापन की प्रतीक्षा है।

--गोला, हजारीबाग (बिहार)

आशिक को देखते हैं दुपट्टे को तानकर

पुराने लखनऊ (चौक) की उमराव जान अपने समय की वारांगनाओं में बड़ी सुंदर, गुणवती तथा प्रसिद्ध तवायफ थीं। वह स्वयं 'जोहरा' उपनाम से और उसकी छोटी बहन मुश्तरी दोनों उर्दू, फारसी की शायरी करती थीं। अपने समय के जाने-माने शायर आगा अली 'शम्स' उन दोनों के काव्य-गुरु थे, जिनकी प्रखर काव्य-प्रतिभा ने जोहरा को भी शायरी की खान का एक तराशा हुआ हीरा बना दिया था। जोहरा शायरी में जितनी दक्ष थी, स्वभाव से भी उतनी ही तीखी और तेज-तर्रार भी। एक बार लखनऊ के एक रईस जो 'महजूं' उपनाम से काव्य-रचना भी करते थे, जोहरा की तारीफ सुनकर उससे भेंट करने उसके मकान पर गये। आदर-सत्कार के पश्चात बातें चल निकलीं। रईस को छेड़ने के उद्देश्य से या यों ही जोहरा ने एक मिस्रा उसी समय कहकर बड़ी अदा से सुनाया—

सैरे फलक को हम कभी तन्हा न जायेंगे

● **स्वामी वाहिद काजमी**

और उत्तर की प्रतीक्षा में बड़ी शोखी से उनकी ओर निहारने लगी। वे साहब भी आखिर शायर थे, न रहा गया। फौरन दूसरा मिस्रा कहकर शेर यों पूरा किया—

सैरे-फलक को हम कभी तन्हा न जायेंगे
जोहरा के साथ जायेंगे या मुश्तरी के साथ

शेर सुन, जोहरा बाग-बाग हो गयी। और हर्षावेश में उसने चट से महजूं साहब का हाथ चूम लिया। वाकई आसमान की सैर के लिए जोहरा व मुश्तरी (जो दो सितारों के नाम हैं) का साथ जोड़कर उन्होंने कमाल का सौंदर्य उत्पन्न कर दिया।

हृदयस्पर्शी मरसियों की रचना के लिए उर्दू-काव्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध उस्ताद शायर मीर 'अनीस' एक दिन संध्या-समय सैर के लिए निकले। कुछ अंतरंग

मित्र भी संग थे। उस समय के सबसे बारौनक बाजार चौक से गुजरना हुआ। अनीस साहब बड़े चित्ताकर्षक और सुगठित देह के पुरुष थे। एक रूपसी तवायफ अपने कोठे पर से अपने दुपट्टे की ओट करके उन्हें तकने लगी। अनीस साहब शायद उन क्षणों में किसी रचना-चिंतन में लीन थे, अतः उसे न देख पाये। जब चौक से निकल गये, तब किसी साथी ने उनसे यह बात बतायी। सुनकर अनीस साहब पहले तो किंचित मुसकराये और फिर प्रतिक्रिया-स्वरूप यह एक शेर कहकर मित्रों को सुना दिया--

आशिक को देखते हैं दुपट्टे को तानकर
देते हैं हमको शरबते-दीदार छानकर

दिल्ली के 'मदरसा जनाना' में अल्लाहदाद नाम की फारसी की एक अध्यापिका थीं। उर्दू में शेर भी कहती थीं। 'फातिमा' उपनाम था। आशु-रचना करने में बड़ी निपुण थीं। उनके काव्य-गुरु का नाम तो मालूम नहीं, किंतु कोई पुराने शायर उनके उस्ताद थे, ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है। एक बार उनके काव्य-गुरु अपनी एक गजल की रचना में लीन थे। शेर की पहली पंक्ति तो कह ली थी, दूसरी नहीं बन पा रही थी। वे बार-बार ये पंक्ति पढ़ते—**आपकी मर्जी हमने पा ली है,** और सोचने लगते जब कुछ समझ में नहीं आता तो फिर मिस्रा पढ़ते और सोच में पड़ जाते। फातिमा कुछ देर तक उन्हें देखती, चुप बैठी रहीं, अचानक उन्हें कुछ सूझ गयी, तो धीरे-से अगली पंक्ति बोल दीं--

आपकी मर्जी हमने पा ली है,
फिर ये क्यूं लैत-ओ-लाल डाली है

(लैत ओ लाल : बहानेबाजो)

उस्ताद ने यह मिस्रा लिख लिया और इतनी सही पूर्ति पर शिष्या की सराहना की।

अपने समय के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित उस्ताद शायर गुलाम हमदानी 'मुसहफी' तत्कालीन लखनवी शायरों में बड़े धीर-गंभीर व्यक्ति थे, किंतु उनके स्वभाव में भी रंगीन व शोखी का अंश था, भले ही शायराना छेड़छाड़ के अतिरिक्त उनके इस गुण का कहीं पता नहीं चल पाता। एक बार एक भिश्ती युवती को नदी से मशक भरकर ले जाते देख, उस्ताद मुसहफी की तबियत भी मचलकर रह गयी थी। उस प्रसंग को लेकर उन्होंने एक फड़कती हुई गजल की रचना कर डाली थी। उसके तीन शेर यहां पेश हैं—

तब और अब



तुम्हारा हुलिया देखते ही मैं जान गयी कि आज तुम्हारी इस पहली पुस्तक का विमोचन हुआ है!

पानी भरे है यारो ! या करमजी दुशाला
लुंगी की सज दिखाकर सकनी ने मार डाला
कांधे पे मश्क लेकर जब कद को खम करे है
काफिर का नशा-ए-हुस्न हो जाए है दोबाला
दरिया-ए-खूं में क्यूंकर हम नीमकद न डूबें
लुंगी के रंग से जब वां ता-कमर हो लाला

(करमजी : लाल रंग, सकनी : भिश्ती स्त्री, खम : तिरछा, दोबाला : दुगना, नीमकद: अधढंकी देह, ता-कमर हो लाला : कमर तक लाल)

पता नहीं, उस्ताद की इस रचना की उस 'सशरीरी प्रेरणा' को भी खबर लगी या नहीं और उस पर क्या प्रभाव पड़ा।

आबिदा खानम नाम और 'परवीन' उपनामी एक बहुत ही अच्छी शायरा हुई हैं। समस्या-पूर्ति करने में वे अपनी समकालीन शायराओं में अग्रणी मानी जाती थीं। आशु-रचना में भी अति कुशल थीं। उन दिनों 'पैमाना' नामक एक उर्दू पत्र उर्दू-काव्य-जगत में काफी लोकप्रिय था, जिसके संपादक 'सागर' उपनामी एक उत्तम शायर थे। 'पैमाना' के एक अंक में सागर साहब ने अपना एक वढ़िया चित्र छापा और उसके नीचे शीर्षक दिया— **'सागर-आलमे-रंगों-बूस।'** परवीन साहिबा की दृष्टि से जब उक्त अक गुजरा तव उन्होंने चित्र के अनुसार एक जोरदार नज्म की रचना कर डाली। इस नज्म को उन्होंने दो भागों में रचा था—'पहला रुख' व 'दूसरा रुख'। दोनों भागों से चुनकर यहां तीन शेर पेश हैं—

है फसाना हर निगह में,हर अदा में है कहानी
ये शिहाब-सी उमंगें, ये शराब-सी जवानी
ये लगावटें, ये शोखी, ये अदा, ये बेहिजाबी
किसी कुंजेगुल में जैसे, हो पड़ा कोई शराबी
तेरी मस्तियां वो समझे,जो खराबे-रंग-ओ-बू हो

अरे हो जवान सागर ! ये जहां हो और तू हो!

(शिहाब : शोला, कुंजे गुल : पुष्पोद्यान)

मालूम नहीं 'पैमाना' में अपना चित्र छापने से सागर साहब का क्या उद्देश्य था और उक्त नज्म उन तक पहुंची या नहीं, अगर पहुंची तो आश्चर्य नहीं कि वे बेचारे बेमौत मर मिटे हों।

सैयद इंशा अल्लाह खां 'इंशा' लखनऊ के नवाब सआदत अली खां के आश्रित थे। रमजान का महीना था। नवाब साहब ने भी एक दिन रोजा रखा और कड़ा आदेश दिया कि कोई भी उनको परेशान न करे, न कोई आने पाये। पर 'इंशा' को कुछ कार्य आ पड़ा। थोड़ी देर कुछ सोचा किये। अंततः कमर खोल, सिर से पगड़ी उतार उसे औरतों की भांति ओढ़ा और कुछ अजीब से हाव-भाव के साथ भीतर नवाब के सम्मुख जा खड़े हुए। ज्यों ही नवाब साहब की दृष्टि इनकी ओर उठी, इंशा साहब नाक पर उंगली धरकर बोले—

ऐसी गर्मी में न रख ऐ मेरी प्यारी रोजा
बंदी रख लेगी तेरे बदले हजारी रोजा

नवाब साहब बजाये अप्रसन्न होने के इनकी इस अदा पर खिलखिला पड़े।

—५३, खुरशेद बाग, लखनऊ

बुद्धि-विलास

१. एक कार को २० किलोमीटर की दूरी तय करनी थी। उसने आधी दूरी ३० कि. मी. प्रति घंटे की रफ्तार से और शेष ६० कि. मी. प्रति घंटे की रफ्तार से तय की। उसने पूरा फासला कितनी देर में तय किया—

क. १ घंटा, ख. ४५ मिनट, ग. ३० मिनट

२. **भारत** के समुद्रतट की कुल लंबाई अनुमानतः कितनी है—

क. ४,८०० कि. मी., ख. ६,१०० कि. मी., ग. ८,००० कि. मी.

३. **निम्नलिखित** हवाई अड्डों में कौन-से अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं—

क. डमडम, ख. सफदरजंग, ग. अमौसी, घ. मीनमबक्कम

४. **हमारे** देश के चार महापुरुष—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय तथा प्रफुल्लचन्द्र राय—एक ही वर्ष में पैदा हुए थे। वह कौन-सा वर्ष था—

क. १८५८, ख. १८६१, ग. १८६३

५. **निर्धनता-रेखा** (पावर्टी-लाइन) से क्या तात्पर्य है?

६. क. **भारत** के किस राज्य की ग्रामीण आबादी सबसे अधिक गरीब है?

ख. किस राज्य की शहरी आबादी सबसे अधिक निर्धन है?

७. **इस** वर्ष के निम्नलिखित पुरस्कार-विजेताओं के नाम बताइए—

क. मार्कोनी अंतरराष्ट्रीय फेलोशिप पुरस्कार, ख. राष्ट्रभूषण पुरस्कार (फाई फाउंडेशन)

८. **'शक्तिमान'** ट्रक का निर्माण करनेवाली आर्डनेंस फैक्टरी कहां स्थित है—

क. आवड़ी, ख. जबलपुर, ग. रांची

९. **क. अब** शक संवत की कौन-सी शताब्दी चल रही है, और कब से?

ख. भारत ने इसे सरकारी संवत के रूप में कब मान्यता दी?

१०. **अमरीकी**-एशियाई देशों का पहला सम्मेलन कहां और कब हुआ था—

क. जकार्ता, ख. बांडुंग, ग. सिंगापुर

११. **भारतीय** वायुसेना में 'हंटर' विमान का स्थान अब कौन-सा विमान लेनेवाला है—

क. मिग, ख. हेरियर, ग. जगुआर

१२. **नीचे** दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है—



भारत छोड़ने से पहले अंगरेजों की साजिश

● धर्मेन्द्र गौड़

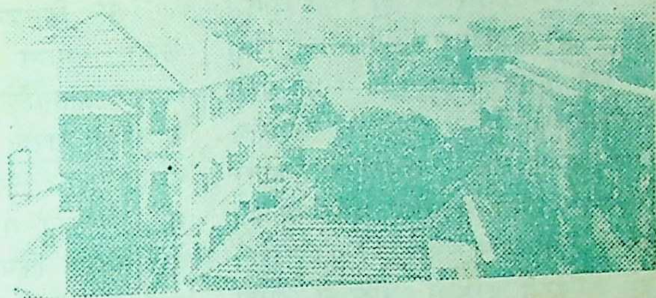
सन १९४४ के उत्तरार्ध में अंगरेजों को पूर्वी युद्ध-क्षेत्र में अपनी विजय के आसार नजर आने लगे थे। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल यह भी सोचने लगे थे कि लड़ाई तो वे अब जीत ही जाएंगे, लेकिन भारत, बर्मा, मलाया, श्रीलंका आदि देशों से हाथ भी धोने पड़ेंगे। उन्हें विशेष चिंता थी भारत की, जिसे वे आसानी से छोड़नेवाले नहीं थे। वे आजाद भारत को सबक सिखाना चाहते थे कि अंगरेजों से दुश्मनी मोल लेकर आजादी हासिल करने का नतीजा क्या होता है।

इसी आधार पर चर्चिल ने सितंबर १९४४ में ब्रिटिश गुप्तचर संस्था 'फोर्स वन थ्री-सिक्स' के सर्वेसर्वा सर सी. एच. मिकेंजी को 'पोस्ट क्विट प्लान' तैयार करने का अति गोपनीय आदेश दिया। मिकेंजी का हेडक्वार्टर १४३-१४४-१४५ नॉर्थे रो, मेरठ छावनी में था और पूर्वी युद्ध-क्षेत्र में सैनिक गुप्तचरी का संपूर्ण भार उन्हीं के कंधों पर था। उन्होंने तुरंत अपने साथियों—सर गाल्विन वी. स्टुअर्ट, लार्ड जॉन लिर्नाड कॉली, चार्ल्स ओ' नील के अलावा अपने सैनिक सलाहकार कर्नल पग से भी सलाह मशविरा किया। जमकर वार्तालाप हुए।

इस उच्च स्तरीय निर्णय के पश्चात सन १९४५ के शुरू में मेजर फिच और मेजर ड्रेक ने अंगरेजों के भारत छोड़ने के बाद की योजना तैयार की, जिसे 'पी. क्यू. पी.' (पोस्ट क्विट प्लान) की संज्ञा दी। मिकेंजी की रजामंदी पर चर्चिल ने भी अपनी अंतिम स्वीकृति की सील ठोक दी। इस योजना के मुख्य पहलू थे—

१. 'फोर्स वन-थ्री-सिक्स' के एजेंटों से एजेंट 'प्रोवेकेचर्स' (उकसानेवाले तत्व) का काम लेना। २. भारत की राष्ट्रीय सरकार के दुश्मनों को उकसाकर 'रेजिस्टेंस मूवमेंट' (अवरोध आंदोलन) संगठित करना ३. 'रेजिस्टेंस मूवमेंट, (अवरोध आंदोलन) की कामयाबी के लिए हथियार, गोला-बारूद प्रचुर मात्रा में देना। ४, आजाद भारत की राष्ट्रीय सरकार को नाकामयाब बनाने के इरादे से कुछ देशी रियासतों को अड़ंगे डालने के लिए उकसाते रहना। ५. सैनिक तथा आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय सरकार को कमजोर करने के लिए अकारण मारकाट और मजहबी दंगे कराना। ६. मुद्रा-स्फीति करके

भारत को तबाह कर देना । ७. गुप्तचर विभागों और सेना के तीनों अंगों के अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण खुफिया दस्तावेज या तो लंदन भिजवा देना, या उन्हें भारत में ही जलाकर राख कर देना ।



दंगों के कारण वीरान बंबई के मकान

बड़ी ही खौफनाक थी, यह योजना जिसे चर्चिल तुरंत ही लागू कर देने के पक्ष में थे। तभी तो उन्होंने मुस्लिम लीग के साथ सहयोग बनाये रखा, जिससे प्रति-क्रियावादी शक्तियां नवजात राष्ट्रीय सरकार के सफल संचालन में बाधाओं और मतभेदों को जन्म देती रहें । इस घृणित कार्य के लिए बड़ी-बड़ी रियासतों, ताल्लुके-दारों और जमीदारों को प्रचुर मात्रा में हथियार, गोला-बारूद देकर लुभाया जाने लगा, जिससे मजहबी दंगों और मारपीट की आग भड़कायी जा सके ।

इस कार्य के लिए केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के कुछ अंगरेज, ऐंग्लो-इंडियन और मुस्लिम आई. सी. एस.. (इंडियन सिविल सर्विस) एवं आई. पी. (इंडियन पुलिस) अफसरों का विश्वास प्राप्त किया गया। तब कहीं उन्हें गोपनीयता की शपथ में बांधकर रहस्योद्घाटन किया गया । अपने एजेंटों द्वारा इस योजना को लागू कराने की जिम्मेदारी उन्होंने अपने सिर ले ली । फिर उन्हें तोड़-फोड़ के कामों में पूरा माहिर बनाया गया । इस प्रकार अंगरेजों को पूरा यकीन हो गया कि साम्यवादियों एवं अन्य प्रतिक्रियावादियों के सहयोग से, उनकी योजना सफल होगी और स्वतंत्र भारत की सरकार को विवश होकर उनसे लौट आने का निवेदन करना पड़ेगा ।

रियासतों को हथियार

तभी रामपुर, छतारी, भरतपुर, रीवां के अनेक जमींदारों को ब्रिटिश एजेंटों ने हथियारों से लैस किया । कर्नल वाल्श, मेजर क्रिस्प तथा सरमन ने हैदरा-बाद, जूनागढ़, भोपाल, बहावलपुर, मुजफ्फरगढ़,लायलपुर, फरीदपुर, बरीसाल, पटियाला, नाभा, दरभंगा, कपूरथला आदि देशी रियासतों को बेशुमार हथियार

सौंपे। साथ में स्पष्ट हिदायत भी थी कि इनका इस्तेमाल ठीक समय पर अंगरेज अधिकारियों या फोर्स 'वन-थ्री-सिक्स' के एजेंटों के इशारे पर ही किया जाए। वरना इन्हें छुआ तक न जाए। इन्हीं दिनों न जाने कितने करेंसी नोटों से भरे वैगन मेरी सुपुर्दगी में दिये गये, जिन्हें मैंने कलकत्ता, मद्रास, लाहौर, रावलपिंडी, पेशावर में सही-सलामत पहुंचाकर 'फोर्स वन-थ्री सिक्स' के अंगरेज अफसरों को सौंपे। हमें सरकारी काम में ज्यादा से ज्यादा खर्च करने के आदेश भी मिले। फिर तो पैसा पानी की तरह बहाया जाने लगा।

विजय के राजनीतिक नतीजे

१९४५ का वर्ष शुरू होते ही पूर्वी क्षेत्र में अंगरेजों की विजय सुनिश्चित हो गयी। ३ जनवरी को मायू पहाड़ियों पर आक्याब की बड़ी लड़ाई जीती और उनके १७वें लांसर्स शर्मन टैंक आगे बढ़ते ही गये। १४ जनवरी को रात के अंधेरे में १९वीं डिवीजन ने इरावती नदी पार कर ली। २७ जनवरी को भारत से बर्मा होती हुई चीन जानेवाली सड़क खुल गयी। येनान (चीन) से 'चाइनीज एक्सपिडीशनरी फोर्स' पश्चिम की ओर बढ़ रहा था।

इन विजयों के राजनीतिक नतीजों से अंगरेज भलीभांति परिचित थे। कर्नल किंस और ए. एन. पी. जोन्स (इंडियन पुलिस) द्वारा बंगाल और पंजाब के कब्रिस्तानों में हथियार, गोला-बारूद दफना दिये गये, जहां मुस्लिम संख्या अधिक थी। मजहबी दंगों, भीषण मारकाट के लिए जोरदार तैयारियां थीं।

१२ सितंबर, १९४५ को मलाया, जावा, सुमात्रा के जापानी सेनाध्यक्ष जनरल इतागाकी ने लार्ड माउंट बैटन के समक्ष जापान की समस्त दक्षिण पूर्व एशिया के ६ लाख ५६ हजार सशस्त्र शाही सैनिकों तथा अधिकारियों का आत्मसमर्पण किया। इधर युद्ध समाप्त हुआ और उधर १६ अगस्त, १९४६ को मुस्लिम लीग ने 'डॉयरेक्ट एक्शन डे' की घोषणा की। फोर्स वन थ्री सिक्स' के एजेंट समस्त बंगाल की धरती रक्तरंजित करने के लिए कलकत्ता, नोआखाली, बरीसाल, चटगांव, ढाका, खुलना, नारायण गंज, टिपरा, (कोमिल्ला), मदारीपुर, राजशाही आदि स्थानों में फैल गये।

सर स्टुअर्ट उन दिनों हैदराबाद में थे। वे निजाम के कानूनी सलाहकार सर वाल्टर से सांठगांठ करके रजाकारों के नेता कासिम रिजवी के जरिये षड्यंत्र की व्यूह रचना कर रहे थे।

१५ अगस्त, १९४७ को आजादी ने भारत को गले लगाया। इसके बाद ही बंबई में दंगे शुरू हो गये। फिर तो समस्त भारत में जगह-जगह कमोबेश ऐसे ही दृश्यों की जैसे बाढ़ आ गयी, जिसे रोकने में हमारी राष्ट्रीय सरकार ने बड़े संयम से काम लिया।

—लंगटा बिल्डिंग,
सिनेमा रोड, गोरखपुर-२७३००१

गुलाब, लेकिन कौन-सा ?

"शुभ हो !"
कहते हुए तुमने
कुरते के बटन-होल में खोंस दिया
एक रक्त-गुलाब--
जैसे मेरे जन्मदिन को सार्थक सुगंध देकर
अपनी अंगुलियों से
उसे मेरे वक्षस्थल पर लिख भी दिया
उपरांत--
निमिष भर देखा
और हठात
आकुल, थरथराता
एक स्वर्ण-गुलाब
मेरे ओठों पर अप्रत्याशित रख दिया
जैसे मेरे जन्मदिन की उत्सवर्ता को
एक कविता बना देने के लिए
अपने अधरों का भोजपत्र प्रदान कर दिया
नहीं जानता प्रिया ! कि
मेरी कविता और जीवन में
किस गुलाब की सुगंध है--
उस फूल की
अथवा अधर-अनुकंपा की

जूड़े का फूल

"घूमो--
तुम्हारे जूड़े में फूल खोंस दूं"
अंतिम रूप से जूड़ा ठीक करते हुए
शीशे को भी मोहक नेत्र प्रदान करते हुए
तुम बोलीं,
"लेकिन तुम तो कहते हो कि
यह फूलों का अपमान है"
"हां--
जब तक तुम्हारे प्रसाधन को शृंगार
समझता था"

"और अब ?"
"अब लगता है कि
वृंत पर लगा फूल--
परम-पुरुष के स्तवन का अनुष्टुप है
और जूड़े में लगा फूल--
पार्श्व में खड़े पुरुष की कविता है"

--श्रीनरेश मेहता
९९ ए, लूकर गंज, इलाहाबाद

बैलगाड़ी आधुनिकता का प्रतीक बनेगी

● कुमार अनुपम

"बड़े-बड़े कल-कारखानों के कारण हमने जीवन की छोटी-छोटी अन्य उपयोगी वस्तुओं—जैसे हाथ-करघा, बैल-गाड़ी आदि की उपेक्षा कर दी है। पर वह दिन दूर नहीं, जब आधुनिक सभ्यता को इन्हीं पिछड़ी समझी जानेवाली चीजों का सहारा लेना पड़ेगा।" ये विचार हैं, एक जरमन विद्वान के, जो गांधीजी के स्वावलंबन के सिद्धांत से बेहद प्रभावित थे।

दो वर्ष पूर्व वे भारत आये थे और यहां की सड़कों पर बोझा और सवा-रियां ढोती बैलगाड़ियों को देखकर उन्होंने एक और भविष्यवाणी की थी, "वह दिन दूर नहीं, जब न केवल भारत की सड़कों पर वरन दुनिया के अन्य देशों की सड़कों पर भी बैलगाडियां ही घूमती नजर आयेंगी।"

आज पेट्रोल और डीजल का निरंतर अभाव उनकी इस भविष्यवाणी को साकार करने जा रहा है। कुछ समय पूर्व बंगलौर के 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑव साइंस' ने बैलगाड़ियों द्वारा सामान ढोये जाने का अध्ययन किया था। उसके विशेषज्ञों का कहना है कि मंडियों में लाये जानेवाले अनाज का ७० प्रतिशत हिस्सा बैल-गाड़ियां ही ढोती हैं।

राष्ट्रीय यातायात समिति ने भी ग्रामों के संदर्भ में बैलगाड़ियों की उपयो-गिता पर जोर दिया है। इसीलिए पिछले पांच-छह वर्षों में परंपरागत बैलगाड़ी में सुधार के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने-अपने प्रदेशों की भूमि के अनुरूप बैलगाड़ियों में परिवर्तन करने के लिए पुरस्कारों की भी घोषणा की।

शकटम् का विकास

पशु-गाड़ी, जिसे प्राचीन धर्म-ग्रंथों में 'शकटम्' कहा गया है, के विकास का इतिहास जानने के लिए हमें कंदरा-निवासी मानव से शुरूआत करनी होगी।

पत्थरों की ढुलाई करते समय गुहा-मानव ने देखा कि जो पत्थर सूर्य और चंद्रमा के समान गोल थे, उन्हें लुढ़काकर

एक जगह से दूसरी जगह ले जाना आसान था। चौरस व अन्य आकृतियोंवाले पत्थरों को ले जाने में मानव को लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों का सहारा लेना पड़ता था। संतुलन व उत्तोलक के सिद्धांतों तथा वृत्तीय गति, घूर्णन गति आदि के वर्तमान सिद्धांतों के मूल में आदि-मानव की यही जानकारी थी। बाद में, देव-कुल के दो सदस्यों—प्रजापति तथा विश्वकर्मा के मस्तिष्क में ये विचार एक साथ आये। प्रजापति ने चक्र (चाक) का निर्माण किया तो विश्वकर्मा ने साल वृक्षों की लकड़ी से पहियों का।

विश्वकर्मा के वंशज

ब्राह्मण-ग्रंथों में प्राप्त उल्लेख के अनुसार भी विश्वकर्मा ही 'शकटम्' के आविष्कारक थे। वेदों की कितनी ही ऋचाओं में विश्वकर्मा को 'रथकार' कहकर संबोधित किया गया है। आज के धीमान, जांगड, पांचाल आदि इन्हीं विश्वकर्मा को अपना आदि-पुरुष मानते हैं।

पहले-पहल शकटम् को आदमी द्वारा ही खींचा जाता था। पहिये छोटे और चौड़े रखे जाते थे। इसमें अधिक जोर लगाना पड़ता था, अतः मानव ने अपने पालतू पशुओं का सहारा लिया। इन पशुओं में वृषभ, अश्व, गर्दभ आदि प्रमुख थे।

कालांतर में जाकर विश्वकर्मा एक व्यक्ति का नाम न रहकर पदवी बन गयी तथा मूल विश्वकर्मा द्वारा आविष्कृत शकट्म का उत्तरोत्तर विकास होता गया। युद्ध के दौरान काम में लाये जानेवाले रथों में घोड़े तथा सवारियों व सामान ढोने के काम में आनेवाले रथों व छकड़ों (शकटों) में बैल जोते जाने लगे।

मैदानों में प्रचलन

ऋग्वेद में वैवत्स्य मनु द्वारा सरयू नदी के तट पर एक आर्य बस्ती (अयोध्या) बसाये जाने का उल्लेख है। वैवत्स्य मनु देवकुल में आर्य नेता थे। इंद्र से मन-मुटाव के कारण वे अपने परिवारजन,



मित्रों, अनुयाइयों, हजारों पालित पशुओं तथा रथों, भारकसों व छकड़ों में सामान लादकर दुर्गम दर्रों को पार करते हुए सरयू तट पर पहुंचे थे। इसके साथ ही मैदानी क्षेत्रों में पशु-गाड़ियों का प्रचलन हुआ और शनैः शनैः विश्वभर में फैलता चला गया। उस युग से लेकर आज तक शकटम् ने विकास का क्रम अनवरत रखा है।

आज शकटम् के अनेक रूप हैं—जैसे, रथ, बहली, इक्का, तांगा, शिकरम (ऊंट-गाड़ी), रब्वा, लहडू, लढ़िया, बैलगाड़ी, भैंसा-बुग्घी, बग्घी, फिटन, रेंगी आदि।

भूमि की भूमिका

पहियों के आकार-प्रकार को तय करने में भूमि की बनावट का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। चौरस समतल, कड़ी मिट्टी वाले क्षेत्रों में चलनेवाली गाड़ियों के पहिये बड़े होते हैं। इन पहियों में बीच की धुरियां संख्या में अधिक तथा चौड़ी होती हैं।

इसके विपरीत रेतीली जमीन पर चलनेवाली गाड़ियों—शिकरम आदि में पहिये चौड़े तथा छोटे होते हैं। इनमें अरें (धुरियां) बहुत होती हैं, जिससे कि पहिये रेत में न धंसे। व्यापार के काम में लायी जानेवाली बहलियों में पहिये मंझोले होते हैं तथा इन पर लोहे की पट्टी चढ़ायी जाती है।

पक्के मार्गों पर चलनेवाले तथा सवारियां ढोने के काम में आनेवाले इक्के, तांगे आदि में पहियों के ऊपर रबड़ चढ़ायी जाती है। तांगे में सीटों का भी प्रबंध होता है।

न रहे वे रथ, न रथवान

बैलों से चलनेवाले रथों का प्रचलन अब प्रायः बंद हो गया है। पहले हर बारात की शान उसमें शामिल भारकसों (रथों), बहलियों से ही आंकी जाती थी। इनमें ऊपर का भाग रेशमी, मलमली या अन्य प्रकार के कपड़े के परदे से ढंका रहता था। गुजरात, मध्यभारत की बैलगाड़ियों में ऊपर छत होती है। वे भी सवारियां ढोने के काम आती हैं। महाराष्ट्र में तेज गति से सवारियां ले जाने के लिए एक गाड़ी रेंगी का रिवाज है। इसमें केवल दो ही सवारियों के लिए पट्टियों से सीटें बनायी जाती हैं। इनमें पहिये छोटे होते हैं।

बैलगाड़ियों तथा भैंसा-बुग्गियों का पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा में कृषि-कार्य के लिए उपयोग किया जाता है। बुग्गियों में रबड़ के टायर लगाये जाते हैं तथा उनमें एक ही पशु जोता जाता है। इसमें जुएवाला आगे का भाग कम चौड़ा तथा पीछेवाला भाग कहीं अधिक चौड़ा होता है। सभी प्रकार की पशु-गाड़ियों में यही सिद्धांत अपनाया जाता है। इस आकृति से गाड़ी खींचनेवाले पशु को हवा के विपरीत होने पर भी उसे चीरकर वाहन को आगे बढ़ाने में आसानी रहती है।

सामने की पारदर्शी के छायाकार : दुष्यंत पाराशर



आज डीजल के निरंतर अभाव ने गांववालों को बैलगाड़ी की याद फिर से दिला दी है। ट्रेक्टरों से पहले बैलगाड़ी उनकी कई जरूरतें पूरी किया करती थी, मसलन कटी फसल को खेत से लाना, या अनाज को बोरियों में भरकर शहर पहुंचाना, मेले के अवसर पर पूरे परिवार के साथ बैलगाड़ी में बैठकर जाना इत्यादि। ट्रेक्टर आये तो गांववाले उनसे ही ये सारे काम लेने लगे और बैलगाड़ी उपेक्षित हो गयी। लेकिन डीजल की कमी से ट्रेक्टर बेकार हो गये हैं और बैलगाड़ी ने अपना महत्त्व फिर पा लिया है।

गांव की धूलभरी कच्ची सड़क पर अब एक चिर-परिचित दृश्य फिर साकार होने लगा है——सजी-धजी बैलगाड़ी और उसमें चटक रंगवाले वस्त्र पहने, घूंघट काढ़े गांव की महिलाएं और उनके ओठों से वातावरण में गुजरता कोई परंपरागत लोक गीत। ●

छिपकली से ढंके हुए नगाड़े

नगाड़े की आवाज ! जो कभी पांवों में थिरकन पैदा करती है तो कभी-कभी ऐसा आवेश और ओज भरती है कि आदमी मरने-मारने पर उतारू हो जाए। मृत पशु की चाम से ढंका नगाड़ा कितना निर्जीव, पर कितना सजीव !

पुराने जमाने में लड़ाई के मैदानों में नगाड़े की आवाज सैनिकों में अपूर्व उत्साह भरती थी। आज के आधुनिक जमाने में भी जब लोगों को जोश दिलाने की जरूरत पड़ती है, तब नगाड़ा ही काम आता है। हमने देखा है, उन अनेक हड़ताली मजदूरों को, जो नगाड़े के धमाके में



सारा दुःख-दर्द भूलकर अपने निश्चय पर डटे रहने के नारे लगाकर नाचते हैं, हंसते गाते हैं, नारे लगाते हैं। हमने विवाह के ऐसे अनेक अवसर भी देखे हैं, जब नगाड़े की विशिष्ट लय-बद्ध आवाज ने, न नाचने-वालों को भी भांगड़ा नृत्य करने के लिए मजबूर कर दिया है। नगाड़े का इतिहास बहुत पुराना है। आदिम जातियों की परंपरा से चली आ रही मौखिक कहा-नियों से लेकर पुराणों में वर्णित कथाओं तक—नगाड़े की धूम मची है।

शार्ंगदेव ने अपने संगीत-रत्नाकर में नगाड़े को 'अवनध' श्रेणी के वाद्यों में रखा है। कहा जाता है, नगाड़े की रचना स्वयं शिव ने की थी—डमरू के रूप में! डमरू से ही आगे चलकर नगाड़े का विकास हुआ है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद आदि-मानव ने बांस के खोखल पर किसी सख्त लकड़ी के टुकड़े की धमक देकर पहली बार धुन पैदा की और फिर शनैः शनैः विभिन्न व्यासवाले बांस के खोखलों को बजा-बजाकर भिन्न-भिन्न धुनें निकालीं। नगाड़े के इस आदिम स्वरूप के उपरांत विकास के क्रम में लकड़ी के बड़े-बड़े खोखलों का मानव द्वारा सप्रयास निर्माण किया गया और इस खोखल के एक ओर या फिर दोनों और खोखल के आकार के अनुरूप छिपकली या हिरण की खाल मढ़ी और इन खालों को चमड़े की डोरी

सामने के रंगीन चित्र के छायाकार : प्रेमनाथ

• धनंजयसिंह

(तांत) द्वारा आगे पीछे अच्छी तरह कस कर बांधा। मैग्रेगर ने नगाड़ों का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि छोटे पेड़ के टुकड़े को लेकर उसे बेलनाकृति दे दी जाती है और उसे खोखला कर दिया जाता है। इस बेलनाकृत खोखल के एक छोर को छिपकली की खाल से पूरी तरह मढ़ दिया जाता है। दूसरा छोर खुला रहता है। मैग्रेगर ने आगे लिखा है कि नागड़ा बजाते हुए लोग एक लय में ध्वनि करते हैं।



नगाड़े के अविष्कार को लेकर अनेक **किंवदंतियां** और दंत **कथाएं** जुड़ी हुई हैं। जो प्राय: धार्मिक मान्यताओं के आवरण में लिपटी हैं। एक किंवदंती के अनुसार, प्रारंभ में देवतागण आदि मानव से अप्रसन्न व असंतुष्ट थे अत: उन्होंने रोगों और प्राकृतिक विपदाओं से मनुष्य जाति की रक्षा नहीं की यहां तक कि धन-धान्य व फसलों के फलने-फूलने में सहायता नहीं की। अंतत: आदिमानव ने देवताओं का अनुग्रह प्रात करने का एक रास्ता निकाला। उसने एक नगाड़े का निर्माण किया। इसके लिए उसने खजूर के पेड़ के तने को काटा और खोखला कर उसे गाय की खाल से मढ़ दिया। जब पर्व का समय आया, तब आदिमानव ने नगाड़ा पीटकर नाचा-गाया और देवताओं की आराधना-उपासना की जिससे प्रसन्न होकर देवताओं ने उन्हें धन-धान्य से आपूरित और संतति व आरोग्य से समृद्ध किया।

एक अन्य लोककथा के अनुसार उस समय, जब तक नगाड़े या किसी अन्य वाद्य का आविष्कार नहीं हुआ था, एक आदमी परदेश में मर गया। पता चलने पर उसके संबंधी उसकी प्रेतात्मा को लेने गये। लेकिन प्रेतात्मा ने अपने शोक-संतप्त संबंधियों के साथ पहले तो चलने से इंकार कर दिया बाद में तैयार हो गया लेकिन इस शर्त पर कि उसके साथ संगीत-वाद्य बजता हुआ चले। इधर लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए, संगीत-वाद्य कैसे बनाया जाए। और उधर प्रेतात्मा अधीर हो रही थी। अंत में प्रेतात्मा ने ही एक स्वजन

पखावज का

अकबर का दरबार लगा था। कवि गंग का काव्यपाठ चल रहा था। वह अकबर की बेगम के सौंदर्य का वर्णन कर रहा था। सौंदर्य वर्णन करते-करते वह बगम के एक ऐसे अंग-विशेष पर तिल का वर्णन कर बैठा, जिसका पता अकबर के अतिरिक्त किसी को नहीं हो सकता था। बस फिर क्या था; अकबर क्रोधित हो उठा। उसे आशंका हुई कि गंग ने बेगम को विवस्त्रावस्था में देखा है। उसने गंग को हाथी से कुचलवाने का आदेश दे दिया।

दरबारियों में खलबली मच गयी। उन्होंने अकबर को समझाने के प्रयत्न किये। यह भी बताया कि गंग ने जो वर्णन किया है, वह तो ग्रंथों में महारानी के लक्षणों के अंतर्गत आता है। लेकिन अकबर नहीं माना। हारकर दरबारियों ने एक गुप्त मंत्रणा की।

मृत्युदंड का समय ! अकबर, दरबारीगण, तमाम जन-समूह, और मैदान में

को स्वप्न में दर्शन देकर नगाड़ा व अन्य संगीत-वाद्य को बनाने का तरीका सुझाया। सुझाये हुए तरीके पर नगाड़े बनाये गये और उनकी गड़गड़ाहट भरी धुनों के मध्य उस प्रेतात्मा को घर ले जाया गया।

एक अन्य लोककथा के अनुसार नगाड़े के आविष्कार से पूर्व जन्म, विवाह, मृत्यु अथवा किसी खतरे की सूचना देने का कोई त्वरित और सुविधाजनक उपाय नहीं था। तब भगवान ने निश्चय किया कि मैं संगीत की रचना करूंगा ताकि मनुष्यों को विवाह, जन्म अथवा मृत्यु की सूचना मिल सके। उनमें उल्लास भरने के लिए यह अच्छी चीज होगी। इसके बाद उन्होंने एक ढोल और पीतल का घड़ियाल बनाकर मनुष्य-जाति को दिया।

नगाड़े के आविष्कार के संदर्भ में डॉ. सी. वॉन फ्यूरेन. हेमेंड्रॉफ द्वारा उल्लिखित एक बेहद दिलचस्प प्रसंग है:

एक बार एक आदमी जंगल में शिकार करने गया। वहां उसने एक पेड़ पर बंदर-बंदरिया के एक जोड़े को देखा। जोड़ा बहुत प्रसन्न दिखायी देता था। बंदर ढोल बजा रहा था। दोनों नाच रहे थे और डालियों पर थिरक रहे थे।

शिकारी ने बंदर पर निशाना साधकर तीर चलाया। लेकिन निशाना चूक गया और बंदरियां घायल हो गयी। बंदर ने ढोल फेंका और बंदरिया को जमीन पर ले आया। उसने जख्म पर कोई जड़ी-बूटी लगायी और यह जानने के लिए कि बंदरिया जीवित बचेगी या नहीं, उसने ढोल पीटना शुरू किया।

कमाल

पड़ा जंजीरों से जकड़ा कवि गंग! पूरे वातावरण में गहरी उत्तेजना और मौन सनसनी! गंग को रौंद डालने के लिए हाथी बढ़ा जा रहा है। उत्तेजना बढ़ रही है।

लेकिन यह क्या! अचानक कहीं से ताल फड़की और हाथी आग बढ़ने की बजाय वहीं झूमने लगा। अंकुश लगाए गये। महावत परेशान! लेकिन हाथी झूमता रहा।

अकबर ने ताल देनेवाले वादक की खोज करायी। यह तानसेन था जो पखावज पर ध्रुपद ताल दे रहा था। अकबर ने उसे पखावज रोक देने को कहा। लेकिन तानसेन ने गंग के मृत्युदंड के आदेश वापस लेने की शर्त रखी। अकबर को आदेश वापस लेना पड़ा। तब जाकर तानसेन ने पखावज पर ताल देना बंद किया।

आखिर अकबर को कला-साहित्य की क्षमता समझ में आयी और यह क्षमता पखावज ने सिद्ध की। ●



लेकिन बंदरिया मर गयी और बंदर बहुत देर तक विलाप करता रहा। फिर उसने बंदरिया को पत्थरों के ढेर के नीचे दबा दिया और उस टीले के ऊपर वह ढोल रख दिया। शिकारी यह सब देखता रहा। जब शोकाकुल बंदर चला गया तब वह ढोल को घर ले आया। थोड़े समय में उसने और उसके साथियों ने ढोल बजाना सीख लिया। तभी से, जब भी ढोल बजाया जाता है, तब स्त्री-पुरुष उन्हीं बंदर-बंदरियों की तरह नाचते हैं।

भारतीय संगीत में अत्याधिक लयबद्धता होने के कारण नगाड़ा बजाने की कला में पर्याप्त विकास हुआ है। आज भारत में अनेक प्रकार के नगाड़े प्रचलित हैं। एक तरफ मढ़े, दोनों तरफ मढ़े; विवाह, शोक आदि समारोहों में प्रयुक्त होनेवाले; लकड़ी के, लोहे के; छोटे-बड़े—सभी तरह के नगाड़े आजकल उपलब्ध हैं।

प्रभावशाली संगीत-ध्वनि उत्पन्न करनेवाला वाद्य पखावज नगाड़े का सबसे प्राचीन रूप है। यह पीपे के आकार का ढाई फुट लंबा वाद्य होता है। इसके दोनों छोरों पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। स्वारारोह और सघन अनुगूंज उत्पन्न करने के लिए इसके एक छोर पर चावल के गाढ़े मांड, इमली के अर्क तथा सुरमे की राख का लेपन किया जाता है। अवरोही स्वर उत्पन्न करने के लिए दूसरे छोर पर आटे के मांड का लेपन किया जाता है। बहुधा पखावज शास्त्रीयसंगीत में बजाया जाता है।

पखावज की ही श्रणी का वाद्य है—मृदंग। इसकी गूंज पखावज जितनी तीव्र नहीं होती। कुशल वादक इसे बहुत मनोयोग से बजाते हैं। यह भी शास्त्रीय संगीत में ही उपयोग में आता है। दक्षिण भारत में इसका काफी प्रचलन है। आटे के मांड वगैरह का लेपन मृदंग पर भी किया जाता है। संस्कृत की एक उक्ति भी है—

'को न याति वशां लोकेमुखः पिंडेन पूरित,
मृदंग मुख लेपेन करोति मधुरध्वनिः।'

ढोलकी मृदंग का छोटा रूप है। इस पर 'तमाशा' गीत गाये जाते हैं। इसी जाति का वाद्य ढोल है जो आकार में बड़ा होता है और अकसर ग्रामीण तथा

आदिवासी क्षेत्रों में बजाया जाता है। और इसी श्रेणी का वाद्य ढोलक तो सर्वाविक प्रचलित है। यह लगभग हर घर में मिल जाती है।

डफ का प्रचलन भी थोड़े-बहुत अंतर के साथ हमारे सारे देश में है। महाराष्ट्र के लोगसंगीत 'पोवडा' में इसका विशेष प्रयोग होता है। नगाड़ा महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित है।

भारत के पश्चिमी तट के मालाबार प्रदेश में 'कथकलि' के तथा दक्षिण कनारा में 'दशावतार' के नृत्य-नाट्य में 'चेंदा' वाद्य बहुत प्रचलित है। युद्ध के दृश्यों और दुष्ट चरित्रों के पदार्पण के समय यह अकसर बजाया जाता है। इसे दो छड़ियों से बजाया जाता है और तीव्र ध्वनियों में लयात्मक पुट देता है।

आधुनिक वाद्यों में तबला सर्वाधिक प्रचलित है। कहा जाता है कि तेरहवीं शताब्दी में इसका ईजाद अमीर खुसरो ने किया था। उन्होंने पखावज को दो भागों में विभक्त किया। इस तरह तबला अस्तित्व में आया। दाएं हाथ से बजाये जानेवाले को तबला और बाएं हाथ से बजाये जानेवाले को डुग्गा या बायां कहते हैं। तबले से प्रधान स्वर निकलता है और डुग्गा से मद्धिम स्वर। केवल यही ऐसा वाद्य है जिस पर उंगलियां तेजी से थिरकती हैं।

--१०८४, विवेकानंद नगर, गाजियाबाद

'वत्सल निधि'--नये लेखकों को प्रोत्साहन

हाल में एक न्यास के रूप में पंजीयत करायी गयी संस्था 'वत्सल निधि' का उद्देश्य न्यास-पत्र में यह बताया गया है : 'साहित्य और भाषाओं का उन्नयन, साहित्यकारों की सहायता, नये लेखकों की साहित्यिक दीक्षा में और उनके सांस्कृतिक तथा शिल्प संबंधी विकास में सहयोग, आलोचनात्मक विवेक को प्रोत्साहन और संबद्ध अथवा आनुषंगिक सभी उद्देश्यों की पूर्ति ।'

न्यास के संस्थापक श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन की योजना के अनुसार 'वत्सल निधि' व्याख्यानों, लेखक-शिविरों, परिसंवादों, गोष्ठियों, सम्मेलनों और उत्सवों का आयोजन करेगा। साहित्यिक वस्तुओं के संग्रह और संदर्भ-सेवाओं के विकास और दृश्य, श्रव्य अथवा फिल्मी दस्तावेजों का भी संग्रह किया जाएगा। लेखकों के लिए यात्राओं के कार्यक्रम आयोजित होंगे और रचनात्मक साहित्य-लेखन के लिए एक वृत्ति (फैलोशिप) की भी योजना है। एक ऐसे कोष की स्थापना भी की जाएगी जिससे लेखकों को सहायता दी जा सके। इस न्यास में २१ सदस्य होंगे, तत्काल जिन सदस्यों को नियुक्त किया गया है, वे हैं :--सर्वश्री रायकृष्णदास, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, विमल प्रसाद जैन, सत्येन्द्रनाथ महंत, डॉ. छगनलाल मोहता तथा श्रीमती इला डालमिया (न्यास मंत्री) ।

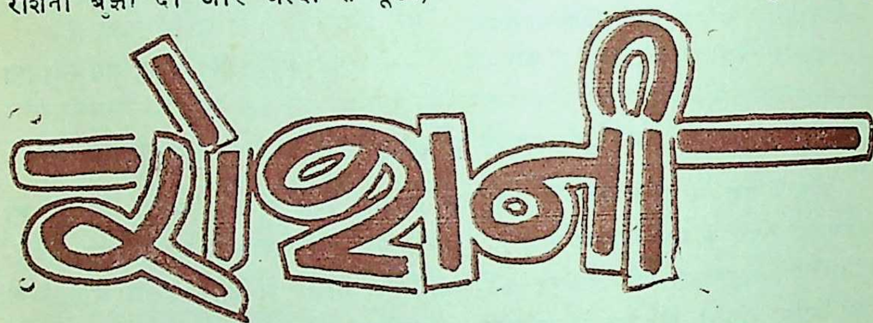
वह जब मुझे रास्ते में मिला, तब उसके हाथ में जलती हुई रोशनी थी, और इर्द-गिर्द भरपूर प्रकाश। मुझे आश्चर्य हुआ। क्योंकि समचा शहर तो वीरान पड़ा था। कहीं रोशनी की एक किरण भी नहीं थी।

मैंने उससे पूछा, "तुम यह रोशनी कहां से लाये हो?"

उसने उत्तर देने की बजाय, तुरंत रोशनी बुझा दी और जल्दी से पूछा, बढ़ाया, तब वह वहां कहीं भी नहीं था। उसकी आवाज भी बहुत दूर से आती प्रतीत हो रही थी।

मेरा मन चाहा कि आगे बढ़कर उसे अपनी पकड़ में ले लूं। परंतु अंधेरा था, हर तरफ अंधेरा। क्या करता। अंधेरे में मैं किसी इस तरह के व्यक्ति से बगलगीर नहीं होना चाहता था, जो कि मेरे शरीर को कांटों में गाड़ दे; और, या मेरे वस्त्र ही उतार ले। अंधेरे में दीन-ईमान कहां रहता है।

मगर उस अंधेरे में भी मुझे इस तरह



रोशनी

● जसवंतसिंह विरदी

"तुम यह बताओ कि रोशनी चली कहां गयी है?"

क्षणभर में ही हर ओर अंधेरा हो गया, और हमें एक-दूसरे के चेहरे भी न दिखायी दिये!

"बता।" उसने फिर कहा, बहुत ही घमंड से।

मुझे लगा—जैसे उसने मुझसे मखौल किया हो। एक क्षण में ही मैं उसके विरुद्ध कितना सोच गया, न चाहता हुआ भी।

फिर जब मैंने उसकी ओर हाथ

प्रतीत हो रहा था, जैसे कि वह व्यक्ति अभी भी मेरे सामने ही खड़ा हो। मुझे फिर आश्चर्य हुआ। 'संसार में वह कौन-सा व्यक्ति है, जो कि हमसे दूर रहकर भी हमारे निकट ही रहता हो?' मैं सोच रहा था। परंतु मेरे इस सोच का उत्तर देनेवाला वहां कोई नहीं था।

'अब तो परमात्मा भी हमारे साथ नहीं रहा।' मैंने परेशानी से सोचा, 'पता

नहीं संसार का क्या बनेगा ?

'अंधेरा सबसे बड़ा अभिशाप है।' मैंने फिर सोचा, 'शहरभर में अंधेरा होने के कारण पिछले दिनों कितने ही हादसे हो गये हैं। दुष्ट लोगों ने नेक व्यक्तियों को कितना परेशान रखा है ?'

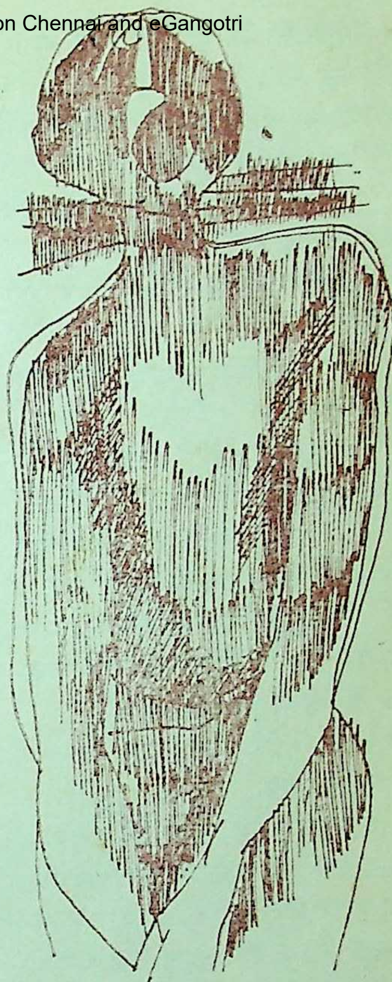
उस समय मुझे महसूस हुआ कि इस तरह के काले-स्याह अंधेरे में रोशनीवाले, उस व्यक्ति की कितनी आवश्यकता थी ? पर उसने रोशनी बुझा क्यों दी! क्या उस पर भी जमाने का प्रभाव पड़ गया था ?

अंधेरे में मेरे सामने बहुत-से बद-शक्ल चेहरे उभर रहे थे-जैसे कि आजकल समाचार पत्रों में राजनीतिज्ञ लोगों के कार्टून होते हैं। कई एक के बारे में तो यह पता ही नहीं चलता कि वे कल किस गुट के साथ थे, और कल को किसके साथ होंगे। कई राजनीतिज्ञ तो अपनी पत्नियों के साथ भी नहीं होते। पता नहीं उनकी पत्नियां किसके साथ हैं।

वेश्याघरों में बैठकर पत्नियों को बेवफा कहनेवाले कौन लोग हैं ?

अंधेरे में उभरनेवाले बदशक्ल चेहरों को महसूस करके मुझे ख्याल आया कि अगर शहरभर में रोशनी होती, तो लोग इन बदल रहे चेहरों-मोहरों को तुरंत पहचान लेते। मगर रोशनी के बगैर तो बायें हाथ को दाहिने हाथ पर भी विश्वास नहीं रहा—. . . .

"भाई मेरे ! मेरे निकट तो आओ।"



"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्या पता तुम्हारे हाथ में विषभरा प्याला ही हो।"

"क्या मीराबाई को विष पिलाने-वाला मैं ही था ?"

"मैं नहीं कहता।"

"मंसूर को मैंने तो नहीं मारा था।"

"क्या पता?"

'तुम मेरे साथ दस्तपंजा तो मिलाओ।'

"मगर अंधेरे में तो....?"

"अंधेरे में, तो बड़े-बड़े सौदे हो रहे हैं...।"

"देशों की किस्मतें बन-बिगड़ रही हैं...।"

"मैं, मगर मैं केवल अपनी ही सुरक्षा चाहता हूं...।"

"यदि लोग अपनी सुरक्षा के लिए ही काम करेंगे, तो...देश?"

मैं अपने बायें हाथ को दाहिने हाथ के पास ले गया। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ एक-दूसरे का आलिंगन किया। अभी तक उनका आपसी विश्वास विखंडित नहीं हुआ था।

'अगर अंधेरा इसी तरह रहा!' मुझे ख्याल आया, 'फिर तो...?'

उस समय मैंने चाहा कि मेरे दोनों ही हाथ एक-दूसरे से सटे रहें, मगर वे दोनों अलग-अलग जेबों में चले गये।

उस समय फिर मुझे उस रोशनी-वाले व्यक्ति का ख्याल आया, जो कि इस घने अंधेरे में बड़े साहस तथा दिलेरी से रोशनी लिए जा रहा था। मगर मेरे प्रश्न करने से उसे क्या हो गया?

'वह कोई राजनीतिज्ञ नहीं हो सकता।' मैंने सोचा—'ये लोग तो शहर में अंधेरा फैलाकर प्रसन्न हैं। जैसे प्रकाश में इनके चेहरे बेनकाब हो जाते हों, ये चेहरे बेनकाब होकर, बदशक्ल क्यों हो जाते हैं?'

'वह कोई सरकारी अफसर भी तो हो सकता है।' मैंने फिर सोचा—'सरकारी अफसर लोगों की सेवा के लिए ही तो हैं।'

उस वक्त पता नहीं किसने मेरे कानों में कहा, "मगर इस अंधेरे में तो सरकारी अफसर कहीं नजर ही नहीं आये।"

"वे घरों में भी तो नहीं बैठे हुए।"

"फिर वे नाचघरों या क्लबों में होंगे।"

"क्या वहां रौशनी है?"

"वहां रोशनी की क्या जरूरत है?"

"क्या रोशनी के बगैर लोग...?"

"वहां केवल शरीर को ही अनुभव किया जाता है।"

"मगर कुछ नजर ही न आये तो?"

"इससे बड़ा वरदान क्या हो सकता है?"

"मगर देखो न!"

मैंने अंधेरे में स्वयं को बिलकुल ही बलहीन महसूस किया।

सोच-सोचकर मैं इतना परेशान हुआ कि मेरी नींद ही हराम हो गयी। मैंने विश्वभर के लोगों को कल्पना में अपनी आंखों के सामने देखा, पर उनमें वह रोशनीवाला व्यक्ति कहीं नहीं था।

फिर अचानक ही मुझे ख्याल आया कि कहीं वह लेखक ही न हो। आजकल यही लोग हाथ में रोशनी लेकर अंधेरे व तूफानों में खड़े हो सकने का साहस करते

हैं। जैसे कि उन्हें और कोई काम ही न हो। यदि पूछो—

"भई जीवन के चार दिन मिले हैं, सुख-आराम से गुजार लो।"

तो कहते हैं—

'जब तक पृथ्वी पर एक भी व्यक्ति दुःखी और गमगीन है, हम सुख से नहीं सो सकते।"

अब कोई उनकी इस भावना के बारे में क्या कहे...? पता नहीं उनकी दृष्टि लोगों के दुःख-चिंता पर ही क्यों केंद्रित होकर रह गयी है ?

फिर जब एक दिन वही रोशनीवाला व्यक्ति मुझे नजर आया, तब मैं उसके सामने विनम्र भाव से खड़ा हो गया। उस समय उसके हाथ में तो रोशनी नहीं थी, परंतु उसके भीतर एक ज्योति जलती हुई प्रतीत होती थी, जिससे उसके इर्द-गिर्द प्रकाश का एक गुब्बारा-सा फैला हुआ था।

इस तरह की ज्योति मुझे और किसी के भी भीतर नजर नहीं आयी। हां, ऋषियों-मुनियों तथा गुरु-अवतारों की बात और है।

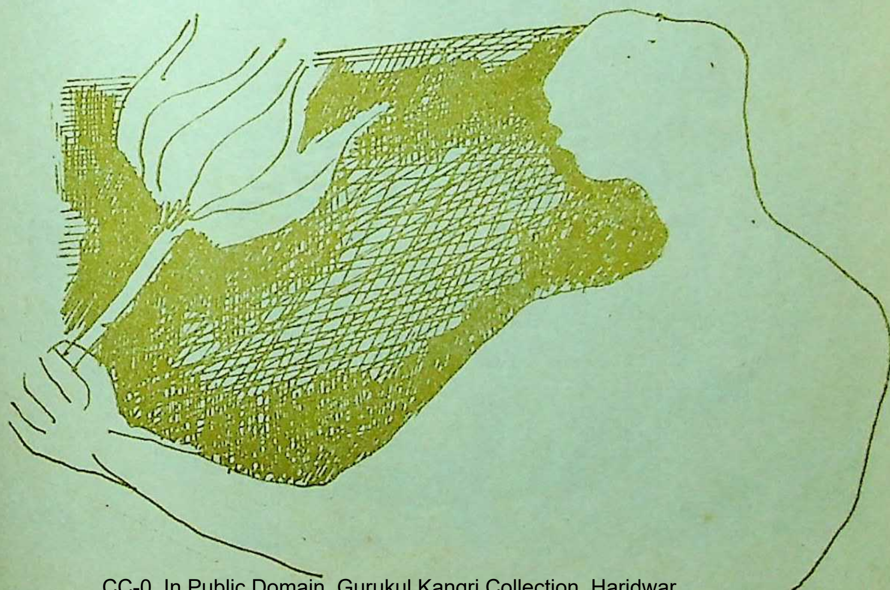
"आप कौन हैं ?" मैंने पूरी तरह विनम्र-भाव से पूछा। मगर उसने अपना अता-पता बताने की बजाय मुझसे ही प्रश्न किया—

"पहले बताओ तुम कौन हो ?"

"जी, मैं एक पाठक हूं।"

"फिर तुम्हें मेरा नहीं पता ?"

"जी, आप मुझे लेखक लगते हो।"



मैंने कहा।

"कैसे पहचाना ?"

"आपकी रोशनी से ।"

लेखक चुप रहा। लेखक ही था वह।

मैंने फिर पूछा, "आपके हाथ की रोशनी कहां गयी ?"

"वह तो उसी दिन बुझ गयी थी।"

"क्यों ?"

"तुमने पूछा जो था कि वह कहां से आयी है ?"

"और आप परेशान हो गये ?"

"मैं परीक्षा लेना चाहता था।"

"अपनी रोशनी बुझाकर ?"

"मगर आपकी पहचान तो आपकी रोशनी से ही हो सकती थी . . .।"

"तब क्या, अब तुम. . . मुझे ?"

"अंधेरे में कौन किसी को पहचानता है ?"

"तो क्या. . .तुम भी. . .?"

"मेरा क्या है. . .आम लोग तो. . .।"

"मगर रोशनी मैंने ही बुझा दी !"

उस वक्त मुझे लगा, जैसे कि उसके भीतर का प्रकाश भी क्षीण होता जा रहा हो . . .,

'अगर मैं उसके मन में पश्चाताप का भाव न पैदा करता. . .', मुझे ख्याल आया।

उस समय अंधेरे में मैंने स्वयं को बिलकुल ही शक्तिहीन महसूस किया. . . और किसी क्षण भी मेरा चीर-हरण हो सकता था।

--१४०, सुखजीत नगर, कपूरथला

ज्ञान-गंगा

लज्ज्यते च सुहृद् येन, भिद्यते दुर्मना भवेत्।
वक्तव्यं न तथा किंचिद, विनोदेऽपि च धीमता॥

—बुद्धिमान को विनोद में भी वैसा कुछ नहीं कहना चाहिए, जिससे मित्र को लज्जित होना पड़े तथा वह दुःखी होकर मित्र से अलग हो जाए।

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमोरिपुः॥

—शोक धैर्य को नष्ट कर देता है, शोक पढ़ी-लिखी विद्या को नष्ट कर देता है, शोक सब कुछ नष्ट कर देता है। शोक के समान दूसरा शत्रु नहीं है।

वेश्या तथाविधा वापि वशीकर्तुं नरं क्षमा
नेपात्कस्य वशं तद्वत्स्वाधीनं कारयेज्जगत्।

—जिस प्रकार वेश्या प्रियवादिनी हो कर भी किसी के वशीभूत नहीं होती बल्कि अन्य पुरुषों को अपने वश कर लेने में समर्थ होती है। उसी प्रकार स्वयं किसी के भी वशीभूत न होकर दूसरों को अपने वश में करना चाहिए।

आशिक्षितनयः सिंहो हंतीभ केवलं बलात्।
तच्च धीरो नरस्तेषां शतानि मतिमाञ्ज-येत्॥

—सिंह नीति को नहीं सीखता वह केवल बल से ही जीवों का नाश करता है, परंतु शिक्षित वीर पुरुष अपनी नीति से सैकड़ों सिंहों को मार देता है।

प्रस्तोता : महर्षिकुमार पांडेय

कई दिन से मन पर भारी बोझ-जैसा महसूस कर रहा था। ऐसा बोझ जो अतल निष्क्रियता में ले जाकर प्राणावेग को डुबा देता है। दिलचस्प लगने वाली कुछ किताबें भी पढ़ीं, जीवन क्रम में परिवर्तन किये, कुछ दिन सारे नियम-पाबंदियां त्यागकर जीवन को बेलगाम घोड़ी की तरह छोड़ भी दिया . . . कि जाये वहां जहां जाना चाहे, किंतु मन की ऊब मिटी नहीं। बोझ भारी ही होता गया।

गरमी तेज पड़ रही थी। शहरों से लोग भाग-भाग कर ठंडी जगहों पर जा चुके थे। महाबलेश्वर में भी काफी भीड़ थी। बड़ी मुश्किल से एक होटल में जगह मिली। परितोष यही था कि स्थान सुखद था।

सवेरे-शाम नियमित घूमने का कार्य-क्रम शुरू हो गया। महाबलेश्वर में प्रकृति अभी तक अविकल वनदेवी है, दर्जनों नदियां पर्वतों से निकलकर मैदानों में दौड़ती-भागती नजर आती हैं। मर्यादा की

महर्षि रमण-शताब्दी पर पुष्पांजलि :

आंख-मिचौनी खत्म नहीं हुई . . .

● रतनलाल जोशी

परिवर्तन की सलाह

उपचार शुरू हुआ, पथ्य की व्यवस्था हुई, किंतु स्वस्थ काया की अनुभूति निकट आने के बजाय दूर ही हटती गयी। कुछ दिनों बाद शाम को टेंपरेचर भी रहने लगा। डाक्टर मित्र थे, मेरी प्रकृति से परिचित थे। उन्होंने जलवायु परिवर्तन की सलाह दी। घरवाले भी चिंतित थे। यह सलाह तत्काल ही सबको मान्य हो गयी और मैं महाबलेश्वर के लिए रवाना हो गया। साथ में मेरे एक मित्र प्रमोद चंद्र सेठ और मेरा प्रिय नौकर जतन।

मई मास का दूसरा सप्ताह था।

उनकी अपनी निजी परिभाषा है। इन्हीं स्वच्छंद नदियों में से पांच के जल से भगवान महाबलेश्वर का अभिषेक होता है। मंदिर में ही इन पांच नदियों के स्रोत फूटते दिखायी देते हैं। बारहों मास उनमें जल-स्फुरण रहता है।

एक-दो दिन में ही महाबलेश्वर का वातावरण मन को भाने लगा। पर्यटन की रुचि जागी। लंबे-लंबे फासले पर घूमने निकलने लगा। एक रोज जल्दी सवेरे ही कौवों का ही अवलंब ले, मैं चल दिया एक पतली-सी पगडंडी मिल गयी



विचार की मुद्रा में महर्षि रमण

थी। करीब आधा घंटा चलने पर देखा कि एक चट्टान पर कोई बैठा है। मेरी जान में जान आयी।

उस लंगोटधारी से बात...

उस विशाल शिला के पास पहुंचकर मैंने उस व्यक्ति को अपनी ओर मुखातिब किया। वह काफी बूढ़ा था और अपने में ही डूबा निर्द्वंद्व बैठा था। शरीर पर उसके सिर्फ एक लंगोटी थी। बाल बिलकुल सफेद थे जो उसकी सुदृढ़ गरदन को ढके हुए हवा में उड़ रहे थे। रंग उसका बिलकुल काला था। हाथ में उसके एक बड़ी कुल्हाड़ी थी। पास में एक खरगोश सोया पड़ा था। शायद वह पालतू था।

मुझे सम्मुख देखा तो उसने कुल्हाड़ी उठायी और मेरी तरफ दौड़ा। मैंने उसे मराठी में समझाया, कि मैं रास्ता भूल गया हूं और उसे हानि पहुंचाने नहीं आया हूं। मगर जैसे उसने, कुछ सुना ही नहीं। वह मेरे और नजदीक आ गया। मैंने झपटकर उसका दायां हाथ दोनों हाथों से पकड़ लिया कि कहीं वह कुल्हाड़ी से मेरा सिर न छील दे। उसने कुल्हाड़ी छोड़ दी और बड़े जोर से हंसा। मैंने उसे फिर अपनी परेशानी बतलायी, किंतु उसने गरदन हिलाते हुए मुझे बताया कि वह मेरी भाषा नहीं समझ रहा अथवा बहरा है।



महर्षि रमण से प्रभावित सैंडलर

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा था। क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसने कुल्हाड़ी उठायी और एक तरफ को चल दिया। मेरे सामने कोई चारा नहीं था। मैं भी उसीके पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी देर चलने के बाद मैं रुका। वह मेरी ओर कई प्रकार के संकेत करते हुए मुझे वापस लौटने को कहने लगा। उसकी भाषा बड़ी अजीब थी। मैंने कभी सुनी नहीं थी। जवाब में मैंने भी उसे इशारों से जताया कि मैं वापस नहीं जा सकता, तुम्हारे ही साथ चलूंगा। मगर न जाने वह क्या समझा कि लंबे-लंबे डग भरता हुआ तेजी से भागा। थकान से मैं तो इतना लुंज हो गया था कि आगे बढ़ने को पैर ही नहीं उठरहे थे। मैं वहीं बैठ गया। करीब चार-पांच मिनट ही वहां बैठा हूंगा कि वह बूढ़ा फिर आया। मेरा हाथ पकड़कर उसने मुझे उठाया और एक बड़ी चट्टान की तरफ ले गया। चट्टान के अंदर से एक बुढ़िया निकली और मुझे देखकर उस बूढ़े को कुछ आवेश में कहने लगी। वह बूढ़ा भी जबाब में बोला। उसके स्वर से प्रतिध्वनित होता था कि वह मुझे वहां ले आने की अपनी सफाई दे रहा था।

खरगोश को वहीं रखकर, वह बूढ़ा मुझे साथ लेकर आगे चला। करीब आधा घंटा चलने के बाद हम लोग एक फूस की झोपड़ी में पहुंचे। झोंपड़ी में लालटेन का प्रकाश था। उसके बाहर दो कुत्ते बंधे हुए थे। हमें देखते ही कुत्तों ने भोंकना शुरू कर दिया। हम झोंपड़ी के पास चलते गये। कुत्तों को भौंकता देख झोंपड़ी में से एक लंबा-चौड़ा व्यक्ति बाहर निकला। उसके बायें हाथ में लालटेन थी और दायें में एक पुस्तक, जिसे शायद वह भीतर बैठा-बैठा पढ़ रहा था।

मन उसके वशीभूत

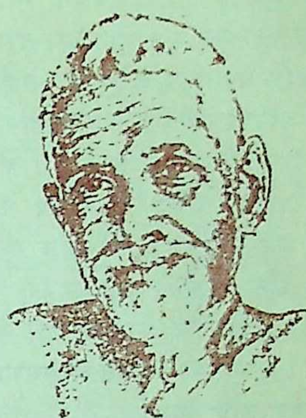
मुझे देखते ही वह चौंका और वहीं खड़ा हो गया। मगर मेरा वह बूढ़ा साथी नहीं रुका। सीधा उसके सामने जाकर खड़ा हो गया और अपनी भाषा में मेरा वृतांत उससे कहने लगा। मैंने देखा कि वह व्यक्ति बेहद गोरा है, हृष्ट-पुष्ट है और शरीर-विन्यास में यूरोपियन लगता है। मैंने उस पुस्तक का नाम भी पढ़ लिया, जो उसके दायें हाथ में थी। पुस्तक का नाम था—'महायोग' (अंग्रेजी में)। मैं चौंका, प्रसन्नता भी हुई, आश्चर्य कम नहीं। एक

बारगी ही मन के प्रवाह में कई भंवर आये, और विलीन हो गये।

मैंने उन महाशय को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। वे मुसकराये। बड़ी मीठी, आश्वासनप्रद मुसकान थी वह। बाहु में समेट कर फिर वे मुझे झोपड़ी के अंदर ले गये। दो तख्ते बिछे थे, और छह बिना हत्ते की कुरसियां यत्र-तत्र बिखरी हुई थी। मैं एक कुरसी पर जाकर बैठ गया। उन्होंने कहा—"नहीं, ठहरो, बिस्तर बिछाता हूं। उस तख्ते पर विश्राम करना।"

बिस्तर बिछाकर, उन्होंने तकिया लगा दिया। मैं लेट गया। वे बाहर गये। बढ़े से कुछ कहा, और चूल्हा सुलगाने लगे। दस-पंद्रह मिनट में ही बूढ़ा दो आदमियों को लेकर आ गया। एक के हाथ में तुंबी थी और दूसरे के हाथों में आम की एक डाली। तुंबी से दूध उंडेल उन पश्चिमीय सज्जन ने उसे गरम किया और फिर गरम पानी से मेरे हाथ-पैर धुलवाये और स्नेहपूरित बड़ी मनुहारों के साथ आम खिलाये। बेहद मीठे आम थे। छोटे-छोटे जंगली आम, जो पेड़ पर ही पक गये थे। पूरा एक कटोरा दूध पिलाने के बाद उन्होंने मुझे सो जाने को कहा। मैं मौन यंत्रवत् सब करता गया।

तंद्रिल आंखों से ही मैंने देखा कि वे महाशय आंखें बंद किये मन ही मन कुछ जाप कर रहे हैं। होंठ भी उनके नहीं हिलते थे। प्रस्तर-प्रतिमा की भांति वे ध्यानस्थ बैठे थे। शिवतिलक जैसी तीन विस्तीर्ण



महर्षि रमण

चर्मरेखाओं से अंकित उनके भाल पर पड़ रही लालटेन की रोशनी, मानो कह रही थी— 'तपस्या के आलोक से मंडित इस भाल को नमस्कार करने के लिए ही मैं खड़ी हूं, अन्यथा मेरी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। कहां वह अविनाशी आलोक और कहां मैं नश्वर बाती।'

इसी भावमुग्ध अवस्था में मुझे नींद आ गयी, गहरी बेहोशी की-सी नींद। सवेरे जब आंख खुली, तब सूरज निकल आया था। चारों तरफ रोशनी बिखरी हुई थी। वे यूरोपियन महाशय मेरे सिरहाने बैठे हुए कुछ गुनगुना रहे थे। मुझे जागता देख, वे कुछ और स्पष्ट स्वर में गुनगुनाने लगे। मेरी जड़ता को एक आघात-जैसा लगा। मैं आत्मग्लानि में उठ बैठा। मगर उन्होंने मुझे वापस लिटा दिया। चिंता के स्वर में बोले, "आपको तेज बुखार है, अभी उठिए नहीं। आप रात भर अनर्गल

बड़बड़ाते रहे हैं, बड़ी बेचैनी थी। आप काफी थक गये थे। आप बार-बार अचेत हो जाते थे। आप लेटे रहिए, कहीं सन्निपात आपको दबोच न ले। भगवान के यहां रट लगा रखी है। वे करुणा के सागर हैं। आपको शीघ्र ही स्वस्थ करेंगे।" फिर मुझे सुलाकर वे मेरी ओर मुसकराये और ओंठों पर फैली उसी मुसकान के बीच उनका मंत्रोच्चार सारी झोपड़ी में गूंजने लगा। ओम् नमो भगवते श्री रमणाय...

अव्यक्त छवि व्यक्त

मेरी पलकें वजनी होती जा रही थीं। उजाले-अंधेरे की इस आंख-मिचौनी में मैंने देखा कि झोपड़ी में आ रही सूरज की स्निग्ध किरणों में भगवान रमण की मूर्ति स्पष्ट झलक रही है। हमारे चारों तरफ बीसियों प्रतिमाएं अपने आलोक में उभर रही हैं, मानो प्रत्येक मंत्रोच्चार से स्मृति में अंकित सारी अव्यक्त छवियां बाहर निकलकर व्यक्त हो रही हैं। आलौकिक दृश्य था।

अनायास हिमालय मिला

उनके मुंह से अनायास ही शब्द प्रवाहित हो रहे थे। और वैसे ही नेत्रों से पानी की बूंदें। मेरा सिर और कंधा तरबतर हो गये। उस गंगा प्रवाह की आज भी जब याद आती है, तब अपने भाग्य को सराहने लगता हूं। जनम-जनम के कल्मश धुल गये थे मेरे, अनायास ही मिल गया था वह हिमालय उस दिन, और आज है कि खोज-खोजकर प्राण क्षीण हो गये हैं, कहीं एक झलक तक नहीं मिल रही है। आत्मा के इस प्रेम द्वैत के बाद, सरिता में जल-स्रोत की एकरूपता के पश्चात उनके परिचय की बात मैं तो भूल ही गया था। आखिर चाय पीते वक्त उन्होंने स्वयं ही पूछा, "क्या मुझे अपना परिचय नहीं दोगे?"

मैंने अपने बारे में, उन्हें संक्षेप में बता दिया। वे अपने स्वाभाविक सौजन्य के साथ सुनते रहे। मेरी अस्वस्थता से वह विचलित भी हुए। उन्होंने आश्वासन दिया, "अब आप स्वस्थ हो जाएंगे। आप की चिकित्सा बड़े प्रवीण वैद्य के हाथ में है। इधर आने का निर्णय, आपने अच्छा लिया।"

फिर मेरी उत्सुकता को शांत करते हुए उन्होंने अपने बारे में बताया, "मैं पोलैंड का निवासी हूं। मेरा नाम ओर्नाल्ड सेंडरलिंग है। २१ मई, १६३५ को अपने घर से सदैव के लिए निकल पड़ा था। एकांत में शांति से मरने के लिए। मुझे आंत की मेलिग्नैंसी बतायी गयी थी। और मेरे डॉक्टर ने मुझे मरने की तैयारी के लिए आठ महीने की अवधि दी थी, और सारे उपचार बंद करके, मैं साहस के साथ मृत्यु का सामना करने निकल पड़ा। मेरी सबसे बड़ी इच्छा थी कि मरने से पहले रमण महर्षि के दर्शन करूं और उनसे जन्म एवं मृत्यु के विषय में पूछूं। मृत्यु से मैं बहुत भयभीत रहता था। मैं मृत्यु के बारे में सब कुछ

जान लेना चाहता था, मरण क्या है ?

मैं यहीं आऊंगा

"मैं बंबई उतरा और एक मित्र के साथ महाबलेश्वर आ गया । मेरा स्वास्थ्य इस बीच और भी खराब हो गया था । मित्रों के परामर्श के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए महाबलेश्वर ही मुझे सबसे नजदीक लगा । मैं यहां आ गया और प्रतीक्षा करने लगा--कब थोड़ी सामर्थ्य आये कि अरुणाचल (रमण श्रम) की ओर चल पड़ूं।

एक दिन ऐसी ही दुर्बल एवं क्षीण प्राण अवस्था में होटल से बाहर निकला और महाबलेश्वर के मंदिर में चला गया। वहां एक कोने में दीवार के सहारे खड़ा-खड़ा देखता रहा । बड़ी मुश्किल से अपने को संभाले खड़ा था मैं। थकान और कमजोरी से आंखें मुंद-मुंद जाती थीं। किंतु पंचनद के जल से निरंतर अभिषिक्त भगवान शिव के दर्शन से आंखें ऐसी कृतार्थता प्राप्त कर रही थीं कि झपकने की सुध ही भूल गयी थी । सहसा मैंने क्या देखा कि शिवलिंग के स्थान पर स्वयं भगवान रमण खड़े हैं । मैंने आंखें मल-मलकर देखा... । हां, वे रमण महर्षि ही थे, जिनके दर्शन के लिए मैं पोलैंड से चला था। मैंने देखा कि हाथ फैलाकर वह मुझे अभय दे रहे हैं। और आंखों ने जो पाया वह कानों को भी तत्काल ही सुलभ हुआ। उन्होंने मधुलिप्त कंठ से कहा, "यहीं रहो। मैं तुम्हारे लिए यहीं आ जाया करूंगा ।"

साक्षात्कार इन दुखियों के साथ

दो रोज तक मैं सैंडरलिंग के साथ रहा । फिर बुखार उतरते ही मैं महाबलेश्वर के अपने होटल में चला गया। बीस रोज में मेरा शरीर आशातीत रूप से शक्ति स्फूर्त हो गया । इस बीच में एक बार सैंडरलिंग के यहां फिर गया था। उस दिन वे आदिवासियों को दवाएं बांट रहे थे। संयोगतः यह मई महीने का २१वां दिन था, सैंडरलिंग के शब्दों में उनके 'महाभिनिष्क्रमण' का दिन। प्रसन्नवदन कहने लगे, "आज इक्कीस मई, १९५५ है, मुझे घर छोड़े पूरे बीस बरस हो गये हैं। यह मेरा ७५वां जन्म दिन भी है। लेकिन अब तो मैंने इन आदिवासियों की सेवा में अपने को समर्पित कर दिया है। हां, हर बरस भगवान के दर्शन करने रमणाश्रम जरूर जाता हूं और जीवन की संपूर्ण सार्थकता लेकर लौट आता हूं। "

इसके पश्चात १९५७ में जब मैं सैंडरलिंग को ढूंढ़ने गया, तब वे मुझे नहीं मिले, मगर छह-सात महीने बाद वे बंबई में मेरे घर स्वयं आये और अपनी किताबें छपवाने के लिए पोलैंड चले गये। दो किताबें महर्षि रमण पर थीं, जो जरमन भाषा में छपी हैं। मगर वे भारत में अज्ञात-जीवन बिताने फिर वापस लौटे।

लेकिन सारी मोह-माया को विच्छिन्न कर अज्ञात जीवन व्यतीत करनेवाले सैंडरलिंग को मेरे मोह ने एक दिन सताया और एक रात को वे मेरे घर चले आये, मगर मैं महर्षि रमण के आश्रम अरुणाचलम् गया हुआ था । मैं घर लौटा और वे वहां पहुंचे । हम दोनों नहीं मिल सके। मगर आंख-मिचौनी खत्म नहीं हुई है। मन बार-बार कहता है कि भवसागर में भटक गये दो पिंड, ब्रह्मांड बनकर ही सही एक दिन मिलेगें अवश्य।

--१२, फिरोजगांधी मार्ग, लाजपतनगर,
नयी दिल्ली-११००२४

चुटकियां

तलाक के लिए बहस चल रही थी। पत्नी ने शिकायत की, "हम दोनों एक वर्ष तक बहुत मजे में रहे, फिर साल बाद ही हमारे बीच एक नया प्राणी आ गया।"

जज, "लड़का या लड़की।"

पत्नी, "लड़की और वह भी पड़ोस-वालों की और इन्होंने उसके साथ रहना शुरू कर दिया।"

★

एक मित्र ने दूसरे से पूछा, "यदि मैं तुम्हें सौ रुपये दूं तो तुम क्या करोगे ?"

दूसरा बोला, "यदि तुम दोगे तो सबसे पहले तो मैं रुपये गिनूंगा। तुम्हारा विश्वास नहीं किया जा सकता।"



एक व्यक्ति ने अपने मित्र को लिखा—"मित्र, मैं आजन्म कुंआरा हूं। प्रेम किया तो भी निराशा ही हाथ लगी। अब अकेला-पन इस तरह काटने लगा है कि क्या कहूं। जी चाहता है, आत्महत्या कर लूं।"

मित्र ने उसे लौटती डाक से जवाब दिया, "आत्महत्या करने का सबसे सरल उपाय यही है कि तुम शीघ्र ही शादी कर लो।"

★

मालती की सास ने आते ही उसके आगे चाबियों का गुच्छा पटक दिया और चिल्लाकर बोली, "इतनी उमर हो गयी तुम्हें इस घर में रहते हुए, पर अभी तक तुम्हें मुझ पर कौड़ी भर का विश्वास नहीं।"

मालती बोली, "कैसी बात करती हैं, मांजी। तिजोरी की चाबियां तक तो आपको सौंप रखी हैं।"

सास चिल्ला उठी, "हां-हां सौंप रखी हैं, लेकिन इनमें से किसी भी चाबी से तिजोरी नहीं खुलती।"

★

वह अपनी प्रेमिका के साथ बैठा बात कर रहा था। तभी प्रेमिका का छोटा भाई वहां आया और एक कोने में बैठ गया। वह डांटकर बोली, "जा भाग। मां तुझे बुला रही हैं।"

छोटा भाई बोल उठा, "मां ने कहा है, जब तक यह बदमाश न चला जाए तब तक तुम वहीं बैठना।"

कादम्बिनी

किस्से खोजा फकीर के

(१४)

एक बार की बात है। खोजा फकीर के शिष्यों ने उससे पूछा, "कुछ लोग आपके बारे में गलत ढंग की बातें करते हैं। आपको भला-बुरा कहते हैं। आप इन बातों का जवाब क्यों नहीं देते? आप भी तो उनकी बुराइयां बता सकते हैं।"

खोजा फकीर हंस पड़ा। बोला, "एक बार हयात के बेटे अनवर ने भी अपने पिता से यही बात कही थी। तब हयात ने उससे कहा था, 'बेटा, मैं अपने स्वार्थ के कारण दूसरों की बुराई नहीं करता। यों किसी की बुराई का पर्दाफाश करना सबके लिए फायदेमंद होता है। पर एक बात है, घमंड को जीतनेवाला ही दूसरों की गलती निकाले तो बेहतर होता है। नहीं तो दूसरों की बुराई ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आदमी घमंडी बनता जाता है और जानते हो पाप की जड़ घमंड में ही होती है, इसीलिए मैं दूसरों की बुराई नहीं करता।"

किस्सा सुनाकर खोजा फकीर ने अपने शिष्यों से पूछा, "तुम लोगों को अपने सवाल का जवाब मिला?"

शिष्य केवल मुसकरा उठे।

वे कवि सम्मेलन से लौटे, तो मुंह के आगे रूमाल रखा हुआ था। पत्नी ने उन्हें गौर से देखते हुए कहा, "क्या हुआ मुंह रूमाल में क्यों छुपा रखा है?"

कवि महोदय बोले, "क... कुछ नहीं क... क... कुछ नहीं, यह ... दो दांत तो मुझे यों ही उखड़वाने थे।"

★

वे मेज पर बैठे खाना खा रहे थे। बस्स् करने लगे, तो मांजी ने जबरदस्ती और रोटी दे दी। मेहमान ने कहा, "मैं दो रोटियों से ज्यादा नहीं खा सकता मांजी।"

तभी पास ही बैठी छोटी लड़की बोल उठी, "लेकिन अंकल, आप तो छह रोटियां पहले ही खा चुके हैं।"

★

हा हा!!

संसार के हर कोने में तलाक बढ़ते चले जा रहे हैं—ऐसा क्यों। इसके मूलभूत कारणों की खोजबीन करने के लिए एक समिति बनायी गयी। कुछेक दिनों में प्रायः प्रत्येक ने तलाक का मुख्य कारण एक ही बताया था शादी!

दिल्ली का शहर कोतवाल एक हिजड़ा

• बाला दुबे

प्रकृति का अभिशाप माने जाने-वाले ये अपूर्ण जीव सैकड़ों वर्ष पहले रोम, ग्रीस, टर्की और फारस की राजनीति पर भरे बादलों की भांति छाये रहे। टर्की में 'श्वेत-वर्ण' हिजड़ों को 'कापू अगासी' कहा जाता था और 'श्याम-वर्ण' हिजड़ों को 'किज़लर अगासी।' शाही हरम में परम सुंदरियों के इंद्र के अखाड़े में यह सहज भाव से विचरण करते, उनकी अठखेलियां देखते और फिर हरम से उपजे राजनीति के अंकुर को संवारते, विगाड़ते। धीरे-धीरे यह राजनीति की शतरज के कुशल खिलाड़ी बन गये और फिर जब तलवार संभाली, तब विकराल भैरव की भांति युद्ध-स्थल में रक्त की होली खेले।

तुर्कों और ईरानी संस्कृति के परंपरा चिह्न--ये हिजड़े भारत में भी रखे जाने लगे। इनके पराक्रम, दृढ़-संकल्प और दूरदर्शिता की कहानियां निःसंदेह रोचक हैं--कितनी कौतूहल भरी। ये प्रतापी हिजड़े वो नहीं थे, जो हम अकसर गले में ढोलक लटकाये, चटाक्-चटाक् तालियां बजाते हुए कनसुरे स्वर में घटिया गीत गाते फिरते देखते हैं। ये वे हैं, जिन्होंने तलवार से राज्यों को तराशा है, अभि-मानी राजाओं से घुटने टिकवाये और दुष्ट राजाओं को आंख के इशारे से कत्ल भी करवाया।

हिजड़े ने शादी करवायी

रैहान हिजड़ा पहले हिंदू था, फिर मुसलमान बना था। तेरहवीं शताब्दी की दिल्ली महरौली के आस-पास फैली हुई थी। बादशाह नासिरुद्दीन महमूद का वीर श्वसुर बलबन पांच हजार घुड़सवार और बीस हजार पैदल योद्धा लेकर चंदेरी और नारवार पर टूटा था। कितना कुछ लूटकर वह २४ अप्रैल १२५२ को दिल्ली आया था। बलबन का नाम चारों ओर फैल रहा था। तभी दरबार में रैहान हिजड़े के मन में ईर्ष्या का काला सांप फन उठाकर तैयार हो गया। उसी ने दरबार के 'चालीस अमीरों' के कान भरे और बादशाह का तो वो मुंहलगा था ही। रैहान ने पहली चाल चली। बलबन को हांसी की जागीर दिलवायी। उसे उम्मीद थी कि बलवन बिलबिलाकर विद्रोह कर बैठेगा और फिर रैहान बादशाह से उसे कुचलवा देगा। पर बलबन शाह बच गया।

उसने चुपचाप बादशाह का हुक्म मान लिया। रैहान ने दूसरा पैंतरा बदला। हांसी की जागीर से हटवाकर उसे और भी घटिया जागीर दिलवाई—नागौर। बलबन फिर मुसकराकर कड़वा घूंट पी गया।

रैहान अब दिल्ली दरबार पर छा गया। यहां तक कि वह तुर्की अमीरों का भी सरेआम निरादर करने लगा। बिलकुल नहुष-जैसा बन गया रैहान। मिनहाजुद्दीन लिखता है कि रैहान के गुंडों की डर की वजह से, वह नमाज पढ़ने मस्जिद तक जाने में डरता था। और फिर सब अमीर एक हो गये। जिस बलबन के खिलाफ वह रैहान की डफली के साथ एक सुर में राग अलापने लगे थे अब सब अपनी-अपनी डफली बजाने लगे। बलबन को दिल्ली आने का संदेशा भिजवाया। नागौर से बलबन, भटिंडा से अरसलान खां संजर, सुनाम से बटखां ऐबक और लाहौर से जलालुद्दीन और सुनकार अपनी-अपनी सेना लेकर चल पड़े। इधर बादशाह और रैहान उनका स्वागत करने चल पड़े। ५ दिसंबर १२५२ को बादशाह की सेना तितर-बितर हो गयी। बटखां ऐबक बादशाह से मिलने आया, तो रैहान ने उसकी हत्या का षडयंत्र रचा। पर बटखां का भाग्य अच्छा था—बच गया। तभी हुक्म हुआ कि रैहान को दिल्ली दरबार से बरखास्त किया जाता है।

युद्ध की शतरंज के पिटे हुए मोहरे रैहान को, दिल्ली से दूर बदायूं की जागीर देकर विदा कर दिया गया। घायल सिंह की भांति रैहान और भी खूंख्वार हो गया। जो बादशाह कभी मित्र था, वह शत्रु बन गया था। रैहान ने एक और ढाईघरी चाल चली। उसने न जाने कैसे बादशाह की अधेड़ मां की शादी बयाना के सूबेदार कुतलुग खां से करवा दी। बादशाह ये सुनकर बौखला गया और उसने तुरंत ही अपनी मां और 'नये बाप' कुतलुग खां को बयाने से हटाकर अवध भिजवा दिया। पर फिर एक और गलती भी कर बैठा बादशाह नासिरुद्दीन महमूद। उसने रैहान को भी बदायूं से हटाकर बहराइच की घटिया जागीर दे डाली। अब कुतलुग खां और रैहान नजदीकी पड़ौसी बन गये, इस खतरे को बादशाह ने देर में समझा। उसने रैहान को बहराइच से हटाने को संजर चस्त को भेजा। रैहान

हिजड़े—जो अब पौरुषहीनता के प्रतीक मान लिये गये हैं, कभी युद्ध के मैदानों में विजयी सेनाओं का नेतृत्व भी करते रहे हैं। मलिक काफूर एक ऐसा ही 'पौरुषहीन' सेनापति था, जिसने दक्षिण में अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं का सफल नेतृत्व किया। हिजड़े अनेक नामों से जाने जाते हैं—जैसे 'जनखा' और खोजा। कभी उन्हें 'जन्नत की चिड़िया' भी कहा जाता था।

की तलवार बिजली की तरह चमकी थी युद्ध क्षत्र में। पर आखिर शाही सेना से वह पराजित हुआ और संजर चस्त ने उसका सर धड़ से अलग कर ही डाला।

अजेय हिजड़ा योद्धा

अलाउद्दीन खिलजी यह खबर सुनकर चौंका था कि अलीबेग के नेतृत्व में मंगोल दरिंदों का टिड्डीदल हिंदुस्तान में अमरोहे तक घुस आया है। मंगोल-बाढ़ को बांधने के लिए उसने अपने विश्वस्त हिजड़े 'हजार दीनारी' मलिक काफूर को भेजा था। मलिक काफूर ने मंगोलों को गाजर मूली की तरह काट डाला था। अलीबेग के साथ वह आठ हजार मंगोल दरिंदों को भी पकड़कर लाया था। अलाउद्दीन ने खुला दरबार किया था अलीबेग और उसके सहायकों को हाथी के पांव तले रुंदवाया। आठ हजार मंगोल कैदियों के सर कटवाकर उसने सीरी के किले की दीवार पर चुनवाये थे। मलिक काफूर को अपना निजी सहायक बनाया और नया खिताब दिया—मलिक नायब। फिर देवगिरि के राजा रामचंद्र से कर वसूल करने मलिक काफूर ही गया था। सन १३०६–७ का दौर याद रहेगा। मलिक काफूर ही राजा करन की रानी कमला देवी की सुंदर पुत्री देवल देवी को छुड़ाकर दिल्ली लाया था। रास्ते में हर पड़ाव पर मलिक काफूर ने कितना सजीव नाटक किया था। पुरुष के प्रेम का। काफूर और देवल देवी की प्रेम-लीला का वर्णन अमीर खुसरो ने अपनी कविता में किया है। जब १३०७ में मलिक काफूर ने देवल देवी को सौंपा—अलाउद्दीन के बड़े पुत्र खिज्र खां को, तब देवल देवी का मन कितना गंगा-जमुनी हुआ। कितनी ग्लानि हुई उसे। जिसे वह अपने प्रणय मंदिर की अनुराग मूर्ति समझती रही, वो केवल एक असहाय नपुंसक था—जैसे किसी जीती-जागती लाश में पुरुष की छाया समा गयी हो।

सन १३०८ में अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को दक्षिण विजय पर भेजा। इस दिल्ली के हिजड़े ने राजा प्रतापरुद्र देव द्वितीय को परास्त किया और जब लौटकर तीन सौ हाथी, सात हजार घोड़े और अनगिनित अशर्फियां और जवाहिरात अलाउद्दीन के कदमों में रखे तो वह भी एक बार चकित हो गया। इतना खजाना! अलाउद्दीन ललचा उठा। उसने सन १३१० में फिर मलिक काफूर को भेजा। मदुरा और रामेश्वरम तक रौंद डाला था काफूर ने। अबकी बार वह तीन सौ बारह हाथी, बीस हजार घोड़े, पैंतीस मन सोना और जवाहिरात का अंबार लेकर लौटा था। अलाउद्दीन की आंखें मिचते ही मलिक काफूर सचेत हो गया। उसे महसूस हुआ कि दिल्ली की गद्दी का असली हकदार वही है। सहसा कितना क्रूर हो गया हजार दीनारी हिजड़ा। अलाउद्दीन के मरने के चालीस दिन बाद तक उसने मानो शिव-तांडव नृत्य किया हो।

खिज्र खां और शादी खां को अंधा करवा दिया और खिज्रखां के पांच वर्षीय बेटे शिहाबुद्दीन उमर को गद्दी पर बैठा दिया, पर संरक्षक स्वयं बना रहा। उसने एक अजीब नाटक और भी किया। अपने स्वामी अलाउद्दीन की बेगम से शादी रचायी। केवल उसकी निजी संपत्ति, जवाहिरात और जायदाद हड़पने को। माल-मता छीनकर बेगम को कैदखाने में डलवा दिया। लालच के जंजाल में फंस गया, यह तलवार का धनी हिजड़ा। फिर एक दिन 'कस्रे हजार सतून' (सहस्र स्तंभोंवाले राजमहल) में रह रहे सत्रह वर्षीय तृतीय शहजादे मुबारक खां को अंधा करने अपने सैनिक भेजे। मुबारिक खां ने अंजुली भर-भरकर जवाहिरात दिये थे रिश्वत में। और यही सैनिक उलट कर मलिक काफूर पर टूटे थे और जब तक उसके टुकड़े-टुकड़े नहीं कर डाले, तब तक उन्हें चैन नहीं आया।

दिल्ली का शहर कोतवाल—हिजड़ा

सन १३८९ की दिल्ली पर हिजड़ा मलिक सरवर गालिब था। उस समय बड़ी उथल-पुथल हो रही थी। वजीर एकुनुद्दीन को कत्ल कर दिया था। अबू बक्र शाह को अमीरों ने गद्दी पर बैठा डाला था। उधर अबू बक्र के चचा नासिरुद्दीन और उसके लड़के हुमायूं ने बगावत कर दी थी। जलेसर में बागी पराजित हुए और तभी मलिक सरवर ने राजनीति के बिदकते हुए घोड़ों की रास संभाली। उसने अपने दमखम



शूरवीर हिजड़े अब कहां ?

से प्रांतों के सूबेदारों को भीगी बिल्ली बना दिया और गद्दी पर हुमायूं के छोटे भाई महमूद को बैठा दिया। मलिक सरवर उसका दायां हाथ बना और उसे खिताब मिला—'ख्वाजा जहान'। कठपुतली की तरह उसने बादशाह को नचाया और फिर नया खिताब लिया—'सुल्तान उश्शर्क' यानी 'पूरब का राजा'। मई १३९४ में वह पूरब में उठे विद्रोह को दबाने चल पड़ा। उसने देखते ही देखते कोयल (अलीगढ़-क्षेत्र) इटावा, कन्नौज और जौनपुर पर अधिकार कर लिया और वहां का स्वतंत्र राजा बन बैठा। देखा जाए तो जौनपुर राज्य की नींव उसी

दिन से पड़ी। मलिक सरवर हिजड़े ने मलिक करनफूल नामक लड़के को गोद ले लिया। जिसे 'मुबारिक शाह' का खिताब दे दिया। इतना दबदबा था इस हिजड़े का कि इसने एक बार बंगाल के सोनार गांव के राजा गयासुद्दीन आजम द्वारा भेजी हुई मालगुजारी बीच में ही हड़प ली और बादशाह को एक पैसा भी नहीं भेजा।

जब हिजड़ों ने बादशाह मार डाला

क्रोधित मधु-मक्खियों की भांति टूट पड़े थे, हरम के सब हिजड़े। बात सन १५१८ की है। जब कि हुसैन शाह की मृत्यु के बाद उसका क्रूर अन्यायी बेटा नुसरत शाह गद्दी पर बैठा था। सन १५३३ में नुसरत शाह अपने पिता की मजार पर गया था। वहीं किसी हिजड़े से कोई गलती हो गयी। नुसरत शाह ने गुस्से में उससे लौटकर निबटने की बात की। हिजड़ा भयभीत हो गया और उसने अपने साथियों से सहायता मांगी। फलस्वरूप लौटने पर जब नुसरत शाह महल में घुस रहा था तब सब हिजड़े उस पर टूट पड़े, और आनन-फानन उसे मार डाला।

आंख का इशारा ही काफी था

दक्षिण के राजा संत अहमद के दुश्चरित्र बेटे हुमायूं 'जालिम' ने अति ही कर दी थी। भले आदमियों की बहन बेटियों को दिन दहाड़े उठवा देता था। जरा-जरा-सी बात पर खाल खिंचवा देता था। एक बार जब वह बहुत बीमार पड़ा, तब प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई। सुन ली ईश्वर ने शायद, पर जब हुमायूं 'जालिम' फिर से उठ खड़ा हुआ, तब नैराश्य की काली घटा फिर से छा गयी। उस समय शिहाब खां हिजड़े ने ही साहस दिखलाया। एक दिन जब शराब के नशे में धुत्त हुमायूं हरम में आया, तब शिहाब खां ने एक अफरीकी बांदी को आंख से इशारा कर दिया। बांदी ने एक ही बार में हुमायूं की अंतड़ियां बाहर निकाल डालीं।

अफरीकी हिजड़ा दस्तूर दीनार

सन १४९५ दौलताबाद की गद्दी पर यूसुफ आदिल शाह का कब्जा था, पर राज्य में प्रभाव फैला हुआ था कासिम बरीद और अफरीकी हिजड़े दस्तूर दीनार का। कुतुबुल मुल्क दक्खिनी की मृत्यु के बाद ही दस्तूर दीनार हिजड़ा तैलंगाना का सूबेदार बना दिया गया था। थोड़े दिन बाद इसे तैलंगाना से गुलबर्गा भेज दिया गया। तभी इसकी कासिम बरीद से ठन गयी। कासिम बरीद और सुल्तान यूसुफ आदिल शाह ने मिलकर दस्तूर दीनार को हराया। और मृत्यु-दंड भी दिया। पर शीघ्र ही मृत्यु-दंड माफ कर दिया गया और फिर से दस्तूरदीनार को गुलबर्गा का सूबेदार बना दिया गया। कुछ समय गुजरा कि यूसुफ आदिल शाह की बेटी सती की मंगनी शहजादे अहमद से हो रही थी कि दस्तूर दीनार की इस अवसर पर सुल्तान से कहा सुनी हो गयी। कहा-सुनी तूल पकड़ बैठी। अब की बार

कासिम बरीद दस्तूर दीनार की तरफ हो गया। सुल्तान यूसुफ आदिल शाह और सुल्तान कुली एक तरफ हुए। गुंज टी में दस्तूर दीनार और कासिम बरीद भाग खड़े हुए। थोड़े ही अर्से में अहमद-निजाम शाह को लेकर दस्तूर दीनार फिर मैदान में आ डटा। सन १५१४ में यूसुफ आदिलशाह ने गुलबर्गा पर कब्जा कर लिया और दस्तूर दीनार को पकड़कर कत्ल कर डाला। सन १५१४ में कासिम बरीद के पुत्र अमीर अली बरीद ने दस्तूर दीनार के दत्तक पुत्र जहांगीर खां को 'दस्तूर उल ममालिक' का खिताब दिया, और उसे गुलबर्गा का सूबेदार बना दिया।

साधु हिजड़ा : यातिमा

हिजड़े केवल तलवार के धनी नहीं थे बल्कि कुछ तो चमत्कारी ईश्वर-भक्त भी हुए हैं। उन्हीं में से एक हिजड़ा यातिमा था। उस समय आगरे में अकाल पड़ा था। क्या मंदिर और क्या मस्जिद सब तरफ ऊपरवाले से प्रार्थना हो रही थी। सम्राट अकबर ने यातिमा के बारे में सुन रखा था। वे स्वयं यातिमा के पास आकर अनुरोध करने आये थे कि यातिमा भी ईश्वर से कृपा की भीख मांगे। सम्राट के कहने पर यातिमा ने लवलीन होकर नमाज पढ़ी थी और तभी घनघोर बादल छा गये। यातिमा की याद में अकबर ने शाही खजाने से पैसा लगाकर एक मस्जिद बनवायी थी, जो आज भी आगरे में लोहा-मंडी नामक महल्ले में 'मस्जिद मखन्नि-

"तुम्हें सड़क पर खड़े होकर यों भीख मांगते शर्म नहीं आती ?"

"तो क्या आप चाहते हैं मैं यहां एक दफ्तर खोलकर बैठूं ?" भिखारी का जवाब था।

सान' के नाम से स्थिति है।

शहर की बुनियाद का पत्थर

'तफरीह-उल-इमारत' में लिखा है कि शाहजहां के काल में फिरोजखां नामक प्रभावशाली हिजड़े ने आगरे के निकट फिरोजाबाद शहर की बुनियाद डाली।

बरखास्त होने पर भी प्रभावी

आलमगीर के यहां बचपन से ही हिजड़ा ख्वाजा अंबर प्रभावशाली रहा। उसे खिताब भी दिया गया—हाफिज खिदमतगार खां। कोकी जीऊ बेगम का बोलबाला था उन्हीं दिनों। ख्वाजा अंबर कोकी जीऊ का मुंहलगा हिजड़ा बन बैठा। रिश्वत लेने में इसने बड़े-बड़ों के कान काट दिये। चारों तरफ एक हंगामा-सा मच गया। ख्वाजा अंबर पहले सिरे का रिश्वतखोर था। तंग आकर ही कोकी जीऊ ने इसे बरखास्त कर दिया। पर हकीकत यह है कि इसके बाद भी इसका प्रभाव और तूती बोलती रही। २१ जून १७३२ में इसकी मृत्यु हुई और तभी इसके प्रभाव का सूर्यास्त हुआ।

—एफ ४८, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली—११००१६



● उमाकांत मालवीय

वे, जो लतीफा गो हैं। वे, जो लतीफुल्ला हैं। वे, जो लतीफ बोंधी हैं। वे, जो चटकुले बाज हैं। वे, जिन्हें लतीफा सुनने का गुमान है, घमड है, उन्हें खम ठोंकती, ताल ठोंकती, मूंछों पर ताव देती एक बीहड़ चुनौती का नाम है बटोहीजी। बटोहीजी हमारे मित्र हैं। आपके लतीफे की जहां चरम परिणति होगी, आप उम्मीद करेंगे कि एक जबरदस्त अट्टहास से उसकी आवभगत हो, वहीं वे बौरहा की तरह पूछ बैठेंगे, "तब का भवा ?" उस पैलौटी एकलौते सवाल से आपके हास्य की मीनार, आपका गुमान भरभराकर, भहराकर चकनाचूर हो जाएंगे। आप हंसोड़ से रुअंटे हो उठेंगे। आपका मन हाहाकार कर उठेगा, 'हाय! कहां फंस गये? सामने जूती रक्खी होती तो अपनी ही जूती से अपना मुंह पीट लेते।'

आपको याद आएगा, वह बहु प्रचलित लतीफा। पंडितजी रामायण की कथा बांच रहे थे, जिस दिन कथा पूर्ण हुई एक भक्त ने पंडितजी पर एक सवाल उछाल कर दे मारा "पंडितजी राम राक्षस थे कि रावण ?" पंडितजी क्रोध और दयनीयता के घालमेल से बकचोंचो का मुरब्बा बन गये, "भैया, न राम राक्षस थे और न रावण, राक्षस हैं हम, जो इत्ती देर तक आपके सामने परेत की तरह बकरत रहे।" पंडितजी ने सिर पीट लिया।

"न मालूम हो तो न बताइ, नाराज क्यों होते हैं ?" भक्त ने फिर एक सवाल उलाहने के स्वर में कोंच दिया। शायद ऐसे ही लोगों के लिए, **'अंधे के आगे रोये, अपना दीदे खोये,** अथवा **'भैंस के आगे बीन बजाये, भैंस खड़ी पगुराय'**-जैसी फब्तियां कसी गयी होंगी। एक बार बटोहीजी के सामने इन मुहावरों का एक साहब ने गलती से उपयोग कर दिया। बड़ी गंभीरता से बटोहीजी बोले, "इसमें अंधे का और भैंस का क्या दोष है ? गलती तो रोनेवाले और बीन बजानेवाले की है।"

एक अहियापुरी को चोट लगी, हाथ में पट्टी बांधे हुए थे। वे अपने लोगों में बहुत लोकप्रिय थे। अब जो भी मिलता, पूछ बैठता, "अरे गुरू, ई का भवा ?" गुरु

की कैफियत मझियारी का आल्हा बन चुकी थीं, वे बोर होने लगे थे। फिर किसी पचासवें-साठवें अहियापुरी ने पूछा, "अरे गुरु, ई का भवा?"

"घड़ियाल थाम लिये रहा।" गुरु झुंझलाये।

"क्या ... ?"

"कहा। नहीं, घड़ियाल थाम लिये रहा।"

"गुदगुदाय नहीं दिया?" तुर्की-बतुर्की उत्तर आया।

जहां लतीफा समाप्त होता है, वहां से हमारे बटोहीजी शुरू होते हैं, "गुदगुदाने से छोड़ देता है क्या भैया?" बटोहीजी ने जानकारी चाही, ताकि वह जानकारी कभी काम आ सके।

तेज रफ्तार से आती गाड़ी के सामने पटरी पर एक आदमी, लाल कुरता लहराता हुआ, गाड़ी रोकने के लिए चिल्ला रहा था। ड्राइवर ने समझा आगे कोई खतरा है, बमुश्किल तमाम उसने गाड़ी रोकी, 'क्या बात है?

'गैंडे का बच्चा लेंगे?' रोकनेवाले ने पूछा।

'बेवकूफ नहीं तो, गैंडे का बच्चा लेंगे? गाड़ी रुकवा ली।' ड्राइवर झुंझलाया।'

'नहीं लेना है तो मत लो, नाराज क्यों होते हो? लेना होता तो अभी हम गैंडे का बच्चा पकड़ने के लिए जंगल में जाते।'

लतीफुल्ला ने लतीफा सुनाकर, जीते हुए मुर्गे की तरह सीना फुलाकर चारों ओर कुक्कुटावलोकन किया।





"ठीक तो है, इसमें नाराज होने की क्या बात है ?" बटोहीजी ने मुर्गे की कलगी नोच ली।

बटोहीजी के सामने चाहे जितना जोरदार जबड़ातोड़ अट्टहासवाला चुटकुला सुनाइए, वे एकदम सोंठ बने रहेंगे। बीरबल, गोनू झा, गोपाल भांड, तेनाली राम, यदुमणि, ओईनाम बिजांदो, जगन पांडे, अप्पा जी और सुथरा-जैसे मसखरों के फरिश्ते भी अलग-अलग अथवा सभी मिलकर भी बटोहीजी से एक अदद बारीक अथवा महीन मुसकान तक बरामद नहीं कर सकते। वही बटोहीजी बिना बात अकस्मात बलात अथवा हठात ठठाकर हंस पड़ेंगे। पूछने पर बतलाएंगे पिछले महीने की अमुक तारीख को अमुक लतीफा सुना था, बड़ा मजा दे रहा है। आप हैरान रह जाएंगे, पिछले महीने से बटोहीजी उस लतीफे को 'च्विंग गम' की तरह चुभला रहे थे और आज उसका रस तैयार हो पाया ?

"ठिठोली-पुराण में बटोहीजी का वर्णन इस प्रकार आया है। एक राहगीर ने अकस्मात देखा कि एक गैंडा उसका पीछा कर रहा है। राहगीर के अनुसार गैंडा बड़े खुफिया अंदाज से उसका पीछा कर रहा था। उसने सुन रखा था कि गैंडा एकदम नाक की सीध में चलता है। भारी भरकम होने के कारण वह अगल-बगल घूम-घामकर नहीं चल पाता। राहगीर बगल हो गया, उसे शरारत सूझी और वह गैंडे को गुदगुदी कर रफूचक्कर हो गया।

लगभग एक सप्ताह बाद वही राहगीर अपने एक साथी के साथ फिर उधर से गुजरा। साथी ने राह में खड़े एक गैंडे की ओर इशारा करते हुए पूछा, "गैंडा ठठाकर हंस रहा है यार ?"

"हां, पिछले सप्ताह मैंने उसे गुदगुदी कर दी थी, खाल मोटी होने के कारण उस पर गुदगुदी का अब असर हुआ है।" राहगीर ने शंका का समाधान प्रस्तुत किया।

आकाशवाणी ग्रामपंचायत अनुभाग से बालगोपालों के लिए राजा नल पर एक बालोपयोगी पद्य-कथा लिखने का बटोही

जी को अनुबंध मिला। उन्होंने मुझसे बड़ी आजिजी से पूछा, "भैया, राजा नल घिसा-पिटा विषय है, उस पर क्या लिखें ?"

"यहीं तो लेखक की सामर्थ्य दांव पर लगती है कि इसमें भी वह कुछ मौलिकता ला पाया है कि नहीं ।" मैंने गंभीर होने का अभिनय किया।

"कैसे शुरू किया जाए भैया ?" बटोहीजी ने फिर पूछा।

"आप शुरू कीजिए राजा नल चार भाई थे।"

"चार भाई! अच्छा कौन-कौन भैया? बटोहीजी ने चिहुंक कर पूछा।

"सबसे बड़े नल, उनके बाद बड़वानल, उनके बाद जठरानल, उनके बाद दादा-नल।" मैंने रेडीमेड हल प्रस्तुत किया।

"ठीक है ऐसे ही शुरू करूंगा।"

अब हमारी हवा खुश्क होने की बारी थी, कहीं सचमुच इन्होंने ऐसा ही लिखकर दे दिया तो इनकी बड़ी किरकिरी होगी, यह तो 'प्रैक्टिकल जोक' हो जाएगा, "बटोहीजी, मैं मजाक कर रहा था, ऐसे शुरू मत करना।"

" हम ऐसने लिखवैं, दिहाती प्रोग्राम में कौन सरवा बूझी ?" बटोही जी न केवल आश्वस्त भाव से बोले वरन आव देखा न ताव, वैसी की वैसी ही पद्य-कथा लिखकर दे दी।

आप चाहे जितना चौचक चकाचक हलब्बी लतीफा अथवा चटकुला सुनाइए, बटोहीजी सहज भाव से दुलराकर ठुनकते हुए [illegible] नहीं, धत्त तुम झूठ बोलत हौ, ई तुमरा गढ़ा भवा है, भला कहूं ऐसन होय सकत हय!" उनकी 'धत्त' के सामने 'तेरी कुड़माई हो गयी है' के जवाब में कहा गया 'धत्त' आपको फीका लगेगा।

मेरी तरह एक छुटभइया कवि एक गुरु घंटाल कवि के ढिग पहुंचा, "क्या सेवा करें गुरुजी ?"

कहा गया है, भगवान का खेत भूत जोतता है, अजगर का आहार बैठे बिठाये उसके मुंह में जा गिरा, **"अजगर करै न चाकरी' ... 'आप न जावै ताहि पर ताहि तहां लै जाय'** एकदम बावन तोला पाव-रत्ती सटीक चरितार्थ हुआ। हां तो गुरु-घंटाल आहार को सामने पाय, नयन नचाय प्रसन्न भये। "वत्स, चलो सर पर चंपी करो।"

शिष्य-'अपरेंटिस' दो घंटे तक चंपी करते रहे, थक गये तो बोले, "गुरुजी थक गया हूं अब क्या करूं ?"

गुरुजी कुपित हुए, "नराधम, तूने मेरा 'इपोर्टेड विग' खराब कर दिया, विग पर तेल डाल दिया, 'विक' चौपट हो गया, चलो सिर पर चंपी करो।" और अपना खल्वाट शिष्य के आगे करदिया। लतीफा-गो का दुर्भाग्य वहीं हमारे चरितनायक बटोहीजी विद्यमान थे, वे अपना श्री चोंच खोलते भये, "क्या विग में तेल नहीं डाला जाता ?" लतीफा-गो चारोखाना चित धराशायी हो गये।

—२३, महावीरन गली, इलाहाबाद-३





मस्तिष्क में पानी

● डॉ. सतीश मलिक

कृष्णालाल वधावन, जबलपुर : मैं २६ वर्षीय सरकारी नौकरी में अविवाहित युवक हूं। मुझे सन '७८ के सितंबर में अचानक ऐसा आभास होने लगा कि सिर में पानी-सा भर गया है। कुछ दिनों पश्चात कान के नीचे, गले के पीछेवाले भाग में व सिर में दर्द रहने लगा है। मनोचिकित्सक से लेकर विभिन्न विशेषज्ञों तक संपर्क किया, पर कुछ भी आराम नहीं मिला। कभी-कभी मेरी सेक्स-भावना बहुत प्रबल हो उठती है, पर अपनी मानसिक परेशानी के कारण विवाह नहीं कर पा रहा हूं। कृपया मुझे सही मार्ग बताने का कष्ट करें।

हमारे मस्तिष्क के इर्द-गिर्द पानी होता है, जिसे सेरिब्रो स्पाइनल द्रव (Cerebro-Spinal Fluid) कहते हैं। इसका आभास हमें कदापि नहीं होता। यदि इस द्रव की मात्रा या दबाव बढ़ जाए, तो बहुत गंभीर स्नायु-रोग हो जाते हैं। यह कभी भी नहीं मालूम होता कि सिर में पानी भर गया है। इसलिए निश्चय ही आपकी समस्या न तो न्यूरो-सर्जन की न आंख, नाक, कान व गला विशेषज्ञ की है। आप अपने सपनों को लिखकर हमें भेज सकते हैं। क्या वे बहुत अजीब होते हैं? सेक्स-भावना २६ वर्षीय अविवाहित युवक में स्वाभाविक है। हां, विवाह आपको अपनी अन्य समस्याओं पर काबू पाने के बाद ही करना चाहिए।

यह आतंक कैसा?

गंगाराम खतान, मुंगेर : मैं ४३ वर्षीय खुदरा कपड़े का व्यापारी हूं। ४७ व ३६ वर्ष के दो भाई एवं ५० वर्ष की बहन है। तीनों भाइयों का कारोबार तो अलग-अलग है, पर पिता द्वारा मिले एक ही घर में रहते हैं। रसोई भी अपनी-अपनी है; लेकिन कुछ दिनों से भारी जादू-टोने के प्रभाव में दिन गुजर रहे हैं। पता नहीं कहां से कोई पूजी हुई पान-सुपाड़ी, फूल, सिंदूर व लड्डू घर के सामने, या फिर मकान की छत पर फेंक देता है। इन घटनाओं के छह महीने के भीतर ही भाई के लड़के की मृत्यु हो गयी। आस-पास के सभी लोगों का कहना है कि यह डायन का प्रकोप है। इस स्थिति से तीनों परिवारों



में बुरी तरह से आतंक छाया हुआ है। इतना ही नहीं, छह हजार की आबादी का हमारा सारा गांव भी आतंक का शिकार है। भाई की पत्नी भी सिर-दर्द से बेहद परेशान रहती हैं, ऐसा ही सिर-दर्द उनकी ५८ वर्षीय माताजी को रहता है।

डॉक्टर साहब ! क्या आप हमें इन परेशानियों से मुक्त करा पायेंगे। बड़ी कृपा होगी।

आपके घर के द्वार का पूजा जाना या छत पर लाल कपड़े में कुछ सामान, या चौक पर डालने का मतलब जादू-टोने से ही है। कोई आप पर जादू-टोना करना चाहता है, क्यों? क्या आपका धन, सम्मान पारिवारिक सुख किसी को खटकता है ? आप यह जानने की कोशिश करें कि आपसे कौन ईर्ष्या करता है। वास्तव में डायन का प्रयोग आप पर भयभीत करने के लिए किया गया है। आप बीसवीं शती के आखिरी वर्षों में हैं, जबकि पूरी शताब्दी विज्ञान के चमत्कारों से भरी पड़ी है। इसलिए आपको ऐसे अंधविश्वासों में पड़ना ही नहीं चाहिए। विज्ञान हमेशा हमें तर्क और प्रमाणों के बीच जीने की आदत डलवाता है।

ओझा या मंत्र-तंत्र जाननेवाले अपने धंधे का बढ़ावा करने के लिए शायद आपको या आपके गांव के लोगों को भयभीत रखना चाहते हैं।

आपके भाई के लड़के की मृत्यु किसी रोग के कारण ही हुई होगी। ऐसे कई रोग-

इस स्तंभ के अंतर्गत अपनी समस्याएं भेजते समय अपने व्यक्तिगत जीवन का पूरा परिचय, आय, पद, एवं पते का उल्लेख कृपया अवश्य करें।

भय एक शक्तिशाली ऋणात्मक भाव (पावरफुल निगेटिव इमोशन) हैं। भयग्रस्त व्यक्ति एक ऐसी स्थिति में होता है, जहां उसे बीमारियां घेर लेती हैं। भयमुक्त तथा खुश व्यक्ति हमेशा रोगों से मुक्त रहता है। आपको वैज्ञानिक ढंग से सोचने की आदत डालनी चाहिए, तभी आप भय का निवारण कर पायेंगे।

अपने भाई की पत्नी की समस्या को ही लीजिए—उनका सिर-दर्द (Migrane) रोग-जैसा ही है। यह पैतृक रोग भी है; मां से भी आ सकता है। कुछ हद तक उनकी समस्या तनाव से है। कुछ भय से। जब तक आप लोग तनावपूर्ण व भय की स्थिति में रहेंगे, तब तक उनका पूरा इलाज दवाओं से भी नहीं हो सकता।

आत्महत्या कैसे ?

श्यामसुंदर, मिर्जापुर : मेरा साथी दो बार आत्महत्या की तैयारी कर चुका था, परंतु दोनों बार वह असफल रहा। वैसे वह २० वर्षीय हंसमुख व्यक्ति है। उसका आत्महत्या का कारण था वीर्य-स्खलन में दोष ! क्या इसकी दवा होम्यो-

बीमारी : घरेलू उपचार

मोटापा

निम्नलिखित उपायों में से एक का प्रयोग करने से मोटापा दूर होता है।

हरी सब्जियां और फल का सेवन अधिक करें। भोजन करते समय जल न पीयें। दूध, दही, मक्खन, मांस, मछली व घी-तेल से तले पदार्थों का खाना तथा दिन में सोना छोड़ दें।

१. एक गिलास गरम पानी में एक नींबू का रस, दो चम्मच शहद डालकर सुबह निराहार लें।

२. एक प्याला टमाटर का रस और एक चम्मच शहद सुबह लें।

३. तुलसी के पत्तों का रस एक चम्मच व शहद एक चम्मच मिलाकर सुबह लें।

४. चावलों का गरम मांड एक गिलास थोड़ा नमक डालकर सुबह पीयें।

५. हरड़, बहेड़ा और आंवला तीनों बराबर लेकर बारीक चूर्ण कर लें। एक चम्मच चूर्ण दो चम्मच शहद मिलाकर, सुबह एक प्याला पानी के साथ सेवन करें।

६. नवक, गूगल्ल २–२ गोली सुबह-शाम गरम पानी के साथ सेवन करें।

७. आरोग्य-वर्धनी वटी २–२ गोली सुबह-शाम पानी के साथ सेवन करें।

—कविराज वेदव्रत शर्मा

पैथी में है, या मनोचिकित्सा में? कृपया उचित मार्ग बतायें।

आपके मित्र को किसी बड़े शहर के अच्छे अस्पताल में डॉक्टरी जांच करवानी चाहिए। सर्वप्रथम यह जानना जरूरी है कि उसका अंडकोष है भी या नहीं। क्या वह दांपत्य-जीवन ठीक तरह से व्यतीत कर रहा है।

होम्योपैथी या मनोचिकित्सा के ढंग से इसका इलाज संभव नहीं।

स्तन क्यों घटे

श्रीमती शशि गुप्ता, इंदौर : मैं २६ वर्षीय विवाहित एवं स्वस्थ युवती हूं। मेरा विवाह ७ वर्ष पूर्व हुआ है। मेरे पति इंजीनियर हैं। बच्चे दो हैं; लड़का ६ वर्ष का व लड़की ४ वर्ष की। बच्चे स्वस्थ एवं सुंदर हैं। पारिवारिक जीवन से खुश हूं। किंतु करीब छह माह से मेरे स्तनों का आकार छोटा होता जा रहा है। इससे चिंतित हूं। बाल भी काफी झड़ने लगे हैं। समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं।

कृपया मुझे इस उलझन से मुक्त कराने का कष्ट करें।

स्तनों का आकार शादी व बच्चे होने के बाद बढ़ता है, घटता नहीं। स्तनों का छोटा होना, दर्द व बाल का झड़ना सभी हारमोनों में खराबी का कारण लगता है।

इंदौर मेडिकल कालेज में अपनी पूरी जांच करायें, आशा है तब आप तनाव-मुक्त हो सकेंगी।

कहानी

अधिकार की महक

• राजेन्द्र कुमार शर्मा

किसी को कल्पना तक नहीं थी कि बात का बतंगड़ बन जाएगा, लाठियां उछल पड़ेंगी, डंडे लहराने लगेंगे और खून-खराबे की नौबत आ जाएगी? वही जामुन का पेड़ था, वही छोकरे-बच्चे, वही पास-पड़ोसी, वही लंगड़दीन और वही गांव, लेकिन प्रायः सभी एक-दूसरे से अनजान-अपरिचित से हो गये थे।

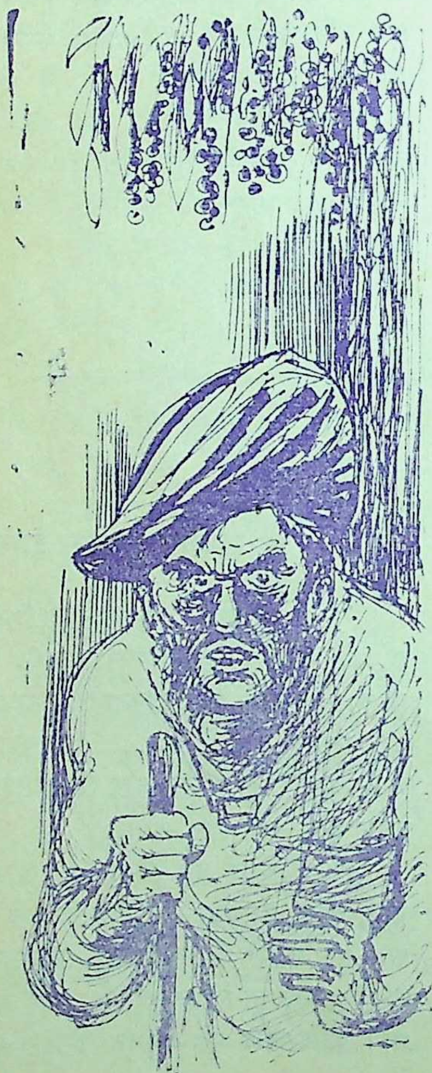
इतने जबरदस्त झगड़े के बाद लंगड़दीन को अपने अपमान, गालियां, धक्का-मुक्की आदि के प्रतिशोध के लिए योजना बनानी चाहिए थी, प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखाने की तरकीबें... लेकिन वह तो तत्क्षण यही सोचने लगा कि अभी तक उसके घर की फूस की छत पर 'गस्स-गस्स' करके पत्थर क्यों नहीं गिरे, कोई जामुन के पेड़ पर क्यों नहीं चढ़ा, किसी ने 'लंगड़दीन टका का तीन' क्यों नहीं कहा, किसी ने उसके घर की सांकल बाहर से क्यों नहीं चढ़ायी?

लंगड़दीन जरा-सी देर में ही परेशान हो गया। उसने दो बार अपने डंडे को सहलाया, एकाध बार टूटी टांग को और करीब पांच-छह बार उचकता हुआ घर के बाहर तक भी झांक आया, लेकिन कोई भी नहीं दिखा। आसपास सांय-सांय, गहन-चुप्पी के बीच कुछ भी तो घटित नहीं हो रहा था, जबकि उसके जोर-जोर से धड़कते-दिल को क्षण-दर-क्षण कुछ-न-कुछ घटित होने की बहुत ज्यादा उम्मीद थी कि अब—गस्स-गस्स पत्थर, कि अब—जामुन के पेड़ पर कोई, कि अब—लंगड़दीन टका का तीन, कि अब—घर की सांकल बाहर से बंद—"ठैर तेरी ...ठेर।"

"रे अे, में कुण ने गाल्यां काढ़ रियो छूं, अठे आसपास तो मिनख को ठूंठ ई कोन्या, ना जाणे गांव का सगला ई टाबर कठे मरगा भो ... का ..." लंगड़दीन अपने आप से ही बोला और खिसियाकर हंसने लगा—ठी-ठी-ठी-ठी।

किस्म-किस्म की बेहतरीन, लाजवाब, आला गालियां लंगड़दीन के गले में फांस-सी अटकी थीं, क्योंकि उनको उगलने-निकलने का मौका नहीं मिल पा रहा था। काले-काले पके जामुन उसका मुंह

चिढ़ा रहे थे, क्योंकि उनको तोड़ने-लूटने, खानेवाला वहां कोई नहीं था। डंडा खामोश कोने में खड़ा था—अलसाया-उनींदा-सा, क्योंकि उसको हवा में लहरने का अवसर नहीं मिल रहा था। टूटी-टांग



सुन्नाने लगी थी, क्योंकि उसको इधर-उधर आने-जाने-दौड़ने की जहमत नहीं उठानी पड़ रही थी।

झगड़े-झंझट, गाली, अपमान, लाठी, डंडा, धक्का-मुक्की की बात विस्मृत कर, लंगड़दीन बस यही सोच रहा था कि छोकरे बच्चे आज आ क्यों नहीं रहे—जामुन तोड़ने-खाने, गालियां देने, शैतानी करने?

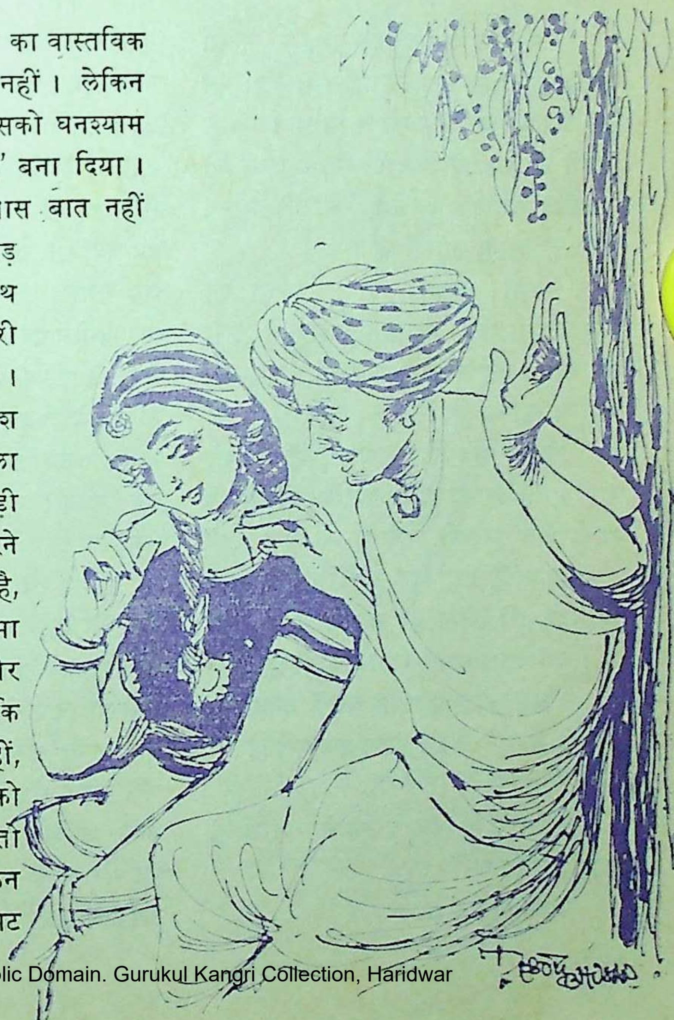
लंगड़दीन की परेशानी क्षण-दर-क्षण बढ़ने लगी। वह उचकता हुआ इधर-उधर चक्कर काटने लगा। एक ही प्रश्न था उसके जेहन में—बच्चे-छोकरे जामुन ...! बच्चे-छोकरों की शैतानियां, गालियां, उछलकूद, पेड़ पर चढ़ना आदि उसको कितना सुख देते हैं, यह बात वह ही जानता था और तभी तो वह उनको उकसाने-उत्तेजित करने के लिए नयी-नयी कार्रवाईयां करता था। उसने जामुन के पेड़ को 'कांटेदारबाड़' से घेर दिया—वे उसे 'होली-दहन' के हवाले कर आये। उसने 'भीख की फेरी' लगाना बंद कर, जामुन के पेड़ की रखवाली करनी शुरू कर दी, तो बच्चे-छोकरे उसको 'लंगड़दीन टका का तीन' कह-कहकर चिढ़ाने-भगाने लगे। उसने गालियां बकना शुरू कर दिया, डंडा हवा में लहराते हुए वे दूर से जामुन के पेड़ पर पत्थर फेंकने लगे। फूस की छत पर 'गस्स-गस्स' की आवाज और आंगन में पत्थरों का ढेर देखकर वह बहुत खुश होता था।

जामुन के पेड़ से लंगड़दीन को मोह

भी था और विरक्ति भी। उसके जीवन-गत-पृष्ठों में जामुन के पेड़ का इतना महत्त्व था कि जितना उसके प्राणों का। मोह-विरक्ति का एहसास उसको अलग-अलग ढंग से आत्मसंतोष देता था। कभी वह इस जामुन के पेड़ से लिपट-लिपटकर रोता था, तो कभी वह बच्चों-छोकरों से पत्थर मरवा-मरवाकर, उसको नष्ट-भ्रष्ट करने का उपक्रम करता था।

घनश्याम था लंगड़दीन का वास्तविक —असली नाम, लंगड़दीन नहीं। लेकिन इस जामुन के पेड़ ने ही उसको घनश्याम से 'लंगड़दीन टका का तीन' बना दिया। इतना ही होता तो कोई खास बात नहीं थी, लेकिन इस जामुन के पेड़ के कारण ही वह एक गृहस्थ बनने के बजाय भीख की फेरी लगानेवाला बन गया था। इन सभी तथ्यों के जुनूनवश कभी-कभार वह इतना पगला जाता कि . . . कुल्हाड़ी लेकर पेड़ को धराशायी करने पर आमादा हो जाता है, लेकिन तभी उसको रुकमा याद आ जाती है और—और उसको ऐसा लगता है कि ये—ये जामुन का पेड़ नहीं, रुकमा है—रुकमा, जिसको वह जीवन से अलग तो बर्दाश्त कर सकता है, लेकिन इस तरह कुल्हाड़ी से काट नहीं सकता—नहीं, कदापि नहीं!

रुकमा—हां रुकमा, लंगड़दीन के लिए अभिशाप भी थी और वरदान भी। बचपन में दोनों साथ खेलते थे, घरौंदे बना कर गृहस्थी बसाने की बातें करते थे। उसके मां-बाप भी रुकमा को बहुत चाहते थे। अपने चाचा-चाची के पास रुकमा



बहुत दुखी थी, अतः वह इस परिवार में प्यार-स्नेह पाकर निहाल हो जाती थी। खट्टे-मीठे जामुन खाने का बहुत शौक था रुकमा को। जब तब वह उसके पास आ जाती थी और उससे जामुन तुड़वाकर-बिनवाकर खाया करती थी, उसको भी तो रुकमा को जामुन खिलाने में मजा आता था, बहुत आत्मसंतोष होता था।

उस दिन शायद यह अनहोनी-घटना घटित होनी थी। उसके मां-बाप कहीं गये हुए थे। भर दोपहरी का समय था। रुकमा आयी तो उसको अच्छा लगा—बहुत ही अच्छा। मस्ती के आलम में ही बोला वह, "रुक्कू, जामुन खाग्गी के ?"

रुकमा मुस्करा दी। रुकमा की मुस्कानवश उसके खूनगत प्रवाह में तेजी आ गयी। वह उत्साह से बोला, "बोल न, जामूण खाग्गी के ?"

रुकमा सहमकर इधर-उधर देखने लगी। वह उसका हाथ पकड़कर बोला, "के थारी जीब जलग्गी, बोल न—जामूण . . ."

रुकमा ने इस बार अस्वीकृति में सिर हिलाया, तो उसने ही चट से कहा, "के-ऊं ? क्यूं जामूणा सूं दिल भरग्गो के ?"

"ज्या बात कोन्या घन्नू" रुकमा ने सहमते-सहमते कहा, "पण-पण-पण . . .।"

"पण के ?"

"दुपारी में जामूण का पेड़ भाले नी चढ़णो चईए-आं"

"क्यूं-क्यूं ?"

"काकी कैय रई छे के . . .!" डरती-सी बोली रुकमा, "के दुपारी में जामूण का पेड़ माने भूत-पिरेत बैठ्या रे छें, ज्यो-ज्यो . . . !"

"हाफ्फ." वह बात काटकर बोला, "डिरपोक कईं की, चाल—अब्बी चढ़कर देखूं छूं, कटे बैठ्या छें भूत-पिरेत।" और बाहर आकर जामुन के पेड़ पर चढ़ने लगा था। रुकमा मना करती रही, लेकिन वह देखते ही देखते ऊपर चढ़ गया था और पके जामुन तोड़-तोड़कर नीचे फेंकने लगा था। रुकमा चाव से जामुन खा रही थी, ओढ़नी के पल्लू में भरती जा रही थी। उत्साह-आवेशवश वह कभी इस डाली पर जा रहा था, तो कभी उस पर। और तभी एक पतली डाली के टूट जाने से धड़ाम्म कर जमीन पर . . .। बहुत इलाज करवाया गया, झाड़ा-फूंकी भी, लेकिन उसकी एक टांग हमेशा-हमेशा के लिए बेकार हो गयी। रुकमा का ब्याह अन्यत्र हो गया और वह बनकर रह गया—'भीख की फेरी लगानेवाला लंगड़दीन।'

शाम हो गयी, लेकिन लंगड़दीन ने चिमनी नहीं जलायी। उजाला देखकर छोकरे-बच्चे इधर नहीं आयेंगे ? वह कुछ इसी प्रकार की बातें सोच रहा था कि तभी बुरी तरह चौंक पड़ा। उसको लगा कि जैसे उसके घर की फूस की छत पर 'गस्स गस्स' करके पत्थर गिरे हैं और जामुन के पेड़ पर कोई चढ़ा है। डंडा उठाकर वह लपकता हुआ बाहर आया और दिन भर

की जमा-जोड़ी बेहिसाब गालियां, बकने लगा, लेकिन प्रति-उत्तर में कहीं-कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, हलचल नहीं हुई तो उसको व्यर्थ में गालियां बकने पर, मन ही मन बहुत शर्म आयी।

लंगड़दीन हांफता हुआ, वापस आकर जमीन पर बैठ गया। डंडे को हिकारत से एक तरफ पटक दिया। उसका मन भीतर ही भीतर कचकचाने लगा और 'एकाकी' एहसासवश उसके ओंठों पर रुलाई बिखर गयी, जो धीरे-धीरे सिसकियों में . . . ! वह सिसकता हुआ चीखने लगा—"के जाण-बूज के मार्‍यो छे मैंने ऊं टाबर ने, ज्यो सगला टाबर म्हारा होग्गा। बाण गंगा माई तू तो जाणे ई छे के म्हारा दिल म टाबरा के वास ते कित्तो परयेछे—कित्तो ?"

दोपहर की ही तो बात है। उसकी छत पर 'गस्स-गस्स' पत्थर बरस रहे थे। आंगन में पत्थरों का ढेर लगा था। बच्चे-छोकरे बंदरों-से जामुन के पेड़ पर चढ़े थे। 'लंगड़दीन टका का तीन' की आवाजें गूंज रही थीं। और वह डंडा हवा में लहराता हुआ गालियां बक रहा था। बच्चे-छोकरे भागते-आते, आते-भागते जा रहे थे। उसकी खुशी का पारावार नहीं था, कि तभी एक बच्चा अनजाने में, उसके लहराते डंडे की चपेट में आ गया। चोट सिर में लगी थी—खून ही खून . . . सारा गांव एकत्रित हो गया। बेहिसाब गालियां, भद्दे आरोप, लांछनों की बौछार होने लगी

साहस नहीं मुझमें

जिस रूप में जो मिला, स्वीकारा मैंने
मुखौटों के भीतरी स्वरूप को
साहस नहीं उघाड़ने का
साहस नहीं हैं मुझमें
कई घिनौने चित्र
संवारने का

दोहरा जीवन, दोहरे प्रश्न, एक चिहन !
चीन्हनना चाहूं तो
मर्यादाएं टूटती हैं, विश्वास की
विषमताओं के बवंडर में
डूबने-उतरने का साहस नहीं
रुक- रुकर कई चौराहों पर
पगडंडी को रौंदा
मिट्टी में सुगंध बटोरूं पराग की
बनी आंख की किरकरी
अस्पष्ट दृष्टि, जीने का साहस नहीं

धूप से उष्णा उधार लेकर
ठंडक को ताप दूं, सेंक दूं
बर्फीली तहों, सतहों को
मन की सीमा में सहेज लूं
टूटती कड़ियों को जोड़ने का साहस नहीं
उन्मुक्त पवन से खिलवाड़ मांगा
सुरभि से सौरभ भी
एक उपवन सजाने को
नयी कोंपल खिलाने को
किंतु चट्टानों को छेदने का साहस नहीं
जब-जब अलगाव पाटना चाहा
नीतियां मुंह चिढ़ाने लगीं
भर्त्सना हिस्से मिली
गूंजकर लौटीं आवाजें
चुनौतियों से चेतने का साहस नहीं

—सावित्री नागपाल
आर-६१५, न्यू राजेंद्र नगर, नयी दिल्ली

उस पर, उसको फेरी में भीख न देने की घोषणाएं होने लगीं। बच्चे के बाप-भाईयों ने लाठियां-डंडे निकाल लिये, मारा-पीटी, खून-खराबे की नौबत आ गयी।

"ऊं" झटके से आंसू पोंछता हुआ, खड़ा होकर जोर से बोला लंगड़दीन, "मने लाठी-डंडा सूं डरा रिया छा कूकरा का पूत .. शाला ... में—आं गाल्या दे दिया छा—ऊं, म्हारे पास तो एक सूं एक गाल्यां छें, दो बो सुरू करूं तो-तो ... ! ऊं-भीक देणो बंद—करद्यो भीक देणो बंद, के एक गांव में काल पड़बा सूं साधू-सनासी भूको मर जाग्गो। अब कोई माई को लाल जामूण का पेड़ के कने आ के तो देखे, लंगड़दीन न करद्यूं तो—तो—तो।"

सहसा लंगड़दीन चुप हो गया। उसको दो दिन पहले की बात याद आ गयी। गांव के साहू ने उसको समझाया था कि वह फेरी में भीख मांगने की बजाय जामुन के पेड़ की फसल शहर में जाकर बेचना शुरू कर दे तो वारे-न्यारे हो जाएं—वारे-न्यारे।

"ठीक ..." बुदबुदाया लंगड़दीन, "कल सूं जामूग बेचणे जाऊंगो शहर। म्हारो पेड़, म्हारी जामूण, कुच बी करूं में—कुच बी ..." और डंडा-चादर उठा कर जामुन के पेड़ के नीचे आ गया। उसने चादर जमीन पर बिछा दी और डंडा बारंबार डालियों से लड़ाने लगा। रात के अंधेरे में कच्ची-पक्की जामुनों का ढेर लग गया।

रात भर लंगड़दीन हिसाब लगाता रहा कि वह कैसे चादर की गांठ बांधकर शहर जाएगा, कैसे मोल-भाव करेगा... !

सिर पर, चादर में बंधी जामुन और हाथ में डंडा लेकर, लंगड़ाता हुआ लंगड़दीन, घर से शहर के लिए चला तो—तो उसका चार कदम ही चलना मुश्किल हो गया। उसका दिल भर आया—आज—अब से वह किसको गालियां देगा, उसके घर की फूस की छत पर कौन पत्थर फेंकेगा। उसको 'लंगड़दीन टका का तीन' कह-कहकर कौन चिढ़ाएगा, उसके एकाकी घर के आसपास ऐसा—इतना कोलाहल कहां से आयेगा? नहीं-नहीं, इन सबके अभाव में वह मर जाएगा—मर! ये-ये सारी जमीन गांव की है, वह गांव का है, जामुन का पेड़ गांव का है—जामुनों पर उसका ही नहीं सारे गांव का अधिकार है—सारे गांव का!

सारे गांव को प्रसन्नतायुक्त आश्चर्य हो रहा था कि भीख मांगनेवाला लंगड़दीन आज भीख मांगने की बजाय, आंसू पोंछता हुआ, घर-घर कच्ची-पक्की जामुन बांटता फिर रहा है—क्यों?

—६/१, परदेशीपुरा, इंदौर (म. प्र.)

रोम के सुप्रसिद्ध कवि वर्जिल को एक मक्खी से बहुत अधिक स्नेह हो गया था। जब मक्खी मरी तो कवि ने घोर व्यथा व्यक्त की और उसके अंतिम संस्कार पर लगभग पचास हजार रुपये खर्च किये तथा उसका स्मारक बनवाया।

पिछले अंक में आपने इंगलैंड के ऐतिहासिक ग्लेमिस दुर्ग में प्रेत-लीला की सत्य-कथा पढ़ी। इस अंक में प्रस्तुत हैं, कुछ ऐसी घटनाएं, जिन्होंने प्रेतों पर विश्वास न रखने-वाले लोगों को भी असमंजस में डाल दिया।

क्या उस अभिनेता के घर प्रेत आये थे

आचार्य कालीचरण मिश्र

भूत-प्रेतों से संपर्क का अमरीकी फिल्मों के 'सुपर स्टार' ग्लेन फोर्ड का अनुभव बिलकुल ताजा है।

ग्लेन फोर्ड का विश्वास है कि उसके घर पर प्रेतों का अधिकार है। ग्लेन फोर्ड का घर जिस स्थान पर बना हुआ है, वह कभी रेड इंडियनों का कब्रगाह था।

ग्लेन फोर्ड का कहना है कि एक रात वह अपनी पत्नी सिंथिया के साथ बैठा बातें कर रहा था, तभी उसे अपने बगीचे में शोर-शराबे की आवाज सुनायी दी। उसे ऐसा लगा, जैसे लोग बात-बात पर अट्टहास कर रहे हैं।

फोर्ड अपनी पत्नी के साथ बगीचे में पहुंचा, तो उसने एक अजीब दृश्य देखा। बगीचे में कुरसियां एक गोल घेरे में रखी हुई थीं। लगता था, जैसे अभी-अभी कुछ लोग उन पर बैठे थे और उनकी आहट पाकर चले गये हों।

यही नहीं, ग्लेन फोर्ड को प्रेतों के अस्तित्व के और भी कई प्रमाण मिले हैं। एक दिन उसने देखा कि उसकी दीवारों पर लगे चित्रों को किसी ने बिलकुल दूसरे ढंग से इधर-उधर सजा दिया है। इसी तरह एक बार ग्लेन फोर्ड को रोडेशिया (अब जिंबाबवे) के भूतपूर्व प्रधानमंत्री इयान स्मिथ के पक्ष में एक प्रचार-फिल्म के लिए अनुबंधित किया जा रहा था।

एक रात जब ग्लेन फोर्ड घर लौटा तब उसे एक विचित्र दृश्य दिखायी दिया। फिल्म की स्क्रिप्ट उसके बरामद में पड़ी थी, और उस पर रखा था ग्लेन फोर्ड का शिकारी चाकू।

ग्लेन फोर्ड ने समझ लिया कि उसके घर में आनेवाले प्रेत नहीं चाहते कि वह फिल्म में काम करे, और उनकी 'सलाह'

मानकर वाकई उसने उस फिल्म में काम नहीं किया।

पूर्णिमा की रात क्या वे प्रेत थे !

किस्से कहानियों में हम अकसर भूत-प्रेतों के करतबों के बारे में पढ़ते आये हैं। वे सब कथाकार की कल्पना की सृष्टि होते हैं। पर कभी-कभी सत्य भी कल्पना से अधिक आश्चर्यजनक और रोमांचकारी होता है।

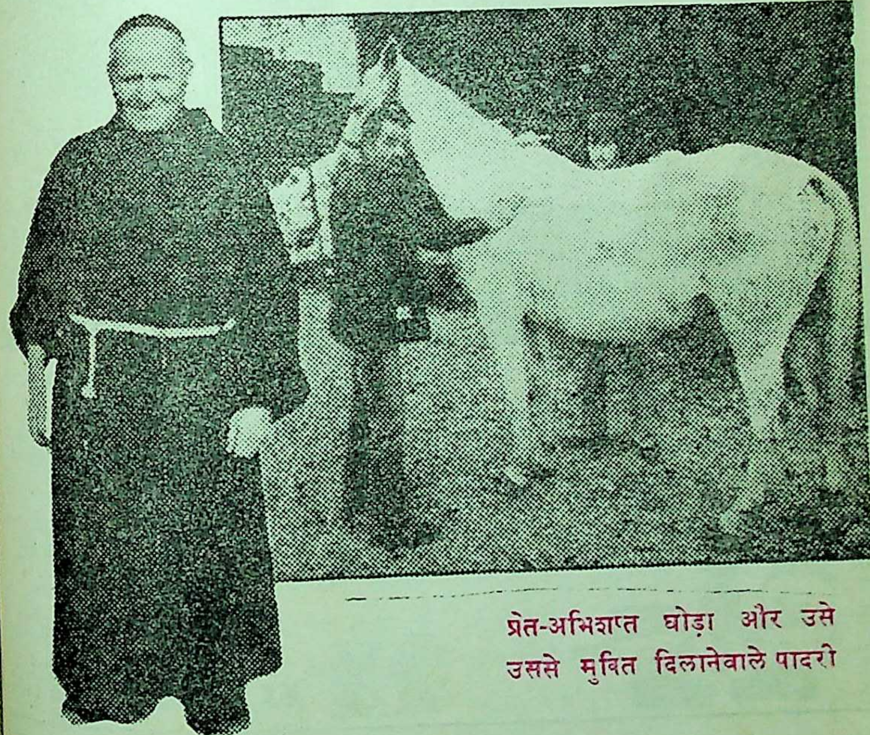
इटली के फोंटा नामक अस्तबल में हर पूर्णिमा की रात, लोग एक विचित्र दृश्य देखते हैं।

हर पूर्णिमा की रात 'बैसिल्का' नामक एक सफेद घोड़ा अस्तबल से निकल भागता है, जंगलों की ओर। ऐसा लगता है, जैसे उस पर कोई सवार है।

वह घुड़सवार कौन है ?

फोंटा के एक पुराने निवासी नियानकारलो बोट्टी का विश्वास है कि हर पूर्णिमा की रात बैसिल्का पर सवार होनेवाला व्यक्ति और कोई नहीं, एक अमरीकी सैनिक नेड केली है, जो मृत्यु के पश्चात प्रेत बन गया है। गियानकारलो का कहना है कि नेड केली बेसिल्का को बहुत चाहता था।

गियानकारलो के एक दोस्त एलवियो पासकुले ने एक पूर्णिमा की रात इस



प्रेत-अभिशप्त घोड़ा और उसे उससे मुक्ति दिलानेवाले पादरी

रहस्य का पता लगाना चाहा और अस्तबल के पास शाम से ही छिप गया।

धीरे-धीरे रात घिर आयी और आकाश में चांद खिल उठा। मध्य-रात्रि के बाद एलवियो ने अस्तबल के दरवाजे खुलने की आवाज सुनी। वह चौंक उठा। अस्तबल का द्वार उसने स्वयं बंद किया और ताला भी जड़ दिया था। चाबी, उसकी जेब में ही थी। फिर अस्तबल का द्वार किसने खोला! वह सोचने लगा। साहसकर वह छिपने के स्थान से बाहर आया और उसने अस्तबल के दरवाजे की ओर देखा। दरवाजा खुला हुआ था और उसमें से बेसिल्का बाहर निकल रहा था। एलवियो को लगा, जैसे कोई व्यक्ति बेसिल्का को बाहर ला रहा है।

यों मारे भय के एलवियो पसीने-पसीने हो रहा था, पर वह सांस थामे खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उसने देखा, बेसिल्का अपने पिछले पैरों के बल खड़ा हो गया, मानों किसी सवार ने उसकी लगाम खींच ली हो। अगले पल वह जंगल की ओर दौड़ पड़ा। बेसिल्का और उसका प्रेत-योनि में पड़ा सवार नेड केली समूचे फांटा-वासियों के लिए आतंक का कारण बने हुए हैं। उन्होंने प्रेत-बाधा दूर करने के लिए स्थानीय पादरी फादर फ्रांसिस से कुछ करने के लिए अनुरोध किया। फादर फ्रांसिस ने टोना-टोटकाकर नेड केली के प्रेत को भगाना चाहा, पर सफल न हो पाये। उनका कहना है कि मनुष्य के



बजाय पशु प्रेत-संसार के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

अपने देश में तो प्रायः हर गांव में ही नहीं, छोटे-बड़े शहरों में भी प्रेत-लीला की घटनाएं प्रकाश में आती रहती हैं।

मध्यप्रदेश में एक नगर है, बालाघाट। एक समाचार-पत्र में प्रकाशित विवरण के अनुसार वहां के एक अधिकारी के घर अनेक दिनों तक विलक्षण घटनाएं घटती रहीं।

होता यह था कि उक्त अधिकारी के घर में खूंटियों पर टंगे वस्त्र अपने आप उड़कर एक वृक्ष पर लटक जाते और पूजाघर में रखी देव-प्रतिमाएं अचानक इधर-उधर बिखर जातीं।

महाराष्ट्र के एक वरोरा नामक नगर के पास स्थित मनगांव में गतवर्ष ही प्रेत-लीला की एक दूसरी घटना घटी। इस गांव के गणपत नामक एक ग्रामीण के घर पर पहले तो छत पर पत्थरों की वर्षा हुई। ग्रामीण ने सोचा, शायद कोई शत्रुतावश ऐसा कर रहा है। उसने पत्थर फेंकनेवालों का पता लगाने की

कोशिश की, पर सफल न हो सका। फिर एक दिन उसके नये कपड़ों में अचानक सैकड़ों छिद्र हो गये। अब तो वह जो भी नया वस्त्र पहनता, उसका यही हाल होता। पर जैसे ही वह ग्रामीण वस्त्र उतारता, छिद्र गायब हो जाते, और वस्त्र ज्यों के त्यों हो जाते।

पर उक्त ग्रामीण के कष्टों का यहीं अंत नहीं हुआ। वर्षा के दिनों में जब पूरा गांव तेज बौछारों से भीगता होता, तब उस ग्रामीण का घर अपने आप जल उठता और यदि गांववाले आग बुझाने की कोशिश करते, तो आग और तेज हो जाती।

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले के बेलाल नामक एक गांव में घटी एक घटना समाचार-पत्रों में सुर्खियां बन चुकी है।

गत वर्ष अगस्त की बात है। बेलाल के देवी मंदिर की प्रतिमा के नाभि-स्थल से अचानक एक दिन रक्त-स्राव होने लगा। यह देखकर गांववाले भयभीत हो उठे। उन्होंने देवी की पूजा-अर्चना की, पर रक्तस्राव बंद नहीं हुआ। धीरे-धीरे इस घटना की खबर आसपास के गांवों में फैल गयी और दर्शनार्थियों के झुंड के झुंड बेलाल ग्राम पहुंचने लगे। इनमें कई बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक और चिकित्सा-अधिकारी भी थे। चिकित्सा-अधिकारियों ने मूर्ति से निकलनेवाले रक्तस्राव की परीक्षा की तो पता चला कि रुधिर वास्तविक था, लाल रंग मिला जल नहीं। (क्रमशः)

वचन-वीथी

प्रयास के बिना प्रकृति आगे बढ़ने नहीं देती। —स्वामी रामतीर्थ

प्रकाश जब क्षीण हो जाता है, तभी अद्भुत का प्रादुर्भाव होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हर वर्ष एक बुरी आदत को जड़ से खोदकर फेंका जाए, तो कुछ काल में बुरे से बुरा व्यक्ति भला हो सकता है।

—फ्रेंकलिन

उन्हें स्वामीभक्त न समझ, जो तेरी हर कथनी व करनी की प्रशंसा करें, अपितु उन्हें, जो तेरे दोषों की मृदुल आलोचना करें। —सुकरात

प्रेम वासना हो जाती है, ज्यों ही तुम उसे अपनी पाशविक पूर्ति का साधन बना लेते हो। —महात्मा गांधी

राई नौका के पेंदे के छिद्र के समान है, वह छोटी हो या बड़ी, एक दिन नौका को डुबा ही लेती है। —कालिदास

बोली मस्तिष्क का चित्र है, लेखनी मस्तिष्क की जिह्वा। —बेकन

साहित्य में नौसिखियों की महत्त्वाकांक्षा होती है कि साहित्यिक भाषा सीखें, अभ्यस्त का संघर्ष उससे पिंड छुड़ाने के लिए होता है। —जार्ज बर्नार्ड शा

जिसने इतना भी प्रकट कर दिया कि उसके पास कोई भेद है, तो उसने आधा भेद तो खोल दिया, बाकी आधा वह कब तक सुरक्षित रख पायेगा। —आचार्य चाणक्य

चार लघु कथाएं

• ए. एन. भट्ट

महत्त्वाकांक्षा की सीमा

एक बार एक चूहे ने एक हाथी की बड़ी छाया देखी। उस छाया से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने ठान लिया, अब वह भी अपनी छाया को इतनी ही बड़ी करेगा। इसके लिए उसने काफी देर विचार करने के बाद एक दीवार के पास आग जलायी। उसने देखा कि वह जैसे-जैसे उस आग के पास जाता, वैसे-वैसे दीवार पर उसकी छाया बड़ी होती जाती है। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। इसी खुशी में अपनी छाया को और, और बढ़ाने में वह इतना खो गया कि आगे बढ़कर आग में ही गिर गया।

निष्कर्ष:—महत्वाकांक्षा की भी सीमा होनी चाहिए।

उपहास और सम्मान

एक कुरूप आदमी था। उसे देखते ही लोग तरह-तरह के उपहास करते। इससे तंग आकर उसने अपना चेहरा बदल देने की भगवान से विनती की। भगवान ने कहा, "मैं तुम्हारा चेहरा एक शर्त पर बदल सकता हूं। शर्त यह है कि तुम्हें अपनी मौजूदा हालत में काफी पैसे कमाने होंगे।"

आदमी कुछ देर सोचता रहा। सहसा उसे लगा कि वह बदसूरत रहकर ही धन कमा सकता है। अपने इस धंधे में उसे बड़ी कामयाबी मिली और उसने काफी पैसा कमा लिया। अब लोग उपहास करने की बजाय उसका सम्मान करने लगे। अब उसने अपना रूप बदलने का इरादा छोड़ दिया।

निष्कर्ष:—अक्ल से काम लें तो बदकिस्मती भी किस्मत में बदल जाती है।

उत्कर्ष का आधार

एक शहर में एक पहलवान रहता था। उसके सिर पर अपनी सफलता का ऐसा भूत सवार हुआ कि उसने अपने सारे विरोधियों को परास्त कर दिया। कुछ समय के लिए सारे पुरस्कार जीत कर वह गौरवान्वित हुआ। परिणाम यह हुआ कि सारे पहलवान मैदान से हट गये और शहर में वह एक अकेला पहलवान छाया रहा। धीरे-धीरे इस कला को आश्रय और प्रोत्साहन देनेवालों का उत्साह घट गया और भूतपूर्व विजेता को जीविका के लिए भीख मांगते देखा गया; क्योंकि अभ्यास करने के लिए उसके सम्मुख दूसरे पहलवान ही नहीं थे।

निष्कर्ष:—हमारा उत्कर्ष दूसरों पर भी निर्भर करता है।

दुर्गुण और सद्गुण

एक बार दुर्गुण और सद्गुण, दोनों ने एक ही समय एक व्यक्ति के दरवाजे पर दस्तक दी। उस व्यक्ति ने दरवाजा खोला और दुर्गुण से पूछा, "तुम मेरे लिए क्या लाये हो ?"

"मैं आपके लिए धरती और स्वर्ग की सारी खुशियां लाया हूं" दुर्गुण ने उत्तर दिया।

"और तुम ?" उसने सद्गुण से पूछा।

"मेरी उपस्थिति ही आपके लिए सबसे बड़ा पुरस्कार होगी।"

उस व्यक्ति ने बिना कुछ विचार किये सद्गुण को अलगकर, दुर्गुण को भीतर बुलाया। कुछ दिनों के लिए उस घर में हर तरह की खुशी छायी रही लेकिन यह वातावरण बहुत दिनों तक नहीं रह पाया। दुर्गुण ने चोरी करना शुरू कर दिया। फलतः उस व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब हो गया। धन भी खत्म हो गया। प्रतिष्ठा भी जाती रही। उसने सब कुछ खो दिया। अब उस व्यक्ति ने दुर्गुण को बाहर भगाकर, सद्गुण को निमंत्रित किया। कुछ ही दिनों में उसकी तबीयत सुधर गयी, धन और प्रतिष्ठा भी फिर से मिल गयी। वह समझ गया कि सद्गुण की उपस्थिति मात्र ही कितनी आनंददायी हो सकती है।

निष्कर्षः—बिना-विचारे जो कदम उठाया जाता है, उससे बाद में पछताना पड़ता है।

हंसिकाएं-काव्य में

'नल'-कुछ प्रयोग

नल
अब औरों की बाल्टी भरता है
सबकी प्यास बुझाने के लिए
उसका यों सार्वजनिक हो जाना
दमयंती को खलता है !



"तू भी रानी, मैं भी रानी
कौन भरेगा पानी"
दोनों ने अपनी ठसक दिखायी
ज्योंही नल आया—
दोनों उसके सम्मुख
पानी भरती नजर आयीं



अलीबाबा चालीस चोर के जमाने में
नल सूखे रहते थे
मटकों में इसीलिए
चोर छुपे रहते थे
भीड़-भाड़ देखकर
आते-आते रुक गया
घबराहट के कारण
नल का मुंह सूख गया



शहरी बाबू की तरह
जब देर से आता है
खोज खबर लेने को
महल्ला इकट्ठा हो जाता है

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

वह एक बड़ा हाल था, जिसमें करीब १०० आदमी बैठ सकते थे। अंदर की तरफ दीवार के साथ 'आल्टर' पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस का चित्र रखा था। इसके इर्दगिर्द दो सुंदर ताजे फूलों के गुलदस्ते और इनसे कुछ दूर जमीन पर दो बड़े गमले रखे थे। सफेद वस्त्र पहने हारमोनियम के साथ एक उपदेशक अपने सामने कुरसियों पर बैठे, गोरे भक्तों

अमरीका में भारतीय मंदिर

गोरे भक्तों का बढ़ता आकर्षण

● मनमोहन वशिष्ठ

को भारतीय धर्म और स्वामी रामकृष्ण के वचनामृत, मधुर स्वर में सुना रहा था और गोरे भक्त श्रद्धा से सीधे बैठे हुए आत्म-विभोर होकर उपदेश सुन रहे थे। मंदिर का यह सुंदर दृश्य, सांता बारबरा (कैलीफोर्निया) स्थित वेदांत मंदिर का था। दक्षिण कैलीफोर्निया में स्थापित वेदांत संस्था ने अमरीका के अनेक स्थानों पर अपने मंदिर बना रखे हैं, जहां हर रविवार को सुबह रामकृष्ण परमहंस के विचारों से भारतीय धर्म और संस्कृति में आस्था रखनेवाले अमरीकियों को परिचित कराया जाता है।

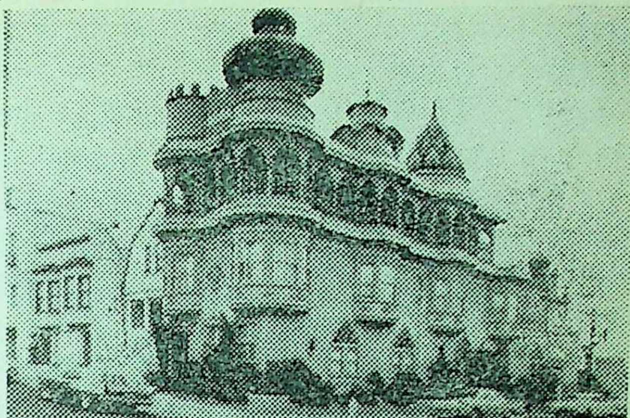
भारतीय सभ्यता विशिष्ट है

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व-संस्कृति में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसका अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इसमें एक ओर जहां उज्ज्वल नामों की नक्षत्रमाला है, वहां दूसरी ओर कलात्मक सृजनों की परंपरा और वैज्ञानिक गवेषणाओं की समष्टि दृष्टिगोचर होती है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की यह उपलब्धि आज के चरम वैज्ञानिक युग में सर्वोच्च और सर्वमान्य सिद्ध हुई है। भारत का लंबा इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमने शक्तिशाली होते हुए भी अपने विचारों और मान्यताओं को न तो किसी पर बलपूर्वक थोपा और न लादा है। प्रेम, सेवा, सहयोग, स्नेह, परिश्रम और ज्ञान का आलोक दिखाकर दूसरे को अपनी ओर आकर्षित किया है। यही कारण है कि आज भी दुनिया के हर हिस्से में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला और अमर विचारों की छाप अंकित है। आध्यात्म का जो प्रकाश भारत ने वर्षों पूर्व विदेशों में फैलाया था, वह जन-

जन के मन को आज भी आलोकित कर रहा है।

धार्मिक क्षेत्र में क्रांति

सन १९५९ के बाद से अमरीका के धार्मिक क्षेत्र में एक नयी क्रांति शुरू हुई जबकि भौतिकवादी मशीनी संस्कृति में डूबे गोरे नस्ल के लोगों को दुनिया के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के आचार्यों, उपदेशकों और पंडितों ने प्रभावित करना शुरू किया और अपने धर्म, योग और ध्यान का प्रचार करना शुरू किया। इस समय में दुनिया के कई देशों की धार्मिक संस्थाएं, संप्रदाय और व्यक्ति अपने मत और विचार-धारा का प्रचार करने अमरीका में आने लगे और कुछ स्थानों पर अपने मुख्य प्रचार-केंद्र खोले। इनमें मुख्य हैं—बालक की आंखों से अग्नि निकलते हुए प्रतीक के रूप में ईश्वर-ध्यान का उपदेश देनेवाले डविड मोसेज बर्ग, कोरिया से आये सनम्युंग मून, ध्यान-योग प्रचारक महर्षि महेश योगी (मुख्य केंद्र--स्विटजरलैंड) बालयोगेश्वर (मुख्य केंद्र-मियामी-अमरीका), सूफी विचार-धारा के प्रचारक इनायत खान (मुख्य केंद्र-पेरिस, फ्रांस), ध्यान-प्रचारक श्री चिनमूव (मुख्यकेंद्र—न्यूयार्क), और सैलानी प्रचारक कृष्णमूर्ति, योगी भजन और स्वामी चिन्मयानंद आदि ने कैलीफोर्निया, रोम, एमस्टरडम और लंदन में घूम-घूमकर अपनी विचार-धारा से गोरे लोगों को आकर्षित किया। अन्य धर्मावलंबियों, मत-मतांतरों के साथ-साथ भारतीय धर्म का अमरीका में तेजी से प्रचार हुआ। आज यहां धूप अगरबत्ती से महकते, घंटे-घड़ियाल की मधुर ध्वनियों से गूंजते कई सौ भारतीय मंदिर अमरीका के गोरे लोगों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैला रहे हैं।



सनफ्रांसिस्को की वेदांत सोसाइटी द्वारा बनाया गया एक मंदिर

हरे राम, हरे कृष्ण !

सन १९६० में हरे राम, हरे कृष्ण, की तान अमरीका में गूंजने लगी। गेरुआ धोती-कुरता पहने मृदंग-मजीरे बजाते, गले में पवित्र तुलसी की कंठी बांधे, मस्तक पर गौडीय संप्रदाय का वैष्णव तिलक लगाये और गौखुर प्रमाण-शिखा धारण किये, सांवरे कृष्ण के, गोरे भक्तों की टोलियां अमरीका के हिस्से में तेजी से

दिखलायी देने लगी थी और इसके बाद से ही अमरीका के विभिन्न हिस्सों में न्यूयार्क, शिकागो, कैलीफोर्निया, स्प्रिंग-फील्ड, वाशिंगटन तथा अन्य अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण-भक्ति धारा को फैलानेवाले स्वामी श्री प्रभुपादस्वामी ने जगह-जगह श्रीकृष्णकेंद्र और श्रीराधा-कृष्ण मंदिरों की स्थापना की। आज अंतरराष्ट्रीय कृष्ण भावना संघ द्वारा अमरीका में स्थापित मंदिरों में गोरे भक्तों को नाचते-गाते देखा जा सकता है।

देसी धर्म के विदेशी भक्त

सन १९७१ में डिवाइन लाइट मिशन के १३ वर्षीय धर्मगुरु बालयोगेश्वर ने अपने प्रवचनों से अमरीकियों को खूब आकर्षित किया और देखते-देखते अमरीका में इनके हजारों भक्त बन गये। सन १९७४ में बालयोगेश्वर ने मलिबू के ट्रांकास केन्यान रोड स्थित एक बहुमंजिली इमारत को अपना सत्संग-केंद्र बनाया और धर्म का प्रचार शुरू किया। आज इसके मियामी, हस्टन, डेनवर, कालोरिडो तथा अन्य कई स्थानों पर प्रवचन केंद्र बन गये हैं, जहां हजारों गोरे भक्त भारतीय धर्म पर प्रवचन सुनने आते हैं।

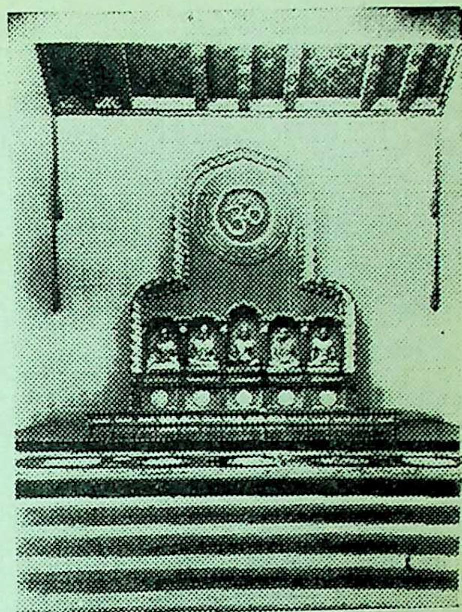
अमरीका में सर्वप्रथम स्वामी रामकृष्ण परमहंस का प्रचार शुरू हुआ और आज यहां अनेक स्थानों पर वेदांत सोसायटी बन गयी हैं, जिनके द्वारा स्थापित वेदांत मंदिरों में रामकृष्ण एवं विवेकानंद की विचारधारा और भारतीय धर्म का अमरीका में प्रचार किया जाता है। अमरीका में उत्तरी कैलीफोर्निया की वेदांत सोसायटी द्वारा निर्मित रामकृष्ण हिंदू मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मंदिर २९६३ वैबस्टर स्ट्रीट, सानफ्रांसिस्को में स्थित है। यह मंदिर सर्व-धर्म समभाव का जीता-जागता उदाहरण है। इस मंदिर की निर्माण-शैली में हिंदू-मुसलमानों और एंग्लो सैक्सन वास्तुकला के रूपों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। सन १९०५ में स्वामी त्रिगुणातीत द्वारा निर्मित इस मंदिर के परकोटे और इनके रंगीन कंगूरे आकर्षक हैं। वेदांत सोसायटी द्वारा २३२३ वैलोजी स्ट्रीट में बना नया मंदिर भी अनूठा है। साफ-सुथरे इस मंदिर में एक सुंदर आलानुमा सिंहासन बना हुआ है जिसके ऊपर 'ॐ' गोल लकीरों में बना हुआ है और इसके नीचे ईसामसीह, विवेकानंद, रामकृष्ण, परमहंस शारदादेवी (रामकृष्ण की पत्नी) और बुद्ध की तस्वीरें हैं, जो भारतीय धर्म के प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता, समभाव, भ्रातृत्व-भावों का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत कर गोरे लोगों को समता का संदेश दे रही हैं। यहां भी दर्शनार्थियों की काफी भीड़ रहती है।

वेदांत सोसायटी द्वारा संचालित और निर्मित सांता बारबरा (कैलीफोर्निया) स्थित रामकृष्ण मंदिर भी अमरीकी, भारतीय और अन्य समुदाय के लोगों का आकर्षण-केंद्र बना रहता है।

यहां प्रति रविवार को सुबह कई सौ लोग स्वामी रामकृष्ण के वचनामृतों का रसास्वादन करते हैं। इसी तरह प्रकृति की गोद में ऊंचे पेड़-पौधों और फूलों के बीच पोर्टलैंड (ओरगन) वेदांत सोसायटी द्वारा संचालित रामकृष्ण मिशन आश्रम स्थित मंदिर एकांत प्रेमी और प्रकृति प्रेमी धार्मिक गोरे भक्तों और सैलानियों को अब काफी आकर्षित कर रहा है।

पिट्सबर्ग (पेंसिल्वनियां) में भारतीयों द्वारा बनाया गया श्री वेंकटेश्वर मंदिर अमरीकियों को सबसे अधिक आकर्षित कर रहा है। यह मंदिर पिट्सबर्ग के बाहर एक पहाड़ी पर बना हुआ है। सन १९६० में यहां बसनेवाले हिंदुओं द्वारा बनाये गये एक 'स्टोर बेसमैंट' मंदिर से यह विकसित हुआ है। आठ लाख डॉलर से अधिक राशि के पत्थर और लकड़ी के बने इस मंदिर का निर्माण भारत से आये कारीगरों ने किया। इस मंदिर का चमकीला सफेद ढांचा जिसका प्रवेश-द्वार ५० फुट का है तिरुपति (आंध्र प्रदेश) स्थित तिरुमलई के मंदिर से बहुत मिलता-जुलता है। इस मंदिर में हाथी-दांत के आकार के विशाल स्तंभ अमरीकन और कनाडियन लोगों के आकर्षण का केंद्र-बिंदु बने हुए हैं। यहां एक सप्ताह में ३०० से लेकर १००० तक तीर्थ-यात्री आते हैं।

सन १९७८ की वसंत-ऋतु में फ्लाशिंग (न्यूयार्क) में बनाया नया छोटा



वेदांत सोसाइटी द्वारा निर्मित नया मंदिर

वेंकटेश्वर हिंदू मंदिर भी यहां गोरे भक्तों में काफी प्रसिद्ध हो रहा है। इस क्षेत्र में करीब २००० भारतीय रहते हैं, जिनमें ८० प्रतिशत हिंदू हैं। इस मंदिर के निर्माण में अमरीका में बसे दक्षिण भारतीय लोगों तथा तिरुपति मंदिर व आंध्र सरकार ने सहायता की है। सन १९६२ में दक्षिण भारत से आये एक युगल दंपति श्री अलगप्पन अब अपने भक्तों के सहयोग से हरे कृष्ण भावना-संघ की भांति हस्टन, लॉस एंजिलस, सानफ्रांसिस्को और वैमिगर्सफाल्स (न्यूयार्क) में भी मंदिरों को स्थापित करने की तैयारी कर रहे हैं।

—७ यू. बी. जवाहर नगर, दिल्ली–७

विधि-विधान

मोहरसिंह, गोपाल गंज बिहार : मेरी शादी एक बालिग लड़की से एक मंदिर में हुई । शादी के समय मंदिर में लड़की का नाबालिग भाई एवं मेरा एक दोस्त भी उपस्थित था । किंतु मैंने उस लड़की को अब छोड़ दिया है । क्या मुझे लड़की के पिता द्वारा उपरोक्त कार्यवाही में कानूनन फंसाया जा सकता है ? अगर ऐसा है, तो बचने का उपाय बतायें ।

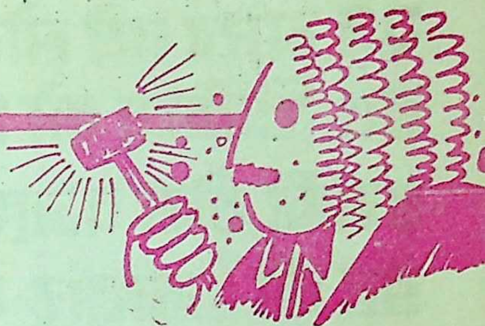
विवाह कर लेने के बाद पत्नी को छोड़ देने का औचित्य समझ में नहीं आता । आपको किस प्रकार की कार्यवाही की आशंका है, यह आपने पत्र में नहीं लिखा । पूरा विवरण न होने के कारण लड़की के पिता क्या कार्यवाही कर सकेंगे, यह तो नहीं कहा जा सकता । परंतु लड़की जो आपकी पत्नी बन चुकी है हिंदू विवाह अधिनियम के अतंर्गत वैवाहिक स्वत्व की स्थापना की, या भरण-पोषण की मांग के लिए आपके विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है ।

'विधिविधान' स्तंभ के अंतर्गत कानून संबंधी कठिनाइयों के बारे में पाठकों के प्रश्न आमंत्रित हैं। प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं, राजधानी के एक प्रसिद्ध कानून-विशेषज्ञ —रामप्रकाश गुप्त

रामदास, जयपुर : मैंने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया था । बच्चे भी कोर्ट में पत्नी को ही सौंप दिये थे । लेकिन अब मुझे पता चला है कि बच्चों की व उसकी स्थिति काफी दयनीय है । यदि हम दोनों पति-पत्नी फिर से साथ रहने लगें तो क्या तलाक स्वतः ही समाप्त हो जाएगा ? मैंने किसी अन्य महिला से अभी तक शादी भी नहीं की है । क्या मैं बच्चों को छुट्टियों में घर बुला सकता हूं ।

तलाक ले लेने के बाद आप दोनों पति-पत्नी नहीं रहे । अब साथ रहना शुरू कर देने से तलाक समाप्त नहीं हो सकेगा । यदि आप चाहें तो पुनर्विवाह कर सकते हैं तथा फिर से पति-पत्नी बन सकते हैं । न्यायालय के आदेश से बच्चे पुरानी पत्नी को सौंप दिये जाने के बाद भी बच्चों के पिता तो आप ही हैं । न्यायालय से अनुमति लेकर या उनकी मां की अनुमति से आप बच्चों को अपने पास रख सकते हैं ।

एम. एल. अग्रवाल, सुल्तानपुर : मैं ग्रामीण बैंक में कैशियर पद पर कार्य करता हूं । इस पद पर कार्य करते हुए मैं



किसी भी जनरल या फायर इंश्योरेंस कंपनी के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना चाहता हूं। क्या कानून इसकी इजाजत देता है।

साधारणतया बैंक का खजांची पद पूर्ण-कालिक सेवा है। इस सेवा में रहते आप अन्य कोई कार्य नहीं कर सकते। यदि आपके प्रबंधक अनुमति दें तब ही आप किसी बीमा कंपनी के अभिकर्ता के रूप में काम कर सकते हैं। आपके सेवा-नियम आपको अभिकर्ता के रूप में काम की अनुमति देते हों तो बात अलग है। अपने बैंक के सेवा-नियमों से इस संबंध में मार्ग-दर्शन लें।

अशोक, राजपथ पटना : मैं पटना में रहता हूं। एक दूसरा व्यक्ति जो कानपुर में रहता है, एक विवाद के कारण मुझ पर मुकदमा चलाने की धमकी दे रहा है। क्या वह कानपुर से मुझ पर मुकदमा चला-कर न्यायालय में उपस्थित होने को बाध्य कर सकता है। क्या उसे पटना आकर मुकदमा दायर करना पड़ेगा।

न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का निर्धारण, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा १५, १६, १७, १८, १९ तथा २० के अंतर्गत होता है। आपके पत्र से मुकदमे के कारण या आधार का उल्लेख न होने के कारण यह नहीं बताया जा सकता कि किस न्यायालय में मुकदमा चल सकेगा। उस न्यायालय में जिसके अधिकारक्षेत्र में प्रतिवादी रहता हो, मुकदमे का कारण बना हो, या संपति जिसके बारे में मुक-दमा होना हो, स्थिति हो, तब मुकदमा चलाया जा सकता है।

गुरनाम सिंह, पंजाब : न्यायालय की मानहानि का मुकदमा उच्च न्यायालय के किसी भी जज को सुनाने का अधिकार है या इसके लिए एक से अधिक जज होने चाहिए। यदि न्यायालय का एक जज कोई कार्यवाही शुरू कर दे तो वह कहां तक वैध होगी!

न्यायालय मानहानि अधिनियम की धारा १८ उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को मानहानि की कार्यवाही प्रारंभ करने से नहीं रोकती। उक्त अधि-नियम की धारा १७ के अंतर्गत न्यायालय की मानहानि के लिए दिया जानेवाला-नोटिस उच्च न्यायालय के साथ न्याया-धीश द्वारा दिया जा सकता है। परंतु इस

प्रकार के मामलों में अंतिम निर्णय उच्च न्यायालय की खंड पीठ या उससे बड़ी पीठ द्वारा ही दिया जा सकता है। (इस संदर्भ में पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा 'न्यायालय बनाम कस्तूरी लाल' क्रिमीनल ओरिजिनल नंबर १६ सी. आर. ए. न. वर्ष १६७८ में दिया गया निर्णय उल्लेखनीय है।

रमाशंकर, गाजियाबाद : मेरे एक मित्र गाजियाबाद में रहते हैं। मकान का काफी किराया उन्हें अपने मकान-मालिक को देना था। मकान-मालिक ने उनसे पुराना किराया ५० रुपया प्रतिमास की किश्त में लेना स्वीकार कर लिया। अब वे अपना वर्तमान किराया तो लगातार देते हैं पर ५० रुपया माहवार की किश्त कई बार नहीं दे पाते। क्या मकान-मालिक उक्त किश्तों के अदा न करने पर किराया न दिया जाना मानकर मकान खाली करवाने की कार्यवाही कर सकता है।

मकान-मालिक द्वारा पुराने किराये की किश्त तयकर लेने पर वह राशि किराया न रहकर कर्ज का स्वरूप ले लेती है। रकम अदा नहीं करना, किराये की राशि नहीं दिया जाना, नहीं माना जा सकता। किश्त न दिये जाने के आधार पर मकान खाली करवाने की कार्यवाही संभव नहीं है। कानून की इस स्थिति को देश के सर्वोच्च न्यायालय ने 'राम देव बनाम श्री उमराव सिंह' के मामले में स्वीकार किया है। न्यायाधीश श्री आर. एस. सरकारिया एवं न्यायाधीश श्री ओ. चिन्नप्पा रेड्डी द्वारा दिये गये उक्त निर्णय के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय इलाहाबाद ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील स्वीकार करते हुए कानून की स्थिति स्पष्ट कर दी है।

सत्येंद्रकुमार श्रीवास्तव, देवरिया : मैं एक ऐसी बिल्डिंग में रहता हूं जो एक सोसायटी के नाम एलाट है। सोसायटी ने यह बिल्डिंग अपने कर्मचारियों को रहने के लिए दी हुई है। मेरे अभिभावक सोसायटी के कर्मचारी होने के नाते गत बारह वर्ष से इस बिल्डिंग में रह रहे हैं और इसके किराये का भुगतान कर रहे हैं। अब मेरे अभिभावक रिटायरमेंट की अवस्था में हैं। हमारे पास स्वयं का कोई मकान नहीं है। क्या एसा कोई उपाय है जिससे इस बिल्डिंग का वह हिस्सा जिसमें मैं रहता हूं, मेरे नाम एलाट हो जाए तथा उसका किराया मैं अदा करता रहूं।

सोसायटी के कर्मचारी के रूप में आपके अभिभावक को मिली सुविधा उनके सेवा निवृत होने के बाद नहीं चल सकती। कानून आपके किरायेदार बनने के अधिकार को स्वीकार नहीं करता। आप अब जो किराया दे रहे हैं, वह आपके अभिभावक द्वारा दिया माना जाता है तथा इससे आपको कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता। उचित तो यह है कि आप अपने अभिभावक के सेवा निवृत होने से पूर्व अन्यत्र किसी मकान की व्यवस्था कर लें। ●

जिंदगी

हम को ही क्यों मिली है अपवाद जिंदगी ?
इस जीभ की बस्ती में बेस्वाद जिंदगी

जिस तरह जिंदा रहने का अहसास हो हमें
और मौत के खबर की हो प्रतिवाद जिंदगी

हर लम्हे मुहैय्या है शहादत सलीब को
फिर क्यों है गिड़गिड़ाती-सी फरियाद जिंदगी

जो हो रहा है उसका किताबों से नहीं मेल,
हर सच का एक गलत-सा अनुवाद जिंदगी

ऐ काश कि अभी भी हासिल हो कुछ हमें,
वरना कहेंगे लोग थी बकवाद जिंदगी

–राजा दुबे–
सूचना-प्रकाशन विभाग झाबुआ, म. प्र.

रेत पर . . .

शब्द भर रहती रही यह जिंदगी
अर्थ से बचती रही यह जिंदगी

इक मिटे विश्वास की उंगली पकड़
नींद में चलती रही यह जिंदगी

सिंधु बनने की कसक मन में लिये
रेत पर बहती रही यह जिंदगी

दर्द के कुछ फूल चुन-चुनकर यहां
शीश ही धुनती रही यह जिंदगी

संस्कारों की बखारी में पड़ी
उम्र भर घुनती रही यह जिंदगी।

–शिवनारायणसिंह–
४०४, हैदरगढ़, बाराबंकी (उ. प्र.)

काट रहे हैं

बनकर बहेलिया ये उमर काट रहे हैं
हम अपने उड़ानों के ही पर काट रहे हैं
कमजोर छत से आज भी एक ईंट गिरी है
कुछ लोग फिर भी छत पे गदर काट रहे हैं
तब तो हमारी जीभ को काटा था दांत ने
इस बार हमें मौन अधर काट रहे हैं
दो चार हादसों से ही अखबार भर गये
हम अपनी उदासी की खबर काट रहे हैं
नन्हीं लहर न काट सके, जो कि आज तक
दावा है उन्हीं का कि भंवर काट रहे हैं
अब तो जहर से दोस्ती यों हो गयी कि हम
ओझा के मंत्र का ही असर काट रहे हैं

–कुंअर बेचैन–
१३३, पुलिस चौकीवाली गली, सुभाष द्वार, गाजियाबाद

हवा

आज आयी है कहीं से दौड़कर पछुआ हवा
या अंधेरी रात का दिल तोड़कर पछुआ हवा

है रुआंसे इस नदी के पेड़ के पत्ते सभी
जब से आई चार पत्ते तोड़कर पछुआ हवा

इस तरफ पत्थर हंसे हैं देखकर यह वारदात
जबसे आयी वह पहाड़ी छोड़कर पछुआ हवा

गांव में पनघट की चूड़ी अब खनकना बंद है
आयी टेसू की कलाई मोड़कर पछुआ हवा

सांतिए पर पाहुने के पैर अब पड़ते नहीं
आई जंगल से कलेजा जोड़कर पछुआ हवा

–सनत मिश्र–
देवी मंदिर तालाब, इटारसी (म. प्र.)

ताश को घर

• अलका उपाध्याय

'और कैसे कहूं !' शब्द सिर्फ होंठों से नहीं फिसले। गुस्सा, रुलाई, आवेश जाने कितनी चीजें मिल-जुलकर उमड़ीं जिन्हें रोकने को होंठ पर दांतों की पकड़ महसूस हुई।

एक असहाय, निर्जीव-सा हाथ कंधे पर महसूसा। उसने आश्वस्त करने को हाथ कंधे पर रखा, लेकिन ऐसा कुछ भी उस स्पर्श ने 'कन्वे' नहीं किया। उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फेरता वह सामने पत्थर की मानिंद खड़ा था। उसके शब्दों में बार-बार कुछ रटे-रटाये वाक्य थे... "मैं तुम्हारे साथ ही रहूंगा, जिंदगीभर साथ रहना है अब तो!"

साथ रहने की बात पर जब उसने कहीं भी चलने की बात कह दी, तो वह अचकचाकर पीछे हट गया। "नहीं, ... जा तो मैं कहीं नहीं सकता!" दो कदम पीछे हटकर वह जिद्दी बच्चे की तरह एक अजब ढिठाई ओढ़े सड़क पर खड़ा था।

दूर से दो आदमी आते दिखायी दिये, तो रुलायी खीझ में बदलने लगी। पास आकर क्या समझेंगे वे? यही कि ये लोग कुछ गलत हैं।... पति-पत्नी तो वे कहीं से नहीं लगते... अगर चुप दिखे, तो और समझेंगे कोई गंदी बात कर रहे हैं, तभी न चुप हुए हैं! उसने सामने देखा, उसकी ढिठाई में कोई अंतर नहीं आया। वह झुंझलायी और पास से गुजरते लोगों को सुनाने के अंदाज में बोली, "इतने कम पैसों में तुम चलाकर दिखा दो घर! मेरे

क्श का तो नहीं है !" यह बात कहकर उसने उन अजनबियों पर यही जाहिर करना चाहा था कि वे लोग शादीशुदा हैं और घर के खर्चे को लेकर दोनों में चलते-चलते तना-तनी हो गयी है।

फिर देखा, वह पत्थर की तरह खड़ा था। लगता ही नहीं था कि इस आदमी से वह सालभर बाद मिल रही है।

वह भूल गयी कि बात क्या हो रही थी। फिर बिना सोचे ही अचानक कह बैठी, "सुना है, पीछे दाढ़ी बढ़ा ली थी ?"

"हां,"

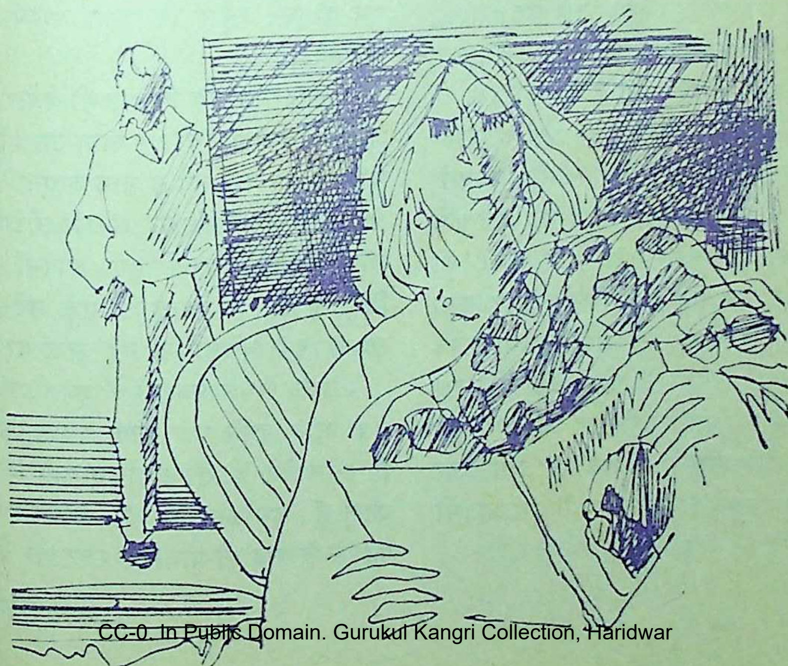
"फिर ?"

"कटा ली,"

"क्यों ?"

"किसी को चुभती है ।"

वह एकदम सकपका गयी। सोचा, पूछूं, किसे चुभती है ? नहीं पूछा। वह चुप-चाप दो कदम चली। पीछे-पीछे वह भी चला आया। पास आकर उसने हाथ पकड़ धीरे से अंगुलियां दबा दीं, "देखो, इतने साल अलग रह लिये, अब जिंदगीभर साथ ही रहना है।" आंखों में एक चमक। याद आया, ऐसी चमक को वह मदिर सम्मोहन और प्रेम के मिले-जुले भाव कहता था। उसकी भाषा ऐसी होती, लगता बात नहीं कर रहा, बल्कि किसी उपन्यास या नाटक से मारा हुआ डॉयलॉग दुहरा रहा है। बहुत पहले उसने पूछा था, "किस फिल्म का डॉयलॉग मारा है ?" तो वह एकदम झुंझला उठा था, "ऐसे डॉयलॉग फिल्मों में नहीं लिखे जाते।



यदि कुछ कहना हो है तो कहिए मैंने अपनी कौन-सी कहानी से लिया है, या किसमें लिखने जा रहा हूं।"

उसे अपने लेखक, कवि होने का बहुत गर्व था। लेकिन यह गर्व क्यों स्वाभिमान बनकर उसके समूचे व्यक्तित्व में शामिल नहीं था? क्यों नहीं था? कागजों और स्याही की दुनिया के बाहर वह दूसरों के सहारे को तरसता एक निहायत बेचारा आदमी था, जिसे लड़ना ही नहीं, प्यार करना भी नहीं आ सका था। वह ऐसे बेचारेपन से बात करता कि देखनेवाले को अचरज ही होता। कोई समझ ही नहीं सकता कि जो वह कह रहा है, वाकई वह चाहता भी है। जो चाहता है, उसे सच-सच कहने की हिम्मत उसमें कभी नहीं हुई थी।

अब, जब सब कुछ पीछे छूट गया है, वह क्यों मनायेगी उसे, रूठा रहे। वह आखिर लगती ही क्या है?

इस घूमती धरती पर असंख्य जीवधारियों में से दो, वे। कैसी 'क्रीचर्स' की-सी जिंदगी; रेंगती-सी। कहां तो कंधे से कंधा मिलाकर इस सारे अंधेरे को पलटकर रख देने का संकल्प, और कहां सपनों पर गिरी यह अंधेरी यवनिका। उस अंधेरे परदे के पीछे कितने बरस तकिये में मुंह गढ़ाकर बिताये, कोनों में छुपे हुए। कैसे समूचे पूरेपन पर जंग लगा लिया था उसने! केवल अकेले इस आदमी के कारण।

"क्या सोच रही हो?" उसने धीरे से छुआ था। क्या कहे कि क्या सोचा? यों सोचने को रहा ही क्या? कुछ नहीं कहा।

"इस क्षण में इतनी तटस्थ रहोगी? कितने दिन तो हो गये ऐसे उदास रहते-रहते।" बहुत व्याकुल रहने का भाव बेचारेपन के साथ चेहरे पर तिर आया।

इस बेचारेपन पर हमेशा से कोफ्त होती रही थी उसे। आदमी एक आत्मीय क्षण न जी रहा हो, बल्कि कटोरा लेकर हकला रहा हो, 'जो दे उसका भी भला, न दे उसका भी भला।' कितनी बार चाहा था कि वह इस आदमी को झिंझोड़कर जगा दे और कहे कि यह बेचारापन ओढ़े-ओढ़े तुमने अपनी जिंदगी का आधा हिस्सा गुजार दिया। जिंदगीभर पुत्र ही बने रहोगे कि कभी आदमी भी बनोगे?

जानती थी कि कितना भी बेचारापन ओढ़े, पर इस सच को सह पाना उसके लिए मुश्किल है। वह यहीं से भाग जाएगा और अपना-सा मुंह लेकर वह अकेली लौटेगी। काकू कहेंगे, "परखे हुए आदमी को फिर से क्या परखना? सड़े अंडे को खाकर पता चलेगा कि यह सड़ा था?"

काकू उसके ख्यालों के हमसफर रहे हैं। और इतने बड़े काकू, बात करते हैं, मान देते हैं, तो इसलिए नहीं कि वे काकू हैं। इसलिए कि उम्र के इतने बड़े फासले के बाद भी मानसिक स्तर पर कहीं

एक-सी बात कर पाते हैं। कर पाते हैं कि नहीं, पर काकू अपना चश्मा आंखों से हटा-कर, माथे पर टिकाकर, पलकें मूंदकर बातें सुनते हैं और चेहरे पर हमेशा इस तरह की बात, कि वह जो कुछ कह रही है, कोई इतनी विद्वतापूर्ण बात है कि हम-उम्र लोगों से नहीं, काकू से ही की जा सकती है।

यह 'सपोर्ट' ही थी कि वह इस रेंगते आदमी के साथ जा खड़ी हुई थी। तब भी काकू ने ही सबसे पहले शाबाशी दी थी—"मेरे बेटे की चॉइस अच्छी है! शी हैज सलैक्टेड दि बैस्ट।" अपने चुनाव पर गर्व हुआ था। अच्छा है, तभी काकू अच्छा कह रहे हैं। बाद में पता चला था कि काकू ही क्यों, सब उसे हमेशा हर बात पर शह देते रहे हैं। कोई भी बात ऐसी न हो कि जो उसे नापसंद हो! क्यों दिया था हमेशा ऐसा वी. आई. पी. ट्रीटमेंट! जैसे 'ग्लास-हाउस' में नाज से लगा कोई नाजुक-सा पौधा हो—'समथिंग वैरी स्पेशल!'

'ग्लास-हाउस' के बाहर प्यासी धरती, और लू के गर्म थपेड़े। बड़े-बड़े करीलों, कांस और कटारे उसके कुम्हलाए छोटे-से वजूद पर हंसते थे। कितनी यातनाएं झेली हैं, सिर्फ इस आदमी के कारण! अच्छी खासी पेंटिंग कर लेती थी। शुरू में एक प्रदर्शनी भी लगी थी। थोड़ा-थोड़ा उसका होना लोग महसूस करने लगे थे, तभी एक दुःस्वप्न की तरह यह सामने



आया और चला गया। बाद के कुछ बरस इस हादसे पर आंसू बहाते बीते थे। रंग सूख गये थे, ब्रश कुछ झड़ गये थे... काकू के बहुत कहने पर एक पेंटिंग शुरू भी की, तो सारी रेखाएं आड़ी-तिरछी, रंग-बदरंग, जैसे कोई अनाड़ी बच्चा कैनवास पर रंग फैला गया हो। हाथ में कोई हुनर न रहा हो जैसे... सारी आकृतियां बेजान! और घंटों वह अपने इस तरह असहाय, असफल हो जाने पर बेचैन रही थी। जो भी आकृति बनती, वह इसी आदमी से मिलती थी—कोमल-कांत नहीं। क्रूर, कुटिल। कोई प्यार-व्यार जैसी चीज होती, तो जरूर वह रंग भी तसवीर से झलकता। घृणा करती होती, तो वह रंगों में ढलता ही क्यों? कितने अधूरे स्केच थे, जो इधर-

उधर पड़े रहने पर बदरंग हो गये थे ! अब जब कि सब कुछ थोड़ा-थोड़ा नार्मल होने लगा था, एक बुरे साये की तरह फिर साथ आ खड़ा हुआ था—"मैं जिंदगी-भर साथ रहना चाहता हूं !"

रेल की लाइन के किनारे के नुकीले पत्थर कहीं चुभने लगे थे। एक कंकड़ी उठाकर गढ़े में ठहरे बरसाती पानी में फेंकी। लहरें उठीं और उन दोनों की आकृति हिलती-डुलती कभी एक होती, कभी अलग। ऐसा क्या है कि इस आदमी को वह अपने अनुकूल नहीं ढाल सकी ? देखा, वह एकटक उसी को देखे जा रहा है। पूरी तन्मयता। कोई छल-छद्म नहीं। बिलकुल भला-मानस हो-जैसे। कोई अपराध-भाव नहीं। जैसे सारी गलती सिर्फ उसने की है और वह उदार पति की तरह क्षमाकर फिर बांहों में लेने को व्याकुल है। यह इतने बरस जैसे कहीं थे ही नहीं।

मन बहुत हलका-हलका हो आया। किसी बड़े मशहूर कवि की बड़ी मशहूर कविता उसने गुनगुनाने की कोशिश की। मालूम था कहेगा, "एक चीज सुनो !"

"यह पूरी कविता मुझे याद है। जब स्कूल में पढ़ती थी तब एक 'फंक्शन' में बोली थी और मुझे 'फर्स्ट प्राइज' मिला था !"

इस बात पर, जैसी कि उम्मीद थी, वह खिसियाया नहीं। झुंझलाया भी नहीं। चोरी पकड़ी गयी है का भाव भी नहीं आया, बल्कि बहुत उत्साह में भरकर बोला, "वही न जो गवर्नमेंट कालेज में हुआ था ? जिसमें आर. जी. स्वामी 'चीफ-गेस्ट' थे?—मैं भी गया था उसमें—मुझे तो कंसोलेशन प्राइज मिला था ?"

बरसों पुरानी बात पर वह फिर दुःखी हो आया। "उसमें पहले तीनों इनाम लड़कियों को मिले थे। दरअसल लड़कियों को लोग जान-बूझकर 'फर्स्ट' इनाम देते हैं कि बेचारी लड़की है", उसने कहा।

अपने तई उसने एक मात देने की कोशिश की थी, लेकिन वह इन बातों से ऊब उठी थी। जरा समझ नहीं है इस आदमी को कि बरसों बाद अपनी बीवी से मिला है और स्कूल के दिनों के इनाम को लेकर परेशान हो रहा है ! अजब बुद्धू है !

'बुद्धू!' शब्द जैसे कितनी सोयी चीजों को कुरेद गया। अच्छा-खासा डिग्री होल्डर था। प्रतिभा-संपन्न भी था। फिर उसका यह कलम बुद्दा छाप बुद्धूपन !

उस दिन भी। वह घर में कोई 'मैग्जीन' पढ़ रही थी। 'कालवेल' बजी थी। भरी दोपहर में कौन हो सकता है ? दरवाजा खोला, तो वह खड़ा था।

"पूछा नहीं तुमने, मैं क्यों आया हूं ?" दरवाजे पर खड़े-खड़े बौखलाये-से अंदाज में बोला था।

"आये हो, तो आये ही हो, इसमें पूछने की-सी क्या बात है ?"

"मैं इसलिए आया हूं . . ।"

"एक्सप्लेनेशन की क्या जरूरत है ? हम आपसे पूछ नहीं रहे हैं। आप आये

हैं, क्योंकि आ सकते हैं और बाकायदा अधिकारपूर्वक . . . ।''

''यह बाल लाया है, मुझे !'' उसने हाथ में लिया बाल उठाक दिखाया। समझ नहीं सकी—किसका बाल है और क्यों उसे बुलाकर लाया है।

''मेरी टाई पर लगा था।'' उसने आखिरी पत्ता फेंका।

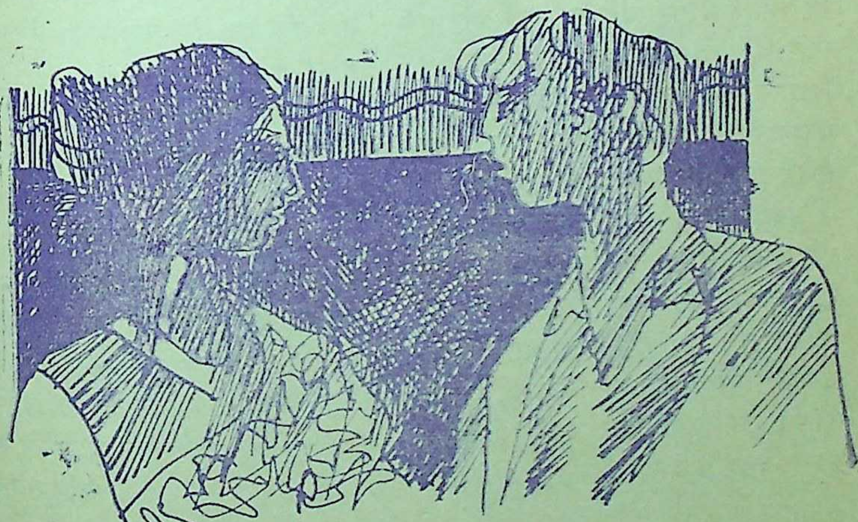
वह निहायत सीधे अंदाज में सपाटबयानी कर रहा था, ''दफ्तर में काम करते-करते लगा, कुछ गरमी है, टाई की नॉट ठीक करने लगा, तो यह बाल दिखा। मैंने घबराकर देखा कि किसी ने देखा तो नहीं है, तब एकदम उठकर चला आ रहा हूं।'' कहने-सुनने में लगा था, जैसे किसी का कत्ल करने के बाद किसी को अपने हाथों में कोई दाग दिखायी दे गया हो।

''तुम्हारी टाई तक तुम्हारा बाल कैसे पहुंच सकता है !''

''यही तो मैं नहीं समझ पा रहा हूं।'' वह सहमत था, पर परेशान भी कि कैसे हुआ यह। वह पास बैठी, हंसती, उसके भोंदूपन का मजा लेती रही थी।

सांझ के घिरते साये में उसने देखा वह निर्णय की प्रतीक्षा में बैठा है कि वह क्या चाहती है ! जिंदगीभर संग रहना है, पर एक छत के नीचे रहने को तैयार नहीं है। भूख लगी है, रोटी खाने को मुंह नहीं खोलूंगा-जैसी जिद किये बैठा था। वह झुंझला गयी, नहीं संग रहना, तो फिर यह राग अलापने की क्या जरूरत थी।

वह अपने ही हाथों को देखने लगी। दोनों कलाई कांच की लाल-सुनहरी चूड़ियों से भरी थीं। चांदी के नये-नये बिछवे अंधेरे में चमक रहे थे। सुबह ही



आग तो बुझ जाएगी,
बस इक धुआं रह जाएगा
ये धुआं भी रफ्ता-रफ्ता
फिर कहां रह जाएगा
—अफ़जल मिनहास

वह मंदिर में मांग भरकर लाया था—छुपकर शादी करने-जैसा चौकन्नापन दोनों के बीच ठहरा था। मंदिर खाली था। उसने कई बार इधर-उधर देखा और जेब से डिब्बी निकाल, माथे पर एक बिंदी लगा दी थी। उसने देखा, आंखें भरी हैं और वह मांग में सिंदूर भर रहा है।

आज वह बहुत भावुक हो रहा था—अपने साथ को दोबारा से रिन्यू करने की धुन, संकल्प सब चेहरे पर उतर रहा था। लगा-जैसे वही कहीं गलत थी। दोनों की मिसअंडरस्टैंडिंग ही ज्यादा थी। वहीं सीढ़ियों पर धीरे-से उसके पांव छू लिये थे। वह सारा दिन। तपती धूप जैसे बिछलती चांदनी हो गयी थी। पास बैठा वह आगे की योजनाएं बनाता रहा था। वह सुनती रही और जागी तो आंखों में बादलों के पंखोंवाला एक घर तिरने लगा था। इतने दिन उसके बिना कैसे रही, वह समझ नहीं सकी थी। यह बात वह कहना चाहती थी, वह कह चुका था। उसने उसको कितना बदनाम किया है, कितने लांछन लगाये हैं, सब भूल चुकी थी। उसका सिर कंधे पर टिका था। कितनी देर वक्त थम गया था, वह ही बोली, "अब कभी नहीं करना पहले-जैसी बात।"

जिदगीभर संग रहने की बात उसने पिछले दस घंटों में सौ दफे जरूर कही थी, और अब वापस भाग जाना चाहता था। देखें कि वह क्या करती है? संग नहीं रह सकता। अभी नहीं। फिर देखेंगे।

कानों में धीमे-धीमे शब्द कितने सपने दिखा गये थे; पिछले बरसों में लोग उसके बारे में पूछते थे, "कहां है? क्या करते हैं?" उसके पास एक संदेहास्पद चुप्पी के अलावा कोई जवाब नहीं था। लोगों की नजरें थीं जिससे वह घबराती, और चुप ही रह जाती थी। आज जबकि एक मौका था, जिसे खुद आगे बढ़कर उसने दिया था, वह कतरा रहा था।

एक संघर्ष की स्थिति वह महसूसता खड़ा था। अचानक उस अंधेरे में वह उसके पत्थर-जैसे सीने से जा लगी—"और कैसे कहूं?" बरसों का अकेलापन इस एक बात में फूटा था।

वह धीरे से हट गया।

वह फिर पहले की तरह वापस हो लिया।

पस्त कदमों से चलते-चलते। सामने नुक्कड़ से उसके घर का रास्ता था। वह बिना कुछ कहे मुड़ी। अपने घर की चौखट पर पांव रखते हुए लगा—दिनभर वह ताश के पत्तों से ही घर बनाती रही थी।

—४०७, कल्पनानगर, पटेल मार्ग, गाजियाबाद-२





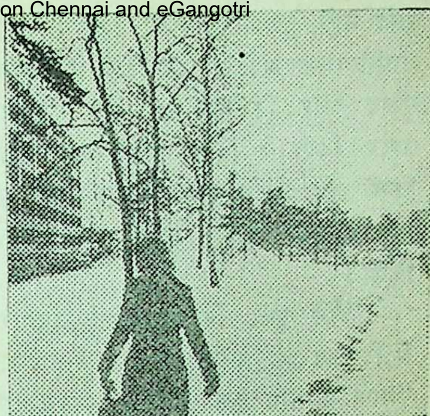
स्टाक होम का प्रसिद्ध कसीनो कुरसाल

छाया : वी. एम. तिवारी

जब झीलें भी बरफ से ढंक जाती हैं तब उनमें फिसलने का अपना मजा है।

"तुम किसी 'समूह-विवाह' परिवार को जानती हो?" मैंने क्रिस्तीना से पूछा, क्रिस्तीना एक फैक्टरी मैनेजर की सेक्रेटरी थी। बिना किसी संकोच, वरन हल्की-सी मुसकराहट के साथ, उसने उत्तर दिया, "नहीं, हां अखबारों में कुछ समय पहले इसके विषय में पढ़ा अवश्य था। यह बात मुझे अनोखी जरूर लगी, किंतु रुचिप्रद नहीं।"

"समाज की मूल इकाई को बदलने-



ज़िंदगी फिर मेरे करीब है

• विश्वमोहन तिवारी

वाला यह प्रयोग, इतना क्रांतिकारी प्रभाव-वाला है कि सफल होने पर समाज की सारी बनावट, सारी रूपरेखा बदल देगा। संभवतः मानव के सामाजिक इतिहास में विवाह-संस्था के बाद इतना सांगोपांग परिवर्त्तनकारी प्रयोग नहीं किया गया है, और तुम कहती हो कि उनमें तुम्हें रुचि नहीं है।"

भ्रमण करानेवाली गाइड से लेकर संवाददाताओं तक जब भी किसी से यह प्रश्न पूछा गया उसने इसमें अनभिज्ञता ही प्रकट की। विवाह के विषय में मुझे यह अवश्य मालूम हुआ कि आधुनिक प्रथा के अनुसार युवक और युवतियां बिना औपचारिक विवाह किये बिलकुल विवाहित जोड़ों की तरह रहते हैं। यह वे लगभग १६–१७ वर्ष की उम्र से ही शुरू कर देते हैं और जब उन्हें संतान की आवश्यकता महसूस होती है, तब वे अकसर विधिवत विवाह कर लेते हैं।

मैंने लेनर्ट एरिक्सन से, जो कि लगभग आठ वर्षों से बिना विवाह के अपनी पत्नी के साथ रह रहा था पूछा, "जब तुम लोग विवाहित की तरह रहते हो, तब विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

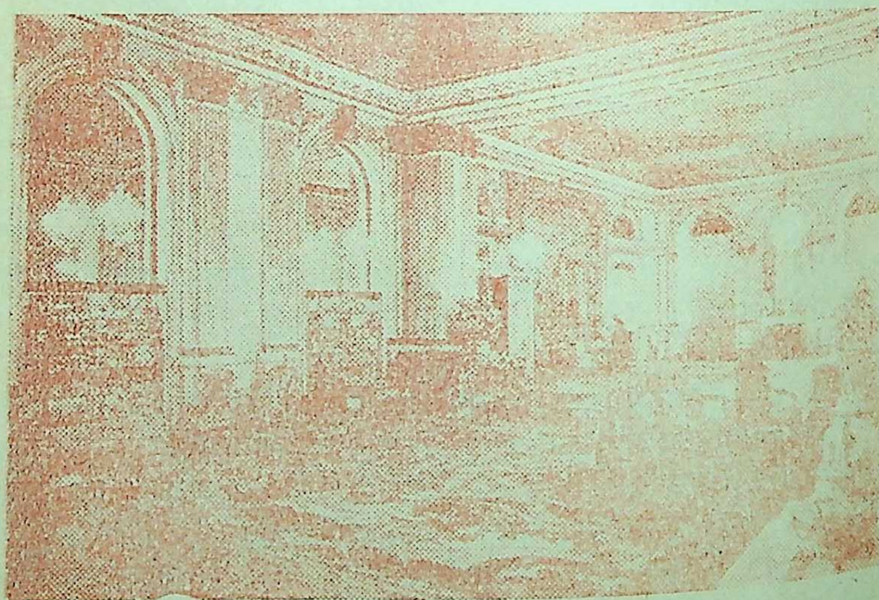
"हम लोगों को अनावश्यक बंधन

पसंद नहीं, इस तरह साथ रहने से, जो आपसी समझ और संबंध बनते हैं, वे अधिक सुखद और टिकाऊ बनते हैं," उसने उत्तर दिया। "किसी भी समय यदि किसी को अलग होना हो, तो विशेष दिक्कत नहीं होती" उसने और स्पष्ट किया।

"मैंने पूछा कि सामान के बटवारे में दिक्कत हो सकती है। उसने कहा, "मुख्य सामान हम लोग अधिकार की आपसी समझ के साथ खरीदते हैं। इसमें आयकर की बचत हो, ऐसी बात भी नहीं क्योंकि सरकार ऐसे विवाहित जोड़ों को आयकर के लिए विवाहित ही मानती है। मैंने फिर पूछा, "इस तरह की आपसी समझ और निर्बधता का विवाहेतर (यदि इसे विवाह मान लिया जाए) संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?" उसने जवाब दिया, "अपेक्षा तो विवाहेतर संबंधों की नहीं होती (हालांकि कुछ हद तक होते हैं) और इस विषय में निष्ठा रखी जाती है तथा जांच पड़ताल नहीं की जाती। दोनों के भिन्न सेक्स के मित्र होते हैं, तथा साथ ही अकेले मिलने की पूर्ण स्वतंत्रता भी।"

एक बात और गौर की। पुरुष स्नानघरों में बिना पर्दा के, निर्वस्त्र सामूहिक स्नान करते हैं। नारी स्नानघरों में भी यही प्रथा है। स्वीडन में माता-पिता जब कपड़े बदलते हैं, तब तौलिया आदि

विशाल राजप्रसाद : सभी कुछ यथावत है



लपेटकर या कमरा बंदकर नहीं करते। स्वीडन में संपूर्ण शरीर रचना के विषय में ज्ञान, शिशु अवस्था से ही देते हैं।

फेर से बाहर

योरान स्वेसंन जो एक सफल इलेक्ट्रानिक इंजीनियर हैं, से पूछने पर पता चला कि वे शिक्षक का कार्य अधिक पसंद करते हैं। मैंने उससे पूछा, "क्या शिक्षक का वेतन और सम्मान इंजीनियर से अधिक होता है ?" इसके स्वीकारात्मक उत्तर से मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। उसका कहना था, "यद्यपि इंजीनियर का कागजी वेतन शिक्षक से कहीं अधिक होता है, किंतु स्वीडन की कर प्रणाली से जो कारगर वेतन बचता है, उसमें विशेष अंतर नहीं होता। और जहां तक प्रतिष्ठा का संबंध है, उसकी विभिन्न श्रेणियों की संख्या में बहुत कमी हो गयी है। शिक्षक को अवकाश बहुत मिलता है, और वह भी गरमी के सुहावने मौसम में। मुझे पाल नौका (सेलिंग) का बेहद शौक है, जिसे मैं इंजीनियर होकर मनभर नहीं कर पाता हूं।"

गरमी की प्रफुल्लदायक ऋतु में अपने जीवन की बैटरी को पुनरावेशित (रीचार्ज) करने के लिए, सारे स्वीडन में चार सप्ताह के लिए दफ्तर, फैक्ट्रियां और कई किस्म की दूकानें भी बंद कर देते हैं, देश की सुरक्षा के लिए नितांत आवश्यक रक्षा संस्थानों में भी न्यूनतम कर्मिकों के अलावा सभी को गरमियों में छुट्टी देते हैं।



झीलों पर बसा शहर

स्ताकहोल्म गरमी में, हरित-भूमियों, रंगीन फूलों से सजे बागों और सर्वविद्यमान मैलारिन झील के लहराते पानी के साथ अलंकृता नव-यौवना-सा लुभावना लगता है। मैलारिन झील स्ताकहोल्म को जैसे सब जगह से घेरे हुए है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक द्वीप हैं, जो असंख्य पुलों द्वारा जुड़े हुए हैं। यह झील, ये द्वीप और ये पुल स्ताकहोल्म को एक विशिष्टता प्रदान करते हैं, एक अनोखा मनोहर नगर बनाते हैं और उसका अत्याधुनिक रूप जैसे उसे भूत तथा भविष्य के बीच पुल बनानेवाला नगर बनाता है। मीठे पानी की मैलारिन झील तथा खारे पानी की बाल्टिक सागर की खाड़ी 'साल्ट-

श्यन' में लगभग ७० द्वीपों पर बसा आधुनिक स्ताकहोल्म प्राकृतिक सौंदर्य में मुझे वेनिस से अधिक आकर्षक लगा ।

जीता-जागता संग्रहालय--स्कांसन

स्वीडन में औद्योगिक विकास इतनी तेजी से हुआ कि न केवल १००-२०० वर्ष पुरानी वस्तुएं संग्रहालयों में देखी गयीं, वरन ६०-७० वर्ष पुरानी भी । स्ताकहोल्म का स्कांसन सभी अर्थों में जीवंत है ।

स्वीडन के ताजे इतिहास की अजीब बातें

कोई १०० वर्ष पूर्व ही गांवों के लोग ४-६ महीने के लिए रोटी इकट्ठी बनाकर रख लेते थे। इस मजबूरी से उनके दुष्कर जीवन का थोड़ा बहुत अनुमान लगाया जा सकता है। सारा परिवार एक ही बरतन में 'सूप' अथवा 'स्ट्यू' खाता था, किंतु लकड़ी की अपनी-अपनी चम्मचों से। और चम्मचों की सफाई चाटकर की जाती थी। उनके बिस्तरों की लंबाई बमुश्किल ४ फुट होती थी। लोग इनमें उकड़ूं न सोकर सीधा सोते थे और ऊपरी धड़ तथा सिर लगभग बैठने की-सी मुद्रा में रखते थे।

गमला उप्साला

स्ताकहोल्म से लगभग १२५ कि. मी. दूर वाइकिंग के समय की स्वीडन की राजधानी गमला (पुराना) उप्साला भी एक अनोखा आकर्षण का केंद्र है।

गमला उप्साला कोई सात सौ वर्ष से भी अधिक पुराना एक सभ्य परंपरावाला शहर है। यूरोप के पहले विश्वविद्यालयों में से एक यहां का विश्वविद्यालय है। वाइकिंग के जमाने में यह स्वीडन की राजधानी था। वाइकिंग एक जबरदस्त किस्म के नाविक थे। उनकी पताका सारे अंधमहासागर में फहराती थी। यहां तक कि नदियों द्वारा उन्होंने रूस के भीतर तक अपना साम्राज्य फैलाया था। कुछ लोगों का दावा है कि वे कोलंबस से सैकड़ों वर्ष पूर्व अमरीका पहुंचे थे। किंतु अचरज कि अपने बल पर इतना प्रभुत्व जमानेवाले वाइकिंग उस सामंतशाही युग में अपनी राज्य-प्रणाली में गणतंत्रीय थे। मंत्रणा करने के लिए वे स्तूपों पर बैठा करते थे।

संभवत: उनका विश्वास था कि स्तूप पर बैठने से उनमें उन पूर्वजों का विवेक आ जाएगा। उनके निर्णय बहुमत पर निर्धारित होते थे। गमला उप्साला में तीन स्तूप अभी तक विद्यमान हैं। वहां घूमते हुए स्टिग ने संकेत किया कि वह होटल, वाइकिंग संस्कृति का एक छोटा-मोटा संग्रहालय भी कहा जा सकता है, स्वीडन का वह एकमात्र होटल है, जहां शहद से तैयार बियर-मीड–मिलती है।

वहां जाने पर देखा, उस होटल में काफी भीड़ थी। खाली टेबल ढूंढ़ने के बहाने सारा होटल घूम डाला। प्रागैतिहासिक हथियारों से लेकर वाइकिंग-हथियार तक, वाइकिंग लोगों के जिरह बख्तर, पहनावा और उनके मदिरा-पात्र, उनके जमाने के नक्शे इत्यादि देखने को

मिले । एक-एक दल अथवा मंडली एक ही सींग से बारी-बारी से मदिरा पान करते थे। हम लोगों ने भी वाइकिंग परंपरा से एक ही सींग से मीड का पान किया। वह सींग चांदी से मढ़ा था और उसमें से जिन विश्वविख्यात व्यक्तियों ने पान किया था उनके नाम लिखे थे। वाइ-किंग लोग मदिरापान का प्रारंभ 'स्कौल' (चियर्स के स्थान पर) कहकर करते हैं (स्वीडन में अभी भी यही प्रथा है) 'स्कौल' का शाब्दिक अर्थ है 'खोपड़ी।' और यह उस पुराने समय का द्योतक है, जब उनके पूर्वज खोपड़ियों में भरकर मदिरा पान करते थे। यह वाईकिंग संस्कृति का भी अच्छा प्रतीक माना जा सकता है (खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ, मगर, सिर पर कफन बांधकर)

रात की रंगीनियां

स्ताकहोल्म में अवैध संतान को वैध समझा जाता है, कलंक नहीं। इसीलिए वहां के नाइट क्लबों में यौन-प्रदर्शनों पर बिलकुल प्रतिबंध नहीं है। मंच पर वे जिंदा यौन-क्रिया दिखलाते हैं, और (नाटक के बहुप्रचलित सिद्धांत-दर्शकों का प्रदर्शन में भाग लेना—के अनुसार) उस मंच की नग्न सुंदरी दर्शकों में से किसी दर्शक को आमंत्रित कर उसके साथ मंच पर यौन-क्रिया करती है।

यौन प्रदर्शन के अतिरिक्त भी स्ताक-होल्म में नाइट-लाइफ है, संगीत, नाटक, कला आदि सांस्कृतिक समारोहों से लेकर,

घर की नीची छत तले घुटता है दम
आसमां को ओढ़ के सोया करें
—मलका खुर्शीद

मात्र होटल गमन तक। दिन में गंभीर दिखनेवाला स्ताकहोल्म रात में झील की बाहों में जगमग करने लगता है। सारी पाश्चात्य संस्कृति में होटल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। होटलों की अपनी परं-पराएं और विशेषताएं होती हैं। यहां पति-पत्नी दोनों के काम करने का परि-णाम यह हो गया है कि घर के अतिथि सत्कार का कार्य होटलों ने ले लिया है।

छोटा-सा स्मृति पत्थर

कितना आनंददायक समय था, घुमक्कड़ी का, लगता है कि काश वापस आ सकता। उस समय याद आती है नोबेल पुरस्कृत स्वीडी कवि पेर लागेरक्विस्ट की कविता :

जिसे मैं जी चुका वह पलटकर नहीं आता
लेकिन जिंदगी फिर मेरे करीब है

एक और नोबेल पुरस्कृत स्वीडी कवि हैरी मार्टिसन की कविता :

'समंदर से ढकी चट्टान
गिनती है लहरों को
भूल जाती है कहां तक गिना
दुबारा गिनना शुरू करती है
अंत में लहरों से घिसकर
बनकर रह जाती है
एक छोटा-सा स्मृति पत्थर

—उप वायु सलाहकार, भारतीय उच्चायोग, लंदन

चौराहा चरित्र

• रामावतार 'चेतन'

हमारी सांस्कृतिक परंपरा रही है कि जो अधिक शक्तिशाली है, अधिक बुद्धिमान है, अधिक चालाक है, वह हमेशा दाहिने चलता है । कहावत है—वे अमुक के दाहिने चलते हैं। यानी अमुक यदि सेर हैं, तो वे निश्चय ही सवा सेर हैं। इसी सिद्धांत के अनुसार हमारे धर्म-शास्त्रों ने स्त्री को अबला होने के कारण वाम अंग सुशोभित करने को व्यवस्था दी है। भगवान शंकर ने इसी आधार पर पार्वती को अपनी बायीं जांघ का आसन प्रदान किया। अब यह और बात है कि आधुनिक युग की अपारवर्ती महिलाएं अबला से बला बनकर हर बात में पुरुष के दाहिने चलने लगी हैं। आखिर, शक्ति, बुद्धिमत्ता और चालाकी पुरुषों की ही बपौती तो नहीं बनी रह सकती ! अब तो जो भी हठ-धर्मी के साथ दाहिने चल पड़े, उसे बलवान मान लेने के अलावा आपके पास चारा क्या है !

दाहिने-बायें का सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाता है, रास्ता चलने में। सामान्य नियम है कि अपने बायें चलो। बड़ा सुरक्षित है बायें चलना! बांयेंवाला आपसे कमजोर तो होगा ही। आपका धक्का उसे लगा गया तो क्षमा मांगकर आगे बढ़ जाएगा। मगर दाहिनेवाला तो जबर्दस्त है। उसे धक्का लगा नहीं कि वह मुक्का जड़ देगा। इसलिए सबसे अच्छा है कि बायें से भिड़कर चलो, दाहिनेवाले से दस इंच की दूरी बनाये रखते हुए!

रास्ता चलना जितना आसान है, चौराहा पार करना उतना ही मुश्किल; विशेषकर बड़े शहरों में। आप पैदल हैं, तब तो फिर भी गनीमत है, कहीं से भी कन्नी काटकर निकल जाएंगे। किंतु आप यदि गाड़ी चलाकर ले जा रहे हैं, तो चौराहा आपके लिए 'फ्री स्टाइल' कुश्ती के अखाड़े की तरह दांतों पसीना लानेवाला सिद्ध होगा। यों तो चौराहा पार करने का एक सामान्य नियम है—'राइट इज राइट'! यानी दाहिनेवाला पहले जाएगा। पर यह नियम सामान्य होते हुए भी सर्वमान्य और सार्वभौमिक नहीं है। मसलन बंबई में तो यह 'राइट इज राइट' है, लेकिन दिल्ली में यह 'माइट इज राइट' हो गया है और कलकत्ते में 'लेफ्ट इज राइट'। कारण स्पष्ट है—बंबई में न तो भैंस है और न लाठी, जब कि दिल्ली में जिसकी भैंस, उसीकी

लाठी है और कलकत्ता में जिसकी लाठी, उसकी भैंस ! यातायात में अनुशासन का बड़ा महत्व होता है। फिर भी स्थानीय सुशासन, कुशासन, दक्षिण-पंथी शासन, वामपंथी शासन का प्रभाव चौराहे के चाल-चलन पर तो पड़ता ही है।

वाद-विवाद और अपवाद कहां नहीं होते ! चौराहों पर भी होते हैं ! वाद भले ही भिन्न हों, पर अपवाद सब जगह एक-से पाये जाते हैं। आप गाड़ी चलाने में नियम के कितने ही पक्के क्यों न हों, यदि सरेआम अपनी भलाई चाहते हैं, तो चौराहा आते ही चौकन्ने हो जाइए और दायें-बांयें का पूर्वाग्रह छोड़कर गर्दन को घड़ी के पेंडुलम की तरह घुमाते हुए सावधानीपूर्वक निम्नांकित अपवादों का परिपालन कीजिए—

१. यदि कार चौराहा पार कर रही है और उसका रास्ता काटता हुआ ट्रक आ रहा है, तो ट्रक पहले जाएगा (ट्रक और कार का बहुत निकट का संपर्क कभी सुखद नहीं होता। रहीम ने ऐसे मौके के लिए ही कहा है, 'वे डोलत रस आपने, उनके फाटक अंग !)।

२. कार के आड़े अगर घोड़ा-गाड़ी, ऊंट-गाड़ी, भैंसा-गाड़ी, बैल-गाड़ी या हाथ-गाड़ी आ रही है, तो वही पहले जाएगी (जानवर या आदमी द्वारा खींची जाने-वाली गाड़ी में ब्रेक नहीं होता)।

३. बूढ़े ड्राइवर की गाड़ी का सामना यदि जवान ड्राइवर की गाड़ी से हो गया तो जवान ड्राइवरवाली गाड़ी पहले जाएगी (जवान का पेट्रोल जल्द गरम होता है)।

४. सफेद धन की गाड़ी काले धन की गाड़ी के आड़े आये, तो काले धन की गाड़ी पहले जाएगी (पहचान ? पहचान बिल्कुल आसान है—जो पहले जाए, वही काले धन की गाड़ी !)।

५. शरीफ-गाड़ी का सामना गुंडा-गाड़ी



से हो जाये, तो गुंडा-गाड़ी पहले जाएगी (गुंडा-गाड़ी के मुंह कौन लगेगा ! सबको अपने पहियों की हवा प्यारी होती है)।

६. पुरुष-गाड़ी के आड़े स्त्री-गाड़ी हो, तो स्त्री-गाड़ी पहले जाएगी ! (लेडीज फर्स्ट !)।

७. कथाकार के जवाब में कवि की कार हो, तो कवि की कार पहले जाएगी (कवि-कल्पना के पहिए ज्यादा तेज भागते हैं)।

८. साप्ताहिक के सामने दैनिक के संपादक की कार पहले जाएगी। (उसे सप्ताह में छः अंक अधिक निकालने हैं)।

९. प्रोफेसर की कार और छात्र की कार एक दूसरे का रास्ता काट रही हो, तो छात्र की कार पहले जाएगी (सड़क पर तो छात्रों का ही राज्य है !)।

१०. अफसर तथा मातहत की कारें मुखातिब हों तो मातहत की कार पहले जाएगी (आखिर चौराहा है, किसी साले के बाप का केबिन नहीं है)।

११. कहीं टक्कर मारकर कोई क्षत-विक्षत कार लड़खड़ाती-खड़खड़ाती हुई दिखायी दे, तो वही सबसे पहले जाएगी (जा बैल, मुझे मत मार !)।

१२. यदि एक कोण से खूबसूरत नौजवान लड़की की कार आ रही हो और दूसरे कोण से नौजवान खूबसूरत लड़के की कार आ रही हो, तो दोनों एक साथ जाएंगी (ताकि बीच चौराहे पर दोनों की फिल्मी टक्कर हो जाए और इस हसीन मुठभेड़ का मजा पब्लिक बिना टिकट के ले सके)। तथास्तु !

—८१ सुनीता, १४वां माला, कफ परेड, बंबई-४००००५

इनके भी बयां हैं जुदा-जुदा

बिखरे-बिखरे हैं किसी शोख के बालों की तरह
हम तो आवारा हैं शायर के खयालों की तरह

—कामिल करैशी

किस तसव्वुर के लिए कौन-सी चादर ओढ़ें
क्या पता फिक्र को अलफाज की दुशवारी का ?

—हसन नईम

भेजा है उसने फूल तुम्हारे जवाब में
उसकी तरफ से प्यार का इकरार है, मियां!

—खुसरौ मतीन

जान लेने के तरीके किस कदर दिलचस्प हैं
जहर बरसाती है शबनम, फूल बरसाती है आग

—मुशीर झनझानवी

मेरे वजूद पे नफरत की गर्द जमती रही
मिला न वक्त उसे आंसुओं से धोने का

—शहरयार

वादा तो कर लो आज, वो झूठा ही क्यों न हो
गर कुछ नहीं तो आयें मजे इंतजार के

—इकबाल फरीद

इक आग-सी लग जाती है सोते ही बदन में
शोला-सा दहक उठता है बिस्तर कई दिन से

—नजम उसमानी

साहित्य में संजय-दृष्टि

● डॉ. पी. ए. राजु

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि परिचय, साहचर्य, आदान-प्रदान-जैसी प्रक्रियाओं के द्वारा ही स्नेह, सहयोग, प्रेम आदि प्रवृत्तियां जागृत होती हैं, चाहे क्षेत्र जीवन का हो अथवा साहित्य का हो। इतना ही नहीं, उपर्युक्त प्रक्रियाओं के अभाव में शंका, उपेक्षा, उदासी आदि मनोविकार प्रसूत होने की संभावना भी है। भारत राष्ट्र के धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो विविधता दृष्टिगोचर हो रही है, वह अनभिज्ञता या आवेश की मनःस्थिति में विरोधात्मक प्रतीत होगी। अतः भारत के साहित्य के क्षेत्र में सर्वभारतीय स्वरूप और दृष्टिकोण को प्रतिष्ठित करने के लिए एक भाषा-भाषी को दूसरे प्रांत की भाषा एवं उसकी साहित्यिक गतिविधियों से परिचित होना नितांत आवश्यक है। इसके लिए अनुवाद, आदान-प्रदान और तुलनात्मक अध्ययन आदि प्रक्रियाओं को सशक्त माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। इसके द्वारा विराट भारतीय आत्मा के वास्तविक स्वरूप को सरल एवं सरस ढंग से प्रकाश में लाया जा सकता है।

क्षेत्रीय भाषा-प्रेम

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात भारत की जन-गंगा में देशीय भाषाओं, साहित्यों, प्रांतगत विशिष्टताओं के प्रति प्रेम ही नहीं, प्रत्युत सम्मान की भावना भी तरंगित होने लगी। प्रांतीय भाषाओं के प्रचार, पठन-पाठन आदि के लिए शिक्षा-संस्थान और राज्य सरकारें दोनों की ओर से विशेष प्रोत्साहन उपलब्ध हो रहा है। भारतीय भाषा, साहित्यों के मध्य अंतः सूत्र के रूप में जो मूलभूत एकता विद्यमान है, उसे पहचानने की जिज्ञासा भी इस कारण बढ़ने लगी है। इन परिस्थियों के संदर्भ में, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में भारत के विशाल जन समूह को एक सूत्र में बांधने तथा एक मंच पर लाने के लिए जब एक देशीय भाषा के माध्यम की आवश्यकता पड़ी, तो हिंदी उसके लिए स्वीकृत की गयी। इस स्वीकृति के मूल में काम करने वाले ऐतिहासिक संदर्भ, राष्ट्रीय संकल्प, साहित्यिक और सांस्कृतिक सद्भावनाओं से प्रेरित होकर अन्य भाषा-भाषी लेखक

भी हिंदी में रचनाएं करने लगे। फलतः हिंदी के साहित्य के इतिहास में अब धीरे-धीरे सर्वभारतीय दृष्टिकोण रूपायित होने लगा है। स्तर, सहजता, विशिष्टता आदि के बहाने इस विशेषता को पंडित लोग स्वीकार नहीं करेंगे तो वह दूसरी बात है।

विविधता और विभिन्नता सें अंतर

हिंदी और हिंदीतर साहित्य, आर्य-परिवार और द्रविड़ परिवार की भाषाएं ही हैं; उसी प्रकार उत्तर-दक्षिण; पूर्व-पश्चिम की सभी भाषाओं एवं उनके साहित्यों को 'भारतीय' भी माना जा सकता है। वास्तव में विविधता और विभिन्नता में जो सूक्ष्म अंतर है, उसे समझने में प्रमाद भी नहीं करना चाहिए।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अंगरेजी भाषा, साहित्य के अध्ययन से भारतीय साहित्य वैचारिक क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में

यह शुरू से ही कहा जाता रहा है कि भारत में एक भाषा-भाषी को दूसरे प्रदेश की भाषा एवं उसकी साहित्यिक गतिविधियों से परिचित होना नितांत आवश्यक है। इस दिशा में हिंदी में जितना कार्य हुआ है, उतना शायद किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं। हिंदी में प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की न केवल मूर्द्धन्य, वरन नये लेखकों की कृतियां प्रकाशित हुई हैं और पाठकों ने उनका स्वागत भी किया है, लेकिन खेद की बात है कि अन्य भारतीय भाषाओं में हिंदी-साहित्य के अद्यतन लेखन से आंखें बंद कर ली गयी हैं। हिंदी कृतियों के नाम पर आज भी केवल गोस्वामी तुलसीदास या अधिक से अधिक प्रेमचंद की कृतियों का ही अनुवाद हुआ है। समय आ गया है कि अन्य भारतीय भाषा-भाषियों को हिंदी-साहित्य की आधुनिकतम कृतियों से परिचित कराया जाए। प्रस्तुत लेख के लेखक एक अहिंदी भाषी हिंदी विद्वान हैं, और उपरोक्त प्रश्न को उन्होंने एक दूसरे रूप में उठाया है।

——संपादक

आदि नामों को हम क्षणभर के लिए भूलकर उन सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध बृहत्-साहित्य को भारतीय साहित्य ही समझें, तो विश्व भर में कोई भी ऐसा भाषा-क्षेत्र नजर नहीं आएगा, जिसमें इतना समृद्ध, इतना वैविध्यपूर्ण साहित्य-विद्यमान हो। जिस प्रकार विभिन्न धर्मावलंबी, विभिन्न राज्यवासी, एक भारतीय संविधान को मानने के कारण भारतवासी

प्रेरित ही नहीं, अपितु लाभान्वित भी हुआ है। इसी प्रकार भारतीय भाषाएं भी अनुवाद प्रक्रिया, आदान-प्रदान आदि के द्वारा परस्पर लाभ उठा सकती हैं और तब एक प्रांत की भाषा अन्य प्रांत की भाषा के लिए बाधक नहीं, सहायक और प्रेरक सिद्ध होगी।

किसी भी स्थिति में दूसरी भाषाओं को सीखना उनके साहित्य से अवगत होना,

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.



आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ





सुपर रिन से धोया हुआ

सुपर रिन—अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

लिंटास-RIN.40-1611 HI

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

व्यक्ति और समाज के स्वस्थ और सम्यक विकास के लिए वांछित है। इतना ही नहीं, जरमन कवि गेटे के अनुसार, 'स्वयं की भाषा की वस्तुस्थिति के मूल्यांकन के लिए तो दूसरी भाषाओं का ज्ञान सही मानदंड भी प्रस्तुत करता है।'

भाषा, साहित्य से परिचित होने का तात्पर्य तो उसके सामाजिक जीवन से उसके विश्वास, विचार-धारा, मानवीय मूल्य-बोध आदि से परिचित होना ही है। विभिन्न प्रांतों, भौगोलिक स्वरूपों, प्राकृतिक दृश्य-खंडों, भाषा-भाषियों, धर्मावलंबियों के भारत-जैसे विशाल, धर्म-निरपेक्ष प्रजातंत्रात्मक राष्ट्र के नागरिकों के हितार्थ भाषा और साहित्य संबंधी आदान-प्रदान की आवश्यकता पर जितना भी बल दिया जाए, वह थोड़ा ही है। क्योंकि इसके अभाव में राष्ट्रीय-भावना, भावात्मक एकता, सह-अस्तित्व-बोध आदि केवल शाब्दिक महत्त्व तक ही सीमित रह जाएंगे। इस प्रसंग में यह भी कहना अनुचित नहीं होगा कि साठ-पैंसठ करोड़वाले भारत में सांस लेनेवाला नागरिक तब तक यह अधिकार, नैतिक रूप से ही सही, प्राप्त नहीं कर सकेगा, जब तक न्यूनाधिक मात्रा में अपने ही राष्ट्र के दूसरे प्रांत के भाषा-भाषियों से रागात्मक संबंध स्थापित नहीं कर लेता। ऐसे संबंधों एवं परिचय, प्रेम के लिए भाषा और साहित्य ही सजीव एवं उपर्युक्त माध्यम हैं। इस प्रकार के संबंध अथवा संपर्क से व्यक्ति का दृष्टिकोण स्वस्थ बनेगा, उसकी विचार-धारा पक्षधरता से भी मुक्त होगी।

भाषा विदेशी: अंगरेजी देसी

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आज मातृ-भाषा के प्रति जो अनुराग उमड़ पड़ा है, जो प्रांतगत आत्म-सम्मान की भावना जागृत हो उठी है, वह विदेशी-शासन के समय कहां दबी पड़ी थी? वस्तुतः अंगरेजी भाषा के 'अनिवार्य' पठन-पाठन और नौकरी-परस्त देसी अंगरेजों का अराष्ट्रीय दृष्टिकोण ही भारतीय भाषाओं तथा साहित्यों के विकास में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित कर चुका था। क्योंकि अंगरेजी और देशी भाषाओं का पारस्परिक संबंध भाई-बंधु, साथी-मित्र का नहीं था, शासक तथा शासित का, मालिक और गुलाम का रहा था। शासकों की भाषा होने के कारण इसे सीखते ही नौसिखियों में भी आरोपित अभिजात्य भावना अंकुरित हो जाती थी। टूटी-फूटी इंगलिश ही सही, जिसके मुंह से वह पटक या टपक पड़ती थी, उसे अशिक्षित या अर्धशिक्षित लोग महान मर्मज्ञ मान लेते थे। तात्पर्य यह है कि विचार के धरातल पर तब भारतवासियों का दृष्टिकोण धुंध से भरा हुआ था, उनकी चिंतन-धारा निरक्षरता, गरीबी, गुलामी की रेत में सूख जाती थी, उनके आत्मसमान की भावना पर सांस्कृतिक विस्मृति की परतें पड़ गयी थीं; फलस्वरूप देशीय भाषाओं, साहित्य और कवियों के प्रति विचित्र प्रकार की अरुचि

और अनादर के भाव उत्पन्न हो गये थे। ऐसी परिस्थितियों से तिलमिलाकर स्वाभिमान के धनी और सूझबूझ के भारतीय कवि मातृभाषा का मंत्र पढ़ाने लगे। जैसे भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी में घोषित कर चुके थे :

"निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति की मूल"

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करने का आशय इतना ही है कि कभी-कभार किसी भी राष्ट्र में, ऐसी घटनाएं घट जाती हैं, जिनके कारण उस राष्ट्र-वासियों के दृष्टिकोण में, विचार-क्षमता में बहुत भारी ज्वार-भाटा उपस्थित हो जाता है। ऐसे संकट और संक्रामक क्षणों में जो जाति यथार्थ एवं साहसिक रुख अपनाएगी वही प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकती है।

साहित्य समाज का दर्पण

यह भी स्वीकृत तथ्य है, कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। लेकिन यह कथन भारतीय साहित्यिक विधाओं के संदर्भ में जितना सही उतरता है, उतना प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य के लिए नहीं। वर्तमान साहित्यकार रस, अभिव्यंजना-पद्धति, आश्रय दाताओं का मनोरंजन आदि की अपेक्षा साहित्य को जीवन एवं जगत की प्रतिच्छाया के रूप में प्रस्तुत करने के लिए अधिक तत्पर हैं। वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों, समस्याओं, आशा–आकांक्षाओं को ज्यों

न तमन्ना है न हसरत कोई
जिंदगी रूठ गयी हो जैसे
—कृष्ण मुरारी

का त्यों प्रतिबिंबित करने भी लगे हैं। अतः साहित्य की सभी विधाएं जीवन की समीपवर्ती होकर विकसित हो रही हैं। भारत जैसे विशाल और वैविध्यपूर्ण खंड के लिए यह परिवर्तन अधिक हितकर ही प्रमाणित होगा। क्योंकि भारत की किसी भी भाषा की कृति को अनुवाद के माध्यम से ही सही, पढ़कर हम उन भाषा-भाषियों के जीवन स्वरूप से भली–भांति परिचित हो सकते हैं : और इस प्रकार अब साहित्य के माध्यम से ही राष्ट्र के भौगोलिक चित्र, राजनीतिक गतिविधियां, सामाजिक स्वरूप, आर्थिक विसंगतियां आदि परिस्थितियों को उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में दर्शित किया जा सकता है।

सारांश यह है कि वर्तमान समस्त भारतीय साहित्य गांधारी-दृष्टि से मुक्त होकर संजय-दृष्टि से संपृक्त एवं संयुक्त हो रहे हैं। महाभारत में वर्णित है कि गांधारी नेत्र रखकर भी पट्टा बांध लिये जाने के कारण देख नहीं सकती थी, जब कि संजय सूत-कुल-संजात होते हुए भी वेदव्यास की कृपा के कारण राजमहल में बैठकर ही महाभारत-युद्ध को हाथ के कंकण के समान स्पष्ट देख लेता था।

—प्राध्यापक, हिंदी-विभाग,
आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम

वे पराधीन भारत के राष्ट्रदूत थे

● किसलय बंद्योपाध्याय

भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्त कराने के संग्राम में नेताजी सुभाषचंद्र के क्रांतिकारी योगदान से हम सब परिचित हैं, लेकिन नेताजी का एक रूप ऐसा भी है, जिसके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। हम शायद ही जानते हैं कि नेताजी पराधीन भारत के गैर-सरकारी राष्ट्रदूत की हैसियत से भी काम करते रहे हैं। राजनीतिक कार्यों के अलावा भारतीय सांस्कृतिक धारा के साथ समस्त यूरोप के साधारण मनुष्यों का परिचय भी उन्होंने ही करवाया और विदेश में रहनेवाले भारतीयों के साथ हमेशा जुड़े रहे हैं।

सन १९३५ की २६ फरवरी को वियेना में आयोजित एक सभा में उन्होंने 'देश के मुक्तिसंग्राम में भारतीय नारी' विषय पर भाषण दिया। यह भाषण इतना रोचक और स्मरणीय था कि बाद में उसी के कारण स्वाधीनता-संग्राम में प्रवासी भारतीयों से भरपूर मदद मिली।

वियेना में ही रहते हुए वे बार-बार वियेना बेतार केंद्र से भारतीयों के लिए कार्यक्रम प्रसारित करने हेतु संपर्क स्थापित करते रहे और अंततः महीने में ४५ मिनट का समय भारतीय संगीत के लिए निर्धारित कराने में सफल हो ही गये, इस कार्यक्रम को स्थायी करवाने के लिए भी उन्होंने अनेक पत्र लिखे। १ फरवरी, १९३५ को प्रेषित उनके एक पत्र का अंश:

"... आगामी २३ फरवरी रात १० बजे से १०.४५ तक वियेना रेडियो से 'इंडियन म्यूजिक' होगा। यदि जनसाधारण इसे पसंद करे, तो हर महीने एक बार कर सकते हैं। जहां भी रहो २३ के रात को वियेना रेडियो सुनने की कोशिश करना और अगले दिन वियेना रेडियो को एक पत्र जरमन भाषा में लिखना कि तुमने पसंद किया है।"

यह पत्र बंगला में था।

१९३५ के सितंबर में थके-हारे सुभाष चेकोस्लोवाकिया के कार्ल्सबाद (अब कार्लो द्यव्यारी) के क्यूरहौस क्योनिन आलेकजांदा में विश्राम कर रहे थे कि उन्हें खबर मिली कि जरमनी के बारेन बाईलर में अस्वस्थ श्रीमती कमला नेहरू का स्वास्थ्य चिंताजनक है और जवाहरलाल नेहरू जेल में हैं, तो फौरन कमलाजी

नेताजी सुभाष बोस द्वारा लिखा गया एक पत्र

के पास पहुंच गये—८ सितंबर, १९३५ को। जेल से मुक्त होकर जवाहरलाल पहुंचे १० तारीख को। सुभाष वारेन बादेलर से स्विट्जरलैंड के वासेल तक मोटर से गये, जवाहरलालजी को लाने। नेहरू-परिवार के साथ वे दस दिन बिताकर लौट आये।

नेहरू-परिवार से नेताजी के घनिष्ठ संबंध थे। सन १९३६ में फरवरी में वे पेरिस में थे। उन्हें खबर मिली कि लोजान में कमलाजी की तबीयत ज्यादा खराब हो गयी है। वे तुरंत लोजान पहुंचे। बाद में यहीं कमलाजी का देहांत हुआ। इस दौरान सुभाष हर वक्त पंडितजी के साथ रहे और अंत्येष्टि के बाद ही लोजान से वापस लौटे। इस घटना की चर्चा करते हुए ५ मार्च, १९३६ को उन्होंने एक पत्र लिखा—"पेरिस से मैं लोजान चला गया था—वहां पर रहते श्रीमती कमला नेहरू का देहांत हुआ। उनकी अंत्येष्टि-क्रिया वहीं पर संपन्न हुई। लोजान से मैं परसों यहां आया हूं। जवाहरलाल ७ तारीख को हवाईजहाज से रवाना होंगे। मैं यहां पर दो तीन सप्ताह चिकित्सा कराने के बाद देश की ओर रवाना होऊंगा। बहुत संभव २० तारीख को मासोशे से जहाज पर रवाना होऊंगा। यहां पर आकर थोड़ा-सा विश्राम और शांति मिली है।"

सन १९३३ से १९३६ तक युद्धपूर्व यूरोप में पराधीन भारत के गैर-सरकारी राष्ट्रदूत के रूप में सुभाष भारतवर्ष के राजनीतिक, सांस्कृतिक अभ्युत्थान के लिए सक्रिय रहे और प्रवासी भारतीयों के साथ देश के सुख और दुःख में साथ देते रहे।

—सी-१०, गांधीनगर, गाजियाबाद

दीवार नहीं रही

● ब्रजेन्द्र रेही

क और ख के बीच एक अदृश्य दीवार है! इस दीवार में कुछ खिड़कियां भी हैं। ये खिड़कियां रोज-रोज नहीं खुलती हैं। हां, जब भी खुलती हैं, तब यह जरूर अहसास होता है कि शायद दीवार, दीवार नहीं है, क और ख के बीच एक पुल है।

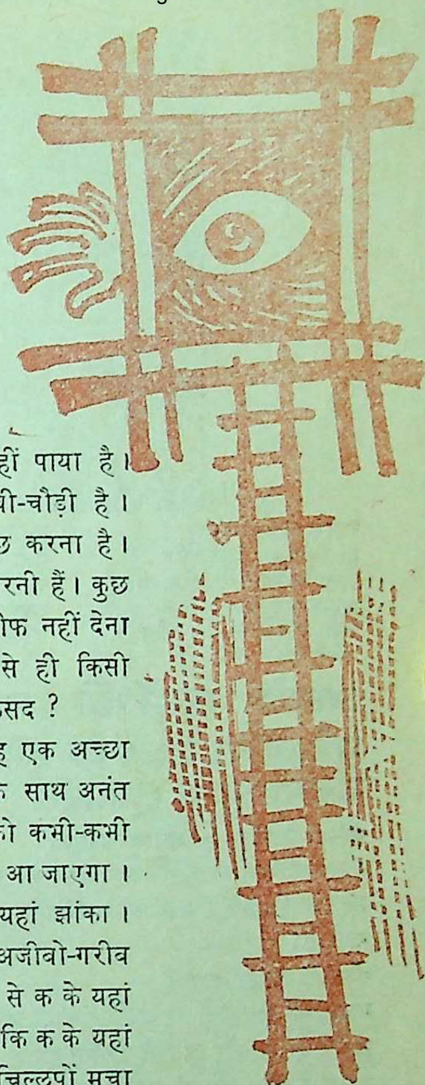
—क को इस बात की परवाह नहीं है कि वह कभी अपनी ओर की खिड़की खोले और ख के यहां झांककर उसकी पीर-प्यास जाने। अलबत्ता होता यह है कि ख ही अपनी ओर से खिड़की खोलता है, क से बतियाता है और खिड़की बंदकर देता है।

—क 'दूकानदार' है। यानी कि वह नाप-तौल का शौकीन है। ख को यही शिकायत है, अपने आपसे कि वह उससे कैसे निभा रहा है ?

—क की खूबी यही है कि वह अपनी बात को इतनी खूबसूरती से पेश करता

है कि ख को कुछ कहते नहीं बनता । वह निहाल हो जाता है, जब क कुछ कहता है। पर बाद में ख को यह पछतावा जरूर होता है कि वह समय-असमय क द्वारा बात की बात में ठग लिया जाता है।

—क को कई बातों से मतलब नहीं है। वह ख से बतियाएगा जरूर, मगर खिड़की बंद होते-होते यह भी कह देगा, "इसे सीरियस मत लेना।" क दिखने में कोमल बहुत है पर ख की परेशानी यही है कि वह अभी तक उसकी कोमलता को छू नहीं पाया है।



—क का कहना है कि दुनिया बड़ी लंबी-चौड़ी है। केवल ख ही नहीं है उसके लिए। उसे बहुत कुछ करना है। अपनी ओर की दीवार के भीतर इमारतें खड़ी करनी हैं। कुछ मीनारें बनानी हैं। क किसी को खामख्वाह तकलीफ नहीं देना चाहता है। उसका कहना है कि जब गुड़ देने से ही किसी की छुट्टी हो रही हो, तब जहर देने से क्या मकसद ?

—ख भी सब कुछ समझता है, क्योंकि वह एक अच्छा ग्राहक है। वह यह भी जान गया है कि क उसके साथ अनंत दूरी तक नहीं आयेगा, फिर भी न जाने ख को कभी-कभी लगता है कि क उसी के साथ अनंत दूरी तक जरूर आ जाएगा।

—ख ने उस दिन खिड़की खोलकर क के यहां झांका। उसे क तो दिखायी नहीं दिया, पर उसे क के यहां अजीबो-गरीब शोर सुनायी दे रहा था। वह सीढ़ी लगाकर चुपके से क के यहां दाखिल हो गया। ख यह देखकर हैरान हो गया कि क के यहां पुरस्कारों, प्रशंसा-पत्रों, और प्रसिद्धियों के बौने चिल्लपों मचा रहे हैं। उन्होंने क की एक प्रतिमा बना रखी है और वे उसके चारों ओर गा-बजा रहे हैं। अब ख समझ गया कि क की कैसी दुनिया है। वह लौट आया, पर अपनी सीढ़ी को लाना भूल गया।

—ख बेचारे के पास था ही क्या ? उसने यह जरूर सोचा

मसूड़ों में तकलीफ़ की पहली निशानियाँ?



प्लाक (Plaque)
दाँतों और मसूड़ों पर हमेशा जमती रहनेवाली कीटाणुओं की अदृश्य परत! अगर साफ़ न किया जाय तो प्लाक के कारण टारटर जम जाती है

टारटर (पपड़ी)
दाँतों की जड़ की ओर जमी हुई पपड़ी से मसूड़ों में सूजन और तकलीफ़... बाद में मसूड़ों व हड्डियों के सिकुड़ने से दाँत गिर भी सकते हैं।

मसूड़ों से खून
कमज़ोर और खोखले मसूड़ों को ब्रश से साफ़ करते समय खून निकल सकता है। इससे दर्द भले ही न हो फिर भी कई गंभीर समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

आपके मसूड़ों की देखभाल के लिये फोरहॅन्स, दाँतों के डॉक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

डॉक्टर फोरहॅन्स का अनोखा फ़ॉर्मूला

डॉक्टर फोरहॅन्स का फ़ॉर्मूला अपने असरकारक एस्ट्रिंजेंट के कारण मसूड़ों की सतह मज़बूत बनाकर मसूड़ों की तकलीफ़ से दूर रहने में आपकी मदद करता है।

दाँतों के डॉक्टर कहते हैं

मसूड़ों की खराबियों से अच्छे दाँत भी गिर सकते हैं।

इसलिए हर रात और हर सवेरे फोरहॅन्स टूथपेस्ट और फोरहॅन्स डबल एक्शन टूथब्रश से अपने दाँतों की सफ़ाई और मसूड़ों की मालिश कीजिए।



मसूड़े ख़राब तो तन्दुरुस्ती ख़राब



मुफ़्त! "आपके मसूड़ों और दाँतों की देखभाल"— दाँतों की देखभाल सम्बन्धी रंगीन सूचना पुस्तिका। डाकखर्च के लिये २५ पैसे के टिकट साथ भेजकर इस पते पर लिखिये :
फोरहॅन्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. ११४६३, डिपार्टमेंट P123-215, बम्बई-४०० ०२०
पुस्तिका किस भाषा में चाहिये, हमें अवश्य लिखिये।

फोरहॅन्स दाँतों के डॉक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

Regd. T.M.: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

215-F-172 HN.



था कि वह किसी दिन क को एक शानदार तोहफा देगा, लेकिन जबसे उसने क की दुनिया देखी है, तब से वह भौंचक्का-सा है। वह सोचता है कि प्रसिद्धियों के बौनों की दुनिया के बीच क्या कभी क को उसके तोहफे की ओर नजर उठाने की फुरसत भी मिलेगी। ख के पास जो चीज थी, वह थी तो बेमिसाल। ऐसी कि ढूंढ़ने जाओ, तो बाजार में न मिले।

—ख उस दिन उदास-उदास बैठा था। उसे सांझ की रंगबिरंगी छटा अजानी पीड़ा से बांध गयी थी। अचानक उसे लगा कि उसके यहां कोई आया है, पर उसे कुछ भी दिखायी नहीं दिया। यकायक उसे खयाल आता है कि एक दिन वह क के यहां भूल आया था। उसने भागकर खिड़की खोली, किंतु सीढ़ी उसे नहीं दिखी। वह गरदन को लटकाये-लटकाये अपने घर में चक्कर लगाने लगा। अचानक उसे 'तोहफे' का खयाल आया। जब उसने ढूंढ़ा, तब वह नदारद था। यह वही तोहफा था, जो ख, क को देना चाहता था। अब ख के दुःख की सीमा नहीं रही थी। उसे लगने लगा कि उसने जिंदगी की बेहतरीन चीज खो दी है।

—ख उस चीज के जाने के बाद से गुमसुम रहने लगा। कई दिन हो गये थे, उसे क को देखे हुए। उसने सोचा, चलो आज तो 'राम-राम' कर लें। वह खिड़की खोलते-खोलते सोच रहा था कि कैसा है यह क। उसके हालचाल भी नहीं पूछता। फिर उसे विचार आता है कि एक दिन क ने ही कहा था कि वह 'दूकानदार' है। दूकानदार दूसरे का हालचाल कहां पूछता है। उसे अपने हालचाल चंगे रखने में दूसरे को भूलना ही पड़ता है। अब उसने खिड़की खोलकर पहली नजर ही क के आंगन में डाली कि उसे अपनी सीढ़ी नजर आ गयी। और ख के चेहरे पर मुसकराहट तैर गयी।

—ख ने देखा कि आज भी क नहीं है। वह हौले-हौले क के यहां उतर गया। उसने देखा कि क है नहीं, फिर भी शांति कैसी? बौने खर्राटे भर रहे थे। वह उनके नजदीक गया। वह यह देखकर हैरान हो जाता है, और चौंकता है कि खर्राटे भर रहे बौनों के बीच उसका 'तोहफा' पड़ा हुआ है।

—ख, क के यहां एक मिनिट भी नहीं रुकता है। वह उलटे पांव लौट आता है। उसने अपनी सीढ़ी को भी वैसे के वैसे ही छोड़ दिया। फिर वह दालान में आया और बड़े-बड़े आकार में कई क लिखने लगा। उसने दरवाजे के बाहर क के लिए एक संदेश लिखा—'दिल का तोहफा चुरा कर ले गये और बौनों के हवाले कर दिया। अब दीवार के इस ओर भी आ जाना।'

—उस दिन के बाद से ख को किसी ने भी नहीं देखा। हां! रोशनी दिखायी देती है, जिसमें दिखता है क का चेहरा, पर दीवार दिखायी नहीं देती है।

—२७२, अशोक नगर, सड़क नं. १०, उदयपुर



अथ गाथा बेड़िन कुलवधुओं की

• स्वामी कृष्णभक्त भारती

मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड व उससे लगे क्षेत्र भोपाल, विदिशा, सागर, दमोह, राजगढ़, शाजापुर, देवास, गुना, रायसेन, टीकमगढ़, पन्ना, ललितपुर आदि, जहां पर कभी छोटे-बड़े रजवाड़े रहे हैं, में एक जाति पायी जाती है—बेड़िया। आज इस जाति के लोगों की संख्या हजारों में है और इस हजारों की संख्या के लोगों की वल्दियत है, पैसा। जहां कहीं भी इन लोगों को वल्दियत यानी पिता के नाम लिखवाने का सवाल आता है, वहां वे पिता के नाम की जगह 'पैसा' लिखवाने के लिए मजबूर होते हैं, क्योंकि उन्हें खुद पता नहीं कि उनका जन्मदाता पिता कौन है, उसका क्या नाम है? वह तो पैसे के बदले में पैदा हुए हैं, इसलिए पैसा ही उनका पिता है।

इस बेड़िया जाति का एक ही धंधा है—नाचना-गाना। पुरुष बेड़िया कहलाता है और औरत बेड़िनी। परंपरा बताती है कि बेड़िया कोई काम नहीं करता, सिवा इसके कि वह अपनी मां, बहन व बेटियों को नचाये, उनसे पेशा कराये और इससे

ऊपर : नृत्य-संगीत ही इनकी आजीविका है

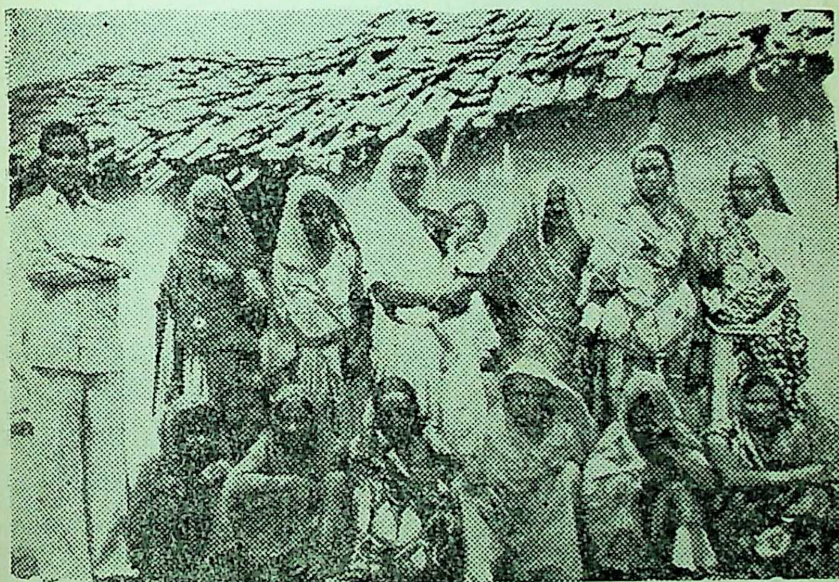
मिलनेवाले पैसे से जीविका चलाये।

आम आदमियों का मनोरंजन करने के लिए नाचने-गानेवाली यह जाति नाचने-गाने में निपुण होती है। बेड़िये ढोल और हारमोनियम से साथ देते हैं और बेड़नियां नाचती हैं। बेड़नियां जो नाच नाचती हैं उसे 'राई' नृत्य कहते हैं। यह नृत्य रात-रातभर चलता है, जिसे देखने के लिए गांवों में सैकड़ों ग्रामवासी जुड़ते हैं। यह नृत्य शुद्ध रूप से ग्रामीण लोक-संगीत की धुन का नृत्य है। इसके साथ जो गीत गाये जाते हैं, वे सहज व सरल होने के साथ राग, लय और ताल से बाखूबी आबद्ध होते हैं। एक गीत के बोल देखिए—

चंचल दुलईया रे
अरे हरवाहे की
सींकन कजरा देय
मारे बखर के, जे भोंदू सो गये
हो——औके कजरा लहरियां लेय

अर्थात—हलवाहे (खेतों में काम करने वाला या जमींदार व जागीरदार का नौकर) की नव-वधु चंचल है। वह अपनी आंखों में बहुत ही बारीक और कटीला काजल लगाती है। दिन भर खेतों पर हल, बक्खर चलाते रहने की थकान के कारण भोंदू यानी भोला-भाला हलवाहा अपनी नव-वधू के सौंदर्य से अनभिज्ञ रहे ही सो गया, जबकि नव-वधु की तरुणाई लह-रियां ले रही है।

बड़िनें—बेड़ियां ही जिनकी नियति हैं



बेड़नियों का एक और नृत्य है-- 'केरमा', जिसे स्थानीय वाद्य ढपला के साज पर नाचा जाता है। केरमा नृत्य करती हुई बेड़िनी के साथ, गांव के जो लोग नाचना चाहते हैं, वे सामूहिक रूप से नाच सकते हैं। यह नृत्य लोकनृत्य होने के साथ ही कलात्मक भी होता है, साथ ही इसमें फूहड़पन व अश्लीलता का भी पुट रहता है।

बेड़ियों से जकड़ी जाति

'बेड़िया' शब्द बेड़ी के भाव को लिये हुए हैं। 'बेड़ी' लोहे की उस जंजीर को कहते हैं, जिससे कि कैदी को बांध-कर रखा जाता है। समाज ने जिन व्यक्तियों को मजबूरी की बेड़ियों से बांध दिया है, उन्हें बेड़िया नाम दिया गया है। बेड़िया शब्द द्वारा जहां इस वर्ग की पीड़ा को दर्शाया गया है, वहीं दूसरी ओर समाज पर कटाक्ष भी किया गया है। इसे उनके इस गीत में देख सकते हैं--

इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा
हमरी न मानो सैंय्यां, रंगरिजवा से पूछो
जिसने गुलाबी रंग दीना दुपट्टा मेरा

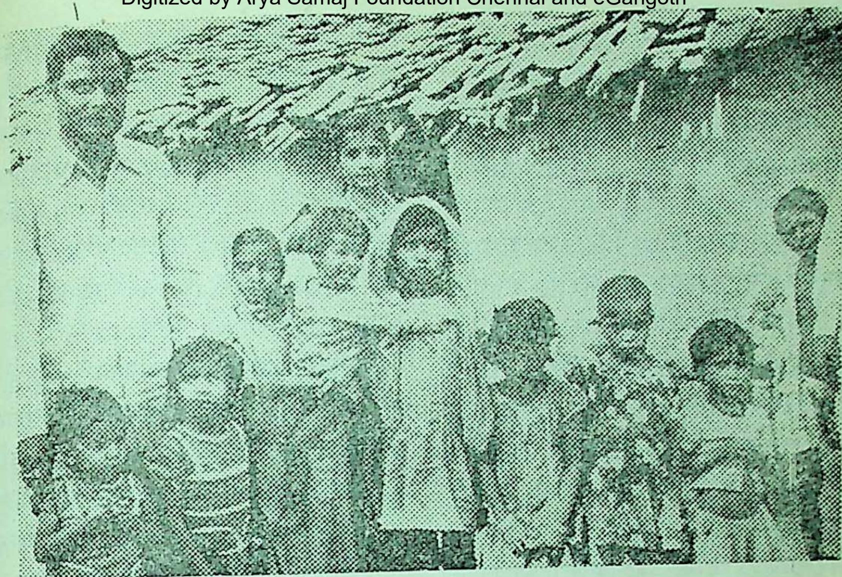
अर्थात--बेड़िनी का कहना है कि इसी समाज के लोगों ने तो मेरा दुपट्टा, यानी (इज्जत ले ली है। यदि मेरी इस बात पर विश्वास न हो, तो मेरे बनानेवाले रंगरि-जवा (ईश्वर) से पूछ लो कि उसने मुझे यह गुलाबी रंगत (लावण्यता) क्यों दी।

हमरी न मानो सैंय्यां, सिपहिया से पूछो
जिसने बजरिया में छीना दुपट्टा मेरा

--'बजरिया' तो आम आदमी के जीवन जीने की शैली का प्रारंभिक स्थल है, ऐसी 'बजरिया' में सिपहियों ने दुपट्टा छीन लिया। यहां पर 'सिपहिया' ताकत का, मद व शासन का, मिलाजुला रूपक है। सिपाही का काम यानी शासन का काम लूट-खसोट को रोकना है, परंतु यदि शासन ही इसी काम में लिप्त रहे, तब क्या कहा जाए?

बेड़ियों की स्त्रियों की गोद में समाज बच्चे देता रहा, परंतु वल्दियत देने से कत-राता रहा है। इसीलिए यह बेड़िया शब्द गाली के रूप में भी प्रयुक्त होता है। किसी बदचलन स्त्री को गाली देनी हो, तो उसे 'बेड़नी' कहना पर्याप्त है।

'बेड़िया' शब्द एसे कई शताब्दी पुराना प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि दो हजार वर्ष पूर्व कोई खूबसूरत युवती जब किसी नगर के लोगों का मनोरंजन करती थी, उस समय उसको 'नगर-वधू' कहा जाता था। कुछ काल पश्चात 'गणिका' शब्द का प्रचलन समाज में आया, जिसका तात्पर्य गानेवाली युवती से था। राजपूती काल में जब स्त्रियों को संपत्ति का अंग मानकर अपहरण का दौर चल निकला, तब पराजित राज्य की हजारों औरतों को भी बंदी बनाकर गुलामों की तरह बेचा, खरीदा व रखा जाने लगा। तब इन बंदियों को 'रंडी' शब्द दिया गया, जिसका अर्थ इतना ही है कि रण (युद्ध) में जीती गयीं और मंडी



इन्हें पवित्र और निष्कपट जीवन की तलाश है

(बाजार) में खरीदी-बेची गयीं स्त्रियां। 'रंडी' शब्द व उससे निर्मित होनेवाले इस वर्ग को, ग्रामीण अंचलों में जहां छोटे-छोटे रजवाड़े रहे, जागीरदारी प्रथा रही वहां 'बिड़नी' नाम दिया गया।

बेड़िया जाति के लोगों की मान्यता, है कि उनके पूर्वज अच्छा, भला स्वाभिमान-युक्त जीवन-यापन करते थे। जब उनके स्वाभिमान पर चोट पहुंचायी गयी, तब वे राज्य से विद्रोह कर लूट-पाट और डकैती के धंधे में लग गये। कुछ समय पूर्व तक इस जाति के लोगों को शासन ने अपराधी, यानी जरायमपेशा करार दे रखा था। इन लोगों का यह भी कहना है कि जब तत्कालीन शासक अपनी बड़ी-बड़ी सेनाओं द्वारा भी इन पर नियंत्रण न पा सके, तब उन्होंने छल-कपट द्वारा भ्रष्ट करने के लिए उन्हें, नशे का आदी बनाकर निकम्मा कर दिया और उनकी बहन-बेटियों को बलपूर्वक भ्रष्टकर वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर कर दिया। नतीजा यह हुआ कि पेट की भूख मिटाने के लिए उनकी बहन-बेटियां बिकती रहीं, वह शराब के नशे में अनदेखा करके भी सब देखते रहे। यह मजबूरी क्या उसके लिए बेड़ी नहीं थी। इसी बेड़ी ने उसे 'बेड़िया' बना दिया। भाट, जो जातियों के पूर्वजों का रिकार्ड रखते हैं, वह भी इनको इस बात का समर्थन करते हैं।

इस जाति में गोत्र-प्रथा है। इनके प्रमुख गोत्र हैं—छायड़ी, ग्वार, घोले, भांयस, कालखुर, मलैया, बंदरुए,

सौंदर्य को बाहरी आभूषण की आवश्यकता नहीं, अपितु जब वह अनाभूषित है, तभी सर्वाधिक अभूषित है। —थामसन

जयपुरिये इत्यादि। हिंदू मान्यता के **अनुरूप** इनके अंदर भी माता के गोत्र **में विवाह** नहीं होता। इस जाति में **गोत्र-प्रथा** का पाया जाना यह स्पष्ट करता **है कि** इस जाति का प्रारंभिक विकास भी **अन्य** श्रेष्ठ जातियों-जैसा ही रहा है।

विश्व में आज भी मुख्यतः दो ही **समाज** हैं—पितृ-प्रधान और मातृ-प्रधान। **लेकिन** मेरे विचार से भारत में केवल **'बेड़िया'** ही ऐसी जाति है, जिसमें दोनों **ही मान्यताएं** प्रचलित हैं, यानी परिवार **का प्रधान** पिता भी होता है तथा माता **भी।** यदि किसी परिवार में स्त्रियां ही **स्त्रियां** हों, कोई पुरुष न हो, तब उस **परिवार** की किसी स्त्री के, किसी अन्य **जाति** के पुरुष के संसर्ग से जो बच्चा **होगा,** उसे माता का गोत्र दिया जाएगा।

जीविका का साधन : लड़की

आज भी इनमें यह प्रथा है कि एक या **दो पुत्रियों** का विवाह अपनी ही जाति में **कर** के अन्य पुत्रियों को नाचना-गाना **सिखलाकर** उनकी कमाई से परिवार की **जीविका** चलायी जाती है। इन लड़कियों से जो संतानें होती हैं, उनकी वल्दियत **'पैसा'** लिखायी जाती है। कहते हैं, कि भूख **मनुष्य** को बेशर्म, बेहया, खुदगर्ज बना देती है, परंतु बेड़नी इसका अपवाद है। यही अपवाद है, जो वल्दियत की जगह पैसा लिखाता है, जबकि बेड़नी जानती है बच्चे का असली पिता कौन है। लेकिन बेड़िनियां असली पिता का नाम कभी भी घोषित नहीं करतीं, क्योंकि ऐसा करने से उस 'धनी-मानी पिता' के सम्मान को चोट पहुंच सकती है।

मेरी व्यक्तिगत जानकारी में ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने 'बेड़नी' से उत्पन्न अपने बच्चों को अपनी वल्दियत भी दी है। उनमें से अधिकांश बच्चे पढ़ लिख कर नौकरी व काम-धंधों में लगकर-सम्मानपूर्ण जिंदगी जी रहे हैं। इनमें से एक विधायक भी बन चुका है।

जरूरत इस बात की है—इन बच्चों को पवित्र, निष्कपट वातावरण मिले। जिन्हें मिला है वे उतना ही ऊंचा उठ सके हैं, जितना कि अन्य। इतिहास साक्षी है, एक बेड़नी की पुत्री 'मस्तानी' को बाजीराव पेशवा का प्रेम व संरक्षण मिला, तो वही मस्तानी इतिहास की एक वीर नायिका बन गयी। वह बाजीराव के साथ युद्ध में पुरुष-भेष बनाकर छाया की तरह साथ रहती थी। उसने बाजीराव के साथ 'दिल्ली' को लूटकर 'ढिल्ली' बना दिया था। उसने पुरातनपंथियों की कटु आलोचना को भी सहन किया और बाजीराव की अल्प आयु में ही मृत्यु हो जाने पर सती हो गयी।

—तहसीलदार, सीहोर (म. प्र.)

कवि, जिसकी पालकी सम्राट ने उठायी

● डॉ. प्रभात त्यागी

तमिल, कन्नड़, तेलुगु व मलयालम, क्रमशः मद्रास, मैसूर, आंध्रप्रदेश व केरल में प्रयुक्त होनेवाली भाषाएं हैं। प्राचीनता की दृष्टि से भी इन चारों लोक भाषाओं का यही क्रम रहा है। संस्कृत का वरद संरक्षण इन चारों भाषाओं को मिला साथ ही आपस में भी इनमें अतीव घनिष्टता स्थापित रही। एक ही क्षेत्र में विकसित तेलुगु व कन्नड़ के तो कई प्राचीन कवि अपने आपको दोनों ही भाषाओं का प्रतिनिधि बताते रहे। वैसे तेलुगु का शाब्दिक अर्थ है—उस प्रदेश की भाषा जिसकी सीमा पर प्रसिद्ध त्रिलिंग-मंदिर प्रतिष्ठित हों। ऐसा प्रदेश कालहस्ति, श्री शैलम व दाक्षाराम के शिव मंदिरों के कारण आंध्र प्रदेश है, अतः इस भाषा का जन्म-स्थल भी यही है।

तेलुगु के प्रमुख पांच महाकाव्यों में सर्वप्रसिद्ध कवि तिक्कन द्वारा प्रस्तुत महाभारत का सुंदरतम अनुवाद है। महानतम कवि श्रीनाथ ने श्रीहर्ष के नैषध-काव्य पर आधारित तेलुगु में 'शृंगार-नैषध' की रचना १३६५ से १४४० ई. के बीच की। एक अन्य महान रचना, विजयनगर-साम्राज्य के सम्राट कृष्णदेव-राय द्वारा रचित 'अमुक्तमालपद' है, जिसमें उनकी अनूठी मौलिकता, विद्वता व राजनीतिक तथा साहित्यिक अभिरुचियों का अनोखा सम्मिश्रण परिलक्षित होता है। इस महाकाव्य में विष्णुचित्र या पेरियालवार के जीवन-चित्रण के साथ, उनकी गोद ली गयी बेटी गोदा व रंगनाथ की प्रेम-कहानी का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

तेनालीराम का कवि रूप

कृष्णदेवराय का संरक्षित कवि तेनाली रामकृष्ण हिंदी में दरबारी विदूषक के रूप में अधिक विख्यात है, पर तेलुगु में उसने 'पांडुरंग-महात्म्य' के रूप में प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य की रचना कर अधिक ख्याति अर्जित की। 'पांडुरंग-महात्म्य' पंढरपुर के एक ब्राह्मण की भावभीनी कथा है। इस दुराचारी ब्राह्मण की नरकोन्मुख आत्मा को यमराज के चरों से विष्णु के सेवकों ने कैसे बचाया, महाकाव्य इसी कथानक पर आधारित है। नायक द्वारा संरक्षित-चेमकूरी वेंकटकवि की महान रचना 'विजय विलास' भी महाभारत पर आधारित तेलगु का अमरग्रंथ है।

५वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शता-

ब्दी के बीच अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों में नान्नय ने तेलुगु के प्रथम प्रारंभिक व्याकरण 'आंध्र-शब्द–चिंतामणि' की रचना की। इस ग्रंथ के लिए नान्नय को अपने संरक्षक राजराज नरेंद्र से 'वागानुशासन' की उपाधि मिली। वेमुलवाड भीम की रचना 'कवि जनाश्रय' भी तेलुगु-व्याकरण की एक प्रसिद्ध रचना थी। तेलुगु के नाटकों को नयी दिशा प्रदान करनेवाला प्रथम नाटककार श्रीनाथ ही था, जिसके 'क्रिड़ा-भिरामम' नाटक में एक नयी शैली को जन्म दिया गया। इन नाटकों में अभिनेता व श्रोता दो ही व्यक्ति होते थे तथा अभिनेता अपने अनुभव अकेले श्रोता को सुनाता था।

पेद्दन का सम्मान

तेलुगु-कविता के पितामह के नाम से प्रख्यात, अल्लसानि पेद्दन, जो कृष्ण-देवराय का प्रसिद्ध दरबारी था, द्वारा रचित 'स्वारोचिस-संभव' वास्तव में ही अद्वितीय थी। रचना के मुख्य पात्र एक कट्टर ब्राह्मण प्रवर व अप्सरा वरूथिनी हैं। वरूथिनी के प्रेम को प्रवर स्वीकार नहीं करता, तो एक गंधर्व प्रवर के रूप में स्वारोचिस को जन्म देता है, जिसका पुत्र द्वितीय मनु है। पेद्दन को अन्य सब कवियों की तुलना में सर्वाधिक आदर-सम्मान मिला। कहा जाता है कि स्वयं सम्राट कृष्णदेवराय ने पालकी खींचने-वाले के रूप में पेद्दन की न केवल पालकी ही खींची, बल्कि उसकी प्रशंसा भी की। तेलुगु-कहानी-कला का पूर्ण विकास एक वृहद-ग्रंथ 'शुक-सप्तती' से हुआ। श्रीरंग तृतीय द्वारा संरक्षित तथा उसके सेनापति रामराज के परिवारवाले कदिरीपति ने उपरोक्त प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी।

वीरशैव धारा

वीर-शैव समर्थक प्राचीन तेलुगु साहित्य की एक और महत्त्वपूर्ण धारा २१वीं शताब्दी से प्रारंभ हुई। घोर-कर्म-कांडी, लिंगायत धर्मावलंबी धारा का उद्‌भव वासवकालीन साहित्य से हुआ, तथा सम्राट कृष्णदेवराय तक अनवरत चलता रहा, जबकि कृष्णदेवराय ने अपने काल से वैष्णववाद के समर्थन में साहित्य को नया मोड़ दिया। प्रथम धारा का प्रारंभ गुरुमल्लिकार्जुन पंडित द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'शिवतत्त्व सारम' से हुआ। पाल-कुरीकी सोमनाथ का 'द्विपद वासव पुराण' तथा पिड़ुपर्ती सोमनाथ का १५१० ई. में लिखा पद्य-ग्रंथ 'वासव-पुराण' व 'वृषा-धीप शतकम' वासव को संबोधितकर लिखी गयी रचनाएं थीं।

प्रसिद्ध तेलुगु कवि श्रीनाथ भी एक कट्टर शैव्य था, जिसने 'पालनाटिवीर-परित्रमं, १३वीं शताब्दी के पालनाड़ की वीरतापूर्ण कहानियों का संग्रह लिखा। विरोधी धारा—वैष्णववाद की प्रसिद्ध कृतियां सम्राट कृष्णदेवराय के अतिरिक्त उनके दरबारी कवियों पेद्दन, नांदीतिम्मन, भट्टमूर्ति, मादय्यगरि मल्लन, अय्यलराजु रामचंद्र, मिंगली सूरन्न तथा तेनाली-रामकृष्ण द्वारा रची गयीं।

तेलुगु के लोक-साहित्य की प्रारंभिक रचनाएं थीं—'लीला पाटलु', मेलुकोलु पुलु,' 'मंगल हारतुलु,' 'कीर्तनलु' तथा 'उड्डपु पाटलु,' जो क्रमशः बच्चों के पालने-गीत, प्रभात कालीन प्रातः गीत, त्योहारों, पर्वों, भक्ति तथा कृषि से संबंधित थे। तेलुगु के नाटक-साहित्य का प्रतिनिधित्व करनेवाले महान ग्रंथों में पिंगली सूरन्न द्वारा रचित 'प्रभावती-प्रद्युम्न व 'कला पूर्णोदय' प्रमुख हैं। प्रथम नाटक में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न व दैत्यराज वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती के विवाह तथा वज्रनाभ के पतन की कथा नाटक रूप में प्रस्तुत की गयी है। 'कलापूर्णोदय' साहित्यिक प्रतिभा का सुंदर प्रयोग है, जिसमें पद्यरूप में नाटक का प्रस्तुतीकरण हुआ है।

हयलक्षण

भारत की वैज्ञानिक प्रगति का परिचय भी हमें तेलुगु के प्राचीन ग्रंथों 'हयलक्षण शास्त्र' (अर्थात घोड़ों के शास्त्र) से मिलता है, जिसकी रचना मनुमणभी भट्ट ने की। गणित के प्रसिद्ध ग्रंथ 'लीलावती गणित' का पद्यानुवाद वल्लभाचार्य ने प्रस्तुत कर, अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। ऐसी ही साहित्यिक प्रतिभा पवलूर करणम मल्लव ने प्रदर्शित की, जब उन्होंने महावोराचार्मुलु की गणित की पुस्तक का पद्यमय अनुवाद किया तथा एलुगंती पेड्वा ने लीलावती की गणित का अनुवाद 'प्रकीर्ण गणित' के नाम से प्रस्तुत किया। तेलुगु-साहित्य में महिलाओं का भी पूर्ण योगदान रहा। कवयित्री मोल्ला नीची जाति की थी, पर उसने रामायण नामक ग्रंथ की रचना तेलुगु में की। इसी प्रकार राजा विजयराघव की पत्नी रानी रंजाजंभा ने 'मन्नारूदास बिलास' की रचना की।

तेलुगु-साहित्य, प्रसिद्ध दार्शनिक लेखक वेमन के 'शतक' पर प्रकाश डाले बिना अधूरा ही माना जाएगा। 'शतक' से तेलुगु के बाल व वृद्ध सभी पूर्णतया परिचित हैं, जो पंद्रहवीं शताब्दी में रचा गया। ग्रंथ की प्रसिद्धि का यही प्रमाण पर्याप्त है कि इसका अनुवाद सभी भाषाओं में हो चुका है। स्पष्ट है, तेलुगु के लेखक यदि अन्य अमर ग्रंथों के अनुवाद अपनी भाषा में करते रहे तथा मौलिक रचनाओं की रचना, संस्कृत, हिंदी, तमिल, कन्नड़ व मलयालम से प्रतियोगिता किये बिना, अनवरत गति से करते रहे तो यह भाषा परमपूर्ण व उन्नत-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाएगी। आधुनिक तेलुगु लेखकों का इस दिशा में गुरुतर उत्तरदायित्व है।

—राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली

दुनिया में सबसे अधिक ऊंचाई पर स्थित पेट्रोल पंप दो साल पहले लद्दाख की राजधानी लेह में चालू हुआ है, समुद्र सतह से १०२३७ फुट ऊंचाई पर बने इस पंप को पेट्रोल श्रीनगर से लेह तक डाली गयी १६० मील लंबी पाइपलाइन के जरिये पहुंचाया जाता है।

गोष्ठी

विश्वंभर दयाल, उज्जैन : प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया में जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, क्या ऊर्जा-संकट के इस दौर में उसका उपयोग मानवीय आवश्यकताओं के लिए नहीं किया जा सकता ?

प्रकाश-संश्लेषण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने का विचार वैज्ञानिकों के मन में आ चुका है, क्योंकि हर पौधे का हरा पत्ता एक कारखाना है, जो सूर्य-किरणों की बदौलत जल और कार्बन डाइऑक्साइड के अणुओं में ऊर्जा का काफी संचय करता है। हिसाब लगाया जाए, तो पेड़-पौधों द्वारा पैदा की जानेवाली ऊर्जा का वार्षिक उत्पादन संसार-भर के सारे बिजलीघरों के उत्पादन से कई सौ गुना अधिक बैठेगा। लेकिन अभी इस दिशा में पूरा अध्ययन नहीं किया जा सका है, अतः तत्काल इस ऊर्जा का उपयोग मानवीय आवश्यकताओं के लिए कर पाना संभव नहीं है।

अरविंद तोमर, देवली : जरमन वैज्ञानिक रूदोल्फ क्लासियस किस काल के हैं ? वे अपने किस विशिष्ट अनुसंधान या आविष्कार के लिए प्रसिद्ध हैं ?

रूदोल्फ क्लासियस एक महान भौतिक विज्ञानी थे। उनका जन्म १८२२ में हुआ था और मृत्यु १८८८ में हुई थी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ऊष्मा अपने आप ठंडे पिंड से गरम पिंड की ओर नहीं बह सकती। उन्होंने 'एंट्रापी' की संकल्पना को जन्म दिया और १८६५ में उसका प्रयोग करके सबसे पहले द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम को सूत्रबद्ध किया। वे पहले वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने बहु-परमाणुक गैसों की ऊष्मा-धारिता और गैसों की ऊष्माचालकता से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया। गैसों के अणुगति सिद्धांत से संबंधित उनके अनुसंधानों से भौतिक क्रियाओं के बारे में सांख्यिकीय धारणाओं को विकसित करने में वैज्ञानिकों को काफी सहायता मिली। इसके अतिरिक्त उन्हें विद्युत-चुंबकीय परिघटनाओं की खोज का भी श्रेय प्राप्त है।

पी. एन. शर्मा, जमशेदपुर : क्या धरती से कान लगाकर दूर की आहटों को सुना जा सकता है ? यदि हां, तो कितनी दूर तक की आहटों को, और क्यों ?

यह सही है कि धरती पर कान लगाकर हम दूर की आहटों को सुन सकते हैं, क्योंकि धरती में ध्वनि क़ाफी सुगमता से चलती है। लेकिन कितनी दूर तक की, यह इस पर निर्भर है कि आहटें किसकी हैं। रेलगाड़ी की आवाज लगभग दो किलोमीटर दूर से सुनी जा सकती है, घोड़े की टापों की आहट लगभग एक किलोमीटर दूर से, लेकिन आदमी के कदमों की आहट इतनी दूर से नहीं सुनी जा सकती।

उदयशंकर पांडेय, जोधपुर : खारा पानी पीने से पेशाब ज्यादा आता है और प्यास नहीं बुझती, ऐसा क्यों ?

जीवंत ऊतकों में अपनी ही किस्म की ऐसी झिल्लियां होती हैं, जिनमें से पानी के अणु तो निकल सकते हैं, लेकिन पानी में घुले पदार्थ (जैसे लवण) नहीं निकल सकते। इन्हें अर्धपारगम्य झिल्लियां कहते हैं। हमारी आंतों में भी ऐसी झिल्लियां होती हैं, जो कुछेक लवणों के लिए अर्ध-पारगम्य हैं। खारे पानी के लवण इन झिल्लियों में से नहीं निकल पाते, तो आंतों में रसाकर्षण दाब पैदा हो जाता है, जो ऊतकों में से पानी को चूसकर आंतों में लाता है। रसाकर्षण दाब होने पर गुर्दे पेशाब को बाहर नहीं निकाल सकते हैं, जो ऊतकों के दाब से अधिक होता है। इसलिए ऊतकों से पानी निकलता है, जो मूत्र के साथ बाहर आता है और इस क्रिया के कारण शरीर को पानी की आवश्यकता होने लगती है, जो साफ या मीठा पानी पीने पर ही दूर हो सकती है। पानी की यह आवश्यकता ही दरअसल प्यास है और चूंकि यह खारे पानी से पूरी नहीं हो सकती, इसलिए खारे पानी से प्यास नहीं बुझती।

राजेन्द्र कुमार सक्सेना, समस्तीपुर : फिनाइल की गोलियां बंद संदूकों में गरम कपड़ों के अंदर रखी होने पर भी उड़ जाती हैं। किस प्रक्रिया से ?

वाष्पीकरण द्रवों का ही नहीं, ठोस पदार्थों या पिंडों का भी होता है, जिसे ऊर्ध्वपातन (उड़ जाना) या 'सब्लिमेशन' कहते हैं। फिनाइल ऐसा ही ठोस पदार्थ है जिसका वाष्पीकरण होता है। इसी गुण के कारण उसका उपयोग कपड़े के कीड़ों को मारने के लिए किया जाता है। फिनाइल का वाष्पीकरण कपड़ों में ऐसा वातावरण पैदा करता है, जिसे कपड़े के कीड़े सहन नहीं कर सकते। जो ठोस पदार्थ जितना अधिक महकते हैं, उतना ही अधिक उनका ऊर्ध्वपातन होता है, और कपूर के बाद फिनाइल बहुत तीखी महकवाला ठोस पदार्थ है। महक ठोस पदार्थ से अलग हो चुके अणुओं द्वारा हमारी नाक तक पहुंचती है।

देवेंद्र जैन 'दोषी', परासिया : चिमनी का काम लैंप को हवा में बुझने से बचाना है, लेकिन देखने में आता है कि चिमनी लगाते ही लैंप का प्रकाश बढ़ जाता है। हवा न चल रही हो, तब भी ऐसा होता है। इसका क्या कारण है ?

चिमनी का प्रयोग लौ को हवा से बचाने से कहीं ज्यादा उसे हवा देने के लिए किया जाता है। सुनने में बात अटपटी लग सकती है, लेकिन सच है। किसी चीज को हवा देकर जलाया जाए, तो वह अच्छी जलती है। लैंप की चिमनी लौ को हवा देने का (या उसके वात-प्रवाह को बढ़ाने का) काम करती है। चिमनी के कारण लौ के जलने में खर्च हो चुकी ऑक्सीजन के बाद बची हवा गरम होकर जल्दी से ऊपर की ओर उठती है और लैंप में नीचे की ओर बने छेदों से ठंडी हवा उसमें प्रवेश

करती है। चिमनी जितनी अधिक ऊंची होगी, लैंप उतना ही अच्छा जलेगा। वास्तव में लौ की ओर बढ़नेवाली ठंडी हवा की तीव्रता इस लैंप में गरम हवा के भार तथा लैंप के बाहर की ठंडी हवा के भार के अंतर पर निर्भर करती है। हवा का स्तंभ जितना ऊंचा होगा, उतना ही अधिक अंतर इन भारों में होगा तथा हवा के बदलने की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी। यही कारण है कि मिलों की चिमनियां ऊंची होती हैं। मिलों की भट्ठियों के लिए तीव्र वात-प्रवाह ऊंची चिमनियों से प्राप्त किया जाता है।

नारायणप्रसाद 'नर', मेरठ : झूले की तरह लटकनेवाले पुलों को पार करते समय फौजी लोगों को कदम मिलाकर न चलने का आदेश क्यों दिया जाता है? सुनते हैं, कदम मिलाकर चलने से पुल टूट जाता है। ऐसा क्यों? क्या कदम मिलाने से टुकड़ी का भार बढ़ जाता है?

आप शायद केवल फौजी टुकड़ी के भार के कारण पुल टूट जाने के बारे में सोच रहे हैं, लेकिन पुल से गुजरती हुई फौजी टुकड़ी का भार कदम मिलाकर चलने पर बढ़ नहीं जाता। होता यह है कि कदम मिलाकर चलती हुई फौजी टुकड़ी के उठते-गिरते कदमों के आवर्तन से पुल झूलने लगता है और इस दोलन के कारण उसका अपना भार कई गुना बढ़ जाता है, जिसे संभाल न पाने के कारण पुल टूट जाता है। यदि पुल पर से गुजरनेवाले लोगों की चाल समान नहीं होगी, तो पुल में इस प्रकार का दोलन नहीं होगा और पुल पर से पूरी टुकड़ी आराम से गुजर जाएगी, लेकिन यदि उस टुकड़ी के आधे सैनिक भी कदम मिलाकर उस पुल पर चलने लगें और उनके कदमों का आवर्तकाल पुल के स्वाभाविक आवर्तकाल के बराबर हो जाए, तो दोलन के कारण अनुनाद की स्थिति में आकर पुल अपने ही भार के बढ़ जाने से टूट जाएगा।

सुनीला, गोरखपुर : इटली में नेपुल्स के पास एक गुफा है, जो 'कुत्तों की गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें यदि मनुष्य चला जाए, तो कोई बात नहीं, लेकिन कुत्ते अंदर जाते ही मर जाते हैं। उसमें ऐसी क्या विशेषता है?

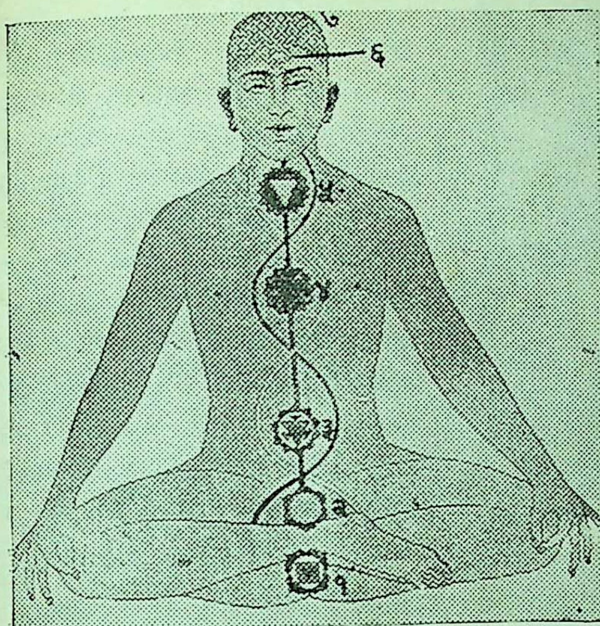
नाम तो उसका 'कुत्तों की गुफा' है, लेकिन उसमें कुत्ते ही नहीं, कुत्तों के आकार के और उनसे छोटे सभी जानवर मर सकते हैं—यहां तक कि मनुष्य भी यदि उसमें लेट जाएं, तो मर जाएं। कारण यह है कि उस गुफा के निचले हिस्से में से कार्बन डाइऑक्साइड गैस निकलती है, जो सभी प्राणियों के लिए घातक है। खड़े हुए मनुष्य उस गुफा में से जीवित कैसे निकल आते हैं, इसका कारण यह है कि कार्बन डाइऑक्साइड हवा से डेढ़ गुना भारी गैस है, इसलिए वह नीचे ही रह जाती है, ऊपर तक नहीं उठ पाती।

चलते-चलते एक प्रश्न और...

प्रश्न : बाल कब तक काले रहते हैं?

उत्तर : जब तक दिल काला रहता है, क्योंकि जड़ें दिल में ही रहती हैं।

—बिंदु भास्कर



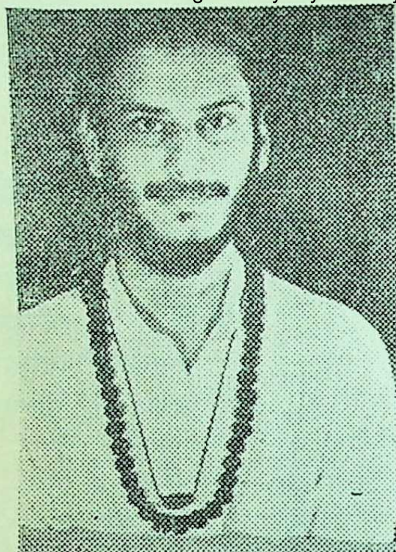
शरीर में कुंडलिनी और महत्त्वपूर्ण सात चक्र, १. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपुर, ४. अनाहत, ५. विशुद्धा, ६. आज्ञा, ७. सहस्त्रार

जागृत कुंडलिनी
एक चमत्कारी अनुभव

● भगवतीप्रसाद डोभाल

“२६ अप्रैल, १९७६ की रात। लगभग एक बजे मैं घर के पास एक पार्क में घूम रहा था। उस समय चौकीदार को छोड़कर वहां और कोई नहीं था। पूर्व से पश्चिम की ओर जब मैं तेजी से चल रहा था, तब अचानक मूलाधार से रीढ़ की हड्डी के अंदर कुंडलिनी सांप की भांति जल्दी से ३–४ इंच ऊपर चढ़ी। उस क्षण मैं अंगरेजी और हिंदी भूल गया और अपने आप लगातार मेरे मुख से गायत्री मंत्र का जाप होने लगा। इस मंत्र को मैंने १२ वर्ष पहले अपनी बुआजी से सीखा था, पर उसे कभी दोहराया नहीं। मेरी चाल शाही हो गयी, और मुझे लगा कि मेरे शरीर का वजन कम हो गया है। तब मुझे विचार आया कि मनुष्य अपने आप-राज की दुनिया में पूरी तरह खो गया है।

“अगले दो दिनों तक कुंडलिनी रीढ़ की हड्डी के अंदर ऊपर ही ऊपर चढ़ती



प्रदीप दादू

गयी। मेरी दायें हाथ की उंगलियां पहले पीछे की ओर खिची। फिर आगे झुककर तन गयीं। हथेली के सारे पर्वत उभर आये। इस प्रकार मेरे दायें हाथ में बिजली इकट्ठी हो रही थी। उसको संतुलित करने के लिए मैंने दूसरे हाथ की उंगलियों में अपने दायें हाथ की हथेली कस ली। और हथेलियों को भींच दिया।

"मेरे सिर से उत्सर्जित हो रही धाराएं शरीर के बाहर बहकर अंतरिक्ष में फैल गयीं। पृथ्वी का खनिज, पशु और पौधों का साम्राज्य, प्राण और पंच तत्व (पृथ्वी, अग्नि, पानी, वायु और आकाश) मेरे अंदर से उत्सर्जित होते हुए प्रतीत हुए। इस पूरी प्रक्रिया के बाद मेरे मस्तिष्क में 'ओ३म्' का विचार आया।

"अगली रात। घर के बाहर, दक्षिण दिशा की ओर सिर किये मैं लेटा था। अचानक मेरे सामने एक आदमी का नीला शरीर आकर खड़ा हो गया। वह वास्तव में साक्षात्कार था—भगवान राम से।

"अगले दिन शाम को मुझे एक दोस्त का ख्याल आया, तो उसके घर चला गया। अभी चौखट पर ही पहुंचा था कि मुझे लगा कि मेरे सिर के पीछे से बिजली की तरंगें निकल रही हैं। कुंडलिनी सहस्रार चक्र पर पहुंच चुकी थी। मैंने दोस्त की बहन से कहा, 'मैं तुम्हें सरस्वती बना सकता हूं। मैं कृष्ण हूं।' मैं पूर्ण ब्रह्मांड, शून्य समय और संपूर्ण विचार बन गया था।"

ये अनुभव हैं प्रदीप दादू के। उस समय आयु थी मात्र बीस वर्ष। उन्होंने अपनी सिद्धि की सारी कहानी हमें बतायी। कुंडलिनी या कुंडलिनी जागृत होने के बारे में तब वे कुछ नहीं जानते थे। लेकिन आज चार वर्ष बाद इस विषय के गहरे अध्ययन-मनन से इस निर्णय पर पहुंच चुके हैं कि कुंडलिनी-योग से आज के युग की अनेक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है।

प्रदीप दादू ने स्वयं-निर्मित सूत्र को परिभाषित किया। २० वीं शती के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन के सूत्र 'ई=एम सी२' को, वे संशोधित करना चाहते हैं। आइंस्टीन के सूत्र में 'ई' का अभिप्राय है ऊर्जा, 'एम' का मात्रा व 'सी' का प्रकाश के वेग से। इसी सूत्र को प्रदीप दादू एक

और 'सी', जो विचारों के लिए है, और स्थिरांक (कांस्टेंट) 'के' से गुणा करके पूरी सृष्टि की परिभाषा करना चाहते हैं। अन्य और भी समस्याएं कुंडलिनी के अनुभव द्वारा प्राप्त अंतःदृष्टि से वे उनका समाधान करना चाहते हैं। उन्होंने जो अपनी योजना बनायी, वह इस प्रकार है:

पहला: मैं कौन हूं ? व्यक्ति-विशेष तथा दुनिया और ब्रह्मांड से मेरा संबंध क्या है ? यानी जीवन के उद्देश्य को परिभाषित करना।

दूसरा: मस्तिष्क की वृद्धि के लिए नयी विधियों का निर्माण, जो दृष्टि, वाणी और श्रवण के विकास तथा योगासनों पर आधारित है।

तीसरा: मंत्र-विद्या क्या है ? इसको समझकर वेदों के रहस्य को उद्‌घाटित करना।

चौथा: भौतिकी की भाषा में यह समझना कि मस्तिष्क क्या है ? तथा मस्तिष्क की वृद्धि कैसे होती है, जिसका पौराणिक संस्कृत-पुस्तकों जैसे 'पंतजलि योग-सूत्र' और 'हठ-योग प्रदीपिका' में उल्लेख है। इस प्रकार वैज्ञानिक आधार पर कुंडलिनी का महत्त्व स्थापित करना, ताकि इससे यह पता लग सके कि 'जीनियस' क्या है और पागलपन क्या ? मृत्यु क्या है और मुक्ति क्या ?

पांचवां: पदार्थ और मस्तिष्क के संचालन में जो सामान्य सिद्धांत हैं, उनको समझकर विज्ञान और आध्यात्मिकता के बीच सेतु तैयार करना। ●

लघु-कथा

कर्त्तव्य-प्रेम

लार्ड नैल्सन प्रसिद्ध अंगरेज नाविक था। उसने अपने अंतिम समुद्री लड़ाई के दौरान अपनी कमान के हर एक जहाज को 'विक्ट्री' नामक झंडे द्वारा संदेश भेजा कि, 'इंग्लैंड अपने हरेक व्यक्ति से अपने कर्त्तव्य-पालन की आशा करता है।'

लड़ाई में नैल्सन की पीठ में एक गोली लगी और उसे मालूम हो गया कि उसकी मौत निश्चित है। फिर भी वह अपने सैनिकों के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं भूला। उसने अपना मुंह एक रूमाल से ढक लिया, ताकि उसके सैनिकों को यह मालूम न हो कि वह घायल व मरणासन्न है, जिससे कहीं वे अपना साहस न छोड़ दें।

जब नैल्सन को उठाकर नीचे ले जाया जा रहा था, तब भी वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग था। उसने देखा कि जहाज का पथ-प्रदर्शन करनेवाले रस्सों में से एक रस्सा टूट गया है, तो उसने भयंकर पीड़ा के होते हुए भी रस्से की मरम्मत की आज्ञा दी। वह बराबर यह भी पूछता रहा, 'अब युद्ध कैसा चल रहा है ?'

उसने मरने के कुछ ही देर पहले ये शब्द कहे थे, 'अब मैं संतुष्ट हूं। मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।'

—रमाकांत दीक्षित



वह अंग्रेजी पत्रकारिता के संस्थापकों में से था। वह प्रसिद्ध उपन्यासकार, उदभट पत्रकार और साहित्यकार भी था। उसने जिंदगी में इतने पर्चे निकाले कि पैंफलेट-बाज भी कहा गया। जीवन में तरह-तरह के पापड़ बेलता रहा। अवसर आने पर उसे जासूसी भी करनी पड़ी। वह विचित्र लेखक डैनियल डेफो था।

डेफो १६५९ में लंदन के क्रिपिल गेट नामक स्थान पर पैदा हुआ था। उसका पिता जेम्स डेफो कसाई था। उसने प्रसिद्ध शिक्षण-संस्थान स्टोक नेविगंटन में शिक्षा पायी थी। वह प्रारंभ से ही विद्रोही स्वभाव का था। १६८५ में जब मानमाउथ म विद्रोह हुआ, तब डेफो भी विद्रोहियों में

लेखक जो जासूस था

• डॉ. शिवनन्दन कपूर

मंझोला कद, भूरा रंग, भूरी आंखें, चेहरे के करीब बड़ा-सा तिल, लंबी नुकीली नाक और लंबा-सा मुखड़ा। यही उसकी वाह्य रूप-रेखा थी। लंबोतरे चेहरे पर गहरे भूरे रंग की बालों की टोपी पहनता था। टोपी के बाल कंधों से भी नीचे तक लटके रहते। खमदार काकुल, जिन्हें देखकर रेशमी कीड़ों के खोलों के जुड़े रहने का धोखा हो। पीछे से वे जुल्फें किसी हसीना की घुंघराली लटें ही नजर आती थीं।

शामिल हो गया था। लंदन का निवासी होने के कारण ही वह कानून के हाथों बच सका था।

जिंदगी में डेफो ने बहुत से धंधे किये। शिक्षा समाप्त होते ही उसने होजरी की दूकान खोल ली। दूकान चली, तो मेरी टफले नामक महिला से शादी कर ली। उससे उसे सात बेटों का बाप बनने का सौभाग्य मिला। उत्साही स्वभाव का होने

के कारण ही राजा विलियम और मेरी के लंदन प्रवेश के समय उसने स्वयं-सेवकों में नाम लिखाया था। जर्क-वर्क वर्दी में जनाब सजे हुए घोड़े पर सवार थे।

रोजगार के सिलसिले में डेफी स्पेन भी गया। पर किस्मत ने उसका साथ हमेशा न दिया। १६९२ में उसे १७,००० पौंड का नुकसान उठाना पड़ा। उसे कर्ज देनेवालों ने समझौते का रास्ता सुझाया। पर गुमानी डेफी को वह न भाया। उसने धीरे-धीरे सारा कर्ज चुकाया। फिर रुबिन और टिलबरी में उसने टाइलों का धंधा अपनाया। यहां भी उस पर दुर्भाग्य छाया। उसे जेल जाना पड़ा और उसके कारण उसका व्यवसाय चौपट हो गया।

उसने मोजे, शराब और सुंघनी का व्यापार भी किया। पर उनमें से किसी में न जम पाया। बद-किस्मती के साये से फिर भी न पिंड छूटा, तो उसने दूसरा रास्ता अपनाया। १६९५ में वह ग्लास-ड्यूटी के कमिश्नर का अकाउंटेंट बन गया। इस पद पर उसने पूरे चार साल काम किया।

इसके बाद से ही उसकी पर्चे-बाजी शुरू हो जाती है। १७०१ में उसने 'टू बार्न इंगलिशमैन' नामक व्यंग्य लिखा। यह व्यंग्य राजा विलियम के विदेशी होने की राष्ट्र-व्यापी आपत्ति को लक्ष्यकर लिखा गया था। इसके पश्चात ही उसके बुरे दिन आ गये थे। उन दिनों उसका कोई मित्र न रह गया था। २४ मार्च, १७०३ को उस पर २०० मार्क का जुर्माना किया गया। सात साल के बीच उसे तीन बार दंड मिला। व्यवसाय की हानि सहनी पड़ी अलग।

१ नवंबर, १७०४ तक वह जेल में रहा। छूटने के बाद उसने रानी अने से भेंट की। उस मुलाकात के कारण उसे मुक्ति ही नहीं, नौकरी भी मिली। वह नौकरी भी बस अने के शासन के अंत तक ही चलती रही थी। 'स्कैंडल क्लब' खोलने-वाला भी यही मनमौजी साहित्यकार था। इस क्लब में सभ्यता और नैतिकता से संबंधित छोटे-छोटे प्रश्न उठाये जाते। उन पर नये ढंग से नयी दृष्टि से विचार किया जाता था।

जासूसी-पत्रकार

डेफी को जासूसी भी करनी पड़ी थी, यह कम लोग जानते हैं। सबसे पहले उसे १७०५ के अंत में हारले के लिए यह कार्य करना पड़ा। वह १७०६ में स्पेशल रिपोर्टर भी रहा। १७०६ से १७०७ तक उसने स्काटलैंड और फ्रांस में सरकार के लिए जासूसी का कार्य किया। वह वहां रहकर काम की खबरें भेजता रहा था। उसे इस कार्य में गोडेलियन ने लगाया था। गोडेलियन तक उसे पहुंचानेवाला हारले ही था।

अपने सिद्धांतों के आगे डेफी ने कभी किसी बात की परवाह न की। भले ही उसका परिणाम कुछ भी निकलता रहे। १७१० में जब उसका हितैषी हारले सत्ता

में आया, डेफी की बुरी गत हो चुकी थी। वह यदि एक ओर टोरियों की विदेश नीति का समर्थक था, तो ह्विग की गृह-नीति से भी सहमत था। इस कारण दोनों दलों को गालियां सुनाता था। १७१० में उत्रेख्त की संधि के अवसर पर उसने मंत्रियों का समर्थन किया। इससे ह्विग उस पर बेहद नाराज हो उठे। उनके गुस्से से उसे हारले ने ही बचाया। किंतु धार्मिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर उसने राज-धर्म विरोधियों का पक्ष लिया। अपने इस कार्य से वह हारले के पतन में सहायक बना।

उस पर मुकदमा चलाया गया। मुकदमा चलाये जाने के पूर्व उसने एक क्षमा-याचिका प्रकाशित की। उसका शीर्षक था, 'एन अपील टू आनर एंड जस्टिस।' वह अपने जीवन के सत्यों को जानने का स्रोत है। बाद में सरकारी अधिकारी डेलफी को अभिलेखागार में छह पत्र मिले थे। उनसे ज्ञात हुआ था कि डेफी राजा विलियम तृतीय के आदेश के अनुसार राजनीतिक और गुप्तचर-कार्य कर रहा था। शासन से उसका समझौता था। बाद में उसे जेल से छोड़ा भी गया था, तो इस शर्त पर कि वह गुप्तचर का कार्य करता रहेगा। जेल में भी वह खामोश न बैठा था। उसने वहां से भी एक पत्रिका 'दि रिव्यू' निकाली थी। वह पत्रिका १७१७ तक चलती रही थी।

२५ अप्रैल, १७१४ को उसने अलेक्जंडर सेलकिर्क के अनुभवों पर आधारित राबिसन क्रूसो के आश्चर्यजनक साहसिक वृत्तांत उपन्यास के रूप में प्रकाशित किये। वह पहला खंड था। दूसरा खंड अगस्त में प्रकाशित हुआ। इस तरह १७२० तक उसने उसके चार खंड प्रकाशित कराये। सेलकिर्क से उसकी भेंट ब्रिस्टल में एक महिला श्रीमती डेनियल के घर हुई थी।

१७२० में डेफी ने 'दि लाइफ एंड एडवेंचर ऑव मिस्टर डंकन कैंपबेल' की रचना की। यह कृति कल्पना मात्र नहीं। उसका भविष्य-वक्ता नायक वास्तविक मनुष्य था। १७२० में ही उसने 'मेंमायर्स ऑव ए केवेलियर' तथा 'कैप्टन सिगलटन' शीर्षक रचनाएं प्रस्तुत कीं। १७२१ में तीन और कथा-कृतियां लिखीं। उनके थे-नाम —'दि फारचून एंड मिसफारचून ऑव माल फ्लैंडर्स', 'दि जर्नल ऑव प्लेग ईयर,' तथा 'दि हिस्ट्री ऑव कर्नल जैक।' 'माल फ्लैंडर्स', 'दि जर्नल' का अंगरेजी उपन्यासों में अपना स्थान है। उसमें डेफी ने अच्छी कल्पना की है। वह कल्पना है, पर उसमें सत्यकथा-सा आनंद आता है। 'हिस्ट्री ऑव कर्नल जैक' भी अद्भुत है। किंतु उसका अंत प्रारंभ जैसा अच्छा नहीं है।

प्रसिद्ध अपराधियों के जीवन को लेकर भी उसने उपन्यास लिखे। उनमें 'जैक शैपर्ड' 'जौनाथम वाइल्डा', 'राब राय' विख्यात हैं। 'दि जर्नल ऑव दि प्लेग ईयर' तथ्यों पर अधारित है। किंतु इतनी

वास्तविक और आंखों देखी-सी लगती है जिसकी सीमा नहीं।

अपने जीवन में की गयी तथा दूसरों से सुनी यात्राओं के आधार पर उसने कई कृतियां बड़ी सजीवता से प्रस्तुत कीं। १७२४ में उसने 'ए टूर थ्रू दि होल आइलैंड ऑव ग्रेट ब्रिटेन' लिखा। १७२५ में 'दि न्यू वायजेज राउंड दि वर्ल्ड' लिखकर उसमें अनूठी कल्पना का समावेश किया।

उसके अंतिम दिन अच्छे नहीं बीते। वह छिपता भी फिरा। उसे कैद भी हुई। यह पता चल जाने पर कि वह सरकारी जासूस भी रहा, लोगों ने उस पर हमले किये। मिस्ट नामक व्यक्ति उनमें अग्रणी था। उसने कई संपादकों को इस बात की सूचना दे दी। नाराज होकर उन्होंने डेफी को काम देना बंद कर दिया। बाद में मिस्ट फ्रांस भाग गया।

इसकी सारी जायदाद कर्ज देनेवालों ने बांट ली। प्रशंसा पत्र तक जब्तकर लिये। १७२४ में डेफी ने स्टोक नेविंगटन में एक बड़ा मकान बनवा लिया था। पर आज तक यह एक रहस्य बना हुआ है कि वह भयंकर गरमी में भी क्यों भागता रहा, तथा अपने मकान में क्यों न मरा? उसकी मृत्यु २६ अप्रैल, १७३१ में मूरफील्ड के रोम मेकर्स अले नामक स्थान पर हुई। अंतिम क्षणों में उसका कोई मित्र न रह गया था। शायद उसके मनमें कुछ ऐसी भावना उत्पन्न हुई हो—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो।
हम सुखन कोई न हो और हम जुबां कोई न हो॥
पड़े गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जाइये तो नौहःख्वां कोई न हो॥"

पर मरने के बाद वह 'अनजाना,' और 'विलाप-रहित' नहीं रह गया था। बर्नहिल फील्ड के कब्रिस्तान में १८७० में एक संगमरमर का स्तंभ डेफी की स्मृति में स्थापित किया गया था। वह स्तंभ नागरिकों ने नहीं, ब्रिटिश बालकों ने राबिसन क्रूसो के लेखक की याद में चंदे से बनवाया था। उस पर एक लेख भी इस संबंध में उल्लखित है।

—३८७ ट ाल चाल, खंडवा (म. प्र.)

जापान की राजधानी टोक्यो के कीओ विश्वविद्यालय के प्राणीविज्ञान विभाग में संसार के अनेक वैज्ञानिकों ने मानव कल्याण के लिए अनेक सफल परीक्षण किये। उन परीक्षणों के दौरान करीब एक लाख मेंढकों की हत्या हुई। इन एक लाख मेंढकों की स्मृति में पत्थरों का एक विशाल शानदार स्मारक बनवाया गया, जिस पर लिखा है—'उन अज्ञात प्राणियों के लिए यह स्मारक बना है, जिन्होंने मानव कल्याण के लिए अपने जीवन का बलिदान किया।'

दाद देनी पड़ती है लेट लतीफों को

• डॉ. संसार चन्द्र

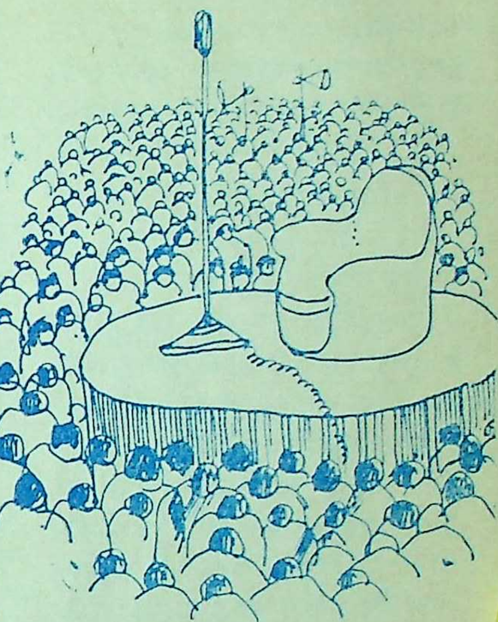
दुनिया का हर छोटा-बड़ा इनसान अपने काम की दाद चाहता है। हिमालय की चोटी फतह करना प्रत्येक मनुष्य के बस का रोग नहीं होता। घुटनों के बल चलनेवाले भी तो आखिर दाद के लिए उत्सुक रहते हैं। इसलिए 'लेट-लतीफ' भी यदि दाद का तकाजा करें, तो खास गुस्ताखी की बात नहीं है। उनका दावा है कि उन्होंने 'लेट-लतीफ' का उच्च पद कोई भाड़ झोंककर हासिल नहीं किया। आप उन्हें कौन-सा राज्य-सिंहासन दे रहे हैं, जो गहरी चिंता से निढाल हो रहे हैं। विश्वास कीजिए, दाद देने से आपका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। मुझसे पूछिए तो मैं इस बात का पूरा कायल हूं कि दाद देनी पड़ती है—लेट लतीफों को।

लेट लतीफ शब्द के इतिहास की ओर जाएं तो जाहिर होगा कि यह शब्द कोई इतना प्राचीन नहीं है। हमारे प्राचीन साहित्य में लेट होने की वारदातों का कोई खास जिक्र नहीं मिलता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह एक शुद्ध अंगरेजी शब्द है और भारत में अंगरेजी राज्य के उदय के साथ ही व्यवहार में आया है। यह बात किसी से छिपी नहीं कि अंगरेज अपनी ड्यूटी का पूरा पाबंद था। अपने काम पर लेट आनेवालों को कभी माफ नहीं करता था परंतु सचाई तो यह है कि उसका अपना जीवन भी एक तार नहीं था। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और थे। उसके व्यक्तिगत जीवन का जायजा लेने से स्पष्ट होगा कि वह भी किसी हद तक लेट होने की बीमारी का शिकार था। रात को लेट सोना और दिन को लेट उठना उसका शेवा था। खैर जो भी हो, इस बात से तनिक भी इंकार नहीं किया जा सकता कि यह भलामानस अपनी अच्छी बातें तो साथ बांध ले गया और लेट होने की नामुराद बीमारी हमारे गले मढ़ गया। खैर लेट लतीफ भी तो उसी खुदा के नूर से उपजे हैं। इन्होंने भी अपनी लेट-लतीफी के वे चमत्कार दिखाये कि चारों दिशाओं में इनके डंके बजते

लगे। अंत में वह दिन भी आ गया, जब इनके शत्रुओं को भी मजबूर होकर मानना पड़ा—दाद देनी पड़ती है—लेट लतीफों को !

एक जमाना था जब लेट लतीफों के बारे में लोगों की राय अच्छी न थी। इनसानी तरक्की की राह में इन्हें भारी रुकावट समझा जाता था । अब तो प्रभु-कृपा से जमाने में अजब इंकलाब आया है। लेट लतीफों का सितारा सातवें आसमान को छू रहा है। आप किसी भी जलसे में चले जाएं प्रधानजी हमेशा लेट आएंगे। प्रधानजी का लेट आना ही उनकी योग्यता एवं प्रतिष्ठा का मापदंड बन गया है। वह प्रधान ही किस काम का, जो निश्चित समय पर प्रकट हो जाए। लेट आना जमाने का रिवाज ही नहीं एक 'फैशन' बन गया है। ठीक समय पर टपक पड़नेवाले लोग भारी निकम्मे और पुराण-पंथी समझे जाते हैं। अब तो लेट लतीफ ही मात्र नवीन बोध के प्रतिनिधि बन गये हैं, जिन्होंने हमारे सामाजिक जीवन को एक ऐसा मोड़ दे दिया है कि दाद देनी पड़ती है—लेट लतीफों को !

कई बार लोग अकारण ही हाथ धोकर लेट लतीफों के पीछे पड़ जाते हैं। सोचा जाए तो लेट-लतीफ होना कोई अपराध नहीं। यदि आपको लेट लतीफ बनने के फायदे बताये जाएं, तो आप दांतों-तले उंगली दबाएंगे। आपको विदित होना चाहिए कि हमारी 'गौरमेंट' जो



हमारी समस्याओं पर 'मिंट-मिंट' बाद गौर करती है अब पूरे तौर पर लेट लतीफों की सरपरस्ती पर उतर आयी है। सड़कों पर क्या ही शानदार साइनबोर्ड चमक उठे हैं—**'बैटर लेट, दैन नैवर'** । इससे साफ जाहिर है कि सरकार आपके दुर्घटनाग्रस्त होने की निस्बत लेट होने को एक शुभ लक्षण समझती है। हर खास व आम में 'लेट-परस्ती' की भावना को प्रेरित करने के लिए सरकार ने अनेक प्रकार के नवीन 'साईन बोर्ड' ईजाद किये हैं—'आपके बच्चे घर-बैठे आपका इंतजार कर रहे हैं।' इस तरह के 'मोटो' पढ़कर लेट लतीफ का भयानक से भयानक शत्रु भी नरम पड़ जाता है। गाड़ी के

'एक्सैलरेटर' को निर्दयता से दबोचता हुआ उसका मजबूत पंजा तत्काल शिथिल पड़ जाता है और वह झट कह उठता है--'चलो आज 'लेट' तो 'लेट' ही सही।'

भारतीय सैंसस (जनगणना) विभाग के ताजा आंकड़ों के अनुसार आप आश्चर्य करेंगे कि लेट लतीफों की आबादी में दिन-प्रतिदिन संख्यातीत वृद्धि हो रही है। चारों ओर लेट लतीफों का ही बोल-बाला है। इसीलिए हमारा कोई काम समय पर नहीं होता। गाड़ियां लेट, हवाई जहाज लेट, तारें लेट, चिट्ठियां लेट, कौन-सी चीज लेट नहीं होती ? मैं कई बार सोचता हूं कि प्रकृति के सारे कार्यक्रम समय की मर्यादा का पालन करते हैं। सूर्य-चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र सभी समय पर उदय और अस्त होते हैं। मानव का जन्म-मरण, बालपन, जवानी तथा बुढ़ापा सभी समय के अधीन हैं परंतु कितनी लज्जा की बात है कि इनसान सभी कायदे-कानूनों पर लात मारकर लेट होने की 'प्रेक्टिस' कर रहा है। सच पूछिए तो इसीलिए उसकी तरक्की भी 'लेट' हो गयी है।

आप चाहे कितने गंभीर नुक्ते निकालें, आखिर आपको मानना ही पड़ेगा कि लेट होना एक अच्छी आदत नहीं। जरा लेट लतीफों के चाहनेवालों से पूछिए, जिनके लिए वे 'ईद के चांद' बन जाते हैं और वे बेचारे उनकी फिराक में दिन रात आहें भरते हैं। लेट लतीफों के झूठे वायदों पर जीना भी कयामत से कम नहीं। जब पूछते हैं एक ही सिक्केबंद-जवाब मिलता है--'अच्छा इस इतवार को मिलेंगे,' परंतु वह इतवार तो हश्र का इतवार बन जाता है। इसीलिए किसी निराश पंजाबी शायर ने घबराकर उनकी शान में शेर पेश करने की गुस्ताखी की है--

लेट लतीफांयारां कोलूं फल्ल किस्से नइं पाया
किक्कर ते अंगूर चढ़ाओ हर दाना जखमाया

इधर लेट लतीफों के वकील इन छोटे-मोटे नु तों को कच्चे धागे की तरह छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वे अपने मुव-क्किलों के डिफेंस के लिए एक जोरदार जिरह करते हैं। उनका कहना है कि लेट लतीफ कोई साधारण व्यक्ति नहीं होते। वे तो एक पहुंचे हुए महात्मा या औलिया होते हैं। वे जानते हैं कि यह धूप-छां का खेल है। इसीलिए दुनियादारी के कामों के लिए हर तरह की भाग-दौड़ को बेकार समझते हैं। काम लेट हो या समय पर इससे उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। मनुष्य को मस्तमौला रहकर जिंदगी बितानी चाहिए और 'निन्यानवे के फेर' से बचना चाहिए। अब आप ही बताइए इन हालत में किस किस्म का जवाबदावा पेश करने की गुंजाइश हो सकती है?

जब भी लेट लतीफों के अजीबो-गरीब कारनामों की बात छिड़ती है, मुझे अपने एक हरदिल अजीज प्रोफेसर, जो प्रोफेसर रांजा के नाम से विख्यात हैं, की याद ताजा हो आती है। आप अपने

विषय के इस कदर गंभीर विद्वान हैं कि आपका 'लेक्चर' सुनकर प्रत्येक विद्यार्थी आपकी योग्यता का लोहा मान लेता है। वैसे भी प्रोफेसर रांजा अनेक गुणों की खान हैं परंतु उनमें एक दोष जरूर है—वे कक्षा में जरा लेट आते हैं। एक दिन उनकी कक्षा में ही एक लड़के से कहा-सुनी हो गयी। लड़का उनके लेट आने पर कुछ नाक-भौंह सिकोड़ रहा था। प्रोफेसर साहब, जो उसकी टीका-टिप्पणी सुन रहे थे, थोड़ी-सी सफाई पेश करते हुए कहने लगे, "तुम ठीक ही कह रहे हो कि मैं कभी-कभी कक्षा में लेट आता हूं मगर बरखुरदार ! तुम्हें इस बात का भी इल्म होना चाहिए कि मैं तुम्हारे उन प्रोफेसर भाइयों से तो बेहतर हूं, जो कक्षा में लेट तो नहीं आते, मगर उनसे जब भी कोई गंभीर नुक्ते की बात पूछो तो कक्षा में ही 'लेट' जाते हैं। प्रोफेसर साहब की लेट की यह नवीन व्याख्या सुनकर तमाम कक्षा हंस-हंसकर लोट-पोट हो गयी।

लेट लतीफों के संबंध में आपने बहुत-सी बातें पढ़ ली हैं। लगे हाथों आपको लेटलतीफों के दुश्मनों की भी एक बात बता दें। हमारी रियासत में एक बहुत बड़े देशभक्त और सरकार के सच्चे वफादार हो गुजरे हैं। आपका नाम था ठाकुर प्यारसिंह। सचमुच प्यार और मुहब्बत की तसवीर। लेट लतीफों से उनकी सांप और नेवले-जैसी दुश्मनी थी। वे तो इतने 'अर्ली' लतीफ थे कि उन्हें देखकर उनके

यूगोस्लाविया के एक किसान ने अपने प्रिय बकरे की मृत्यु पर शानदार जुलूस निकाला, जिसमें हजारों लोग शामिल हुए। उसकी कब्र पर कीमती पत्थरों निर्मित बकरे की एक प्रतिमा स्थापित की गयी।

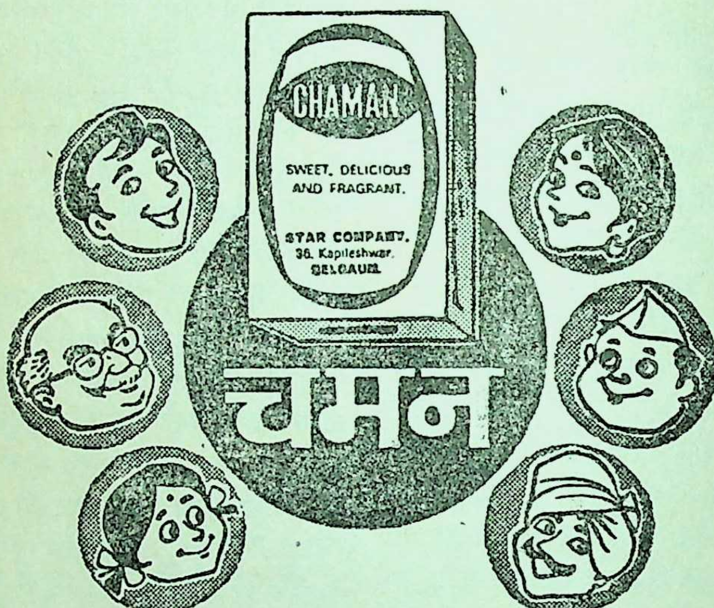
दफ्तर के चपरासी शर्म से पानी-पानी हो जाते थे। उन्हें 'बिफोर टाइम' दफ्तर में विराजमान देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि या तो ठाकुर साहब रात को यहीं सोये हैं या दफ्तर का दरवाजा इन्होंने स्वयं अपने मुबारक हाथों से खोला है। ठाकुर साहब की 'बिफोर टाइम' पहुंचने की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। ठाकुर साहब ने एक दिन हरिद्वार जाने का प्रोग्राम बनाया। गाड़ी जम्मू स्टेशन से शाम के चार बजे छूटती थी, परंतु ठाकुर साहब ने दो बजे ही स्टेशन पर धावा बोलने की तैयारी कर ली। मुझसे रहा न गया और पूछ बैठा—'स्टेशन पर दो घंटे पहले बैठकर मक्खियां मारने में क्या तुक है ?'

ठाकुर साहब खीझकर बोले, "तुम तो बिलकुल ही 'भोले साईं' हो। तुम्हें विदित होना चाहिए कि गाड़ी मेरे बाप की नहीं है। यदि कारणवश पहले ही चलती बने तो मैं किस की मां को मासी कहूंगा।"

"ठाकुर साहब की दूरंदेशी की बात सुनकर मेरी पूरी तसल्ली हो गयी और मैं सदा के लिए उनकी वक्त की पाबंदी का कायल हो गया।

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

रुचिकर और स्वादिष्ट मुखशुद्धि के लिए



चमन अति स्वादिष्ट, रुचिकर, सुगंधित चूर्ण है। इसके सेवन से जायका सुधरता है और मुंह सुगंधिक होता है

चमन में क्या-क्या हैं!



चमन में मुलेठी, केसर, इलायची लौंग, जायपत्री सौंफ, मेंथॉल जैसी अनेक प्रकार की सुगंधित एवं रुचिकर वस्तुएं मिलायी जाती हैं। इसका बच्चों से बूढ़ों तक सभी रुचि से सेवन करते हैं।

स्टार कंपनी, बेलगांव.

नयी कृतियां

नाटक, काव्य-संग्रह और उपन्यास

कथा एक कंस की

लेखक--दयाप्रकाश सिन्हा, प्रकाशक--अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ--११२, मूल्य--१० रुपये

दयाप्रकाश सिन्हा का नया रंग-नाटक **कथा एक कंस की** अनेक स्तरों पर एक अभिनव और रचनात्मक प्रयोग है। वह एक साथ कथावस्तु, नाट्य-संयोजन और अभिनय तीनों स्तरों पर अनेक संभावनाओं को सहजभाव से इंगित करता चलता है। सिन्हा मात्र लेखक नहीं हैं, वे नाट्य-कलामर्मज्ञ निर्देशक, और अभिनेता भी हैं। उनकी दिवंगत पत्नी भी कुशल अभिनेत्री थीं। इस पृष्ठभूमि ने उन्हें नये प्रयोग करने में विशेष क्षमता प्रदान की।

संयोजन की दृष्टि से नाटक का गठन बहुत सुंदर बन पड़ा है। पूरे समय कंस मंच पर उपस्थित रहता है और उसकी मनःस्थिति 'पूर्व दीप्ति' के द्वारा स्पष्ट होती चलती है। इसी कारण दो स्तरों पर एक साथ खुलनेवाली कथा के प्रवाह में कहीं व्यवधान नहीं पड़ता। एक निरंकुश शासक का वर्तमान, मात्र क्रूरता पर ही आधारित नहीं होता, क्रूरता के मूल में होता है, भय। वही भय इस नाटक को गति प्रदान करता है और अंत तक जीवंत बनाये रखता है। कंस को भय है कृष्ण से, पर कृष्ण तो नाटक का पात्र है नहीं। फिर भी है, क्योंकि भयातुर कंस निरंतर वंशी की आवाज सुनता रहता है। चक्र नहीं, वंशी, क्योंकि नये मूल्य चक्र नहीं दे सकता, वंशी दे सकती है।

लेकिन यह कथा क्या केवल द्वापर के कंस की है? वह तो मात्र एक प्रतीक है। वास्तव में यह कथा उस प्रत्येक तानाशाह की है, जो अपने युग की दूषित राजनीति और राजसत्ता के मोह की उपज है।

लेखक ने मिथक को नयी चेतना का संवाहक बनाकर आज की राजनीति को स्पष्ट करने के लिए बहुत सार्थक उपयोग किया है।

अपने समग्र रूप में नाटक एक सशक्त और प्रामाणिक कृति है, जो अतीत और वर्तमान (इसीलिए भविष्य भी) के संबंधों को सही रूप में व्याख्यायित करके सही परिप्रेक्ष्य में संप्रेषित करने में सक्षम है। लेखक ने नाटक का आलेख मात्र कल्पना के आधार पर तैयार नहीं किया, बल्कि तत्कालीन साहित्य का अवगाहन करके उनका आधार खोज निकाला है।

इस दृष्टि से उनकी भूमिका बहुत सुंदर है।

रूपबंध और भाषा कथा के अनुरूप है। सही भाषा की तलाश सही अर्थों की तलाश है, जिसमें सिन्हा बहुत दूर तक सफल हुए हैं। —विष्णु प्रभाकर

काव्य-संकलन

कविश्री

लेखक—डॉ. श्यामनंदन किशोर, संपादक—डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रकाशक—सेतु प्रकाशन, १८४ तलैया, झांसी, पृष्ठ— ४७, मूल्य—२ रुपये

कविश्री सुप्रसिद्ध गीतकार एवं समालोचक डॉ. श्यामनंदन किशोर की चुनी हुई रचनाओं का संकलन है। यह संकलन 'कविश्री माला' के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है।

इस पुस्तक-माला की एक विशेषता यह है कि इसमें भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों की एक हजार पंक्तियां किसी वरिष्ठ साहित्यकार द्वारा संपादित-कर प्रकाशित की जाती हैं। डॉ. श्यामनंदन किशोर की रचनाओं का संपादन डॉ. रामकुमार वर्मा ने किया है। सन '४६ में डॉ. किशोर की 'शेफालिका' पुस्तक प्रकाशित हुई थी और तब से लेकर 'विभावरी', 'जवानी और जमाना', 'कमल', 'बंदूक' और 'सूरजमुखी', 'ज्वारभाटा', 'युगबोध', 'संकलन', 'सूरज नया पुरानी धरती', 'आंजनेय' आदि कितनी ही काव्य-

पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इस संग्रह के द्वारा डॉ. किशोर के पाठकों को अल्प-मूल्य में पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। डॉ. किशोर जीवन की अंतरंग अनुभूतियों, विरोधाभास और यौवन की इंद्रधनुषी छवियों के चित्रकार रहे हैं। उनकी कविताओं को पढ़ने में जितना आनंद आता है, उतना ही सुनने में।

डॉ. वर्मा ने ठीक ही लिखा है, 'इनकी काव्य-प्रतिभा स्रोतस्विनी की भांति प्रवाहित होकर जन-मानस को उर्वर बनाती है। प्रथम श्रेणी के गीतकार के रूप में अपनी रचनाओं के विकास में वे प्रबंध काव्य की ऊर्जास्विता को प्राप्त करनेवाले हिंदी के ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाएं विदेशों में भी आदर के साथ पढ़ी और सुनी जाती है। उनकी कृतियों का विदेशी भाषाओं में, जो अनुवाद हुआ है, उनसे भारतीय भाषाओं में हिंदी को गौरव प्राप्त हुआ है।' इस संग्रह में एक साथ ही श्रेष्ठ गीत, निबंध-काव्य और प्रबंध-काव्य के दर्शन होते हैं।

सच सूर्य है

लेखक——रमेश कौशिक, प्रकाशक——पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्णगली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२, पृष्ठ——९५, मूल्य——१५ रुपये

सच सूर्य है रमेश कौशिक की ६६ कविताओं का नया संकलन है। बोलचाल की सहज भाषा में लिखी गयीं ये कविताएं आज के बुद्धिजीवी की व्यथा एवं आक्रोश को मार्मिक अभिव्यक्ति देती हैं। अधिकांश कविताओं में अंतर्निहित सूक्ष्म व्यंग्य आज की राजनीति तथा विषम एवं स्वार्थपूर्ण जिंदगी पर अच्छी चोट करता है। 'कैरम की क्वीन', 'बाजे वाले', 'झूठ से छूट', 'श्रद्धा', 'तरीका बदल गया है', 'समझ के बाहर', 'कौन श्रेष्ठ' कुछ ऐसी ही कविताएं हैं। लेकिन अनास्था के इस युग में भी कवि को सत्य की विजय पर विश्वास है और 'पूरा इतिहास', 'अगर फिर कभी'-जैसी कविताओं में वह दृढ़ता के साथ व्यक्त हुआ है।

इन समाजपरक कविताओं के अतिरिक्त 'गंगतोक की सुबह', 'फूलों की घाटी', 'झरना' इत्यादि कुछ ऐसी कविताएं, भागदौड़ की जिंदगी के बीच भी प्रकृति के सानिध्य से कवि को अनायास मिल जानेवाली सुखानुभूति, पाठक को भी प्रफुल्लित कर जाती है। **——डी. प्रसाद**

उपन्यास

कुमारिकाएं

लेखिका——कृष्णा अग्निहोत्री, प्रकाशक——इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्णा नगर, दिल्ली, पृष्ठ——१८८, मूल्य——१५ रुपये

तमाम शैक्षणिक प्रगति एवं आधुनिक होने के दावों के बावजूद भारतीय समाज में नारी के प्रति दृष्टिकोण पुरानी मान्यताओं और परंपरागत रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। आज भी कन्या का जन्म विशेष

आल्हादकारी घटना नहीं माना जाता। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने इस नये उपन्यास में एक ओर जहां इन रूढ़ियों पर चोट की है, वहां कुंवारी लड़कियों के अंतर्द्वंद्व को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

लेखिका ने विभिन्न पात्रों के सहारे कुंवारी लड़कियों की समस्यापूर्ण जिंदगी पर, जिसे वासना-प्रधान पुरुष समाज और भी दूभर बना देता है, प्रकाश डाला है।

कुछ और पुस्तकें

नयी बिसात : लेखक—श्रीचंद अग्निहोत्री

स्वाधीनता के बाद बदले भारत के ग्रामीण परिवेश के जीवन और उसके नये संघर्षों का चित्रण करनेवाला पठनीय उपन्यास है। भाषा सहज, विषयानुरूप तथा शिल्प प्रभावपूर्ण है।

प्रकाशक—शब्दकार २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-६, मूल्य—१६ रुपये

आभा मंडल, किसने कहा मन चंचल है, ऐसो पंच णमोक्कारो : लेखक—युवाचार्य महाप्रज्ञ

ध्यान एवं आध्यात्म में रुचि रखनेवाले पाठकों को ये तीनों पुस्तकें रुचिकर सिद्ध होंगी। प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर रश्मियों का एक वलय होता है, जिसे आभा-मंडल कहा जाता है, और यह आभा-मंडल व्यक्ति विशेष की भावधारा अर्थात 'लेश्या' के अनुसार बदलता रहता है। प्रथम पुस्तक में लेखक ने व्यक्तित्व एवं आभा मंडल के संदर्भ में 'लेश्या' के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। दूसरी पुस्तक में ध्यान के महत्त्व को दर्शाते हुए चेतना-जागरण और ऊर्जा की ऊर्ध्व यात्रा के लिए उसे उपयोगी बताया है। तीसरी पुस्तक में मंत्रों की व्याख्या कर मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए कुछ मंत्रों की जानकारी दी है।

प्रकाशक—आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान), मूल्य—क्रमशः १२, १५ एवं ६ रुपये

गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि : लेखक डॉ. भारतभूषण चौधरी

यह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत एक शोध-प्रबंध है। इसमें लेखक ने गुरु गोविन्दसिंह के युग, जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके दरबारी कवियों द्वारा रचित काव्य का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रकाशक—स्वस्तिक सदन, ५००/६ए/२, पांडव रोड, विश्वास नगर, दिल्ली, मूल्य—५० रुपये —प्रभा भारद्वाज

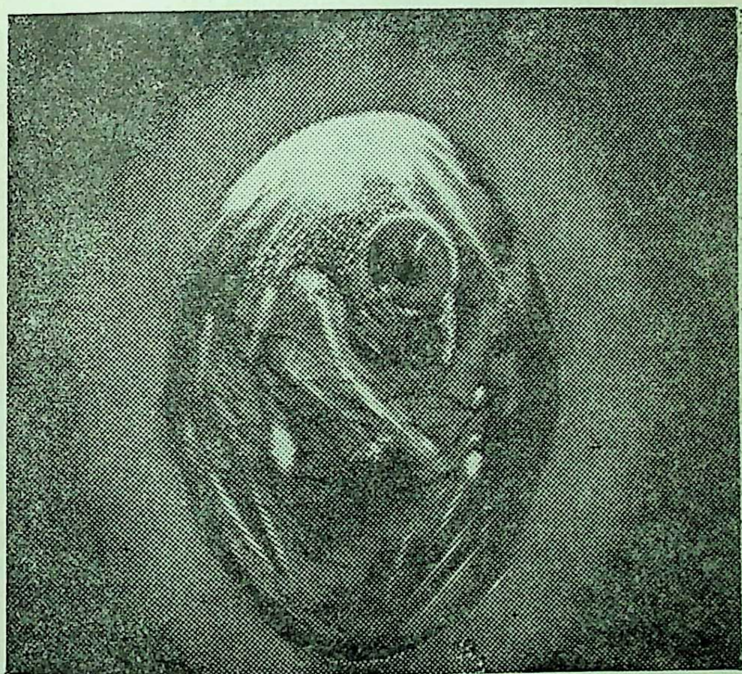
उमाल : लेखक—प्रेमलाल भट्ट

अभावों से अभिशप्त गढ़वाली जीवन की त्रासदी को मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति देनेवाला काव्य **उमाल** कथा एवं शिल्प की ताजगी के कारण उल्लेखनीय है। उमाल का अर्थ है 'उफान', और कवि ने अपनी भावनाओं के उफान को काव्य में बांधा है। मूल गढ़वाली कविता के साथ हिंदी में स्वयं लेखक द्वारा किया गया अनुवाद भी है।

प्रकाशक—राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली, मूल्य—१५ रुपये

—भगवतीप्रसाद डोभाल

वे मृत्यु को जन्म दे रहे हैं!



सार-संक्षेप

तथ्य : २० वर्ष पूर्व जापान के मिनीमाता नामक स्थान में १००,००० व्यक्ति भयंकर पीड़ा से छटपटाते हुए मर गये।
कारण : इन अभागे लोगों ने ऐसा पानी पी लिया था, जिसमें एक विषैला रासायनिक पदार्थ मिला हुआ था।
'दि ओमेन' नामक बहुर्चाचत पुस्तक के लेखक डेविड सेल्टजर ने अपने नवीनतम उपन्यास 'प्रॉफेसी' में एक ऐसे खतरे का चित्रण किया है, जिसकी ओर बहुत कम लोगों की दृष्टि गयी है। पढ़िए, इसी पुस्तक का सार--प्रस्तोता: देवेन्द्र कुमार।

सनाती वन प्रदेश पर बर्फ गिर रही थी। चारों ओर सर्द सन्नाटा। बर्फ गिरती रही लगातार पांच दिन तक। पेड़ उसमें दब गये, लकड़हारों की रोजी बंद हो गयी। नदी पर बर्फ की चिकनी, चमचमाती चादर बिछ गयी, मछलियों को ढंक लिया उसने। इंडियंस के लिए भोजन दुर्लभ हो गया। जंगल के कोने-कोने में फैले कामगर पीछे हटते हुए, छोटे-छोटे झुंडों में सिमटकर, यहां-वहां बनी छोटी झोंपड़ियों में बंद गरमायी में आसरा ढूंढ़ने लगे। उन्हें वसंत की प्रतीक्षा थी।

पशु-पक्षी सर्दी से बचने के लिए शीत-निद्रा की स्थिति में अपने घरों में दुबक गये थे। उनमें छोटे-बड़े सभी थे। यह हर वर्ष होता था। सर्दियोंभर शांत, निस्पंद रहने के बाद जंगल फिर जगता था।

सूर्य धरती के निकट आया, तो जमी बर्फ पिघलने लगी। शीत-निद्रा में सोये पशु-पक्षी जागने लगे। एक काले भीमकाय भालू ने भी अंगड़ाई ली। फिर शिकार की खोज में इधर-उधर नजरें दौड़ाने लगा। उसने एक हिरन को दूर पेड़ के नीचे खड़े देख लिया। हिरन ने भागना चाहा, पर भालू ने उसे दबोच लिया। हिरन की पनीली आंखों में मौत की छाया तैर रही थी, तभी भालू ने अपने पीछे एक गुर्राहट भरी आवाज सुनी। वह आवाज इस जंगल में भालू ने पहली बार सुनी थी। वह कुछ सोचता, मुड़ता, इससे पहले ही किसी ने उसे जोर से ऊपर की तरफ खींच लिया। झटका इतना जबरदस्त था कि खाल को नीचे छोड़कर भालू का त्वचा-विहीन शरीर हवा में पत्ते-सा डगमग करते लगा। किसी ने एक ही बार में उसका सिर तोड़कर परे फेंक दिया और उसके धड़ को अपनी मांद की ओर ले चला, जहां बहुत से अस्थिपंजर पहले ही पड़े थे। कुछ दिन बाद वहां मनुष्यों की अस्थियां भी इसी तरह फेंकी जानेवाली थीं। जल्दी ही आ रहा था वह समय...!

●●

वाशिंगटन डी. सी. में वसंत का अर्थ चेरी से लदे पेड़ों और घुड़सवारी के सीजन की शुरुआत से था, लेकिन रॉबर्ट वर्न

वसंत के दूसरे अर्थ से भी परिचित था—अगर सर्दी का मतलब गैस पाइपों से गैस की लीकेज, न्यूमोनिया और दम घुटने से होनेवाली मौत था तो वसंत चूहों के काटने से बीमार पड़नेवालों और भूमिगत नालियों के रुककर सडांध पैदा करनेवाले मौसम से था।

वह पिछले चार वर्ष से जन-स्वास्थ्य विभाग में डॉक्टर के रूप में काम कर रहा था। वह शहर की गंदी बस्तियों में रहनेवालों को स्वास्थ्य व नयी जिंदगी का आश्वासन देनेवाला मसीहा था—वे गंदी बस्तियां, जिनकी धड़कनें उसकी हरचंद कोशिशों के बावजूद, हर दिन धीमी पड़ती जा रही थीं।

भूमि की कीमतें बढ़ रही थीं—अच्छे खुले भवनों की जगह आकाश-चुंबी इमारतें ले रही थीं। जहां पहले दो हजार काले लोग रहते थे, वहां अब ७००० लोग रहने लगे थे। मकान-मालिक पैसा बटोर रहे थे। उन्हें मकानों में रहनेवालों की कतई कोई चिंता नहीं थी। जिसने शिकायत में मुंह खोला, उसे सड़क पर फेंक दिया जाता था। लोग बे-जुबान रहना सीख रहे थे। रॉबर्ट बर्न ऐसे ही लोगों के लिए संघर्ष कर रहा था। गंदी बस्तियों में बीमार बच्चों की दयनीयता उसे गहरे आतंक और त्रास से भर देती। वह सोचता, 'क्या यह जरूरी था कि इन्हें दुनिया में लाया ही जाता।'



यह आतंक और इससे जुड़ी तमाम बातें उसके और मेगी के बीच दीवार बन गयी थीं। मेगी, जिसे संगीत से लगाव व खुशनुमा घर और उसमें बसनेवाली किलकारियों के प्रति गहरी ललक थी। लेकिन इस ललक के प्रति वर्न के मन में कोई उत्साह नहीं था। वह कई तरीकों से मेगी को बता चुका था कि अभी उसे मां बनते नहीं देख पायेगा। पहले यह दुनिया कुछ ठीक तो हो जाए! मेगी ने इसे मान लिया था। वह अपने को संगीत की दुनिया में डुबा देना चाहती थी। वह रात को देर से लौटती, तब तक भी वर्न नहीं आया होता था। वह गंदी बस्तियों के बीमार बच्चों को अस्पताल पहुंचाता, उनकी तीमारदारी करता, उनके उग्र मां-बाप से मोर्चा लेता, जो उसे भी शोषक-व्यवस्था का एक मुखौटा ही मानते थे। कई-कई रात वह घर न लौटता। कभी-कभी मेगी की नींद टूटने से पहले ही घर से निकल जाता। उसे इस बात की याद ही नहीं थी कि मेगी तीस की हो चली है और हर नया दिन उसे नयी घुटन से दबोचता जा रहा है। वह आशंकित है—चरम आनंद के क्षणों की सावधानी उसे घुन की तरह खाये जा रही थी।

वर्न को यही चिंता थी कि दिनोंदिन विषाक्त होती दुनिया में लोग जीएंगे, तो कैसे?

उस दिन एक बीमार को अस्पताल ले जाते समय उसे एक प्रदर्शन के कारण रुक जाना पड़ा। अपनी परंपरागत वेश-भूषा में, चेहरे पर वारपेंट लगाये इंडियंस युवक-युवतियां नारे लगा रहे थे।

एक पेपर मिल उनके वन-प्रदेश को नेस्तनाबूद करने जा रही थी। जंगल कट रहे थे। जैसे-जैसे कागज का उत्पादन बढ़ रहा था, कच्चे माल, यानी लकड़ी की मांग बढ़ती जा रही थी और उसका मतलब यही था कि हरियाली से लदे वन-प्रांतर नंगे-बूचे होकर रह जाएं। प्रकृति की गोद में पले-बसे इंडियंस के लिए यह कार्य-एकाएक उनके कपड़े खींचकर नंगा कर देने की तरह ही था।

वे संरक्षण की मांग कर रहे थे, लेकिन कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। पर्यावरण-संरक्षण सब-कमेटी में सीनेटरों के सामने इंडियंस समुदाय की तरफ से जान हाक्स आग उगल रहा था। उन्होंने चेतावनी दे दी थी कि वे कागज मिल की गाड़ियों को अपने क्षेत्र में प्रवेश नहीं करने देंगे। अमरीकी कानून की दृष्टि से उनका यह कदम गैरकानूनी हो सकता था, पर वे अन्यायी कानून से लड़ने को तैयार हो रहे थे। जान हाक्स ने बताया था कि किस तरह कागज मिल उनकी जिंदगी में जहर घोल रही है।

सरकार ने निर्णय लिया था कि पर्यावरण-संरक्षण समिति यह जांच करेगी कि क्या सचमुच मनाती वन-क्षेत्र में कुछ गड़बड़ हो रही है, और कितनी? उसकी रिपोर्ट आने के बाद ही कुछ कहा जा

सकता था।

समिति के अध्यक्ष जान शुस्ते के सामने चुनौती आ भी गयी थी। अगर समिति ने उल्टी-सीधी रिपोर्ट दी, तो लकड़ी उद्योग की ओर से समिति को ही समाप्त करने का अभियान छेड़ दिया जाएगा।

जान शुस्ते को इस समस्या से बाहर निकलने का एक ही उपाय सुझायी दिया कि वह राबर्ट वर्न को पर्यावरण-संरक्षण समिति का जांच अधिकारी बनाकर भेज दे।

वर्न को शुस्ते ने रात के दो बजे एक अस्पताल के अंधेरे कारीडोर में जा पकड़ा। बेहद थककर फर्श पर पसरा हुआ था वर्न।

उसे समझना आसान नहीं था कि वह बीमार बच्चों को छोड़कर मनाती वन-क्षेत्र में जाए और मिट्टी के नमूने इकट्ठे करे, वनस्पति की जांच करे, पता करे कि औद्योगीकरण से उस क्षेत्र के पर्यावरण के लिए क्या खतरे पैदा हो गये थे। लेकिन शुस्ते ने तरीका सोच लिया था। वर्न के इंकार करते ही उसने कहा, "तुम यहां एक बीमार बच्चे की तीमारदारी में लगे हुए हो, वहां एक पूरे कबीले के लिए खतरा पैदा हो रहा है। तुम एक महल्ले की सफाई पर ध्यान दे रहे हो, लेकिन वहां हजारों वर्ग मील क्षेत्र के असंख्य पशु-पक्षियों, बेजुबान मछलियों, आदिम जातियों का जीवन दांव पर है।" अब तुम्हीं चुनाव कर लो। इसके बाद शुस्ते को दोबारा नहीं कहना पड़ा।

● ●

मेगी और वर्न ऐसे स्त्री-पुरुष थे, जो पति-पत्नी की भूमिका निभाते जा रहे



थे, न जाने कैसे ! जो एक ही छत के नीचे रहते-रहते हर पल विपरीत दिशाओं में खिसकते रहते थे। वे कब रुककर एक दूसरे की ओर बढ़ना शुरू करेंगे, यह सवाल मेगी हर पल अपने से पूछती रहती थी । वे जब मिलते थे, तो दुनियाभर की बातें होती थीं, ऐसी बातें, जिनमें मेगी और वर्न की अपनी कोई जगह नहीं होती थी । वे उस भाषा में बोलना भूल चुके थे।

लेकिन उस दिन न जाने क्या हुआ—शायद, मेगी ने जानबूझकर, सावधान रहने की ठान ली थी। रात में थकान से दुखते वर्न के लिए अपने अंदर जगह बनाती मेगी को कुछ हो गया था। पहली बार उसे अपना अकेलापन भागता हुआ लगा था।

कुछ दिन बाद पड़ोसी डॉक्टर ने उसके निखरते सौंदर्य पर कुछ फिकरे कहे थे, तो वह सुर्ख पड़ गयी थी । इसका कारण डॉक्टर ने उसके अंदर धड़कते बीज को बताया था, तब उसे अनचीन्हे आतंक का अंधेरा डराने लगा था। लेकिन ज्यादा देर वह त्रस्त नहीं रह सकी। एक अजानी पुलक उसे बार-बार गुदगुदा रही थी। समस्या यही थी कि वह वर्न से यह बात कैसे कहे ? कब और कहां ?

तभी वर्न ने अपने नये उत्तरदायित्व के बारे में बताया था, कहा था कि उन्हें कुछ दिन मनाती वन क्षेत्र में एक झील के बीचोंबीच उभरे छोटे से द्वीप पर, एक झोंपड़ी में बिताने होंगे। तब उसने तय कर लिया था कि यह बात वर्न को नहीं बतायेगी वह।



मनाती वन-क्षेत्र पर पूरा चांद चमक रहा था। सब बहुत कुछ बदल गया था, पर तीन सौ वर्गमील क्षेत्र के इस सघन में अभी भी सब कुछ वैसा ही था, जैसा बनानेवाले ने उसे बनाया था। सूरज पत्तों के चंदोवे से छनकर धरती पर उतरता था। यहां-वहां ऊंचे कंटीले पेड़ बेधड़क आसमान में गड़ जाने को तैयार खड़े थे। सुबह-सुबह हवा में कुछ सुरीली धुनें गूंजती थीं—शाम को गूंजनेवाले आकाशी स्वरों में घर लौटनेवाली थकान का सुख होता था। रात का अंधेरा अब भी डरा देनेवाली चीखों से कट जाता था।

यहां मनाती नदी बहकर एस्पी में मिलती थी। यहां बनी झील को आदिवासी इंडियंस साठ नामों से जानते थे। लेकिन अब उनके नामों की जगह दूसरे नाम आ गये थे। अपने बीचोंबीच एक द्वीप लिये खड़ी वाबागून झील को अब मेरी झील कहा जाने लगा था। मेरी जार्जिया के उद्योगपति मारिस पिट्ने की पत्नी थी। उसी ने चंचल एस्पी नदी के किनारे पिट्ने पेपर मिल बनायी थी।

उस इलाके में काफी कुछ बदल गया था। पिट्ने दम्पति मर चुके थे, लेकिन उन्होंने जो बीज बोया था, वह काफी फैल चुका था। जंगल अब पेपर मिल का था। वहां खड़े चीड़ के ऊंचे-ऊंचे पेड़, जिन्हें आदिवासियों ने अपने पूर्वजों के नाम दे

रखे थे, अब संख्याओं से जाने जाते थे। उन पर लकड़ी का परिमाण, वजन, मूल्य बतानेवाली पर्चियां चिपक गयी थीं।

पेपर मिल की चिमनियों से निकलनेवाला जहरीला धुआं एक स्थायी बादल की तरह जंगल पर ठहरा रहता था। इसीलिए आदिवासी उस कारखाने को गुर्रानेवाला दैत्य कहने लगे थे।

आदिवासी आमतौर पर शांतिप्रिय और एकांतसेवी थे। शुरू-शुरू में उन्होंने पेपर मिल के अतिक्रमण को सहा। ऊंचे पेड़ कटते रहे, वे देखते रहे, पर इधर जान हाक्स के कारण उनमें चेतना आ रही थी। साथ ही ऐसे बदलाव भी देखने में आ रहे थे, जिनका कोई कारण उनकी समझ में नहीं आता था। अकसर ही उनके बारे में यह कहा जाता कि वे शराब के नशे में धुत्त रहते हैं। लेकिन वे लोग कसम खाने को तैयार थे कि वे शराब छूते तक नहीं हैं।

आदिवासी नारियां एक दूसरी यंत्रणा भुगत रही थीं--समय पूर्व प्रसव होने लगे थे। विकृत शिशुओं की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। कोई नहीं जानता था कि क्यों? इस बारे में बात करना भी गलत समझा जाता था। मानव देहों में



तेजी से हो रहे रासायनिक परिवर्तनों को वीभत्स प्रमाण मनाती वन-क्षेत्र में जगह-जगह ताजी कब्रों में दबे पड़े थे।

मसक्यूडी कबीले में सबसे पहले इस संबंध में आवाज उठानेवाली थी रोमोना पीटर्स जिसे ओलियाना के कबीलाई नाम से भी जाना जाता था। यह नाम अपने बाबा हेक्टर म' राई से मिला था, जो —मसक्यूडी कबीले का भूतपूर्व मुखिया और सबसे वृद्ध व्यक्ति था। रोमोना बारह वर्ष की थी, तभी एक लकड़हारे ने उसके साथ बलात्कार किया था। रोमोना ने शेरिफ के सामने फरियाद की और उसे पता चल गया था कि आदिवासियों के प्रति 'गोरा' न्याय कैसा होता है। तभी से उसके मन में इस अन्यायी न्याय के प्रति एक आग जलने लगी थी। इसी एक बात ने उसे और जान हाक्स को जोड़ दिया था।

रोमोना को ही पहलेपहल कबीले में पैदा होनेवाले विकृत शिशुओं को देखने का मौका मिला था। देखकर थर्रा गयी थी रोमोना। चरम विकृति की स्थिति—अनुपात से बहुत बड़ा सिर, बड़ी और डरावनी आंखें। उंगलियां लंबी और चपटी-जैसे पंजे हों। पैर गोल और हाथों के मुकाबले बहुत छोटे। मनुष्य का नहीं, किसी राक्षस का बच्चा लगता था। अगर कोई ऐसा शिशु जीवित रह जाता था, तो उसकी डरी हुई मां उसे जंगल में छोड़कर भाग आती थी। किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था कि प्रकृति की गोद में रहनेवाले आदिवासियों में यह विकृति क्यों आ गयी थी?

रोमोना ने इधर-उधर खोज की थी। ढेरों पुस्तकें पढ़ डाली थीं। तभी उसने कहीं पढ़ा था कि मनुष्य के स्वास्थ्य और व्यवहार को नियंत्रित-नियमित करने में प्रोटीन सबसे महत्त्वपूर्ण होते हैं, एक अफरीकी कबीले के लोग इसीलिए विक्षिप्त और बीमार हो गये थे कि शिकारियों द्वारा उनके प्रदेश के अधिकांश वन्य जानवरों को मार डालने के कारण उनके भोजन में प्रोटीन की बहुत कमी हो गयी थी। और मनाती वन-प्रदेश का मसक्यूडी कबीला मत्स्य-भक्षी था, जिसमें खूब प्रोटीन होती है। फिर भी उनमें ये विकृतियां क्यों आ रही थीं—विकृत भ्रूण, शराब न पीनेवाले मसक्यूडी लोगों पर शराब पीकर हुड़दंग मचाने का आरोप, और अन्यमनस्क स्थिति। कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ जरूर थी, लेकिन क्या, यही रमोना नहीं जान पायी थी। हां, इतना जरूर समझ गयी थी कि जब से पेपर मिल ने उत्पादन शुरू किया था, तभी से यह गड़बड़ शुरू होने लगी थी।

इधर शहरों में यह प्रचार होने लगा था कि आदिवासी शराब पीकर झगड़ा करते हैं। नौबत मार-पीट तक भी आ जाती है। कुछ दिन हुए पेपर मिल के दो कर्मचारी जंगल में गुम हो गये थे। पेपर मिलवाले कह रहे थे कि उन्हें आदिवासियों ने मारा डाला है, उनकी खोज में कई

टोलियां इधर-उधर घूम रही थीं।

अंधेरे जंगल में यहां-वहां जुगनुओं की चमकती रोशनियां बता रही थीं कि खोए लोगों की खोज जारी है। आगे-आगे शिकारी कुत्ते और पीछे-पीछे हांफते हुए चार लोग बढ़ रहे थे। कुत्तों ने एक तेज गंध सूंघी थी, जो एक खाई से उठ रही थी। वे पागलों की तरह दौड़ रहे थे। खाई का किनारा आने से पहले पीछा करनेवालों को इस खतरे का पता नहीं चला। और जब चला, तो बहुत देर हो चुकी थी। वे नीचे गिरे, जहां 'कोई' उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी देर बाद जंगल डरावनी चीखों से थर्रा उठा !

● ●

इसेली को पता चल गया था राबर्ट वर्न की यात्रा के बारे में। वह पिट्ने पेपर मिल का मैनेजिंग डायरेक्टर था। उसके लिए यह जरूरी था कि राबर्ट वर्न की रिपोर्ट पेपर मिल के लिए अंधाधुंध पेड़ काटने के खिलाफ न जाए। इसीलिए वह तैयारी कर रहा था। उसने वर्न दंपति के बारे में जानने लायक सभी बातें जान ली थीं। झील के बीच में उभरे द्वीप पर बने काटेज में आराम के सभी सामान जुटाने के बाद वह हवाई अड्डे पर उनका स्वागत करने जा रहा था। एक बार विशेष रूप से वर्न दंपति के लिए जा रही थी।

उधर जंगल में हाक्स और उसके साथी तैयार थे। उन्होंने तय कर लिया था कि पेपर मिल के आदमियों को वन में प्रवेश नहीं करने दिया जाएगा।

● ●

मनाती वन-प्रदेश में दिन आंखें खोलने लगा था। आसमान में काले बादल काफी नीचे उतरकर चल रहे थे। बहुत उमस थी। दूर दीखते कुहरे से आवृत पर्वतों में बिजली की गरज-तरज सुनायी पड़ रही थी। रह-रहकर आकाश अमानवीय प्रकाश से उद्भासित हो उठता था।

मेरी झील पर कुहरा किसी ढक्कन की तरह ठहरा हुआ था। लेकिन जंगली जानवरों की दिनचर्या आरंभ हो गयी थी। कुहरे को चीरकर उनकी आवाजें ऊपर उठ रही थीं। एक गहरी खाई में कुछ वन्य पशु आपस में मांस के टुकड़ों पर छीना-झपटी कर रहे थे, रात को खाई में गिरे खोजी टोली के सदस्यों के अवशेष। सब तरफ रक्त के छींटे थे। बहुत बेदर्दी से मारा था उन्हें किसी ने, लेकिन किसने ?

● ●

दो इंजनवाले छोटे विमान से नीचे फैले मनाती वन-क्षेत्र को देखकर मेगी खुश हो उठी। उसने वर्न की ओर ताका। वह भी नीचे की तरफ देख रहा था। ये हवाई अड्डे पर उतरने जा रहे थे। वर्न उसके पास बैठा था, यह मेगी को सपना लग रहा था। इतने वर्षों के विवाहित जीवन में पहली बार दोनों इतने निकट आ सके थे। मेगी के अंदर एक बात उमड़-घुमड़ रही थी, किसी मीठे सुर की तरह, जो उसके होंठों से निकलकर वर्न के कानों

में जाने के समय, एक विषैली फुंफकार बन जानेवाली थी, इसे वह अच्छी तरह जानती थी।

. जहाज से उतरते ही सबसे पहले आकाश में एक अजूबा दिखायी दिया—आकाश में घरघराते हेलीकाप्टर से लटका एक शिकारी कुत्ता। उसे खाई से बचाकर निकाला गया था। वर्न अभी ठीक से खड़ा भी नहीं हो पाया था कि इसेली ने आकर उसे घेर लिया। एक ही सांस में बहुत कुछ बता गया इसेली। बीच-बीच में मेगी की तारीफ करता जाता था। औरतों की इस कमजोरी से अधिक अच्छी तरह परिचित था इसेली। लेकिन वर्न कुछ बेचैनी महसूस कर रहा था। वह जिस मिल की कारगुजारियों की जांच करने आया था, उसी का मैनेजिंग डायरेक्टर इस तरह पेश आ रहा था! बड़ी विचित्र बात थी। उसने अपने को बहुत अलग करना चाहा, पर इसेली ने अपनी पकड़ ढीली न की। वर्न ने कंपनी की कार में बैठना भी पसंद न किया, पर इसेली ने बहुत इसरार किया, "इसमें हर्ज ही क्या है। मैं आपको रिश्वत नहीं दे रहा हूं।"

अब इंकार नहीं किया जा सकता था।

●●

इसेली उन्हें बताता चल रहा था कि किस तरह वे एक पेड़ काटने के साथ दस नये पेड़ रोप देते हैं। और इस बात का पूरा ख्याल रखते हैं कि मिल से रासायनिक कचरा बाहर न आये। वातावरण को न बिगड़ने देने के लिए कृत संकल्प है वह।

एकाएक कच्ची सड़क के बीचोबीच आदिवासियों का झुंड खड़ा दिखायी दिया। उन्होंने सड़क के आर-पार पेड़ों से एक मोटी जंजीर बांध रखी थी। हाक्स और रोमोना आगे खड़े थे।

"रास्ता छोड़ दो," इसेली गुर्राया।

"नहीं, हम पर गुजरकर ही पहिए आगे जा सकते हैं," हाक्स की आवाज गूंजी।

इसेली के संकेत पर एक मोटा-ताजा व्यक्ति बैट्री से चलनेवाला आरा लेकर आगे बढ़ा। क्योंकि, हाक्स के साथी जंजीर खोलने को तैयार नहीं थे। इसीलिए इसेली ने पेड़ काटने का संकेत कर दिया था।

हाक्स पेड़ से चिपक कर खड़ा हो गया।

वर्न रोकता रह गया, पर किसी ने न सुनी।

इसेली का आदमी और हाक्स लड़ रहे थे। हाक्स लड़खड़ाकर गिरा और स्वचालित आरा उसकी गरदन के पास घूमने लगा था।

"तुम मुझे मारो, यह जंगल तुम्हें मार देगा," हाक्स की आहत आवाज में एक भविष्यवाणी झांक रही थी।

इससे पहले कि आरा हाक्स की गरदन उड़ा देता, रोमोना ने दौड़कर जंजीर हटा दी। इसेली के संकेत पर कारों का काफिला आगे बढ़ चला, आदिवासियों

का झुंड पीछे छूट गया । पहली मुठभेड़ में आदिवासी पीछे हटने पर मजबूर हुए थे, लेकिन क्या सचमुच जंगल हार गया था?

मेरी झील तक के रास्ते में इसेली अपनी सफाई में न जाने क्या-क्या कहता रहा। लेकिन वर्न और मेगी अंदर तक कांप गये थे कि न जाने कल क्या होनेवाला है।

झील के किनारे दोनों को छोड़कर इसेली लौट गया। बीच में बने द्वीप तक जाने के लिए एक मोटरबोट तैयार थी। दोनों चुपचाप द्वीप पर पहुंच गये। वहां काटेज में जलती रोशनी अंधेरे जंगल में किसी भयानक दैत्य की आंख-सी चमक रही थी।

काटेज में सुख-सुविधा का सारा सामान मौजूद था। यह भी इसेली की करामात थी।

उस रात के कुछ क्षण मेगी कभी नहीं भुला सकती। वह निविड़ एकांत अंधकार और काटेज की आरामदेह गरमाग्री में एक दूसरे में खोए थे दोनों। फिर न जाने कब नींद आ गयी।

एकाएक दरवाजे पर थप-थप सुनकर वर्न की नींद टूट गयी। वह उठकर दरवाजे पर आया। दरवाजा खोलते ही एक जानवर पागल की तरह उस पर टूट पड़ा। न जाने वह कौन-सा जानवर था। वर्न ने उसे खदेड़ा, तो वह मेगी पर झपटा, दोनों लहूलुहान हो गये। उसे मारने के बाद वर्न ने उसके दिमाग की चीरफाड़ की और देखकर चकित रह गया कि मृत पशु का मस्तिष्क सामान्य नहीं था।

अगले दिन वन में रेंजर के टावर पर मिली मृत बिल्ली के दिमाग की भी वैसी ही हालत देखी थी उसने। वे दोनों घूमते हुए उस टावर पर चढ़ गये थे। वर्न ऊंचाई से जंगल के कुछ फोटो लेना चाहता था, लेकिन वहां रेंजर ने अड़चन डाली। उसका व्यवहार पागलों-जैसा था। वहीं पता चला कि उसे एक बिल्ली ने काट लिया था और वह फिर मर गयी थी।

यह बात वर्न को रह-रहकर परेशान कर रही थी। आखिर इस जंगल में रहनेवाले पशु पागल क्यों हो रहे थे। अगली रात वह प्रश्न में उलझा झील के किनारे खड़ा था, तो उसने एक बहुत बड़ी मछली को पानी में उछलते देखा। सामान्य मछलियों से बीस गुना बड़ी थी वह मछली। एक के बाद दूसरी आसामान्य स्थितियों के झटके झेलते हुए भी वर्न ने अपना काम शुरू कर दिया था। वह मिट्टी के नमूने इकट्ठे कर रहा था। पानी की जांच भी की थी।

●●

सैलानियों का एक परिवार मनाती वन-प्रवेश में घूम रहा था। पति-पत्नी और दो बच्चे। वे छुट्टियां बिताने आये थे। उन लोगों ने वहां हुई घटनाओं के बारे में सुना था। रात को बच्चे माता-पिता से थोड़ा अलग सोए। वे बताना चाहते थे कि उन्हें बिलकुल डर नहीं लगता।

आधी रात के समय बच्चों ने एक आहट सुनी, जो बहुत तेज थी। वे कुछ पूछ पाते इससे पहले ही एक दैत्याकार आकृति वहां आ गयी। उसने पलक झपकते ही चारों के शरीर तोड़-मरोड़कर दूर फेक दिये। फिर धरती को कंपाते हुए वहां से चला गया।

पागल होते पशु, सामान्य से बड़ी मछलियां, जंगल में फिरनेवाला दैत्य, जिसे आदिवासी कथाडिन के नाम से पुकारते थे। वर्न का दिमाग एक के बाद दूसरी समस्या में उलझता जा रहा था। तभी रोमोना ने उसे अपने कबीले में पैदा होनेवाले विकृत शिशुओं के बारे में बताया था। रोमोना उसे कबीले के आदि-पुरुष हेक्टर न प' राई से मिलाने भी ले गयी थी। वह घने जंगल में एक तालाब के किनारे रहता था, जहां कोई भी नहीं जा सकता था। वहां जाकर वर्न चकित हो देखता रह गया। पेड़ों की जड़ें जमीन में न होकर बाहर फैली हुई थीं। कई पेड़ों के पत्ते बड़े और नीले थे। तालाब के पानी का रंग भी गहरा नीला था।

पूछने पर प', राई हंसा। यह सब कथाडिन का चमत्कार है—यहां सब कुछ इसी तरह होता है। लेकिन वर्न का विज्ञानी

मन कह रहा था कि यह सब किसी मूलभूत रासायनिक परिवर्तन के कारण हो रहा है।

उसे पता चला कि पेपर मिल से एक नाला उस तालाब में आकर गिरता है। उस तालाब में उसे बहुत सारे लकड़ी के लट्ठे भी पड़े दिखायी दिये।

वर्न चीख पड़ा, "यहां का पानी मत पीना, यहां की कोई चीज मत खाना। यहां सब कुछ विषैला हो चुका है।"

उसकी चीख का प' राई की मुसकान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। "कथाडिन", उसने सिर्फ इतना कहा और आंख मूंद लीं।

●●

वर्न मेगी को साथ लेकर इसेली से मिलने पेपर मिल तक गया। नदी में दोनों ओर तलछट जमा थी, जिस पर हजारों की संख्या में मछलियां मरी पड़ी थीं। वह जानना चाहता था, इस प्रदूषण के लिए इसेली का कारखाना कहां तक जिम्मेदार है। इसेली ने उन्हें कागज उत्पादन की पूरी प्रक्रिया समझा दी। सब कुछ दिखा दिया। प्रयोग में आनेवाले रासायनिक पदार्थों के नाम बता दिये। उनमें ऐसा कुछ नहीं था, जिसे खतरनाक कहा जा सकता। लेकिन वर्न का मन कह रहा था—कोई ऐसी बात जरूर है, जो उसे पता नहीं चल रही। प्रकृति व मनुष्य में आयी इस विकृति का कोई न कोई कारण तो होगा ही।

लौटकर वह सोचता रहा, पढ़ता रहा। और फिर उसे अंधेरे में रोशनी की एक किरण दिखायी दी—इसेली ने बताया था—फालतू लकड़ी को वे एक रासायनिक घोल में डुबाकर रखते हैं, ताकि उस पर काई न जमे। उस घोल में पारे का इस्तेमाल किया जाता है।

१९५६ में जापान की एक कागज मिल से बाहर आनेवाले मिथाइल मर्करी से एक झील का जल विषाक्त हो गया था, जिसे पीने जिसे एक लाख आदमियों की पूरी बस्ती बीमार हो गयी थी, अनेक लोग अपंग हो गये थे। वहां भी विकृत बच्चे पैदा हुए थे। उसे 'शराबी बीमारी', 'बिल्ली रोग', और न जाने क्या-क्या नाम दिये गये थे, क्योंकि वहां की झील से मछलियां खाकर सब पालतू बिल्लियां बीमार पड़ गयी थीं। लोग बिना शराब पिये ही झूमते रहते थे—जैसे नशे में हों।

मनाती वन-प्रदेश में भी तो ऐसा ही हुआ है। यहां भी तो आदिवासी मछलियां खाकर रहते हैं। क्या जापान की लोमहर्षक कहानी, यहां भी दोहरायी जा रही है। वर्न जितना सोचता, उतना ही उसका संदेह पक्का होता जाता।

'मिथाइल मर्करी' जो मूल रूप में अजैविक था, शरीर में पहुंचकर जैविक हो जाता है, और घातक बन जाता है। इसका आक्रमण होता है मस्तिष्क की कोशिकाओं पर—स्पंदन-हीनता, पक्षाघात, और मृत्यु। इसका प्रभाव भ्रूण पर

बहुत विनाशक होता है। बच्चे पर इसका दुष्प्रभाव मां से अधिक पड़ता है। इन्हीं दुष्प्रभावों के कारण हेग के विश्व न्यायालय ने 'मिथाइल मर्करी' का उपयोग अवैध करार दे दिया था, लेकिन यह तय है कि उद्योगों में इसका चोरी छिपे प्रयोग जरूर हो रहा है। और पिट्ने पेपर मिल भी उनमें से एक है—अब इसमें वर्न को कोई भी संदेह नहीं रह गया था।

'मिथाइल मर्करी' पानी में भीगी लकड़ी को खराब होने से बचाता है। उस पर काई नहीं जमने देता। एक न्यूरो-टाक्सिन। उस काई को मछलयां खाती हैं—बाद में उन मछलियों को बस्ती के लोग व पशु खाते हैं, और सब बीमार हो जाते हैं। फिर यह क्रम चलता रहता है। एक बार नहीं, बार-बार।

वर्न कहे जा रहा था, लेकिन मेगी समझ नहीं पा रही थी—और तभी वर्न की आवाज गूंजी थी—'इसी के कारण विचित्र बच्चे पैदा होते हैं, इसी के कारण मछलियों का आकार बीस गुना बढ़ जाता है। पैदा होनेवाले बच्चे कभी कभी दैत्याकार भी हो जाते हैं।

यह बात गोली की तरह लगी थी मेगी को। उसने छिपे तौर पर धीरे से पेट को छुआ था, यह सच था या वहम। उसने अपने अंदर एक स्पंदन महसूस किया था। जैसे किसी ने करवट ली हो। हां, उसने भी तो मेरी झील की मछलियां खायी थीं कई बार, लेकिन वर्न को तो जरा भी आभास नहीं था। मेगी के गर्भाशय में पलते इस रहस्य के बारे में।

मेगी का जी मिचला रहा था। अंदर से 'कुछ' बाहर आना चाहता था। उसने कै कर दी। बाहर अंधेरे जंगल में डरावनी आवाजें गूंज रही थीं। उन्हीं में एक आवाज उसकी भी थी, जो बहुत बड़ा था,

बुद्धि-विलास के उत्तर

१. ग. २. ख, ३. क, घ, ४. ख., ५. ग्रामीण ६५ रु. तथा शहरी ७५ रु. प्रतिव्यक्ति मासिक आय (१९७७–७८ के मूल्य-स्तर पर), ६. क. उड़ीसा (७१.०१ प्रतिशत ग्रामीण गरीबी-रेखा से नीचे), ख. केरल (५२.६९ प्रतिशत शहरी गरीबी-रेखा से नीचे), ७. क. प्रोफेसर यशपाल (स्पेस ऐप्लीकेशन सेंटर, अहमदाबाद के निदेशक)—संचार-विज्ञान तथा विकास तकनीक में महत्त्वपूर्ण योगदान, ख. लता मंगेशकर, ८. ख., ९. क. २० वीं शताब्दी (२२ मार्च, १९७९ को शक संवत १९०१ प्रारंभ), ख. २२ मार्च १९५७ (१ चैत्र १८७८), १०. ख. बांडुंग (इंडोनेशिया, १९५५), ११. ग, १२. यह भुजा ट्रक पर लगी है, इसके द्वारा आखिरी मंजिल के आदमी को बचाया जा सकता है। यूरोप में हवाई जहाज की सतह पर से बर्फ भी हटा सकती है।

दैत्याकार वह अंधेरे में चुपचाप घूम रहा था। क्या यह भी 'मिथाइल मर्करी' के कारण हुआ था... चार सैलानी गायब थे। वे मार डाले गये थे आदिवासियों द्वारा, शेरिफ का यही ख्याल था।

लेकिन वर्न का ख्याल था गड़बड़ कहीं और हो रही थी। वह उस स्थान को देखना चाहता था, जहां कथित दुर्घटना हुई थी। शहर जाकर उसने हेलीकाप्टर का प्रबंध किया ।

मेगी, वर्न, हाक्स व रोमोना तथा एक पायलट को साथ लेकर हेलीकाप्टर उड़ चला। वर्न को एक गहरी संकरी घाटी में एक तंबू लगा दिखायी दिया। शायद यही वह स्थान था। उसके संकेत पर हेलीकाप्टर नीचे उतार लिया गया। चारों ओर खून ही खून। सड़ते हुए मांस की दुर्गंध हवा को जहरीली बनाये दे रही थी। काफी बड़े हिस्से में पेड़ टूटे हुए थे, धरती में गड्ढे थे—जैसे कोई बहुत बड़ा जानवर गुजरा हो वहां से।

वर्न का चेहरा गंभीर हो उठा। यह किसी मानवीय हाथ का काम नहीं था।

"कथाडिन।" रोमोना धीरे से फुसफुसायी।

"हां, कथाडिन।" हाक्स की डरी हुई आंखें कहीं दूर देख रही थीं। निश्चित रूप से यह उसी की करतूत थी। कथाडिन, जो ताड़ जितना बड़ा था, जिसकी आंखें तश्तरी जितनी बड़ी और गोल थीं, जिसके सारे शरीर पर काले बाल थे। कथाडिन के बारे में कबीले में कई कथाएं प्रचलित थीं—उसे हेक्टर प' राई ने कई बार अपनी आंखों से देखा था।

आगे दलदल के किनारे कई बांस गड़े हुए थे। वे ऊदबिलाव पकड़ने के फंदे थे, जिन्हें आदिवासियों ने लगाया था। उन्हीं से दो पशु लटके हुए थे। वर्न ने आगे बढ़कर देखा, तो आतंक की लहर उसे सिहरा गयी। वे न पशु थे, न मनुष्य। किसी दैत्य के बच्चे थे। उनमें से एक मृत था, दूसरा जीवित। वर्न उसका पूरा परीक्षण करना चाहता था, ताकि पता चल सके किस रासायनिक प्रक्रिया में गड़बड़ी के कारण यह विकृति आयी है। उसने मेगी का स्कार्फ लेकर जीवित दैत्य-शिशु को उसमें लपेट लिया।

तीन घंटे बाद वे आदिवासी बस्ती में पहुंच गये। वहां तंबू की गरमी में उस दैत्य शिशु ने अपनी तश्तरी जैसी गोल आंखें खोल लीं और बड़ी विचित्र आवाज में चीखा। और कुछ देर बाद तूफान की हलचल को भेदकर एक वैसी ही आवाज और सुनायी दी। जैसे उस दैत्य शिशु की आवाज का जवाब दिया था किसी ने !

"न जाने इस तरह के और कितने दैत्य शिशु पैदा होंगे।" वर्न ने कहा।

"एक के बारे में मैं जानती हूं, क्योंकि मैं मां बननेवाली हूं।" ये शब्द किसी विस्फोट की तरह मेगी के होंठों से फिसल गये।

तभी जंगल में कुछ रोशनियां चमकीं

और कई कारें आकर रुक गयीं—शेरिफ, इसेली व कई बंदूकधारी सिपाही नीचे उतरे—उन्होंने आदिवासी बस्ती को घेर लिया। वे सैलानियों की हत्या के संबंध में पूछताछ करने आये थे।

उन्हें बंदूकें ताते देख, वर्न तंबू से बाहर निकल आया। उसने कहा, "बंदूकें नीचे कर लो। सैलानियों को मारनेवाले आदिवासी नहीं हैं। उन्हें कथाडिन ने मारा है। मैं तुम्हें उसका लघु रूप दिखाता हूं।"

देखकर सबकी आंखें फटी रह गयीं।

"मिथाइल मर्करी," वर्न ने इसेली से कहा ! थोड़ी देर बाद वह दैत्य शिशु फिर चीखने लगा। और जंगल की ओर से वैसी ही आवाज बार-बार उभरने लगी। धम-धम की आहट भी हो रही थी।

फिर जैसे विस्फोट हुआ। पेड़ उखड़कर गिरने लगे, धरती कांपने लगी—एक दैत्याकार आकृति सामने दिखायी दी।

"कथाडिन... कथाडिन," रोमोना व हाक्स चीख पड़े। फिर सब भागने लगे।

वर्न मेगी का हाथ पकड़कर भाग रहा था। रोमोना और हाक्स भी साथ थे। वे झील की तरफ भाग रहे थे। बीचवाला द्वीप ही उनका लक्ष्य था।

वे चारों हांफते हुए द्वीप पर बनी काटेज में जा पहुंचे। उन्हें उम्मीद थी शायद कथाडिन झील को तैरकर वहां तक नहीं आ सकेगा। लेकिन उनका ख्याल गलत निकला। कुछ देर बाद बाहर वैसी ही चीख सुनायी दी। सहसा दो नुकीले पंजे आगे बढ़े और हाक्स व रोमोना उनकी पकड़ में आकर हवा में लटके छटपटाने लगे। दैत्य पशु अब ठीक सामने था। मलबे के पीछे छिपे वर्न की पिस्तौल ने कई बार आग उगली। द्वीप एक गरजदार चीख से गूंज उठा। दैत्य पशु के चेहरे से खून की धाराएं वह चलीं। वह लड़खड़ाया फिर पलटकर लौट गया।

अगले दिन मेगी ने अस्पताल में आंखें खोलीं—उसने हाथ अपने पेट पर फिरने लगा, जैसे कुछ टटोल रही हो।

"मेगी," वर्न की धीमी आवाज उभरी। "चिंता न करो। जो कुछ तुम्हारे अंदर था, इतनी उथल-पुथल के बाद अंदर रह नहीं सकता था। लेकिन तुम मां जरूर बनोगी। मैं वादा करता हूं। अब कथाडिन का कोई डर नहीं है।"

●

मनाती वन-क्षेत्र। रेंजर का ऊंचा केबिन। सुबह हो रही थी। रेंजर खिड़की में खड़ा लाल-लाल आंखों से वन के अनंत विस्तार को नाप रहा था। दूर उसे हलचल दिखायी दी—तो उसने दूरबीन उठा ली वह स्तंभित बैठा रह गया। पेड़ों के नीचे चार पांच दैत्य पशु उछलते दिखायी दिये उसे। 'मरकोडी,' 'कथाडि उसके खुश्क होंठों से आवाज निकली।

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गौरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित



समस्यापूर्ति--१४

एक रंग है हमारी हर अदा

ऊपर प्रकाशित चित्र को ध्यान से देखिए और उसके नीचे बड़े अक्षरों में लिखी पंक्ति पढ़िए। इन्हें लेकर आपको एक कविता लिखनी है--गीत, गजल या छंदहीन पंक्तियां भी। आपकी रचना मौलिक तथा छह पंक्तियों की ही हो। प्रविष्टि पोस्ट कार्ड पर ही भेजें। जो श्रेष्ठ रचना होगी, उसे पुरस्कृत किया जाएगा।

प्रथम पुरस्कार--२५ रुपये

द्वितीय पुरस्कार--१५ रुपये

म तिथि--५ जून, १९८०

विक्रांत माथुर

...गयीं—शेरिफ, ... सिपाही नीचे ...नी को घेर ... संबंध

ख्याल गलत निकला। कुछ देर बाद बाहर वैसी ही चीख सुनायी दी। सहसा दो नुकीले पंजे आगे बढ़े और हाक्स व रोमोना उनकी पकड़ में आकर हवा में लटके छटपटाने लगे। दैत्य पशु अब ठीक सामने था। मलबे के पीछे छिपे वर्न की ...ने कई बार आग उगली। द्वीप ... चीख से गूंज ...

...छलते ...,' 'कथाडि ...वाज निकली।

... द्वारा हिन्दुस्तान लीवर क... प्रकाशित

अंति

छाया :

अंग 3

गयीं—शेरिफ, सिपाही नीचे ...नी को घेर ... संबंध

ख्याल गलत निकला। कुछ देर बाद बाहर वैसी ही चीख सुनायी दी। सहसा दो नुकीले पंजे आगे बढ़े और हाक्स व रोमोना उनकी पकड़ में आकर हवा में लटके छटपटाने ...